घट रामायण

(तुलसी साहब हाथरस वाले)

सम्पादक तथा टीकाकार

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

Visit **Dwarkadheeshvastu.com** For
FREE Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers
****
All Music is also available in **CD** format. **CD Cover** can also be print with your Firm Name
****
We also provide this whole Music and Data in **PENDRIVE** and **EXTERNAL HARD DISK.**
Contact : Ankit Mishra (+91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com)

घट रामायण

(हिन्दी)

विषय-सूची

			पृष्ठ संख्या
	भूमिका	....	९
१.	तुलसी साहब तथा घट रामायण	....	११
२.	जन्म तथा मृत्यु-तिथियाँ	...	११
३.	जीवन परिचय	...	११
४.	कृतियों का परिचय–	...	१४
	(क) घट रामायण		
	(ख) तुलसी शब्दावली		
	(ग) रत्न सागर		
५.	गोस्वामी तुलसीदास और तुलसी साहब का ऐक्य	...	१५
६.	सन्त तुलसी साहब का मूल्यांकन	...	१७
	घट रामायण : मूलपाठ तथा टीका		
७.	भेद-पिंड और ब्रह्मांड का	...	१९
८.	नीर के नाम	...	३९
९.	गगन के नाम	...	४२
१०.	भँवर गुफा के नाम	...	४३
११.	त्रिकुटी के नाम	...	४३
१२.	नाल के नाम	...	४८
१३.	सुन्न भेद	...	५१
१४.	भेद पिंड और ब्रह्मांड का	...	५९
१५.	जीव बचन	...	६०
१६.	गुफा	...	६५
१७.	घट का भेद और ठिकाना	...	८१
१८.	कोठों के नाम	...	८६
१९.	सिद्धों के नाम	...	९१

पृष्ठ संख्या

२०.	प्रकृतियों के नाम	...	९३
२१.	प्रकृति के सुभाव	...	९४
२२.	नाड़ियन के नाम	...	९६
२३.	इन्द्रियन के बास	...	९६
२४.	सुन्नन के नाम	...	९७
२५.	बरनन चार गति बैराग	...	१०७
२६.	भेद पिंड और ब्रह्मांड का	...	१२५
२७.	हाल काशी का	...	१३०
२८.	संवाद साथ तकी मियाँ के	...	१३८
२९.	संवाद जैनियों के साथ	...	१४७
३०.	करिया नामी जैन स्त्री का तुलसी साहब के दर्शन को आना और शरण लेना	...	१८०
३१.	संवाद, माना, नैनू स्यामा पंडितों के साथ	...	१९४
३२.	संवाद मानगिरि सन्यासी के साथ	...	२४७
३३.	संवाद फूलदास कबीर पंथी के साथ	...	२७४
३४.	हाल मुसलमान साधू अली मियाँ का	...	३३९
३५.	संवाद साथ गुनुवाँ बेटा हिरदै अहीर के	...	३६५
३६.	हाल-अभ्यास तीनों पंडितों का	...	३८५
३७.	संवाद प्रियेलाल गुसाई के साथ	...	४०४
३८.	गुनुवा	...	४५९
३९.	हाल प्रियेलाल के अभ्यास का	...	४६७
४०.	संवाद साथ-पलकराम नानक पंथी	...	५०५
४१.	संवाद साथ-गुपाल गोसाई कबीर पंथी	...	५६६
४२.	भेद राम और रामायन का जो तुलसी साहब ने अपने शिष्य हिरदे से कहा	...	५९६
४३.	तुलसी साहिब के पूर्वजन्म का हाल	...	६०३
४४.	संतमत भेद बरनन	...	६०८

⁂ ⁂ ⁂ ⁂

तुलसी साहब तथा घट रामायण

हाथरस के तुलसी साहब निर्गुण संत मत के एक सिद्ध साधक तथा हिन्दी साहित्य के बहुचर्चित व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनकी चर्चा प्राय: सभी इतिहास ग्रन्थों में हुई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० राम कुमार वर्मा, डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त आदि ने अपने इतिहास ग्रन्थों में इनके वैदुष्य तथा स्पष्टवादिता की अनेकश: चर्चा की है फिर भी इन इतिहास ग्रन्थों को देखने से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है–इसके कृतित्व एवं गम्भीर साधना का वैसा सम्यक् विश्लेषण नहीं हुआ है, जो अपेक्षित था–शायद यह इसलिए कि ये सन्त साहित्य के समापन काल के कवि तथा चिन्तक रहे हैं और हमारी दृष्टि कबीरदास, नानक देव, दादूदास आदि प्रारम्भिक आचार्यों तक ही सीमित रही है। हिन्दी आलोचकों एवं सन्त साहित्य के विवेचकों में डॉ० माता प्रसाद गुप्त एवं श्री परशुराम चतुर्वेदी आदि ने इनकी चर्चा बराबर की है।[१]

जन्म तथा मृत्यु तिथि

डॉ० रामकुमार वर्मा ने सं० १८४५ को इनकी जन्मतिथि मानी है, लेकिन कोई आधार नहीं दिया है। डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने इनका जन्म सं० १८२० तथा मृत्यु तिथि सं० १९०० स्वीकार की है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने पुन: पंथ सूची में बीसवें स्थान पर शाखा पंथ की चर्चा की है, जिसका संस्थापन समय भी संवत् १८४५ बताया है, अत: उनकी जन्म तथा मृत्यु दोनों तिथियाँ एक नहीं हो सकतीं। इस दृष्टि से डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा दिया गया, इनका जन्म काल सं० १८४५ प्रामाणिक नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में घट रामायण प्रकाशित बेलबेडियर प्रेस की भूमिका में लिखा गया है–

''तुलसी साहब के उत्पन्न होने का संवत् 'सुरति विलास' में नहीं दिया है पर यह लिखा गया है कि उन्होंने अनुमानतः अस्सी वर्ष की अवस्था में जेठ सुदी २, विक्रमी संवत् १८९९ या १९०० में चोला छोड़ा। इससे उनके देह धारण करने का समय संवत् १८२० के लगभग ठहरता है।''[२]

इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि तुलसी साहब की जन्म तिथि के सम्बन्ध में डॉ० माता प्रसाद गुप्त का ही मत अधिक प्रामाणिक है। इस प्रकार, उनका जन्म संवत् १८०० एवं मृत्यु संवत् १९०० में हुई थी।

जीवन परिचय

बेलबिडियर प्रेस से प्रकाशित उनके घट रामायण की भूमिका में उनका प्रामाणिक जीवन परिचय दिया हुआ है। उनका यह जीवन परिचय ''तुलसी साहब का जीवन चरित्र'' के शीर्षक से दिया गया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य में इतिहास ग्रन्थों में केवल डॉ० रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में एक सूचनात्मक तथा अधूरा परिचय दिया है, जिससे इनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में स्पष्ट अवधारणा नहीं बनती। बेलबेडियर प्रेस से प्रकाशित घट रामायण की भूमिका के अनुसार इनका जीवन परिचय इस प्रकार हैं–

''सत्गुरु तुलसी साहब जिनको लोग साहिब जी भी कहते थे, जाति के दक्षिणी ब्राह्मण राजा पूना के युवराज यानी बड़े बेटे थे, जिनका नाम उनके पिता ने श्याम राव रखा था। बारह वर्ष की उनकी

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २७८ (राजकमल संस्करण)

२. तुलसीदास : डॉ० माता प्रसाद गुप्त, पृ० 74 (घट रामायण : भाग 1. भूमिका, जीवन चरित्र).

मर्जी के खिलाफ पिता ने उनका विवाह कर दिया पर वह जवान होने पर भी ब्रह्मचर्य के पक्के और अपनी स्त्री से अलग रहे। इनकी स्त्री जिसका नाम लक्ष्मीबाई था, पूरी पतिव्रता की और पति की सेवा दिलजान से बराबर करती थी।

आखि‍र को एक दिन जब कि उनके पति किसी भारी सेवा पर प्रसन्न हुए और उनसे वर मांगने को कहा तो उन्होंने अपनी सास की सीख के अनुसार यह वर मांगा कि मुझे एक पुत्र हो। साहब जी ने कहा, बहुत अच्छा और दस महीने पीछे बेटा हुआ।

साहिब जी के पिताजी भी बड़े भक्त थे और उनकी इच्छा हुई कि उनको राजगद्दी देकर आप एकान्त में रहकर मालिक की बंदगी करें, परन्तु उनको हजार समझाया, वह किसी तरह राजी न हुए और अपने पिता से वैराग्य और मुक्ति की ऐसी चर्चा की, उनको जबाब न आया, फिर भी, वह उनके राजगद्दी पर बैठने की तैयारी करते रहे। जब गद्दी पर बैठने को एक दिन बाकी रहा तो साहिब जी अपने पिता से मिलने बाग को थोड़े से सवारों के साथ जो उनकी निगरानी के लिए तैनात थे, गये और वहाँ से आगे हवा खाने के बहाने एक तेज तुर्की घोड़े पर सवार होकर निकल गये। जब शहर-पनाह के पास पहुँचे तो मौज से ऐसी आँधी उठाई कि घोर अंधकार छा गया जिसकी ओट में वह घोड़ा भगाकर अपने साथियों से अलग हो गए। राजा ने खबर सुनकर उनकी खोज के लिए चारों ओर देश विदेश आदमी व सवार दौड़ाये पर अब कहीं पता न लगा तो अति उदास व निराश होकर राज्य को त्याग दिया और अपने छोटे कुँवर बाजीराव पेशवा को गद्दी पर बैठाया।

तुलसी साहब कितने ही बरस तक जंगलों, पहाड़ों और दूर-दूर शहरों में घूमे और हजारों आदमियों को उपदेश देकर सत्य मार्ग में और कई बरस पीछे जिला अलीगढ़ के हाथरस शहर में आकर पक्के तौर पर ठहरे और वहाँ अपना सत्संग जारी किया।

घर के निकलने से बयालीस बरस पीछे वह अपने छोटे भाई राजा बाजीराव पेशवा से बिठूर (जिला-कानपुर) में मिले थे, जहाँ कि बाजीराव गद्दी से उतारे जाने पर संवत् 1876 में भेज दिये गये थे। इसका हाल सुरति विलास ग्रन्थ में इस तरह लिखा है कि साहब जी गंगा के तट पर रम रहे थे कि एक शूद्र और ब्राह्मण में झगड़ा होते देखा। ब्राह्मण गंगाजी के तट पर संध्या करता था और शूद्र नहा रहा था। शूद्र की देंह से जल का छीटा ब्राह्मण पर पड़ा जिससे वह क्रोध में भर आया और उठकर शूद्र को गाली देने और मारने लगा। साहब जी के पूछने पर उसने सब हाल कहा और बोला कि इस शूद्र के जल की छींटें अपने बदन से उड़ाकर मुझे अपवित्र कर दिया और अब मेरे पास कोई दूसरी धोती भी नहीं है कि फिर नहा कर पहनूँ और पूजा खत्म करूं। साहब जी ने समझाया कि तुम्हारे ही शास्त्र के अनुसार गंगा और शूद्र दोनों एक ही पद से याने विष्णु के चरण से निकले हैं फिर क्यों एक को पवित्र और दूसरे को अपवित्र मानते हो। यह सुनकर ब्राह्मण लज्जित हुआ।

घाट पर जो लोग जमा थे, उनमें राजा बाजीराव के एक पंडित ने साहब जी को पहचान लिया क्योंकि उनका अति सुन्दर और मोहिनी रूप का जिस किसी ने भी इक बार दर्शन किया, उसकी आँखों में समा जाता था। उसने तुरन्त राजा को खबर भेजी कि आपके भाई आये हैं। राजा नंगे पाँव दौड़े और साहब जी के चरणों पर विलाप करते हुए गिरे और बड़े आदरभाव से सुख पाल पर बैठाकर घर लाए और चाहा कि उनको वहीं रखें किन्तु वह एक दिन वहाँ से भी चुपचाप चलते हुए।

सुखविलास में तुलसी साहब के देशाटन समय के कितने चमत्कार लिखे हैं, जैसे, रोगियों को आरोग्य कर देना, मुर्दों को जिला देना, अंधों को आँख, निर्धन को धन और बाझ को सन्तान देना इत्यादि।

एक साहूकार ने आपका बड़ा सत्कार किया और भोग लगाते समय, यह बरदान मांगा कि मुझे दया से एक पुत्र बख्शा जाए। तुलसी साहब ने अपना सोंटा उठाया और यह कहकर चलते हुए कि लड़का अपने सर्गुन इष्ट से माँग-संतों की दया तो यह है कि उनके दास के औलाद मौजूद भी हों तो उठा लें और अपने दास को निर्बन्ध कर दें।

हाथरस में उनकी समाधि मौजूद है और बहुत से लोग वहाँ दर्शन को जाते हैं और साल में एक बार भारी मेला लगता है।

यद्यपि उनको इस संसार में गुप्त हुए ६० बरस [१] से कम हुए हैं पर उनके अनुयायियों ने न जाने किस मसलहत से उनके समय को भूल भुलैया में डाल रखा है कि लोग सैकड़ों बरस समझते हैं। मुंशी देवी प्रसाद साहिब ने भी, जो अब इस मत के आचार्य कहे जाते हैं, घट रामायण की भूमिका में इस भ्रम को दूर करने की कोशिश नहीं की है। हमने इस मत के कई साधुओं तथा और गृहस्थों से तुलसी साहब का जीवन समय पूछा तो उन्होंने एक ओर अब से साढ़े तीन सौ बरस पहले बताया जो कि गोसाईं तुलसीदास जी जगत प्रचलित सगुण रामायण के कर्ता का समय है।

तुलसी साहब ने निःसन्देह घट रामायण में फरमाया है कि पूर्व जन्म में आप ही गुसाईं तुलसीदास जी के चोले में थे और तभी घट रामायण को रचा परन्तु चारों ओर से पंडितों, भेषों और सर्वमतवालों का भारी विरोध देखकर उस ग्रन्थ को गुप्त कर दिया और दूसरी सगुन रामायण उसकी जगह समयानुसार बना दी।

इससे यह निष्कर्ष साफ तौर से निकलता है कि घट रामायण को तुलसी साहब ने जब दूसरा चोला अनुमान एक सौ चालीस बरस पीछे धारण किया तब प्रगट किया न कि पहले चोले से। सवाल यह है कि कोई सन्त तुलसी साहब के नाम के पिछले सत्तर पचहत्तर बरस के अन्दर हाथरस में उपस्थित थे या नहीं, जो वहाँ सत्संग कराते थे और उपदेश देते थे और जहाँ उनकी समाधि अब तक मौजूद है। हमको इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे महापुरुष अवश्य थे क्योंकि हम आप उनकी समाधि का दर्शन कर आए हैं और दो प्रामाणिक सत्संगी अब तक मौजूद हैं, जिन्होंने अपने लड़कपन में तुलसी साहब के दर्शन किये थे और उनमें से एक को तुलसी साहब ने अपनी घट रामायण आप दिखाई थी।

तुलसी साहब के मतवाले उनकी महिमा समझकर इस बात पर बड़ा जोर देते हैं कि महाराज ने कोई गुरु धारण नहीं किया था और उसके प्रमाण में यह कड़ी पेश करते हैं–

एक विधी चित रहूँ सम्हारे। मिलै कोइ संत फिरौ तिस लारे।

यह कड़ी तुलसी साहब के 'पूर्व जन्म के चरित्र' में पहली चौपाई की बीसवीं कड़ी है और उसी के दो पन्ने आगे। बरनन भेद संत मत पहला सोरठा लोगों की इस बात का खंडन करता है–

तुलसी संत दयाल निज निहाल को कौ कियौ।
लियो सरन के माँहि जाइ जन्म फिरि करि जियौ॥

इसमें सन्देह नहीं कि तुलसी साहब स्वयं सन्त थे–जिनको गुरु धारण करने की जरूरत न थी लेकिन मरजादा के लिए किसी को नाम मात्र को अवश्य गुरू [२] बना लिया होगा और इसके लिए संत सद्गुरु कबीर साहब और समस्त सन्तों की नजीर मौजूद है।

तुलसी साहब अक्सर हाथरस के बाहर एक कंबल ओढ़े और हाथ में डंडा लिये दूर-दूर शहरों में चले जाया करते थे। जोगिया नाम के गाँव में जो हाथरस से एक मील पर है अपना सत्संग जारी किया और बहुतों को सत्य मार्ग पर लगाया।

इनकी हालत अक्सर गहरे खिंचाव की रहा करती थी और ऐसे आवेश की दशा में धारा की तरह ऊँचे घाट की बानी उनके मुख से निकलती–जो कोई निकटवर्ती सेवक उस समय पास रहा, उसने जो

---

१. वर्ष का यह संदर्भ सन् १९३७ का है, क्योंकि घट रामायण का प्रथम संस्करण बेलविडियर प्रेस से इसी सन् में छपा था।

२. घट रामायण की समाप्ति पर त्रोटक सं० 2 में वे 'गुरु के धाम' और उसके महत्त्व की चर्चा करते हैं—
गुरु धाम कंजा मनी मैल मंजा। धनू तोड़ भंजा सो लीलं अपीलं॥

सुना समझा लिया नहीं तो वह बानी हाथ से निकल जाती। इस प्रकार के अनेक शब्द उनकी शब्दावली में हैं।[१]

घट रामायण की उनके विषय में लिखी गई इस जीवन चर्चा से अधिक प्रामाणिक तथा विस्तृत सामग्री नहीं मिलती, अतः सम्प्रति उनके विषय में यही एक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने इन्हें 'आवापंथी' स्वीकार किया है किन्तु भेष एवं पंथ का सबसे अधिक विरोध इन्होंने ही किया है।

कृतियों का परिचय

उनकी तीन कृतियाँ अब तक सर्वथा प्रसिद्ध एवं उनके सृजन के साक्ष्य के रूप में उपलब्ध हैं। ये हैं, क्रमश– घट रामायण, शब्दावली एवं रत्न सागर। इन कृतियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(क) घट रामायण–'घट रामायण' का अर्थ है, घट में न केवल सम्पूर्ण सृष्टि का अन्तरण अपितु सम्पूर्ण सिद्धान्तों तथा आध्यात्मिक चिन्तन की अर्न्तसाधना का समाहार। वे अपने इस मन्तव्य को अनेक स्थलों पर कहते ही नहीं अपितु साधना के व्यावहारिक स्तर पर भी उतारते हैं।

लखि अलष अंडन खलक खंडा पलक पर घट घट कही।

यहाँ सम्पूर्ण सृष्टि इस अंड (पिंड) शरीर में निहित है और इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि की गाथा वे अपनी अन्तश्चेतना में स्वीकार करके आगे चलते हैं। वे इसे स्पष्ट करते हुए पुनः कहते हैं कि –

तन मन ब्रह्मंड पसार अंड खंड नौखंड लगै।
सो घट लखन मझार करत सैल ब्रह्मंड की॥

×× ×× ×× ××

पिंड माँहि ब्रह्मंड देखा निज घर जोइ कै।
गुरु पद पदम प्रकास निज अकास अम्बर चखी॥

इसी शरीर पिण्ड में पचासी पवन हैं, इसी में षट् चक्र, द्वादश नाल, हैं। दसवीं नाल में 'राम तथा लक्ष्मण' निवास करते हैं।[२] इस घट में त्रिवेणी है, यही प्रयाग है, गंगा, यमुना तथा सरस्वती है। इसी में शून्य महल है, शब्द शिखर है, त्रिकुटी है, इसमें नौ कमल तक तीन गम्य लोक और चौथा अगम्य लोक है–इसी में नव द्वार हैं। इस तत्त्व में प्रवेश योगी नहीं सन्त एवं साधु रहते हैं। पिण्ड के इस लोक का 'सत्यलोक' है। सत्य लोक में उस पर अनाम तत्त्व है, जिसे विरले जानते हैं।

इस घट के 34 भेद और 34 विविध तत्त्वों के केन्द्र स्थल हैं। तुलसी साहब अन्त में के सन्दर्भ में सम्पूर्ण लोक, अध्यात्म, पुराण, धर्मकथा एवं उनके विविध संदर्भों का समाहार करके कहते हैं–

घट में स्वर्ग एवं नरक हैं दोई। घट में जनम मरन पुनि होई॥
घट में कथा पुरान सुनावै। घट में काया करम करावै॥
घट में बैठे पाँचों नादा। घट में लागी सहज समाधा॥
घट में राजा हैं बलि बावन। घट में सीता रघुपति रावन॥
घट में सुकदेव व्यास अरु नारद। घट में ऋषी मुनी आरु सारद॥
जो सब घट कहि बरनि सुनाई। तौ जग कागज मिलै न स्याही॥

---

१. बेलविडियर प्रेस, से प्रकाशित घट रामायण की भूमिका से साभार।

२. देखें, घट रामायण, पृष्ठ 20, 10वीं

इस घट के भीतर बहत्तर कोठे हैं जिसमें ब्रह्मा, विष्णुशंकर, वरुण, सुमेर आदि बैठे हैं। यही नहीं, चौरासी सिद्ध, पच्चीस प्रकृति, नौ नाड़ियाँ, पाँच इन्द्रिय निवास एवं बाईस शून्य, वैराग की चार गतियाँ आदि सब कुछ हैं।

इस घट में अन्तरण में स्थित विधि तत्त्वों को न योगी देखता है और न कर्मकांडी। लोक के धर्मपंथी और भेष रचना द्वारा आध्यमिकता का प्रदर्शन करने वाले तो इसे जानते ही नहीं।

कवि इस अन्तश्चेतना के आध्यात्मिक बोध के साक्ष्य के लिए अपने युग के पूर्व एवं सामायिक सन्दर्भों तथा धर्मगुरूओं को सामने रखकर न केवल उनके आध्यात्मिक विचारों का खंडन करता है अपितु उन्हें घट साधना के भीतर की आध्यात्मिक अन्तराकृत्ति से जोड़कर उन्हें प्रामाणिक बनाता है। काशी के पंडितों में नैनू-सैनू, फकीर तकी शेख, कर्मा तथा धर्मा नामक जैन धर्मावलम्बी, कर्मचन्द्र पालीवाल शावक जैनधर्मी, करिया और सैनी नारियाँ, श्यामा पंडित, रेवतीदास, हिरदै अहीर का पुत्र गुनवाँ, फूलदास कबीर पंथी, प्रिमेलाल आदि-आदि विविध मतो एवं सम्प्रदायों के ज्ञानियो को जिस अगम्य तत्त्व का मार्ग दिखाकर सन्तुष्ट किया वह घट रामायण में ही सम्बद्ध है। इस अद्भुत घट रामायण के महत्त्व का निरूपण करते हुए वे कहते हैं कि–

ये री घट माँहिं तो रामायन गाई, ग्रंथन बनाइ के।
पिंड-पिंड ब्रह्मांड दिखाया तुलसी लै लाइ के।
हम देखा पिंड ब्रह्मंडा, निरखा सत द्वीप नौखंडा।
अंडा तत पाँच बनाया काया धसिजाई के॥

×× ×× ××

तुलसी तत तोल बताई पुनि कहि-कहि भाखि सुनाई।
घट रामायण बूझै सूकै तिहूँ लोक में॥

सन्त मत के अन्तर्गत अगम्य तत्त्व का उद्‌बोधन एवं उसकी प्राप्ति तथा साधनाओं द्वारा अन्तर्वृत्ति के अन्तर्गत अन्वेषण और वाह्य आडम्बरों, पंथ, भेष, मूर्ति, धर्मग्रंथ, मन्दिर, तीर्थ आदि के स्थान पर इस घट की अन्त:वृत्ति में ब्रह्म तत्त्व (अगम तत्त्व) की प्राप्ति ही घट रामायण का मूल मन्तव्य है।

यहाँ 'रामायण' शब्द का अर्थ 'राम का अयन' नहीं उस अगम्य का अयन–जिसे लोग राम के रूप में जानते हैं–वह अगम्य तत्त्व हैं–वह दशरथ पुत्र नहीं है, उसका मर्म कुछ और है। उस अगम तत्त्व की वार्ता ही घट रामायण का मूल मन्तव्य है।

गोस्वामी तुलसीदास और तुलसी साहब का ऐक्य

घट रामायण के रचनाकार तुलसी साहब अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त देते हुए स्वयं को 'तुलसीदास' बताते हैं और कहते हैं कि संवत् 1618 में मैंने सर्वप्रथम घट रामायण की रचना की थी किन्तु काशी में पंडितों तथा जनसमुदाय के विरोध के कारण इसे छिपा दिया और लोगों को भ्रमित करने के लिए संवत् १६३१ में मैंने रामचरित्र किया–

संवत् सोला सै इकतीसा। रामचरित कीन्ह पद ईसा॥
ईस कर्म औतारी भावा। कर्मभाव सब जगहिं सुनावा॥
जग में कगरा जाना भाई। रावन रामचरित्र बनाई॥
पंडित भेष जगत सब मझारी। रामायन सुनि भये सुखारी॥
अंधा अंधे विधि समझावा। घट रामायन गुप्त करावा॥

'घट रामायग' की रचना, जैसा कि उन्होंने बताया है–संवत् १६१८ में की थी और पुनर्जन्म के बाद उन्होंने उसे भी प्रगट किया। प्रगट भी नही किया, यह सन्तों के हाथ लग गई थी और उन्होंने इसे लोक के सामने रखा–

घट रामायन सार जग विरोध गुप्तै करी।
लगी संत के हाथ बूझि भेद सारा लिया॥

इस कथा का सार इतना ही है कि 'घट रामायण' और 'तुलसी रामायण' की यदि तुलना की जाए तो दोनों में 'घट रामायण' श्रीरामचरित मानस से अधिक श्रेष्ठ है। वह तो लोकांध जन समुदाय को अंधी विधि से समझाने की एक कथा मात्र है किन्तु यह घट रामायण उससे भिन्न इस प्रकार है–

घट रामायन अगम पसारा। पिंड ब्रह्मंड लखा विधि सारा॥
नाम अनेक अनेकन कहिया। सो सब घट भीतर दरसइया॥
अगम निगम औ अकथ कहानी। तुलसी भाखी अगम निसानी॥
घट रामायन ग्रंथ बनाई। साखी सब्द अगम विधि गाई॥

(2) तुलसी शब्दावली[१] –'तुलसी साहब के इस ग्रंथ का नाम तुलसी 'शब्दावली' है–'सब्द' या सबद निर्गुण पंथ का एक पारिभाषिक शब्द है। परम्परा में सन्तों एवं सत्गुरुओं द्वारा आध्यात्मिक अनुभव एवं साधना के सन्दर्भ में जिन सत्यों का साक्षात्कार हुआ उनका कथन ही 'सबद' है। ज्ञानदेव, नामदेव, नानकदेव, कबीरदास, दादूदयाल आदि के 'सबद' इसी संदर्भ के है। ये उनके आध्यात्मिक अनुभव के 'शब्द' हैं और सबद के रूप में उनके साहित्य के अन्तर्गत संकलित है। तुलसी साहब की 'शब्दावली' का भी यही अर्थ है। ये उनके आध्यात्मिक अनुभव से सम्बन्ध विविध अनुभवों के संकलन या उनके अपने निजी अनुभव के प्रमाण है। ये सबद अनेक छन्दों तथा अनेक रागों में सन्तों की साधना से जुड़े उनके विविध आध्यात्मिक पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। विविध साहित्यिक छन्दों यथा-दोहा, सवैया, कुण्डलिया आदि, विविध काव्यकथा रूढ़ियों यथा ककहरा, बारहमासा, संवाद, मंगल एवं विविध राग रागनियों यथा–टप्पा, कलंग, धमार, तिल्लाना, ठुमरी, प्रभाती आदि-आदि रागों में गाई गई है।

'शब्दावली' के मुख्य विषय निर्गुण मतवाद से सम्बद्ध है। विविध आडम्बरों का विरोध सर्वत्र दृष्टिगत है। विविध प्रकार के कर्मो केआडम्बर के बीच फँसे हुए मानव समाज को सहज, नैतिक एवं आडम्बर विहीन मार्ग दर्शन हो इस कृति का यही मुख्य लक्ष्य है।

शब्दावली का सबसे प्रिय विषय है–आध्यात्मिक रहस्यवाद और कबीर आदि की परम्परा में तुलसी साहब भी उस अगम्य प्रियतम के लिए आत्मा की पीड़ा भरी वेदना को निरन्तर व्यक्त करते हुए केवल मिलने की कामना ही नहीं करते उसके तादत्म्य से मिले सुख का अपने विशिष्ट अनुभव के साथ व्यक्त करते हैं–

सतगुरु विरहिन बात कलेजे रोवै और चिल्लाइ।
हाय हाय हिये में निसि वासर हरदम पीर पिराइ॥
मैं दुखिया हौं दर्द दिवानी प्रीतम दस लखाई।
तुलसी प्यास बुझै प्यारे से चढ़ कर अधर समाई॥
किरपावंत संत समझावै और न लगै उपाई॥

---

१. प्रकाशित तुलसी साहब की शब्दावली भाग एक तथा दो बेलविडियर प्रिंटिग वर्क्स, इलाहाबाद।

सन्त साहित्य की समग्र अवधारणाएँ इस शब्दावली को सारतत्त्व के रूप में संकलित किया गया है।

रत्नसागर–तुलसी साहब की तीसरी कृषि 'रत्नसागर' है। यह रत्नसागर सम्भवतया उनकी प्रारम्भिक कृति है।[१] इस 'रत्न सागर' का मूल मन्तव्य मानव जाति के उद्धार से सम्बद्ध है। वे मानव जाति के उद्धार के विविध सन्दर्भों को अनेक शैलियों में रखते हैं जिनमें उनकी कथा शैली बड़ी ही रोचक है। इस सृष्टि रचना के बीच जीव का जन्म किन कारणों से होता है और किन कारणों से वह लोक में बंधा हुआ चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है। जीवन के भटकाव का मुख्य कारण उसकी कर्म संसक्ति एवं उनसे उत्पन्न संशक्तियाँ है। वे अपने प्रिय शिष्य हिरदै के विविध प्रश्नों का उत्तर देते हुए इस जीवन के बन्धन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालते हैं–

करनी करै भोगफल भाई। जोनी घर फल को भुगताई॥
यह रहनी की बात बिचारा। यामे नहीं होय निरधारा॥
करनी करै कर्म की बाजी। इनद्री सुख भोजन में राजी॥

यही कर्म एवं इन्द्री सुख ही संसक्ति एवं बार-बार जन्म धारण का कारण है। सन्तों का कर्त्तव्य है, मनुष्य को समझाकर, साधना की ओर उन्मुख करके तथा सत्संगति के सम्पर्क में प्रेरित करके जन्म-मृत्यु के बन्धनों से मुक्त करना और अपने शिष्य हिरदै के विविध प्रश्नों के उत्तर द्वारा अपने सिद्धान्तों का तुलसी साहब ने यहाँ विवेचन किया है। इन्होंने विश्वामित्र-वसिष्ठ, नारद कथा तथा अन्य लौकिक कथा प्रसंगों द्वारा परमार्थ सत्य का बड़ा ही सटीक एवं सही विश्लेषण किया है। शान्ति, दया, उदारता, क्षमा, धैर्य, सन्तोष, अहिंसा, विनम्रता एवं साधुता, अहंकारहीनता जैसे मानवीय मूल्यों की स्थापना करके उनका अनुपालन समाज के लिए आवश्यक बताया है। छुआछूत तथा भेदभाव के समूह विनाश के सम्बन्ध में इन्होंने जो उक्तियाँ स्थल-स्थल पर कहीं हैं–निश्चित ही आज के सन्दर्भ में उनका विशेष महत्त्व है। हिरदै तथा स्वयं के बीच संवाद के रूप में लिखी गई यह कृति निश्चित ही मानव मूल्यों की दृष्टि से आज भी प्रासंगिक है।

सन्त तुलसी साहब का मूल्यांकन

सन्त तुलसी साहब की सबसे बड़ी देन है, सम्पूर्ण मानव समुदाय के लिए–आध्यात्मिक अन्धानुकरण का पूर्णतः तिरस्कार॥ वे अध्यात्म के मूल तत्व को सन्त साधना से जोड़ते हैं, और सन्त साधना का वे अर्थ बताते हैं–वाह्याडम्बर शून्य, परम्परा से मुक्त तथा तर्कमंडित धर्मानुशासन। इसीलिए वे अपने युग के जैन, शिया, सुन्नी, वेदान्त, कर्मकांड, अंधपरम्परावाद के अन्तर्गत मूर्तिपूजन, विविध धार्मिक उत्सवों एवं कार्यों के आडम्बर आदि के विरोध में खड़े होते हैं। वे स्वयं निर्गुण संत के समर्थक हैं किन्तु निर्गुण साधक कबीर एवं नानकदेव की धार्मिक तथा व्यावहारिक मान्यताओं में व्याप्त रूढ़ियों का विरोध करते हैं। वे गुरु नानक देव के सरोवर एवं कबीरदास की चौका साधना की अपने ढ़ग से व्याख्या करके उसे वैज्ञानिक एवं तर्क संगत आधार देते हैं। उनका मूल सिद्धान्त है, परम्परा, पुराणवादिता, लोक प्रचलन, वेदवाद से हटकर उनसे भिन्न तर्क सम्मत साधना का मार्ग निर्मित करना ही मानव जाति का लक्ष्य है जो समाज के लिए सहज रूप से बोधगम्य हो सके।

पिंड में ब्रह्मांड का स्थिरीकरण—उनका सिद्धान्त इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है क्योंकि सम्पूर्ण आध्यात्मिक चेतना के केन्द्र बिन्दु में स्वयं को रखो, बाहर के संसार का अनुभव और ब्रह्मादि के संदर्भ केवल वाह्यानुभूति के हैं, आत्मानुभूति के नहीं। अतः आत्मानुभूति के मूलाधार अपने मन, बुद्धि, मति, विवेक, बोध तथा चैतन्य के द्वारा स्वयं में ही उस परम तत्त्व को जानने की चेष्टा करो जो मन्दिरों में है,

---

१. बेलविडियर प्रिंटिग वर्क्स, इलाहाबाद से प्रकाशित।

वेदों एवं किताबों में हैं, कर्मकांड एवं पंथ-भेष से जुड़ा है। आत्म चैतन्य एवं स्वतत्त्व का इस चैतन्य में अंकुरण करके उसी में स्व विलयन उनकी साधना का परम लक्ष्य है।

उनकी तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता लोक समुदाय से स्वयं को जोड़ने की है। उनके शिष्य सम्पूर्ण जातियों के व्यक्ति हैं। वे उनकी भाषा, उनके साक्ष्य, उनकी शैली, उनकी लोकरीतियाँ आदि का इसलिए अपनी कविता में प्रयोग करते हैं ताकि सहज ही बिना किसी औपचारिकता के साथ वे उनसे जुड़ सकें।

उनकी साधना एवं भक्ति का चौथा तत्त्व है, समग्र मानवीय मूल्यों की सामाजिक ग्राह्यता। जैसा कि कहा गया है—वे जाति पाँति एवं स्त्री-पुरुष तथा पिता-पुत्र का भेद आध्यात्मिक साधना में नहीं मानते है। वे हिरदै अहीर और उसके पुत्र गुनुवाँ को एक साथ धर्ममार्ग की दीक्षा देते हैं। वे महन्त फूलदास एवं उनके शिष्य सुरतिदास को भी साथ-साथ ज्ञानमार्ग पर ले चलते हैं। हिंसा के वे प्रबल विरोधी तथा पंथ, भेष कर्मकांड के पूर्णतः निंदक थे। वे आडम्बरपूर्ण धर्म, धर्मकथाओं की संसक्ति का निरन्तर विरोध करते हुए तर्कसम्मत धर्म साधना में प्रवृत्त होने के लिए सम्पूर्ण समाज को प्रेरित करते हैं। प्रेम, मैत्री , करुणा, विनम्रता, अहं भाव का त्याग उनकी साधना की मूल प्रवृत्ति थी। वे मानव जाति को मानवीयता के बन्धन में बाँधकर उनको एक साथ रहने एवं रखने के पक्षपाती थे। वे पंथों के रूप में विख्यात नहीं रहे हैं। सम्भव है, उनके देहावसान के बाद उनके मत को 'आवा पंथ' के नाम से अभिहित किया गया हो।

निष्कर्ष रूप से, कहा जा सकता है कि वे मानवीय विवेक तथा समय को धर्मसाधना के आधार के रूप में प्रेरित करते हुए समाज को रूढ़िवादिता से मुक्त करके धर्मभाव में प्रवृत्त करने के प्रति आजीवन कृत संकल्प रहे हैं।

✲✲✲✲✲✲✲

घट रामायण

भेद – पिंड और ब्रह्मांड का

॥ सोरठा ॥

स्त्रुति बुंद सिंध मिलाप, आप अधर चढ़ि चाखिया।
भाखा भोर भियान, भेद भान गुरु स्त्रुति लखा॥

अर्थ–सुरति बोध के अनुभव बिन्दु और परम तत्त्व के सिन्धु के सम्मिलन का आनन्द अन्तरात्मा (अधर) में प्रवेश करके चखा और मूल तत्त्व के रहस्य (ज्ञान) का अनुभव गुरु रूपी सुरति से प्राप्त करके दूसरे दिन प्रातः जगने पर (समाधि टूटने पर) उसका वर्णन प्रारम्भ किया॥

॥ छन्द स्त्रुति सिंध॥

सत सुरति समझि सिहार साधौ। निरखि नित नैनन रहौ॥
धुनि धधक धीर गँभीर मुरली। परम मन मारग गहौ॥ १॥
सम सील लील अपील पेलै। खेल खुलि खुलि लखि परै॥
नित नेम प्रेम पियार पिउ कर। सुरति सजि पल पल भरै॥
धरि गगन डोरि अपोर[1] परखै। पकरि पट पिउ पिउ करै॥ २॥
सर साधि सुन्न सुधारि जानौ। ध्यान धरि जब थिर थुवा[2]॥
जहँ रूप रेख न भेष काया। मन न माया तन जुवा॥ ३॥
अलि अंत मूल अतूल कँवला। फूल फिरि फिरि धरि धसै॥
तुलसि तार निहार[3] सुरति। सैल सत मत मन बसै ॥ ४॥

अर्थ–यद्यपि मैं उसे निरन्तर आँखों से देखता हूँ फिर भी, सुरति ध्यान के तत्त्व (सत्य तत्त्व) को समझकर दिव्य आध्यात्मिक अनुभूति को मैंने साधा है। अनाहत नाद की दशा में सहज गंभीर वंशीनाद की ध्वनि की उत्तेजना (धधक) से मेरे मन ने उस रहस्यमय मार्ग का अनुगमन किया॥ १॥

शीलयुक्त समत्वभाव में वह विलक्षण भाव (अपेल पेलौ युक्त लीला (खेल) खुलकर दिखाई पड़ने लगा। नित्य प्रति नियमपूर्वक प्रियतम (निर्गुण ब्रह्म) का प्यार सुरति रूपी सेज पर पल-पल संचरित है। शून्याकाश से लगी हुई साधना की गाँठरहित (अपोर) प्रेम डोरी को परखते हुए निर्गुण ब्रह्म रूपी पति के वस्त्रों को थाम्हें आत्मा रूपी प्रेमिका रात-दिन–' पिउ (प्रियतम) पिउ' करती रहती है॥ २॥

---

१. जोड़ या गाँठ के।

२. हुआ।

३. मुन्शी देवीप्रसाद जी की पुस्तक में "तार" के आगे "पार" का शब्द भी है।

आत्मसंधान को शून्याकाश में भलीभाँति नियंत्रित करके ध्यान धारणा के बाद जब मन स्थिर हुआ (जुवा) तब देखा कि उस शीर्ष बिन्दु पर न कोई रूप है, न लक्षण (रेख) है, न कोई भेष रचना है, न कोई शरीर है, न मन है, न माया है, न युवा शरीर है ॥ ३ ॥

उस सहस्त्रार कमल के मूल के अन्त में एक भ्रमर है जो पुष्प को आधार बनाकर बार-बार उसी में प्रवेश करना चाहता है। तुलसी साहब कहते हैं कि उस सुरति के सम्बद्ध सूत्र को देखकर सैकड़ों पर्वत शिखरों से श्रेष्ठ (इस साधना के केन्द्र में) साधना में मेरा मन निवास करता है ॥ ४ ॥

॥ छन्द २ ॥

हिये नैन सैन सुचैन सुन्दरि। साजि स्रुत पिउ पै चली॥
गिर गवन गोह गुहारि मारग। चढ़त गढ़ गगना गली॥ १ ॥
जहँ ताल तट पट पार प्रीतम। परसि पद आगे अली॥
घट घोर सोर सिहार सुनि के। सिंध सलिता जस मिली॥ २ ॥
जब ठाट घाट बैराट कीन्हा। मीन जल कँवला कली॥
अली अंस सिंध सिहार अपना। खलक लखि सुपना छली॥ ३ ॥
अस सार पार सम्हारि सूरति। समझि जग जुगजुग अली॥
गुरु ज्ञान ध्यान प्रमान पद बिन। भटकि तुलसी भौ मिली॥ ४ ॥

अर्थ– अपने हृदय के नेत्रों को, नेत्र भंगिमाओं को अत्यन्त आनन्दपूर्ण करके अर्थात् सुधार कर सुरति से सजी हुई अपने उस पति से मिलन के लिए पुकारती हुई मैं चली और अत्यन्त सहजतापूर्वक पर्वतों (साधना केन्द्रों), की गुफाओं (गौह) समाधि चित्त की विविध अवस्थाओं और मार्गों को सकलती हुई शून्य गगन के पर्वत शिखर पर चढ़ती है ॥ १ ॥

उस शून्य गगन में स्थित सरोवर के उस पार प्रियतम (ब्रह्म) के पुनः चरण स्पर्श करके सखी आगे बढ़ी। जहाँ घनघोर घटाओं की ध्वनि (अनाहत नाद) के शोर को सुनकर विराट सृष्टि यह आत्मा रूपी प्रेमिका उस ब्रह्म से ऐसे मिली–जैसे समुद्र से सरिता (नदी) ॥ २ ॥

उस ब्रह्म सिन्धु के रूपरंग, घाट, वैराट (विशाल) को देखा तो उसमें उस आत्मा को जल की मछली जैसी या कमल की कली जैसा अपने में अनुभव किया। उसे समस्त संसार, छलमयी स्वप्न की भाँति दिखने लगा और उस सिंधु का । (अपना अशिन् एवं स्वयं को उसका) अंश रूप माना ॥ ३ ॥

इस संसार के उस पार स्थित ब्रह्म ज्ञान के समुद्र को समझ कर युगों-युगों तक उसका ख्याल रखो। यही नहीं, सद्गुरु के द्वारा दिखाए गए ज्ञान और ध्यान के प्रमाण के बिना यह आत्मा रूपी युवती भटक कर पुनः भवसागर में मिल जाती है ॥ ४ ॥

॥ छन्द ३ ॥

अलि अधर धार निहारि निज कै। निकरि सिखर चढ़ावही॥
जहँ गगन गंगा सुरति जमुना। जतन धार बहावही॥ १ ॥
जहँ पदम प्रेम प्रयाग सुरसरि। धुर गुरू गति गावही॥
जहँ संत आस बिलास बेनी। बिमल अजब अन्हावही॥ २ ॥
कृत कुमति काग सुभाग कलिमल। कर्म धोइ बहावही॥
हिये हेरि हरष निहारि घर कौ। पार हंस कहावही ॥ ३ ॥

मिलि तूल मूल अतूल स्वामी। धाम अबिचल बसि रही॥
अलि आदि अंत बिचारिपद कौ। तुलसि तब पिव की भई॥ ४॥

अर्थ–यह आत्मा रूपी सखी अपने को नीचे की धारा में देखकर ऊपर (सहस्रार पर) चलने के लिए तत्पर रहती है। वह ऐसा शिखर (सहस्रार) है जहाँ गंगा (इड़ा) तथा यमुना (पिंगला) बड़े यत्न पूर्वक अपनी धाराएँ बहाकर शून्याकाश में मिलन करती हैं॥ १॥

वह सहस्रार बिन्दु से सम्बद्ध संसक्ति ही प्रयाग की गंगाधारा हैं और वहाँ उस ब्रह्म के आदि गुरु गायन करते रहते हैं। जिस इड़ा-पिंगला के संगम पर आत्मा अपने को चमत्कारपूर्ण ढंग से निर्मल स्नान कराता रहता है॥ २॥

बड़े भाग्य से यहाँ कलिमल रूपी काग के सदृश व्यक्ति अपने कर्मों के पापों को धोकर बहा देते हैं और वे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक हृदय से स्वयं को देखकर आध्यात्मिक जगत (उस पार) के हंस कहे जाते हैं॥ ३॥

उनके पास जो कुछ भी थोड़ा बहुत (तूल-तुलनीय) धर्म है–उस अतुल्य ब्रह्म से मिलाकर उस अविचल (निर्गुण-ब्रह्म) धाम में निवास करते हैं। हे सखी! इस ज्ञान को (पद) आदि-अन्त तक विचार करके मैं (तुलसी साहब) तत् पश्चात् उस परमात्मा (पिव) रूपी पति की होकर रह रही हूँ॥ ४॥

॥ छन्द ४॥

अलि पार पलँग बिछाइ पल पल। ललक पिउ सुख पावही॥
खुस खेल मेल मिलाप पिउ कर। पकरि कंठ लगावही॥ १॥
रस रीति जीति जनाइ आसिक। इस्क रस बस लै रही॥
पति पुरुष सेज सँवार सजनी। अजब अलि सुख का कहो॥ २॥
मुख बैन कहनि न सैन आवै। चैन चौंज चिन्हावही॥
अलि संत अन्त अतन्त जानै। बूझि समझ सुनावही॥ ३॥
जनि चीन्हि तन मन सुरति साधी। भवन भीतर लखि लई॥
जिन गाइ सब्द सुनाइ साखी। भेद भाषा भिनि भई॥ ४॥
अलि अलष अंडन खलक खडा। पलक पट घट घट कही॥
(तुलसी) तोलबोल अबोल बानी। बूझि लखि बिरले लई॥ ५॥

अर्थ–हे सखि! मैं उस पार अपनी सेज (पलंग) बिछाकर बलवती आकांक्षा (ललक) करती हुई (पति के मिलन का) आनन्द प्राप्त कर रही हूँ। मैं आनन्दपूर्वक पति (ब्रह्म) से क्रीड़ा, आलिंगन (मेल-मिलाप) करती हुई पकड़कर उन्हें गले गल लेती हूँ॥ १॥

अपने को उनकी प्रेमिका प्रकट करके रस की प्रेममयी कला में उन्हें जीत लेती हूँ और उन्हें पूरी तरह से अपने प्रेम के वश में भी कर रखा है। हे सखी! उस ब्रह्म रूपी पति (पुरुष) की सजाई हुई शय्या पर मैं अद्भुत आनन्द प्राप्त करती हूँ। उस आनन्द का मैं कैसे वर्णन करूँ?॥ २॥

उस आनन्द का वर्णन न मुख, न वाणी से, न इशारे से कर सकती हूँ। शान्ति की दशा में उसका स्वरूप केवल चित्त समझता है। हे सखी! उस अनन्त आनन्द का अन्तिम रूप केवल सन्त जानता है और वह उसका अनुभव करके, उसको समझकर दूसरे को सुनाता है॥ ३॥

जिन्होंने उस ब्रह्म को पहचान कर तन-मन को एक करके उनकी सुरति साधना साध ली है उसने उसे अपने भीतर-भीतर देख लिया है। जिन्होंने उसे सबद (शब्द) और साखी के रूप में इसे सुनाकर गाया है उनमें भाषा भेद के कारण वह भिन्न-भिन्न जैसा लगने लगा॥ ४॥

हे सखि! वह ब्रह्मांड (अंडन), सृष्टि (खलक) के बीच अलक्ष्य रूप में वह पलकों के पटों तथा घट-घट में खड़ा है। तुलसी साहब कहते हैं कि वह तुलनीय एवं अकथ्य वाणी से (पृथक्) है और बिरले ही उसे देखते और समझते तथा प्राप्त करते हैं॥ ५॥

॥ छन्द ५ ॥

अलि देख लेख लखाव मधुकर। भरम भौ भटकत रही॥
दिन तीनि तन सँग साथ जानौ। अंत आनँद फिरि नहीं॥ १॥
जग नहिन सार असार सखिरी। भ्रमत बिधि बस भौ महीं।।
धन धाम काम न कनक काया। मुलक माया लै बही॥ २॥
येहि समझि बूझि बिचारिमन में। निरखि तन सुपना सही॥
जम जाल जबर कराल सजनी। काल कुल करतब लई॥ ३॥
सब तिरथ बरत अचार अलि से। कर्म बस बन्धन भई।।
तुलसि तरक बिचारि तन मन। संत सतगुरु अस कही॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! उसके रूप लेख, उसके लक्षण, रूप सौन्दर्य तथा आकर्षण को देखकर भ्रमर भ्रमित होकर भटकता रहा। वह इस शरीर के साथ उसमें लिप्त होकर कुछ ही दिनों तक (दिन तीनि-मृत्यु तक) साथ रहा और उसके बाद उसको वह आनन्द उसे पुनः नहीं मिला॥ १॥

हे सखी! इस असार संसार में कोई सार तत्त्व नहीं है और प्राणी भ्रमवश दैवाधीन होकर भ्रमित होता रहता है। वह माया रूपी नदी धन, धाम (गृह), कामनाओं, स्वर्णिम शरीर तथा सारे देश की माया लेकर बह जाती है॥ २॥

मन में इस बात को समझ, बूझ तथा विचार करके देखो कि यह सब सही-सही स्वप्न है। हे सजनी! यम का फन्दा बड़ा ही मजबूत तथा कठोर है और वह व्यक्ति के काल, कुल एवं कर्म-कौशल (करतब) को नष्ट कर देता है॥ ३॥

हे सखी! समस्त तीर्थ, व्रत, धर्माचरण ये कर्मवश होकर व्यक्ति के लिए बन्धन बन जाते हैं। तुलसी साहब निष्कर्ष निकालते हुए कहते हैं कि तन मन से तर्पण करते हुए मेरे इस कथ्य पर विचार करो कि किसी सत्गुरु संत ने इस प्रकार बताया है॥ ४॥

॥ छन्द ६ ॥

सखि समझि सूर सहूर सुनि कै। बदन बिच सुधि बुधि गई॥
करुँ कवन भवन उपाव बिन बस। नेक मधुकर बस नहीं॥ १॥
मिलि पाँच तीनि पचीस निसदिन। गाँठि गुन बन्धन भई॥
भइ बिबस बस नहिं दाँव लागै। दृढ़ निमख[1] नहिं आवही॥ २॥
धरि हाथ पटकि पुकारि पिव सँग। हारि जिव सँग हटि रही॥
कहुँ ठौर मोर न जोर चालै। आली बिपति कुछ का कही॥ ३॥
सुनि ज्ञान ध्यान न कान मानै। बिकल तन मन बिचलई॥
तुलसी बिरह बेहाल[1] हिये में। मौत दिन देवै दई॥ ४॥

---

१. लाड़-प्यार

अर्थ–सखी अपने सूरमा मन की इस नासमझी को सुनकर शरीर के बीच सुधि-बुद्धि रहित होकर रह गई। यह चित्त रूपी मधुकर लेशमात्र भी वश में नहीं आ रहा है, इसके लिए कौन-सा उपाय गढ़कर बनाऊँ॥ 1॥

नित्य प्रतिदिन पाँचों इन्द्रियाँ, तीनों ज्ञानवृत्तियाँ एवं पचीसों लोकात्मकगुण वृत्तियों भौतिक गुणों की गठरी के रूप में मानव जाति के लिए बन्धन बन गई है। उनके वश में होकर मानव चेतना विवश हो उठी है, उसका मुक्ति के लिए कोई दाँव नहीं लगता और एक क्षण भी (निमिख) दृढ़ता का भाव नहीं आने पाता॥ २॥

घर में हाथ पटक कर प्रियतम (निर्गुण ब्रह्म) को साथ-साथ पुकारती हुई हार मानकर जीव से दूर हटकर रहने लगी। किसी स्थान पर भी मेरा वश नहीं चल पा रहा है। हे सखी! मैं अपनी विपत्ति को क्या कहूँ॥ ३॥

मेरे ज्ञान की बात सुनकर ध्यान (समाधि चित्त) विश्वास (कान) नहीं मानता और शरीर तथा मन दोनों विचलित हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं अपने प्रियतम (निरंकार ब्रह्म) के लिए हृदय से व्याकुल हो उठी हूँ–हे दैव! किसी दिन (शीघ्र) ही मुझे मृत्यु दे दो॥ ४॥

॥ छन्द ७॥

सखि सीख सुनि गुनि गांठि बाँधै। ठाट ठट सतसँग करै॥
जब रंग संग अपंग अलि री। अंग सत मत मन मरै॥ १॥
मन मीन दिल जब दीन देखै। चीन्ह मधुकर सिर धरै॥
अलि डगर मिलि जब सुरति सरजू। कँवल दल चल पद परै॥ २॥
थिर थोव ठुमकि टिकाव नैना। नीर थिर जिमि थम थिर॥
यहि भाँति साथ सुधारि मन कौ। पलक गिरि गगना भरै॥ ३॥
लखि द्वार दृढ़ दरबार दरसै। परसि पुनि पद पिउ घरै॥
गुरु गैल मेल मिलाप तुलसी। मन्त्र विषधर बसि करै॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! मेरी शिक्षा सुनो, मनन करो (गुनो) और गाँठ बाँध लो और अब तू दृढ़ चित्त से सत्संग करो। हे सखी! जब उस निर्गुण का रंग तथा संग चित्त को प्राप्त होगा तो मन में स्थित नाना प्रकार के विचार समाप्त हो उठेंगे॥ १॥

मन-सरोवर का मत्स्य जब हृदय को दुखी देखेगा वह मधुकर को पहचान कर अपने शीश पर धारण करेगा। हे सखि! जब सुरति रूपी सरयू नदी रास्ते में मिलेगी तब हे कमल दल! तू चलकर उसी में जलस्थ हो जाएगा॥ २॥

उस समाधि वृत्ति में स्थिर करके चित्त के नेत्रों को रोक करके (ठुमकि) ठहराओ। इस प्रकार, मन को सुधार कर दोनों पलकों के बीच में स्थित ध्यान गिरि में उसे केन्द्रित करो॥ ३॥

द्वार दृढ़ होने पर उस निर्गुण ब्रह्म का दरबार दिखाई पड़ेगा और पुनः पति के भवन का इस प्रकार स्पर्श करो। तुलसी साहब कहते हैं कि गुरु के रास्ते पर सत्संगति द्वारा चलकर माया रूपी सर्प को उस महामंत्र द्वारा वश में कर लो॥ ४॥

॥ छन्द ८॥

सखि भेद भाव लखाव लै गुरु। मरम केहि मारग मिलै॥
जेहि जतन पतन पियास पलपल। पकरि मन केहि बिधि चलै॥ १॥
गुन गोह गति मति गजब गैला। सिखरि साधन कम्म फलै॥

सखि सुरति मंज समान संजम। मैल मन संग दुख खलै॥ २॥
सुनि सुलभ लखन लखाव सजनी। दुलभ दृढ़ कलिमल दलै॥
मोहिं दीन लीन जो चीन्ह चेरी। तपन बिच्च तन मन जलै॥ ३॥
सखि चरन सरन निवास निसदिन। दुख दवा मोहिं अब मिलै॥
गुरु सरन मन्त्र मिलाप तुलसी। जबर सँग जुलमी टलै॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! गुरु को साथ लेकर उसमें भाव एवं लोक के प्रति भेदभाव दर्शित करो–मालुम नहीं, उनके साहचर्य से आध्यात्मिक रहस्य किस मार्ग में मिल जाएं। जिस यन्त्र से लोक वासनाओं के प्यास का पतन हो पल पल उसके विषय में सोचो और यह भी स्मरण करो कि गुरु को अन्तिम रूप से स्वीकार करके मन किस प्रकार साधना लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता जाए॥ १॥

गुणों की कन्दरा के प्रवेश करने पर मन की आश्चर्यजनक गति दिखाई पड़ती है और सहस्त्रार तक अन्य साधन कैसे रह सकते हैं। हे सखि! सुरति में निमज्जित (मंज) और वैसा ही संयम आवश्यक है। मैले यंत्र के साथ निश्चित ही चित्त यहाँ दुखी रहता है॥ २॥

हे सजनी! उन सर्व सुलभ लक्षणों (लखन) को दिखावो जो दृढ़तापूर्वक दुर्लभ कलिमल का दलन कर दे। गुरु इस दीन को दासी के रूप में पहचान लिया है और अब ईश्वर के विरह में मेरे तन मन दोनों जल रहे हैं॥

हे सखी! मेरा निवास तो अब गुरुचरणों में हो रहा है और इसीलिए दुःख रूपी दावाग्नि मिलती हैं, किन्तु समीप नहीं आते। तुलसी साहब कहते हैं कि गुरु द्वारा मिले मंत्र से मेरा तादात्म्य हो उठा है–अतः शक्तिमान का साथ है और कलिकाल का जुल्म टल गया है।॥ ४॥

॥ छन्द ९॥

जब बल बिकल दिल देखि बिरहिन। गुरु मिलन मारग दई॥
सखि गगन गुरु पद पार सतगुरु। सुरति अंस जो आवई॥ १॥
सुरति अंस जो जीव घर गुरु। गगन बस कंजा मई॥
अलि गगन धार सवार आई। ऐन बस गोगुन रही॥ २॥
सखि ऐन सूरति पै न पावै। नील चढ़ि निरमल भई॥
जब दीप सीप सुधारि सजि कै। पछिम पट पद में गई॥
गुर गगन कंज मिलाप करि कै। ताल तज सुन धुनि लई॥ ३॥
सुनि सब्द से लखि सब्द न्यारा। प्रालबद जद क्या कही॥
जेहि पार सतगुरु धाम सजनी। सुरति सजिभजि मिलिरही॥ ४॥
अस अलल अंड अकार डारै। उलटि घर अपने गई॥
येहि भाँति सतगुरु साथ भेंटे। कर अलो आनँद लई॥ ५॥
दुख दाउ कर्म निवास निस दिन। धाम पिया दरसत वहीं॥
सतगुरु दया दिल दीन तुलसी। लखत भै निरभै भई॥ ६॥

अर्थ–जब इस विरहिणी के हृदय को गुरु ने व्याकुल देखा, अपने मिलन द्वारा उसे (आगे का) मार्ग दिखाया) हे सखी! गुरु गगन-गुफा के उस पार हैं और जब 'सुरति' का प्रकाश (आवेग) आता है॥ १॥

जीव जो सुरति साधना का अंश है, गुरु के घर में आकर गगन की शून्य गुहा में रहते हुए कमलमय हो गया। हे सखि! गगन की सहस्त्रारधार में अपने को सँवारती हुई केवल देखने भर के लिए इन्द्रिय गुणों से जुड़ी दिखती है–अन्यथा वह स्वयं गुरुमय हो उठी है॥ २॥

हे सखि! वह उस सहस्त्रार के नील पर्वत पर चढ़कर निर्मल हो उठी और उसकी लौकिक चेतना विलुप्त हो उठी और वह आत्मा जब अपने दीप्त स्वरूप को थोड़ा और सुधार कर तथा साजसज्जा करके उस पश्चिमी छोर पर पहुँची (सहस्त्रार बिन्दु के अनाहत नाद के पास) तो उस गुरु के द्वारा आकाश (शून्याकाश) के सहस्त्रार कमल से मिल करके उसने अनाहद नाद की ध्वनि को सुना॥ ३॥

शब्द सुनकर तथा शब्दातीत ध्वनि की प्रतीति करके पहले से कहे जाते हुए लोक शब्दों की निरर्थकता (प्राल बद) के विषय में क्या कहा जाए? हे सजनी! जिसके उस पार सद्गुरु की निवास स्थली है, मैं सुरति के साथ सजी-धजी उनसे मिल पड़ी॥ ४॥

ऐसे अंडाकार संसार (अलल) अर्थात् ब्रह्मांड का त्याग करके मैं इससे अलग अब अपनी शून्य स्थली गगन गुफा में पहुँच गई। इस प्रक्रिया द्वारा मैंने सतगुरु से भेंट किया और हे सखि! सारा आनन्द प्राप्त कर लिया॥ ५॥

अपने पति परमात्मा के धाम में रहती हुई दुःख, दावाग्नि एवं कर्म की स्थली रूपी इस संसार को निर्लिप्त भाव से द्रष्टा की भाँति देखती रहती हूँ। तुलसी साहब कहते हैं कि यह दीनहीन जीव सद्गुरु के दयाभाव से दर्शक की भाँति इस संसार को देखता हुआ निर्भय हो उठा॥ ६॥

॥ छन्द १०॥

अलि आदि अजर दयाल सतगुरु। मर्म कहौ कहँ लगि कहूँ॥
उस कुटिल खोट मलीन बुधि मैं। चित छली मनमत रहूँ॥ १॥
धर धोइ सतगुरु सरस साबुन। ज्ञान सिल जल मल बह्यो॥
सखि मैल मन जस चिकट कपरा। उजल हिये अलि अस भयो॥ २॥
जब आदि अटल अनादि रँग में। चटक रँग सतगुरु दयो॥
कहुँ कौन सिफति सुनाइ सजनी। अचल सलिता सिंध लह्यो॥ ३॥
सिंध सब्द सतगुरु सुरति सलिता। अलि मिलन अस बिधि भयो॥
सिंध बुन्द तन मन बन बिराटा। बूझ बिन बादै बह्यो॥ ४॥
जब उलटि घर अलि आदि चीन्है। दीन दिल सतगुरु लयो॥
सखि आदि अंत समाद समझी। बरनि बिधि जस जस कह्यो॥ ५॥
सखि संत सतगुरु बरनि बरनौ। भाखि समझि सुनावही॥
गुरु चारि तन अस्थान अलि सुनि। समझि भेद लखावही॥ ६॥
सखि प्रथम गुरु सुनि कँवल कंजा। सहस दल पल पावही॥
सखि दुसर गुरु गढ़ गगन ऊपर। कँवल दुइ दल गावही॥
अलि तीनि गुरु तन माहिं पेखौ। चौकवल स्त्रुति लावही॥ ७॥
सतलोक चौथे चार सतगरु। अगम सिंध कहावही॥
जबँ सुरति शब्द मिलाप सजनी। संत वोहि घर जावही॥ ८॥
सखि मूल संत दयाल सतगुरु। पिउ निहाली मोहि करी॥
सत सुरति सिंधु सुधारि तुलसी। सार पद जद लखि परी॥ ९॥

अर्थ–हे सखी! मेरे सत्गुरु आदितत्त्व हैं, अजर-अमर हैं, बड़े ही दयावान हैं, उनके रहस्य का कहाँ तक वर्णन करूँ। उनके अभाव में इस कुटिल, भ्रष्ट, मलिन बुद्धि में छलिया चित्त को लेकर जन्मता रहता हूँ॥ १॥

सत्गुरु ने अत्यन्त आनन्दमयी साबुन से मेरा शरीर (घर) धो डाला और ज्ञान की शिला पर से मलिन जल बह गया। हे सखि! चिरकुट कपड़े जैसा मलिन मन अब इतना निर्मल एवं उज्ज्वल रूप का हो उठा॥ २॥

चित्त की इस उज्ज्वलता के वस्त्र पर अपने मूल रंग से रंगकर अब उसे और चटकदार बना दिया। हे सखि! फिर मैं उसका क्या वर्णन करूँ, जैसे कोई अचल नदी सिंधु रूप परमात्मा में जाकर मिल उठी हो॥ ३॥

इस प्रकार, सुरति नदी के सत्गुरु सिंधु से मिलन हो उठा। सीमित तन मन में स्थित चेतना बिन्दु इस संगम से विराट हो चली और मेरी यह समझ में न आया, कि वह मन कब ब्रह्म धारा में बह उठा॥ ४॥

हे सखी! जब उत्मनी दशा में अपने मूल आध्यात्मिक निवास की पहचान कर ली तो पता चला कि यह दुर्बल दीन आत्म तत्त्व अब मेरा नहीं, सत्गुरु का हो उठा। हे सखि! आदि-अन्त तक मैंने उस रचना को समझा और जैसा-जैसा मुझे बताया गया है, उसी प्रकार मैंने यहाँ (इस कृति में) उसका वर्णन किया है॥ ५॥

हे सखि! सद्गुरु सन्त ने इसका जो कुछ भी वर्णन किया है, स्वयं समझने के बाद कहकर सुना रहा हूँ। हे सखी! इन चार स्थलों का गुरु मुख से वर्णित स्वरूप सुनो और मैं (गुरुमुख से सुन समझकर) उनका भेद बता रहा हूँ॥ ६॥

हे सखी! इन चारो में से प्रथम बिन्दु पर 'कँवल कंज' है जिसमें सहस्रार दल समाधि के क्षण (पल) प्राप्त होता है। हे सखि! दूसरा गगन गुहा के ऊपर स्थित सत्गुरु का गढ़ है–जहाँ दो दलों वाला कमल है। हे सखी! सत्गुरु के शरीर को देखो, जहाँ चार दलों वाला कमल सुरति समाधि प्राप्त कराता है (स्रुति लावहीं)॥ ७॥

सत्गुरु का चौथा लोक सत लोक है–जो अगम सिंधु के नाम से पुकारा जाता है–उसे 'अगम्य सिंधु' भी कहा जाता है। इस सिन्धु से सुरति साधना का संगम होता है और संतों की चित्त दशा निरन्तर वहीं जाकर निवास करती है॥ ८॥

हे सखि! जगत के मूल (परमात्मा रूप) संत तथा दयालु सत्यगुरु ने मुझे पति परमात्मा के लिए व्याकुल बना दिया है। तुलसी साहब कहते हैं कि सत् सुरति समाधि रूपी समुद्र को सुधारो, तभी वह परमात्मा रूपी सार तत्त्व दिखाई पड़ सकता है॥ ९॥

॥ छन्द ११ ॥

लख अगम भेद अलोक अलि री। संत सतगुरु मोहिं कह्यौ॥
तिहुँ लोक से री अलोक न्यारा। पार मारग मोहिं दयौ॥ १॥
सिंध सब्द सतगुरु किरनि चेला। सुरति सब्द मिलावही॥
सतलोक सिंध सम्हार अलि लख। मिलन समझ सुनावही॥ २॥
सखि सिंध बुन्द मिलाप सतगुरु। किरनि सुरज कहावही॥
सखि समुद जल जस भरत बदरा। भूमि बरस बहावही॥ ३॥
अलि सिमटि नीर समीर सलिता। सिंध समझि समावही॥
सखि सिंध बुन्द जो सिष्य सतगुरु। गवन गत मत गावही॥ ४॥
सखि जलहि जल बल एक करिकै। भूमि भर्म नसावही॥

चित चीन्ह जैसे खेल चौपड़। जुग नरद घर आवही॥ ५॥
जिमि किरनि भास निवास रबि में। गगन मर्म मिलावही॥
अलि गगन नास अकास बिनसै। रबि रहन नहिं पावही॥ ६॥
अलि सिंध सूरज ब्रह्म कहि नद। किरनि जीव कहावही॥
सब ठाट बाट बिराट बिनसै। सुरज कहँ होइ रहावही॥ ७॥
सखि सुरज ब्रह्म विनास किरनी। जब अकास नसाइये॥
सखि सुरज कहौ केहि ठाम रहि। सोइ समझ खोज लगाइये॥ ८॥

अर्थ–हे री सखी! इस अगम्य (अध्यात्मिक) लोक को देखकर संत सतगुरु ने मुझसे कहा। यह आध्यात्मिक लोक तीनों लोकों से विलक्षण है और इस लोक में प्रवेश का मार्ग मुझे गुरु ने ही बताया है॥ १॥

इस ज्ञान के बाद मुझे लगने लगा कि सिन्धु शब्द ही सतगुरु है और उस जल की चमक शिष्य है। गुरु तथा शिष्य को सुरति ध्यान ही एक करता है। हे सखि! देखो, इस सिन्धु में ही 'सत् लोक' समाया हुआ है और शिष्यगण सिन्धु तथा बिन्दु के मिलन के अनुभव का ही गुणगान करके सुनाते रहते हैं॥ २॥

हे सखि! सिन्धु एवं शिष्य रूपी बिन्दु का मिलाप ही सत्गुरु (ब्रह्म) है। यह सम्मिलन उसी प्रकार है, जैसे सूर्य और उसकी किरणों का मिलाप। हे सखि, समुद्र का जल जैसे अपने में आत्मसात् करके बादल पुनः उसे भूमि पर बरसाता है–उसी प्रकार शिष्य भी सत्गुरु के सम्पर्क में ब्रह्मानुभूति से आत्म साक्षात्कार करके उसे पुनः लोक में जन समुदाय के बीच रखता है॥ ३॥

हे सखि! वही जल तथा वायु तथा तालाबों को सिन्धु समझकर उसमें पुनः समाविष्ट हो उठता है। ठीक उसी प्रकार, शिष्य तथा सत्गुरु बिन्दु तथा समुद्र हैं जो परस्पर एक दूसरे से परिपक्व होकर पुनः उन्हीं में मिल जाते हैं। अतः एक दूसरे से मिले होने के उनके स्वरूप का मैं वर्णन करता हूँ॥ ४॥

हे सखि! साधक शिष्य तथा गुरु दोनों जल को ही जल के माध्यम से ही एक रूप करके भूमि (माया) होने का भ्रम दूर करते हैं। अपने चित्त से पहचानों जैसे चौपड़ खेल के खिलाड़ी दो हैं किन्तु एक ही घर को लौटते हैं॥ ५॥

जिस प्रकार किरणों के प्रकाश का निवास सूर्य में है और आकाश इस मर्म का नियन्ता है। हे सखि! उसी प्रकार, जैसे आकाश का विनाश होने के बाद समझ शून्य नष्ट हो जायेगा और वहाँ सूर्य रहने नहीं पाएगा॥ ६॥

जब आकाश नष्ट हो जाएगा तो हे सखि! सूरज की किरणें भी विनष्ट हो उठेंगी–तब बताओं, वह सूरज कहाँ है, किस स्थान पर चला गया, सोच समझ कर खोज करो॥ ८॥

सोइ धाम ठाम ठिकात सजनी। घर समझ जहँ जाइये॥
नहिं और आस बिनास सबको। कोइ रहन नहिं पाइये॥ ९॥
सखि नीर छीर मिलाप समुन्दर। बदर फिरि भरि लावही॥
जल बरसि नद मिलि समुंद आवै। जाइ पुनि फिरि आवही॥ १०॥
अस जीव आवागवन माहीं। ब्रह्म जीव कहावही॥
बस कर्म काल बिनास निस दिन। अगम घर नहिं पावही॥ ११॥
अलि समुन्द आदि बुन्याद कह सोइ। स्रोत केहि घर गावही॥

करि खोजि रोज बिचारि मन में। गैल गुरु सँग पावही॥ १२॥
सखि संत चरन निवास चेरी। अधर समझ सुनावही॥
लखि सिंध बुन्द से अगम आगे। देखि समझि समावही॥
सोइ समझ सतगुरु सार सजि के। लेख लखन लखावही॥ १३॥
जिमि धार मिलि जल मीन चढ़िके। अधर घर धसि धावही॥
अलि अमर लोक निवास करिके। सुख अचल जुग पावही॥ १४॥
गुरु कंज सतगुरु मज मिलि के। अंज अमल पिलावही॥
सज सुरति निरति सम्हार मिलिके। पिलि पुरुष पिय पावही॥ १५॥
एरी अगम दीनदयाल सतगुरु। हाल हरष निहारही॥
तुलसिदास बिलास कहि अस। संत अज अरथावही॥ १६॥

अर्थ–हे सजनी! उस स्थान को खोजो क्योंकि वही आत्मा का मूल निवासस्थल है, वही उसका ठिकाना है (ठाँव) है, और वह साधक का घर है तथा उसी को ही अपना समझ कर वहीं जाओ। सभी के लिए अन्य कोई निवास स्थली की आशा नहीं है तथा वह अन्यत्र नहीं रहने पाएगा॥ ९॥

हे सखि! आत्मा तथा ब्रह्म का मिलाप, नीर-क्षीर मिलन समुद्र से सम्बद्ध है और बादल पुनः पुनः उसी से ले जाते तथा वहीं दे आते हैं। बादल जल बरसते हैं, वह नदी में आता है और नदी के द्वारा गया हुआ जल पुनः समुद्र में आता है॥ १०॥

इस प्रकार, जीव जगत में आवागमन के कारण केवल जीव कहलाता है और कर्म तथा काल के प्रभाव से यह विनाशधर्मी जीव अज्ञानता वश ब्रह्म का सन्निध्य नहीं प्राप्त करता॥ ११॥

हे सखि! उसी अनादि समुद्र को निर्गुण ब्रह्म समझें, वही जगत का मूल तथा आदि आधार है। उसका स्रोत कहाँ है, किसी को पता नहीं है। मन में अच्छी तरह से प्रतिदिन विचार करके देखो, उसे पाने का मार्ग (गैल) गुरु सान्निध्य से ही प्राप्त किया जा सकता है॥ १२॥

हे सखि! सन्त-चरणों में निवास करके उनकी दासी बनो और वे अन्तः लोक में स्थित उस ब्रह्म विद्या के विषय में बताएँगे। उस मूल ब्रह्म तत्त्व को बिन्दु और सिन्धु के मिलन की दशा के भी आगे समझकर, देखकर उसमें विलीनता प्राप्त करो ॥ १३॥

जिस प्रकार जल तथा धारा पर जलस्थित मछली चढ़कर अपने अन्तर्तम में स्थित निवास में प्रवेश करके दौड़ती है–नितान्त सहजभाव से, वैसे ही, साधक उस अमर लोक में निवास करता हुआ अनन्त-अनन्त युगों तक आनन्द प्राप्त करेगा ॥ १४॥

गुरु रूपी कमल और सतगुरु (ब्रह्म) रूपी सौन्दर्य (का मंत्र) मिलकर निर्मल अमृत (अंज) का पान कराएँगे। इस प्रकार सुरति-निरति के सौन्दर्य से सज्जित स्वयं पति रूपी ब्रह्म के सान्निध्य का सुख प्राप्त करोगे।। १५॥

अरी री! सखी!! सर्वथा अगम्य दीन दयालु प्रभु ही सतगुरु हैं–प्रतिक्षण हर्षपूर्वक वे भक्त की दशा देखते रहते हैं। तुलसी साहब उनके इस निर्गुणमयी लीला-विलास का सन्त महात्माओं के लिए गान करते हुए उनके अजत्व की अर्थमीमांसा करते हैं॥ १६॥

॥ दोहा॥

तुलसी अगम निवास, सुरति बास बस घर किया।।
पिया परम रस मूल, सो अतूल अंदर हिया॥ १॥

फूली बन फुलवारि, भीतर घट के कहि कही॥
खग मृग सरवर ताल, गुरु निहाल करि लखि लई॥ २॥

अर्थ–तुलसीसाहब बताते हैं कि ब्रह्म का निवास ऐसे स्थान पर है जो सर्वथा अगम्य है। सुरतियोग के फलस्वरूप मैंने भी वहीं अपनी निवास स्थली बना ली। वह मेरा ब्रह्म पति आनन्द का अधिष्ठान है और वह अतुलनीय विलक्षण मेरे हृदय के अन्तरतम में है॥ १॥

उसके साथ रहने पर इस शरीर के अन्तरतम की पुष्प वाटिका खिल उठी है और इसी शरीर में उसकी कृपा से मैं पक्षी, मृग (वन पशु), सरोवर, ताल आदि सब कुछ देख रहा हूँ॥ २॥

॥ सोरठा॥

तन मन ब्रह्मांड पसार, अंड अंड नौखंड लौं।
सो घट लखन मँझार, करत सैल ब्रह्मंड की॥ १॥
सतगुरु गगन गुहार, गगन मगन स्रुति मिलि रही।
मन्दिर मगन निहार, कंज भान भिन के कही॥ २॥

अर्थ–इस शरीर तथा मन के अन्दर ब्रह्मांड फैल उठा है, अंडों की भाँति ब्रह्मांड जैसे इसी में स्थित हो। मैं इस (वाणी) के अन्दर ही सम्पूर्ण ब्रह्मांड की जैसे सैर (सैल) कर रहा हूँ॥ १॥

इस पिंड रूपी आकाश में सतगुरु (ब्रह्म) की ही वाणी सुनाई पड़ रही है–उस प्रभु की ध्वनि इसी हृदयाकाश में इसी सुरति के साथ विलीन भी हो रही है। मैं आनन्दित भाव से आत्मा के अधिष्ठान रूप शून्य गगन के उस मंदिर को देख रहा हूँ, जहाँ भिन्न-भिन्न कमल हैं और भिन्न-भिन्न सूर्य बताये जाते हैं॥ २॥

॥ दोहा॥

भास भवन घट में लखी, सलिल कँवल के माइँ।
पदम पार बेनी बसी, लसी अधर चढ़ि धाइ॥

अर्थ–ब्रह्म का अधिष्ठान मैंने शरीर में अनुभव किया, यहीं बिना जल के कमल देखा–इस कमल के उस पर बनी हुई त्रिवेणी (सहस्रार की सन्धिस्थली) दिखाई पड़ी–यह सब हमने अन्दर-अन्दर ही दौड़ते हुए शून्य शिखर पर चढ़कर देखा॥

॥ सोरठा॥

तुलसी तोल निहार, गुरु अगम पद पदम हीं।
कर दृग ऐन अधार, पार परस पट भवन में॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने भलीभाँति तौलकर (मूल्यांकन करके) देख लिया है कि गुरु के चरण-कमल ही अगम्य (को जानने के हेतु) हैं। इस संसार के रहस्य को आवृत किए हुए पट (परदे) को देखने के लिए गुरु के ज्ञान दान से प्राप्त निर्मल दृष्टि को ही आधार बनाओ॥

॥ शब्द चरचरी॥

तुलसिदास भास भवन, देखा घट माहीं।
लाई स्रुति सलिल कँवल, पदमन पर जाई॥ टेक॥
सतगुरु गिरि गगन, मगन, मंदिर मानौ अजूब।

कंजा भजि भलक भान, कोटिन छबि छाई॥ १॥
बेनी मजन अनूप, रहिनी अन्दर अरूप।
चंदा रबि रेनि दिवस, तारे नभ नाही॥ २॥
बरनन लखि अलख ऐन, स्याम सिखर निकर कंद।
निरता स्रुति समझि सूर, पकज अपनाई॥ ३॥
अंडा अंबुज अतूल, बेलि बृच्छ अधर मूल।
फूला फल बन निवास, ललित लता छाई॥ ४॥
भंवर भृंग लसि सुगंध, उरझे रस बस बिलास।
आनंद सीतल समीर, सखर तट माई॥ ५॥
जहँ जहँ दृग देखि जात, खगपति कृति नभ उड़ात।
बन बन मृग चरत जात, कोकिल करकाई॥ ६॥
थरिकै धस धरन डोर, दृढ़कै चढ़ि कड़क कोक।
धधकत धसि धधक नीर, फूटा पुल जाई॥ 7॥
भाखा भीतर बयान, सज्जन सुनि समझि साथ।
अद्‌बुद अज अजर बात, संतन लखवाई॥ ८॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि ब्रह्म भवन का ज्ञान (भास) मुझे हो गया है और वह शरीर (घट) के अन्दर ही है। मैं शरीर के अन्दर स्थित इस भवन में जाकर स्थित कमल को सुरति रूपी जल में आया॥ टेक॥

सतगुरु ब्रह्म गगन (शून्य) पर्वत पर मग्न हैं–उनका मंदिर (भवन) मानों मंदिर न होकर कोई अजूबा हो। वहाँ गगन-गुफा में स्थित कमल दल का ध्यान करो (भजि) उसी के माध्यम से कोटि-कोटि छवियों से अलंकृत सूर्य सुन्दर प्रतीत (झलक) होगा॥ १॥

उस इंडा-पिंगला एवं सुषुम्ना रूपी त्रिवेणी का स्नान अनुपम है, उसके अन्दर चित्त का निवास तो और भी अनुपम है। यहाँ रात-दिन चन्द्र एवं सूर्य निरन्तर बने रहते हैं किन्तु उस आकाश में तारे नहीं हैं॥ २॥

उस अलक्ष्य गृह का रूप देखकर तथा उसके श्यामल (शून्य) शिखरों के समूह का अनुभव करके जो लोकवासनाओं से विरक्त जन एवं समाधि सिद्ध योगिजन (सूर) हैं, वे उस सहस्त्रार कमल को अपना लेते हैं–अर्थात् अपनी समाधि सहस्त्रार में लगाए रहते हैं॥ ३॥

उस सहस्त्रार कमल को सम्हालने वाला ब्रह्मांड अतुलनीय है, उसके नीचे लताएँ, वृक्ष तथा लटकती हुई जड़ें हैं–उस वन के परिसर में निवास है, फल-फूल मंडित लक्षित लताएँ छाई हुई हैं॥ ४॥

साधना विलास सुंगधि और रस में आनन्दित (उलझे) भ्रमर समूह फैले है। उस सरोवर के तट पर शीतल वायु आनन्द दे रही है॥ ५॥

जहाँ जहाँ नेत्रों की दृष्टि जाती है, गरुण आकाश में उड़ते जैसे दिखते हैं। वन-वन में मृग समूह चरते दिखते हैं तथा कोकिला कुहुकती रहती है॥ ६॥

हे साधक! इस शून्य में समाधि की डोरी पकड़ कर उसमें प्रवेश करो और पूरी दृढ़ता से उस अविचल कमल में अध्यवसित (प्रविष्ट) होओ। तुम्हारे प्रवेश काल में शून्य सरोवर का वह जल धधकता है (धधकेगा) और उसका सेतु फूटने-सा लगेगा (किन्तु हे साधक! तुम विचलित न होना)॥ ७॥

हे सज्जनों! मैं घट-ब्रह्मांड के भीतर की स्थिति का वर्णन मैं कर चुका, इसे सुनें और साथ-साथ समझ लें। यही सर्वाधिक अद्‌भुत, अज एवं मृत्युमुक्त चर्चा (बात) है और इसे सन्तों को मैंने दिखा दिया है ॥ ८ ॥

॥ सोरठा ॥

भान भवन घट वास, लखि अकास अन्दर गई।
लीला गिरि चित चास, दीपक मंदिर मरम जस ॥ १ ॥

अर्थ–जब सूर्य के प्रकाशमय भवन में शरीर तथा चित्त का निवास हुआ तब वहाँ शून्याकाश देखकर विलासवती आत्मा उसमें प्रवेश कर गई। उसके मन में अब लीला गिरि की साध (चास) हो गई है और यह उसी प्रकार है–जैसे मंदिर के अन्दर दीप (प्रभा) का रहस्य अर्थात् मन्दिर एवं दीपक दोनों एक दूसरे को प्रकाशित करते हैं–उसी प्रकार शून्याकाश में आत्मा परमतत्त्व एक दूसरे को आलोकित करने लगे ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

लखि प्रकास पद तेज, सेज गवन गढ़ गगन में।
पति प्रिय प्रेम बिलास, तुलसिदास दस गिरा में ॥ २ ॥

अर्थ–प्रकाश के इसके तेजोमय स्वरूप (पद) को देखकर शून्याकाश रूपी दुर्ग में स्थित पति (ब्रह्म) की शय्या पर उसने गमन किया। दसों द्वार वाले उस भवन में जाकर, तुलसी साहब कहते हैं कि, वह अपने प्रियतम पति के विलास में डूब गई ॥ २ ॥

॥ सोरठा ॥

मैं मति ऐन अयान, गुरु बयान मो को कह्यौ।
लह्यौ गगन सोइ जान, सतगुरु मंजन पदम हीं ॥ ३ ॥
सतगुरु अगम अपार, सार समझि तुलसी कियो।
दया दीन निरधार, मोहिं निकार बाहिर लियो ॥ ४ ॥

अर्थ–अज्ञान भरे चित्त वाले मुझ शिष्य को गुरु ने इस अध्यात्म विद्या का वर्णन किया–फिर ब्रह्म रूपी गुरु के चरणों का प्रच्छालन करता हुआ मैंने ज्ञानदृष्टि से उसे शून्य आकाश को समझा ॥ ३ ॥

मेरे सतगुरु अगम्य है, अपार हैं, मैंने उनके होने का मूल तत्त्व समझकर उन्हें गुरु माना। बिना किसी कारण के अर्थात् अकारण इस दीनजन पर उनकी दया बनी रही, वे सतगुरु ही हैं–जिन्होंने इस मायामय संसार से निकालकर मुझे मुक्त कर दिया ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

सतगुरु संत दयाल, करि निहाल मो को दियो।
मूरति सिन्ध सुधार, सार पार जद लखि पर्‌यो ॥ ५ ॥

अर्थ–सतगुरु ही वह दयावान् सन्त हैं, जिन्होंने मुझे वह परम तत्त्व देकर विह्वल बना दिया। सुरति साधना द्वारा सिन्धु के मार्ग को सुधारा और मैं और इस भवसागर के पार जैसे दिखाई पड़ने लगा ॥ ५ ॥

॥ सोरठा ॥

संत चरन पद धूर, मूर मरम मो को दई।
भई निरति स्रुति सूर, लइ समान मन चूर करि ॥ १ ॥

मैं मति मान अपूर, कूर कुटिल न्यारे किये।
हिये तिमर तन दूर, तूर तमक तन की गई॥ २॥
मो मन सुरति अयान, जानि सुरति सत रीति ले।
गहि कर संत सुजान, मान मनी मद छाँड़ि के॥ ३॥
मैं मति सत सम नाहिं, पाइ पकरि लारै लई।
सतगुरु दीन दयाल, जाल काट न्यारी करी॥ ४॥
सतगुरु चरन निवास, बिमल बास बिधि लखि परी।
धरी जो तुलसीदास, भास चमकि चढ़ि चाँप धरि॥ ५॥
सतगुरु परम उदार, दल दरिद्र सब दूरि करि।
संपति सुरति बिचार, निधि निहार सब्दै लखा॥ ६॥

अर्थ–सन्त की चरणधूलि ने ही मुझे रहस्य के मूल तत्त्व को दिया है। मेरी मति निरति और सुरति के कारण सबल हो उठी और तुच्छ वस्तु के सदृश उन्होंने मन को (लोकमन को) नष्ट कर दिया॥ १॥

मुझ अपूर्ण बुद्धि के व्यक्ति की क्रूरता, कुटिलता को गुरु ने मुझसे अलग किया। मेरे हृदय का अँधेरा दूर हुआ और शरीर का अहम् और गर्व (तूर तमक) दूर हो गया॥ २॥

सुरति-समाधि तथा ज्ञान से सर्वथा अज्ञानी मेरे चित्त ने सत्य रीति (सही-सही तरीके से) से सुरति को समझा और इस प्रकार मन के मान एवं मद विकार का परित्याग करके सज्जन संत का हाथ पकड़ा (सहारा लिया)॥ ३॥

मैं अपनी मति के अनुसार सत्यमय नहीं था-गुरु के चरणों को पकड़ कर उसी में अपनी निष्ठा (लारै) लगाई और दीनों के प्रति अत्यधिक दयाभाव रखने वाले मेरे गुरु ने मायिक संसक्ति (जाल) को काटकर मुझे उससे मुक्त कर दिया॥ ४॥

सतगुरु के चरणों की छाया में निवास करने से निर्मल (पवित्र) निवास की विधि मुझे दिखाई पड़ गई। इस तुलसी साहब ने उसे ग्रहण करके अदृश्य में प्रकाशित तत्त्व को देखकर समझा॥ ५॥

मेरे सत्गुरु परम उदारमना हैं, मेरी दरिद्रता के सारे समूहों को उन्होंने विनष्ट किया। उनके ज्ञान दर्शन के बाद ही मुझे सुरति ज्ञान जैसी संपत्ति समझ में आई और उसी के माध्यम से अपूर्व ज्ञान रूपी निधि को देखकर 'अनाहत नाद' जैसे शब्द से साक्षात्कार किया है॥ ६॥

भेद पिंड और ब्रह्मांड का

॥ चौपाई ॥

परथम बन्दौं सतगुरु स्वामी। तुलसी चरन सरनि रति मानी॥
पुनि बन्दौं संतन सरनाई। जिन पुनि सुरत निरत दरसाई॥
चरन सरन संतन बलिहारी। सूरति दीन्ही लखन सिहारी॥
सरन सूर सूरति समझाई। सतगुरु सूर मरम लख पाई॥
मैं मतिहीन दीन दिल दीन्हा। संत सरल सतगुरु को चीन्हा॥
सतगुरु अगम सिंध सुखदाई। जिन सत गेह रीति दरसाई॥
पुनि पुनि चरन कँवल सिर नाऊँ। दीन होइ संतन गति गाऊँ॥
दीन जानि दीन्ही मोहिं आँखी। मैं पुनि चरन सरनगहि भाखी॥

मैं तौ चरन भाव चित चेरा। मोहिं अति अधम जानि कै हेरा॥
मैं तौ प्रति प्रति दास तुम्हारा। संत बिना कोई पावै न पारा॥
संत दयाल कृपा सुखदाई। तुम्हारी सरन अधम तरि जाई॥
आदि न अंत संत बिन कोई। तुलसी तुच्छ सरन में सोई॥
जो कुछ करहिं करहिं सोइ संता। संत बिना नहिं पावै पंथा॥
मोरे इष्ट संत स्तुति सारा। सतगुरु संत परम पद पारा॥
सतगुरु सत्तपुरुष अबिनासी। राह दीन लखि काटी फाँसी॥
कँवलकंज सतगुरु पद वासी। सूरति कीन दीन निज दासी॥
सूरति निरत आदि अपनाई। सतगुरु चरन सरन लौ लाई॥
बार बार सतगुरु बलिहारी। तुलसी अधम अघ नाहिं बिचारी॥
बन्दौं सब चर अचर समाना। जानौ तुलसी दास निदाना॥
मैं किंकर पर दया बिचारा। अनहित प्रिये करौ हित सारा॥
सब के चरन बन्दि सिर नाई। प्रिये लार लै प्रीति जनाई॥
तुम प्रति भूल बंद अस गाई। बार बार चरनन सिर नाई॥
पुनि बन्दौं सतगुरु सत भावा। जिनसे बस्तु अगोचर पावा॥
सतगुरु अगम अरूप अकाया। जिनकी गति मति संतन पाया॥
सतगुरु की कस करहुँ बखानी। सूरति दीन्ही अगम निसानी॥
लख लख अलख सुरति अलगानी। संतकृपा सतगुरु सहदानी॥
सूरति सैल पेल रस राती। सतगुरु कंज पदम मदमाती॥
तुलसी तुच्छ कुच्छ नहिं जानै। सतगुरु चरन सरन रत मानै॥
सूरति सतगुरु दीन्हि जनाई। नित नित चढ़ै गगन पर धाई॥
सैल करै ब्रह्मंड निहारा। देखै आदि अंत पद सारा॥
निरखा आदि अंत मधि माहीं। सोइ सोइ तुलसी भाखि सुनाई॥
पिंड माहिं ब्रह्मंड समाना। तुलसी देखा अगम ठिकाना॥
पिंड ब्रह्मंड में आदि अगाधा। पेली सुरति अलख लख साधा॥
पिंड ब्रह्मंड अगम लख पाया। तुलसी निरखि अगाध सुनाया[१]॥
पिंड माहिं ब्रह्मंड दिखाना। ता की तुलसी करो बखाना॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि उनके चरणों की शरण की संसक्ति स्वीकार करके मैं सर्वप्रथम स्वामी सतगुरु की बन्दना करता हूँ॥

---

१. मुं० दे० प्र० की पुस्तक में "अगाध सुनाया" की जगह "परख गत गाया" और आगे की कड़ी में "दिखाना" की जगह "समाना" है।

जिन्होंने इस साधना से उपकृत करके मुझे सुरति तथा निरति का ज्ञान कराया है, उसके बाद, ऐसे सन्तों की मैं वन्दना करता हूँ।

जिन सन्तों ने मुझे सुरति का ज्ञान कराया और तत्त्व को देखने की दृष्टि सुधारी (सिहारी) बलिहारी है, मैं ऐसे सन्तों के चरणों की शरण में हूँ॥

ऐसे शूरमा सन्तों की शरण में मैं आया और उन्होंने 'सुरति साधना' को समझाया और उनके द्वारा ही मैं बलशाली तत्त्वज्ञ सन्तों के रहस्य को समझ पाया॥

मैं अज्ञानी, दीन व्यक्ति समर्पित भाव से जब गुरु की शरण में गया तब सन्तों के चरणों में रहकर सत्गुरु को पहचाना॥

सत्गुरु अगम्य समुद्र की भांति आनन्ददायी हैं, जिन्होंने मुझको सत्य के गृह तक पहुँचने की रीति तथा राह दिखाई है॥

मैं बार-बार सन्त के चरण कमलों में अपना शीश झुकाता हूँ क्योंकि दीन (संसक्ति रहित) होकर ही सन्तों के ज्ञान (उनकी अवस्थाओं) का गान कर सकता हूँ–अन्यथा नहीं॥

मुझे दीन समझकर सन्तों ने मुझे ज्ञान चक्षु प्रदान किया और फिर मैं उनकी चरणों की शरण में जाकर और उसे धारण करके यह (घट रामायण) कही॥

मैं तो उनके चरणों में दास्य (चेरा) भाव से आया और मुझे अत्यन्त अधम समझ कर उन्होंने देखा (स्वीकार किया)॥

हे प्रभु! मैं तो आपके दास का दास (प्रति प्रति दास) हूँ–इन सन्तों के बिना इस संसार से किसी को मुक्ति पाना सम्भव नहीं है॥

संत दयालु हैं, उनकी कृपा आनन्ददायी है, आपकी कृपा से अधम (पापी जन) भी मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

कोई भी व्यक्ति अपने आदि स्वरूप और अन्तिम स्वरूप को बिना सन्तों के नही प्राप्त कर सकता (जान सकता), तुच्छ तुलसी साहब कहते हैं कि मैं उन्हीं सन्त की शरण में हूँ॥

जो कुछ करणीय है, उसे सन्त जन ही करते हैं और बिना सन्त जन के ज्ञान मार्ग नहीं प्राप्त हो सकता। वेदों के सार स्वरूप संत जन ही मेरे इष्ट है। सत्गुरु की प्राप्ति परम पद संत जन की सहायता से ही सम्भव है॥

सत्गुरु (ब्रह्म) अविनासी सत्य पुरुष हैं। इसका (दास का) मार्ग कंटकमय व फाँस मय था, जिसे समाप्त करके उसने रास्ता दिया। सत्गुरु के चरणों में निवास करने वाले मुझ जैसे व्यक्ति का मन सहस्त्रदल में स्थित है। अपने शिष्य को वे निरन्तर स्मरण आते है। वे उसे अपना दासत्व दे डालते है॥

सुरति-निरति आदि योग प्रक्रियाओं को अपना कर साधक (मैं) सत्गुरु के चरणों के चरणों की शरणागति में लौ लगा ली। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं बार-बार सत्गुरु की बलिहारी जा रहा हूँ। उन्होंने मुझ अधम को स्वीकार करते हुए उसके पापों को नहीं देखा॥

सम्पूर्ण सचराचर की मेरे समान ही उन्होंने एक समान मानव-दया की और उनके सारे अनहित को हितमय कर दिया॥

सभी के चरणों पर शीश डालकर मैं बन्दना करता हूँ और अपने आन्तरिक स्नेह (लार-लाड़) से सबके प्रति प्रीति प्रगट की। बार-बार चरणों में शीश डालकर तुम्हारी इस प्रकार की बन्दना करता हुआ गा रहा हूँ॥

पुन: मैं सत्यभाव (निष्ठा) से सत्गुरु की वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से ही मैंने अदृश्य वस्तु को प्राप्त किया है। सत्गुरु अगम्य हैं, अरूप हैं, शरीर विहीन है–जिनके ज्ञान के विषय में संत भी नहीं जानते॥

मैं सतगुरु का वर्णन कैसे करूँ–क्योंकि उनकी पहचान के अगम्य लक्षण हैं। जिनकी स्मृति (सूरति) या शरीर रचना लाखों-लाखों रूपों में होते हुए भी अलक्ष्य (अलख) है। सन्तों की कृपा ही सतगुरु की भेंट या निशानी (सहिदानी) है॥

उनकी स्मृति रसभरी कन्दराएँ हैं, सतगुरु रूपी कमल मदमस्त दिखाई पड़ते हैं। तुलसी साहब जैसा तुच्छ व्यक्ति तो उनके विषय में कुछ भी नहीं जानता। वह तो उनके चरणों के प्रति संसक्ति को ही सब कुछ मानता है॥

अपनी जिस स्मृति को सतगुरु ने दिखा दिया है उसके लिए वह नित्य-प्रति आवेगपूर्वक शून्य मण्डल पर दौड़कर जाता है। उस ब्रह्मांड को देखते हुए मैं निरन्तर उस पर विचरण (शैल-सैर) करता रहता हुआ आदि से अन्त तक उसके रहस्य को देखता रहता हूँ॥

मैंने उसके आदि मध्य अन्त सबको देखा है। मैं तुलसीदास उसी को कहकर सुना रहा हूं। इस शरीर (पिंड) में ब्रह्मांड छिपा समाहित है और इसी में उस अगम्य निराकार ब्रह्म की निवास स्थली देखी है॥

आदि और अगाध ब्रह्मांड इस पिंड में ही है–सुरति ज्ञान का प्रसार (फैली) हुआ और मैंने अलक्ष्य ब्रह्म का लक्ष्य साध लिया।

इसी पिंड के अगम्य ब्रह्मांड में (उसी की कृपा से) उसे देख सका। तुलसी साहब कहते हैं कि उसी की कृपा से उस अगाध तत्त्व को देखकर मैंने लोगों को सुनाया है। मुझे पिंड में स्थित ब्रह्मांड दिखाई पड़ा और उस पिंड स्थित ब्रह्मांड का मैं तुलसी साहब यहाँ (घट रामायण के रूप में) बखान या वर्णन कर रहा हूँ॥

॥ सोरठा ॥

पिंड माहिं ब्रह्मंड, देखा निज घट जोड़ कै॥
गुरु पद पदम प्रकास, सत प्रयाग असनान करि॥

अर्थ–गुरु चरणों के सत्प्रकाश रूपी प्रयाग में स्नान करके ही मैंने अपने शरीर में ही इसी पिंड में ब्रह्मांड को समझकर देखा है॥

॥ दोहा ॥

बूझै कोइ कोइ संत, आदि अंत जा ने लखी।
परचै परम प्रकास, जिन अकास अम्बर चखी॥

अर्थ–इसे कोई कोई अर्थात् बिरला संत ही जानता है (और इसे वही जानता है) जिसने आदि तथा अन्त दोनों को देख लिया है। जिस सन्त ने साधना के शून्याकाश में आकाश का स्वाद चख लिया है, उसी से उस दिव्य परम प्रकाश का परिचय भी है॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी तोल तरास, तत बिबेक अन्दर कही।
बूझेंगे निज दास, जिन घट परचे पाइया॥ १॥
पानी पवन निवास, कँवल बास बिधि सब कही।
जीव काल और स्वाँस, और अकास उतपति भई॥ २॥
भीतर देखि प्रकास, सब ब्रह्मंड बिधि यों कही।
रावन राम संबाद, आदि अंत निज जोइ कै॥ ३॥

अर्थ–तुलसीदास कहते हैं कि मैंने भली भांति मूल्यांकन करके (तोल) एवं सुस्पष्ट (तरास) कर पिंड में निहित तत्त्व का वर्णन किया है। इसको वही शिष्य प्राप्त करेंगे (समझेंगे) जिन्होंने पिंड रचना से परिचय प्राप्त कर लिया है॥ १॥

इस पिंड की निवास-स्थली जल तथा वायु है और इसी में सहस्त्रार कमल का निवास है, ऐसा सभी ने बताया है। इन्हीं दो तत्त्वों से जीव, काल, श्वास तथा आकाश की उत्पत्ति हुई है॥ २॥

इस घट के भीतर घटाकाश में प्रकाश को देखकर समस्त ब्रह्मांड का वर्णन (इस प्रकार) रावण राम संवाद के रूप में इसके आदि अन्त को देखकर किया॥ ३॥

॥ चौपाई॥

जो कोई घट का परचा पावै। कँवल भेद ता को दरसावै॥
भिन्न भिन्न कँवलन बिधि गाई। स्वाँसा भिन्न बिधी दरसाई॥
निज निज तत्त कहेऊ मैं जानी। परखेंगे कोइ संत सुजानी॥
मैं गति नीच कींच कर सानी। कहत लजाउँ अगम गति जानी॥
जो अपनी गति कहहुं बिचारी। तौ मन मोट होत अधिकारी॥
मैं किंकर संतन कर दासा। घट घट देखा तत्त निवासा॥
ता की गति ग्रन्थन में गाई। बूझै जिन सत संगति पाई॥
सूरति सार सब्द जिन पाया। दस गृह सैल जिन करी अकाया॥

अर्थ–जो कई व्यक्ति इस घट (पिंड) से परिचय प्राप्त कर लेता है, उसे सहस्त्रार कमल का रहस्य ज्ञात हो जाता है। कमलों की भिन्न भिन्न दशाओं का वर्णन किया गया है, और श्वास के भिन्न-भिन्न रूप बताये गये हैं॥ १॥

मैं समझकर भिन्न-भिन्न तत्त्वों का वर्णन करूँगा और उसे कोई चतुर मर्मज्ञ संत ही समझेंगे। काया के निकृष्ट कीचड़ में सनी हुई अपनी मति द्वारा मैं उस निर्गुण की अगम्य गति (ज्ञान) कहने में लज्जा का अनुभव करता हूँ॥ २॥

यदि मैं अपनी गति (ज्ञान) का विचार कर वर्णन करता हूँ तो मेरी यह ज्ञानाधिकार सम्बद्ध मति मोटी (अज्ञान से परिपूर्ण) समझी जाएगी। मैं तो दास हूं और विशेषकर सन्तों की और मैंने प्रत्येक घट-घट में उसी का निवास देखा है॥ ३॥

उसके ज्ञान का वर्णन अनेक ग्रन्थों में किया गया है जिसने सत्संगति की है, वही उसे समझ सकता हैं, जिसने सुरति समाधि का शब्द प्राप्त कर रखा है और जिसने शरीर के दसों गृहों में स्थित पर्वतों को कायामुक्त कर रखा है॥ ४॥

॥ सोरठा॥

जिन मानी परतीत, अधर रीति जा ने लखी।
सब गति कहहुं अजीत, सत्त बचन परमान कै॥ १॥
तुलसी सब्द सम्हार, वार पार सगरी लखी।
पकी चखी स्त्रुति सार, लार सब्द सूरति गई॥ २॥

अर्थ–जिन्होंने विश्वास किया और जिसने पिंड के अधर (अन्दर) की दशाएँ देख ली हैं, उनके वचन सत्यनिष्ठा के प्रमाण है॥ १॥

तुलसी साहब कहते हैं कि जिसने अनाहत शब्द को सम्हाल रखा है और इस पार-उस पार के

समस्त दृश्यों को देख लिया है। जिसने सुरति के पके हुए मूल तत्त्व का आस्वादन कर रखा है–उसकी संसक्ति सबद तथा सुरति से पूरी तरह से जुड़ जाती है॥ २॥

॥ दोहा ॥

सतगुरु पुर पद पार, ये अगार अदबुद कही।
भौ बुधि भेष मँझार, सार लार सूझै नहीं॥

अर्थ–सत्गुरु के चरणों के उस पार वह समाधि में चित्रित अद्भुत रूप से वर्णित नगर है। हमारी बुद्धि तो भवसागर में नाना रूपों में फँसी है–यह ब्रह्म वासना तो उसे सूझती तक नहीं॥ १॥

॥ छन्द ॥

गुरु पद कंज लखाइ घट परचे पाई। सुरति समानी सिंध मई॥
देखा वह द्वारा अगम पसारा। दस दिस फोड़ अकास गई॥
नाम निअच्छर छर नहिं अच्छर। देख अगाध अनाद लई॥
पार भीतर जाना घट परमाना। जेइ जेइ संत अगार कही॥
जिनकी रज पावन राम औ रावन। नि: अच्छर सत सार सही॥
पंडित और ज्ञानी यह नहिं जानी। भेष भेद गति नाहिं लई॥
सब जग संसारा काल की जारा। सकल पसारा भेष मई॥
रागी बैरागी भौ रस त्यागी। साँगी पाँगी भरम बही॥
ग्यानी बिज्ञानी बन बस जानी। संत पंथ मत राह नहीं॥
जोगी सन्यासी काल की फाँसी। परमहंस परमान नहीं॥
निज गावै बेदा जानै न भेदा। सास्त्र संघ जिन राह लई॥
संतन गति न्यारी सुनौ बिचारी। चौथे पद के पार कही॥
कोइ करिहै संका महामति रँका। सतसंगति सम सूझ नहीं॥
तुलसी मति-हीना पायौ चीन्हा। संत कृपा घट घाट लई॥

॥ छन्द ॥

अर्थ–गुरु चरण कमलों को दिखाकर, पिण्ड का परिचय प्राप्त करके सुरति अगाध समाधि समुद्र में विलीन हो गई। उसके पश्चात् ही वह अगम्य एवं अपार द्वार देखा और तब दसों द्वारों को तोड़कर वह ज्ञानदृष्टि शून्याकाश में खो गई॥

वह निरंजन वर्ण शून्य (नि अच्छर) है, वह क्षरणशील न होकर, अक्षरणशील है, उस अगाध तथा अनादि तत्त्व को मैंने देख लिया। उसे मैंने घर के भीतर स्थित ही समझा और उसके लिए प्रमाण घट ही है। उसे ही सभी ने सन्तों का निवास गृह बताया है॥

जिसकी पवित्र रज से राम और रावण उत्पन्न हुए हैं–वह वाणी शून्य का एकमात्र सही-सही यही सारतत्त्व है। न उसका कोई वेश है, न उसका कोई भेद है और न उसकी कोई भिन्न ज्ञान दशा (गति) है–पंडित और ज्ञानीजन उसे आज तक नहीं समझ पाए हैं।

समस्त संसार काल की पत्नी है और वह अनेक वेष धारण करके समस्त स्थानों पर फैली है। उसके भ्रम में उससे वशीभूत होकर रागवासना ग्रस्त, विरागीजन, इस संसार (भौ) का रस त्याग करने वाले सन्यासी (साँगी) सभी उसमें रम जाते हैं॥

ध्यान धारण करने वाले, विज्ञानी सन्यासीगण, वन में निवास करने वाले संत के मार्ग का अनुसरण करने वाले तथा अनेक अनेक साधुजन, योगी, सन्यासी के लिए यह माया काल की फाँस है–परमहंसों का तो कोई प्रमाण ही नहीं है ॥

ये अपने ज्ञान (या वेद) का वर्णन करते रहते हैं किन्तु उसके रहस्य को नहीं जानते। शास्त्र सिन्धुओं का जिन शास्त्रज्ञों ने मार्ग ग्रहण कर रखा है, इसे विचार करके सुनो कि संतों की गति विलक्षण होती है (वे सर्वज्ञ है) किन्तु–चौथे पद (निर्वाण पद) की कोई सीमा नहीं है ॥

यदि कोई इस बात पर संदेह करता है तो वह महामति से रहित है। वैसे, सत्संगति के बिना कोई ज्ञान सूझता नहीं। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं बुद्धिहीन व्यक्ति भी संतों की कृपा से ज्ञानदृष्टि प्राप्त की और उस परम तत्त्व को पिंड रूपी तट (घट घाट) पर प्राप्त किया ॥

॥ सोरठा ॥

पानी पवन निवास, कँवल बास बिधि सब कही।
सब्द सुरति कर बास, वै निरास अच्छर रहत ॥ १ ॥
कह्यो ग्रन्थ घट सार, गुरु परचै निज कँवल में।
जिन जिन पाय निवास, सो लखिहैं ये भेद सब ॥ २ ॥

अर्थ–जल तथा वायु में निवास करके प्रत्येक प्रकार से सहस्त्रार में बास (सुंगधि)द्वारा एहसास कराते हुए शब्द रूप में वे सुरति समाधि में निवास करते हैं। उसे अक्षररहित समझकर सन्यासी योगी आदि उसमें स्थित रहते हैं ॥ १ ॥

पिंड के इस सार तत्त्व का वर्णन इस ग्रंथ में मैं कर रहा हूँ। गुरु द्वारा परिचित कराने पर अपने ही ब्रह्म कमल में वह दिखाई पड़ा। जिन-जिन सन्तों ने अपने चित्त में आत्मतत्त्व का विश्राम प्राप्त कर लिया है–वे इसके इन भेदों को देखेंगे ॥ २ ॥

॥ चौपाई ॥

अब ब्रह्मंड का भाखौं लेखा। भिन्न भिन्न घट भीतर देखा ॥
पाँच तत्त का कहौं बिचारा। अगिनि अकास नीर निरधारा ॥
पृथ्वी पवन सकल कर भेदा। पिंड ब्रह्मंड का रच्यो निषेदा ॥
लखि अकास बाई सँग आई। दोइ मिलि निज अगिनी उपजाई ॥
अब पानी का सुनौ बिचारा। ये चारौ मिलि मही अकारा ॥
ऐसे पाँच तत्त उपराजा। निज तन कीन्ह देह कर साजा ॥
पानी बुंद सृष्टि उपजाई। ता में चेतन सत्त समाई ॥
अब पानी का भाखौं लेखा। भिन्न भिन्न घट भीतर देखा ॥
ता की बिधि बिधि कहौं बिचारा। छत्तिस नीर पचासी धारा ॥
जोइ जोइ नीर नाम बतलाऊँ। नीर छतीसो बरनि सुनाऊँ ॥
बिधि बिधि नाम नीर समझाऊँ। नाम नीर भिन्न भिन्न दरसाऊँ ॥

अर्थ–अब मैं ब्रह्मांड के विषय में वर्णन करता हूँ। उसे मैंने भिन्न-भिन्न पिंडों (घटों) के भीतर देखा है। पंच तत्त्वों पर मैं सबसे पहले विचार कर रहा हूँ। अग्नि, आकाश, जल ये तीनों पृथक् हैं ॥

पृथ्वी तथा वायु सभी के भेद हैं और इस प्रकार इनसे पृथ्वी तथा ब्रह्मांड की रचना हुई है। आकाश को देखो, उसके साथ वायु उत्पन्न हुई है। इन दोनों ने मिलकर अग्नि को पैदा किया है ॥

अब पानी के विषय में विचार सुनो। इन चारों ने मिलकर पृथ्वी को आकार दिया है। इस प्रकार पाँचों तत्त्व उत्पन्न हुए हैं और अपने-अपने द्वारा इन्होंने पिंड की सज्जा की है॥

पानी की बूँद ने सृष्टि उत्पन्न की। उसी में चैतन्य तत्त्व प्रविष्ट हो गया। अब मैं जल का वर्णन करता हूँ। उसे मैंने भिन्न-भिन्न पिंडों में इस प्रकार देखा है॥

मैं विधिपूर्वक उसकी विधि का वर्णन कर रहा हूँ। छत्तीस प्रकार के जल हैं और उसकी पचासी प्रकार की धाराएँ हैं। जिन-जिन जलों को मैं तुम्हें बतलाऊँगा और उन छत्तीसों जलरूपों का वर्णन करके सुनाऊँगा। नाना प्रकार के रूपों से मैं उनका नाम बताऊँगा और उन जलों के अलग-अलग नामों का वर्णन करूँगा।

॥ नीर के नाम ॥

॥ चौपाई ॥

जल अजीत परथम करि गाऊँ। करता जल दूसर कर नाऊँ॥
और अनूप तीसर जल कीन्हा। चौथा मुक्ति नीर को चीन्हा॥
नीर पाँच पुरइनि परमाना। अंबुज षष्टम नीर बखाना॥
नीर सात बिषया झर होई। नीर आठ अटला सुर सोई॥
नवाँ नीर नाटक दुख भेदा। दसवाँ नीर दसौ मन छेदा॥
एकादस नीर काल को जाना। द्वादस नीर जिव करै पयाना॥
तेरवाँ नीर पुरुष कौ ध्याना। जो बूझै घट परचै जाना॥
जीव नीर चौधा में भूला। पंद्रह नीर भीर सहै सूला॥
सोला नीर कनक कर संगी। सत्रा नीर रूप रस रंगी॥
अठरा नीर बोल दे नाऊँ। उन्निस नीर कुसुम रंग राऊ॥
बिसवाँ नीर कलंगी गाई। निज घट भीतर परचा पाई॥
इकिस नीर सुख सागर धामा। भँवरकंज उरझा तेहि ठामा॥
बाइस नीर मूल घट राजा। तेइस नीर निरासू बाजा॥
नीर चौबिसवाँ चतुर सुजाना। पच्चिस नीर मेघ परमाना॥
छब्बिस नीर कहौं मैं काला। सताइस नीर घनासुर नाला॥
अठाइस नीर रूप द्वै आना। उन्तिस नीर अभया दृग दाना॥
तिसवाँ नीर आहि बल भारी। इकतिस नीर आहि संसारी॥
बतिस नीर निरगुन है सीठा। तैंतिस आलस नीर है मीठा॥
चौंतिस नीर सरोसिल नाऊँ। पृथ्वी पैंतिस नीर बताऊँ॥
छत्तिस नीर कामिनी बासा। ब्रह्मा बिस्नु का भोग बिलासा॥
जीव जंतु जल जीव निवासा। ये सब परे काल की फाँसा॥
छत्तिस नीर नाम निरधारा। सो कोइ साधू करै बिचारा॥
आगे कहौं पचासी पवना। ता कर नाम भेद गुन बरना॥

भिनि भिनि नाम बिधी बतलाऊँ। पवन पिचासी बरनि सुनाऊँ॥
पिंड में पवन पचासी बासा। सो निज भाखौं भेद खुलासा॥

॥ नीर के नाम ॥

अर्थ–प्रथम 'अजीत' जल का वर्णन करता हूँ। दूसरे जल का नाम 'कर्त्ता' जल है। तीसरा जल, अनूप है। चौथा पहचाना गया जल 'मुक्ति' जल है। पाँचवाँ जल 'पुरइन' के नाम से प्रमाण रखता है और छठाँ जल 'अंबुज' जल कहा गया है। सातवाँ जल 'विपया' है और आठवाँ जल 'अटला सुर' है॥

नवा नीर दुख को नष्ट करने वाला 'नाटक' है। दसवाँ जल दसों द्वारों को छेदने वाला है। एकादश नीर काल है–बारहवाँ जल जहाँ जीव प्रस्थान करता है (या जीव जल है)॥

तेरहवाँ जल 'पुरुष' का ध्यान है–जो उसे बूझता है, उसे पिंड का ज्ञान हो जाता है। चौदहवें जल में जीव की संसक्ति है पन्द्रहवाँ जल वह है जिससे लोकपीड़ा झेली जाती है॥

सोलहवाँ जल स्वर्ण का साथी है और सत्रहवां जल रूपरस का आनन्द है। अट्ठारहवाँ जल 'बोल' है और उन्नीसवाँ जल पुष्प रंग से श्रेष्ठ है। बीसवें जल को 'कलंगी' के नाम से पुकारा जाता है और उसका परिचय अपने शरीर के भीतर ही होता है। इक्कीसवाँ जल सुख सागर धाम का है, उस स्थान पर 'भ्रमर-कमल' दोनों उलझे हैं॥

बाइसवाँ जल घट मूल का राजा है और तेईसवाँ जल निरासा में बजता रहता है। चौबीसवाँ जल चतुर सुजान है और पच्चीसवाँ जल बादल का प्रमाण है॥

तीसवाँ जल बल का भार है और एकतीसवाँ जल संसारी है। बत्तीसवाँ जल निर्गुण ब्रह्म की सृष्टि है और तैंसवाँ जल आलस नाम का मीठा जल है। चौतीसवें जल का 'सरोसिल' नाम है और पृथ्वी को पैंतीसवाँ जल बताता हूँ॥ छत्तीसवें जल में 'कामिनी' का निवास है–वह ब्रह्मा और विष्णु का भोग विलास है॥

जीव जन्तुओं का जल जीवन में निवास है–ये सभी काल के वश में होते है। छत्तीस जलों का इस प्रकार नाम निर्धारित है और इन पर बिरला साधु ही विचार करता है॥

आगे में पचासी वायु का वर्णन करता हूँ–उनका नाम तथा भेद यहाँ वर्णित है। उनके भिन्न-भिन्न नाम और भेद यहाँ बतलाये गये हैं–उन पचासी वायुओं का वर्णन करके सुनाता हूँ।

इस पिंड के भीतर पचासी पवनों का निवास है। मैं उनका स्पष्ट भेद करके वर्णन करता हूँ॥

पवन के नाम

१.	रजलाय पवन	१४.	उपजीत पवन	२६.	सुख रोग पवन
२.	केदार पवन	१५.	जगजीत पवन	२७.	ज्ञान कुंभ पवन
३.	विलंभ पवन	१६.	पर राज पवन	२८.	मैना ऊँचा पवन
४.	समीर पवन	१७.	बलकुंभ पवन	२९.	त्रिकोध पवन
५.	गुरभो पवन	१८.	पतराज पवन	३०.	किवलास पवन
७.	श्रुतिअंध पवन	१९.	बलभेद पवन	३१.	करनास पवन
८.	नलपती पवन	२०.	बारुन पवन	३२.	रस नाग पवन
९.	ब्रह्मराज पवन	२१.	कुम्भेर पवन	३३.	जनजीत पवन
१०.	मंदोष पवन	२२.	जगजाय पवन	३४.	सकरीत पवन
११.	सकल तेज पवन	२३.	बेधुन्ध पवन	३५.	बेलोक पवन
१२.	मन सोत पवन	२४.	सकलंध पवन	३६.	मनमोष पवन
१३.	जग जोत पवन	२५.	सल सोख पवन	३७.	बेरूप पवन

३८. सतसूक पवन
३९. बीज बन्द पवन
४०. बीज बन्द पवन
४१. अज सार पवन
४२. नितनाल पवन
४३. शब्दाल पवन
४४. गिरनाल पवन
४५. शुषपाल पवन
४६. रूपान पवन
४७. विधान पवन
४८. सुभपती पवन
४९. छेरती पवन
५०. उतरंग पवन
५१. तितरंत पवन
५२. पुरवो पवन
५३. सरभो पवन
५४. उपमीत पवन
५५. दरतीत पवन
५६. उपमार पवन
५७. अभियार पवन
५८. अतरीत पवन
५९. ताईत पवन
६०. सुषमंद पवन
६१. असमद पवन
६२. सोराद पवन
६३. लैवाद पवन
६४. करिहाट पवन
६५. करुनाट पवन
६६. बैराग पवन
६७. लैजार पवन
६८. लैलार पवन
६९. नदसूर पवन
७०. पदमूर पवन
७१. करकीत पवन
७२. धरजीत पवन
७३. मनमास पवन
७४. सरसूत पवन
७५. अवधूत पवन
७६. आकाश पवन
७७. जगबास पवन
७८. सुनसूत पवन
७९. मनभूत पवन
८०. निरधार पवन
८१. सतसार पवन
८२. आसोग पवन
८३. तन भोग पवन
८४. जग जोग पवन
८५. मन रोग पवन

।। चौपाई ।।

पवन पचासी भाखि सुनाई। कोइ साधू घट भीतर पाई।।
घट में पवन पचासी जाना। निरखा नैन सैन धरि ध्याना।।
साधु आदि कोई करै बिबेका। सोइ निज सार पवन का लेखा।।
तुलसी जिन जिन नैन निहारा। पवन पचासी बरनि सिहारा।।
जिन जिन घट की सैल सँवारा। पवन भवन सोइ गवन गुहारा।।
आगे सुनहु गगन का लेखा। सोला गगन पिंड में देखा।।
जिन जिन सैल सुरति से कीन्हा। सोला गगन भाखितेहि दीन्हा।।
जो सोला का भेद बतावै। सोह सज्जन सत साध कहावै।।
भिन्न भिन्न सोला बिधि भाखौं। गगन नाम निज एक न राखौं।।
बिधि बिधि नाम कहौं समझाई। चित दे सुनौं गगन कर नाई।।

अर्थ–पचासी पवनों को कहकर बताया है। इसे कोई कोई साधु ही घट के भीतर प्राप्त करता है घट पवनों को संख्या पचासी समझो। नेत्र दृष्टि पर ध्यान लगा कर ही इसे मैंने देखा या समझा था।।

कोई विलक्षण साधु ही इसका ज्ञान करता है–वही अपनी साधना के सार तत्त्व पवन का लेखा-जोखा भी करता है। तुलसी साहब कहते हैं कि जिन-जिन इसे नेत्रों से देखा है–पचासी पवनों का वर्णन करके वह आनन्दित होता है।।

जिस-जिस पिंड का पर्वत शिखर सँवारा गया है–उसी-उसी ने वायु स्थल के गमन को पुकारा है–(वर्णन किया है) आगे आकाश का वर्णन देखो–मैंने सोलह आकाश इसी पिंड में देखा है।। १३ ।।

सुरति ज्ञान से जिन-जिन पर्वतों से साक्षात्कार किया–उन्होंने सोलह आकाशों के विषय में बता दिया है। जो इस सोलह आकाश का वर्णन करता है, वही सज्जन है, वही सच्चा साधु है॥

मैं सोलह आकाशों का वर्णन भिन्न-भिन्न रूपों में कर रहा हूँ। गगन (आकाश) का नाम देकर एक भी न छोड़ूँगा। उनके विधि-विधि नामों को मैं समझाकर बताऊँगा। हे श्रोतागण! ध्यान देकर आकाश की भाँति स्थिर चित्त से सुनो॥

॥ गगन के नाम। चौपाई ॥

परथम गगन निसाधर मोषा। दूसर गगन पृथी पद पोषा॥
तीसर गगन बिरिछ सुर सोषा। चौथा गगन दिलंभी गोषा॥
पंचम गगन हिरा पद स्यामा। षष्टम गगन निरंजन नामा॥
सप्तम गगन पुलंधर चीन्हा। अष्टम गगन सफानल कीन्हा॥
कदलीकंद नवीं कर नामा। दसवीं गगन जमरस के ठामा॥
एकादस गगन हरि हिरदे नामा। द्वादस गगन अधर परमाना॥
तेरा गगन कलंगी रूपा। चौधा गगन है धुंध सरूपा॥
पद्रा गगन मुक्ति कर नामा। सोला गगन गुप्त निज धामा[1]॥
इतने गगन काया के माईं। सज्जन साध खोज कोइ पाई॥
सोला का कोई भेद बतावै। सोइ सोइ गगन गिरा गति गावै॥
तुलसी निरखि कहा निज लेखा। बूझि साध कोइ करै बिबेका॥
घट भीतर सब गगन बताया। भिनि भिनि नाम गगन गति गाया॥
इतने की कोइ जानै सधा। सो नहिं परै काल के फंदा॥
आगे भेद जो कहौं अनूपा। भँवर गुफा में जोति सरूपा॥
भँवर गुफा छै भाखि सुनाऊँ। जाको भिनि भिनि भेद बताऊँ॥

अर्थ–आकाश का प्रथम नाम निशाकर कहा गया है–दूसरा आकाश पृथ्वीपद बताया गया है। तीसरा आकाश देववृक्ष सोषता है और चौथा गगन दिलंभी है–जो आकाश को प्रतिबिम्बित करता है॥

पंचम आकाश श्यामवर्ण का हीरापद है और छठें आकाश का निरंजन नाम है। सातवें आकाश को 'पुलंधर' के रूप में पहचाना है और आठवें आकाश का नाम सफानल है॥

नवें का नाम कंदली कंद है और दसवाँ गगन 'जमरस' के पास है। एकादश गगन का हृदय नाम है और द्वादश आकाश अधर है। तेरहवाँ आकाश 'तेलंगी' रूप है–चौदहवाँ आकाश धुंध की भाँति है॥

पन्द्रहवाँ आकाश मुक्ति के नाम का है–सोलहवें गगन का धाम गुप्त है। इसने आकाश शरीर के मध्य हैं। विरले सज्जन तथा साधु इसे खोज पाते हैं। जो आकाश में स्थित नाद की ध्वनि का गान करता है, वही कोई विरला ही सोलह आकाश का भेद बता सकता है॥

तुलसी साहब ने उन्हें भलीभाँति देखकर अपना लेखा कहा है–कोई साधुजन ही इसको समझ कर इसका विवेक कर सकता है। इसी घट के भीतर समस्त आकाश को बताया गया है। गगन की गति के अनुसार साधुजनों ने उसका भिन्न-भिन्न नाम बताया है॥

---

१. मु० दे० प्र० की पुस्तक में कड़ी ८ में 'गुप्त निज' की जगह 'मुक्ति कर' छपा है (जो कि ठीक नहीं हो सकता क्योंकि वहाँ नाम पंद्रहवें गगन का है)।

कई साधु इतने तत्त्वों का जब ज्ञान कर लेता है तो वह काल के फँदे में नहीं पड़ता। आगे जो इसके अनुपम भेदों का वर्णन करेगा—वह भ्रमर गुफा में ज्योति स्वरूप समझा जाएगा। मैं अब छः भ्रमर गुफाओं का वर्णन करता हुआ उनके भिन्न-भिन्न भेदों को बता रहा हूँ॥

॥ भँवर गुफा के नाम॥

परथम बेहद नाम सुनइया। भँवर गुफा बिच बास करइया॥
दूसर नाम निरखि निरधारी। तीसर नाम मुक्ति पद प्यारी॥
चौथा नाम उनमुनी स्यामा। सोइ सब जोगिन का बिसरामा॥
पंचम नाम हरी हद सूना। छठवाँ चदर अधर पर धूना॥
छई छर भँवर गुफा दरसाई। तुलसी नैन नजरि में आई॥
आगे भाखौं भेद निहारा। छै त्रिकुटी घट माहिं सिहारा॥
जा कौ नाम ठाम दरसाऊँ। भिनि भिनि भाव भेद समझाऊँ॥

अर्थ—भ्रमर गुफा का प्रथम नाम 'बेहद' सुना गया है—वह भ्रमर गुफा के बीच निवास करता है। दूसरा भेद 'नरधारी' नाम से समझो। तीसरा नाम 'प्रिय' मुक्तिपद है। चौथा नाम भेद श्यामल उनमनी है—वही सम्पूर्ण योगियों के लिए विश्राम स्वरूप है। पाँचवाँ नाम (भेद) हरीहद शून्य है। छठाँ 'चंदर है—जिसका स्थल ओष्ठ है। छठाँ भँवर गुफा में 'छर' के रूप में दिखाई पड़ता है—तुलसी साहब कहते हैं कि वह निरन्तर दृष्टि में आती रहती है।

घट के भीतर स्थित छः त्रिकुटियों का वर्णन करता हूँ आगे मैं उनके भेदों को देखकर वर्णन कर रहा हूँ। मैं इन त्रिकुटियों का नाम तथा स्थान बताऊँगा और उनके भिन्न-भिन्न भाव भेदों को भी समझाऊँगा॥

॥ त्रिकुटी के नाम – चौपाई॥

प्रथम कहौं रुकमन्दर नाऊँ। काल कौ चक्र फिरै तेहि ठाऊँ॥
दूसर बली बिजै बल सोई। षटदल कँवल फूल जहँ होई॥
तीसर नाम मुकर मनि जोई। मन बुधि निद्रा से सुख सोई॥
चौथा नाम सब्दनी होई। नौ नाड़ी सुपने दे सोई॥
पंचम नाम गोमती गाऊँ। अठदल कँवल फूल तेहि ठाऊँ॥
हंसमुखी छठवीं कर नामा। हंस बिहंग बसै तेहि ठामा॥

अर्थ—प्रथम त्रिकुटी का नाम एकमन्दर है। उस स्थान पर काल चक्र विचरण करता रहता है। दूसरे का नाम बली है जो अपने विजय बल से युक्त है तथा उसके पास ही घट दल कमल पुष्प स्थित है ॥ १ ॥

तीसरे का नाम 'मुकुरमणि' है, जहाँ मन और बुद्धि निद्रा में सुखपूर्वक सोते रहते हैं। चौथी त्रिकुटी का नाम शब्दनी है—वह नौ नाड़ियों को स्वप्न में रखकर सोती रहती हैं। ॥ २ ॥

पाँचवाँ नाम गोमती है, उस स्थान पर अष्ट दल कमल फूल के रहता है। छठें का नाम हंस मुखी है—उस स्थान पर 'हँस पक्षी' निवास करते हैं॥ ३ ॥

॥ दोहा॥

छै त्रिकुटी बिधि बिध कही, दृग निज नैन निहार।
तुलसिदास घट भीतरे, देखि कही सब सार॥

अर्थ–जैसा विधिपूर्वक बताया गया है, उस प्रकार की छः त्रिकुटियों का वर्णन अपने नेत्रों से देखकर किया है। तुलसी साहब कहते हैं कि इन सबके सार तत्त्वों को इस पिंड के भीतर देखकर उनका वर्णन करते हैं॥

॥ चौपाई ॥

त्रिकुटी छई नाम निज गाया। तुलसी भिन भिन भेद लखाया॥
जोगी जीत रीत कोई जानै। त्रिकुटी चढ़ै भेद पहिचानै॥
आगे सतमत द्वार लखाऊँ। सुकिरत सेत द्वार दरसाऊँ॥
जौन दिसा सुकिरत है भाई। तौन दिसा सत द्वार लखाई॥
अष्ट कँवल दल दरपन माईं। नाभि सेत नल मध के ठाईं॥
नल नागिनि करि बैठी भेषा। जीव भखन वो करै अनेका॥
पुनि सरवर तेहि पास बिराजै। ता पर बैठि सभा बहु गाजै॥
तेहि सरवर जल नीर अपारा। जीव उतरि कोइ जाइ न पारा॥
कौन दिसा नागिनि रस रूखा। कौन दिशा सरवर रहै सूखा॥
अभि अंतर सुकिरत सत बासा। करिया कँवल में काल निवासा॥
अष्ट कँवल नागिनि रस रूखा। सरवर बिरह कँवल में सूखा॥
यह सत रीति द्वार दरसाई। अब मैं कहौं सुनो तुम भाई॥
आगे तरवर भेद अपारा। चारि बिरछ पर सुरति सम्हारा॥
जीव पैठि सोइ मारग पावै। गगन कँवल भीतर चलि आवै॥
उलटै चक्र सुन्न में धावै। सिध साधक जहँ ध्यान लगावै॥
बिरछ चारि सोइ कहौ बुझाई। जाकर नाम ठाम गति गाई॥
जहँवाँ कागभसुण्ड कहु काला। बट पीपर पाकरी रसाला॥
कागभसुण्ड काया के माईं। तन मन बिरछ संत समझाई॥
बिरछा ऊपर तालबिराजै। निरखत काल कला सब भाजै॥

अर्थ–मैंने अपनी छः त्रिकुटियों के नामों का वर्णन किया है और उनके भिन्न-भिन्न भेदों को दिखाया। कोई योगी ही इस संसार की जीत की रीति को जानता है, तो वही त्रिकुटी पर चढ़कर उनके भेदों को समझेगा॥

आगे सतमत का द्वार दिखाऊँगा–ये सुकीर्ति के द्वार हैं। हे भाई जिस दिशा में जिस दिशा में वह सुकीर्ति है–उसी दिशा में 'सत' द्वार हैं॥

जहाँ अष्ट दल कमल दर्पण की भाँति हैं–वह स्थान नाभि के श्वेत नाम से मध्य में है। उसी नाल में नागिन वेषबदल कर बैठी है–जो अनेक जीवों का भक्षण कर लेती है॥

पुनः उसके पास एक सरोवर है–वहाँ बैठकर आत्मनिष्ठ अनेक सभाएँ करता है। उस सरोवर का जल अगाध है–उसको पार करके कोई जीव जा नहीं सकता॥

किस दिशा में नागिन रस से रुष्ट रहती है, किस दिशा में सरोवर सूखा रहता है। उस सरोवर के मध्य में सुकीर्ति धर्मी सत् निवास करते हैं। काले कमल में यहाँ काल निवास करता है॥

अष्ट कमल में नागिन रसरुष्ट रहती है–सरोवर कमल के वियोग में सूखा रहता है। मैंने इस 'सत' रीति का द्वार दरसाया है–अब आगे जो मैं कहता हूँ, हे भाई! तुम सुनो॥

उस सरोवर के आगे वृक्षों के अनेकभेद हैं–इनमें से चार वृक्षों पर सुरति संभली हुई है। जीव वहाँ प्रवेश करके आगे का मार्ग प्राप्त करता है और वह (आगे) गगन कमल के भीतर प्रवेश कर जाता है॥

यह चक्र उलटकर शून्य में चक्कर लगाता है (दौड़ता है) और वहाँ सिद्ध एवं साधक ध्यान लगाते हैं। वहाँ स्थित उन चार वृक्षों के विषय में मैं समझा कर कहता हूँ–मैंने स्वयं वहाँ जाकर उनके नाम, स्थान तथा स्वरूप ज्ञान का गान किया है॥

जहाँ कुछ समय तक कागभुशुण्डि रहे हैं–वे वट, पीपल, पाकर एवं आम्रवृक्ष हैं। कागभुशुंडि की काया के मध्य में तन, मन एवं वृक्ष तीनों को सन्तों ने समझाया है।।

इस वृक्ष के ऊपर एक एक सरोवर शोभित है–और उसे देखते ही काल की सम्पूर्ण कलाएँ भागकर (तिरोहित हो) जाती है।

॥ सोरठा ॥

बिरछा ऊपर ताल, जहाँ काल करकै नहीं।
तुलसी संत दयाल, दिया भेद भिनि भिनि लखा॥

अर्थ–चारों वृक्षों के ऊपर सरोवर है, जहाँ काल हिल नहीं सकता (करके नहीं)। तुलसी साहब कहते हैं कि दयालु संतों ने यह भेद दिया (बताया) है, उसे भिन्न-भिन्न रूपों में देखा भी है॥

॥ कहेरा ॥

सखी री बिरछ पै ताला, जहँ करकै न काल।
बिरछा के जड़ नहिं पाती, वा की ढुरि ढुरि[१] डाल॥ टेक॥
सर मैं सुरति न्हवावई, कागा किये हैं मराल।
संतों पंथ पिया पाये, गुरु भये हैं दयाल॥ १ ॥
अठमें अटारी माहीं, परे सुनि पिया हाल।
हरखा बंक सुर नाला, चढ़ी चट चट चाल॥ २ ॥
सुरति गगन घन छाई, पिया परे परे ख्याल।
तुलसी तरक तत तारी, भारी काटी भ्रम जाल॥ ३ ॥

अर्थ–हे सखी! इन वृक्षों के ऊपर एक सरोवर है–जहाँ काल भी हिलडुल नहीं सकता। इस वृक्ष की न जड़ है, न पत्ता है–उसकी झुकी-झुकी डालियाँ हैं॥ १ ॥

इसी सरोवर में मैंने सुरति को स्नान कराया, इसने इस काग शरीर को हंस बना दिया। संतों के इस मार्ग पर मैंने पति आत्मब्रह्म को प्राप्त कर लिया–मेरे गुरु कितने दयावान् हो गए॥ २ ॥

आठवीं अंटारी पर मेरी आत्मा का समाचार सुनो। उसमें जाने पर बंक नाल हर्षित हो उठा और आत्मा आगे चटाचट चाल से चढ़ती गई॥ ३ ॥

सुरति में शून्याकाश की गहन छाया छा गई और मेरे पति (आत्म ब्रह्म) उसी में अनुरक्त है। तुलसी साहब कहते हैं कि तत्काल ही उस परम तत्त्व ने उनके भारी भ्रमजाल को काटकर मुझे मुक्त कर दिया॥ ४ ॥

---

१. झुकी हुई।

॥ सोरठा ॥

कहों अब बिधि बरतंत, संत कहनि मन मत गही।
लही जो तुलसी अंत, ज्ञान चक्र चित चेति कै॥

अर्थ–मैं अब विधिपूर्वक समस्त वृतान्त (बरतंत) का वर्णन करता हूँ क्योंकि मेरी मति 'सत' कहने के प्रति प्रतिबद्ध हुई है। चित्त में ज्ञान चक्र को समझकर तुलसी साहब ने जो कुछ कहा है, वही उनकी परमार्थ ज्ञान की प्राप्ति का अन्तिम सत्य है॥

॥ चौपाई ॥

अब सोई बिधि बरतंत सुनाऊँ। राह रीति मन मत दरसाऊँ॥
मन मत चक्र घेर के मारा। ज्ञान चक्र जब जीव सम्हारा॥
काल मारि मुख फेरि चलावै। काल भागि त्रिकुटी में आवै॥
जीव सब्द गहि खेदि चलाई। अधर कँवल बिच काल छिपाई॥
भर्म चक्र जब काल चलावा। भरमित जीव भरम जब आवा॥
संसय सोग जीव उपजाई। साहेब सब्द बिसरि गयो भाई॥
भगिया जीव गगन मग माहीं। यहे कोइ काल गहैगो नाहीं॥
जीव वहाँ से निसरि पसाई। नाल बंक में जाइ समाई॥
बंकै नाल काल गति लइया। जीव भागि आगे चलि गइया॥
परम कँवल में जीव छिपाना। वहाँ काल जो जाइ समाना॥
सोला गगन जीव फिरि आई। तहाँ काल पुनि खेदत धाई॥

अर्थ–अब मैं उसी प्रकार वृत्तान्त सुनाता हूँ तथा मन की गति के अनुसार मार्ग तथा इस साधना की प्रणाली का वर्णन करता हूँ। जब से जीव ने ज्ञान चक्र को सम्भाला, तभी से अज्ञान को (मन गति) को चक्र से मार कर नष्ट कर दिया॥

काल को मार कर पुनः मुख दूसरी तरफ करके उस चक्र को चलाया गया। भयवश काल भाग कर त्रिकुटी में छिप गया॥ जीव (अज्ञानी जीव) को पकड़कर पुनः उस पर चलाया गया। अधर कमल के बीच पुनः काल जाकर छिप गया॥

जब काल ने भ्रम चक्र चलाया–भ्रमित जीव, उस समय भ्रमवशित हो उठा। जीव में उस समय संशय योग उत्पन्न हुआ और वह जीव साहेब (परमात्मा) शब्द भूल गया॥

जीव भाग कर पुनः गगन में गाया और बोला इस काल को कोई नियंत्रित करेगा (गहैगो) या नहीं। जीव वहाँ से भागा और नाल बंक में जाकर घुस गया॥

काल की गति ने बंकनाल को भी वश में ले लिया फलतः जीव भाग कर आगे चला गया। परम कमल में जीव जाकर छिप बैठा–वहाँ भी काल जाकर समा गया। सोलह आकाशों में जाकर जीव भागकर लौट आया और वह जहाँ-जहाँ गया, वहाँ वहाँ काल उसे खदेड़ता रहा॥

॥ सोरठा ॥

सोला गगन मँझार, जीव काल खेदत फिरै।
बूझै बूझनहार, घट निहारि अंदर लखै॥

अर्थ–सोलह आकाशों के मध्य में जीव को काल खदेड़ता फिरता रहा। अपने घट के अन्दर देखो, इसे समझो, कोई बूझने वाला ही इसे बूझता है॥

॥ चौपाई ॥

वहाँ जीव कोइ बचन न पावै। रहस नाल जिव पैठि समावै॥
वहँ कहुँ काल सुनन जब पावै। समाधान होइ काल सिधावै॥
रहस नाल से भागि पराई। भँवर गुफा में जाइ छिपाई॥
आपै काल ध्यान धर कीन्हा। अपनी सुरति गुफा में दीन्हा॥
सूरति जीव काल पर आवै। काल आप पर ध्यान लगावै॥
अपनी सुरति गुफा में लावै। भीतर सुरति जीव समावै॥
अपना घर बिधि काल न पावै। पीछे काल तहाँ लगि धावै॥
तब लग काल जीव को घेरा। घर सुधि बिन जो फिरै अनेरा॥
धनि वे जीव आप को जानी। उलटि काल को बाँधै तानी॥
जानै जीव जो नाम सहाई। नाम निअच्छर जाइ समाई॥
पुरुष नाम जीव लखि पावै। जीव नाम लखि ब्रह्म कहावै॥
नाम छाँड़ि जग जीव कहाये। भरम भरम भौसागर आये॥
अभि अंतर जिव पैठे जाई। राई के दस भाग समाई॥
अंतर काल बड़ा मग लागा। एक राई का दसवाँ भागा॥
अंतर बड़ा जीव को सोका। काल की आँखी तीनों लोका॥
जीव की आँखि पुरुष को देखा। काल दृष्टि जब होय बिसेषा॥
आँखी जीव चकोर समाना। पाँचों करै दृष्टि जस बाना॥
धरती दृष्टि प्रकिरती उद्रा। दृष्टि अकास करै नर मुद्रा॥
तत्त पाँच पाचौ हैं नारी। बचै नाम निज सुरति बिचारी॥

अर्थ–वहाँ कोई जीव बचने नहीं पाता। जीव रहस्य नाल में प्रवेश करके उसी में समा जाता (समावै) है। जब वहाँ स्थित जीव के विषय में सुन पाता है तो सावधान होकर काल चल देता है॥

जीव रहस नाल से दौड़ भागता है और भ्रमर गुफा में जाकर छिप जाता है तब काल स्वयं का ही ध्यान धारण करके अपनी सुरति गुफा में देता है॥

सूरति समाधि में जीव भी काल पर आता है और काल भी स्वयं पर ध्यान लगाए हुए हैं। काल अपनी सुरति गुफा में लगाए हुए है और गुफा के भीतर जीव सुरति ध्यान में खो गया है। विधाता का काल अपना घर यहाँ नहीं पाता–पीछे-पीछे यद्यपि काल यहाँ तक दौड़ा (आया है)॥

तभी तक काल जीव को घेरता है–जब तक अपने घर (भ्रमर गुफा) की याद के बिना अकेला (अनेक) घूमता रहता है। वह जीव धन्य है–जिसने अपने को जान लिया है, वह जानने वाला जीव उलट कर काल को ही कस कर बाँध लेता है॥

अपनी सहायता करने वाले का नाम जीव जब जान लेता है, तब वह उसी अक्षरविहीन नाम में आकर समा जाता है। मनुष्य नाम से जीव की प्रतीति होती है–जीव ब्रह्म का नाम जानकर ब्रह्म कहलाता है॥

ब्रह्म का नाम छोड़कर मनुष्य इस संसार में जीव कहा जाता है और अनेक योगियों में भ्रमण करता हुआ वह भवसागर में रहता है॥ ब्रह्म के अभ्यन्तर में जीव जाकर उस प्रकार बैठ जाता है, जैसे राई (छोटी सरसों) के दसवें भाग में समा गया हो॥

यह एक राई का दसवाँ भाग अपने अन्तर काल में एक लम्बा रास्ता-सा लगता है। इस बड़े अन्तर को देखकर जीव को बड़ा शोक होता रहता है–तीनों लोक तो काल की आँखें हैं॥

जीव की आँखें उस समय पुरुष को देखती रहती हैं क्योंकि अब काल की दृष्टि विशेष हो गई है–वह पुरानी दृष्टि नहीं रह गई है। जीव की आँख में चकोर (प्रभु संसक्ति हो गई) समाविष्ट हो गया और पाँचों इन्द्रियाँ दृष्टि (देखते) जैसा व्यवहार (बाना) करने लगती हैं॥

प्रकृति में आवेग (उद्रा) आ गया, पृथ्वी दृष्टिमती हो गई और यह दृष्टि शून्याकाश में मनुष्य जैसी मुद्रा करने लगी। पंच तत्त्व पाँचों नारी जैसे प्रभु में समर्पित हो उठे और सुरति साधना के बीच केवल नाम ही बच पाता है॥

॥ दोहा॥

काल करै जिव हानि, तुलसीदास तत सम रहौ॥
घट रामायन सार, मथि काया बिच घट कह्यो॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि काल ही जीव की हानि कर सकता है, अतः तत सम (संसक्ति रहित निरपेक्ष) होकर जीवन यापन करो। इस घट रामायण में काया के बीच पिंड को मथकर तत्त्व-चिन्तन किया गया है–(उसे समझो)॥

॥ सोरठा॥

भिनि भिनि कहौं बखान, आदि अंत घट भेद बिधि॥
तुलसी तनहिं बिचार, घट निरखो निज नैन से॥

अर्थ–पिंडभेद के विधियों को आदि से अन्त तक भिन्न भिन्न रूपों में बताया गया है। तुलसी साहब कहते हैं कि शरीर पर विचार करते हुए अपने नेत्रों से इस पिंड को देखो॥

॥ चौपाई॥

आगे घट का भेद बखाना। बतिस नाल घट भीतर जाना॥
नाल भेद बिधि कहौं बुझाई। जिन जानी घट परचे पाई॥

अर्थ–आगे घट में भेदों का वर्णन किया गया है। इस घट के भीतर बत्तीस नाल जानिये। मैं समझाकर नाल भेद विधिपूर्वक कहता हूँ। जिन्होंने इसे जाना, उसे घट का परिचय प्राप्त हो गया।

॥ नाल के नाम – चौपाई॥

प्रथम नाल की बिधी बताऊँ। अभया तेज ताहि कर नाऊँ॥
दूसर रहस नाल जो गावा। चौदल कँवल फूल तेहि ठाँवा॥
कँवल चार दल भँवर उड़ाना। चढ़ि अकास बिधि जाइ समाना॥
कनक नाल तीसर कर नामा। चौंसठ जोगिनि बसै तेहि ठामा॥
चौथी नाल बिकट थिर थाना। कोठा नाल बहत्तर जाना॥
धुन्धर नाल पाँचवीं होई। काल सिंहासन बैठा सोई॥
छठवीं नाल रूपरम नामा। निरगुन रूप बसै तेहि ठामा॥

नाल सातवीं सेत बताई। गन की कला बसै तेहि माईं॥
नाल आठ अभया मत नाऊँ। कामिनि चारि बसै तेहि ठाऊँ॥
नाल मुकरमा नौवीं नामा। द्वादस दूत बसै तहि ठामा॥
हरि संग्रह दसवीं दरसाई। लछमन राम बसै जेहि माईं॥
मुक्तामनि एकादस सोई। कलसर दूत बैठ बल जई॥
द्वादस नाल पोहप पट माईं। नभ नल द्वार सब्द गोहराई॥
तेरहीं नाल निकट नट नौली। बचन बिदेह बाक बिन बोली॥
चतुरदसि नाल नटवर नामा। मेघा छपन कोटि बिसरामा॥
पंद्रा गगन नाल निरबानी। झरि झरि चुवै कूप से पानी॥
सोला सुखमनि नाल कहाई। सुकिरत सेत बसै तेहि ठाईं॥
सत्रह नाल अनूप अचीन्हा। अंडा बिदित बिस्व रचि लीन्हा॥
अठारा नाल बिमल सुर जानी। तैंतिस कोटि देव दरबानी॥
उन्निस नाल भँवर मन्दा की। अंडा कुम्भ रहै मन छाकी॥
बिसवीं नाल अजोरक माली। सूरत सब्द सेत चढ़ि चाली॥
इक्किस नाल हंसदे नाऊँ। मुक्ता मानसरोवर ठाऊँ॥
बाइस नाल सत अंकित होई। बन अशोक सीता जहँ होई॥
तेइस नाल नगर एक बाटा। जहाँ को जम रोकै नहिं घाटा॥
चौबिस बिषम नाल निजधामा। गुंजै भँवर कंज के ठामा॥
पच्चिस नाल पदम सुर सोई। पचरँग रूप जहाँ नहिं होई॥
छबिस नाल गढ़ गोधर नाईं। अटक पार चढ़ फटक समाई॥
सताइस नाल त्रिकुट पर लंका। जहँ रावन बसै ब्रह्म निसंका॥
अठाइस सेत द्वार दुरबीना। समुन्दर सात पार कोइ चीन्हा॥
उंतिस नाल सिखर पर सैला। अच्छर अंदर अगम दुहैला॥
तिसवीं नाल अधर रस रोकी। जहाँ निरंजन बैठे चौकी॥
इकतिस सुरति कँवल अस्थाना। कोइ सज्जन सत साध बखाना॥
बत्तिस नाल सब्द सुन माईं। मुकर द्वार चढ़ि छूटै झाईं॥
बत्तिस नाली बरन अनूपा। सुर नर मुनि नहिं पाव भूपा॥
ये सब नाल चाल दरसाई। सो सब देखे घट के माईं॥
जिनके नाम ठाम गुन बरना। कहै तुलसी संतन के सरना॥
बत्तिस नाल बरनि समझाई। वाकी मुनि हर एक रहाई॥
बंक नाल है वा को नाँवा। तीनों भवन भेद नहिं पावा॥
घट में बत्तिस नाल बखाना। काया सोध साध कोइ जाना॥

अर्थ–अब मैं प्रथम नाल के विषय में बताता हूँ, उसका नाम अभया तेज है॥ १॥ दूसरे नाल 'रहम' का जो गान करते हैं–उसके स्थान चार दल वाले कमल के फूल पर होते हैं॥ १॥ इसके चार दलों से भ्रमर उड़ते हैं और वे आकाश में चढ़कर विधाता (ब्रह्मा) में प्रवेश कर जाते हैं॥ १२/१॥ कनक नाल तीसरा नाम है–यहाँ चौंसठ योगिनियाँ निवास करती हैं॥

चौथा नाल विकट नाल है। उसका स्थान स्थिर है, और इसमें बहत्तर कोठा नाल हैं। पाँचवीं नाल धुन्धर नाल है और वह काल के सिंहासन पर बैठा हुआ है।

छठी नाल का नाम 'रूपरम' है–और यहाँ निर्गुण रूप का निवास होते होता है। सातवीं नाल मन बताई गई है, उसमें मन की समस्त कलाएँ निवास करती हैं॥

आठवीं नाल का नाम अभयामत है–जिसके पास चार कामिनियाँ निवास करती हैं। नवीं नाल का नाम मुकरमा है, उसके पास बारह दूत निवास करते हैं॥

हरिसंग्रह दसवीं नाल कही गई है–जिसमें राम-लक्ष्मण बैठे हुए हैं। एकादश नाल मुक्तामणि है–जहाँ कलसर दूत बलपूर्वक बैठे हुए हैं॥

हे सखी! बारहवीं नाल पोहप पट है, यह नाल द्वारा आकाश में शब्दों को बुझाता है। तेरहवीं नाल नौली नाम की सन्निकट ही है–यह वचन विदेह एवं वाणी बिना बोली के हो जाया करती है॥

चौदहवीं नाल का नटवर नाम है, जहाँ छप्पन कोटि मेधा (प्रतिभा) विश्राम करती है। पन्द्रहवें नाल का नाम निरवानी है–जहाँ 'उल्टा कूप' का जल झर झर कर चूता रहता है॥

सोलहवीं नाल सुखमनि है–उस स्थान पर सुकीर्ति सेतु स्थित है–सत्रहवाँ नाम अनुपम एवं अचीन्हा है–जहाँ विश्व के समग्र ब्रह्मांड की रचना वर्तमान है॥

अठारहवीं नाल को देवगण 'विमल नाम से जानते हैं–जहाँ तैंतीस करोड़ देवता दरबानी करते रहते हैं। उन्नीसवीं नाल 'भँवर मन्दाकी ' है–जहाँ शरीर एवं पिंड एक होकर रहते हैं॥

बीसवाँ नाल अजोरक माली है–जहाँ सुरति शब्द सेतु तक चढ़, कर पहुँच गए हैं? इक्कसवें नाल का नाम हंसदेव है–वहाँ मुक्ता तथा मानसरोवर दोनों हैं॥

बाइसवीं नाल 'सत अंकित' है–जहाँ अशोक बन में सीता है। तेइसवीं नाल नगर में 'एक बार' है–जहाँ यमराज कोई मार्ग नहीं रोकता। चौबीसवाँ, विषम नाल है–जहाँ उसके धाम में कमल के पास भ्रमर गुंजरित होते रहते हैं॥ पच्चीसवाँ नाल पद्म सुर है–जहाँ पंचेन्द्रियों वाले रूप नहीं होते॥

छब्बीसवें नाल का नाम गोधरगढ़ है–जहाँ खाइयों का अवरोध पार करते ही शून्य द्वार (फटक) में समा जाते हैं। सत्ताइसवीं नाल त्रिकुटी पर है, लंका उसका नाम है– जहाँ रावण ब्रह्म से निर्भय नि-शंक भाव से निवास करता है॥

अट्ठाइसवाँ द्वार श्वेत द्वार है–जहाँ दूरबीन है और वहाँ से सात समुन्दर पार स्थित किसी को पहचान लेता है। उन्तीसवाँ नाम 'शिखर पर शैल' है जो अन्तर बिना अक्षर (नाम का) दुर्लभ तत्त्व है॥

तीसवीं नाल 'अधर रस' के रूप में रोकी हुई है–जहाँ निरंजन ब्रह्म चौकी पर बैठे हुए हैं। इकतीसवीं नाल सुरति स्थान पर है–जिसका वर्णन कई सज्जन या साधुजन ही कर सकता है॥

हे सखी! बत्तीसवें नाल के शब्दों को सुने–वह मुकुट पर लगी हुई झाई की भाँति है–जो उस पर चढ़ने से छूटती है।

बत्तीसवाँ नाल अनुपम वर्णन का है–उसे कोई देवता, मुनि या राजा नहीं पा पाते॥

इन समस्त नालों की अवस्थाओ को मैंने बताया है–इन्हें सभी साधक अपने शरीर के भीतर देखते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि संतों की शरण में रहकर मैंने इनके नाम, स्थान तथा गुणों का वर्णन किया है॥

मैंने बत्तीस नालों का वर्णन करके समझा दिया है। शेष मुनियों द्वारा वर्णित 'एक नाल' अपहृत है। उसका नाम बंक नाल है। तीनों लोकों में उसका रहस्य समझा नहीं जा सका है॥

इस पिंड के अन्तर्गत मैंने बत्तीस नालों का वर्णन किया है कोई साधु ही अपनी काया (पिंड) का शोधन करके इसे समझ सकता है॥

॥ दोहा॥

बत्तिस नाल निहारि कै, तुलसी कहा बिचारि॥
घट घट अंदर देखि कै, साध करै निरवार॥

अर्थ–बत्तीस नालों को देककर तुलसी साहब ने उसे विचार करके बताया है। इन्हें पिंड-पिंड के अन्दर देख करके साधुजन इनका निर्धारण करेंगे॥

॥ चौपाई॥

सत्त बचन साधू परमाना। भीतर भेद सत्त पहिचाना॥
काया खोज नहीं जिन पाया। जाके सदा हिये तम छाया॥
काया खोज किया नहि भाई। सुकदेव रहे भूल के माइ॥
ब्यास जनक नारद नहिं पाई। कथि पुरान आतम गति गाई॥

अर्थ–सत्य वाणी के लिए साधुजन ही प्रमाण हैं। पिंड के भीतर के भेद ही सत्य की पहचान है। जिसने इन तत्त्वों को शरीर में खोजकर नहीं प्राप्त किया–उनके चित्त पर सदैव अंधकार छाया रहेगा॥

हे सखी! जिन्होंने काया में इसकी खोज नहीं की, ऐसे शुकदेव भूल में पड़े रहे। व्यास, राजा जनक तथा नारद ने भी इसे प्राप्त नहीं किया और पुराणों का कथन करते हुए आत्मा के ज्ञान को गाते रहे॥

॥ दोहा॥

ज्ञानी भूले भर्म में, परम हंस ब्रह्मचार।
सास्तर संघ बिचारिया, बहै कर्म की धार॥

अर्थ–परम सिद्ध (हंस) के ब्रह्माचरण को ज्ञानी भ्रम में पड़कर भूल गए। वे उसे शास्त्रों में विचार करते हुए कर्म की धारा में बह गए॥

॥ सुन्न भेद । चौपाई॥

आगे कहो सुन्न बिस्वासा। बिना सुन्न गये जीव निरासा॥
अब निज कहों सुन्न में स्वाँसा। बिना सुन्न जिव काल निवासा॥
सुन्न दिसा बिधि कहौं बुझाई। बूझै साध सुन्न जिन पाई॥
बिरला सुन्न भेद को पावै। सुन्न दीप सोइ सब्द कहावै॥
सुन्न की सोत धुन्न में लागी। धुन की सोत गगन में जागी॥
गगन के ऊपर पवन रहाई। निरगुन पावन भवन के माई॥
निरखि कँवल साधै कोइ साधू। मिटि जाइ काल कष्ट की ब्याधू॥
मूल कँवल के ऊपर देखो। घट में सत्त सब्द ले पेखो॥
अष्ट कँवल ओंकार का बासा। सो निज बूझो काल तमासा॥
षोड्स कँवल को ध्यान लगावै। जोगी करै भेद सोइ पावै॥
पवन जोग- जोगी गति गाई। त्रिकुटी निज धुनि कँवल कहाई॥
मन थिर होइ सुरति ठहरावै। त्रिकुटी कँवल पवन लै आवै॥

देखै अवर पवन हिये माई। चमकै जोति दृष्टि में आई॥
जीव पवन जब चलै अघाई। सेत पवन से मारि चलाई॥
करिया पवन भई बलहीना। नाखौ पवन जीव जब चीन्हा॥
नाखौ पवन भरोसा मोरा। सेत कँवल से बाँधौ डोरा॥
सेत कँवल सुकिरत की होई। सत मत द्वार जानिये सोई॥
सत्त सुकृत की एकै बानी। ताकी गति बिरलै पहिचानी॥
कदली सब्द लाभ जिन देखा। मुक्ति अमी तहँ पियै अलेखा॥
जहाँ निरंजन बसै निदाना। सहस कँवल जोगी बिधि जाना॥
द्वादस आगे इमृत बासा। निगुरा नर सो मरै पियासा॥
सगुरा होइ सोई निज पावै। भर-भर मुख इमृत भल खावै॥
पीवै अमी लोक को जाई। घट भीतर निज खोज लगाई॥
पाँजी खोज हाथ अनुसरई। सो जिव सहजै से भौ सरई॥
झिलिमिल झरै सुन्न के माहीं। गंगा जमुना सरसुति राही॥
गङ्गा जमुना सरसुति होई। तिरबेनी संगम है सोई॥
त्रिकुटी संगम बेनी घाटा। बसै जीव सत पावै बाटा॥
बंक नाल होइ गंगा जाई। जमुना सुन्न गुफा से धाई॥
सरसुति सेत कँवल से आई। मन जोगी बिधि बास कराई॥
गंगा गहै करै असनाना। जमुना दूरि मुक्ति कर थाना॥
तीनौ नदी तीनि हैं धारा। आप आप में देखि निहारा॥
यह तीनौं हैं अगम अपारा। बिरले साधू उतरै पारा॥
तिन में रहै त्रिभवनी घाटा। ब्रह्मा बिस्नु न पावै बाटा॥
संकर जोगो सिद्ध अनूपा। उनहूँ न पायौ आपन रूपा॥
निराकार अभि अंतर भाई। ता का भेद कहूँ समझाई॥
सुरति निरति करि खोजै आपू। सुन्न सिखिर चढ़ि खैंचै चाँपू॥
महि ऊपर ब्रह्मंड की तारी। द्वै पट भीतर सुरति सम्हारी॥
दहिने बाँयें सिला पहारा। जहँ की बाट न कोइ निहारा॥
जहँ सत द्वार बैठ सत यारा। अगम अगाध अजर का द्वारा॥
इमृत पीवें जीव बिचारा। जा से कटै काल की जारा॥

अर्थ—आगे मैं शून्य के विषय में वर्णन करता हूँ। बिना शून्य में प्रवेश के जीव निराश रहता है। अब अपने शून्य में स्थित श्वास का वर्णन करता हूँ। बिना शून्य के जीव का काल में निवास है॥

मैं शून्य की दिशा को विधिपूर्वक समझाता हूँ। जिन साधुओं ने शून्य को प्राप्त कर लिया है, वे इसे समझेंगे। बिरला साधु ही शून्यभेद को समझता है। शून्य दीप में स्थित 'सोऽहम्' शब्द ही 'सबद' के नाम से पुकारा जाता है॥

शून्य का स्त्रोता ध्वनि में लगता है, ध्वनि का स्त्रोत आकाश में जाता है। आकाश के ऊपर वायु है और इस प्रकार मूलभवन में निर्गुण वायु है॥

वहाँ आकाश में कमल देखकर कोई-कोई साधु उसे साधता है और उससे काल कष्ट की व्याधि मिट जाती है। उस कमल के मूल के ऊपर इस पिंड में स्थित 'सत' शब्द को लेकर देखो॥

अष्ट कमल दल में ॐकार का निवास है। उसे काल की क्रीडा समझो। इसके बाद षोड्श कमल का ध्यान लगाओ–योगी जन स्वार्थ तथा परमार्थ में जो भेद करते हैं, वह उसे प्राप्त कर लेता है॥

पवन के योग का ज्ञान योगियों ने गया है। त्रिकुटी के बीच अपनी ध्वनि का श्रवण 'कमल' है। मन को स्थिर करके यहाँ जो सुरति ध्यान को एकाग्र करता है, वह उस त्रिकुटी के बीच कमल-पवन में ले आता है॥

हृदय में आए हुए अन्य पवनों को भी वह देखता है, और उस अपूर्व ब्रह्म की ज्योति दृष्टि में आकर चमकती है। जीव पवन जब सन्तुष्ट (अघाई) हो जाए तो उसे श्वेत पवन से मार कर चला देना चाहिए।

करिया पवन जब बलहीन हो उठता है, तब नाखाँ पवन को जीव पहचानने लगता है। यही नाखाँ पवन मेरा विश्वसनीय भरोसा है, यही श्वेत कमल से डोरी बाँधकर एकतान करता है॥

श्वेत कमल सुकीर्ति से सम्बद्ध है और वही 'संत' मत का द्वार है–संत द्वार एवं पुण्य की एक ही भाषा है, उसका ज्ञान कोई विरला साधु ही जानता है॥

कदली वन में जिन्होंने 'शब्द' का लाभ पाया है–वहाँ साधु अलक्ष्य मुक्ति रूपी अमृत का पान करता है। जहाँ केवल (निदाना) निरंजन निवास करते हैं, वहाँ सहस्त्रार कमल है–जिसे योगी विशेष योगविधि से जानते हैं॥

द्वादश कमल के आगे अमृत का वास है। गुरुविहीन व्यक्ति यहां प्यास से मरता रहता है। जो सतगुरु के साहचर्य में होगा, वही, निजत्व को प्राप्त करेगा–और वह मुख में पवित्र अमृत भर-भरकर खाता रहता है॥

वह अमृत पीकर मुक्ति लोक को जाता है–(यह वह है) जिसे इसी घट के भीतर उसकी खोज की है। जो अमृत (पाँजी) की खोज में निरन्तर हाथ फैलाए रहता है, वह जीव सहज भी भवसागर तर जाता है॥

शून्य गगन में झिलमिलाता हुआ, वह झरता रहता है–'गंगा, यमुना' एवं सरस्वती का योगी राही है। जहाँ गंगा, यमुना एवं सरस्वती है–वही त्रिवेणी का संगम है॥

त्रिकुटी में संगम की त्रिवेणी का घाट है–सत जीव वहाँ निवास करके मुक्ति मार्ग प्राप्त करता है। बंकनाल से होकर गंगा जाती हैं और शून्य गुफा में यमुना दौड़ती (बहती) रहती हैं॥

सरस्वती श्वेत कमल में आती हैं–योगी अपने मन को विधिपूर्वक वास कराता है। गंगा को ग्रहण करके उसमें समान करोष यमुना तो दूर से ही मुक्ति की स्थान है॥

तीनों नदियाँ तीन धाराएँ हैं और इन्हें अपने-अपने पिंड में निहार कर देखो। ये तीनों अगम्य और अपार हैं, विरले साधुजन ही इन नदियों के पार उतरते हैं।

इन तीनों त्रिभवनी घाट है–जहाँ ब्रह्मा तथा विष्णु भी मार्ग नहीं प्राप्त करते। शिव तथा अन्य अनूप (विलक्षण) योगिजन ने भी अपने स्वरूप को वहाँ समझ नही पाए या देख नहीं पाये॥

हे भाई! वह सब निराकार रूप में अभ्यन्तर में वर्तमान है, उनका भेद मैं समझाकर कहता हूँ। सुरति एवं निरति ज्ञान द्वारा स्वयं खोज करो और शून्य शिखर पर चढ़कर धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाओ॥

वहाँ पृथ्वी के ऊपर ब्रह्मांड की ताली (तारी) है और दो कपाटों (पट) के भीतर सुरति ज्ञान सम्हाली हुई है–उसके दाहिने बाएँ पत्थर की शिलाएँ तथा पहाड़ हैं–जिसमें स्थित मार्ग कोई नहीं देख पाता॥

उस अगम्य, अगाध, अमरणधर्मा के शत द्वार पर जहाँ 'सत' में समाविष्ट योगिजन (यारा) बैठे हैं। वहीं यह बेचारा जीव अमृत पान करता है; जिससे काल का जंजाल (जारा) कट जाता है॥

॥ दोहा॥

जोग बिधी बेनी कही, सुन्न जोग बिधि गाइ।
काल कला परचंड यों, ठग ठग सब को खाइ॥

अर्थ– योग विधि से त्रिवेणी बताई गई है, और वहीं शून्य योग विधि भी गाकर बताई गई है। काल की प्रचंड कलाएँ इस प्रकार (जो इनके ज्ञान से अपरिचित हैं) ठग-ठग कर सबको खाती रहती है॥

॥ चौपाई॥

अब बेनी संतन की गाऊँ। या से भिन्न भेद दरसाऊँ॥
संतन की बेनी बिधि न्यारी। तुलसी भाखी देख निहारी॥
अगम द्वार बेनी असनाना। सो बेनी संतन की जाना॥
मंजै जोइ अगम गति जानी। वह प्रयाग सब संत बखानी॥

अर्थ–अब संतों की त्रिवेणी का वर्णन करता हूँ। पूर्व कथित त्रिवेणी से भिन्न उसके भेद का वर्णन करता हूँ। संतों की त्रिवेणी प्रक्रिया विलक्षण है। तुलसी साहब कहते हैं कि उनको मैंने भलीभाँति निहार कर देख लिया है॥

अगम द्वार पर त्रिवेणी का स्नान है, वही सन्तों की त्रिवेणी समझो। जो उस अगमन की गति जानता हैं, वही वहाँ स्नान करता है, उस प्रयाग का वर्णन सारे सन्तगण करते हैं।

॥ सोरठा॥

तुलसी अगम अपार, जहँ बेनी मंजन कियौ।
सतगुरु पदम प्रयाग, करि अगाध गति जिन कही॥

अर्थ–जहाँ त्रिवेणी में स्नान किया,वह अगम्य तथा अपार है–मेरे सद्गुरु ही मेरे पद्म प्रयाग हैं। जिन्होंने प्रयाग की अगाध गति का वर्णन किया है॥

॥ चौपाई॥

अब तेहि राह रीति दरसाऊँ। भिनि भिनि पंथ मता गति गाऊँ॥
सरगुन से निरगुन बिधि बानी। भिनि भिनि राह रीति सब छानी॥
परथम दृग दुरबीन लगावै। मन चित सुरति ताहि पर छावै॥
देखै ता के बीच मँझारा। जगमग जोति होत उजियारा॥
निरखा निरगुन पुरुष निहारा। जहवाँ सुनै सब्द झनकारा॥
सेत दीप जिव पहुँचै पारा। कोटिन काल भये जरि छारा॥

अर्थ–अब मैं उस मार्ग की रीति का वर्णन करता हूँ–इससे जुड़े भिन्न-भिन्न पंथ और मतों की गति का गान कर रहा हूँ। सगुण ब्रह्म से निर्गुण ब्रह्म की व्याख्या भिन्न है– उनके भिन्न मार्ग हैं तथा रीति अलग-अलग कही गई हैं॥

सर्वप्रथम अन्तः दृगों में दूरबीन लगाओ और साधक के मन, चित्त एवं स्मृति उस पर छा जाए। तब उसके मध्य उस ज्योति को देखें–जिसमें ज्योति जगमगा रही है–उजाल हो रहा है॥ २॥

वहाँ न्यारा निर्गुण पुरुष को मुक्त साधक ने देखा, और वहाँ अनाहद नाद की झंकार का शब्द सुने। जीव संतों के द्वीप में उस पर पहुँचता है–जहाँ कोटि-कोटि काल जल कर छार हुए हैं॥ ३॥

॥ दोहा ॥

निरगुन ज्ञान बिचारिया, सुरति राखिये पास।
तुलसीदास जहँ बासकर, जीव न जाइ निरास॥
घट रामायन सार, यह घट माहिं घटाइया।
घट का मथन बिचार, भिन्न भिन्न करि डारिया॥

अर्थ–सुरति को अपने पास रखकर उसके द्वारा निर्गुण ज्ञान को देखें। तुलसी साहब कहते हैं, वहाँ निवास करो–जहाँ उसके पास कोई जीव न जा सके॥

यह घट रामायण का सार तत्त्व है और इसे घट रामायण पर घटाया गया है–इस घट के विचार मंथन ने इसके स्वरूप को भिन्न-भिन्न कर डाला है।

॥ सोरठा ॥

निरगुन निरखि निहारि, ता से गुरुपद भिन्न है।
चौथे पद जद जाइ, पद प्रयाग सतगुरु लखै॥

अर्थ–निर्गुण ब्रह्म को भलीभाँति निरख कर देखो, सदगुरु उससे भिन्न है यदि चौथे पद पर पहुँचों तब सतगुरु का चरण रूपी प्रयाग दिखाई पड़ेगा॥

॥ दोहा ॥

तीन लोक के माहिं, निरगुन सरगुन रचि रह्यौ॥
सतगुरु इनके पार, सो तुलसी घट लखि परयौ॥

अर्थ–तीनों लोकों के बीच में निर्गुण तथा सगुण रचा हुआ है–सतगुरु इनके उस पार है और वही (सतगुरु) घट (पिंड) के भीतर भी दिखाई पड़ता है।

॥ छन्द ॥

घट भीतर जानी आदि बखानी। सुरति समानी सब्द मई॥
देखा निज नैना कहौं मुख बैना। सत्त नाम का मर्म यही॥ १॥
नहिं राम अरु रावन यह गति पावन। अगुन सगुन गुन नाहिं कही॥
कहि अकथ कहानी अगम की बानी। बेद भेद गति नाहिं लई॥ २॥
सुर नर मुनि ज्ञानी उनहुँ न जानी। पँडित भेष सब कहैं कही॥
तुलसी मत भारी यह गति न्यारी। बूझैंगे कोई संत सही॥ ३॥

अर्थ–इस पिंड के भीतर आदि तत्त्व समाया हुआ कहा जाता है, और सुरति ज्ञान उसमें शब्द बनकर छिपा हुआ है। मैंने उसे अपने नेत्रों से देखा है, मुख-वाणी से कहता हूँ–यही सत्यनाम का मर्म है॥ १॥

यह राम और रावन नहीं है, यह अध्यात्म की पवित्र गति (ज्ञान) है–इसे अगुण, सगुण एवं गुण रूप नहीं कहा गया है। इसकी कथा अकथ्य है, यह अगम्य वाणी है, वेद ने इस भेद के लक्षणों को नहीं माना है॥ २॥

देवता, मुनि, ज्ञानी मनुष्य आदि ने उसके ज्ञान को नहीं समझा है। नाना भेषधारी पंडितजन भी जो कहा गया है, उसी को ही कहते हैं, तुलसी साहब कहते हैं कि यह मत सर्वाधिक भारी (गम्भीर) है, उसका ज्ञान विलक्षण है, उसे कोई संतजन ही सही-सही समझेंगे॥ ३॥

॥ सोरठा ॥

आदि अंत का भेद, तुलसी तन भीतर लखा।
सुरति सब्द परकास, ज्यों अकास सर सैल करि॥

अर्थ–उसके आदि और अन्त के रहस्य को तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने पिंड के भीतर देखा है– जैसे शून्याकाश सरोवर एवं पर्वत है, ठीक उसी प्रकार सुरति शब्द का प्रकाश है। हे सन्तगण! आप लोग उसका आनन्द लें।

॥ चौपाई ॥

अब सुनु भेद कहों अनुसारा। लेकर ज्ञान बान भ्रम जारा॥
ज्ञान रतन की आँखी होई। जब जम जाल देखिये सोई॥ १॥
सत मत गत अभि अंतर देखै। तत मत अष्ट कँवल में पेखै॥
सुरति सुहागिन होइ अगमानी। तुरतै मिली सत्त की बानी॥ २॥
अरध उरध बिच बैठे माधो। तत उनमुनी लगाइ समाधौ॥
तारी उलटि तत्त में लावै। रहस नाल मधि जाइ समावै॥
तुलसी मुद्रा जोग समाधा। आगे भाखों भेद अगाधा॥ ३॥

अर्थ–अब मैं भेदों के अनुसार वर्णन करता हूँ। ज्ञान के गण को लेकर समस्त भ्रमों को जला दिया। ज्ञान आध्यात्मिक रत्न की आँख है। उससे देखना हो तो यम के माया जाल को देखा जा सकता है॥

सत्यमत के ज्ञान को अभ्यन्तर में योगिजन देखते हैं– उस मत को पिंड के अन्तर्गत अष्ट कमल में भी देखते हैं॥ सुरति रूपी सौभागिनी आगे-आगे होकर तुरन्त ही सत्य की वाणी से मिल जाती है॥

अर्ध एवं ऊर्ध्व के बीच ब्रह्म (माधव) बैठे हैं और उन्होंने अपनी उन्मनी समाधि भी लगा रखी है॥

तालु (तारी) को उलटकर तत्त्व को मन में आते हैं और रहस नाल में जाकर समा जाते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि यही समाधि की योगमुद्रा है–आगे उसके अनन्त भेदों का वर्णन करता हूँ॥

॥ दोहा ॥

तुलसी तन के माहि, पंथ भेद साधू सही॥
तत मत तोल अँकाइ, घरघर जाइ जिन जिन कही॥

अर्थ-साधुगण सही कहते हैं कि शरीर के मध्य में अनेक पंथभेद हैं। घर घर जाकर जिन सन्तों ने जो-जो बताया है, उस उस तत्त्व का मूल्यांकन वहाँ किया जा सकता है॥

॥ चौपाई ॥

ये सब काल जाल रस रीती। भौ कृत खान जानि जम प्रीती॥
गगन के मँडल काल अस्थाना। पाँच भूत विधि जाइ समाना॥
पाँच पचीस तीन मन मैला। सब जानौ वा को निज खेला॥
काल जाल जग खाइ बढ़ाया। रिखी मुनी कोइ भेद न पाया॥
उलटा चलै गगन को धाई। ता से काल रहै मुरझाई॥
सतगुरु साहिब संत लखावैं। तब घट भीतर परचा पावैं॥

जो जेइ मूल भेद दरसावै। तब घट में अबिनासी पावै॥
सतसँग भक्ति हृदे बिच आवै। जब सतद्वार अगम लखि पावैं॥
हिरदै सत्त रहै लौ लाई। सब्द द्वार चढ़ि काल गिराई॥
मुक्ति ज्ञान पावै अबिनासी। अगम ज्ञान संग मूल निवासी॥
यह कोइ बिरला साधू पावै। अबिनासी गति अगम लखावै॥
सतगुरु कृपासिंध कोइ जागै। आवा गवन भर्म भौ भागै॥
कीन्ही अगम नाम स्तुति सैला। चीन्हा अगम निगम तिन खेला॥
अधर सिखर पर तंबू तानै। जहँ से देखै सकल जहानै॥
ब्रह्मंड द्वार एक है नाका। गहि दुरबीन सुरति से ताका॥
मकर तार पावै वह द्वारा। ता पर सुरति होय असवारा॥
सुरति जात लागै नहिं बारा। चली सुरति भइ नाम अधारा॥
तब पहुँचै इक्किसवें द्वारा। सुन्न से परे सब्द है न्यारा॥
सुरति सब्द में जाइ समानी। निर सब्दी गति अगम लखानी॥
जहँ नहिं पहुँचै मुक्ति पसारा। सोइ है आदि पुरुष दरबारा॥
मुनि अचार पावै नहिं कोई। सब भौ भर्म रहा जग सोई॥

अर्थ—आध्यात्मिक रस से रिक्त ये सब काल के जाल हैं। ये संसार की भौतिक लोक रचना की खानि हैं और इन सबमें यमराज की प्रीति है, ऐसा जानो॥ शून्याकाश मंडल पर काल का स्थान है और पंचमहाभूत तत्त्व विधिपूर्वक उसमें जाकर समा गए हैं। पंच महाभूत तत्त्व, पच्चीस तन्मात्राएँ तथा तीनों गुणों का मन यहाँ मैला हो गया है—तुम सब यह उसी निर्गुण ब्रह्म का ही खेल समझो॥ काल ने माया जाल को खाकर उसे और बढ़ा दिया—कोई ऋषि, मुनि उसके भेद को न समझ सका॥

जब साधक उल्टीरीति (मनोन्मनी द्वारा) शून्याकाश की ओर दौड़ता है फिर वहाँ काल मुरझा जाता है। साहब सत्गुरु जब मार्ग दर्शन कराते हैं तब पिंड के भीतर स्थित संसार का परिचय होता है। जो भी साधक इस मूल तत्त्व का भेद बताता है तभी इस घट के अन्तर्गत कोई संत अविनाशी तत्त्व (निरंजन-ब्रह्म) का परिचय प्राप्त करता है। जब अगम्य 'सत् ' द्वार दिखाई पड़ेगा, तभी सत्संगति तथा भक्ति हृदय के बीच आएगी॥

यदि हृदय में सत्य की लौ लगाए रहोगे तो शब्द के द्वार से चढ़कर काल को गिरा दोगे (नष्ट कर दोगे)। अगम्य ज्ञान के साथ का मूल निवासी अविनाशी मुक्ति ज्ञान को प्राप्त करता है। इसे कोई विरला साधु ही प्राप्त करता है। सत्गुरु की कृपा-सिन्धु से ही कोई जागृति प्राप्त करता है, वह शून्याकाश में आता है, तब उसका समस्त अज्ञानजनित संसारिक भ्रम भाग जाता है।

नामरूपी सुरति पर्वत को उसने अगम्य बना दिया है किन्तु जिन्होंने उस अगम्य। सुरति ज्ञान (तत्त्व) तथा शास्त्र के ज्ञान तत्त्व को पहचान लिया है, वहाँ वही क्रीड़ा करता है।

अधर-शिखर पर वह तम्बू तानता है और वहाँ से वह सम्पूर्ण जगत को देखता रहता है। ब्रह्मांड द्वार पर एक नाका है- (केन्द्र स्थान) वहाँ से वह सुरति रूपी दूरबीन से ताकता है। उस द्वार पर मकर तार हैं उस पर सुरति सवार होती है। सुरति के चढ़कर जाने में देर नहीं लगती। यह सुरति वहाँ जाकर नाम का आधार बन जाती है। तब इक्कीसवें द्वार पर पहुँचता है, जहाँ शून्य के अनाहत नाद से परे एक विलक्षण शब्द है। जो सुरति ज्ञान में जाकर समा जाता है, उसे शब्दहीन सृष्टि की अगम्यगति दिखाई

पड़ती है। मुक्ति का फैलाव जहाँ नहीं पहुँच पाता, वही आदि पुरुष का दरबार है–कोई भी मुनि इस दरबार का आचरण नहीं जान पाता और इस संसार का सम्पूर्ण मर्म उसी में खोया (विलीन) रहता है ॥

भँवर गुफा मारग चढ़ि देखा। जहँ जिव सत्त सुरत का लेखा॥
सुन्न सुन्न सब करत बखाना। सुन्न भेद कोइ बिरले जाना॥
कहीं बिस्तार सुन्न की जोई। ज्यों गूलर फल कीट समोई॥
फल जेते तेते ब्रह्मंडा। दीप दीप फल फल नौ खंडा॥
सुन्न अंड की करी बखाना। कहै तुलसी कोइ साधू जाना॥

अर्थ–भ्रमर गुफा के मार्ग पर चढ़कर देखा-जहाँ भी सत्य है और केवल वहाँ सुरति का ही तत्त्व (लेख) है। शून्य-शून्य सभी कहते हैं किन्तु शून्य का भेद कोई बिरले ही जानते हैं।। अब विस्तारपूर्वक शून्य जो है उसका अर्थात् शून्य का वर्णन करता हूँ। मनुष्य शून्य में उसी प्रकार सन्निहित है, जैसे गूलर फल में कीट। गूलर में जितने फल हैं, उतने ही ब्रह्मांड हैं फल ही सारे द्वीप है और वही द्वीपों के नवखंड हैं। उसी क्रम में मैं शून्य में स्थित अंड (पिंडों) का वर्णन करता हूँ तुलसी साहब कहते हैं, इसे कोई साधु-जन ही जानता है॥

॥ सोरठा॥

तुलसी सुन्न निवास, सब्द बास जिन घर किया।
जिमि गूलर फल तासु, जग भिनि भिनि जेहि लखि परा॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि शब्द मूल के निवास को जिसने अपना घर बना लिया है, उसी का निवास शून्य में है–जैसे गूलर के फल जिन्हें-भिन्न-भिन्न जैसे भी लख पड़ा हो॥

॥ छन्द॥

भये सुन्न निवासी सब सुख रासी। सुरति बिलासी सब्द मई॥
अनहद हद पारा अगम अपारा। अमी सिंधु स्त्रुति जाइ लई॥ १॥
देखा उँजियारा घट घट प्यारा। निरखि निहारा पार कही॥
तुलसी तुल जावै दस दिस पावै। सिंध फोड़ि अस्मान गई॥ २॥

अर्थ–शून्य निवासी साधु सभी सुखों की राशि बन जाते हैं, वे सुरति ज्ञान के विलासी तथा अनाहत शब्द मय हैं। इस अनाहत नाद के पार अपार और अगम्य अमृत सिंधु है–जिसे सुरति में जाकर प्राप्त करता है॥ १॥

चारों ओर घट-घट में प्यारा उजाला देखा उसे देखकर, दूर कहीं उसके पार देखा। तुलसी साहब कहते हैं कि उसके पास (तुल) जाकर दसों दिशाओं को प्राप्त करता है–लगता है, यह मनोन्मनी सिन्धु को फाड़कर आकाश में पहुँच गई है॥ २॥

॥ दोहा॥

सुन्न महल अजपा जपै, समुँद सिखरि के पार।
टूटी गगन गिरा भई, सत्त सब्द झनकार॥
त्रिकुटी टाटी टूटि कै, सुन्न अंड भिनि बास।
घट भीतर परिचय भई, देखा अजर निवास॥

अर्थ–समुद्र के शिखर के पार शून्याकाश में साधु का महल है और साधु जन यहां अजपाजाप करते रहते हैं। यह शून्याकाश भी जब टूट जाता है, साधक की वाणी 'सत्य' शब्द की झंकार (झंकृति) बन जाती है।

इस सिद्धावस्था में त्रिकुटी के टट्टर टूट कर शून्य पिंडाकाश में विचित्र सुगंधि से सुवासित (भिनि) हो जाते हैं। इस घट के भीतर उस निरंकार से परिचय हो जाता है–इस प्रकार मैंने उस अजिर ब्रह्म का निवास देखा है॥

॥ कँवल भेद॥ चौपाई॥

घट में सोधि कँवल जिन गाई। लखै कँवल बिरला कोइ भाई॥
अंकुर उतपति कँवल मँझारा। सत्त नाम पद तिनके पारा॥
ऊँच नीच परबत बिच बाटा। काल जहाँ रोकै नहिं घाटा॥
ता के दहिने मारग माई। दामिनि पाँच छेकि नियराई॥
देवै दानी दान चुकाही। पावै जीव अगम की राही॥
दानी कहै जीव सुनि बाता। बिना दान करिहौं मैं घाता॥
जब जिव कहै समझ सुन भाई। करौ घात केहि कारन जाई॥

अर्थ–इसी पिंड में अन्वेषण करके जिन्होंने कमल का वर्णन किया है, (वैसा वर्णन) कोई बिरला बंधु ही कर सकता है। 'सत्तनाम' जिनके वश (पारा) में है, वे ही जानते हैं कि कमल के मध्य में अंकुर की उत्पत्ति होती है। ऐसे जन, ऊँचे-नीचे पर्वत के बीच अपना सिद्धि मार्ग पा जाते हैं और वहाँ काल घाट नहीं रोकता॥ हे सखी! उसी के दाहिने मूल मार्ग है, और वहाँ समीप आते ही पाँच बिजलियाँ रास्ता रोक लेती हैं। यहाँ दानी साधु सर्वस्व दान चुकाकर, (वह जीव) अगम्य की राह प्राप्त करता है। दानी कहता है कि हे जीव! मेरी बात तो सुनो–मैं बिना दान के घात करूँगा। तब जीव कहता है कि हे भाई सुनो, किस कारण वहाँ जाकर घात करोगे?

॥ भेद पिंड और ब्रहाण्ड का॥

अंतर गुफा तहाँ चलि जाऊँ। जहँ साहिब के दरसन पाऊँ॥
पाँचौ नाम जीव जब भाखा। छठवाँ नाम गुप्त करि राखा॥
पाँचौ नाम काल के जानौ। तब दानी मन संका आनौ॥
निरगुन निराकार निरबानी। धर्मराय यों पाँच बखानी॥
जीव नाम निज कहै बिचारी। जानि बूझि दानी झख मारी॥
जाव जीव यह राह तुम्हारी। हम नहिं रोकैं बात बिचारी॥
पोचं पाँच हमहूँ सुनि पाई। हम नहिं निकट तुम्हारे आई॥
पोचं चोर रहे अलगाई। होइ निरभै जिव आगे जाई॥
आगे सात सुमेर उँचाई। नौ नाटक तापर रहैं भाई॥
नौ नाटक पूछन चले आगे। कहौ जीव केहि मारग लागे॥
हम यहि घाट बाट रखवारी। यहाँ न अदली चलै तुम्हारी॥
कहै जीव दृग दानी भाई। हम चलि जाइ नाम चित लाई॥

दानी दान चुकावौ आई। जब यहि बाट निभन तुम पाई॥
केहि कर अंस कहाँ तुम जाई। बात आपनी कहौ बुझाई॥
कहै जीव सतलोक निवासा। मैं चल जावँ पुरुष के पासा।।
दानी कहै दूरि है भाई। अगम पथ कैसे निभ जाई॥
कौन नाम मारग को जाई। कौन नाम से उबरै आई॥
इतना भेद कहौ समझावा। बाट जीव जब घर की पावा॥

अर्थ–जहाँ अन्तर्गुफा है, वहाँ चला जाकर साहिब (निरंकार ब्रह्म) का दर्शन प्राप्त करूँगा। जब जीव ने पाँचों नाम बताना शुरू किया तब अन्त में उसने छठाँ नाम गुप्त कर रखा। ये पाँचों नाम काल के ही समझो। इसे सुनकर उस धर्मनिष्ठ (यानी – दान देने वाले) के मन में शंका हुई। धर्मराज यम ने केवल निर्गुण, निराकार एवं वर्ण विहीन आदि पाँच की चर्चा की है, जीव ने अपने उस अलेख नाम का वर्णन नहीं किया–और तब वह धर्मनिष्ठ जानबूझकर मुखमार कर बोला–हे जीव! जाओ, यह वह तुम्हारी राह है, बिना समझे-बूझे हम तुम्हारी राह नहीं रोकेंगे।

पाँचों चोर (पंच महाभूत तत्त्व) उस जीव से पृथक् हो गए और निर्भय होकर जीव आगे बढ़ा। आगे सात पर्वतों का ऊँचा शिखर हैं, हे भाई। उस पर नौ पगडंडियाँ हैं–नौ पगडंडियों को वह जीव पूछने चला–तो उत्तर मिला! हे जीव! जाओ, यह तुम्हारी राह है, बिना समझे-बूझे हम तुम्हारी राह नहीं रोकेंगे।

पांचों चोर (पंच महाभूत तत्त्व) उस जीव से पृथक् हो और निर्भय होकर जीव आगे बढ़ा। आगे सात पर्वतों की ऊँची शिखाए हैं, हे भाई! उस पर नौ पगडंडियां हैं–नौ पगडंडियों को वह जीव पूछने चला–तो उत्तर मिला! हे जीव–तुम किस मार्ग से लगोगे या चलोगे। मैं इन घाटों-बाटों का रखवारा हूँ–यहाँ पर तुम्हारी अदला-बदली नहीं चलेगी।

जीव कहने लगा, हे दृष्टि प्रदान करने वाले भाई! हम तो चित्त में नाम लेकर चलते रहे हैं। धर्मनिष्ठ (धर्मराज यमराज) ने कहा हे भाई दानी, जब तुम आकर यहाँ दान चुकाओ, तभी इस मार्ग से तुम्हारा निस्तार होगा। तुम किसके अंश हो, तुम कहाँ जा रहे हो, अपनी बात तुम समझा कर कहो।

जीव ने बताया कि उसका निवास 'सत् लोक' में है और मैं उस निरंकार पुरुष के पास चलकर जाना चाहता हूँ। धर्मनिष्ठ बोला, वह तो बहुत दूर है, उस तक पहुँचने का मार्ग अगम्य है, तुम्हारा पहुँचना वहाँ कैसे हो सकेगा? उसका नाम क्या है। उसका मार्ग क्या है, जब वह इन सारे भेदों को बता सका, तभी उस जीव को अपने घर का मार्ग प्राप्त किया॥

॥ जीव वचन। चौपाई॥

दानी सुनु बिधि बात हमारी। हम चलि जाइँ पुरुष दरबारी॥
सुरति निरति लै लोक सिधाऊँ। आदि नाम लै काल गिराऊँ॥
सत्त नाम लै जीव उबारी। अस चल जाऊँ पुरुष दरबारी॥
इतना बचन कही दिल सूना। बहुत त्रास लै मन में गूना॥
तुम मारग जावो जिव अपने। हम तुमको रोकैं नहिं सुपने॥
चले जीव आगे पग दीन्हा। करिया सरवर मारग लीन्हा॥
तहँ तौ पंछी एक रहाई। निस बासर वो बैठ ऊँचाई॥
तेहि मारग जिव चला अघाई। चोंचि पसार खान को चाही॥

मुख पंछी बहु भाँति पसारा। जिवरा तो को करौं अहारा॥
अपना नाम कहौ टकसारा। तब चलि जैहौ वहि दरबारा॥
नहिं हम से तुम बचने पैहौ। तो को जिवरा धर धर खैहौं।
जिवरा सुरति नाम से लाया। करिया मारि पाँव तर नाया॥
जीव चला झरने के पारा। दस दिस देखि परा उँचियारा॥
अमी द्वार इमरत कर बासा। मिटा जीव का संसय सासा॥
अधर जीव इमरत को पी वै। सब्द बुंद इमरत जुग जी वै॥
बस्तु पाइ साधै कोइ साधू। चाखै इमरत सुरति समाधू॥
चटि चटि सूरति चढ़ी अटारी। इमरत अजर नाम की लारी॥
साहिब अजर सब्द घर पावै। आवागवन बहुरि नहिं आवै॥
डोरी पुरुष अकास अकेला। किया सुरति घट भीतर मेला॥
इमरत कँवल भरा भँडारा। पी वै जिव सो उतरै पारा॥
नाम अगाध कहौं समझाई। सूरति सब्द अगाध सुनाई॥
जो जिव चाहै अगम निवासा। सूरति करै सब्द में बासा॥
जिन जिन सूरति सब्द सँवारा। सो चलि गये अगम पद पारा॥
पावै भेद बस्तु लखि पावै। सो सतलोक सोक नसि जावै॥
सुरति सब्द में भई अधीना। ताकर भेद काल नहिं चीन्हा॥
सत्त नाम से काल नसाना। कोइ साधू काया मथि जाना॥
काया दरपन सुरति समानी। सो साधू साहिब सम जानी॥

अर्थ—हे धर्मनिष्ठ! मेरी बात को ठीक से समझो—हम उस दरबारी पुरुष (निरंजन) के पास जा रहे हैं। सुरति-निरति दोनों को लेकर मैं उनके लोक में प्रवेश करूँगा और उस अनादि ब्रह्म का नाम लेकर काल को नष्ट कर दूँगा। उस 'सत्यपुरुष' का नाम लेकर जीव ने स्वयं काल से उबारा और कहा कि इस प्रकार मैं निरंजन के दरबार में चला जा रहा हूँ। उसने इतनी बातें शून्य मन से कही तब धर्मनिष्ठ (काल) ने अत्यन्त संयस्त होकर मन में विचार किया और बोला—हे जीव! तुम अपने मार्ग पर जाओ, हम तुम्हें अब स्वप्न में भी नहीं रोकेंगे।

जीव आगे चलकर पैर बढ़ाया, उसे मार्ग में एक काला सरोवर मिला। वहाँ एक पक्षी रहता था और रात दिन वह ऊँचाई पर बैठा रहता था। उस मार्ग पर सन्तुष्ट होकर जीव चला, तब वह चोंच फैलाकर जीव को खाना चाहा। पक्षी ने अपने मुख को अनेक भाँति से फैलाया कि मैं इस जीव का आहार करूँगा। उसने पूछा कि अपना नाम साफ-साफ (टकसारा) बताओ, तभी उस निरंजन के दरबार में जा पावोगे। हे जीव! तुम हमसे नहीं बचने पावोगे और मैं तुम्हें पकड़-पकड़ कर खाऊँगा। जीव ने नाम के रूप में सुरति ध्यान किया और उसने करिया को मार कर पावों के नीचे गिरा दिया।

तब वह जीव उस झरने के उस पार गया तो उसे दसों दिशाओं में उजाला दिखाई पड़ा। द्वार अमृत का था, वहाँ सम्पूर्णत: अमृत का निवास था और तब जीवन का समस्त संशय भाव समाप्त हो उठा। जीव अधर-भाव से अमृत पान करने लगा—अमृतमय शब्द बिन्दुओं में वह जीने लगा। वस्तु पाकर कोई साधुजन क्यों नहीं उसे साधेगा और अपनी सुरति समाधि में अमृत चखेगा।

चट-चट करता हुआ तेजी से वह जीव सुरति ज्ञान की अटारी पर चढ़ गया–नाम रूप अजिर के अमृत की वासना उसके हृदय में बस गई है। उस घर में निरंजन ब्रह्म का शब्द प्राप्त कर रहा है–अब वह फिर 'आवागमन' के बंधन में नहीं आएगा।

वह शून्याकाश में अकेला उस निरंजन ब्रह्म से सम्पर्क साध लिया है और सुरति द्वारा इसी घट (शरीर) में ही उससे सम्पर्क साध रखा है। उसका भंडार अमृत कमल से भर उठा है–जीव जो उसे पीता है, वह सर्वथा उस पार उतर जाता है (इस भवलोक से मुक्ति हो जाती है)।

मैं उस अगाध नाम से सम्बोधित ब्रह्म के विषय में बताता हूँ। सुरति ध्यान में उस अगाध का ही शब्द सुनाई पड़ता है। यदि जीव उस अगम्य ब्रह्म में निवास करना चाहता है तो वह सुरति साधना करके 'शब्द' में निवास करे। जिन-जिन सन्तों ने सुरति समाधि से वह शब्द सँवारा है, वे अगम्य पथ के पार चले गए हैं।

वस्तु भेद को समझकर जो मूल तत्त्व को जान जाता है–वह सत् लोक प्राप्त करता है और उसके समस्त शोक नष्ट हो उठते हैं। सुरति शब्द साधना के जो अधीन हो जाता है, उसके भेद के विषय में काल भी अपरिचित रहता है। सत्य नाम से काल भी नष्ट हो जाता है, अपनी काया का मंथन करके कोई-कोई साधु इसे समझते हैं। शरीर दर्पण हैं, इस दर्पण में 'सुरति' समाई हुई है, यदि इस प्रकार का कोई साधु है तो उसे ब्रह्म के समान समझो॥

॥ साखी ॥

कँवला काल निरंजना, तिन बस कीन्हा घाट।
भिन्न भिन्न दरसाइ कै, सतगुरु दीन्ही बाट॥

अर्थ–कमल। काल एवं निरंजन इनके वश में सारे प्रस्थान मार्ग हैं, इन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाकर सत्गुरु ने सबके लिए रास्ता खोल दिया है।

॥ दोहा ॥

जीव चला घर आपने, काल छेकि जम जार॥
नाम सुरति जब लख पग, भागे ठग बटमार॥

अर्थ–जीव अपने घर की ओर चला और काल ने यम के जाल से घेरा। जब सबको सुरति समाधि का सोऽहम् शब्द दिख पड़ा तो सभी ठग और बटमार (काल, यम आदि) भाग चले॥

॥ भेद पिंड और ब्रह्मांड का ॥

सुरति सब्द मिल लोक में, चढ़ि सतनाम जहाज।
तुलसीदास पिया मिले, कीन्हा सेज बिलास॥

अर्थ–इस लोक में सुरति से मिलकर सतनाम के जहाज पर चढ़कर तुलसीदास साहब कहते हैं, मैं अपने प्रियतम से मिला और शैया विहार किया॥

॥ छन्द ॥

तुलसी लख जागे काल से भागे। लख दृग दानी दूर किये॥
इमरत रस चाखा सौ सब भाखा। जीव अघाइ अनाद पिये॥ १ ॥
सतनामहि जाना पद पहिचाना। सुरति सब्द जो जाइ लिये।।
जिन जो स्त्रुति सैना देखा नैना। अगम अपने पौ पाइ पिये॥ २ ॥
हिये खुल गइ आँखी सब बिधि भारवो। काल बरन बिधि बूझि कही॥ ३ ॥

अर्थ--तुलसी साहब कहते हैं कि प्रियतम के साथ मुझे देखकर सभी सभी सोते जागकर काल की भाँति भगे और (प्रियतम के साथ देखकर) हमसे धर्मराज (दानी) ने अपनी आँखें दूर कर ली। सारा संसार कहता है कि मैंने अमृत रस चख लिया है और इस जीव ने उसे आनादि तत्त्व के साथ तृप्त होकर अमृत का पान किया॥ १ ॥

उस सत्य नाम को मैं जान गया, उसके चरणों को मैं पहचान गया और वहाँ जाकर उस सूरति सबद को ग्रहण कर लिया। वह जो समस्त वैदिक तत्त्वों का समूह था, उसे मैंने नेत्रों से देखा और उस अगम तत्त्व को अपने में (अपने पौ) पाकर तृप्तभाव से पिया। हृदय की आँख खुल गई, उसका हर प्रकार से वर्णन किया और इस प्रकार मैंने काल के नाना रूपों (बरन विधि) को समझ कर बताया॥ 2-3 ॥

॥ सोरठा ॥

बानी काल बिचार, तीनि बरन तोली सबै।
कहों बरन निरधार, सो कोइ साधू परखिहै॥

अर्थ–वाणी और काल का विचार मैंने तीन प्रकार से तौला है (समझा है)। इसके रूपभेद का निर्धारण करके मैं बता रहा हूँ। इसको कोई साधु ही परखेगा (पुनः मूल्यांकन करेगा।)।

॥ चौपाई ॥

काल बैन बिधि भाखि सुनाई। ता की अब मैं करों लखाई॥
बानी तीनि तीनि बिधि जानी। कँवल मध्य में कहीं बखानी॥
कौन बरन वे कँवल रहाई। जाकी विधि बिधि कहों बुझाई॥
कोने बरन निरंजन देवा। तिन का बरन बताओं भेवा॥
करिया बरन काल को भाई। सेत रक्त वे कँवल रहाई॥
सुन्नि के बरन निरंजन देवा। तिन कर कहों निरख सब भेवा॥
अब बानी का कहौं बिचारा। बूझै साध करै निरवारा॥
बानी कौन निरंजन होई। बानी कौन काल की सोई॥
बानी कौन कँवल की लीन्हा। सो सब निरखि बताओं चीन्हा॥
बानी अधर निरंजन सोई। बानी क्रोध काल की होई॥
बानी मेल कँवल कर लीन्हा। येहि बिधि से तीनो हम चीन्हा॥

अर्थ–काल की वाणी का वर्णन करके सुनाता हूँ। अब मैं उसके स्वरूप को बताता हूँ। वाणी को तीन प्रकार की समझो। कमल मध्य में स्थित इस वाणी का मैं वर्णन करता हूँ॥

किस प्रकार कमल के मध्य में यह वाणी रहती है, मैं इस विधि के अनुसार उसका वर्णन करता हूँ। निरंजन देव किस वर्ण के हैं, हे भाई उनका वर्णन करो॥

काल का भाई श्याम वर्ण का है, वे रात में कमल में प्रवेश करके लाल वर्ण के हो जाते हैं। निरंजन शून्य वर्ण के हैं। मैं उनको पूरी तरह से देखकर ही उनके भेदों को बताता हूँ॥

अब मैं वाणी का निराकरण करता हूँ। कोई साधु ही इसे समझकर इससे सम्बन्ध सत्य का निराकरण कर सकता है। इसमें निरंजन की वाणी क्या है? कौन काल की वाणी है कमल किस वाणी को ग्रहण करता है–इन सबको भलीभाँति पहचानकर बताओ॥

जो वाणी अंतरात्मा (अधर) की है, वह निरंजन की वाणी है। क्रोध की वाणी है। कमल से मेल-मिलाप कर रही–एक वह भी वाणी है। इस प्रकार से हमने तीनों वाणियों को पहचान लिया है॥

॥ साखी ॥

निरगुन सरगुन लखि परै, काया काल बिचार।
आदि पुरुष सत लोक में, सो घर अधर हमार॥ १॥
घट घट में सब लखि परा, भिनि भिनि अगम पसार।
तन बिच सोला द्वार की, तुलसी कहत पुकार॥ २॥

अर्थ–शरीर एवं काल विचार के क्षण निर्गुण व सगुण दोनों दिखाई पड़े। आदि पुरुष (ब्रह्म) सत्य लोक में है, और वही हमारी अन्तरात्मा का घर है।

इस संसार के घट-घट में भिन्न-भिन्न अगम्य तत्त्वों का प्रसार दिखाई पड़ा। इस प्रकार, इस शरीर में सोलह द्वारों की चर्चा तुलसी साहब पुकार-पुकार कर करते हैं।

॥ चौपाई ॥

सोला द्वार भेद कहौं भाखी। जा की बरन बिधी कहूँ साखी॥
प्रथम द्वार का भेद बताऊँ। जा की बिधि बरतंत सुनाऊँ॥
प्रथम मूल दीप गति गाऊँ। जा की नाम ठाम समझाऊँ॥
सतगुरु गुप्त भेद लखवावै। सोला द्वार भेद जब पावै॥

अर्थ–सोलह द्वार भेदों का वर्णन करता हूँ–मैं इनकी वर्णन विधि और उनकी साक्षी बताता हूँ। मैं प्रथम द्वार के भेद का वर्णन करता हूँ–मैं उसकी विधि और वृत्तान्त सुनाता हूँ॥ प्रथम भेद की मूल गति का गान करता हूँ–मैं उसके नाम तथा स्थान का भी वर्णन करता हूँ। सोलह द्वारों के भेद का ज्ञान जो सन्त प्राप्त कर लेता है तभी वह सत्गुरु के गुप्त रहस्यों को देखता है।

॥ द्वार भेद ॥

परथम सहस कँवल में द्वारा। दूसर अकह कँवल के पारा॥
तीसर द्वार गगन के नीचे। चौथा द्वार अधर के बीचे॥
जहँवाँ बैठा कंदर काला। जिनहिं बिछाया जग जम जाला॥
पंचम द्वार दसौ दिस बाहिर। मन सब बैठा जग में जाहिर॥
भँवर गुफा बिच छठवाँ द्वारा। कँवल भँवर तहँ बसै नियारा॥
सतवाँ द्वार दसों के दहिना। पाँचो भूत सूत बिन सैना॥
अठवाँ मूल चक्र के माहीं। बैठा मूल मोह रस राही॥
नौवाँ द्वार ताल में होई। स्वाँसा पवन चलावै सोई॥
ये नौ द्वार काल के जाना। दसवाँ द्वारा अधर बखाना॥
द्वारा चारि गुप्त गुहराई। जानै साध संत जिन पाई॥
ऐसे चौधा भेद पुकारा। पन्द्रा द्वार सत्त के पारा॥
सोला खिरकी अगम निसानी। जा में सत साहिब की बानी॥
ता के परे द्वार नहिं देखा। जहँ इक साहिब नाम न भेसा॥
संत सैल वह अगम निसानी। बसै संत वोहि धाम अनामी॥

काया मद्धे काल बिचारो। निरंकार से पुरुष नियारो॥
वा का भेद साध कोई पावै। अगम निगम सोइ संध लखावै॥
जोगी रमक राह नहिं जाना। जोग ज्ञान मत भेद भुलाना॥
प्रानायाम जोग कोर कीन्हा। लोई कोई कवल उलट कर लीन्हा॥
कोग अष्टांग जोग जस कीन्हा। परम जोग रस रहे अधीना॥

अर्थ–प्रथम भेद सहस्त्र कमल के द्वार घर है, दूसरा द्वार अकथ्य कमल के उस पार है, तीसरा द्वारा शून्य के नीचे है और चौथा द्वारा अन्तरात्मा के बीच में है। जिस गुफा में काल बैठा है और जिसने समस्त संसार के लिए माया जाल फैला रखा है पाँचवाँ द्वार उसकी दशों दिशाओं के बाहर है संसार में यह स्पष्ट है कि वहाँ 'मन' रस लेता हुआ बैठा है।

भँवर गुफा के बीच छठाँ द्वार है–जहाँ भ्रमर कमल पर स्वच्छन्द (नियारा) बैठा रहता है। सातवाँ द्वार दसों द्वार के दाहिने है–जहाँ पाचों महाभूततत्त्व बिना बन्धन (सूत) और बिना सेना (नियंत्रण) के हैं। आठवाँ द्वार मूल के मध्य है–जहाँ मूलतत्त्व मुग्धभाव से रसास्वादन करता है। नौवाँ द्वार तालु में है और वही श्वास वायु को चला रहा है॥ इन नवों द्वारों को काल का द्वार समझो और दसवाँ काल अन्तरात्मा में है॥ चार द्वार गुप्त कहे गए हैं–जिन साधु सन्तों ने प्राप्त कर लिया है, उन्हें वही जानते हैं। इस प्रकार, चौदह द्वार पुकारे गए हैं, पन्द्रहवाँ द्वार सत्य के उस पार है।

सोलहवें द्वार की खिड़की अगम की निशानी है–जिसमें निरन्तर सत साहब (निराकार ब्रह्म) की वाणी सुनाई पड़ती है॥

इस सोलहवें द्वार के पार न कोई द्वार है और न कोई देश है वहाँ साहेब (परमात्मा) एक हैं, न उनका कोई नाम है और न कोई वेष। वह सन्तों का पर्वत है और सन्त जन उस अनाम धाम में निवास करते हैं।

काया के मध्य में काल का विचार करो और समझो कि वह पुरुष निरंकार और बिलक्षण है। इसका रहस्य कोई ही साधु प्राप्त कर सकते हैं। वही अगम तथा निगम दोनों ज्ञानरूपों का सिंधु है। उसमें रमता हुआ जोगी भी उसके मार्ग को नहीं जानता–वह तो योगमत के ज्ञान के बेदों में खोया रहता है। कोई प्राणायाम योग करता है, कोई लोग (लोइ) कमल को योगसाधना द्वारा उलट लेते हैं। कोई अष्टांग योग करते रहते हैं फिर भी वे उस परम योग रस के अधीन रहते हैं। ये सारे योगी योग कराते हैं और वह निष्ठुर कठिन काल सबके घर आता है अर्थात् सभी काल कवलित होते हैं।

॥ गुफा (1)॥

यह सब जोगी जोग कराया। कठिन काल सब घर घर खाया॥
जोगी राह रीत दरसाऊँ। भिनि भिनि जोग बिधी बिधि गाऊँ॥
जोग सब्द बिधि कहौं बखानी। बूझै जोग कीन्ह सोइ जानी॥

अर्थ–मैं अब योगियों के मार्ग एवं उनकी पद्धति का वर्णन करता हूँ। भिन्न-भिन्न रूपों द्वारा मैं उनकी विधियों के अनुसार उनका गान करता हूँ। योग शब्द विधियों का मैं वर्णन करता हूँ–जिसने योग किया है, वही उसे समझ सकेगा॥

॥ कहेरा॥

जोगी राह रमक तन तारी, करत जोग जुग चारी हो।
ज्ञान जोग मिसिरित मन मैला, चढ़ि अकास नित खेला हो॥ १॥
अब तेहि राह रीति दरसाऊँ, बिधि भिनि भिनि गति गाऊँ हो।

बस तन मन रस निरमल होई, इंद्री इस्क खुद खोई हो॥ २॥
ता पर तीन तलब पचबीसा, खड़्ग ज्ञान दल पीसा हो।
उनके निकट नेक नहिं जावै, थिर होइ पवन चढ़ावै हो॥ ३॥
दीदा फूल झूल दिन राती, त्रिकुटी चढ़ि येहि भाँती हो।
बिधि बायें पिंगला गति केरी, इँगला दहिने फेरी हो॥ ४॥
चंद सूर दम दम बस आवा, सुखमनि चटक चढ़ावा हो।
बंक नाल पल पल नल खोली, अति अजपा नहिं बोली हो॥ ५॥
ओहँग तत सोहँग मत जानी, पवन सब्द सँध आनी हो।
थिर मन मेरदंड चढ़ तारी, झलक जोति उँझियारी हो॥ ६॥
तत अकास आत्म बिधिजानी, लख चर अचर बखानी हो।
अंडा तत्त द्वार दरसानी, जोग ज्ञान गति बानी हो॥ ७॥
यह सब काल खेल भरमाये, सास्तर बेद भुलाये हो।
यह सब जोगि जोग बस कीन्हा, काल राह रस पीना हो॥ ८॥
वे दयाल बिधि भेद अपारा, संत चीन्ह भये न्यारा हो।
जोग ज्ञान पंडित सुनि मानै, सास्तर पढ़त पुरानै हो॥ ९॥
जैसे नीर घड़ा जल माईं, रबि प्रतिबिंब दिखाई हो।
जब लग घड़ा अकास समाना, तब लग तत दरसाना हो॥ १०॥
फूटा घड़ा अकास नसाना, रबि सूरज बिनसाना हो।
तत भयौ नास भास भइ जोती, अंध कूप हिये होती हो॥ ११॥
अंध अकास भास नहिं पावै, भूल भटक मन आवै हो।
घट बिनसै तन देंही पावै, पुनि भव माहिं समावै हो॥ १२॥
ज्ञान जोग ब्रत संजम कीन्हा, तीनि ज्ञान गति चीन्हा हो।
अंत काल जम जाल फँसाना, बहु बिधि काल चबाना हो॥ १३॥
तुलसी जोग जुगति कहि झारी, संत अगम गति न्यारी हो।
संत राह रस अगम ठिकाना, जोगी भेद न जाना हो॥ १४॥

॥ कहेरा ॥

अर्थ–योगी रमण (रमक) राह से शरीर को मुक्त (तार) कर देता है और वह चार प्रकार के योगों को करता रहता है। ज्ञान योग में मिश्रित मन निर्मल नहीं (मैला) रहता और वह शून्याकाश में चढ़कर खेलता है। अब मैं उसकी स्थिति और पद्धति (राहरीति) बतलाऊँगा (दरसाऊँ) और उसकी भिन्न-भिन्न गतियों का गान करूँगा। शरीर मन के वश में और उसका आस्वाद (रस) निर्मल हो उठता है और इन्द्रियों की संसक्ति (इश्क) को स्वयं खा जाता है॥ १-२॥

उसके ऊपर तीनों-नशे (तम, रज एवं सत्त्व) एवं पच्चीसों (तन्मात्राओं) को यह ज्ञान की तलवार पीस डालती है। ये तीन गुण एवं पच्चीस तन्मात्राएँ उनके निकट नहीं जा पातीं और वह योगी (व्यक्ति) स्थिर चित्त से वायु को मन में चढ़ाता है॥ ३॥

चित्त [दीदा (र)] रूपी पुष्प रात-दिन तिरकुटी पर चढ़कर इस प्रकार झूलता रहता है। पिंगला की गति बाएँ एवं इंगला (इड़ा) की गति दाहिने फेर लेता है॥ ४॥

सूर्य तथा चन्द्र क्षण-क्षण वश में हो जाते हैं और सुषुम्ना (सुखमनि) तीव्रगति से चढ़ा लेते हैं। बंकनाल की नल पल-पल खुली रहती है और अजपा जाप बोलना नहीं पड़ता, स्वयं होने लगता है। पवन सिंधु में आकर तत्ऽहम् की गति सोऽहम्' की हो जाती है, तालु (तारी) मेरुदण्ड पर चढ़ जाती है, मन स्थिर हो उठता है और वह दिव्य प्रकाश झलकने लगता है॥ ५, ६॥

उस आकाश को आत्म योग विधि से समझता हूँ और वहाँ-चर-अचर दोनों तत्त्वों को देखकर उनका वर्णन करता हूँ। वह पिंड (अंडा) उस तत्त्व द्वार पर दिखाई पड़ने लगता है और वाणी, ज्ञान तथा गति तीनों योगमयी हो उठती है।। १७॥

संसार को यह काल की क्रीड़ा भ्रमित किए हुए है और वेद शास्त्रों ने सही मार्ग भुला दिया है। योगियों ने इन सम्पूर्ण भ्रमित करने वाले तत्त्वों को योग के वश में कर लिया है और काल (मृत्यु) के मार्ग का रस पी लिया है॥ १८॥

वे दयालु ब्रह्म अनेक रूपों के हैं, संत उन्हें पहचान कर स्वयं विलक्षण हो गए हैं। योग तथा ज्ञान को पंडित (विद्वान) सुनकर स्वीकार करते हैं और वे शास्त्र तथा पुराण पढ़ते रहते हैं॥ ९॥

जैसे घड़े में जल है, और उसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है–जब तक घड़े में आकाश का बिम्ब स्थित है, तब तक सूर्य बिम्ब की भाँति वह परम तत्त्व दिखाई पड़ता है॥ १०॥

घड़ा फूट गया, आकाश का बिम्ब नष्ट हो गया, सूर्य का बिम्ब भी विनष्ट हो उठा-उसी प्रकार इस मानव योनि के नष्ट हो जाने पर सब अंधकूप जैसे हो उठता है। इस अंधे आकाश में कोई प्रतिबिम्ब (भास) नहीं उठता-मन चारों ओर भूलकर भटक आता है। इस शरीर रूपी घट के विनष्ट हो जाने पर यह देह अपने देही (ईश्वर) को पा जाता है और शरीर इस संसार में खो जाता है। ज्ञान योग व्रत संयम करके तीनों गतियों उद्‌भव, स्थिति एवं संहार) पहचान लिया है। अन्तकाल में, यम के जाल में यह जीव फँस जाता है और उसे काल अनेक प्रकारों से चबाता है॥

इसीलिए तुलसी साहब ने समस्त योग युक्तियाँ बताई है और उनसे जुड़े सन्तों की गति अगम्य और न्यारी है।

सन्तों का मार्ग एवं आनन्द भिन्न है, इसे योगी भी नहीं जानते॥ १४॥

॥ सोरठा ॥

जोगी राह रमक तन तारी, करत जोग जुग चारी हो।
अगम अगत गति पार, जोग ज्ञान पहुँचै नहीं॥

अर्थ–रमक के मार्ग से शरीर का उद्धार करते हैं। और वे चारों युगों में योग करते हैं। अगम्य एवं अज्ञेय (अगत) के ज्ञान के उस पार (जहाँ सन्त पहुँचते हैं) योग का ज्ञान नहीं पहुँचता॥

॥ चौपाई ॥

दूजा जोग कँवल षट गाऊँ। बसै तासु पर भेद बताऊँ॥
चढ़ै चक्र षट जोगी गावै। तुलसी सब्द माहिं समझावै॥
काया माहिं कँवल का वासा। कँवल कँवल कहूँ भूमि निवासा॥

अर्थ–द्वितीय योग षट्‌दल कमल के स्थान का है। इस पर जो निवास करते है में उनके भेदों का वर्णन करता हूँ। इस षट्‌चक्र पर चढ़कर योगी गान करता है–और तुलसी साहब कहते हैं कि वह उस शब्दों से समझाता है। शरीर के मध्य में इस कमल का वास है–भूमि पर निवास करता हुआ योगी कमल-कमल कहता रहता है।

॥ कहेरा ॥

काया कलस कंवल बिधि भाखी, परख लखी हिये आँखी हो।
भिनि भिनि जोग कँवल बिधि गाई, खुल षट भेद बताई हो॥ १॥
गुदा कर कँवल कहों दल चारी, गनपति बास बिचारी हो।
छै पखड़ी दल कँवल कहाई, बसै ब्रह्मा तेहि ठाँई हो॥ २॥
अष्ट कँवल दल नाम बसेरा, बसै बिस्नु तेहि तीरा हो।
दल बारा बिधि सिधि हिये माहीं, सिव कैलास कहाई हो॥ ३॥
सोला कंठ कँवल बिधि जानी, जगदंबा जग रानी हो।
सहस कँवल दल दीद निरंजन, घाट रोकि गल गंजन हो॥ ४॥
ये सब काल जोग रस माया, सिध जोगी सब खाया हो।
मुद्रा पाँच अवस्था चारी, तीनि ज्ञान गति धारी हो॥ ५॥
जोगी काल कलेवर कीन्हा, तप संजम ब्रत धारी हो।
कष्ट भोग फल काया पाया, चारि खानि गति चारी हो॥ ६॥
कँवल जोग जोगी गति गाया, भर्म भोगि भौ आया हो।
अब कहों संत भेद विधि सारी, जोग कँवल से न्यारी हो॥ ७॥
नौलख कँवल पार दल होई, परे चारि दल सोई हो।
ता के परे अगमगढ़ घाटी, नीर तीर गहि बाटी हो॥ ८॥
ता के परे परम गुरु स्वामी, जीव अधर घर धामी हो।
ता के परे परम पद माहीं, साहिब सिंध कहाई हो॥ ९॥
ता के परे संत घर न्यारा, अगम अगाध अपारा हो।
तुलसी सैल सुरति से कीन्हा, अगम राह रस पीना हो॥ १०॥

अर्थ—काया में कमल की स्थिति कलश की भाँति बताया है और उसको देते हृदय की आखें उससे जुड़ जाती हैं। योग सिद्धान्त के अन्तर्गत इस कमल विधि का भिन्न-भिन्न वर्णन किया गया है और षट्चक्र के द्वारों के खुलने की बात कही गई है॥ १॥

गुदा के कमल का वर्णन करता हूँ, वहाँ चार दल हैं और वहाँ गणपति (गणेश) का निवास विचारा गया है। दूसरे चक्र या केन्द्र पर छः पंखुरियों का कमल है,उस स्थान पर ब्रह्मा निवास करते हैं। २॥

तीसरे चक्र पर अष्ट पंखुरी का कमल है और उसने समीप विष्णु निवास करते हैं। हृदय चक्र पर बारह पंखरियों का कमल है, इसे कैलास कहा जाता है और यहाँ शिव निवास करते है॥ ३॥

कंठ चक्र पर सोलह पंखुरियों वाला कमल है, और जहाँ सृष्टिकी रानी जगदम्बा निवास करती हैं।

षट् चक्र सहस्त्रदल का कमल है, यहाँ निरंजन का साम्राज्य है—और आगे के घाटों को रोकर रास्ते को दुर्गम (गंजन) बना देते हैं॥ ४॥

ये समस्त गति द्वितीय काल योग की हैं—यहाँ माया से उत्पन्न योग रस को सिद्ध योगी खाते हैं, (सेवन करते हैं)। पाँच मुद्राएँ हैं, चार अवस्थाएँ है तथा तीन ज्ञान की गतियों से वे सम्पन्न हैं। काया के कष्ट भोग का फल प्राप्त किया है और तप, व्रत, संयम भी ये योगी करते हैं। इस कमल योग की गति

का ज्ञान योगियों ने किया है किन्तु भ्रमित होकर ये पुनः इसी भोग वासना से संसक्त संसार में आए हैं ॥ अब मैं इन योगियों से भिन्न सन्तों की विलक्षण गतियों का वर्णन करता हूँ, जो इस कमल योगसिद्धि से भिन्न प्रकार की है ॥ ५, ६-७ ॥

सहस्त्रार कमल के उस पर नौ लाख पंखुरियों वाला कमल है—उसके आगे चार दल का कमल है। उसके आगे अगमगढ़ की पार घाटी है और उसका जल तटों के हिसाब (श्रम से) बंटा है। उसके आगे, परमगुरु स्वामी (अगम्य ब्रह्म) और वह जीव की अन्तरात्मा का ही निवासी है। उसके आगे परम पद है जहाँ स्वामी का अगाध समुद्र है। उसके आगे सन्तों का बिलक्षण निवास गृह जो अगम्य, अगाध एवं अपार वर्तमान कहा गया है। तुलसी साहब कहते है कि सन्त जन उस अगम पर्वत में सुरति समाधि करते हुए अगाध रस का पान करते हैं (योगियों की भाँति पुनः भवसागर में नहीं आते)। ४ से १० ॥

॥ सोरठा ॥

जोगी जुगति विचार, संत भेद न्यारा कहै।
करि करि जोग बयान, काल खानि भौ रस रहै॥

अर्थ—योग तथा आत्मज्ञान के अतिरिक्त ये योगी और कुछ नहीं जानते। योग का वर्णन बार-बार करते हुए काल की खानि इस सांसारिक भौतिक आनन्द में डूबे रहते हैं ॥

॥ चौपाई ॥

जोग निरंजन कीन्ह पसारा। यह सब काल जाल भ्रम डारा ॥
कँवल सहस्त्र समाधि लगावै। मन सोइ काल निरंजन पावै ॥ १ ॥
अंड खंड ब्रह्मंड पसारा। ये सब जानौ मन की लारा ॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस कहाये। ये सब मन मत गति उपजाये ॥ २ ॥
मन सोइ निरंकाल है भाई। ता कर बास अकास के ठाईं ॥
वा का सुनौ बास बिधि मूला। अगिनि अकास कँवल जहँ फूला ॥ ३ ॥
तुलसी ता की बिधी बताऊँ। सब्द राह रस भेद सुनाऊँ ॥ ४ ॥

अर्थ—योग ने निरंजन के चिन्तनका प्रसार किया और इन सबने काल जाल के भ्रम में सभी को डाल दिया। सहस्त्रार दल कमल में ये योगी समाधि लगाते है और उनका मन उसी कमल में निरंजन को प्राप्त करते हैं।

पिंड के खंड-खंड में ब्रह्मांड फैला है—इन्हें सब मन की तृष्णा समझो। ब्रह्मा, विष्णु, महेश जो भी कहे जाते हैं—ये सब मन के ही ज्ञान से उत्पन्न किये गये हैं।

वह मन ही काल की पहुँच के बाहर है, उसका निवास आकाश-स्थल में है। उसके निवास एवं विधि के तत्त्व को सुनो। पिंड में जहाँ एक अग्नि आकाश कमल खिला हुआ है। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं उसकी समझ की विधि का वर्णन करता हूँ और उसके शब्द, मार्ग, रस के भेदों को सुना रहा हूँ॥

॥ कहेरा ॥

अगिनि अकास जरत जल जाना, ता बिच कँवल फुलाना हो।
डंडी कँवल फूल नभ नारी, रज ब्रह्मा बिस्तारी हो ॥ १ ॥
नाल वोही तुम संकर तारी, बिस्नु बिपति जग झारी हो।
मिलि तीनौ मन मरम न जाना, कीन्हे वेद पुराना हो ॥ २ ॥

निरंकाल काल अस फाँदा, जीव जोति जग बाँधा हो।
आदि अनादि पंथ नहिं जानी, करि कुपंथ ठग ठानी हो॥ ३॥
तीरथ बरत नेम बिधि पाला, आस खानि फल डाला हो।
नर तन भटक भटक भटभेरा, बाँधा न भौजल बेड़ा हो॥ ४॥
तन सराय छूटत छिन माहीं, सेमरि सुवा पछिताई हो।
तुलसीदास चेत नर अंधा, परखि लखौ दुखदंदा हो॥ ५॥

अर्थ–जहाँ अग्नि तथा आकाश जल रहे हैं, उसके बीच एक कमल खिला हुआ है। दण्डी के ऊपर कमल है, कमल पुष्प आकाश की नाड़ी है और उस पर 'रज' का विस्तार ब्रह्मा ने किया है॥ १॥

उसी नाल ने शंकर का उद्धार किया है, संसार में विष्णु की विपत्ति को दूर किया है। तीनों ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों में मिलकर भी उस मर्म को नहीं समझा और वेद-पुराणों की रचना करते रहे॥ २॥

काल का पाश निरंकाल है (जिसका अनुमान सम्भव नहीं है) और यह जीव परमात्मा की ज्योति में बँधा है। इन्होंने आदि-अनादि के ज्ञान मार्ग को नहीं जाना और कुपंथ तैयार करके जन समुदाय को ठगने का निश्चय किया है॥ ३॥

तीर्थ, व्रत, नियम आदि विधियों को निर्दिष्ट किया तथा आशा की खानि का फल सबके सामने डाल दिया। इन्होंने इस संसार के भौजल से मुक्ति की नौका न तैयार करके मनुष्य जाति के भटकने का भटभेरा (सूखी लकड़ियों को बाँधकर अस्थिर नावें) बना दी॥ ४॥

तन रूपी यह विश्रामालय (सराय) क्षण में ही छूट जाता है, और सेमर फूल पर क्षुधित होते के प्रहार से शुकगण जैसे निरन्तर पछताते रहते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि हे अंधे मनुष्य समझो-संसार के दुःख द्वन्द्वों को परखकर मानव समाज के लिए मार्ग निर्धारित करो॥ ५॥

॥ चौपाई॥

ये सब मन का भेद बताया। मन रचि कीन्हा खेल बनाया॥
धरती गगन चंद और सूरा। निरंकाल रच मन मत मूरा॥
सोइ मन अस बस विष रस माईं। भूला भरम खानि गति जाईं॥

अर्थ–मैंने ये सारे मन के भेद बताएँ और मन ही का सारा रचा तथा बनाया हुआ खेल है। पृथ्वी, आकाश, चन्द्रमा एवं सूर्य यह कालरहित मन की ही मूल रचना है। हे सखी! यही मन इस वासना रूप विषय रस में बस जाता है। यह भ्रमवश अपनी मूलगति को भूल जाता है।

॥ सोरठा॥

तुलसी तरक बिचार, सार पार गति ना लखै।
यह मन बिषम बिकार, ता की गति मति सब कही॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि अनेक तर्क तथा विचारों से सिद्ध है कि इस मन की गति का पार नहीं दिखाई पड़ता, यह मन ही समस्त विषम (कष्टदायी) विकारों का कारण है, उसके ज्ञान का वर्णन मैंने अपनी मति के अनुसार पूरी तरह से किया है।

॥ छन्द॥

तुलसी मति न्यारी कहत बिचारी। जगत भिखारी जाल मईं।
सुर नर मुनि नाचे कोइ न बाचे। आदि अंत सब छार छई॥ १॥

संतन सोइ जाने सुरति समाने। जिन वा घर की राह लई।
मैं उनका चेरा किया निबेरा। सुरति सैल अज अधर गई॥ २॥
मन की गति पाई सुरति छुड़ाई। रामायन घट माहिं कही।
ले लेख अलेखा सब बिधि देखा। संत चरन सत सार सही॥ ३॥
चीन्हा वह द्वारा सुरति सम्हारा। नैन निहारा पार गई।
तुलसी बिधि गाई सबै सुनाई। संत सहाई राह दई॥ ४॥
कुंजी अरु तारा खोल किवारा। निरखि निहारा सूर भई।
जाना सत नामा अगम ठिकाना। लखि असमाना तिमर गई॥ ५॥
तुलसी रस ज्ञाना माहिं बखाना। धसि असमाना अगम लई।

अर्थ—इस मन की मति, तुलसी साहब कहते हैं, कि बड़ी विलक्षण है और मैं इसे विचारपूर्वक कहता हूँ कि सम्पूर्ण संसार भिखारी की जाल बन गया है। देवता, मुनि, मनुष्य इस मन के वश में होकर नृत्य करते रहते हैं, इससे कोई बचा नहीं है और इसी मन के वशीभूत होने से मनुष्य का आदि अन्त सब जलकर राख जैसा हो उठा है॥ १॥

संत जन इस रहस्य को समझकर अपने मन को सुरति ध्यान (ज्ञान) में समाविष्ट कर लेते हैं और वे उस घर (परमात्मा) की राह पकड़ लेते हैं। मैं तो उन सबका चेला हूँ। इन सबका निपटारा किया है—और मेरा मन तो सुरति पर्वत पर स्थित अन्तरात्मा में समा गया है॥ २॥

मैंने तो मन का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उसे सुरति ज्ञान की मायासक्ति से छुड़ा लिया घट में स्थित रामायण का गान किया है। उस अलेख लेख को लेकर उसे प्रत्येक प्रकार से देखा और यही निष्कर्ष निकाला कि सन्तों का चरण ही सबका सार तत्त्व है॥ ३॥

मैं सुरति सम्हालकर, वह द्वार पहचाना और अन्तर्नेत्रों से देखकर उस पार चला गया। तुलसी साहब सभी को सुनाकर उसे विधिपूर्वक गाकर कहते हैं कि सन्तों ने ही रक्षक (सहाई) होकर मार्ग दिया॥ ४॥

कुंजी द्वारा ताला खोला, किवाड़ खोले, उस तत्त्व को निरखकर देखा और सिद्ध (सूर) हो उठा। उस 'सत्यनाम' को समझा, उसके अगम्य ठिकाने को जाना, शून्याकाश को देखा और समस्त अंधकार दूर हो गया॥ ५॥

तुलसी साहब कहते हैं कि उस रस का अनुभव मैंने ज्ञान के बीच किया है और शून्याकाश में प्रविष्ट होकर मैंने अगम्य (ब्रह्म) प्राप्त कर लिया॥ ६॥

॥ सोरठा॥

यह बिधि निरमल ज्ञान, सत मत सुरति लखाइया।
जब पाया वह ठाम, आदि अंत सोइ सुधि भई॥
कीन्हा ग्रंथ बनाइ, पाइ गाइ गति अस कही।
भई गुरन पद पार, सार पदम पद लखि रही॥

अर्थ—इस प्रकार सत्य मत के अन्तर्गत सुरति द्वारा निर्मल ज्ञान दिखाया और मुझे जब वह स्थान प्राप्त हो उठा तो मेरे आदि और अन्त की सुधि उस परमात्मा ने ली॥

मैंने ग्रन्थ रचकर उस गति को पाकर और उसे गाकर इस प्रकार कहा है। गुरु की कृपा से उस पद को पार कर लिया। उस पद कमल के सार तत्त्व को देखकर मैंने इसे प्रकार बताया है॥

॥ चौपाई ॥

आगे अगम लोक गति गाऊँ। सत्त नाम सत धाम लखाऊँ॥
जब नहिं निराकार और जोती। आदि अंत कछहू नहिं होती॥
जब दयाल सत साहिब दाता। जब की सुनौ सकल बिख्याता॥
मैं अजान कछु मरम न जानों। संत कृपा सत साखि बखानों॥
सतगुरु संध संत दरसाई। उन रज कही महूँ पुनि गाई॥
मैं बुधिहीन अचीन्ह अनारी। कीन्ही कृपा सुरति मतवारी॥

अर्थ—आगे मैं अगम्य लोक में चल रहा हूँ और 'सत्यनाम' से ढंका सत्यधाम को दिखाऊँगा (वर्णन करूँगा)। जब न निरंकार ब्रह्म था, न ज्योति थी, और कहीं भी 'आदि-अन्त' का क्रम नहीं व्यवस्थित हुआ था॥

तब दयालु, स्वामी एवं सबका दाता ब्रह्म ही था और उस समय की सारी प्रसिद्ध बातें सुनो। मैं अज्ञानी कोई रहस्य नहीं जानता था—संत की कृपा है, यह मैं सत्य की साक्षी देकर कहता हूँ।

सतगुरु के समुद्र को सन्तों ने ही दिखाया, उनके चरणरजों ने बताया और उसी की कृपा से मैंने भी कुछ गाया मैं बुद्धिहीन, अपरिचित तथा अनाड़ी मुझपर गुरुओं ने ही मतवाली सुरति भरी कृपा की है॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी मनहिं बिचारि, संत अंत गति लखि परी।
भाख्यों सरनि सिहार, सार पार जस जस भई॥
सत्त लोक सत नाम, और अनाम आगे कही।
सबहि संत ब्रत मान, मैं निकाम सरनै लई॥

अर्थ—तुलसी साहब कहते हैं कि मन में विचार करके देखो, सन्त की भी अन्तगति दिखाई पड़ी है—उस परम तत्त्व के पार जैसे-जैसे होने लगा—मैंने उस परमात्मा की शरण में समर्पित होकर वर्णन किया॥

सत्य लोक का सत्य नाम है और जो कुछ भी अनाम है, उसे अब आगे कह रहा हूँ, सभी सन्तों के व्रत को स्वीकार करता हुआ, मैं निष्काम उसकी शरण में समर्पित हुआ॥

॥ चौपाई ॥

अब कहूँ आदि अगाध अनामी। ताकी गति मति संत बखानी॥
जो कुछ सत्त सीत उन केरी। महूँ पाइ मति निरखि निबेरी॥
तुलसी जब जोइ जस जस भाखा। आदौ बिरछ पेड़ पर साखा॥
पिरथम पुरुष अनाम अकाया। जास हिलोर भई सत माया॥
माया नाम भया इक ठौरा। सत मत नाम बँधा इक डोरा॥
सत्त लोक सत साहिब साँई। सत्त मिले सत नाम कहाई॥
चौथा पद संतन सोइ भाखा। सो सत नाम कीन्ह अभिलाखा॥
सत्तनाम से निरगुन आया। ता को बेद ब्रह्म बतलाया॥
ता की अब मैं कहों लखाई। त्रिकुटी रावन ब्रह्म कहाई॥
माया कुमति ब्रह्म इक ठौरा। भया राम मन चहुँ दिखि दौरा॥

पाँचौ इंद्री प्रकृति पचीसा। तीनि गुनन मिलि सरगुन ईसा॥
इन्द्री पिता भरत है भाई। गुन तन कुमति संग मन माहीं॥
इच्छ सँग रँग मन मति भूला। खस परा बंद भया अस्थूला॥
ता को सब जग राम बखाना। ईस कर्म मन भर्म भुलाना॥
निराकार मन भया अकारा। ज्योति मिली गुन तीनि पसारा॥
ब्रह्मा बिस्नु भये महादेवा। इनकी उतपति मन मत भेवा॥
सास्तर बेद संस्कृत बानी। ये सब मन मत गति उतपानी॥
दस औतार जगत जग माया। यह मन और अनेक उपाया॥
ऋषी मुनी जोगीसुर ज्ञानी। मन करता कर सब मिलि मानी॥
तीरथ बरत बेद ब्यौहारा। जग भूला मन जाल पसारा॥
जो से नाम भेद नहिं जानै। मनहिं राम को नाम बखानै॥
नाम गती है अगम अपारा। ब्रह्म राम दोउ पावैं न पारा॥
निरगुन ब्रह्म राम मन होई। नाम अगम गत अगत अघोई॥
ता का पटतर मन पर लावै। ता से नाम भेद नहिं पावै॥

अर्थ–अब मैं उस आदि अगाध एवं अनाम तत्त्व रूप ब्रह्म के ज्ञान का वर्णन संत मत के अनुसार करता हूँ। जो कुछ सत्य है, वह उनका प्रभाव (सीत) है हमने भी उनका अलभ्य ज्ञान प्राप्त करके, उन्हें देख करके (अनुभव करके) निराकरण (निबेरी) किया है।

तुलसी साहब कहते हैं कि जब जिसे जैसा वह समझ में आया उसने वैसा-वैसा वर्णन किया है– आदि में उसे वृक्ष, पेड़, पत्ता, शाखाओं जैसा बताया है। वह प्रथम पुरुष (ब्रह्म) अनाम और अशरीर है, जिसकी लहरों से सतमाया निर्मित हुई है॥

माया नाम से वह एक भावना में स्थित हुई और सत्यमत नाम भी एक डोरे में बँध गया। सत्यलोक, स्वामी सत् साहब स्वामी सत से मिलने पर सतनाम से पुकारा जाने लगा॥

उसी को सन्तों ने चौथा पद (मुक्ति) के नाम से पुकारा है, वही सतनाम है, उसी की अभिलाषा की जाती है। इस सतनाम से निर्गुण की उत्पत्ति हुई है–उसको वेद ने ब्रह्म बताया है॥

अब मैं उसका दृश्य वर्णन करता हूँ। त्रिकुटी रावण और ब्रह्म दोनों कही जाती है। यहाँ माया कुमति है, ब्रह्म एक स्थान पर स्थित है–और यहीं राम रूपी मन का चारों दिशाओं में भ्रमण होता है॥

पाँच इन्द्रियाँ है, और उनकी पच्चीस प्रकृतियाँ हैं और उनमें तीन गुणों को मिलाकर सगुण ब्रह्म की कल्पना की गई। इन्द्रियाँ पिता है, भरत भाई है। गुण और कुमति दोनों शरीर में साथ-साथ हैं॥

इच्छा की संगवासना से मन मति के साथ वास्तविकता को भूल गया। जैसे, खस के टटरे पर बूँद फैलकर स्थूल हो उठती है। उसी को सभी 'राम' कहकर बखानते हैं। यह मन भ्रम वश ब्रह्म के धर्म (कर्म) को भूल जाता है॥

सगुण के रूप में निराकर मन साकार हो उठता है–वह ज्योति तत्त्व (ब्रह्म) इन तीनों गुणों(रज, सत्त्व, तम) में फैलकर मिल जाता है, तब उनसे ब्रह्म, विष्णु एवं शिव बनते हैं, उनकी उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के मन में मतभेद है॥

शास्त्र वेद तथा संस्कृत भाषा में सब मन एवं मतों की गतियों से उत्पन्न हैं। ब्रह्म के दसों अवतार संसार एवं सृष्टि में मायावत् है यह मन पृथक् है और ये सभी इसके उपाय हैं॥

ऋषि, मुनि, योगेश्वर एवं ज्ञानी, सबने मिलकर कर्त्तारूप मन को स्वीकार किया है, तीर्थ, व्रत, देव व्यवहार–इन सबका जाल मन ने फैला दिया और उसी में संसार भूल गया॥

जिससे नाम भेद समझ में न आए, और मन निरन्तर राम का बखान ही करता रहे–यही नाम उस अगम-अपार ब्रह्म की गति है और ब्रह्म तथा राम दोनों उसको पाने में असमर्थ हैं॥

निर्गुण ब्रह्म के मन राम है, और वह नाम अगम्य एवं गत एवं अगत (ज्ञात तथा अज्ञात) एवं सम्पूर्ण (अघोई) है। उस ब्रह्म के समानान्तर इस ब्रह्म को लाने की चेष्टा में लोग रत है। अत: वे इसके कारण नाम का रहस्य नहीं समझ पाते ॥

॥ दोहा ॥

यहिं विधि आदि अनादि, लखा भेद भिनि भिनि कहयौ।
सुत नि: नाम अधार, जाना जिन अन्दर कहयौ॥

अर्थ–इस प्रकार, वह आदि एवं अनादि ब्रह्म है, मैंने उसके भेदों को देखकर भिन्न-भिन्न रूपों में बताया है। वह केवल शब्दों से सुना जाता है, निष्काम है तथा सृष्टि का आधार है। उसको वही जानता है, जिन्होंने अन्तरात्मा को बताया है, या समझा है॥

॥ छन्द ॥

है नि: नामी अकथ अनामी। दस दिसि लसि सर सैल कही।
भाखा सतनामा ब्रह्म अकामा। माया मिलि मन जार लई॥ १ ॥
काया अस्थूला मन सहै सूला। इंद्री बस भौं खानि मई।
काया गति धारी कर्म बिचारी। भूल भटक भौ भार सही॥ २ ॥

अर्थ–वह निष्काम है, अकथ है, अनाम है, दसों दिशाओं में सरोवर तथा पर्वत आदि पर उसे शोभित बताया जाता है। मैंने उस निष्काम ब्रह्म को 'सत्यनाम' के रूप में बताया है, माया में मिलकर वह मन रूपी जाल को भ्रमित कर देता है॥ १ ॥

स्थूल शरीर में मन नाना प्रकार के कष्टों को सहता है, और वह भव की खानि इन्द्रिय के वश में होकर शरीर से संचालित कर्म जगत के साथ निर्वाह करने लगता है और इस प्रकार यह (मन) भूलता भटकता हुआ भवसागर का भार सहता रहता है॥ २ ॥

॥ सोरठा ॥

काया रचन बिचार, जाही से ये जग भया।
सो बिधि कहौं सँवार, बूझै जो जिन घट लखा॥

अर्थ–शरीर की रचना का सत्य यही है कि इसी से यह सृष्टि हुई है। इसका वर्णन मैंने इस विधि से सँवार कर कहा है–इसे वही बूझेगा, जिसने इस घट का मर्म समझा है।

॥ चौपाई ॥

उतपति जोनि खानि मन दीन्हा। गर्भ भीतर बालक को चीन्हा॥
उतपति कारज बीरज डोठा। यह मन बात लागि मद मीठा॥
यह कर लेखा कहों बनाई। तब जग हिरदे सत्त समाई॥
सुनौ गर्भ की बात बिचारा। मात पिता रज बीर्ज सँवारा॥
उलटा उरधमुखी दुख पावै। तन भीतर काको गोहरावै॥

भया बिकल मुख नरक समाना। जठर अगिन तन तपन जराना॥
आंजिज भया बिकल बहु भारी। अति दुख में रहा बिकल दुखारी॥
तब साहिब से अरज पुकारी। बदौंछोर मोहिं लेव उबारी॥
निस दिन बँदगी करों तुम्हारी। अब मोहिं काढ़ौ महा दुखारी॥
अब तोहिं नेक न बिसरौ साँई। बार बार सुमिरौं चित लाई॥
दीन दुखी से मन नहिं लाऊँ। आठ पहर तुम्हरा गुन गाऊँ॥

अर्थ—उत्पत्ति की ही दशा में नारी योनि के भीतर ही उस ब्रह्म ने उसे मन दे दिया और इस मन ने गर्भ के भीतर ही शिशु को पहचान लिया। उत्पत्ति का कारण वीर्य है—यह बात मन को भली अवश्य लगती है॥

इसका वर्णन मैं बनाकर (व्यवस्थित करके) इस प्रकार कहता हूँ—और तभी (मेरी बात सुनने के बाद ही) हृदय में सत्य का समावेश होगा अर्थात् बात समझ में आ पाएगी॥

गर्भ की बात को विचार करते हुए सुनो—वह माता-पिता के 'रज -वीर्य' के संभोग का फल है किन्तु शिशु गर्भ में ऊर्ध्वमुखी उल्टा रहकर दु:खों को भोगता है—और वह कष्ट मुक्ति के लिए माँ के उदर में किसे बुलावे? वह वहाँ नितान्त व्याकुल एवं नरक सदृश जीवन यापन करता है। वह वहाँ जठराग्नि से उसकी शरीर की आग की तपन से तप्त रही है॥

अत्यधिक व्याकुल एवं आजीज होकर अत्यन्त पीड़ा में वह व्याकुल उस साहब (ब्रह्म) को आर्त्त होकर पुकारता है कि इस जटिल बन्धन से मुक्त करने वाले प्रभु! (बन्दिछोर) मुझे उबार लें।. मैं रात-दिन तुम्हारी बन्दगी करता रहूँगा और अब उस महादुखारी को शीघ्र मुक्त कर दें॥ हे स्वामी! अब एक क्षण के लिए आपको नहीं भूलूँगा और बार-बार चित्त लगाकर आपका स्मरण करूँगा। अब अपनी दीनता से तथा अपने दु:ख में मन न लगाकर, आठों प्रहर आपका ही गुणगान करता रहूँगा॥

॥ सोरठा ॥

इतना किया करार, जब गर्भ में बाहिर भया।
भूला सिरजनहार, तुलसी भौ जग जाल में॥

अर्थ—तुलसीसाहब कहते हैं कि जब वह गर्भ से बाहर आता है, तब उसने जितनी प्रतिज्ञा कर रखी भवजाल में फँसकर उस बनाने वाले प्रभु को वह भूल गया॥

॥ चौपाई ॥

अब बाहिर का लागा रंगा। माता मोह पिता के संगा॥
लरिकाई लट पट जग खेला। तोतरि बात मात सँग बोला॥
भाई बंद सकल परिवारा। ठुमठुम पाँव चलै तेहि लारा॥
लरिकाई ऐसी विधि खोई। तरुन भये तरुनी सँग मोही॥
मन की मौज करै रस रंगा। भूला ज्ञान भया चित भंगा॥
अब साहिब की याद बिसारी। माया मोह बँधा संसारी॥
मद में मस्त कछू नहिं सूझै। साध संत को कछु न बूझै॥
खान पान निस दिन मद माता। कामिन संग रहै रँगराता॥
जिन यह घट का साज बनाया। ताहि बिसारि जगत मन लाया॥

यह जग झूँठ सराय बसेरा। भोर गये उठि सूना डेरा॥
ऐसे या जग का ब्योहारा। जनम जुवा जस बाजी हारा॥
नेक न साहिब से मन लाया। बिरध भया तब अति दुख पाया॥
ऐसे सकल जनम गयो बीती। नेक न जानी साहिब रीती॥
अंत समय जम आनि सतावा। मुसकिल कष्ट महा दुख पावा॥
मार परै जब कौन बचावै। कठिन काल बिकराल सतावै॥

अर्थ–अब उसे बाहर का प्रभाव लगा और वह पिता के साथ मोह में पागल (माता) रो उठा। बाल्यावस्था में वह लटपटाता हुआ संसार में खेला तथा अपनी तोतली बातों में माता से बोलता रहा।

भाई, बंधु एवं समस्त परिवार के बीच वह ठुमक-ठुमक चला तथा सभी ने उसे प्यार किया। बाल्यावस्था को उसने इस प्रकार नष्ट कर दिया। और युवक होने पर तरुणियों के साथ मुग्ध हो उठा।

इस युवावस्था में मन की मौज में आनन्द की गंगा में बहता रहा, आत्मबोध नष्ट हो उठा और चित्त माया में लिप्त होने के कारण भूल ज्ञान से टूट गया। वह अब परमात्मा का याद भूल गया तथा माया के मोह में बँध कर संसारी हो उठा।

वह अपने अहम् भाव में मस्त था तथा उसे कुछ सुझाई नहीं पड़ता था। साधुओं तथा सन्तों को वह कुछ नहीं समझता था। रात-दिन वह खान पान के मद में मस्त रहता था और कामिनियों के साथ नाना प्रकार की विलास क्रीड़ाओं में मस्त रहता था।

जिसने इस शरीर की रचना करके सुन्दर स्वरूप प्रदान किया है तुन्हें भूलकर वह सांसारिक प्रपंचों में मन लगा लिया। वह संसार असत्य है सराय के बसेरे की तरह (आज है, कल नहीं), सवेरा होने पर समस्त डेरा सूना हो उठता है।

इस संसार का मिथ्यात्मक व्यवहार ऐसा ही है, जन्म रूपी जुआ में बाजी हारने जैसा, यहाँ का सारा कार्य है। अपने स्वामी ईश्वर से नेक काम भी मन नहीं लगाया और जब वृद्ध हुआ तो अत्यधिक दुःख प्राप्त हुआ।

अन्तिम समय में जब यातनाएँ मिलने लगेंगी तो कौन बचा सकता है और उस समय तो विकराल (भयंकर) कष्ट के कारण अत्यन्त दुःख प्राप्त किया॥

जब मनुष्य के ऊपर समय की मार पड़ने लगती है तो उसे कौन बचा सकता है। उस समय भंयकर काल विकराल रूप में कष्ट देता है।

॥ दोहा ॥

ऐसा नर तन पाइ के बादइ जनम गँवाई।
सो अस अंधा जग भया परै नरक में जाइ॥

अर्थ–इस प्रकार का श्रेष्ठ मनुष्य शरीर प्राप्त करके व्यक्ति व्यर्थ ही अपना जीवन नष्ट करता है। इसी के फलस्वरूप वह संसार अंधा हो उठा फलस्वरूप बाद में जाकर नरक में जा पड़ता है॥

॥ छन्द ॥

ऐसा जग भूला सहै जम सूला। धर्मराय तन त्रास दई॥
निज नाम न जाना बहु पछिताना। जिन नित काल को मार सही॥
ता से नर चेतौ छांड़ि अचेतौ। नर तन गति ये जाति बही॥
तुलसी कही साची कोउ न बाची। बिन सतसंगति पार नहीं॥

अर्थ–इस परमात्मा को संसार इस प्रकार भूलकर यम के द्वारा दिये हुए कष्टों को सहता रहता है। धर्मराज (यम) उसे नाना प्रकार के संकट देते रहते हैं॥

वह अपना नाम भी नहीं जानता और बराबर पछताता रहता है और वह प्रतिदिन काल की मार सहता रहता है।

हे मनुष्यों! इससे तो अब होश में आओ (अज्ञान को छोड़ो), मानव शरीर की यह दुर्गति होती है, जबकि वही जाति है (जो ऋषि आदि की है)। तुलसी साहब सत्य कहते हैं। यम की यातना से कोई नहीं बच पाता। अतः समझो कि बिना सत्संगति के इस भवसागर से उद्धार सम्भव नहीं है॥

॥ सोरठा॥

काया रचन विचार, जाही से ये जग भया।
सो विधि कहौ सँवार, बूझै जो जिन घट लखा॥

अर्थ–इस शरीर रचना पर तो जरा विचार करो, इसी से यह संसार उत्पन्न हुआ है, मैं अत्यन्त सँवार-सजाकर विधिपूर्वक उसका वर्णन करूँगा जिससे कि वह जिसने पिंड के भीतर परमात्मा का अनुभव किया है, वह भलीभाँति उसे समझे॥

॥ चौपाई॥

निः नामी निः अच्छर भाखौं। अब निज सुरति नाम से राखौं॥
ता से जीव होइ निरवारा। भवसागर से उतरै पारा॥
संत कृपा सत संगति होई। सतगुरु मिलि होइ नाम सनेही॥
अब मैं कहों आदि गति न्यारी। घट देखै सो लेइ बिचारी॥
सब गति भिन्न-भिन्न कहों भाखा। जानै जीव मिटै अभिलाखा॥
पिंड माहिं ब्रह्मंड बताऊँ। भिन्न भिन्न ता को दरसाऊँ॥
जो बाहिर सोइ पिंड दिखाई। देखा जाइ पिंड के माहीं॥
तुलसी ताहि पाइ धसि देखा। घट भीतर भिनि भिन्न बिबेका॥
जस जस संत कहा घट लेखा। तस तस तुलसी नैनन देखा॥
अब मैं या की कहों लखाई। जो घट भीतर दीन्ह दिखाई॥
तुलसि निकाम संत कर बंदा। जित जित जोओं जग सब अंधा॥
कोइ न मानै बात सत मेरी। फिरि फिरि कर्म बँधै भौ बेरी॥
भिन्न भिन्न संतन गोहरावा। काहू हिरदे चेत न आवा॥
घट में सुरति सैल जस कीन्हा। कागभसुण्ड भाखि तस दीन्हा॥
कागभसुण्ड कितहुँ नहिं भयेऊ। तुलसी सुरति सैल तन कहेऊ॥
कागभसुण्ड काया के माहीं। राम रमा मुख पैठा जाई॥
तुलसी ता की गति मति जानी। रामायन में कीन्ह बखानी॥
यह सब घट में भाखि सुनाई। अंधे जिव अंतै लै जाई॥
भरत चत्रगुन लछिमन भाई। यह घट माहिं कहेउ समझाई॥
सुमिंतरा केकई कौसिल्या। ये तन भीतर घट में मिलिया॥

सीता दसरथ राम कहाये। ये सब घट भीतर दरसाये॥
सरजू सुरति अवध दस द्वारा। ये घट भीतर देखि निहारा॥
रावन कुम्भ लंकपति राई। त्रिकुटी ब्रह्म बसे तेहि माहीं॥
रावन ब्रह्म कहा हम जोई। त्रिकुटी लंक ब्रह्म है सोई॥
मन्दोदरी भभीषन भाई। इन्द्रजीत सुत त्रिकुटी माहीं॥
ये संबाद कहा घट माहीं। रामायन घट माहिं बनाई॥
जो कोइ अंध जीव नहिं मानै। पुनि पुनि परै नरक की खानै॥
संतन की गति कोइ न जानै। पिंड माहिं ब्रह्मंड बखानै॥
उनकी गति मति कोइ कोड़ जानै। बिन सतसंग नहीं पहिचानै॥
उनकी कृपा दृष्टि जब होइ। तब अदृष्ट को बूझै सोई॥
पिंड ब्रह्मंड सैल कोइ पावै। तब सतगुरु सत दया लखावै॥
अब ब्रह्मण्ड की कहों लखाई। कोइ कोइ साधू बिरले पाई॥
जो कोइ भये अधर में लीना। जिन को आया संत अकीना॥
जिन जिन सुरति सैल घट कीन्हा। ता की गति मति बिरलै चीन्हा॥
अब मैं अपनी कहों दृढ़ाई। सुरति सैल घट माहिं लखाई॥
रावन राम सकल परिवारा। ये घट भीतर चुनि चुनि मारा॥
और अनेक कहे बहु भाँती। ये सब माया की उतपाती॥
ये मत सत्त सत्त जिन माना। उनका आवागवन नसाना॥
या में कोई भर्म जो लावै। बार-बार चौरासी पावै॥
मैं अपने अस देख बखानी। संत कृपा से महुँ पुनि जानी॥
अब ब्रह्मंड पिंड कर लेखा। भाखा जोइ निज नैनन देखा॥

अर्थ–अब मैं उस निष्कामी तथा अक्षर शून्य परम तत्त्व का वर्णन करता हूँ। अपनी सुरति ज्ञान से जुड़े नाम का वर्णन करता हूँ। जिसको समझने या साधना करने से जीव माया से मुक्त हो कर इस भवसागर से पार हो उठता है॥

संतों की कृपा से सत्संगति होती है और वह सतगुरु से मिलकर 'राम' नाम का स्नेही हो उठता है। अब मैं उस आदि ब्रह्म की विलक्षण गति का वर्णन करता हूँ जो स्वयं पिंड देखकर (उसमें स्थित ब्रह्म का) स्वयं विचार कर लेता हूँ॥

मैं जीव से सम्बद्ध सम्पूर्ण गतियों का भिन्न-भिन्न रूप से वर्णन कर रहा हूँ ताकि जीव उन्हें समझ ले और उसकी भौतिक अभिलाषाएँ समाप्त हो उठें। अब मैं पिंड में स्थित ब्रह्मांड का वर्णन करता हूँ और भिन्न-भिन्न रूप में उसे दिखाऊँगा॥

जो पिंड के बाहर है, वह पिंड के अन्तर्गत दिखाई पड़ता है, मैंने तो स्वयं समझकर सब कुछ पिंड के अन्तर्गत देखा है। तुलसी साहब कहते हैं कि उसे पाकर पिंड में प्रविष्ट होकर (अनुभूति द्वारा उसे) देखा है। इस पिंड के भीतर भिन्न-भिन्न अनेक सार विवेक हैं॥

जैसे-जैसे संतों ने पिंड (घट) के विषय में जानकारी दी है, तुलसी साहब कहते हैं कि वैसा-वैसा

मैंने उन्हें अपने नेत्रों से देखा है। अब मैं इसकी दृश्य रचना (लखाइं) के बारे में कहता हूँ, जो घट के भीतर मुझे दिखाई पड़ा है॥

मैं तो निष्काम ब्रह्म (गुरु) का शिष्य हूँ। जिधर-जिधर विचार करके देखता हूँ, यह संसार अंधा ही दिखाई पड़ता है। मेरी सच्ची बात कोई नहीं मानता है और वह पुन: पुन: भवसागर में कर्मबन्धन की बेड़ी में फँसता जाता है॥

भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के सन्तों को मैंने बुलाया, और उन्हें समझाया) किन्तु किसी के हृदय में ज्ञान नहीं आया। स्वयं कागभुशुण्डि ने ऐसा बताया है कि पिंड में ही सुरति ने ज्ञान का सैल (आश्रय) बना रखा है॥

कागभुशुंडि कोई नहीं हुआ था। स्वयं तुलसी ने इस शरीर को सुरति ज्ञान का विश्राम गृह बताया है। कागभुशुण्डि श्रीराम की काया के मध्य गया और वह श्रीराम के मुख द्वारा प्रविष्ट हुआ था॥

उसके ज्ञान और उसकी बुद्धि को तुलसी ने समझा था और उसका वर्णन रामायण में किया है। इस माया संसक्त जीव को अन्त में ले जाकर यह सब (पिंड में ब्रह्मांड रहस्य) घट के भीतर ही कहकर बताया है॥

सुमित्रा, कैकेई एवं कौसल्या ये सभी इस पिंड के भीतर मिली हैं। जो सीता, दशरथ तथा राम कहे गए हैं, ये सभी घट के भीतर दिखाए गए हैं॥

सरयू नदी और सुरति रूपी अयोध्या के दसों दरवाजे, मैंने सभी को घट के भीतर निहार कर देख लिया है। कुंभकर्ण एवं लंका के स्वामी रावण ब्रह्म के पास त्रिकुटी में निवास करते हैं॥

हमने जिसे रावण कहा है वह त्रिकुटी रूपी लंका में स्थित ब्रह्म है। मंदोदरी तथा रावण का भाई विभीषण, पुत्र मेघनाद सभी इसी त्रिकुटी में हैं॥

मैं यह सब संवाद घट के बीच का कहता हूँ। रामायण तो घट के मध्य की कथा की ही बनी है। यदि कोई व्यक्ति अंधा है तो वह इसे न स्वीकार करे और न स्वीकार करने के कारण पुन: नरक में पड़ेगा॥

सन्तों की गति कोई नहीं जानता। वे इसी पिंड में ही ब्रह्मांड बखानते हैं। उनके ज्ञान और उनकी बुद्धि को कोई नहीं जानता क्योंकि बिना सत्संग के यह नहीं पहचाना जा सकता॥

जब प्रभु की कृपा होती है तभी अदृष्ट (अंधे) को सब कुछ दिखाई पड़ने लगता है। तभी कोई साधक इस पिंड में ब्रह्मांड एवं सुरति शैल पा लेता है क्योंकि तभी (पाने के क्षण ही) सतगुरु की कृपा होती है॥

अब मैं ब्रह्मांड के दृश्य का वर्णन करता हूँ जो किसी-किसी विरले संत को दिखाई पड़ता है। ये सन्त अन्तरात्मा में लीन हो जाते हैं, इन्हीं सन्तों पर विश्वास होता है॥

जिन्होंने घट की सुरति शैल पर विश्रामालय बना लिया है, उनके ज्ञान तथा उनकी मति की पहचान बिरले ही करते हैं। अब मैं घट में सुरति के शैल को दिखाकर अपनी चिन्तनगत दृढ़ता को स्पष्ट करता हूँ।

राम और रावण घट के भीतर सभी परिवार के रूप में हैं और उन्होंने इस घट के भीतर ही उनको चुन-चुन कर मारा है और रावण की भांति इसी घट में ही अनेक उत्पाती राक्षस हुए हैं (और वे भी मारे गए हैं)॥

हमारे इस सत्य मत को जिसने सत्य माना है, उनका इस लोक में आवागमन समाप्त हो उठा है। इस तथ्य में जो व्यक्ति भ्रम उत्पन्न करता है, वह बार-बार नरक की चारों योनियों में पड़ता है॥

मैंने उसे इस प्रकार स्वयं देखा है, और उन्हें मैंने सन्तों की कृपा से जाना भी है। अब इस पिंड तथा ब्रह्मांड का वर्णन वही-वही करता है–जिसको अपने नेत्रों से देख लिया है॥

॥ दोहा ॥

पिंड सैल ब्रह्मण्ड की, जस जस गति मति मोर।
जो सत मत संतन कही, देखा घट गढ़ तोर॥

अर्थ–पिंड ही ब्रह्मांड का पर्वत शिखर है, जैसी कि मेरी समझ है, सत्य के मत का जो वर्णन सन्तों ने किया है, उसे इस घट के अन्दर मैंने देखा है॥

॥ छन्द ॥

गाया घट लेखा अगम अलेखा। जिन जिन देखा सार सही॥
महुँ पुनि भाखी देखा आँखी। सूरति धसि दस द्वार गई॥ १॥
संतन जोइ गाई महुँ पुनि पाई। आदि अंत गति कहनि कही॥
जो जो घट माहीं सब दरसाई। जो रचना ब्रह्मड मई॥ २॥
जिन जिन निज जानी देख बखानी। जिन नहिं मानी भर्म सही॥
पंडित गति ज्ञानी भर्म भुलानी। भेष भेद भौ माहिं कही॥ ३॥
छत्री और ब्राह्मन बैस अपावन। सूद्र मती छर छार भई॥
का को गोहराई आदि न पाई। तुलसी सब देखा भर्म मई॥ ४॥

अर्थ–मैंने यहाँ अगम तथा न दिखाई पड़ने वाले अलक्ष्य घट के प्रकरण (लेखा) का वर्णन किया। जिन-जिन महात्माओं ने उसे देखा है (अनुभव किया है) वही उसका सही निचोड़ है। मैंने उसका पुनः आँखों से देखकर वर्णन किया है, और मेरी सुरति (ज्ञान) दसों द्वारों में प्रविष्ट होकर वहाँ पहुंची है॥ १॥

जिसे सन्तों ने गाया है (बताया है, वर्णन किया है) मैंने भी उसी को प्राप्त किया है और उसकी आदि अन्त का उस रूप में वर्णन किया है। जो-जो घट के अन्तर्गत है, मैंने सबके विषय में बताया है, यह सारी रचना ब्रह्मांडमयी है॥ २॥

जिन-जिन ने इसे जाना है, उसको देखकर वर्णित किया है–जिन्होंने नहीं माना है, वह पूरी तरह से भ्रम में हैं। पंडित तथा ज्ञानी (ज्ञान एवं पांडित्य के गर्वभ्रम में) अपने भ्रम में भुलाए रहे और ईश्वर के वेष तथा भेद को संसार (सृष्टि) के अन्तर्गत बताया (ब्रह्मांड के अन्तर्गत नहीं)॥ ३॥

क्षत्रिय तथा ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र सभी की मति (ज्ञान) जलकर राख हो गई। इस मनुष्य समाज में किसको बुलावें किन्तु वे इसके मूल रहस्य का ज्ञान नहीं प्राप्त कर रखा है, तुलसी साहब कहते हैं कि सभी को मैंने भ्रम में पड़ा हुआ देखा है॥

॥ सोरठा ॥

ब्राह्मन अरु पुनि सूद्र, ये बूड़े सब उद्र को।
बैस्य बसा भौ बास, कस अकास डोरी गहै॥

अर्थ–ब्राह्मण तथा दलित ये सभी अपने पेट भरने में ही डूब गए। वैश्य का निकृष्ट स्थान पर निवास हो उठा और शून्याकाश की डोर को ये तीनों किस प्रकार पकड़ सकते हैं सम्भव नहीं हैं॥

॥ चौपाई ॥

सब ये घट की सैल बखाना। पिंड माहिं ब्रह्मंड दिखाना॥
आगे घट का भेद बताई। अब जो सुनो कहों समझाई॥ १॥
तिल परमाने लगे कपाटा। मकर तार जहँ जिव की बाटा॥
इतना भेद जानि जिन कोई। तुलसीदास साध है सोई॥ २॥
आगे अदबुद ज्ञान अपारा। पिरथम घट का कहों बिचारा॥

अर्थ–यह सब मैंने घट की यात्रा (सैल) वर्णन किया और मुझे पिंड में ही ब्रह्मांड दिखाई दिया। आगे, घट के भेदों को बताऊँगा–मैं समझाकर कहता हूँ–अब उसे सुनो॥

चित्त की चेतना के द्वार पर तिल के समान छोटा कपाट लगा हुआ है। जीव का रास्ता वहाँ मकर तार जैसा सूक्ष्म है। जिसने इतना भेद समझ लिया है–तुलसीदास कहते हैं, वही साधु है॥ २॥

आगे अपार अद्‌भुत ज्ञान है, अब इस पृथ्वी घट पर विचार कह रहा हूँ॥

॥ अर्थ घट का भेद और ठिकाना ॥

(सवाल)

१. पृथ्वी का माथा कहाँ है?
२. सुर का तेज कहाँ है?
३. चंद्र की जोति कहाँ है?
४. पानी का मूल कहाँ है?
५. कँवल का फूल कहाँ है?
६. वायु की नाभी कहाँ है?
७. गनेस की स्वाबी कहाँ है?
८. समुद्र का सोत कहाँ है?
९. आकाश का पोत कहाँ है?
१०. सुरति सहदानी कहाँ है?
११. जीव की बानी कहाँ है?
१२. जीव का नाम कहाँ है?
१३. सुरति का ठाम कहाँ है?
१४. ध्यान की सुरति कहाँ है?
१५. ज्ञान की मूरति कहाँ है?
१६. सुरति की निरति कहाँ है?
१७. सुमेर की जड़ कहाँ है?
१८. तिल भर हाड़ काया में कहाँ है?
१९. गगन का कलेजा कहाँ है?
२०. मन का मुख कहाँ है?
२१ काम का आदि कहाँ है?
२२. देही का नूर कहाँ है?
२३. बदन का पिंजर कहाँ है?
२४. सिव का ध्यान कहाँ है?
२५. बेद का भेद कहाँ है?
२६. गुनी का गुन कहाँ है?
२७. राग का रस कहाँ है?
२८. सुर का आकार कहाँ है?
२९. आकार का आदि कहाँ है?
३०. अंत की समाधि कहाँ है?
३१. माया की धुनि कहाँ है?
३२. धुनि की सुन्न कहाँ है?
३३. सुन्न का शब्द कहाँ है?
३४. ज्ञान का मूल कहाँ है?

॥ जबाब ॥

१. पृथ्वी का माथा मैंनागिरी पर्वत में है।
२. सूर का तेज उदयागिरि पर्वत पर हैं।
३. चंद्र का तेज चंदागिरि पर्वत पर हैं।
४. पानी का मूल निरंजन की दीपें में है।
५. कमल का फूल अछैद्वीप में है।
६. वायु की नाभि रंभा के पेड़ में है।
७. गणेश की स्वाबी मानसरोवर में है।
८. समुद्र का स्रोत समीवृक्ष में है।
९. आकाश का पोत वाराह के माथे पर है।
१०. सुरति सहदानी शब्द में है।
११. जीव (हंस) की बानी अष्ट कमल में है–जीव अरूपी द्वादश कमल में है।
१२. जीव का नाम शून्य कमल में है।
१३. सुरति का स्थान दो दल वाले कमल में है।
१४. ध्यान की सुरति गगन के ऊपर नयन नासिका के अग्रबीच में है।
१५. ज्ञान की मूर्ति ब्रह्मांड कमल में है।

१६. सुरति की निरति साहब (परमात्मा के शब्द) में है।
१७. सुमेर की जड़ नाग के कलेजे में है।
१८. तिल भर हाड़ पाँच इन्द्रियों में है।
१९. गगन का कलेजा राग के आकार में है।
२०. मन का मुख षट्दल कमल में है।
२१. काम की आदि शिव (शंकर) की सुरति में है।
२२. देही का नूर हरि के पास है।
२३. बदन का पिंजर पृथ्वी के भीतर है।
२४. शिव का ध्यान हरि के शब्द कमल में है।
२५. वेद का भेद चार दल कमल में है।
२६. गुनी का गुन षटदल कमल में है।
२७. राग का रस पुरुष के शब्द में है।
२८. सुर का आकार शून्य में है।
२९. आकार का आदि अनाहत नाद में है।
३०. अन्त की समाधि ब्रह्मलोक (साहब के लोक) में है।
३१. माया की ध्वनि चर्तुदल कमल में है।
३२. ध्वनि की शून्न वे ज्ञान के मूल में है।
३३. शून्य का शब्द निरन्तर में है।
३४. ज्ञान का मूल नाम में है।

॥ सोरठा ॥

इतना देहु बताइ, जीव कहों समझाइ कै।
अगम निगम घर पाइ, तब तुलसी सब बिधि लखै॥

अर्थ–मैं जीवों को समझा कर कहता हूँ कि तुम इतने प्रश्नों का उत्तर दे दो। इस अगम्य एवं अज्ञेय का घट पाकर तुम इसे भलीभाँति देखते, तुलसीदास कहते हैं कि (इस शरीर को) इन प्रश्नों के प्रकाश में इसे भलीभांति क्यों नहीं देखते?

॥ जवाब चौपाई ॥

आगे उलटा भेद बताऊँ। अगम निगम घट भेद सुनाऊँ॥
अब या का अरथंत सुनाऊँ। घट में ठीका ठौर बताऊँ॥
जो कोई साध सैल घट कीन्हा। सुन करि अर्थ होइ लौ लीना॥

अर्थ–आगे अब मैं इसका उल्टा भेद बता रहा हूँ। इससे सम्बद्ध इसे अगम्य एवं अज्ञेय तत्त्व का मैं भेद बताऊँगा। अब मैं इसका अर्थान्तर (प्रश्नों का अर्थ) सुनाता हूँ। इसी घट में इनका उचित निवास तथा पहचान (टीका ठौर) बताता हूँ। जिस साधु ने इस पिंड (घट) में शैल (विश्रान्ति स्थली) कर ली है–इसके अर्थ को सुनकर वही उसकी समाधि में लीन हो उठेगा॥

॥ दोहा ॥

ये अस्थान बताइया, साधू सुनौ बखान।
कहै तुलसी घट भीतरे, सूरति से पहिचान॥

अर्थ–मैंने वर्णन करके इन स्थानों के विषय में बतला दिया, हे साधु जन! इस वर्णन को सुनें। तुलसी साहब कहते हैं कि इस शरीर के भीतर सुरति ज्ञान द्वारा इनकी पहचान करो।

॥ सोरठा ॥

रामायण घट सार सुरति शब्द में लखि परै।
गगन कँज कर बास ऊपर चढ़ि जिन देखिया॥

अर्थ–यह मेरी रामायण पिंड का निचोड़ तत्त्व है और इसे सुरति समाधि से ही देखा जा सकता है। सुरति में स्थित कमल दल पर निवास करते हुए उसके ऊपर चढ़कर जिन्होंने इसे देखा है (वही इसके प्रमाण हैं।)॥

॥ चौपाई ॥

अब सुनियौ ब्रह्मंडी लेखा। कोटिन परलै घट बिच देखा॥
भीतर गुफा एक जो कीन्हा। कोटि प्रलै उबार जिव लीन्हा[१]॥
सब्द निरंतर संत है भाई। गहै जीव पहुँचै जब जाई॥
घट का मथन सुरति से[१] साधै। बा को काल कभी नहिं बाँधै॥
कोटिन सूर ब्रह्मंड के माहीं। कोटिन कोटि देखि सब ठाहीं॥
घट बिचार घट ही के माहीं। ता में ब्रह्मा बिस्नु रहाई॥
सिव संकर सब घट में फंदा। घट में नदी अठारा गंडा॥
घट में देखे सात समुन्दर। जिन से जल पहुँचै नभ अंदर॥
घट में तीरथ बरत मँझारी। घट में देखा कृष्न मुरारी॥
घट में जोधा सामन्त होई। घट में राजा परजा सोई॥
घट में हिंदू तुर्क दोइ जाती। घट में कुला कर्म की पाती॥
घट में नेम दया अरु धर्मा। घट में पाप पुन्य बहु कर्मा॥
घट में डंड बंध दोउ भाई। जो कछु बाहिर सो घट माई॥
घट में बास बसन जग लागा। घट में कामिनि खेलै फागा॥
घट में षट पलास सोइ फूला। घट में लोग प्रजा झकझूला॥
घट में स्वर्ग नर्क हैं दोई। घट में जनम मरन पुनि होई॥
घट में कथा पुरान सुनावै। घट में माया करम करावै॥
घट में चोरी चोर अपारा। घट में करता सिरजनहारा॥
घट में राजा राज कराई। घट में चौकी पहरा भाई॥
घट ही में सब न्याव चुकावै। घट में रागी तान सुनावै॥
घट में नाच कूद रे भाई। घट में राग अलाप सुनाई॥
घट में साह महाजन होई। घट में सब्द सुन्न है सोई॥
घट में राजा है बलि बावन। घट में सीता रघुपति रावन॥
घट में लंका सा गढ़ भाई। घट में छानवे मेघा छाई॥
घट में बैठे पाँचौ नादा। घट में लागी सहज समाधा॥
ऊँच नीच परबत झक झाई। निस दिन झरना बहत रहाई॥
मगरमच्छ घट माहिं मँझारा। घट में बस्ती और उजारा॥
घट में सुकदेव ब्यास अरु नारद। घट में ऋषी मुनी अरु सारद॥
घट में राजा बरन कुबेरू। घट में माँडे आठ समेरू॥

---

१. मुं० दे० प्र० की पुस्तक में दूसरी चौपाई इस तरह है—''भीतर गुफा एक है भाई। उबरे जीव पार जब जाई''; और चौथी चौपाई में 'सुरति से' की जगह 'जीव कोइ' है।

कहँ लगि घट का कहौं पसारा। घट में अनेक बिधान सँवारा॥
जो सब घट कहि बरनि सुनाई। जौ जग कागद मिलै न स्याही॥

अर्थ–अब ब्रह्मांड का वृत्तान्त सुनिये। इस पिंड (घट) के बीच करोड़ों प्रलय देखा है। अपने पिंड के भीतर जो एक विशिष्ट गुफा है, उसने जीव को उन कोटि प्रलयों से बचा लिया है॥

हे भाई! शब्द (निरंकार) निरन्तर सत्य है। जीव जब वहाँ पहुँचता है तो वह उसको ग्रहण कर लेता है (उसकी रक्षा करने लगता है). इस घट का मंथन सुरति समाधि से साधो–सुरति से शब्द (निरंकार) को साधने वालों को काल कभी भी नहीं बाँध पाता॥

ब्रह्माण्ड के बीच कोटि-कोटि सूर्य हैं। इन कोटि-कोटि सूर्यों को देखकर सभी स्थिर हो जाते हैं। घट का विचार घट के मध्य ही किया जा सकता है, बाहर नहीं-जिसके अन्दर ब्रह्मा, विष्णु आदि रहा करते हैं॥

शिवशंकर तो इस घट के फंदे हैं। इस घट के अन्दर ९० नदियाँ (१८ × ५ = ९० = एक गंडा पाँच के बराबर होता है) हैं। इस घट में मैंने सात समुद्रों को देखा है, जिनका जल शून्याकाश के बीच पहुँचता है॥

इस घट में तीर्थ एवं व्रत के स्थान हैं और इसी घट में मैंने मुरारी कृष्ण को भी देखा है। इसी घट के अन्तर्गत समस्त योद्धागण एवं सामन्तगण है–लोक में दिखाई पड़ने वाले राजा प्रजा सभी घट में हैं॥५॥

इसी घट में हिन्दू-तुर्क (मुसलमान) दो जातियाँ हैं–इस घट में सम्पूर्ण कर्मों की पंक्तियाँ (स्थितियाँ) हैं। इसी घट में ही नियम, दया एवं धर्म हैं। इसी घट के अन्तर्गत पाप-पुण्य से संयुक्त समस्त कर्म है॥

इस घट के दो भाई है–एक दण्ड है और दूसरा बंधन है। इसलिए जो कुछ बाहर है, वही यहाँ भी है। इसी घट में ही लोगों के सारे निवास हैं,और इसी घट में नवयुवतियाँ होली खेलती हैं॥

इसी घट के अन्तर्गत छः दलों का पलास फूला हुआ है–इसी घट में ही लोग प्रजा को झकझोरते रहते हैं। इसी घट में स्वर्ग तथा नरक दोनों हैं और इसी घट में जन्म और जन्म के बाद पुनः मरण होता है॥

इसी घट के अन्दर ही साधु जन कथा-पुराण सुनाते हैं और इसी घट में ही माया नाना प्रकार के कर्मों को कराती रहती है। घट में ही चोरी करने वाले अनन्त चोर हैं। इसी घट में ही संसार का रचनाकर्त्ता सृजनहार ईश्वर भी है॥

इसी घट में राजा राज्य करता है, इसी घट में चौकी और पहरा भी है? इसी घट में ही सारे न्याय चुकाए जाते हैं इसी घट में ही राग रागिनियों का ज्ञाता (रागी) नाना प्रकार की संगीत की तानें सुनाता रहता है॥

सम्पूर्ण नाच-कूद इसी घट में है–इसी घट में ही राग तथा आलाप सुनाई पड़ता है। इसी घट में साहु तथा महाजन रहते हैं और इसी घट में ही वह शून्य शब्द भी है॥

इसी घट में राजा बलि और वामनावतार भी हैं, इसी घट में सीता, रावण तथा राम है। इसी घट में वह घट लंका भी है, इसी घट में ९६ प्रकार के मेघ छाये रहते हैं॥

इसी घट में पाँचों प्रकार के नाद स्थित हैं और इसी घट में ही सहज समाधि लगी रहती है। इसे घट में चारों वेद रह रहे हैं और इसी घट में असंख्य ब्रह्म समाविष्ट हैं॥

घट में ही सन्तों का स्वर्ग तथा पाताल हैं, इसी घट में भयंकर काल बैठा हुआ है–जो सब बाहर है, वही सब अन्दर भी है–घट का भेद घट के ही अन्दर है॥

इसी घट में सारे अड़सठ तीर्थ हैं और इसी घट में गंगा की धारा भी बहती है। इसी घट में ही लोग स्नान करते हैं और इसी घट में ही तीनों लोक समाये रहते हैं॥

घट की थाह कोई नहीं जान पाया–इसी घट में पिंड तथा ब्रह्मांड समाये हुए हैं। इसी घट में ही हाट-बाजार लगाया हुआ है–घट में ही वह दामिनि (विद्युत लेखा) है और यही मन अपने पति को प्राप्त करता है॥

इस घट में अपार पर्वत तथा वृक्ष हैं और घट में ही विष्णु के दशावतार बैठे हुए हैं। इसी घट में हाथी और घोड़े हैं और इसी में समस्त हिरण स्थित हैं॥

इसी घट में ऊँचे, नीचे, पर्वत, खोह (झल) और झाड़ियाँ (झाई) हैं और यहीं रात-दिन झरने बहते रहते हैं। इसी घट के अन्दर ही मगरमच्छ है–इसी घट में बस्तियाँ तथा उजाले हैं॥

घट में ही शुकदेव, व्यास, एवं मुनि नारद हैं–इसी घट में ऋषि, मुनि एवं सरस्वती देवी रहती है। इसी घट में वरुण राजा (बरन) एवं कुबेर रहते हैं और इसी घट में आठों सुमेरु पर्वत सुशोभित (मौंडे-मण्डित) होते हैं॥

इस घट के विस्तार का कहाँ तक वर्णन करूँ। घट में अनेक प्रकार की रचनाएँ सजाई गई हैं। उन सम्पूर्ण बातों का जो घट में स्थित है, मैं उल्लेख कर चुका हूँ। यह वर्णन इतना अधिक है कि उसके निमित्त स्याही और कागज भी कम पड़ गए है॥

॥ दोहा ॥

घट भीतर जो देखिया सो भाखा विस्तार।
बेंदी भेद जनाइया तुलसी देखि विचार॥

अर्थ–घट के भीतर जो देखा, उसका मैंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। तुलसी साहब कहते है कि मैंने भेद का कारण एवं उसके अनेक भेदरूपों का अन्तर स्पष्ट कर दिया–उसे तुम देखो तथा विचार करो॥

॥ छन्द ॥

सब ठीक बखाना घट परमाना। घट घट में सब ठाम ठई॥
बाहिर सोइ अंदर सब घट मन्दर। देखि हिये बस बास कही॥ १ ॥
बूझै कोई ज्ञानी अंतरजामी। मूरख मूढ़ न चेत भई॥
आगे पुनि गाऊँ बरनि सुनाऊँ। इन सब के अस्थान मई॥ २ ॥
तुलसी तन तारा खोलि किवारा। पैठि मँझारा सार लई॥

अर्थ–घट को प्रमाण के रूप में रखकर मैंने सारी बातें ठीक-ठीक कही हैं। घट में ही सभी के होने के ठीक-ठीक स्थान हैं। जो बाहर है, वह सब घट रूपी मन्दिर के अन्दर है, हृदय के निवास को वहाँ देखकर ये बातें कही हैं॥ १ ॥

इसे कोई अन्तर्यामी ज्ञानी ही बूझ सकते है–मूढ़ एवं मूर्ख के मन में इसका ख्याल नहीं आता। मैं पुनः इस प्रसंग का आगे गान करके वर्णन करके सुनाता हूँ–जहाँ इनके स्थान हैं।

तुलसी साहब कहते हैं–इस शरीर के किवाड़ों के ताले को खोलो और सार तत्त्व को ग्रहण करके इसी में बैठो॥ २ ॥

॥ सोरठा ॥

या विधि तन मन ग्यान भीतर देखा जोइ कै।
साधू करौ प्रमान भिन्न भिन्न तत मत कहा॥

अर्थ–इस प्रकार, शरीर और मन का ज्ञान मैंने घट के भीतर जाकर देखा और अब साधु जन इस भिन्न-भिन्न शरीर की कथाओं के प्रमाण हैं॥

॥ चौपाई ॥

अब उनके अस्थान बताऊँ। भिनि भिनि ग्रंथन में समझाऊँ॥

अर्थ-अब उनका स्थान मैं बताता हूँ तथा यह भिन्न-भिन्न ग्रंथों से लेकर समझाता हूँ॥

॥ कोठों के नाम ॥

कोठा प्रथम उतेसुर नाईं। बैठे ब्रह्मा बेद पढ़ाई॥
दूसर धरम-गंध दरसाई। बैठे बिस्नू ज्ञान सुनाई॥
तीसर कोठा धुन-धर भाई। बैठे संकर जोग कराई॥
चौथा कोठा रक्तमनि गाई। बरुन बैठि जहँ राज कराई॥
हरि संग्रह पचम बतलाऊँ। आठ सुमेर बसैं तहि ठाऊँ॥
बिजै-धुंध षष्टम कहलाई। मन की कला फिरै तेहिं ठाईं॥
कोठा सतवाँ नगरा नाऊँ। अन्नदेव बैठे तेहि ठाऊँ॥
कोठा अठवाँ रुकमन ताला। जहँवाँ बैठे मदन गोपाला॥
नौवाँ कोठा गौड़ मन माली। दुरमति माया करै बिहाली॥
दसवाँ कोठा उघडू नावाँ। सहस कोटि ऊगैं तेहि ठावाँ॥
करभौनी एकादस नाऊँ। तीनि लोक में जोति समाऊँ॥
द्वादस कोठा बिषमदे गावा। सुर नर मुनि जहँ ध्यान लगावा॥
कोठा त्रयोदस मलदू द्वारे। जोगिनि चौंसठ लाख निहारे॥
चौधा कोठा गगनधर नाऊँ। लच्छ अलच्छ बैठि तेहि ठाऊँ॥
हमसुन्दर पन्द्रा कर नावाँ। बास सुगंध बसै तेहि ठावाँ॥
कोठा सोला अतिसुर नाऊँ। पाँच बजार बसै तेहि ठाऊँ॥
कोठा सत्रा सिषरचल नाऊँ। अठरा गंडा नदी तेहि ठाऊँ॥
अठरा कोठा कड़ेसुर नाऊँ। जीव को तेज बसै तेहिं ठाऊँ॥
कोठा उनीस बंकचल नाऊँ। मुरली सुहावन बजै तेहि ठाऊँ॥
बिसवाँ कोठा कुलँग कहाई। सुकृत बाजा बजै सुहाई॥
इकइस कोठा भानसुर नाऊँ। अलख निरंजन है तेहि ठाऊँ॥
बाइस कोठा धुँधेसुर नाऊँ। मन को ध्यान बसै तेहि ठाऊँ॥
तेइस कोठा तरंगी ताला। बिछई जे जग में जमजाला॥
चौबिस कोठा कंठसुर नाऊँ। सुमति बिचार बसै तेहि ठाऊँ॥
पच्चिस कोठा प्रकृति[१] नाऊँ। मल को पती बसै तेहि ठाऊँ॥
छब्बिस कोठा मुदापल नाऊँ। पवन प्रधान बसै तेहि ठाऊँ॥

---

१. मुं० दे० प्र० के पाठ में 'परकुटी' है।

सताइस कोठा सुताचल नाऊँ। मन अलीप बैठे तेहि ठाऊँ॥
अठाइस कोठा धरनीधर नाऊँ। माया मोह बसै तेहि ठाऊँ॥
उंतिस कोठा कमची नाऊँ। बादल मेघ उठै तेहि ठाऊँ॥
तिसवाँ कोठा निरमल नामूँ। साहिब पलँग बिछा तेहि ठामूँ॥
इकतिस कोठा करोमल नामूँ। नवो नाथ बसते तेहि ठामूँ॥
बत्तिस कोठा बनासुर नामा। नौ कुत्ते बैठे तेहि ठामा॥
तेंतिस कोठा अनधू नामूँ। जम का तेज बसै तेहि ठामूँ॥
चौंतिस कोठा जमाउत नामा। जमुना नदी बसै तेहि ठामा॥
पैंतिस कोठा सकरदू[१] सेता। कामदेव जहँ झरि झरि बहता॥
छत्तिस कोठा गनकू नामूँ। क्रोध कलेस बसै तेहि ठामूँ॥
सैंतिस कोठा अवर धुर धुंधा। बैठ कृष्न जहँ डारै फंदा॥
अरतिस कोठा बँसबल नाऊँ। चौधा कामिनि हैं तेहि ठाऊँ॥
उन्तालिस करियाधर नाऊँ। बैठे दया धरम तेहि ठाऊँ॥
चालिस कोठा किरिकोता नामूँ। सात समुद्र बसै तेहि ठामूँ॥
इकतालिस भौरादे नामा। नवौ कुली नाग तेहि ठामा॥
बयालिस कुम्भेसुर नाऊँ। बारह कुम्भ बसैं तेहि ठाऊँ॥
तेंतालिस भगताधर नावाँ। भय और त्रास बसै तेहि ठावाँ॥
चवालिस कुसमाधर नाऊँ। चारौं बेद बसै तेहि ठाऊँ॥
पैंतालिस मायारट नाऊँ। रोग अरु दोष बसै तेहि ठाऊँ॥
छेयालीस मलया गिरि नावाँ। हंस बिहंग बसै तेहि ठावाँ॥
सैंतालीस हलासुर[२] नामा। तीरथ अरसठ हैं तेहि ठामा॥
अरतालिस कुकरंदर न्यारा। जहँ है सत्त सुकृत[३] का द्वारा॥
कोठा उंचास मरमो नाऊँ। पवन अकास उठै तेहि ठाऊँ॥
कोठा पचास घूघर नामूँ। हरि को तेज बसै तेहि ठामूँ॥
कोठा इक्यावन मजकुर नामा। सहस कँवल फूला तेहि ठामा॥
बावन कोठा जरादे नामूँ। अगिनी जरै ऊँच तेहि ठामूँ॥
त्रेपन कोठा तेराधर नामूँ। धीर गंभीर बसै तेहि ठामूँ॥
चौवन कोठा सिसंधर नावाँ। सत संतोष बसै तेहि ठावाँ॥

---

१ एक लिपि में 'सरंदू' नाम लिखा है।

२. एक लिपि में 'कोलाहर' नाम दिया है।

३. मुं० दे० प्र० की पुस्तक 'सुकृत' की जगह ''मुक्त'' है।

पचपन कोठा हिंडोला नामूँ। नारी नवो बसै तेहि ठामूँ॥
छप्पन कोठा निरधर नाऊँ। अठारा भार बसै तेहि ठाऊँ॥
सतावन कोठा कफादे नावाँ। जीव की मीच बसै तेहि ठावाँ॥
अट्ठावन सुमेरबल नावाँ। मङ्गल पुरुष चरित्तर गावाँ॥
उनसठ कोठा छैसुन्दर नाँमा। आतम रूप बसै तेहि ठामाँ॥
साठ कोठा धौलाधर नाऊँ। तीनों लोक मही तेहि ठाऊँ॥
इकसठ कोठा जैसुन्दर नामूँ। बलधर पुरुष बसै तेहि ठामूँ॥
बासठ कोठा हीरापुर नामूँ। नीर चुवै झरि झरि तेहि ठामूँ॥
त्रेसठ कोठा कलाकर नावाँ। चौथा भवन बसै तेहि ठावाँ॥
चौंसठ तिल बिक्रम कहलावै। जलथल कुम्भ बसै तेहि ठाँवै॥
पैंसठ कोठा सुरतसर नामूँ। जप तप जज्ञ करै तेहि ठामूँ॥
छासठ कोठा सिखरिचल नाऊँ। जोगी असंखन जोग कराऊँ॥
सरसठ कोठा अनन्दी भाई। जहँवाँ काल बसन नहिं पाई॥
अरसठ कोठा चितादे नाऊँ। चित का चक्र फिरै तेहि ठाऊँ॥
उन्हत्तर कोठा सनीता नाऊँ। ज्ञानी बुद्ध बसै तेहि ठाऊँ॥
सत्तर कोठा सलीका नाऊँ। सुन्न की धुन्न उठै तेहि ठाऊँ॥
इखत्तर कोठा उदाधर नाईं। जहँ जग पालक बैठि रहाई॥
बहत्तर कोठा गंजधर नाऊँ। करनी मूल बसै तेहि ठाऊँ॥
कोठा बहत्तर कहेउ बखानी। ले लख भीतर जो पहिचानी॥
यह घट देखि देखि सोइ भाखा। बूझि बूझि साधू मन राखा॥
रामायन घट कहि समझाई। काया भीतर कथि दरसाई॥
काया खोज मुक्ति जब होई। बिन खोजे सब गये बिगोई॥
काया भीतर सब की पूजा। सिव सनकादि आदि नहिं सूझा॥
बाहिर कथि कथि रहे भुलाई। काया भीतर वस्तु न पाई॥
कोठा बहत्तरि हम कहि दीन्हा। कोऊ न काया भीतर चीन्हा॥
सास्तर संसकिरत में फूले। ऋषी मुनी जोगेसुर भूले॥
या से राह घाट नहिं पाई। बहे कर्म भौजल के माईं॥

अर्थ—प्रथम कोठा उतेसुर के नाम का है—जहाँ ब्रह्मा बैठकर वेद पढ़ाते हैं। दूसरा कोठा धरम गंध है, जहाँ बिष्णु बैठकर ज्ञानचर्चा सुनाते रहते हैं॥

तीसरा कोठा धनुधर है, जहाँ शंकर बैठ कर योग कराते रहते हैं। चौथा कोठा रक्तमणि कहा गया है—जहाँ वरुण बैठकर राज्य करते रहते हैं॥

पाँचवाँ कोठा 'हरिसंग्रह' है—उस स्थान पर आक सुमेर पर्वत हैं। 'विजय धुंध' छठाँ कोठा कहा जाता है, मन की सम्पूर्ण कलाएँ उस स्थान की परिक्रमा करती रहती हैं॥

सातवें कोठे का नाम नगरा है–वहाँ अन्नदेव निवास करते हैं। आठवाँ कोठा 'रुक्मनताल' है, जहाँ मदन गोपाल बैठे हैं॥

नवाँ कोठा गौड़ मनमानी है–जहाँ यह दुर्गति से माया बेहाल किए हुए है। दसवें कोठे का उघड़ू नाम है–जहाँ सहस्त्र कोटि प्रकाश उत्पन्न होता है॥

ग्यारहवें कोठे का नाम 'करमौनी है–जिसकी ज्योति तीनों लोकों में समाई रहती है। बारहवें कोठे का नाम 'विषमदेव' है–जहाँ देवता एवं मुनि ध्यान लगाए रहते हैं॥

पन्द्रहवें कोठे का नाम 'हम सुन्दर' है–जिस स्थान पर सुगंध निवास करती रहती है। सोलहवाँ कोठा। अति सुर नाम का है, जिस स्थान पर पाँच बाजारें लगती हैं।।

सत्रहवें कोठे का नाम 'सिखर जल' है–जिस स्थान पर अठरा गंडक नदी है। अट्ठारहवें कोठे का नाम कड़ेसुर है–जिस स्थान पर जीव के तेज का निवास है॥

उन्नीसवें कोठे का नाम बंक चल है, जहाँ सुहावती मुरली (निरन्तर) बजा करती है। बीसवाँ कोठा 'कुलंग' कहा जाता है–जहाँ पुष्प का सुहावना बाज बजता रहता है॥

इक्कीसवें कोठा का नाम भानसुर है, उस स्थान पर अचल निरंजना है। बाइसवें कोठे का नाम 'धुंधेसर' है। इसी स्थान पर मन का ध्यान निवास करता है॥

तेईसवाँ कोठा तरंगी ताल है, जिसने इस संसार में यम का जाल फैला रखा है। चौबीसवें कोठे का नाम कंठसुर है–जहाँ सुमति एवं सुविचार निवास करते हैं॥

पच्चीसवें कोठे का नाम प्रकृति है, वहाँ मल के पति का स्थान है। छब्बीसवें कोठे का नाम मुदापल है और प्रधान पवन वहाँ निवास करते हैं॥

सत्ताइसवें कोठे का नाम सुताचल है–अलीप (अनिलिप्त-निर्मल मन उस स्थान पर बैठा है। अट्ठाइसवें कोठे का नाम धरनीधर है–वहाँ माया मोह निवास करते हैं॥

उन्नीसवें कोठे का नाम कमची है, उस स्थान पर बादल मेघ उठा करते हैं। तीसवाँ कोठा निर्मल नाम का है–उस स्थान पर साहब का पलंग बिछा हुआ है॥

एकतीसवें कोठे का नाम करोपल है–उस स्थान पर नवों नाथ निवास करते हैं।। बत्तीसवें कोठे का नाम बकासुर है–उस स्थान पर नौ कुत्ते बैठे हैं॥

तैंतीसवें कोठे का नाम अनधू है, उस स्थान पर यम के तेज का निवास है। चौंतीसवें कोठे का नाम 'जमाउत' है–उस स्थान पर यमुना नदी निवास करती है॥

पैंतीसवाँ कोठा सकरदू सेतु है, जहाँ कामदेव झर-धर कर निवास करते हैं। छत्तीसवाँ कोठे का नाम गनकू है, उस स्थान पर क्रोचन तथा क्लेश दोनों बहते हैं॥

सैंतीसवाँ कोठा, अवधधुर धुंध है, जहाँ श्रीकृष्ठा बैठकर फंदे डालते रहते हैं। अड़त्तीसवें कोठे का नाम बँसबल है, उस स्थान पर चौदह कामिनियाँ हैं॥

उन्तालिवाँ करियाघर नाम का कोठा है–जहाँ दया तथा धर्म दोनों बैठे हैं। चालसवें कोठे का नाम किरिकोता है–और उस स्थान पर सात समुद्र बहते हैं॥

एकतालिसवें कोठे का नाम भौरा दे है–जहाँ नवों कुलों के नाग निवास करते हैं। बयालिसवें का नाम कुम्भेसुर है जिस स्थान पर बारह कुम्भ निवास करते हैं॥

तैंतालिसवा भगताधर नाम का कोठा है–वहाँ भय तथा त्रास दोनों का निवास स्थान है। चौवालिसवें का नाम कुसमाधर है–जहाँ चारों वेद निवास करते हैं॥

पैंपालिसवें का नाम मायारट है–जहाँ रोग और दोष निवास करते हैं। छियालिसवें कोठे का नाम मलयागिरि है–जहाँ हंस तथा बिहंग दोनों निवास करते हैं॥

सैंतालीसवें का नाम हलासुर है–जहाँ अड़सठ तीर्थों का स्थान है। अड़तालिसवें का नाम कुकरेदर है–इस विलक्षण कोठ में सत्य एवं पुण्य निवास करते हैं॥

उनचासवाँ मरमों नाम का है–जिस स्थान पर पवन निरन्तर आकाश की ओर उठता रहता है। पचासवें कोठे का नाम घूघर है और उस स्थान पर श्रीहरि का तेज निवास करता है॥

इक्क्यानवाँ कोठे का नाम मजकुर है–उस स्थान पर सहस्त्रार कमल खिला हुआ है। बावनवे कोठे का नाम जरा दे है–उस स्थान पर उच्च शिखा वाली अग्नि जलती रहती है॥

तिरपनवें कोठे का नाम तेराधर है, जहाँ धीर गम्भीर निवास किया करते हैं। चौवनवाँ कोठा सिसंदर नाम का है–उस स्थान पर सत्य तथा सन्तोष निवास करते हैं॥

पचपनवें कोठे का नाम हिंडोला है, नवों नाड़ियाँ उस स्थान पर निवास करती हैं। छप्पनवें कोठे का नाम निरधर है–जहाँ अट्ठारहों भार निवास करते हैं॥

सत्तानवें कोठे का नाम कफा दे है–जीव की मृत्यु वहाँ निवास करती है। अट्ठानवें का नाम सुमेर बल है–जहाँ मंगल नाम का पुरुष निरन्तर चरित्र गायन करता रहता है॥

उनसठवें कोठे का नाम 'छै सुन्दर' है–जहाँ स्वयं आलस्य निवास करता है। साठवाँ कोठा थौलःसुर है–तीनों लोकों की पृथ्वी वहाँ निवास करती है॥

इकसठवें कोठे का नाम जैसुन्दर है–शक्तिशाली पुरुष वहाँ निवास करते हैं। बासठवाँ कोठा हीरापुर नाम का है–वहाँ निरन्तर झर झर कर जल चूता रहता है॥

तिरसठवें कोठे का नाम कलाकर है–जिस स्थान पर चौदहों भुवन निवास करते रहते हैं। चौसठवाँ कोठा तिल विक्रम कहलाता है, उस स्थान पर जल, स्थल तथा कुम्भ तीनों का निवास है॥

पैंसठवें कोठे का नाम सुरत सर है–जहाँ सभी जप, तप एवं यज्ञ करते हैं। छियाछठवाँ कोण शिखरिचल है–जहाँ असंख्य योगी योग करते हैं॥

सरसठवाँ कोठा आनन्दी माँ का है–वहाँ काल निवास नहीं करने पाते। अड़सवें कोठे का नाम 'चिता दे' है–उस स्थान पर चित्त का चक्र निरन्तर घूमा करता है॥

उनहत्तरवें कोठे का नाम सनीता है, जहाँ ज्ञानी बुद्ध निवास किया करते हैं। सत्तरवाँ कोठा सलीका नाम का है जहाँ शून्य की धुन निरन्तर उठती रहती है॥

इकहत्तरवाँ कोठा उदाधर नाम का है, जहाँ संसार के पालन कर्त्ता ईश्वर बैठे रहते हैं। बहत्तरवें कोठे का नाम गंजधर है जिस स्थान पर मूल कर्म (करनी) बैठी रहती है॥

मैंने इस प्रकार, बहत्तर कोठों का बखान करके वर्णन किया है–जो पहचान में आए उसे हे साधुजन! तू अपने घर में (भीतर) पहचान ले। इस घट को देख-देखकर इसके विषय में वही कह सकता है–जिसने समझ-समझ कर साधुजन की रक्षा की है॥

इस प्रकार, मैंने घट रामायण कहकर समझाया है और उसे कह करके घट के भीतर दिखाया भी है॥ काया में ही इन सबको खोजकर मुक्ति मात्र करो क्योंकि बिना खोज सब विनष्ठ हो उठते ॥

शरीर (घट) के भीतर ही सबकी पूजा है–शिव-सनकादि बिना साधना एक सूझते नहीं (अतः साधना करके) उन्हें समझो। उनको बाहर मानकर कहते-कहते सब भूल गए किन्तु काया के भीतर उन्हें मूलतत्त्व (वस्तु) नहीं दिखा॥

हमने बहत्तर कोठों में उन्हें बताकर कह दिया है और किसी ने भी उन्हें शरीर के भीतर नहीं पहचाना है। विद्वान अपने संस्कृत के शास्त्र ग्रंथों में गर्व से फूले रहते है, और ऋषि, मुनि तथा योगेश्वर भी अहम्भाव में भूले हुए दिखते हैं॥

इसी कारण उन्होंने न अध्यात्म का मार्ग प्राप्त किया और न उसका कोई घाट तथा वे भवजल के बीच कर्म के भ्रम तथा अहम् में बह गए॥

॥ दोहा ॥

सत्तनाम सुरति गहै सत गुरु सरन निवास।
तुलसी तरंग तरास ज्यों लखि पहुँचे तेहिं पास॥

अर्थ–सुरति समाधि द्वारा सत्य के नाम का ग्रहण करके जो सतगुरु की शरण में निवास करता है–जैसे तरंगों की लहरें अन्ततः उसको देखती हुई। वह सभी समुद्र-ब्रह्म के पास पहुँच जाती हैं॥

॥ छन्द ॥

घट की गति गाई भाखि सुनाई। लखि पाई पद पार कही॥
जो जो परमाना घट मठ जाना। ठाम ठिकाना ठौर मई॥ १॥
तुलसी तस देखा घट बिच लेखा। पेखा तत मत पूर जही॥
आगे जस होई भाखौं सोई। जो जो सिद्ध समाधि लई॥ २॥

अर्थ–घट के ज्ञान को गाकर तथा कहकर सुना दिया और उसे मैं उस पार पाकर देखा और उसके विषय में कहा। मैं घट के मठ का जो-जो प्रमाण, स्थान, ठिकाना ठौर जानता था (वर्णन किया)॥ १॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने इस पिंड के बीच जैसा देखा था, वैसा-वैसा पूरी तरह से बता दिया। आगे उसका जो अन्य रूप होगा, उसका वैसा ही वर्णन करूँगा, जिन रूपों में सिद्धों ने समाधि में देखा है (प्राप्त किया है)–उसको भी उसी रूप में वर्णित करूँगा॥ २॥

॥ सोरठा ॥

सिध चौरासी नाम, घट भीतर सब देखिया।
ता कर कहों बखान, जस जस ठीका नाम गुन॥

अर्थ–सिद्धों के चौरासी नाम (रूप) हैं–जिन्हें मैंने घट के भीतर देखा है। उनके नाम तथा गुण जिस -जिस प्रकार से ठीक लगेंगे, मैं उनका इस प्रकार वर्णन करूँगा॥

॥ चौपाई ॥

सिध चौरासी घट में होई। ता को देखा सुरति बिलोई॥
ता कर ठौर ठिकाना भाखौं। आदि अंत ठीक कर ताकौं॥
सिद्ध सिद्ध के नाम बताओं। छानि भेद सूच्छम दरसाओं॥

अर्थ–चौरासी सिद्ध घट के भीतर हैं, जिनको मैंने सुरति समाधि में खोकर (निमग्न होकर) मैंने देखा है अब उनके ठौर तथा ठिकानों का वर्णन कर रहा हूँ और आदि से अन्त तक उसे सुधार कर भी॥

सिद्धों के सिद्ध नाम कहता हूँ, उनके भेदों को छानकर (निचोड़कर) उनके सूक्ष्म संदर्भों का भी वर्णन कर रहा हूँ॥

॥ सिद्धों के नाम ॥

१. अजोनी	सिद्ध	१०. जैदेव	"
२. अजर दया	"	११. नलमोवर	"
३. पवनगिरि	"	१२. परसोतम	"
४. उचंद कँवल	"	१३. त्रिकुटीकमल	"
५. उदद कँवल	"	१४. पुरुषोपत	"
६. पेषनादार	"	१५. नलवोती	"
७. नालीवर	"	१६. बाइभक्ष	"
८. कोमार	"	१७. नाल पाजरी	"
९. बालागिर	"	१८. पायापाल	"

१९. जैपाल "
२०. अजया काल "
२१. केदारली "
२२. रतनागिरि "
२३. मेलमहंत "
२४. उदया "
२५. झकझेला "
२६. उषमजार "
२७. मनउतगिरि "
२८. सरपसोष "
२९. जंभीर नागर "
३०. हंस मोह "
३१. बिराज "
३२. ललित दया "
३३. करुनामय "
३४. बाष जार "
३५. जीव भूषन "
३६. उदीत साह "
३७. जगतधार "
३८. साह पाल "
३९. परन पोष "
४०. नौनागर "
४१. ज्ञानपती "
४२. साधगिरि "
४३. नलदेव "
४४. सहस अपढ़ "
४५. सुकृत जीव "
४६. ऊँच माया "
४७. सिंह नाद "
४८. सहज तेज "
४९. बेरंग नाद "
५०. फूल काज "
५१. केदार कोठ "
५२. सुचलेन "
५३. मजा गुनी "
५४. तानी गंभीर "
५५. जगपती "
५६. गंधर्व सूत "
५७. रतनागिरि "
५८. सरोज मल "
५९. कुल कुम्भ "
६०. पिगोभ "
६१. गौड़ आसन "
६२. पक्ष पती "
६३. भाठ नाद "
६४. गोहप माल "
६५. नरदया "
६६. इंद्र मनी "
६७. हंभीर "
६८. कहूक्तिोहल "
६९. जंभीर नाद "
७०. द्याल पती "
७१. नेनौगार "
७२. काल मुनी "
७३. प्रेम मुनी "
७४. हंस करनाग "
७५. मल मोद "
७६. कूर नाकर "
७७. सुषन सरीष "
७८. सुरति लोक "
७९. साध बाच "
८०. सुख बाच "
८१. नेह नाच "
८२. बस करन "
८३. भय मेटन "
८४. सुच भाव "

॥ चौपाई ॥

चौरासी सिधि कथि बतलाई। सिधि इतने घट भीतर छाई॥
साधू कोइ करै परमाना। जिन घट के अंदर पहिचाना॥

अर्थ–चौरासी सिद्धों का कथन करके बतला दिया, यही इतने ही सिद्ध घट के भीतर स्थित (छाये) हैं। जिन्होंने घट के अन्दर पहचान कर ली है, ऐसा ही कोई साधु ही उनका प्रमाण देगा॥

॥ सोरठा ॥

चौरासी सिधि देख, घट रामायन में कहे।
अंतर काया पेखि, भिन्न भिन्न दरसाइया ॥

अर्थ–चौरासी सिद्धों को घट के भीतर देखकर मैं घट रामायण में उन्हें कहता हूँ। शरीर के अन्दर इन सिद्धों को देखकर कोई अन्य इन्हें भिन्न-भिन्न ढंग से कह सकता है॥

॥ चौपाई ॥

प्रकृति पचीस कहौं अनुसारी। ये सब घट के माहिं बिचारी ॥
काया भेद देखि हम चीन्हा। ता कर लच्छ भाखि सब दीन्हा ॥

अर्थ–पच्चीस प्रकृति अपनी बुद्धि के अनुसार बताता हूँ। इन सभी को घट के बीच विचार करो। इनके स्वरूप भेद को देखकर हमने पहचान लिया और उनका लक्षण भी हमने बतला दिया है।

॥ सोरठा ॥

प्रकृती भेद बिचार, नाम नीक सबकी कही।
तुलसी तनहिं निहार, मन इस्थिर जब होइ जेहि ॥

अर्थ–प्रकृति भेद को विचार करके उनका ठीक-ठीक नाम भी मैंने बताया है जब जिस क्षण मन स्थिर हो, उस समय उनकी ओर देखकर (उन्हें पहचानो)॥

॥ चौपाई ॥

कौन कौन प्रकृति रे भाई। ता कर घर मैं देंव बताई ॥

अर्थ–हे भाई! कौन कौन प्रकृति है उनको तुम घट के भीतर आकर देखो॥

॥ प्रकृतियों के नाम ॥

१.	भाव	प्रकृति	१३.	चंचलराज	,,
२.	क्रता	,,	१४.	मजा गुन	,,
३.	देंहधर	,,	१५.	मजा नन्द	,,
४.	उषमजार	,,	१६.	अभयानन्द	,,
५.	इद्रजै	,,	१७.	चतुरदया	,,
६.	मोहदधि	,,	१८.	कजाकोग	,,
७.	सुषम जार	,,	१९.	उचालम्भ	,,
८.	मोह धन	,,	२०.	दया भवन	,,
९.	केदार खंड	,,	२१.	ईस भोग	,,
१०.	सफाकन्द	,,	२२.	कामिनि जोग	,,
११.	नलदया	,,	२३.	मोहजार	,,
१२.	उदासमुद्र	,,	२४.	नौ जोग	,,
			२५.	भँवर सोग	,,

प्रकृतियों के नाम

१.	भाव	प्रकृति	१४.	मजा गुन	''
२.	क्रता	''	१५.	मजानन्द	''
३.	देंहधर	''	१६.	अभयानन्द	''
४.	उषमजार	''	१७.	चतुरदया	''
५.	इद्रजै	''	१८.	कजाकोग	''
६.	मोहदधि	''	१९.	उचालम्भ	''
७.	सुषम जार	''	२०.	दया भवन	''
८.	मोह धन	''	२१.	ईस भोग	''
९.	केदार खण्ड	''	२२.	कामिनि जोग	''
१०.	सफाकन्द	''	२३.	मोहजार	''
११.	नलदया	''	२४.	नौ जोग	''
१२.	उदासमुद	''	२५.	भँवर सोग	''
१३.	चंचलराज	''			

॥ चौपाई ॥

प्रकृति पचीस यही हैं साधौ। सब जीवन को इनहीं बाँधौ॥
सत्य सत्य मैं भाखों भाई। इन कर भेद कहौं समझाई॥
पच्चीसौं का घर हम भाखा। सत्य सब्द हिरदे में राखा॥
प्रकृति पचीस कहौं समझाई। मूढ़ जीव ज्ञानी होइ जाई॥

अर्थ–हे साधुजन! पच्चीस प्रकृतियाँ यही हैं–समस्त जीवों को इन्हीं से बाँधों। हे भाई! मैं पूर्णत: सच-सच कह रहा हूँ। इनका भेद मैं समझा रहा हूँ॥

इन पच्चीसों के घट का हमने वर्णन किया है (इनके वर्णन के संदर्भ में) मैंने सत्य शब्द को हृदय में रखा है–मैं इन पच्चीस प्रकृतियों को समझाकर कहता हूँ, इनसे मूढ़ जीव ज्ञानी हो उठेगा ॥

॥ प्रकृति के सुभाव ॥

१.	भाव को	सुभाव	आलस निद्रा जम्हाई।
२.	क्रता को	''	काम क्रोध बिकार।
३.	देंहधर को	''	खावै पीवै सुख बिनोद।
४.	उषमजार को	''	मोर तोर निंद्रा
५.	इंद्रजै को	''	हँसै खेलै रोवै।
६.	मोहदधि को	''	मान गुमान बड़ाई प्रभुता।
७.	सुषमजार को	''	उच्चाट भय त्रास और डण्ड
८.	मोह धन को	''	सिकार उदासी जारै बारै जीव जन्त्र मन्त्र सेवा करै।
९.	केदार खंड को	''	एक काम चित्त रहै कामिनि

			सुख।
१०.	सफाकन्द को	''	चोरी से राति बिराति आवै जावै।
११.	नलदया को	''	होम बहुत करै और आसा लगावै।
१२.	उदासमुद्र को	''	चित चंचल छगुनिया टेढ़ा चलै कर मोड़े
१३.	चंचल राज को	''	खरा लेवै खरा देवै खरी बात खरा रहै
१४.	मजा गुन को	''	निडर निरभय निरमोह।
१५.	मजा नन्द को	''	दया धर्म पुन्य षट कर्म।
१६.	अभयानन्द को	''	तीरथ बरत मठ बनावै।
१७.	चतुरदया को	''	बहुत गावै बतावै नाचै नैन उलारै।
१८.	कजाकोग को	''	झूठ बोलै मीठा रहै स्वारथ रत।
१९.	उचालंभ को	''	ज्ञान ध्यान गुरू सब्द कुछ न रक्खै।
२०.	दया-भवन को	''	नीके कपरा खाना बिछौना नीक बसिवौ।
२१.	ईस-भोग को सुझाव देव पूजै	''	फूल पत्र चढ़ावै पीछे द्रब्य माँगै।
२२.	कामिनि-जोग को	''	भले मनुष्यन में रहै ऊँचे संग बैठे नीचे संग न करै अच्छी बात कहै और प्रीति न तोरै।
२३.	मोहजार को	''	कुबचन भाखै पहिले दे पीछे माँगै माया तकै।
२४.	नौजोग को	''	तरंग बाहिर मन भरमै शोक में रहै।
२५.	भँवर-जोग को	''	मीठा बोलै कौड़ी जाते प्रान जाय।

॥ चौपाई ॥

देखौ संतौ प्रकृति सुभाऊ। ये सुभाव घट माहिं रहाऊ॥

अर्थ–हे सन्तों! प्रकृति के स्वभाव को देखें–ये समस्त स्वभाव घट के भीतर निवास करते हैं।

॥ सोरठा ॥

यह सुभाव घट माइँ, भिन्न भिन्न करि भाखिया।
लेखा अजब बनाइ, चीन्हें सुरति सँवारि कै॥

अर्थ–ये स्वभाव घट के भीतर हैं–मैंने इनको भिन्न-भिन्न रूप में रखकर उनका वर्णन किया है–मैंने इन्हें आश्चर्यजनक बनाकर रखा है–इन्हें सुरति समाधि में भलीभांति सँवार कर समझो॥

॥ चौपाई ॥

घट भीतर नौ नारी भाखी। सो तुलसी ने देखा आँखी॥

अर्थ–घट के भीतर मैंने नौ नाड़ियों का वर्णन किया है। उन्हें तुलसीदास ने सही-सही देखा है–

॥ नाड़ियन के नाम ॥

१.	इड़ा	नाड़ी	६.	कर जाप	नाड़ी
२.	पिंगला	,,	७.	हंस-बंदनी	,,
३.	सुषमना	,,	८.	हरि कामिनि	,,
४.	भामिनी	,,	९.	बरना	,,
५.	रमना	,,			

नाड़ियन के नाम

१.	इड़ा	नाड़ी	६.	कर जाप	नाड़ी
२.	पिंगला	,,	७.	हंस-बंदनी	,,
३.	सुषमना	,,	८.	हरि कामिनि	,,
४.	भामिनी	,,	९.	बरना	,,
५.	रमना	,,			

॥ पाँच इंद्रियन के नाम ॥

१.	अपान	इंद्री	४.	उदान	इंद्री
२.	प्रान	इंद्री	५.	ब्यान	,,
३.	समान	,,			

इंद्रियों के नाम

१.	अपान	इंद्री	४.	उदान	इंद्री
२.	प्रान	इंद्री	५.	ब्यान	,,

॥ इंद्रियन के बास ॥

१.	अपान का बास	–	नाभी में है।
२.	प्रान का बास	–	मान सरोवर तट वार है।
३.	समान का बास	–	कलेजे में है।
४.	उदान का बास	–	कंठ में है।
५.	ब्यान का बास	–	सब शरीर में है।

इंद्रियों के बास

१. अपान का बास–नाभी में है।

२. प्रान का बास–मान सरोवर तट वार है।

३. समान का बास–कलेजे में है।

४. उदान का बास–कंठ में है।

५. ब्यान का बास–सब शरीर में है।

॥ सोरठा ॥

इंद्री अर्थ बिचार, नाम भेद सब भाखिया।
ठीका ठौर निहार, यह पुकार तुलसी कहा॥

अर्थ–इन्द्रियों के अर्थ पर विचार करते हुए उनके नाम और सभी भेदों का वर्णन कर दिया है। उनके ठौर-ठिकाने को देखकर तुलसी ने यह सब पुकार कर बताया है॥

॥ सोरठा ॥

यह इंद्री का किया निषेदा। मन चीन्है सोई जाने भेदा॥
या की साखि सोत सब गाई। अब सुन्नन की कहौं लखाई॥
बाइस सुन्न सोध हम लीन्हा। ताकर भिन्न भिन्न कहुँ चीन्हा॥

अर्थ–यहाँ यह घट वर्णन इन्द्रियों का निबेध है–जिसने मन को पहचान लिया है, वही भेदों को भी जानता है। इसकी साक्षी तथा उसके स्रोतों को मैंने गान किया। अब शून्य का वर्णन करता हूँ। मैंने शोध करके बाईस सून्यों को समाया है और उनकी भिन्नताओं को मैंने भिन्न-भिन्न रूप में पहचाना है॥

॥ सुन्नन के नाम ॥

१.	धुंधार	सुन्न	१२.	नौखंड	सुन्न
२.	सब्दार	''	१३.	अलख	''
३.	नौनार	''	१४.	पलक	''
४.	अजसार	''	१५.	खलक	''
५.	बिलंद	''	१६.	झलक	''
६.	सुखनंद	''	१७.	सरवाट	''
७.	अछरंद	''	१८.	दसघाट	''
८.	सबसंध	''	१९.	खिरकाट	''
९.	ब्रह्मांड	''	२०.	अजआठ	''
१०.	सबअंड	''	२१.	सतलोक	''
११.	भौभंड	''	२२.	परमोख	''

॥ शून्यों के नाम ॥

१.	धुंधार	शून्य	१२.	नौखंड	शून्य
२.	सब्दार	''	१३.	अलख	''
३.	नौनार	''	१४.	पलक	''

४.	अजसार	"	१५.	खलक	"
५.	बिलंद	"	१६.	झलक	"
६.	सुखनंद	"	१७.	सरवाट	"
७.	अछरंद	"	१८.	दसघाट	"
८.	सबसंध	"	१९.	खिरकाट	"
९.	ब्रह्मांड	"	२०.	अजआठ	"
१०.	सबअंड ब्रह्मांड	"	२१.	सतलोक	"
११.	भौंभंड	"	२२.	परमोख	"

॥ सोरठा ॥

बाइस सुन बर्तमान, जानि संत कोइ परखिहै।
गगन गगन परमान, सुन्न सुन्न भिनि भिनि लखै॥

अर्थ–इस वर्तमान बाईस शून्यों को समझ कर कोई सन्त परखेगा। शून्य के लिए आकाश ही प्रमाण है और उसमें भिन्न-भिन्न रूपों में शून्य दिखाई पड़ता है॥

॥ चौपाई ॥

सुन्न बाइस कौ भाखौं लेखा। सो कोइ साधू करै बिबेका॥
भिन्न भिन्न ग्रंथन में गाई। बूझै वोही भेद जिन पाई॥
सुन्न सुन्न निज निरनै भाखा। तुलसी निरखि देखि निज आँखा॥

अर्थ–मैंने बाईस शून्य के सन्दर्भों का वर्णन किया–उसका कोई साधु ही विवेकपूर्वक उल्लेख करेगा। यद्यपि भिन्न-भिन्न ग्रंथों में शून्य का गान किया गया है किन्तु उसे वही समझेगा–जिसने उसको प्राप्त कर लिया है। मैंने शून्य का निर्णय कहा है–अपनी इस आँखों से भलीभाँति निरख करके॥

॥ सोरठा ॥

कह निरनै निरधार, सुन्न सुन्न बिधि यों कही।
सुरति उतर गई पार, सुन बाइस वर भाखिया॥

अर्थ–शून्य की शून्य विधि को इस प्रकार से निर्धारित करके मैंने बताया है। इस बाईस शून्य का वर्णन सुनकर सुरति समाधि उस पार उतर गई अर्थात् उसने मुक्ति का अनुभव किया॥

॥ चौपाई ॥

बाइस सुन का कहौं बखाना। सुन्न सुन्न का ठौर ठिकाना॥
जो जेहि सुन्न जौन अस्थाना। भाखौं जोई सुन्न जेहि नामा॥
सत्तलोक सत के तहँ राजा। रामायन में भाख समाजा॥
सत्त केत सत नाम कहइया। ता से निरगुन ब्रह्म जो भइया॥
सोला निरगुन कहि कै भाखा। भिनि भिनि भेद कहौं मैं ताका॥
एक सुन्न इक निरगुन होई। निरगुन सुन्न एक है सोई॥
निरगुन चौधा चौधा सुन्नी। पद्रा धर्म सुन्न है भिन्नी॥
सोला सुन्न निरजन नामा। रचा ताहि ब्रह्मांड समाना॥

सत्तनाम से उपजा सोई। ऐसे सोला निरगुन होई॥
यह सब पिंड ब्रह्मंड के माई। सोला निरगुन सुन्न समाई॥

अर्थ–मैं बाइस शून्यों का वर्णन करता हूँ इस शून्य के शून्य स्थान का ठौर ठिकाना इस प्रकार है। जो जहाँ है, और जिस शून्य का जो स्थान है और उस शून्य का वैसा नामकरण क्यों हुआ है–मैं उन सबका वर्णन करता हूँ॥

सत्यलोक (एक शून्य है) में सत्यभाव के राजागण है–उस समाज का वर्णन रामायण में किया गया है। उनकी ध्वजा सत्य की है, उनका नाम सत्यकेतु है–उन्हीं से निर्गुण ब्रह्म उद्‌भूत हुआ है॥

सोलह निरगुणों को मैंने कहकर बताया है, उनके मैं भिन्न-भिन्न भेदों का वर्णन करता हूँ।

एक शून्य है, एक निर्गुण है, एक निर्गुण शून्य है। चौदह निर्गुण हैं और चौदह शून्य हैं–पन्द्रहवाँ शून्य भिन्न-भिन्न धर्म रूप है।

सोलहवें शून्य का निरंजन नाम है–और उसको ब्रह्मांड की भाँति रचा गया है। वह सत्यनाम से ही अवतरित हुआ है–सोलह निर्गुण इसी प्रकार के ही हैं॥

ये सभी पिंड तथा ब्रह्माण्ड के मध्य हैं इस प्रकार सोलह निर्गुण शून्य में समाये हैं॥

॥ सोरठा ॥

छै सुन बाइस माँहि रहा भेद आगे कही॥
तुलसी निरखि निहार सुन बाइस चढ़ि देखिया॥

अर्थ–बाइस शून्य में इस प्रकार छः शून्य हैं,इनके भेदों को मैं आगे कहता हूँ। तुलसी साहब कहते हैं कि इन्हें खूब समझ कर देखो। इन बाइस शून्यों के पर चढ़कर इन्हें देखा है॥

॥ मंगल ॥

सुन सुन री सखि, सैन बैन पिय के कहौं।
बोलै मधुरे बोल, चोल चित्त में सहौं॥ १॥
छिन छिन रहौं पिय, पास स्वाँस कहुँ ना रुचै।
जैसे जल बिन मीन, तलफ मन के बिचै॥ २॥
सुन सखि चैन चिनाव, भाव बिधि में मिली।
छूटी तन मन आस, पास पिय के चली॥ ३॥
चौथा भवन भौ पार, सार सुन में गई।
पुनि पंद्रा के पार, सोला सही॥ ४॥
सोला लोक मँझार, तार स्रुति से चखी।
निराकार जहँ जोति, होत हिये में लखी॥ ५॥
सत्रा सुरति चलि चाल, ताल तट देखिया।
मान सरोवर घाट, हंस तहँ पेखिया॥ ६॥
एक हंस छबि तेज, कोटि रबि राजही।
सोभा भूमि अपार, सो हंस बिराजही॥ ७॥
करि हंसन सँग केल, सैल आगे चलो।

आली अगम की साख, आँख हिये की खुली॥ ८॥
सुन अठरा के माहि, जाइ निरखं देखिया।
आतम से परे भिन्न, परमातम पेखिया॥ ९॥
सुन्न उलट उन्नीस, चेति आगे चली।
खिरकी अजब अनूप, पुरुष ता में मिली॥ १०॥
परे पुरुष पद चीन्ह, गई सुन बीस में।
सत्त पुरुष सुख धाम, सुन्न इक्कीस में॥ ११॥
गैब नगर पिय पार, सखी सतलोक ही।
चढ़ी अगमपुर धाइ, पाइ पति पै गई॥ १२॥
सत्त पुरुष की पैज, सेज पति की लई।
गई भवन के माहिं, पाइ जस जो कही॥ १३॥
बाइस सुन बर्तमान, जान कोइ लेइँगे।
कीनी जिन जिन सैल, संत सोइ कहैंगे॥ १४॥
तुलसी निज तन तूल, मूल मन में बसी।
जिन बूझा नहिं भेद, बेद भौ में फँसी॥ १५॥

अर्थ–हे सखी-सुन लो, सुन लो, मैं अपने पति (ब्रह्म) की वाणी एवं नेत्र भंगिमाओं के विषय बताती है। वह बड़ी ही मधुरवाणी बोलता है और उसकी वियोग पीड़ा चित्त में सहती रहती हूँ॥ १॥

क्षण-क्षण में प्रिय के पास रहती हूँ, अन्यत्र कहीं मेरी श्वासवृत्ति ही नहीं रुकती और मन के बीच में होते हुए उसके लिए ऐसे तड़पती रहती हूँ–जैसे जल के बिना मछली॥ २॥

हे सखी! सुनो, मेरे चित्त की शाँति, चितवन एवं आत्मीय भाववृत्ति सभी को उनसे जुड़कर मिल गई हूँ और अब तो मैं प्रिय के पास ही चल पड़ी, अतः इस शरीर एवं मन की आशा की छूट चली है॥ ३॥

चौथे भवन (संधि) को पार करके मैं मूल तत्त्व शून्य में जा पहुँची और पन्द्रहवें शून्य के उस पार सोलहवें में आ गई॥ ४॥

इस सोलहवें शून्य के मध्य में श्रुति के द्वारा उसका आनन्द चखा और मैंने इसी हृदय में ही ज्योति को निराकार होते देखा॥ ५॥

सत्तहवें शून्य में सुरति साधना के द्वारा चलकर मैंने उस सरोवर तट को जाकर देखा, यह मान सरोवर का और वहाँ मैंने हंस (निर्मल आत्मा) को देखा॥ ६॥

अत्यन्त जेतवान एवं छविवान एक हंस करोड़ों सूर्य की भाँति शोभित था। उस स्थल का सौन्दर्य अद्वितीय था और वह हंस वहीं विराजमान था॥ ७॥

मैं हंसों के साथ क्रीड़ा करके पर्वत शिखर के आगे चल पड़ी–हे सखी! उस अगम के साक्ष्य से हृदय की आँखें खुल गई॥ ८॥

उस अट्ठारहवें शून्य के मध्य जाकर भलीभाँति देखा तो मुझे वहाँ आत्मा से भिन्न परमात्मा दिखलाई पड़ा॥ ९॥

मैं उस अट्ठारहवें शून्य को उलटकर उन्नीसवें की ओर चली। वहाँ एक अनुपम एवं आश्चर्यजनक खिड़की दिखाई पड़ी, जिसके अन्दर वह आदिपुरुष था॥ १०॥

उसके चरणों को पहचान कर मैं आगे बीसवें शून्य में पहुँची, और आगे इक्कीसवें शून्य में आनन्द धाम सत्य पुरुष था॥ ११॥

हे सखी! उसके बाद सामने के प्रिय नगर को पारकर मैं 'सत्यलोक' पहुँची और अगमपुर पर दौड़ कर चढ़ी तथा वहाँ पति को पाकर उस तक पहुँची॥ १२॥

सत्यपुरुष को पाने की, (इस प्रकार मेरी) मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई और पति की सेज प्राप्त की। उस भवन के मध्य मैंने जो कुछ पाया, उसे वैसा ही बता दिया॥ १३॥

बाइसवाँ शून्य आगे है–उसे समझकर कोई प्राप्त करेंगे। जिन-जिन सन्तों ने यहाँ पर्वत शिखरों पर विश्राम किया है, वही उसे बताएँगे॥ १४॥

तुलसी साहब कहते हैं कि यह शरीर रूई की भाँति नश्वर है, मूलात्मा तो चित्त में निवास करती है। जिन्होंने इसके रहस्य को नहीं समझा है, वे वेद के भवजाल में फँसे है॥ १५॥

॥ सोरठा॥

स्रुति पद परम निवास, चढ़ि अकास पति पै गई।
पिय पद सुरतिबिलास, सेज बास जल जस कही॥ १॥
पिय मोरे दीनदयाल, काटि जाल न्यारी करी।
अमर बुटी अज माल, सो पियाइ मो कौ दई॥ २॥
पिय पद पूर पियास, अमी पियाइ अमर करी।
सूरति अगम निवास, महल बास अपने करी॥ ३॥

अर्थ–वेद के परम स्थलस्वरूप उस परम निवास में स्थित शून्याकाश पर चढ़कर वह पति के पास गई। प्रिय के उस निवास स्थल (पद) के सुरति विलास में जैसे-जैसे वर्णित है, तदनुसार उसने (प्रियतम की) सेज पर रही॥ १॥

मेरा पति दीन दयाल है और उसने मेरी माया की जाल को काटकर मुझे उससे अलग किया और अजपाजाप अभी माला की अमर बूटी मुझे पिला दी॥ २॥

प्रिय पद के साथ ही मेरी प्यास पूरी हुई और उसने अमृत पिलाकर अमर कर दिया। मेरा निवास सुरति समाधि के अगम महल में हो गया और अपने साथ उस महल में रख लिया॥ ३॥

॥ दोहा॥

पिय प्रभुता निज धाम, काम टहल मो कौ कही।
रही भवन के माहिं, अमल बास मो पै नहीं॥

अर्थ–उसकी प्रभुता उसके उस भवन में दिखी और उसने अपने भवन में टहल (भृत्य कर्म) के लिए कहा। मैं इस तरह उसके भवन में रही–मुझ पर माया के नशे की गंध अब लेश मात्र भी नहीं रही॥

॥ सोरठा॥

पृथ्वी पवन अकास, नीर नास सब होइँगे।
अगिन सूर अरु चंद, बँद बास पुनि पुनि नसै॥

अर्थ–पृथ्वी, आकाश, जल, वायु इन सबका विनाश होगा, अग्नि, सूर्य, चन्द्र ये सभी माया की गंध के वश (बंद) में है, सब का बार-बार विनाश होगा॥

॥ चौपाई ॥

पिय सँग अजर अमर भया बासा। आदि अंत हमरा नहिं नासा।

अर्थ–मेरा निवास प्रिय (ब्रह्म) के साथ अजर-अमर हो उठा और अब हमारा विनाश नहीं होगा॥

॥ मंगल ॥

अमर बूटी मोरे यार, प्यार पिया ने दई।
काटी जम की जाल, काल डर ना रही॥ १ ॥
मैं पिय मोर अनूप, रूप पिय में गई।
दरसै एकै नूर, सूर स्रुति से भई॥ २ ॥
जुगजुग अमर अहवात, साथ पिय के सखी।
जावँ न आवों हाथ, साथ पिय के पकी॥ ३ ॥
नौतम निरखि निहारि, सार दसवें वही।
आगे अजब अजूब, खूब खुलि कै कही॥ ४ ॥
पिय मोरे दीन-दयाल, चाल चीन्हा सही।
सुख सागर सुख चौज, मौज मुख से दई॥ ५ ॥
अंड खंड ब्रह्मंड, कोई करता नहीं।
हमार सकल पसार, सार हम से भई॥ ६ ॥
धरती गगन अकास, नास सब होइँगे।
अगिनि पवन जल नास, हमीं हम रहैंगे॥ ७ ॥
ब्रह्मा बेद नसाय, बिस्नु सिव ना बचैं।
बचै नहीं बैराट, कहनि कहौ को पचै॥ ८ ॥
कोई न पावै अंत, संत हम को लखै।
तुलसी बिधि बेअंत, अंत कहि को सकै॥ ९ ॥

अर्थ–मेरे यार, मेरे प्रिय न प्यार की मुझे अमर बूटी दी है, उन्होंने यम के जाल को काट डाला और अब काल का भी डर नहीं है॥ १ ॥

मेरा प्रिय और उसके साथ मैं भी अनुपम हो उठी औ पति के रूप में ही खो गई। वेद के प्रकाश में हम दोनों का प्रकाश एकमेव हो उठा और एक तरह का दिखाई पड़ता है॥ २ ॥

हे सखी! मेरा सौभाग्य युग-युग तक प्रिय के साथ ही अमर हो उठा। मैं, अब गमनागमन (जाँव व आँखों) के बन्धन से मुक्त हो उठी–प्रिय के साथ ही तन्मय होकर एक जैसी (परिपक्व) हो उठी हूँ॥ ३ ॥

नवें तत्त्व (नवम द्वार) पूरी तरह से देख करके दसवें द्वार के सार तत्त्व को बताया है–उसके आगे तो खूब आश्चर्यजनक है–मैंने खल करके उसका अत्यधिक वर्णन किया है॥ ४ ॥

मेरे प्यारे दीन दयाल ब्रह्म ने मेरी गति (चाल) को भलीभाँति समझकर मुझे आनन्दमयी वस्तुओं से मुक्त आनन्द स्वाद मेरे मुख को दिया है॥ ५ ॥

हमारा सम्पूर्ण ज्ञान विस्तार हमसे ही हुआ है, संसार में सब कहने के लिए है–पिंड, उसके तत्त्व एवं ब्रह्मांडादि किसी के विस्तार में कोई मदद नहीं करते॥ ६॥

पृथ्वी, आकाश सभी का नाश होगा–अग्नि, वायु तथा जल भी नष्ट होने वाले हैं–केवल इस सृष्टि में हम ही हम बचे रहेंगे॥ ७॥

ब्रह्मा, वेद, विष्णु नष्ट हो जाएँगे तथा विष्णु, शिव भी नहीं बच पाएँगे–यह सम्पूर्ण विराट (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि-शून्यादि से सर्वत्र ब्रह्मांड रूप में व्याप्त) भी नहीं बचेगा और मैं किसी (किन सत्व जी बचै) बात कहूँ॥ ८॥

हमारा अन्त कोई नहीं देख पाएगा और कोई सन्त ही हमें देखेगा। तुलसी साहब कहते है कि हमारी आत्मिक सत्त अन्तहीन (बेअंत) है–उसके अन्त (समाप्ति) के विषय में कौन कह सकता है॥ ९॥

॥ दोहा॥

बाइस सुनु बर्त्तमान, सुरति छान भिनि भिनि कही।
जानै संत सुजान, जिन चढ़ि देखा भेद सब॥

अर्थ–सुनो, इसके बाईस रूप हैं–और इस सुरति के स्थानों को भिन्न-भिन्न रूपों में समझाया गया है। इसके विषय में वही चतुर सन्तजय जानते हैं, जिन्होंने सुरति समाधि के शिखर पर चढ़कर इसके भेदों को देखा है॥

॥ चौपाई॥

तुलसी संत चरन बलिहारी। चढ़े अगम जिन सुरति सम्हारी॥
लख लख जस जस भेद सुनाई। साखी सब्द ग्रंथ में गाई॥
महुँ पुनि चरन लागि लख वोला। जस जस कृपा संत कर खोला॥
संत चरन सूरति भइ चेरी। मति उन सब बिधि भाँति निबेरी॥
मैं उनकी चरनन बलिहारी। मोहि सों अजान जान कियो लारी॥
सुन्न सुन्न बाइस कर लेखा। खुलि हिये नैन सुरति से देखा॥
और सुन्न का भाखौं लेखा। कोइ निज संत सुरति से देखा॥
तुलसी बूझी मोर अबूझी। जो कोइ संत सैल कर सूझी॥
मैं अपनी गति कस कस भाखी। कहैं संत जिन देखी आँखी॥
मैं किंकर उन पर निज दासा। जिन जिन देखा अगम तमासा॥
सोइ सोइ देखि देखि कै भाखी। नैन से देखि पेखि उर आँखी॥
छै सुन का पुनि भेद बताऊँ। न्यारा भिन्न भिन्न दरसाऊँ॥
कौन सुन्न में कौन निवासा। ता कर भेद कहौं परकासा॥
प्रथम सुन्न में है निः नामी। ता की गति मति संतन जानी॥
दूजी सुन का भाखौं लेखा। जहँवाँ सत्तनाम को देखा॥
तीजी सुन्न सब्द एक होई। सुरति सैल कोइ संत बिलोई॥
चौथी सुन्न कहाँ समझाई। पारब्रह्म तहँ रह्यो समाई॥
संत ताहि परमातम भाखी। सो पुनि देखा दिये की आँखी॥

पंचम सुन का भेद बताऊँ। पूरन ब्रह्म जीव तेहि नाऊँ॥
ता को आतम बेद बखाना। जीव नाम आतम कर जाना॥
षटवीं सुनि मन तन के माईं। इन्द्री संग तास लिपटाई॥
परमहंस तेहि ब्रह्म बतावैं। नेतहि नेत बेद गोहरावै॥
सुन तेहि मन कौ ब्रह्म बखाना। ता को नाम निरंजन जाना॥
येही निरंजन जोति कहाई। ब्रह्मा बिस्नू सिव सुत है ताही॥
तिन पुनि रचा पिंड ब्रह्मंडा। सातौ दीप और नौखंडा॥
जोति निरंजन इनको जानी। ता को संतन काल बखानी॥
यह जम काल जाल जग डारा। ज्यों धीमर मछरी गहि मारा॥
दस औतार निरंजन काला। बाँधे जीव कर्म जग जाला॥
तीरथ बरत नेम अरु धरमा। कर्म भाव कहियत है रामा॥
ता की जगत जपै मन लाई। बार बार भरमै भव माहीं॥
जग सब अंद फंद नहिं बूझै। अंधा भया हिये नहिं सूझै॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैं उन सन्त चरणों की बलिहारी जाता हूँ–जो सुरति समाधि को सम्हाल कर अगम पर्वत पर चढ़े हैं। उन्होंने उसे देख-देख कर जैसे-जैसे भेदों को बताया है, साखी एवं 'सबद' द्वारा इस ग्रंथ में गाया है॥ (यहाँ साखी का अर्थ सन्तों का साक्ष्य सब शब्द का अर्थ सन्तों का वर्णन है, मेरा अपना कुछ नहीं है॥)

मैं भी उनके चरणों में लगकर और देखकर वर्णन किया है जैसे सन्तों की कृपा होती गई, रहस्य खुलता गया। मेरी मति सन्त चरणों की दासी बन गई। मति ने ही उसी भाँति लिखकर शान्ति प्राप्त की॥

मैं उन सन्तों के चरणों की बलिहारी जाता हूँ–जिन्होंने मुझ जैसे अज्ञानी को ज्ञानी बनाकर प्रभु के प्रति संसक्त बनाया। बाईस रूपों के शून्य का वर्णन करके जिन्होंने खुले नेत्रों से सुरति समाधि में देखा॥

और मैं शून्य के विषय में क्या कहूँ, किसी-किसी सन्त ने उसे अपनी सुरति समाधि में देखा है। तुलसी साहब कहते हैं–जो मुझे कभी अबूझ थी, सन्तों की कृपा से उसे समझा। यह सन्तों की ही कृपा थी कि उन्हें भी कभी दुर्नाम शिखर पर वह प्रतीत हुई होगी॥

सन्तों ने जिसे आँखों से देखकर बताया है, मैं अपनी उस गति का कैसे-कैसे वर्णन करूँ? मैं उन सन्तों का सेवक तथा दास हूँ जिन्होंने अपनी प्रज्ञा से उस अगम तमाशे को देखा है॥

किस शून्य में किसका निवास है, उनके भेदों को मैंने प्रगट रूप से कहा है। प्रथम शून्य में निःनामी है–जिसका ज्ञान तथा जिसकी थाह सन्त ही जानते हैं॥

मैं दूसरे शून्य का वर्णन बता रहा हूँ जहाँ 'सत्य नाम' का अस्तित्व है। तीसरा शून्य एक शब्द मात्र है–जहाँ कोई-कोई सन्त सुरति समाधि में विलीन रहते हैं॥

मैं चौथे शून्य को समझाकर कहता हूँ–जहाँ पार ब्रह्म समाया रहता है। सन्तगण उसे ही परमात्मा कहते हैं–जिसको वे हृदय की आँख से देखते हैं॥

मैं पंचम शून्य का भेद बता रहा हूँ। उसका नाम पूर्णब्रह्म जीव है। वेदों ने उसे आत्मा तत्त्व कहा है–और जीव का नाम ही आत्मा है॥

छठें शून्य के विषय में सुनो, वह मन तथा तन में निरन्तर है। उसी के साथ सम्पूर्ण इन्द्रियाँ संसक्त हैं–परमहंस साधुगण उसे ही ब्रह्म कहते हैं और वेदादि उसे नेति नेति (जिसका अन्त नहीं है) कह कर बुलाते रहतें हैं॥

सुनो! उसी मन को ब्रह्म कहा गया है और उसी का नाम निरंजन जाना जाता है। निरंजन की ज्योति यही कही जाती है और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव उसके पुत्र हैं॥

उसी ने ही पिंड एवं ब्रह्मांड की रचना कर रखी है—सातों द्वीप तथा नवों खण्ड को उसी के रचे हुए हैं। इनको निरंजन रूप ज्योति समझो। सन्तों ने उन्हीं को 'काल' कहकर बखाना है॥

यम के सहायक इस काल ने संसार में (मृत्यु का) जाल डाल रखा है और जैसे निषाद या मल्लाह जाल में मछली पकड़ कर मार डालते हैं, वैसे काल भी (सबका विनाश करता है) काल ही निरंजन के दसों अवतार है और उसने जीव को सांसारिक कर्म जाल में बांध रखा है॥

तीर्थ, नियमाचरण, ब्रत एवं ब्रह्म का कर्म भाव माना जाता है। जिस राम का यह संसार निरन्तर जाप करता रहता है, वह बार-बार इस भवसागर में बार-बार भ्रमित होता है॥

सारा संसार अंधा (अंद–अंध) है, उसे यह भवसागर का बंधन (फंद) सूझता नहीं, सामने रहते हुए भी उसे देख नहीं पा रहा है, वह अन्धा हो गया है॥

॥ दोहा ॥

आदि अंत का भेद कह तुलसी देखा सही।
लेखा अगम अलेख लखि अगाध अदबुद कहा॥

अर्थ—तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने आदि अन्त का भेद सही-सही देखा है, उस अकथनीय और अलक्ष्य को मैंने देखा है—और उसे देखकर ही मैं उसकी अगाध एवं अद्‌भुत कथा कह रहा हूँ॥

॥ छन्द ॥

तुलसी गति गाई अगम सुनाई। सुन्न सुन्न भिन्न भिन्न कही॥
जस जस जेहि लेखा निज निज देखा। आदि अन्त गति सार भई॥
संतन गति गाई महुँ पुनि पाई। जो उतपति सब आदि भई॥
जिनही जिन जानी सबहि बखानी। तुलसी उनके लार लई॥

अर्थ—तुलसी ने अगम्य तत्त्व के ज्ञान को गाकर सुनाया और शून्य के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन किया। अपने प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा जिसे-जिस-जिस रूप में देखा—मैंने आदि अन्त से युक्त उनके सार तत्त्व का वर्णन किया॥

जो इनकी अनादिमयी उत्पत्ति है, उसकी गति का गान सन्तों ने किया। जिन-जिन्होंने इसे समाया, उन्होंने इसका वर्णन किया है—तुलसीदास तो उनके प्रेम में डूबे हुए हैं॥

॥ सोरठा ॥

सब में कहा विचार सार पार गति पाइके।
बूझै बूझनहार जिन में चाखा अगम रस॥ १॥
तुलसी तिरन समान अगम भान घटि लखि परा।
सूझा निज घर धाम यह अनाम गति यों कही॥ २॥

अर्थ—उस सार तत्त्व के उस पार उसके ज्ञान को प्राप्त करके, सबमें उसके प्रति क्या विचार हैं—उसका वर्णन कोई बूझने वाला ही कर सकता है और विशेष कर वह जिसने उस अगम के रस के सार तत्त्व को चख लिया है॥ १॥

इस घट में वह अगम्य ज्ञान सूर्य तृण के समान दिखाई पड़ा है—उसी से यह आत्मगृह सुझाई पड़ा है, उस (सन्त ही) ने उस अनाम की गति को इस प्रकार वर्णित कर सकता है॥ २॥

॥ चौपाई ॥

नभ घट भूमी भान दिखाना। लखि लखि लखा भेद जिन जाना॥

अर्थ–आकाश में, घट में तथा भूमि में सूर्य दिखाई पड़ा–जिन्होंने इसके भेदों को जाना है–उसे बार-बार देखकर समझा है॥

॥ सोरठा ॥

घट भूमी बिच भान, जानि भेद भिन जिन कही।
सखि सुन देस बयान, रमक रीति उलटी लखी॥

अर्थ–घटाकाश की भूमि के बीच में सूर्य है–जिनके भेदों को समझकर सन्तों ने भिन्न भिन्न रूपों में कहा है। हे सखी! उस देश का वर्णन सुनों–वहाँ की व्यवस्था रीति (रमक रीति) उल्टी दिखाई पड़ती है॥

॥ कहेरा ॥

सुन हो सखी इक दिसवा। भूमी ऊगै भान।
दिसवा की उलटी रीति। साधू पालै प्रीति॥ टेक॥
मछरी गगन पर गाजा। चंदा चुनै नाम।
दिसवा उरध-मुख कुइया। गइया चुगै चाम॥ १॥
गगन उठै धधकारी। धरै सूरति ध्यान।
खम्भा न महल अटारी। प्यारी पिव धाम॥ २॥
तारा अवर नहिं पानी। बानी उठै बिन तान।
खिरकी खुली बिन द्वारे। पारे परे ठाम॥ ३॥
नइया कुटी भौ पारा। उतरै बिन दाम।
तुलसी अगम गम जानी। स्त्रुति पायो जिन नाम॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! उस एक देश (दिशा) बारे में सुनो, सूर्य पृथ्वी पर उगता है। उस देश (दिशा) की उल्टी चलन है–सन्तजन प्रीति में फँसे रहते हैं॥

आकाश में मछलियाँ उछलती रहती हैं या शोर करती रहती है चन्द्रमा केवल (राम) नाम को चुनता है। उस देश में कुएँ ऊर्धमुखी (ऊपर की तरह मुँह वाले) होते हैं और गाएँ चमड़े को खाती रहती हैं॥ १॥

गगन रह-रह कर धधक उठता है, और सुरति का ध्यान लगा रहता है। न खम्भा है, न महल हैं, न अटारी है–बिना किसी आश्रय के प्रिया अपने पति के धाम पर निवास करती है॥ २॥

नीचे (अवर) कोई तालाब (तारा) तथा जल नहीं है, और वहाँ बिना तान के वाणी उठती रहती है। बिना द्वार के खिड़की खुली हुई है और उसके आगे ही (रहने लायक) स्थान भी है॥ ३॥

सन्त नाव से उस कुटी के पार हो जाता है किन्तु कोई उतराई नहीं देनी पड़ती। तुलसी साहब कहते है कि मैंने अगम्य को समझ लिया है और वेदों में (ज्ञान के प्रकाश में) अपना नाम प्राप्त कर लिया है॥ ४॥

॥ सोरठा।

साहिबै एक अनाम, अगम धाम संतन लखा।
भखा भेद जिन जान, तिन तिन बरनि सुनाइया॥

अर्थ–स्वामी (ब्रह्म) एक है और अनाम है, उसका धाम अगम्य है, ऐसा सन्तों ने देखा है–जिन्होंने उसे जाना है–उसके स्वरूप वेद जो वर्णन किया है और बार-बार उसका वर्णन करके सुनाया भी है।

॥ चौपाई॥

अब अनाम इक साहिब न्यारा। सुन्न और महासुन्न के पारा॥
वो साहिब संतन कर प्यारा। सोइ घर संत करैं दरबारा॥
वा घर का कोई मरम न जाने। नानक दास कबीर बखाने॥
दादू और दरिया रैदासा। नाभा मीरा अगम बिलासा॥
और अनेक संत कहि गाये। जे जे अगम पंथ पद पाये॥
तुलसी मैं चरनन चित चेरा। उन रज चरनन कीन्ह निबेरा॥

अर्थ–मेरा एक साहब (पारमात्मा) अनाम और विलक्षण है वह शून्य तथा महाशून्य के भी पार स्थित है। वह स्वामी सन्तों को प्रिय है और सन्तगण उसी के घर में दरबार लगाते हैं॥

उस घर का मर्म कोई नहीं जानता, ऐसा नानक एवं कबीरदास कहते हैं। सन्त दादू, दरियादास एवं रैदास, नाभादास, मीराबाई आदि उसके अगम्य आनन्द विलास को जानते हैं॥

अनेक सन्तगण भी कह गए हैं कि जिन्होंने उसके अगम्य पद को प्राप्त कर लिया है, ऐसे अनेक सन्तगण भी कह गए हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं उनके चरणों का मन से दास हूँ और उन्हीं के चरण रजों से इस परमतत्त्व का विवेचन किया है।

॥ सोरठा॥

संत चरन निज दास, तुलसी ताहि बिचारिया।
पायौ जिन घर बास, आदि अनामी लखि कह्यौ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैं सन्त चरणों का सेवक हूँ और मैंने उन्हें मैंने अच्छी तरह से विचार कर रखा है उस आदि तथा अनादि ब्रह्म को देखकर कह रहा हूँ कि मैंने अपने आत्मस्वरूप गृह में निवास प्राप्त कर लिया है।

बरनन चार गति बैराग

॥ चौपाई॥

अब बैराग जोग गति गाऊँ। ज्ञान भक्ति भिनि भिनि दरसाऊँ॥
चारि गति बैराग बताऊँ। जोगी चारि गती गति गाऊँ॥
तीनि ज्ञान का भेद बताई। चौथा ज्ञान जगत जग माई॥
तेरा भक्ति भेद बतलाऊँ। भिन्न भिन्न कर कहि समझाऊँ॥
न्यारा भेद भाव सब केरा। जो जस जिनका भया निबेरा॥
जो जिनकी करनी जस भाँती। सो सब संतन कही सनाथी॥
मैं रज पावन उन कर चेरा। निरनय कहौं छानि इन केरा॥

अर्थ—अब मैं वैराग्य तथा योग के ज्ञान का वर्णन करता हूँ। उसी के साथ ज्ञान तथा भक्ति को भी भिन्न-भिन्न रूपों में बतलाऊँगा। वैराग्य की चार अवस्थाओं का वर्णन करूँगा और योगियों की चार गतियों का भी गान करूँगा॥

ज्ञान की तीन गतियों का भेद बतलाकर और चौथे ज्ञान को जो जगत में स्थित है—उसका वर्णन करूँगा। भक्ति के तेरह भेदों का वर्णन करूँगा और भिन्न-भिन्न करके उनके विविध रूपों का वर्णन करूँगा॥

सभी भक्ति के भेद भाव न्यारे हैं—जिनसे उनके स्वरूप का स्पष्टीकरण (निबेरा) हो सके, उसका वर्णन करूँगा। जिनका जैसा स्वरूप है और जैसा भेद है—उन सबको सन्तों ने विश्वास भाव (सनाथी) से कहा है।

मैं उन सन्तों के चरणों की पवित्र धूलि का दास हूँ, और उन्हीं का मत समझकर मैं उनका वर्णन करूँगा॥

॥ सोरठा॥

भक्ति ग्यान और जोग, भोग भाव सब विधि कहीं।
जो जेहिं गति जस भोग, सो तस करौं विचारि कैं॥

अर्थ—भक्ति ज्ञान तथा योग, भोग एवं अन्य भावों का हर प्रकार से वर्णन करूँगा। जो जिस गति एवं जिस भोग में जीवन जी रहा है, उन सबका मैं विचारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ॥

॥ प्रथम बैराग॥

॥ चौपाई॥

अब बैराग तीनि गति गाऊँ। भाखौं भेद भिन्न दरसाऊँ॥
बेरक्ती बैराग सुनाऊँ। ता कर चिन्ह भिन्न बतलाऊँ॥
माया मोह जगत नहिं भावै। काम रु क्रोध लोभ नहिं लावै॥
और जगत सँग रहै उदासी। जग संसार करत सब हाँसी॥
त्यागी अति संतोष समावा। भूख प्यास निद्रा न सतावा॥
और अनेक भाँति रस त्यागी। बन बसि रहै नाम अनुरागी॥
बिन सतगुरू धूरि सब जाना। संत सुरति बिन भरमै खाना॥
जो कोइ त्याग लाग मन कीन्हा। संगल दीप भोग तेहि दीन्हा॥
जो जेहि त्याग भाग जस पावा। सुरति सब्द बिन भौ में आवा॥

अर्थ—अब वैराग्य की तीन गतियों का वर्णन कर रहा हूँ और उनके भिन्न-भिन्न भेदों को दिखला रहा हूँ। 'विरक्ति' वैराग्य का वर्णन कर रहा हूँ तथा उसके भिन्न-भिन्न लक्षणों को बतला रहा हूँ॥

विरक्त सायासी को इस संसार के माया-मोह भाते नहीं और कभी काम, क्रोध एवं लोभ के वशीभूत नहीं होता। वह संसार की संसक्ति से उदासीन रहता है और सारा संसार उसकी हँसी करता रहता है।

वह त्यागी है तथा उसमें सन्तोष भाव समाया हुआ है। उसे भूख प्यास एवं निद्रा पीड़ित नहीं करते। उसने अनेक रूपों की संसक्तियों रस-वासनाओं का त्याग कर रखा है। वन में निवास करता हुआ केवल परमात्मा के नाम में अनुरक्त रहता है॥

बिना सतगुरु (परमात्मा) के वह सम्पूर्ण जगत को धूलि की भाँति समझता है—सन्तों की सुरति योग के बिना कर दर दर (खाना) भटकता रहता है।

जिस किसी ने भी त्यागपूर्वक उस परमात्मा में मन लगा दिया वह सिंघल द्वीप (सिद्ध भूमि) में निरन्तर आनन्द करता रहेगा॥

॥ द्वितीय बैराग ॥

॥ चौपाई ॥

परम जोग बैराग बताऊँ। रहनी चाल ताहि दरसाऊँ॥
अष्ट कँवल उलटै हिये माई। उलटै कँवल तत्त मन लाई॥
निस दिन तत्त मती गति राखै। पाँचो तत्त गती सोइ भाखै॥
तब तन छूटे तत्त समाई। चारि तत्त जिव उपजै जाई॥
फिर तन छूटै खानि समाना। सो पुनि करै जो लेइ निदाना॥

अर्थ–परम जोग वैराग्य के विषय में बता रहा हूँ–उसकी दिनचर्या एवं आचरण (रहनी) का वर्णन करता हूँ। उसने चित्त में स्थित अष्ट कमलदल को उल्टा कर दिया है और उस उल्टे कमल से जुड़े तत्त्व में चित्त लगाए रहता है॥

रात-दिन वह मूल तत्त्व (ब्रह्म) की गति का वर्णन करता रहता है और पाँचों तत्त्वों की गति का वह वर्णन करता रहता है॥

उसके बाद जब उसका शरीर विनष्ट होता है तो वह परमतत्त्व में विलीन हो जाता है और वह चार तत्त्वों एवं जीव के साथ पुनः उत्पन्न होता है। इसके पश्चात् उसका चित्त भण्डार की तरह दूर जाता है–इसको वही कर सकता है–जो इसके फलों को धारण करने की आकांक्षा करता हो॥

॥ त्रितीय बैराग ॥

॥ चौपाई ॥

त्याग बैराग कौ बरनि सुनाई। छूटै देंह खानि गति पाई॥
जो जस त्याग भोग तन तैसा। खान पान तन पावै जैसा॥

अर्थ–त्याग वैराग्य का मैं वर्णन करके सुनाता हूँ–उसकी देह छूटने पर इसे सम्पन्नता की गति प्राप्त होती है। उसका जैसा त्याग होगा, या जैसा भोग होगा–उसी प्रकार उसका शरीर होगा, वह अपने कर्म के अनुसार ही खान-पान तथा शरीर प्राप्त करेगा॥

॥ चतुर्थ बैराग ॥

॥ चौपाई ॥

तन त्यागी बैरागी भाई। जो जेहि लिया देन सोइ जाई॥
बार बार छूटै तन जाइ। छूटै तन तहँ गर्भ समाई॥
वहि वहि देह खाइ पुनि जाई। ऐसे भर्म खानि भरमाई॥
बिना सुरति नहिं पावै पारा। भरमै भोग परै भौ धारा॥

अर्थ–त्वह बार-बार शरीर छोड़कर माता के गर्भ में जाता है–उसे देकर वह पुनः खाता हुआ अपना जीवन व्यतीत करता है, ऐसे भ्रम की खानि में वह भटकता रहता है। बिना सुरति ज्ञान के वह भवसागर से पार नहीं हो पाता–क्योंकि वह संसार सागर की योग धारा में बहता हुआ निरन्तर भरमता रहता है॥

॥ सोरठा ॥

चारौ गति बैराग सुरति लाग न्यारी रही।
सत मत गति कोइ जाग संत सरनि उबरा सोइ॥

अर्थ–ये चारों गति वैराग्य की हैं–इसमें सुरति में लगी हुई चित्तगति विलक्षण है–कोई ही सन्तमति का व्यक्ति संसार में जगता है–और सन्तों की शरण में जाकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥

॥ वरनन जोग ॥

॥ प्रथम जोग ॥

॥ चौपाई ॥

चारों गति बैराग बखाना। आगे कहौं जोग सधाना॥
पिरथम परम जोग गति गाऊँ। भिन्न भिन्न तेहि को दरसाऊँ॥
मुद्रा पाँच . अवस्था चारी। तीनि ज्ञान पुनि बानी चारी॥
सहस कँवलदल सुरति लगावै। आतम तत्त अकास समावै॥
पुनि तन छूटि पावै नर दही। भोग भुगति पुनि भव रस लेही॥
पावै मुक्ति बास कर चीन्हा। मुक्ति भोग पुनि होइ अधीना॥

अर्थ–वैराग्य की चारों गतियों का वर्णन कर रहा हूँ। आगे योग के लक्ष्य (संधान) का वर्णन करूँगा। प्रथम परम योग की गति का गान करता हूँ। उसके भिन्न-भिन्न स्वरूपों को भी स्पष्ट करूँगा।

पाँच मुद्राएँ हैं, चार अवस्थाएँ, तीन ज्ञान हैं, तथा चार वाणियाँ हैं। सहस्त्र कमल दल पर जो सुरति ध्यान लगाता है. और आत्म तत्त्व के साथ जो शून्य में समा जाता (विलीन हो जाता) है। पुनः शरीर छूटने पर वह मनुष्य की देह प्राप्त करता है फिर अनेक प्रकार के भोगों एवं संसार की आनन्दमयी वासनाओं का भोग करता है। अन्त में, वह मुक्ति का निवास प्राप्त करता है, फिर मुक्ति और भोग दोनों उसके अधीन हो उठते हैं॥

द्वितीय जोग

॥ चौपाई ॥

दूजा जोग कहौं समझाई। इड़ा पिंगला सुषमनि माई॥
बंक नाल पट मारग जाई। मन भया भिन्न सुन्न के माई॥
देखै जोति निरखि निज नैना। तन छूटै सुपने की सैना॥
जो कछु कर्म भाव जग कीन्हा। छूटै देंह भोग फल लीन्हा॥
सुरति सब्द बिन भये अचीन्हा। ता सों हो गये जोग अधीना॥
बिन सतसंग भेद नहिं पावै। ता ते कर्म भोग भव आवै॥

अर्थ–अब मैं दूसरे योग का समझाकर वर्णन कर रहा हूँ। इसका सम्बन्ध इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना से है। बंक नाल के छः सन्धियों के मार्ग से जाता हुआ इस साधक का मन शून्य में पहुँच जाने के कारण लोकजन से भिन्न हो उठता है।

वह अपने नेत्रों से उस परम ज्योति को देखता है और उसकी मृत्यु भी स्वप्न की ही भाँति होती है। उसने संसार में जो भी कर्म तथा भावनाएँ की हैं–देह छूटने पर उसके अनुसार फल भोग प्राप्त होता है।

वह साधक सुरति ज्ञान से सर्वथा अपरिचित (अचीन्हा) रहता है इसलिए वह उसी योग के ही अधीन बना रहता है। (इसने सतसंग नहीं किया हैं) इसलिए सत्संग के बिना ज्ञान (भेद) नहीं समझ में आता–इसीलिए वह पुर्नजन्म लेकर सांसारिक कर्म भोगों में आता है।

॥ सोरठा ॥

जोग जुगुति गति गाइ, नहिं अकाय गति पायऊ।
बिन सतसंग नसाइ, सुरति सब्द चीन्हें बिना॥
ज्ञान गती कथि गाइ, जो अघाइ आगे कही।
ताहिं पाइ मति माइ, सो तुलसी सब बिधि कही॥

अर्थ–योग युक्ति (तरीकों) की गति गाकर निष्काम गति नहीं प्राप्त की जा सकती। सुरति शब्द की पहचान किए बिना तथा सत्संगति से रहित सारा जीवन नष्ट हो जाता हैं।

मैंने ज्ञान की गति का वर्णन किया है–जो साधुजनों की तृप्ति का कारण होता है उसे मैं आगे कहूँगा–हे सन्तों, उसे ज्ञान के अन्तर्गत प्राप्त करो–इसका वर्णन मैं (तुलसीदास) आगे करूँगा॥

॥ बरनन ज्ञान ॥

॥ प्रथम ज्ञान ॥

॥ चौपाई ॥

अब सुनु ज्ञान ठान गति गाऊँ। ता का भेद भाव बतलाऊँ॥
रेचक पूरक कुम्भक कहिये। ता का भेद सबै सुनि लैये॥
चारि अवस्था तन में भाखी। तुरिया तत्त चारि अभिलाखी॥
परमहंस ता की मति जाना। मन करता को ब्रह्म बखाना॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति कहाई। तुरिया चौथी भेद न पाई॥
तुरियातीत बसै वोहि पारा। सुनि पुनि है मन का ब्यौहारा॥
मनमत चलै मान मद माई। मन करता को ब्रह्म बताई॥
ता ते भौ गति मति नहिं पावै। बार-बार भौ माहिं समावै॥
सतगुरु सब्द भेद नहिं जानै। आपी आप ब्रह्म मन मानै॥
सास्तर सिंध सार बतलावै। ता ते भौजल पार न पावै॥
चीन्है संत सुरति गति न्यारी। तौ पुनि उतरै भौजल पारी॥
आपा आप पाप गति खोवै। तब सतसंग संत गति जोवै॥

अर्थ–अब ज्ञान की स्थिति (ठाम) सुनों, मैं उसकी गति का गान कर रहा हूँ और मैं उसके भेद तथा भाव की गति बतला रहा हूँ। रेचक, पूरक, कुम्भक इसे कहा जाता है और सभी भेदों को सुन लें॥

शरीर की चार अवस्थाएँ कही गई हैं–(जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति) के साथ तुरीया गति की अभिलाषा की जाती हैं। इसकी गति परमहंस ही जानते हैं तथा इस कर्त्ता मन को ही ब्रह्म कहा जाता है॥

मन की अवस्थाएँ जागृति, स्वप्न एवं सुषुप्ति कही जाती हैं–इसके चौथे भेद तुरीया को सामान्य जन नहीं प्राप्त करते। मन की अन्तिम व्यवहार दशा यह है कि वह तुरीयातीत होकर उसके उस पर निवास करता रहे॥

म.तादि को मन में विलीन करके मन के अनुसार आचरण करे तथा कर्त्ता मन को ब्रह्म समझे। इससे व्यक्ति भवसागर को भोगने की स्थिति नहीं प्राप्त करेगा किन्तु इसके विपरीत बार-बार भवसागर में भोग की गति प्राप्त करता है। जो 'सतगुरु' शब्द का अर्थ नहीं समझता, और स्वयं अपने -आप को ही ब्रह्म मानता है, शास्त्रों को ज्ञानसिन्धु का सार तत्त्व समझता है, वह इस मायाजाल (भौजल) से मुक्ति नहीं पाता॥

जो सन्तों को पहचानता है, उनकी विलक्षण सुरति गति (ज्ञान) को जानता है, वही इस सांसारिक प्रपंचों से मुक्त होता है। आत्म ज्ञान से स्वयं जो पापमयी वृत्ति को नष्ट कर देता है, वही सत्संगति द्वारा संत गति को प्राप्त करता है॥

॥ द्वितीय ज्ञान ॥

॥ चौपाई ॥

औरहि ज्ञान सुनौ जग केरी। बेद पुरान जाल भौ बेरी॥
पंडित पढ़ पढ़ ज्ञान सुनावै। आदि गती गम भेद न पावै॥
झूठी आस बास सब केरी। फिरि फिरि स्वाँस आस भौ बेरी॥
जो जो कर्म करै सोइ पावै। बार बार भौ भटका खावै॥
मन में मान मोट कर जानै। ता ते परै नरक की खानै॥
भक्ती भाव भेद नहिं पावै। ऊँची जाति मान मन लावै॥
साधु संत मन में नहिं आवै। ऊँचा ज्ञान आप ठहरावै॥
नीचा होइ संत को जानै। संत कृपा कछु जानै आनै॥
संतन भेद बेद से न्यारा। नीच होइ पुनि पावै सारा॥
ऊँचा मान सदा मन राखै। सोइ सब जगत जीव कह भाखै॥
पूजन अपनी चाल बतावै। ऐसे सकल जीव भरमावै॥

अर्थ–संसार के अन्य ज्ञान के विषय में सुनें। वेद पुराणादि तो भवसागर के लिए बेड़ी बन्धन (बेरी) जैसे हैं। पंडित इन्हें पढ़-पढ़कर ज्ञान कहता है, और वह आदि ज्ञान की समझ और उसके भेदों को नहीं समझता॥

आशा, वासनाएँ (वास) सब कुछ झूठे हैं–पुन: पुन: श्वास की आशा (जीवन) भवसागर के लिए बेड़ी बन्धन (बेरी) बन जाता है। जो जो कार्य करता है, उसी का फल उसे मिलता है–और वह वासना के संसार में भटकता रहता है॥

मन की आकांक्षाओं का वह लक्षण (मोह) मान बैठता है, इसीलिए वह नरक की खान में पड़ता है। वह भक्तिभाव का रहस्य नही समझ पाता और जातियों को श्रेष्ठ मानकर उनमें मन लगाता है॥

साधु संगति का भाव उसके मन में नहीं उत्पन्न होता और अपने ज्ञान को ही सर्वोच्च ठहराता है। वह जब लघुता के भाव से सम्पन्न होगा तो संतों को समझेगा, फिर सन्तों की कृपा से थोड़ा बहुत ज्ञान उत्पन्न होगा। संतों के भेद वेद ज्ञान से भी विलक्षण है और सब कुछ लघुता से ही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है।

उच्च मानदण्ड सदैव ही रक्षा करते हैं और वही सम्पूर्ण संसार एवं जीवों के रूपों का निरूपण करता है। इससे भिन्न केवल अपने अनुसार अन्य पूजा आदि की विधियाँ बताते हैं, ऐसे व्यक्ति सभी के लिए भ्रम उत्पन्न करते हैं॥

॥ सोरठा ॥

यहिं बिधि जग मत ज्ञान पंडित भूले भरम में।
वाक ज्ञान परमान संत भेद चीन्हें नहीं॥

अर्थ–इस प्रकार से सांसारिक ज्ञान है, शास्त्रकार पंडित भ्रम में भूले हुए हैं–जहाँ तक सन्तों का प्रश्न है, वे किसी तरह के भेद भाव को नहीं पहचानते। उनके लिए केवल वाक् ज्ञान (सही-सही रूपो में शब्दों का गया) ही प्रमाण है॥

॥ चौपाई ॥

अब सुनु भक्ति भाव कर लेखा। रामायन में कीन्ह बिबेका॥
भक्ति भाव नौ बरनि सुनाई। ता से भिन्न चारि पुनि भाई॥
नौ फल भाव बेद बतलावै। जो जस करै भोग तस पावै॥
नौ की राह मुक्ति नहिं पावै। दसवीं अविरल भक्ति लखावै॥
एकादस अनुपावन लेई। बार बार मुक्ती बर देई॥
भेद भक्ति कर भाखौं लेखा। इष्ट भाव मन बसै बिबेका॥
अब अभेद का भेद अभेदा। ता को परम न पावै बेदा॥
कोइ कोइ साध संत गति पाई। जिन की सूरति सब्द समाई॥
सूरति सैल करै असमाना। जोगी पंडित परम न जाना॥
परमहंस सन्यासी भाई। उन का मरम नहीं उन पाई॥
जगत जाल संसार बिचारा। उनकी गति कोइ पावै न पारा॥

अर्थ–अब भावभक्ति का वर्णन सुनें। मैंने रामायण में उसका विवेक (स्पष्ट निरूपण) किया है। मैंने नौ प्रकार के भक्तिरूपों का वर्णन करके बताया है–उनसे भिन्न चार प्रकार के और भी भक्ति भेद हैं।

वेद या शास्त्र परम्परा नवधा भक्ति के फलों के स्वरूप का वर्णन करते हैं–जो जिस प्रकार की भक्ति करता है–वह उसी प्रकार का फलभोग प्राप्त करता है। नवधा भक्ति के मार्ग पर चलने से मुक्ति नहीं मिलती। दसवीं अविरल भक्ति का मार्ग दिखाती है। एकादश भक्ति अनुपावन (आत्म शुद्धि) होती है और यह भक्ति बार-बार श्रेष्ठ मुक्ति देती है।

अब भेद भक्ति का वर्णन करता हूँ इससे इष्ट भाव के प्रति मन में विवेक उत्पन्न होता है। अब अभेद रूप अभेद भक्ति का भेद बताता हूँ उसका रहस्य वेद को भी नहीं ज्ञात है। इसका ज्ञान किसी-किसी साधु सन्त को प्राप्त होता है–इसका ज्ञान सुरति समाधि में समाविष्ट है॥

सुरति समाधि द्वारा जो शून्य (आकाश) में स्थित शिखर पर है, योगी तथा पंडितजन भी उसके मर्म को नहीं जानते। परमहंस एवं सन्यासी भी उनका रहस्य नहीं जान पाए हैं। यह बेचारा मनुष्य संसार जगत जाल में फँसा पड़ा है–उनकी गति का कोई पार नहीं पा सकता॥

॥ सोरठा ॥

तेरा भक्ति बयान, सो प्रमान संतन कही।
तुलसी तनहिं बिचारि, सुरति भेद समझै कोई॥ १ ॥
नौ जग माहिं पसार, दसवीं कछु कछु भिन्न है।

एकादस मुक्ति मँझार, द्वादस गति मति मुक्ति मय॥ २॥
अब अभेद गति गाइ, तेरह येहि बिधि यों कही।
ये साधन के माइँ, सुरति सब्द जा ने लखी॥ ३॥

अर्थ–सन्त तुलसी साहब कहते हैं कि उनकी भक्ति के वर्णन का प्रमाण वही है, जो संतों द्वारा किया गया है। जरा विचार करके देखो, सुरतिभेद (रूपी भक्ति) कोई समझता नहीं है॥ १॥

नवधा भक्ति का संसार में प्रचलन है, दसवीं भक्ति कुछ-कुछ भिन्न है, एकादश भक्ति के लिए वही आधार है और बारहवीं भक्ति ज्ञानमय, विवेकमयी एवं मुक्तिमयी है॥ २॥

इस अभेद भक्ति का वर्णन करके मैंने इस प्रकार तेरह भक्ति रूपों का वर्णन किया है–जिसने सुरति 'शब्द' देख लिया है, उनके लिए ये सब साधन हैं या मार्ग हैं॥ ३॥

॥ छन्द॥

चारौ बैरागा जोग समाधा। तीनि ज्ञान गति गाइ दई।
नौ चारौ भक्ती जो निज उक्ती। भाषि भेद सब गाइ कही॥
जो जिन जानी संत बखानी। चरन चेत चित लाइ लई॥ १॥
सूरति सर चेती छाँड़ि अचेती। सुरति सैल नभ माहिं लई।
फोड़ा असमाना निरखि ठिकाना। पछिम किवारी द्वार गई॥ २॥
परमातम पाया जीव छुड़ाया। पारब्रह्म पद कँवल मई।
कँवला निज फूला मिटि गया सूला। जीव गती तजि ब्रह्म भई॥ ३॥
आगे इक द्वारा अगम पसारा। सत्तलोक वोहि नाम कही।
वहँ है सतनामा ब्रह्म न जाना। वे सत साहिब अगम सही॥ ४॥
तीनों से न्यारा लोक पसारा। चौथे पद के पार वही।
जहँ है निःनामी कोउ न जानी। तीनों पट के पार रही॥ ५॥
कहौं अगम अनामी ठीक न ठामी। संतन जानी सार सही।
अंबर असमाना मही न भाना। चाँद सुरज तत तारे नहीं॥ ६॥
पानी नहिं पवना अगिनि न भवना। वेद भेद गति नाहिं लई।
ब्रह्मा नहिं बिस्ना राम न किस्ना। सिव सिद्धी नहिं पार लई॥ ७॥
निर्गुन नहिं सर्गुन नहिं अपबर्गुन। पिंड ब्रह्मंड दोउ नाहिं कही।
जोती नहिं सोती अगम न होती। पारब्रह्म की आदि नहीं॥ ८॥
नहिं कार अकारा नहिं निरकारा। सत्त नाम सत सत्त रही।
नहिं नाम अनामी तुलसी जानी। जाइ समानी सार मई॥ ९॥

अर्थ–चारों प्रकार के वैराग्य, योग, समाधि तथा तीन ज्ञानों की गतियों का वर्णन करके बतला चुका हूँ। तेरह (नौ + चार) प्रकार की भक्ति के सम्बन्ध में अपने मत आदि का वर्णन करके उनके भेदों का निरूपण किया॥

इनमें से जो इसको जान ले रहा सन्त कहा जाएगा और मैंने उसके निर्मल चरणों में चित्त को लगा लिया है॥ १॥

अज्ञानता (अचेती) का त्याग करके सुरति रूपी सरोवर का स्मरण करो (ध्यान करो) और सुरति के पार स्थित ध्यान के पर्वत शिखर के आकाश पर ध्यान लगाओ। उस आसमान को तोड़कर अपने ठिकाने को देखो और मैं पश्चिमी किवाड़े के द्वार पर पहुँचा॥ २॥

वहाँ परमात्मा मिला और इस जीवत्व के बन्धन से मुक्ति मिली और पारब्रह्म के चरण कमलमय हो उठे॥ स्व कमल पुष्पित हुआ-जन्म जन्मान्तर की पीड़ा समाप्त हो उठी और जीव के इस स्वरूप का परित्याग करके मैं ब्रह्ममय हो उठा॥ ३॥

उसके आगे अगम्य तक फैला एक द्वार मिला-उसका नाम सत्य लोक कहा गया है। वहाँ एक सत्यनाम है-जिसे ब्रह्म भी नहीं जानता-वही अगम्य 'सत साहब' हैं।। ४॥

यह लोक तीनों लोकों से विलक्षण तथा व्याप्य लोक है, और वही चतुर्थ पद (मोक्ष) के उस पार है, जहाँ पर अनाम (निःनामी) निवास करते हैं और जिनके विषय में कोई नहीं जानता। वे तीनों पटों (लोकों की सीमा) के पार रहते हैं॥ ५॥

न वहाँ जल है, न वायु है, न अग्नि है, न निवास गृह है और ज्ञान की गतियों का कोई स्वरूप भी नहीं है। जहाँ न ब्रह्मा हैं, न विष्णु हैं, न राम हैं, न कृष्ण हैं और शिव तथा सिद्ध भी जिसका रहस्य नहीं प्राप्त कर पाते॥ ७॥

वहाँ न निर्गुण है, न सगुण है और न वहाँ स्वर्ग का नामोनिशान है और न कहीं वहाँ पिंड या ब्रह्मांड है॥ परमात्मा की ज्योति का न वहाँ कोई स्रोत (सोती) है, वहाँ अगम या अज्ञेय भी नहीं है और पार ब्रह्म परमात्मा का आदि स्वरूप लक्षण भी नहीं है॥ ८॥

वहाँ न कोई अनाकृति है, न कोई आकृति है, न कोई निरंकार है-वहाँ केवल 'सत्य नाम-ही सही-सही स्थिति में है। तुलसी साहब जानते हैं कि वहाँ न कोई नाम है, न अनामी है वरन् वहाँ समस्त तत्त्व या महातत्त्व उस परम सारमय 'सत्य तत्त्व' में जाकर समाविष्ट हैं॥ ९॥

॥ सोरठा॥

तुलसी अगम अनाम, अगत भेद का से कहौं।
कोउ न मानै बात, संत अंत कोउ ना लखै॥ १॥
निगम न पावै बेद, नेति नेति गोहरावही।
ब्रह्म न जानै भेद सत्त, नाम निज भिन्न है॥ २॥
एक अनीह अनाम, सत सुरति जानै यही।
वे पहुँचे वोहि धाम, सो अनाम गति जिन कही॥ ३॥
तुलसी अगम बिचार, सार पार गति पद लखा।
वह अलेख का ठाम, तुलसी तरक विचारिया॥ ४॥
सुरति अटा के पार, आठ अटारी अधर में।
तुलसिदास लियौ सार, सुरति सिंध से भिनि भई॥ ५॥

अर्थ-तुलसी साहब कहते हैं कि वह परम तत्त्व अगम्य है, अनाम है-फिर उसे ज्ञान के भेद का वर्णन मैं कैसे करूँ सम्भव है, मेरी बातें कोई न स्वीकार करे-क्योंकि सन्तों की अन्तिम ज्ञान दशा किसी की समझ में नहीं आती॥ १॥

शास्त्रादि जिसके ज्ञान को नहीं प्राप्त कर सकते और जिसे 'नेति नेति' कहकर पुकारते हैं-जिसके, स्वरूप भेद को ब्रह्म भी नहीं जानता, यह 'सत्य' नाम स्वयं में सबसे अलग है॥ २॥

वह केवल एक है, आकांक्षा शून्य, अनाम है और जिसे सुरति के द्वारा ही जाना जाता है-वही

सुरति ध्यानी मे न ही उस धाम तक पहुँचते हैं, वह अनाम गति है--उसके विषय में ऐसा कहा गया है॥ ३॥

तुलसी साहब कहते हैं कि यह मेरा अपना अगम चिन्तन है और मैंने इसे उस परम तत्त्व के पार (शून्य पर्वत शिखर के पार) जाकर मैंने देखा है-वह अलेख्य की स्थली है-तुलसी ने उसे अपने अनुभव से विचारा (समझा) है॥ ४॥

सुरति ध्यान रूपी अटारी (अट्टालिका) के उस पार उस शून्य (अघट) में आठ अटारियाँ (अट्टालिकाएँ) हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने उनका सारतत्त्व समझा है और उसको समझने के बाद उनमें तत्मयता (भिनि गई) प्राप्त कर ली॥ ५॥

॥ चौपाई॥

आठ अटारी सुरति समानी। मंगल ठुमरी करी बखानी॥
जस जस सूरति चढ़ी अटारी। तस तस बिधि मैं भाखी सारी॥

अर्थ-सुरति आठ अटारियों (अट्टालिकाओं) में जाकर समा गई और मैं उसका वर्णन मंगल ठुमरी राग में कर रहा हूँ। जैसे-जैसे एक-एक (अटारी) अट्टालिका पर सुरति चढ़ रही है, उस-उस प्रकार से उसके मंगल का गान मैं कर रहा हूँ।

॥ मंगल॥

आठ अटारी महल, सुरति चढ़ि चाखिया।
ठुमरी माहीं भेद, भाव सब भाखिया॥ १॥
संत पंथ का अंत, साध कोइ बूझिहै।
प्यारी पुरुष मिलाप, साफ स्रुति सूझिहै॥ २॥
जस जस मारग रीति, राह समझाइया।
प्यारी अटारी माहि, जाइ सोइ गाइया॥ ३॥
मन मथ कीन्हा चूर, सूर स्रुति ले चढ़ी।
गुरु पद पदम्‌ मँझार, पुरुष पैं जा खड़ी॥ ४॥
बिधि बिधि ठुमरी माहिं, गाइ तुलसी कही।
जो कोइ चीन्है भेद, संत सोई सही॥ ५॥

अर्थ-आठ अटारियों (अट्टालिकाओं) के ऊपर चढ़कर सुरति अपने प्रिय का आनन्द चख रही है। इस मंगल ठुमरी के माध्यम से उसके स्वरूप तथा दशाओं का मैं वर्णन करता हूँ॥ १॥

संत मार्ग की समाप्ति का मर्म कोई ही संत बूझेगा। प्रिय आत्मा एवं पुरुष ब्रह्म का मिलन वेदों में साफ-साफ दिखाई पड़ता है॥ २॥

जैसा-जैसा वहाँ तक पहुँचने का मार्ग है और उनके परस्पर मिलने की रीति है, मैं उसे समझा रहा हूँ। प्रिया (आत्मा) प्रिय (ब्रह्म) की अटारी में है वहीं जाकर मैं गान करता हूँ॥

कामदेव को पूरी तरह नष्ट करके चूर्णकर दिया और श्रुति के सूर (आत्म तत्त्व) को लेकर मैं अट्टालिका के ऊपर चढ़ चली। गुरु के चरण कमल के मध्य होकर मैं अपने प्रिय पुरुष (आराध्य परमात्मा) के चरणों में जाकर खड़ी हो गई॥ ५॥

तुलसी साहब कहते है अनेक प्रकार की ठुमरियों में इसे गाकर बताया है-जो इन भिन्न-भिन्न ठुमरियों के भेद पहचान ले वही सन्त है॥ ५॥

॥ सोरठा॥

ठीका ठुमरी माँहि आठ अटारी अधर की।
सूरति पदम विलास विधि बयालीस पद मिली॥

अर्थ–इस ठीका ठुमरी राग द्वारा अन्तरात्मा (अधर) की आठ अट्टारियों का वर्णन कर रहा हूँ। सुरति द्वारा प्रिय के चरणों में विलास करती हुई मैं विधिवत् बयालीस तत्त्वों से मैं मिली॥

॥ ठुमरी १॥

अली अटकी सुरति अटारी। मन हटकर हारा री॥ टेक॥
यह अँग संग भंग ले लटकी। सूली स्वर्ग नर्क भौ भटकी।
दीन्ही सतगुरु घट की तारी। चटकी मति फटक फटा री॥ १॥
ये ले लार पार स्त्रुति सटकी। निरखि अलख आदि घटघट की।
हकलख लागी बिरह करारी। हिये खटकी कसक कटारी॥ २॥
नौलख खेल कला ज्यों नट की। सूरति सहस कँवल झर भटकी॥
लीला सिखर निकर नित न्यारी। दधि मटुकी घिरत मठारी॥ ३॥
तुलसी तोल कही तिल तट की। भड़ धुनि ररंकार रस रट की॥
ये दस रस बस सुरति सँवारी। पिउ पट की खोलि किवारी॥ ४॥

अर्थ–हमारी सखी अभी सुरति की अटारी में ही फँसी हुई है, वहाँ से हटकर मन हार बैठा है. सुरति लोक में अन्य तत्त्वों को साथ-साथ लेकर मैं लटकी रही–स्वर्ग, नरक, भवसागर की पीड़ा (सूली) में भटकती रही। सत्गुरु ने इस पिंड के दरवाजे पर ताली लगा दी और उस दरवाजे की आवाज सुनते है–हमारी चेतना जाग्रत (फटक) हो उठी॥ १॥

अलक्ष्य ब्रह्म जो मूलरूप में आदि से ही घट-घट में स्थित है, उसे देखकर यह मेरी ज्ञान चेतना आनन्दपूर्वक मुझे लेकर उसके पास पहुँच गई–एकाएक (हकलक) मुझे उसे पाने के लिए तीक्ष्ण वियोग जागृत हो उठा और हृदय में जैसे कसक भरी कटारी खटक (घुस गई या लग गई–या हिल गई) गई हो॥ २॥

मैं सुरति ज्ञान के स्हस्त्रार कमल दल में एकाएक ऐसी भटक गई मानो नट कला के नौलख खेलों में भटक गया हो। शून्य शिखर की लीला नित्य विलक्षण है–जैसे दही से भरी हुई मटकी में ऊपर छाँछ क्षण-क्षण अपने आप उतर आता हो॥ ३॥

एक तिल जैसे स्थान वाले तट की कोई तुलना (तोल)नहीं है और उसमें अनाहत नाद के 'रंकार' ध्वनि की रसमयी रटन शुरू हो उठी। फिर पति (ब्रह्म) के कक्ष की किवाड़े खोलकर मैंने दस रसों के वश में होकर सुरति ध्यान (आलिंगनादि का आनन्द) सँवार लिया॥ ४॥

॥ ठुमरी २॥

मँझरी पिय झाँकि निहारी। सखि सतगुरु की बलिहारी॥
दीन्हे दृग सुरति सँवारी। चीन्हा पद पुरुष अपारी॥ १॥
चली गगन गुफा नभ न्यारी। जहँ चंद न सूर सिहारी॥
तुलसी पिय सेज सँवारी। पौढ़ी पलँगा सुख भारी॥ २॥

अर्थ–हे सखि! मझली नायिका ने पति (ब्रह्म) को झाँक कर देख लिया, यह गुरु की ही कृपा का

फल है। सुरति ध्यान को सँवार कर उसने आँखें बन्द कर ली और उस अनन्य ब्रह्म (अपारी पुरुष) का स्थान पहचान लिया॥ १॥

उस शून्याकाश की न्यारी गुफा में वह चल पड़ी जहाँ न चन्द्रमा है, न सूर्य है–न कोई अन्य (सिहारी) है। तुलसी साहब कहते हैं कि वहाँ प्रिय (ब्रह्म) की सेज सजी हुई बिछी है–और वह आत्मा पलँग पर अत्यन्त आनन्द के साथ लेट गई (पौढ़ी) ॥ २॥

॥ ठुमरी ३॥

सलिता जिमि सिंध सिधारी। सूरति रत सब्द बिचारी॥
जहँ सुन्न न सुन्नी न्यारी। मत मीन महासुन पारी॥ १॥
नहिं गुन निर्गुन मत झारी। निज नाम निअच्छर भारी॥
जहँ पिंड ब्रह्मंड न तारी। तुलसी जहँ सुरति हमारी॥ २॥

अर्थ–जैसे सरिताएँ सिन्धु के लिए प्रस्थान करती है–उसी प्रकार सुरति रत साधक अनादि शब्द की ओर चलता है। जहाँ न शून्याकाश है और न शून्यसाधक चित्त, यह मन रूपी मछली उस महाशून्य रूपी सरोवर में जा पड़ी (पारी)॥ १॥

जहाँ न गुण है, न निर्गुण है और सारे मतवाद भी वहाँ नहीं हैं–और वहाँ उसका (ब्रह्म का) अपना नाम बिना अक्षर का है। जहाँ न पिंड है, न ब्रह्मांड है न ज्ञान की किवाड़ों को बंद किये हुए ताली है–तुलसी साहब कहते हैं कि वहाँ हमारी सुरति निवास करती है॥ २॥

॥ ठुमरी ४॥

ए अली आदि अंत अधिकारी। पिय प्यारी प्रीति दुलारी॥
हम कीन्हा खेल पसारी। सब रचना रीति हमारी॥ १॥
करता नहिं काल पसारी। हम अगम पुरुष की नारी॥
ठुमरी सोइ संत बिचारी। तुलसी नित नीच निहारी॥ २॥

अर्थ–हे सखी! यह नायिका (पत्नी), आत्मा प्रिय (ब्रह्म) को अति प्रिय है, उसके आदि अन्त की स्वामिनी है और अत्यन्त प्रेम के कारण उसके लिए दुलारी बनी हुई है। हमारे सारा खेल खुला फैला है और खेल की रचना और दूसरे की नहीं, मेरी ही है॥ १॥

इस खेल का कर्त्ता चारों ओर फैला हुआ काल नहीं है मैं तो उस अगम पुरुष (ब्रह्म) की पत्नी हूँ। (जिस पर किसी अन्य का प्रभाव नहीं है)। संतों की इस आनन्दमंगलमयी ठुमरी को सुनकर तुलसी साहब सदैव अपने को छोटा (तुच्छ, नीच) समझते रहते हैं॥ २॥

॥ ठुमरी ५॥

ए गुइयाँ पिय हम हम पिय एकी। कोइ फरक न जानौ नेकी॥
कोइ बूझै संत बिबेकी। जोइ अगम निगम नहिं लेखी॥ १॥
जिन अटल अटारी पेखी। पिय रूप न रेख अदेखी॥
कोइ कंथ न पंथ न भेषी। तुलसी सब मारग छेकी॥ २॥

अर्थ–हे साथिन (गुइयाँ)! प्रिय में मयी और मैं प्रियमयी बनकर एक हो उठी हूँ और हममें तथा उनमें (आत्मा तथा ब्रह्म में) कोई जरा भी (नेकी) अन्तर न समझो। इस वास्तविकता को कोई बिबेकवान् सन्त ही समझ सकता है–जिसने अगम एवं निगम में निरूपति ब्रह्म को न समझकर आत्मब्रह्म को समझा हो॥ १॥

जिन सन्तों ने इस शून्याकाश की अटल अट्टालियाओं को देख लिया है और रूप तथा लक्षणों (रेख) से हीन ब्रह्म को हृदय में अपने को तन्मय कर दिया है, वह न कोई कथ (कथा-शास्त्र) कहता है और न किसी पंथ (ज्ञानमार्ग) को जानता है और न वह वेषभूषा (सन्तों जैसी) धारण करता है, वही उस ब्रह्म के समस्त मार्गों में आत्म चित्त को साक्षात्कृत करके बैठा है ॥ २ ॥

॥ सोरठा ॥

ठुमरी ठौर ठिकान, अगम भान स्त्रुति पद लखा।
चखा अमर रस ज्ञान, पार पुरुष पद में मिली॥ १ ॥
पिया भवन के माइँ, जाइ जोइ जस जस कही।
रही पुरुष पद छाइ, लई आदि अपने गई॥ २ ॥

अर्थ–उसका ठौर ठिकाना ठुमरी ही है और उसी भाव में श्रुतियों ने निर्दिष्ट अगम्य सूर्य का स्थान देखा है। इसी के माध्यम से उन्होंने उस ब्रह्म के अगम ज्ञान रस का स्वाद चखा है और मैं (आत्मा) उस लोक (पार) में जाकर पुरुष (ब्रह्म) से मिल गई॥ १ ॥

मैंने जो-जो और जैसा-जैसा कहा है, उसका अनुसरण करने पर ब्रह्म भवन में प्रवेश हो जाता है। उसी भावना एवं प्रक्रिया से पुरुष (ब्रह्म) के चरणों पर (आत्मा) स्थिर हो उठती है और उस आदि तत्त्व को अंगीकार करके आत्ममयी हो उठती है॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

पुरुष पदम सम सोइ, तुलसी सूरति लखि चली।
ज्यों सलिता जल धार, लार सुरति सब्दै मिली॥

अर्थ–पुरुष (ब्रह्म) के चरणों सदृश स्थल पर स्थिर होकर तुलसी साहब कहते हैं कि सुरति ध्यान में उन्हें देखकर उनके सन्निध्य के लिए आत्मा चल निकली। जैसे सरिता की जलधारा समुद्र के लिए स्वत– चल पड़ती है–ठीक वैसे ही अत्यन्त संसक्ति के साथ सुरति शब्द में मिल गई।।

॥ सोरठा ॥

हम पिय पिय हम एक, लखि विवेक संतन कही।
भई अगम रस भेष, देखा दृग पिय एक होइ॥ १ ॥
हमरा सकल पसार, वार पार हमहीं कही।
संत चरन की लार, आदि अंत तुलसी भई॥ २ ॥

अर्थ–मैं (आत्मा) और प्रियतम (ब्रह्म) एक हैं और ब्रह्म तथा प्रियतम एकमेव। यह चित्त की अगम्य रसमयी भेष रचना अब तृप्तिमयी हो उठी है और प्रिय से एकमयी होकर मुझ अनन्य प्रेमिका ने प्रिय और मैं की एकमयता की दृष्टि से एक दूसरे को देखा॥ १ ॥

अपने आत्मिक सम्मिलन की बात बार-बार मैं ही कहती हूँ, यह लोक के उस पार है। इसकी दृष्टि से सन्त चरणों के प्रति संसक्ति (लार) तुलसी साहब कहते हैं कि आदि अन्तमयी एक हो उठी है॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

निरखा आदि अनादि, साधि सुरति हिये नैन से।
करै कोइ संत बिचार, लखि द्रुबीन स्त्रुति सैल से॥

अर्थ–सुरति रूपी दूरबीन की सहायता से शून्य शिखर पर चढ़कर मैंने उस आदि रूप अनादि तत्त्व को हृदय रूपी नेत्रों से समाधि के क्षणों में साध कर देखा।

॥ चौपाई ॥

तुलसी निरखि देखि निज नैना। कोइ कोइ संत परखिहै बैना॥
जो कोइ संत अगम गति गाई। चरन टेकि पुनि महूँ सुनाई॥
अब जीवन का कहौं निबेरा। जा से मिटै भरम बस बेरा॥
जब या मुक्ति जीव की होई। मुक्ति जानि सतगुरु पद सेई॥
सतगुरु संत कंज में बासा। सुरति लाइ जो चढ़ै अकासा॥
स्याम कंज लीला गिरि सोई। तिल परिमान जानि जन कोई॥
छिन छिन मन को तहाँ लगावै। एक पलक छूटन नहिं पावै॥
स्त्रुति ठहरानी रहै अकासा। तिल खिरकी में निस दिन वासा॥
गगन द्वार दीसै इक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा॥
अनहद सुनै गुनै नहिं भाई। सूरति ठीक ठहर जब जाई॥
चूवै अमृत पिवै अघाई। पीवत पीवत मन छकि जाई॥
सूरति साथ संघ ठहराई। तब मन थिरता सूरति पाई॥
सूरति ठहरि द्वार जिन पकरा। मन अपंग होइ मानौ जकरा॥
चमकै बीज गगन के माई। जबकि उजास पास रहै छाई॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने भली भांति निरखकर उस तत्त्व को अपनी हृदय-रूपी आँखों से देखा है–कोई-कोई ही सन्त मेरी इस वाणी को समझेगा॥ जो कोई सन्त की गति का गान करता है, उसी के स्वर में स्वर मिलाकर मैंने भी चरण टेक कर (उस ब्रह्म के प्रति) मैंने (महूँ) भी उस सत्त्व को सुनाया है॥

अब मैं जीवन के वर्णन का निपटारा करता हूँ–जिससे कि भ्रमवश स्थित चित्त का बन्धन (घेरा) समाप्त हो उठे। जब इस जीव की मुक्ति होगी–मुक्ति को समझकर साधक गुरुचरणों की सेवा करेगा। सतगुरु (ब्रह्म) का निवास सहस्त्रार कमल में है, और जो साधक सुरति साधना द्वारा उस शून्याकाश तक पहुँचता है वहीं उसे श्याम कमल लीला शिखर दिखाई पड़ता है–कोई-कोई ही सन्त जन उसके तिल जैसे होने की प्रमाण गति को पहचानता है। वह साधक उस तिल जैसे तत्त्व पर क्षण-क्षण मन को लगाए रहता है और एक पल के लिए वह ध्यान छूटने नहीं पाता॥

समस्त श्रुतियाँ उस आकाश में ठहरी रहती हैं और तिल की खिड़की में उनका निरन्तर निवास बना रहता है। शून्याकाश के द्वार पर एक तारा दिखाई पड़ता है–और निरन्तर (अनाहत नाद की झंकार सुनाई पड़ती है। हे भाई! अनाहत सुनाई पड़ती है किन्तु समझ में नहीं आती और जब भलीभाँति सुरति समाधि ठहर जाती है,तब अमृत का निरन्तर स्त्राव होने लगता है और साधक तृप्त होकर उसका पान करता है और उसका पान करते-करते मन सर्वथा परितृप्त हो उठता है॥

वह साधक सुरति के साथ आनन्द सिंधु में ठहर जाता है और तब साधक का स्थिर सुरति प्राप्त करता है।

सुरति में स्थिर होकर जिन्होंने उस अगम्य के द्वार को पकड़ रखा है–उसका मन उसी में विलुप्त हो उठता है, अपंग (जड़) की भाँति जकड़ उठता है। उस आकाश में हे सखी! विद्युत चमकती रहती है और पास में उजाला छाया रहता है।

॥ चौपाई ॥

जस जस सुरति सरकि सत द्वारा। तस तस बढ़त जात उँजियारा॥
सेत स्याम स्त्रुति सैल समानी। झरि झरि चुवै कूप से पानी॥
मन इस्थिर अस अमी अघाना। तत्त पाँच रँग बिधी बखाना॥
स्याही सुरख सपेदी होई। जरद जाति जंगाली सोई॥
तिल्ली ताल तरंग बखानी। मोहन मुरली बजै सुहानी॥
मुरली नाद साध मन सोवा। विष रस बादि बिधी सब खोवा॥
खिरकी तिल भरि सुरति समाई। मन तत देखि रहै टक लाई॥[१]
जब उजास घट भीतर आवा। तत्त तेज और जोति दिखावा॥
जैसे मंदिर दीप किवारा। ऐसे जोति होत उँजियारा॥
जोति उजास फाटि पुनि गयऊ। अंदर चंद तेज अस भयऊ॥
देखै तत सोइ मनहि रहाई। पुनि चंदा देखै घट माईं॥
चंद्र उजास तेज भया भाई। फूला चंद चाँदनी छाई॥
सूरति देखि रहै ठहराई। ज्यों उजियास बढ़त जिमि जाई॥
ज्यों ज्यों सुरति चढ़ि चलि गयऊ। सेता ठौर ठाम लखि लयऊ॥
देख सैल ब्रह्मण्ड समाई। तारा अनेक अकास दिखाई॥
महि अरु गगन देखि उर माई। और अनेकन बात दिखाई॥
कछु कछु दिवस सैल अस कीन्हा। ऊगा भान तेज को चीन्हा॥
तारा चंद्र तेज मिटि गयऊ। जिमि मध्यान भान घट भयऊ॥
ज्यों दोपहर गगन रबि छाई। तैसे उजास भया घट माईं॥
ता के मधि में निरखि निहारा। घट में देखा अगम पसारा॥
सात दीप पिरथी नौ खण्डा। गगन अकास सकल ब्रह्मंडा॥
समुँदर सात प्राग पद बेनी। गंगा जमुना सरसुतौ बहिनी॥
औरै नदी अठारा गंडा। ये सब निरखि परा ब्रह्मंडा॥
चारौ खानि जीव निज होई। अंडज पिंडज उषमज सोई॥
अस्थावर चर अचर दिखाई। यह सब देखा घट के माईं॥

अर्थ–जैसे-जैसे सुरति समाधि सुरति द्वार की ओर से सरक 'सत्य' द्वार की ओर आती है, वैसे-वैसे उजाला बढ़ता जाता है। श्वेत और श्याम रूप में स्थित सुरति शून्य शिखर में समा उठती है, तब ऐसा अनुभव होता है कि झर-झर झरता हुआ औंधे कुएँ का जल बरस रहा है।

इस अमृत से तृप्त होकर मन स्थिर है। संसार का पाँच तत्त्वों में रंग जाना विधि का विधान है-ये स्याह रंग, लाल श्वेत पीला तथा हरा हैं। तिल जैसे ब्रह्मद्वार पर स्थित सरोवर की लहरों का वर्णन कर

---

१. मुं० दे० प्र० के पाठ में ''टक लाई'' की जगह ''टकराई'' है।

रहा हूँ, जहाँ मोहन श्रीकृष्ण की आनन्ददायिनी मुरली बजती रहती है। मुरली की ध्वनि साधु जनों के मन का विश्राम करने लगती है और वासना के विषय रसों के विपरीत सभी विधाता के रंग में खो जाते हैं। तिल की खिड़की सुरति में विलीन हो उठती है और मैं उस रूप को देखकर एकटक टकटकी लगाए रखता है।

वह उजाला जब पिंड के भीतर आता है, वह तत्त्व को तेज और परम ज्योति दिखलाने लगता है। जैसे मंदिर का दीपक, ठीक उसी प्रकार इस ज्योति से सर्वत्र उजाला हो उठता है॥ एक क्षण के लिए इस ज्योति का प्रकाश फूट पड़ता है, फिर शरीर के अन्तःकरण में चन्द्रमा जैसी ज्योति निखर आती है। फिर साधक, मन में स्थित उस तत्त्व को देखता रहता है, और उसके बाद घट के भीतर वह चन्द्रमा देखता रहता है॥

चन्द्रमा का उजाला तेजमय प्रकाश में बदल जाता है–और चारों तरफ चन्द्रमा खिल उठता है और उसकी चाँदनी छा उठती है। उस उजाले को देखती हुई सुरति भी एक क्षण के लिए ठहर जाती है और तब ऐसा लगता है मानो उजाला बढ़ता जा रहा हो॥ ज्यों-ज्यों सुरति आगे चढ़कर चलती जाती है वह चाँदनी की उज्ज्वलता का सार ठौर-ठामों (स्थानों) पर देख लेती है॥

वह उज्ज्वल पर्वत शिखर देखकर ब्रह्मांड में समा जाती है–जहाँ आकाश में अनेक तारागण दिखाई पड़ते हैं। हृदय में ही पृथ्वी तथा आकाश को देखो तथा अन्य अनेक बातें भी यहाँ दिखाई पड़ती है॥ कुछ दिनों तक वह पर्वत शिखर इसी प्रकार रहता है और तब सूर्य का उदय होता है किन्तु उस सूर्य के प्रकाश को कौन पहचानता है। सूर्य का तेज व्याप्त होने पर तारा समूह तथा चन्द्रमा का प्रकाश का समय मिट जाता है, ठीक उसी तरह घट के भीतर सूर्य का प्रकाश है।

जैसे दोपहर में सूर्य आकाश में व्याप्त हो उठता है वैसा ही, प्रकाश घट के भीतर हो उठता है–उस मध्य में अच्छी तरह निरख और निहार कर मैंने इस पिंड में अगम्य ईश्वर का प्रसार देखा है।

सात द्वीप एवं नौ खंडों वाली पृथ्वी–आकाश, अन्तरिक्ष तथा समस्त ब्रह्मांड में यह व्याप्त है। सात समुद्र यहाँ हैं, प्रयाग (प्राग) और त्रिवेणी (त्रेनी) है, साथ में, गंगा, यमुना तथा प्रवाहित सरस्वती भी तथा नब्बे (अठारह गंडा) नदियाँ, ये सभी पिंड में (ब्रह्मांड के परे) दिखाई पड़ी।

चारों प्रकार के जीव समूह–अंडज, पिंडज, उष्मजआदि तथा 'स्थावर, चर, अचर आदि सभी घट के भीतर ही दिखाई पड़े।

॥ चौपाई ॥

भिनि भिनि जीवन कर बिस्तारा। चारि लाख चौरासी धारा॥
और पहार नार बहुतेरा। जो ब्रह्मंड में जीव बसेरा॥
कछु कछु दिवस सैल अस कीन्हा। तीनि लोक भीतर में चीन्हा॥
जो जग घट घट माहिं समाना। घट घट जग जिव माहिं जहाना॥
ऐसे कइ दिन बीति सिराने। एक दिवस गये अधर ठिकाने॥
परदा दूसर फोड़ि उड़ानी। सुरति सुहागिनि भइ अगमानी॥
सबद सिंध में जाइ सिरानी। अगम द्वार खिरकी नियरानी॥
चढ़ि गइ सूरति अगम ठिकाना। हिये लखि नैना पुरुष पुराना॥
ता में पैठि अधर में देखा। रोम रोम ब्रह्मंड का लेखा॥
अंड अनेक अंत कछु नाहीं। पिंड ब्रह्मांड देखि हिये माहीं॥
जहँ सतगुरु पूरन पद बासी। पदम माहिं सतलोक निवासी॥

सेत बरन वह सेतइ साँई। वहँ संतन ने सुरति समाई॥
सत्तहि लोक अलोक सुहेला। जहँवाँ सुरति करै निज केला॥
सूरति संत करै कोइ सैला। चौथा पद सत नाम दुहेला॥
परदा तीसर फोड़ि समानी। पिंड ब्रह्मांड नहीं अस्थानी॥
जहँवाँ अगम अगाधि अघाई। जहँ की सत गति संतन पाई॥
महुँ उन तार लार लरकाई। उन सँग टहल करत नित जाई॥
महुँ पुनि चीन्ह लीन्ह वह धामा। बरनि न जाइ अगमपुर ठामा॥
नि: नामी वह स्वामी अनामी। तुलसी सुरति सैल तहँ थामी॥
जो कोइ पूछै तेहि कर लेखा। कस कस भाखौं रूप न रेखा॥
तुलसी नैन सैन हिये हेरा। संत बिना नहिं होइ निबेरा॥
निज नैना देखा हिये आँखी। जस जस तुलसी कहि कहि भाखी॥

अर्थ–भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवन रूपों का विस्तार अर्थात् चार लाख चौरासी हजार प्रकार के जीवों साथ में, अनेक पहाड़ और अनेकों नालें (नार) आदि जिसमें ब्रह्मांड के जीवों का निवास है (मैंने देखा।)।

अनेक दिनों तक पर्वत शिखर पर इस प्रकार रहकर अपने पिंड के भीतर स्थित तीनों लोकों को पहचाना जो संसार घट-घट के भीतर समाया हुआ है,वही घट-घट का स्थित जीव सृष्टि (जहान) में भी है।

इस प्रकार कुछ दिन यहाँ व्यतीत हुए फिर एक दिन मैं अन्तर-तल (अधर) के स्थान पर पहुँचा। द्वार पर स्थित दूसरा पर्दा फट कर उड़ गया और तब सौभाग्यती सुरति का आगमन हुआ। (सबद) समुद्र में जाकर खो गया फिर अगम द्वार की खिड़की समीप आई। सुरति समाधि अपने निवास स्थली पर चढ़ गई और हृदय के नेत्रों से अपने उस पूर्व साथी पुरुष (ब्रह्म) को देखा। वहाँ बैठकर उसने अन्तस्तल में रोम-रोम में ब्रह्मांड देखा।

अनेक लोक (पिंड) दिखाई पड़े–जिनके अन्त नहीं हैं और अपने हृदय में अनेकों पिंड एवं ब्रह्मांड देखे–वहाँ पूर्ण पद निवासी सतगुरु (ब्रह्म) और उसके सहस्त्रार कमल में 'सत्य लोक' निवास करता दिखाई पड़ा॥

स्वामी ब्रह्म भी श्वेत वर्ण के है और वह सत्य लोक भी श्वेत वर्ण का है और वहीं संत गण सुरति ध्यान में डूबे हुए दिखाई पड़े। इस सत्यलोक का आलोक बड़ा ही सुहावना (सुहेला) था जहाँ सुरति स्वयं क्रीड़ा में लीन थी। कोई विरला साधु ही सुरति में क्रीड़ा (केलि-क्रीड़ा-केला) करता है। उसके पश्चात् चौथे लोक का नाम 'सत लोक' है–जो नितान्त दुर्लभ है।

इसके पश्चात् तीसरे पर्दे को फाड़कर उसके आगे घुसी (समानी)। वहाँ न पिंड था, न ब्रह्मांड था, न कोई स्थान विशेष ही)। यहाँ अगम्य अगाध, पूर्ण परितृप्त हैं–जिसकी थाह केवल संतों ने प्राप्त की है) मैंने भी, उनकी संसक्ति में अपनी संसक्ति लगा दी (तरकाई) और नित्य प्रति उनके साथ जाकर सेवा टहल करने लगा। मैंने उन्हीं के साथ उस धाम (लोक) की पहचान कर ली। उस अगम नगरी के स्थानों का वर्णन नहीं किया जा सकता।

वहाँ स्थित स्वामी नि:नामी तथा अनामी है–तुलसी साहब कहते हैं कि यह सुरति ध्यान का पर्वत शिखर वहीं ठहरा है। उसके विषय में जो जैसा पूछता है–वही उसका सार्थक संदर्भ है–मैं किस-किस रूप में उसके रूप तथा लक्षणों का वर्णन करूँ। तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने हृदय की आँखों से जिस प्रकार का उसे देखा है, उसी-उसी प्रकार कह कर वर्णन करता हूँ॥

॥ सोरठा ॥

पिंड माँहिं ब्रह्मंड, ताहि पार पद तेहि लखा।
तुलसी तेहि की लार, खोलि तीनि पट भिनि भई॥ १ ॥
तुलसी संत अनकूल, कँवल फूल ता में धसी।
लसी जाइ सत मूल, फँसी पाइ सतगुरु सरन॥ २ ॥
खुलि गये अगम किवार, लील सिखर के पार होइ।
गिरा गगन के पार, पाइ सैल अस बिधि कही॥ ३ ॥
अंडा फूट अकास, होइ निरास सूरति चली।
अगम गली निज पाइ, तहँ आसन तुलसी कियौ॥ ४ ॥
हिरदे हरष समाइ, पाइ ताहि गति कस कही।
कोइ कोइ संत समाय, ताही तें गति तस भई॥ ५ ॥

अर्थ–पिंड (घट) के भीतर ही ब्रह्मांड है और उसके पार जाकर ब्रह्म का निवास देखा। तुलसी साहब कहते हैं कि उसकी संसक्ति में तीनों पटों को खोलकर मैं भिन्न स्वरूप का साधु हो गया॥ १ ॥

सन्तों की अनुकूलता तथा सद्गुरु की शरण पाकर मैं सहस्त्रार कमल के मध्य जाकर विलीन हो गया और उस 'सत्य' तत्त्व के मूल में जाकर संसक्त होकर फँस गया॥ २ ॥

फिर इसके बाद तो उस अगम के कपाट खुल गए और तब लीला शिखर के पार होकर पृथ्वी तथा आकाश के उस पार शून्य शिखर को प्राप्त करके इस प्रकार कह रहा हूँ।

तुलसी साहब कहते हैं कि ब्रह्मांड (अंडा) आकाश में फूट गया और इसे देखकर सुरति निराश होकर चल पड़ी और आगे एक अगम्य गली पाकर उसने वहाँ आसन जमा लिया॥ ४ ॥

उसे पाकर, उसकी गति का वर्णन कैसे किया जा सकता है, हृदय में हर्ष समाया हुआ है। कोई-कोई सन्त उस अगम गली में प्रवेश करता है उसमें प्रवेश करते ही उसकी दशा तन्मयी (ब्रह्ममयी) हो उठती है॥ ५ ॥

॥ छन्द ॥

तीनों पट बाहिर कहुँ नहिं जाहिर। अगम अगत की राह लई॥
खोला वह द्वारा अगम पसारा। सतगुरु पुर के पार गई॥ १ ॥
सतलोक दुहेला कीन्ही सैला। अगम अकेला लार भई॥
ता से पद न्यारा निरखि निहारा। तासु अनामी नाम नहीं॥ २ ॥
फूला निज कँवला सूरति सम्हला। नील सिखर तन तार लई॥
अंडा निज फूटा दस दिस टूटा। छूटि सुरति असमान गई॥ ३ ॥
तुलसी तन सैला घट बिच खेला। संतकृपा से राह लई॥
ब्रह्मंड न पिंडा नहिं नौ खंडा। रबि चंदा तहँ तार नहीं॥ ४॥
पानी नहिं पवना अगिन न भवना। गगन गिरा के पार भई॥
देखा सत्त सैला अगम अकेला। सूरति केला सब्द मई॥ ५ ॥
तुलसी मत पाई संत लखाई। पास समाई गाइ कही॥ ६ ॥

अर्थ–तीनों पटों के बाहर कुछ भी जाहिर (स्पष्ट) नहीं होता–साधक केवल अगम्य एवं अज्ञेय की राह पकड़ लेता है। जैसे ही, साधक ने वह द्वार (चौथा द्वार) खोला–चारों ओर अगम्य ही प्रसरित पसरा फैला हुए दिखाई पड़ता है–सतगुरु पुर के पार आत्मा चली गई॥ १॥

दुर्लभ सत्यलोक में एक पर्वत शिखर है। वह अगम्य अकेला वहीं आत्मभूत तन्मय है–इसलिए उसका स्थान विलक्षण है, अच्छी तरह से मूक साधक को देखा–वह अनाम है, कोई उसका नाम नहीं है॥ २॥

अगने ही कमल दल वह तन्मय होकर आनन्दित है, सुरति ज्ञान से सम्हला हुआ है और अपने चित्त का तारतम्य (एकतानता) नील शून्य शिखर से जोड़े हुए है। उसका ब्रह्मांड फूट पड़ा, समस्त दसों दिशाएँ टूट चलीं और सुरति बन्धन से छूटकर शून्याकाश में विलीन हो गई॥ ३॥

उस ब्रह्म का शून्य शिखर इस शरीर पिंड के बीच क्रीड़ा करता दिखा और संतों की कृपा से मैंने सन्मार्ग पकड़ा। फिर वहाँ न ब्रह्मांड है, न पिंड है, न नौ खण्ड (लोक) हैं। वहाँ सूर्य, चन्द्रमा एवं तारे भी नहीं हैं। ४॥

न वहाँ जल है, वायु है,न अग्नि है, न पृथ्वी (भवन) है, न आकाश है। और आकाश शब्द के पार जाकर स्थित हो उठा। तुलसी साहब कहते है कि इस प्रकार की अनुभूति पाकर मैंने सन्तों को दिखाया–वह मेरे पास आकर समानिष्ठ हो उठी और मैंने उसे इस प्रकार से गाकर सुनाया॥ ५॥

॥ सोरठा॥

तुलसी निरखि निहारि, नैन पार निज देखि कै।
यह अदेख की बात, जिन अदृष्टि हिरदे लखा॥ १॥
तुलसी तुच्छ अबूझ, जबै सूझ सूरति लखी।
अलख खलक के पार, निः अच्छर वो है सही॥ २॥
संत चरन पद धूर, तुलसी कूर कारज कियौ।
लिया अगम पद मूर, सूर सन्त अपना कियौ॥ ३॥
मैं उनकी बलिहार, लार लागि पारै कियौ।
चौथा पद निज सार, सो लखाइ संतन दियौ॥ ४॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने उसे भलीभाँति समझकर निहारकर और अपने नेत्रों के उस पार देखकर उस अदृश्य मूल तत्त्व की चर्चा की है। उस अदृश्य को मैंने हृदय में देखा था ॥ १॥

तुलसी साहब कहते हैं कि उस अत्यन्त सूक्ष्म एवं अज्ञेय को जब सुरति ध्यान साधा, तब सूझ पड़ा। इस संसार के उस पार, अलक्ष्य रूप वह निश्चय रूप से अक्षर शून्य हैं अर्थात् उसे अक्षरों में नहीं बाँधा जा सकता॥ २॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मैं तो सन्त चरणों के पग की धूलि हूँ–मैंने उस अगम पद के मूल तत्त्व को अपना लिया और दिव्य दृष्टि वाले साधक सिद्धों (सूर सन्त) को अपना बना लिया॥ ३॥

मैं उनकी बलिहारी जाता हूँ–जिन्होंने उस ब्रह्म की संसक्ति से सम्बद्ध होकर संसार सागर को पार कर लिया है। मेरी संत साधना का सार तत्त्व वह चतुर्थ पद है–जिसको मैंने सन्तों को दिखा दिया॥ ४॥

भेद पिंड और ब्रह्मांड का

॥ चौपाई॥

तुलसी मैं अति नीच निकामा। मैं अनाथ गति बूझि न जाना॥
मैं अति कुटिल कूर कुबिचारी। सत सत संत सरनि निरबारी॥

अ८. मैं अपना औगुन भाखी। निरनय जी की कोइ नहिं राखी॥
अपनी चाल गती गुन गाऊँ। मोहिं सों अधम और नहिं नाऊँ॥
संत दयाल दीन-हितकारी। मोरे औगुन नाहिं बिचारी॥
संत सरल चित सब सुखकारी। मो को पकरि हाथ निरबारी॥
कहँ लगि उनके गुन गति गाऊँ। मोर अचेत लखी नहिं काहू॥
मोरी तपन ताप निज हेरा। तुलसी नीच का कीन्ह निबेरा॥
कोटिन जिभ्या जो मुख होई। तौ मैं बरनि सकौं नहिं सोई॥
कोटिन कल्प-बृच्छ जो होई। तौ सरवर पावै नहिं कोई॥
तिनकी तीनि लोक रज पावन। कस बरनौं मोरे मन भावन।।
तिन कौ भेद बेद नहिं पावै। वोहू नेति नेति गोहरावै॥
दस औतार और तिरदेवा। वोहु न उनको पावै भेवा॥
कहँ लग कहौं संत गति न्यारी। मोरी मति गति नाहिं बिचारी॥
तीनि लोक का पटतर लाऊँ। उन सम तुलसी कहा दिखाऊँ॥
मैं मत त्राहि त्राहि करि भाखी। ऐसी कौन बताऊँ साखी।।
संतन की गति कस कस गाऊँ। अस कोइ देखि परै नहिं ठाऊँ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैं अत्यन्त तुच्छ तथा निकम्मा हूँ। सदा मैं अनाथ रहा हूँ और इस संसार की गति की मुझसे समझ नहीं है। मैं अत्यन्त कुटिल, क्रूर और ना समझ हूँ किन्तु मुझे अनेकानेक संतों की शरण ने विवेक दिया (निखारी) है॥

मैं अपने अवगुणों का वर्णन कर दिया है और हृदय (जी) के किसी निर्णय (निरनय) को (छिपाकर) नहीं रखा है। मैं अपने व्यवहार एवं समझ का वर्णन कर रहा हूँ–(इस संसार में) मुझसे अधम और कोई नहीं है॥

सन्तजन तो अत्यन्त दयालु एवं दीनों के हितैषी होते हैं–वे मेरे अवगुणों पर विचार नहीं करेंगे। संत जन अत्यन्त सरस चित्त के तथा सभी के लिए सुखदायी होते हैं–उन्होंने मेरा हाथ थाम कर मुझे विवेक दिया है॥

कहाँ तक मैं उनके गुणों और विवेक का वर्णन करूँ। किसी ने भी मेरी अज्ञनता (उनके अतिरिक्त) नहीं देखी। उन्होंने मेरी पीड़ा और मेरे कष्टों को समझा-बूझा और तुलसी साहब कहते है कि उन्होंने इस तुच्छ दास को संकट मुक्त किया॥

यदि मेरे मुख में कोटि-कोटि जीभें होतीं तो भी उनके उपकार का मैं वर्णन नहीं कर सकता। यदि कोटि-कोटि कल्पवृक्ष भी हो तो भी वे उस (ज्ञान) सरोवर को नहीं प्राप्त कर सकते॥

तीनों लोकों में इन संतों की चरण रज पवित्र है–उनका वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ क्योंकि मेरा मन तो संसक्तियों से भरा (भावन) है। उनकी समझ वेद आदि भी नहीं पा सकते और वे भी नेति नेति कहकर पुकारते रहते हैं॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीनों (त्रिदेवा) तथा विष्णु के दशावतार वे भी उनका भेद नहीं पा सकते हैं। मैं कहाँ तक संतों की विलक्षण गति का वर्णन करूँ–मेरी बुद्धि उसकी गति का विचार नहीं कर सकती॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मैं तीनों लोकों के सादृश्यों को इकट्ठा भी कर दूँ तो सन्तों के सदृश कैसे दिखाऊँगा। मैं और मेरी बुद्धि त्राहि-त्राहि करके कह रही है कि उनकी साक्षी (प्रमाण-समता) के लिए

ऐसी किस वस्तु को बताऊँ (समझ में नहीं आती)। सन्तों के व्यवहार का मैं कैसे-कैसे वर्णन करूँ ऐसी वस्तु किसी स्थान पर कहीं भी नहीं दिखाई पड़ती ॥

॥ छन्द ॥

मोरी मति नीची माहुर सींची। संत चरन के लार भई।।
करमन कर मैली बिष रस पेली। संत चरन चित जाइ बसी ॥ १ ॥
मति महा अति रंका मन निः संका। बिष रस कस की धार मई ॥
कहँ लग गोहराऊँ अंत न पाऊँ। संत चरन की लार लसी ॥ २ ॥
दरसन पाये करम नसाये। पाप पुन्य सब छार भई ॥
मोहिं निरमल कीन्हा दयानिनि चीन्हा। ऐसे सिंध दरियाव मई ॥ ३ ॥
तिनकी रज पावन तुलसी अपावन। मो से अधम को धाम दई ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मेरी बुद्धि निकृष्ट है और वह विष से सींची हुई है और वह सन्तों के चरणों में संसक्त (लार) हो उठी है। कर्मवासनाओं से मैली तथा विषय वासनाओं से रौंदी हुई संतों के चरणों में अत्यन्त प्रेमपूर्वक जाकर बसगई है ॥ १ ॥

मेरा यह निःशंकित मन अत्यन्त रंक है और विषय वासनाओं के रस में फँसी हुई धारामयी है। कहाँ तक उसको बुलाऊँ (बुलाकर सुधारूँ) इसका अन्त नहीं मिलता–मेरी संसक्ति तो संतचरणों में लग चुकी है ॥ २ ॥

संतों का मुझे दर्शन मिला, कर्म जाल नष्ट हो चला और पाप-पुण्य सब जलकर राखमय हो उठे ॥ दयानिधि सन्त ने मुझे पहचाना और मुझे निर्मल बना दिया जैसे कोई समुद्र (संत) स्वयं नदीमय (मै साधक) हो उठे, मेरी स्थिति जैसी हो रही ॥ ३ ॥

तुलसी साहब कहते हैं कि सन्तों की पावन चरणरज ने मुझ जैसे अपवित्र को मुक्तिलोक प्रदान किया ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी नीच निहार, संत सरन न्यारा किया।
महुँ पुनि उतरौं पार, संत चरन रज धूरि धर।।

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि इस पापी को देखकर संतों की शरणागति ने इसे विलक्षण बना दिया। (उनकी कृपा से) मैं पुनः उनकी चरण रज को सिर पर रखकर मैं इस भवसागर के उस पार उतरा ॥

॥ दोहा ॥

तुलसी मन निरमल भयौ, सूरति सार सुधार ॥
संत चरन किरपा भई, उतरौ भौजल पार ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि सुरति तत्त्व को सुधार कर मेरा मन निर्मल हो उठा है। सन्त के चरणों की यह कृपा है मैं अब भवसागर से पार उतर गया हूँ ॥

॥ सोरठा ।

घट रामायन सार, ये अगार गति यों कही।
बूझै बूझनहार, बिन सतगुरु पावै नहीं ॥

अर्थ–घट रामायण के सार तत्त्व के रूप में उस अगली गति का वर्णन इस प्रकार किया है। कोई बूझने वाला ही इसे बूझ सकता है, किन्तु वह भी बिना सतगुरु के नहीं समझ सकता॥

॥ दोहा ॥

सतगुरु चरन निवास, निस दिन सूरति बसि रही।
संत चरन अभिलाष, पल छिन छिन छूटै नहीं॥ १ ॥
घट रामायन माहिं, अर्थ भेद अंदर सही।
रावन लंका राम, यह अकाम गति ना कही॥ २ ॥

अर्थ–सतगुरु के चरणों में निवास करते हुए प्रतिदिन सुरति ध्यान में चित्त बस रहा है और इस प्रकार, सन्तों के चरणों की अभिलाषा एक दल और एक क्षण के लिए भी नहीं छूट पाती॥ १ ॥

घट रामायण के अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थ तथा उसका रहस्य घट के अन्तर्गत है और वही ठीक भी है। रावण, लंका एवं राम सभी उसके अन्दर ही है–यह समझ कामना रहित है और उसकी गति का वर्णन नहीं किया जा सकता॥ २ ॥

॥ सोरठा ॥

दसरथ सीता नाहिं, भरत सत्रगुन ना कह्यौ।
ये निरखौ घट माहिं, बाहिर गति मति भरम है॥ १ ॥
घट रामायन माहिं, घट बिधि गति मति सब कही।
परखै परम निवास, यह अकास अंदर मई॥ २ ॥

अर्थ–सीता तथा दशरथ बाहर नहीं है, भरत शत्रुघ्न भी बाहर नहीं कहे गए है। इन सबको घट में ही देखो, इनके पिंड के बाहर होने की गति बुद्धि का भ्रम है॥ १ ॥

घट रामायण के अन्तर्गत मैंने पिंड (घट) की विधि, ज्ञान तथा समझ सबके विषय में बताया है ताकि साधक इस घटाकाश में स्थित उनके रमणीक निवास को समझ सके॥ २ ॥

॥ चौपाई ॥

रावन राम भेद समझाई। रामायन सब घट बिधि गाई॥
संत की गति अगत अगोई। अगम निगम घर सुरति समोई॥
संत गती गति बेद न जाना। सिम्रित सास्तर और पुराना॥
पंडित भेष भक्त और ज्ञानी। जोगी परमहंस नहिं जानी॥
स्रावग तुरक तोल नहिं पाया। भरमे सबहि काल गोहराया॥

अर्थ–रामायण में घट विधि के रूप में गाकर मैंने रावण तथा राम का भेद समझाया है। संतों की गति अगम एवं स्पष्ट (अगोई) है। उनका अगम-निगममय घर सुरति ज्ञान में ही समाया हुआ है॥

सिद्ध (गती) सन्त का भेद वेद नहीं जानता–स्मृति (सम्रित) शास्त्र और पुराण भी नहीं समझते, नाना प्रकार के वेष धारण करने वाले पंडित, भक्त और ज्ञानी योगी, परमहंस भी नहीं जानते–जैन श्रावक, तुर्क भी उसे तौल नहीं पाते (मूल्यांकन नहीं कर पाते) वे सभी भ्रम में भ्रमण करते रहते हैं और अन्त में काल (मृत्यु) उन्हें बुला लेती है।

॥ दोहा ॥

पंडित ज्ञानी भेष, यह अदेश गति ना लखी।
स्त्रावग तूरक न देख, सत सार अंदर चखी॥

अर्थ–पंडित, ज्ञानी, आडम्बर वेषधारी आदि इस अदेख (घट रामायण) की गति के अर्थ को नहीं जानते। इस घट के भीतर चलने वाली प्रक्रिया और मूलतत्त्व को स्रावक (जैन) एवं तुर्क भी नहीं देख पाते॥

॥ चौपाई ॥

ये सब भूल भाव गति गाई। तन भीतर काहू नहिं पाई॥
ये तन भीतर संतन देखा। यह अदेख गति कहौं अलेखा॥
गंगा जमुना और त्रिबेनी। तन भीतर ब्रह्मण्ड की सैनी॥
पृथ्वी पवन गगन अकासा। यह सब देखे घटहि निवासा॥
पाँच तत्त जल अगिनि समाना। पिंड माहिं ब्रह्मंड बखाना॥
रबि चंदा तारागन होई। और अनेक बिधान समोई॥
बाहिर भर्म भेद गति गावैं। पाहन पानी से लौ लावैं॥
तीरथ बरत जो चारौ धामा। यह सब पाप पुन्य निज कामा॥
पूरब पच्छिम फिर फिरि धावैं। सत्त पुरुष की राह न पावैं॥
सत्त पुरुष सत नाम कहाई। वह अनाम गति संतन पाई॥
सत्त नाम से निर्गुन आया। यह सब भेद संत बतलाया॥
पाँच नाम निरगुन के जाना। निरगुन निराकार निरबाना॥
और निरंजन है धर्मराई। ऐसे पाँच नाम गति गाई॥
सोई ब्रह्म परचंड कहाई। ता को जपै जगत मन लाई॥
दस औतार ब्रह्म कर होई। ता को कहिये निरगुन सोई॥
तिन पुनि रचा पिंड ब्रह्मंडा। सात दीप पृथ्वी नौ खंडा॥
सब जग ब्रह्म ब्रह्म करि गाई। आदि अन्त की राह न पाई॥
यह गति मति बिधि मैं पुनि भाखा। कोई जगत न सूझी आँखा॥
यह विधि सत मति भेद बताई। काहू के परतीत न आई॥
कासी पंडित और अचारी। जोगी परमहंस ब्रह्मचारी॥
कहै तुलसी कोइ भेद न पाया। यह सब भाव भेद भरमाया॥

अर्थ–मैंने इन सब मूल भावों की गति का गान किया–जिसे मन के भीतर (इन) किसी ने भी नहीं प्राप्त किया है। इस शरीर के भीतर इसे सन्तों ने देखा है। इस अदेख की अलक्ष्य गति का मैं वर्णन करता हूँ॥

गंगा, यमुना और त्रिवेणी–इस शरीर के भीतर (इड़ा, पिंगला, सुषम्ना के रूप में) इस शरीर के भीतर ब्रह्मांड की सरणि में हैं। पृथ्वी, पवन, गगन और आकाश इनका निवास मैंने घट के अन्दर ही देखा है॥

पाँचों तत्त्व जल और अग्नि की ही भाँति पिंड के ही भीतर वैसे ही हैं, जैसे ब्रह्मांड में। यहीं सृष्टि की ही भाँति सूर्य, चन्द्रमा एवं तारागण हैं–तथा अन्य सृष्टि विधान भी यहाँ समाए हुए हैं॥

बाह्य संसार के भ्रम तथा भेद की गति सभी गाते हैं और वहाँ साधुजन पत्थर (मूर्तिपूजा) एवं जल (स्नान, तर्पणादि) में अपनी धार्मिक निष्ठा लगाते हैं॥ तीर्थ, व्रत और चारों धाम में सब पाप-पुण्य की अपनी कल्पना है॥

पूरब, पश्चिम में परिक्रमाएँ करके पुनः पुनः जाते हैं–किन्तु ये सब सत्य पुरुष का मार्ग नहीं पाते हैं। सत्य पुरुष-सत्य नाम से जाना जाता है (कहा जाता है) और उसका कोई नाम नहीं होता (अनाम) ऐसी अवस्था इन सन्तों ने प्राप्त कर ली है॥

इन सारे भेदों को सन्तों ने बताया है–सत्य नाम से ही निर्गुण का प्राकट्य होता है। इस निर्गुण के पाँच नाम है–निर्गुण, निराकार, निर्वाण, निरंजन और धर्मराज–इस प्रकार से उसके पाँच नाम हैं॥

वही व्यापक (प्रचंड) ब्रह्म है, जिसमें संसार अपना मन लगाकर गान करता है। इस ब्रह्म के दस अवतार होते हैं–उसी को निर्गुण ब्रह्म कहा जाता है॥

उसी ने इस पिंड और ब्रह्मांड तथा सात द्वीप, पृथ्वी एवं नौ खण्डों की रचना की है। उसी को सारा संसार ब्रह्म है, ब्रह्म है कहकर गान करता है, किन्तु उसके आदि अन्त का मार्ग कोई नहीं जानता॥

अपने ज्ञान और अपनी बुद्धि तथा विधि द्वारा मैंने उसका वर्णन किया है–सम्भव है, यह किसी के विश्वास का विषय न बने। काशी के विद्वान् पंडित और धर्माचरण से सम्बद्ध विद्वान योगी, परमहंस तथा ब्रह्मचारी आदि ने उसका रहस्य नही प्राप्त किया है। तुलसी साहब कहते हैं कि इन सबने तो उस ब्रह्म के स्वरूप तथा भेद के विषय में निरन्तर लोगों को भरमाया है॥

हाल काशी का

॥ दोहा ॥

तुलसी ग्रन्थ पसार, कासी नगर सगरे भई।
पंडित ज्ञानी भेष, जैन तुरक सब मिलि कही॥ १ ॥
तुलसी बाम्हन साध, गंगाजी पार रहतु है।
निंदत सिम्रित बेद, यह अभेद गति कहतु है॥ २ ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हमारे ग्रन्थ का प्रचार (प्रसार) काशी नगरी में चारों तरफ हुआ और पंडित, ज्ञानी, भेष, जैन, तुर्क इन सभी ने मिलकर कहा॥ १ ॥

एक तुलसी नाम का साधु ब्राह्मण है, गंगा नदी के उस पार रहता है–वेद स्मृतियों की निन्दा करता रहता है और (ब्रह्म की) रहस्यमयी गति का वर्णन करता है॥ २ ॥

॥ चौपाई ॥

सब पंडित मिलि मता उठाई। या को करिये कौन उपाई॥
नैनू नाम इक पंडित भारी। तेहि पंडित मिलि सोच बिचारी॥
तुलसी नाम इक साध कहाये। जिन सब नेम अचार उठाये॥
ग्रंथ बनाइ कीन्ह एक भाषा। तीरथ बरत एक नहिं राखा॥
वा कौ भेद भाव सब लीजै। केहि बिधि ज्ञान समझ तेहि कीजै॥
स्यामा समझ एक बतलाई। रहन पास कोइ ताहि बुलाई॥
पंडित एक कही समझाई। रहन अहीर सोइ भाखि सुनाई॥

नाम जानि इक ह्रिदे अहीरा। निसि दिन आवै हमरे तीरा॥
सुनै कथा पुनि सेवा करई। गत दिवस बस पासै परई॥
नैनू मिलि सब बाम्हन भाई। तिनि पुनि ह्रिदे अहीर बुलाई॥
सब पंडित अस पूछन लाई। कौन ज्ञान यह कहत गुसाँई॥
वेद भेद मरजाद उठावै। सिम्रित सास्तर ना ठहरावै॥
गंगा जमुना अन्तर मानै। है परतच्छ ताहि नहिं जानै॥
पूजा पत्री और अचारा। तिरथ बरत कहै झूठ पसारा॥
राम रहीम एक नहिं, मानै। यह कछु ठौर और कछु ठानै॥

अर्थ–सभी पंडितों ने मिल कर यह तय किया कि इसके लिए क्या उपाय किया जाए। नैनू नाम के एक बड़े पंडित थे–उन्होंने उन पंडितों के साथ मिलकर सोच विचार किया॥

तुलसी नाम के एक साधु कहे जाते हैं जिन्होंने सारे नियमों तथा आचरणों को समाप्त सा कर दिया है (उठाये)। यह सब एक ग्रन्थ बनाकर किया है और उन्होंने तीर्थों एवं व्रतादि एक भी तत्त्व की रक्षा नहीं की है॥

उनके इस प्रकरण में सारे रहस्य (भेदभाव) लें और उनका ज्ञान किस प्रकार का है, उसे समझकर उसके लिए निर्णय लीजिए॥ हे स्यामा! मैं एक समझदारी की बात कहता हूँ–उसे समझो, उनके पास जो कोई रहता हो, उसे बुलवा लीजिए॥

एक पंडित ने समझाकर कहा कि–एक अहीर उनके पास रहता है, उसी को आने के लिए कहकर बुलाओ। हृदय अहीर का नाम जानकर–जो रात-दिन पास आता था। वह मुझसे कथाएँ सुनता था और फिर वह सेवा में तत्पर रहता था और रातदिन हमारे पास ही पड़ा रहता था।

नैनू और समस्त ब्राह्मण बन्धु मिलकर उन्होंने फिर उस हृदय अहीर को बुलवाया। समस्त पंडित इस प्रकार पूछने लगे कि यह (तुलसीदास गोस्वामी) किस ज्ञान की बात करता है।

उनकी बातें सुनकर हृदय ने उत्तर दिया यह गोस्वामी वेदों के भेद की मर्यादा को समाप्त करके (उठावें) स्मृति एवं शास्त्र ज्ञान को नकारते हैं। वे गंगा और यमुना के अन्तर को मानते हैं और जो लोकधर्म प्रत्यक्षतः दिखाई पड़ता है (मूर्तिपूजा, तर्पण आदि) उनको महत्त्व नहीं देते॥

पूजा-पत्री तथा अन्य आचरण एवं तीर्थ-व्रतादि को मिथ्या प्रसार कहते हैं। राम तथा रहीम दोनों में से किसी को भी नहीं मानते हैं और वे कुछ देर तक परम्परा से हटकर कुछ अन्य बातें कहते हैं।

॥ दोहा॥

दीन्हा ह्रिदे जवाब, साफ बात बिधि यों कही।
गति सत संत अपार, पंडित बिधि जानै नहीं॥

अर्थ–हृदय ने इस प्रकार का उत्तर दिया और सारी बातें साफ-साफ इस प्रकार कह दी। उन संत का ज्ञान अनन्त है, पंडित जन तो किसी विधि से उसे नहीं जान सकते॥

॥ चौपाई॥

ह्रिदे अहीर ज्वाब अस दीन्हा। संत गती कोइ बिरले चीन्हा॥
मैं तौ अपढ़ जाति अज्ञाना। तुम पंडित पढ़े बेद पुराना॥
संतन की गति कहाँ बुझाई। तुमहुँ ने बेद भेद नहिं पाई॥
पढ़ि पढ़ि पंडित पचि पचि हारी। बेद न भेद संत गति न्यारी॥

अर्थ–हृदय अहीर ने उत्तर दिया कि सन्तों की गति कोई विरला ही पहचानता है–मैं तो अपढ़ एवं अज्ञानी जाति का हूँ और आप लोग पंडित (ज्ञानी) हैं और वेद-पुराण पढ़ते रहते हैं॥

यदि आप लोग कहें तो मैं सन्तों की दशा का वर्णन करूँ, आप लोग उनकी गति की जानकारी वेदों द्वारा नहीं प्राप्त कर सकते। पंडित जन पढ़-पढ़कर और कर्म-कर करके हार गए किन्तु सन्तों की न्यारी गति का भेद वेदों ने नहीं दिया॥

॥ सोरठा॥

नैनू कहै बिचार, यह निकाम कस भाखेऊ।
यह जड़ जाति गँवार, बेदन सों न्यारी कहै॥

अर्थ–नैनू पण्डित उस पर विचार करते हुए कहते हैं कि यह जड़ जाति का गँवार निष्काम तत्त्व को कैसे बता सकेगा, (यह तो इसकी मूर्खता है कि) कि इसे वह वेदों से विलक्षण कह रहा है॥

॥ चौंपाई॥

नैनू सुनि पुनि मारनि धाये। पंडित और अनेक बुलाये॥
सब से कहै सुनौ तुम ज्ञाना। यह अहीर कस करत बखाना॥
सब पंडित मिलि यह बिधि ठानी। या की करौ प्रान की हानी॥
यह सब मिलि कर मता उठाई। हिरदे ऊपर लात चलाई॥

अर्थ–नैनू पण्डित यह सुनकर उसे मारने दौड़े और अनेक पंडितों को बुला लिया। उन्होंने सभी से कहा कि तुम इसके ज्ञान को सुनो–यह अहीर उसका कैसे वर्णन कर रहा है। सब पंडितों ने इसे सुनकर, ऐसा निश्चय किया कि इसके प्राण की हानि करो (मार डालो)॥ यह सुनकर ऐसा करने का सभी ने निश्चय किया और हृदय अहीर के ऊपर लात चला दिए॥

॥ सोरठा॥

तुरक तकी इक स्वार, जात हते दरबार को।
घोड़ा फेरि निहार, यह बिबाद कैसे भई॥

अर्थ–एक तुर्क मीर तकी नामक घुड़सवार (स्वार) दरबार के लिए जा रहे थे। उन्होंने घोड़े को फेरकर देखा कि यह विवाद क्यों घटित हुआ॥

॥ चौपाई॥

सेख तकी इक तुरुक सवारा। ते पुनि जात हते दरबारा॥
सुन करि बात बाग उन मोड़ा। फेरि लगाम कीन्ह उन घोड़ा॥
सेख तकी पूछी पुनि बाता। तैं कहु कौन कौन सी जाता॥
केहि कारन यह झगरा होई। सो सब भेद कहौ बिधि सोई॥

अर्थ–शेख तकी नामक एक सवार तुर्क जो वे उस समय राज दरबार में जा रहे थे, उन्होंने यह बात सुनकर घोड़े की लगाम रोकी और लगाम को फिराकर घोड़ा उनकी ओर मोड़ दिया॥

तब शेख तकी ने उनसे यह बात पूँछी–तुम बताओ, किस-किस जाति के हो। किस कारणवश यह झगड़ा हो रहा है–यह सारा रहस्य मुझे बताओ॥

॥ सोरठा ॥

नैनू निरखि पुकार, सेख तकी को देखि कर।
ये का कहत गँवार, बिधि कुरान मानै नहीं॥

अर्थ–शेख तकी को देखकर नैनू ने पुकार कर कहा, यह गँवार क्या कह रहा है, यह कुरान शरीफ़ की व्यवस्था नहीं स्वीकार करता॥

॥ चौपाई ॥

नैनू कहै सुनौ मेहरबाना। बेद कितेब न मानै पुराना॥
राम रहीम एक नहिं मानै। पंडित काजी झूठ बखानै॥

अर्थ–नैनू पंडित ने कहा, हे मेहरबान? सुनें, यह बेद, शास्त्र एवं पुराणों को नहीं मानता। यह राम तथा रहीम दोनों में से एक को भी नहीं मानता तथा पंडित एवं काजी दोनों को झूठ कहता है॥

॥ सोरठा ॥

हिरदे कही बिचारि, सेख तकी जो तुरक से।
तुम बूझौ दिल माहिं, खुदा एक सब में कहौ॥

अर्थ–हृदय अहीर ने अत्यन्त विचारपूर्वक उन शेख तकी तुर्क से कहा कि आप दिल से समझकर बताइए–सभी ने खुदा को एक ही कहा है॥

॥ चौपाई ॥

हिरदै कहै तकी सुनु सेखा। सब में कहौ खुदा है एका॥
गाय मार बकरी तुम खइया। येहि किताब में कह्या गुसँइयाँ॥
सब में नूर मुहम्मद केरा। काटि गला पुनि पैहौ बैरा॥
येही कितेब कुरान बखाना। जिन्दा को मुरदा करि जाना॥
सोई मुसलमान है भाई। नबी नाम हर दम लौ लाई॥
रोजा कर कर खून बिचारा। ये गुनाह नहिं बक्सनहारा॥
झूठा रोजा झूठ निवाजा। झूठा अल्ला करै अवाजा॥
वा साहिब की राह न पाई। सब जहान में रहा समाई॥

अर्थ–हृदय अहीर ने कहा कि हे शेख तकी सुनें, कहते हैं, सभी में खुदा एक हैं। तुम गाय और बकरी मारकर खाते हो, किस पुस्तक में ईश्वर द्वारा यह कहा गया है। सभी जीवों में मुहम्मद साहब पैगम्बर का नूर (प्रकाश) है–उनका गला काटकर, उनका क्रोध ही प्राप्त करोगे।

क्या यही शास्त्र और कुरान में कहा गया है कि जीवित को मुर्दा मानकर समझो। मुसलमान वही है–जो निरन्तर नबी के नाम की लौ लगाए रहता है। रोजा रख रखकर रक्तपात पर कभी विचार लिया है, इस गुनाह (अपराध) को कोई क्षमा करने वाला नहीं है॥ रोजा भी झूँठा है– नमाज भी झूँठा है और 'अल्ला हो-अल्ला हो' की लगाई वाली आवाज भी झूँठी है। उस साहब (स्वामी – ईश्वर) की कोई राह नहीं पाया है–वह सारे संसार में समाया हुआ है॥

॥ सोरठा ॥

सेख तकी सुन बात, ज्वाब स्वाल बोले नहीं।
धर्मा जैनी जाति, संग बात कीन्ही सही॥

अर्थ–शेख तकी उस बात को सुनकर उसके जवाब एवं सवाल (उत्तर तथा प्रश्न) के संदर्भ में कुछ नहीं बोले–साथ में धर्मा नाम के जैनी पंडित थे, उन्होंने बातें कहीं॥

॥ चौपाई ॥

धर्मा नाम जाति इक जैनी। उन सब सुनी हमारी कहनी॥
धर्मा स्रावग कहै बिचारी। जैन मता है सब से भारी॥
ये मति आदि साध नहिं जानै। तैं मत झूठा बाद बखानै॥
चौबीसों तीर्थंकर जानी। आदि नाथ हैं हमरे स्वामी॥
तिनकी आदि कहा तुम जानौ। नाहक बेगुन बादि बखानौ॥

अर्थ–धर्मा नाम का एक जैन धर्ममतावलम्बी थे। उसने हमारी बातचीत सुनी। श्रावक धर्मी विचारपूर्वक बोले, कि जैन मत सर्वश्रेष्ठ है। जो धार्मिक मत साधुओं का आदि रूप नहीं जानता, वह मत झूठे सिद्धान्तों का वर्णन करता है। चौबीसों तीर्थंकरों को समझो और हमारे स्वामी तो आदि नाथ हैं। उनके आदि उपदेश (कहा) तुम समझो निरर्थक बिना तत्त्व के सिद्धान्तों को बता रहे हो॥

॥ सोरठा ॥

हिदे कहै सुनु बात, जैन मता पुनि सब कहौं।
सुनौ भेद बिख्यात, आदि अंत सब समझि कै॥

अर्थ–हृदय अहीरने कहा मेरी बातें सुनों, जैन धर्म के विषय में मैं पुनः सच कहता हूँ, इसके विज्ञान भेद को, इसके आदि अन्त को समझकर सुनो॥

॥ चौपाई ॥

हिरदै कहै सुनौ हो भाई। आदि नाथ की आदि सुनाई॥
जो तुम सुनौ कहौं बिधि नाना। हम सब कहैं सुनौ दै काना॥
प्रथम जुगल्या धर्म बिचारी। आई छींक भये सुत नारी॥
होते छींक प्रान तेहि जाई। कन्या पुत्र भये तेहि ठाईं॥
ता पीछे कुलंकर की बाता। चित दे सुनौ कहौं बिख्याता॥
चौधा कुलंकर भेद बखाना। ता में नभ राजा इक जाना॥
मुरा देबि देहिं भाखौं भेवा। जाकर ऋषभराय भये देवा॥
भागवत कहै ताहि अवतारा। तिन का सुनौ आदि निरबारा॥
ता ने तप कीन्हौं निरबाना। मुक्ति पाइ पुनि काल समाना॥
ऐसे भये और चौबीसा। पुनि पुनि आये मुक्ति पद ईसा॥
ता में प्रथम ऋषबदेव होई। भाखा तिन जग थापा सोई॥
आगे भेद न उनहूँ जाना। यह सुन सार भेद निरबाना॥

जग थापा पुनि धर्म चलाई। आदि पुरान में देखौ भाई॥
कह नौकार जाए बतलाई। जाकी विधी कहौं समझाई॥
जाप भेद मैं कहौं पुकारी। दिल अपने में लेउ बिचारी॥
अरिहँत सिन्द्ध भाखि बिधि नामा। अरियानं उज्झान जाना॥
लोये सर्व साध को कीन्हा। ये नौकार मन्त्र उन लीन्हा॥
सुनि धरमा तब चकृत भयऊ। सब बरतंत जैन कौ कहेऊ॥

अर्थ–हृदय ने कहा, हे भाई? सुनो, आदि नाथ की आदिकथा मैं सुनाता हूँ। यदि तुम उसे सुनना चाहते हो तो मैं उसे नाना विधियों से कहता हूँ। (इस कथा को) हम सब कहते हैं, हृदय से ध्यान **लगाकार सुनो॥**

प्रथम 'जुगल्या' धर्म पर विचार करता हूँ। छींक आई और उससे चार बच्चे पैदा हुए। छींक आते ही उसके प्राण विनष्ट हो उठे और उस स्थल पर कन्या तथा पुत्र हुए। उसके पीछे कुलंकर की बातें कहता हूँ। लोक में प्रसिद्ध कथा को चित्त लगाकर सुनो।।

मैं चौथे कुलंकर की बात कहता हूँ–उसमें नभ नामक एक राजा था। उसको मुरा देवी ने सारा ज्ञान रहस्य बताया–जिसके ऋषभ राय हुए। भागवत में ऋषभराय अवतार बताए गए हैं–उनके विषय में मूल निराकरण सुनें। उन्होंने तपस्या करके निर्वाण प्राप्त किया और मुक्ति पाकर वह काल में समाहित हो उठे। इसी प्रकार अन्य चौबीस तीर्थंकर हुए और वे मुक्त होकर बार-बार ईश्वर में विलीन हुए॥

इन समस्त तीर्थंकरों में सर्वप्रथम ऋषभदेव हुए–उन्होंने जिस मत का उपदेश दिया, वही संसार में स्थापित हुआ। उसके आगे उन्होंने भी भेद नहीं समझा–तुम उस निर्वाण भेद के सार तत्त्वों को सुनो। उन्होंने जैन धर्म चलाकर संसार में उसकी स्थापना की। हे भाई! इसे जाकर आदि पुराण में पढ़ो।

उन्होंने नौ प्रकार के जापों की चर्चा की है–उनकी विधियाँ मैं समझाकर कहता हूँ। मैं जापभेदों के **विषय में पुकार कर कहता हूँ,** आप इसे अपने दिल में विचार लें।

अरिहंत, सिद्ध तथा विधिपूर्वक नामों का कथन करके अरियान, उज्झान लुप्त (लोए) एवं सर्व साध–आदि नौकार मंत्र उन्होंने बतलाया था?

इसे सुनकर धर्मा जैनी चकित हो उठा कि इसने तो जैन मत का सारा वृत्तान्त बता दिया।

॥ दोहा ॥

सुनिधर्मा यह भेद ये अभेद कछु दीन कहै।
जैन मत समझाइ ये अकाय कछु अगम हैं॥

अर्थ–धर्मा ने इस भेदों को सुनकर कहा ये भेद अभेद्य हैं–जैनमत के अन्तर्गत ये वैचारिक (अकाय) तथा अगम्य मत हैं (इस हृदय अहीर को कैसे ज्ञात हुआ)।

॥ चौपाई ॥

सेख तकी पंडित भये एका। धर्मा धर्म कि बाँधी टेका॥
ये . तीनों तुलसी पैं आये। हिरदे ऊपर बाँह चढ़ाये॥
और अनेक मूरख बहुतेरे। कोइ सूधे कोइ चलैं अनेरे॥
हिरदे अहीर चले सब झारी। जहँ तुलसी ने कुटी सँवारी॥
हिरदे अहीर साथ झख भारी। तब तुलसी ने मता बिचारी॥

सब चलि आये कुटी के पासा। जब तुलसी मन कियौ हुलासा॥
उठि के चरन गहे सब केरे। कीन्ही दया दीन तन हेरे॥
बाम्हन पंडित धर्मा जैनी। सेख तकी से कीन्ही सैनी॥
नैनू पंडित सैन सँवारा। धर्मा हिये उठै जस झारा॥
यह दोनों मिलि मता बिचारी। सेख तकी को आगे डारी॥
नैनू नोक टोक इक झारा। यह इनके हैं गुरू बिचारा॥
पूछे भेद कहैं निरवारा। इन कस भाखा झूठ पसारा॥

अर्थ–शेख तकी और पंडित एक हो गए और धर्मा ने धर्म की टेक बाँध ली। ये तीनों तुलसी साहब के पास गए इनके हृदय उद्विग्न थे और बाहें चढ़ी हुई थीं॥ उनके साथ और अनेक मूर्ख जन थे–कोई सीधे चलता था को कोई टेढ़े चलता था। हृदय अहीर के साथ सब एक हो चले और वहाँ आए, जहाँ तुलसी ने अपनी कुटी सँवार रखी थी॥

हृदय अहीर के साथ बड़ी भीड़ थी, तब तुलसी साहब ने मन-ही-मन विचार किया। सब उनकी कुटी के पास चलकर आए तब तुलसी ने मन में आनन्द प्रगट किया॥ उन्होंने उठकर सबके चरणों में प्रणाम किया (स्पर्श किया) और कहा कि आप सब इस दीन की ओर देखकर दया करें॥

ब्राहमण, पंडित, जैनी धर्मा और शेख तकी की ओर देखा। नैनू पंडित ने नेत्रों से इशारा किया और धर्मा जैनी के हृदय में आग की लपट जैसी उठ पड़ीं॥ उन दोनों ने मन में विचार करके शेख तकी को आगे कर दिया।

नैनू पंडित ने पहले नोक झोंक शुरू कर दी–ये बेचार के इनके (हृदय अहीर के) गुरु हैं। इनसे ज्ञान के भेदों की बात आप पूछिये ये इसका निराकरण करेंगे और आप इनसे पूछे कि इन्होंने इस प्रकार असत्य का प्रसार क्यों किया है।

॥ सोरठा॥

हिरदै कहैं निहोर, स्वामी तुलसी विधि सुनौ।
मैं कछु कही न और, ये अबूझ बूझी नहीं॥

अर्थ–हृदय अहीर ने सम्बोधित करके कहा कि हे स्वामी तुलसी साहब? इसे विधिपूर्वक सुनें–मैंने अपनी तरफ से कोई नई बात नहीं कही (आपकी ही बातें बताई) किन्तु उस अबूझ वाणी को ये सब समझ नहीं पाए॥

॥ चौपाई॥

हिरदे कहै सुनौ हो स्वामी। मैं कछु कही रीति गति ज्ञानी॥
नैनू पंडित कहै बिचारी। इन सब ज्ञान कही गति न्यारी॥
इन सब धर्म कर्म जग पेला। अस कस ज्ञान कहै यह चेला॥
इन सब बेद कितेब उठावा। जौगी जैन नहीं ठहरावा॥
और अनेक बात नहिं मानै। अस कह मन्त्र सुनायौ कानै॥
तब तुलसी सुनि आदर कीन्हा। प्रीति भाव उठि आसन दीन्हा॥
दीन बिधी सब अपनी गाई। चरन परसि कै सीस चढ़ाई॥
मैं अनाथ हौं तुम्हरौ बारा। छिमा करौ मैं दास तुम्हारा॥

मैं औगुन की खानि अपारा। तुम गुन सीतल अपरम्पारा॥
तुम पंडित मैं अपढ़ अयाना। करौ दया तुम कृपानिधाना॥
ये हिरदे कछु ज्ञान न पावा। औगुन ज्ञान जो तुम्हें सुनावा॥
सीतल भये धीर तब आई। सुनि अस बचन बैठि भुँइ माई॥

अर्थ–हृदय अहीर ने कहा, हे स्वामी सुनें, मैंने ज्ञानियों की रीति के अनुसार ही कुछ बातें कही हैं। नैनू पंडित ने विचार कर कहा कि इन सबने ज्ञान की विलक्षण गति कही है। इस व्यक्ति ने तो धर्म, कर्म को संसार से नष्ट कर दिया–यह कैसा ज्ञान है, जिसे आपका यह शिष्य (हृदय अहीर) कहता है। इसने सम्पूर्ण वेदों, पुराणों आदि को निरर्थक बताया है तथा योगी एवं जैनियों का अस्तित्व ही नकार दिया है॥ यह धर्म की अनेक बातों को नहीं मानता ऐसा कहकर उन्हें (हृदय अहीर का) ज्ञानमंत्र सुनाया॥

यह सुनकर, तुलसी साहब ने नैनू पंडित का अत्यन्त आदर किया और प्रीतिभाव से उठकर उन्हें बैठने के लिए आसन दिया। उन्होंने नैनू पंडित से अपनी दीनता का वर्णन किया और उनके चरणों का स्पर्श करके उसे अपने सिर पर रख लिया।

मैं तो अनाथ हूँ–मुझे आपका ही आधार है–आप क्षमा करें मैं तो आपका दास हूँ॥ मैं अपार अवगुणों का भंडार हूँ और अपरम्पार शीतल गुणों के (भंडार) हो। आप पंडित ज्ञानी हैं और मैं अपढ़ और अज्ञानी हूँ–आप कृपा निधान है तुम मुझपर दया करों। इस हृदय ने किसी भी प्रकार के ज्ञान को नही प्राप्त किया है जो इसने आपको सुनाया है वह पूर्णतः दोष भरा (अवगुण) ज्ञान है॥

इसे सुनकर वे लोग शीतल (शान्त) हुए और उनमें धैर्य (सहजता) आया और इन बातों को सुनकर वे सभी भूमि पर बैठ गए॥

॥ सोरठा॥

तकी तुरक कह बात तुलसी सुनियो भेद अब।
सब हृदय विख्यात जो गुनाह इनने कियो॥

अर्थ–तुर्क तकी ने यह बात कही कि हे तुलसी साहब! सारा रहस्य अब सुनो, जो पाप इस हृदय अहीर ने किया है, वह सबको ज्ञात है।

॥ चौपाई॥

सेख तकी जब बचन सुनाई। तुलसी सुनियौ चित्त लगाई॥
हिरदे कुफर बात सब कीन्हा। रोजा निमाज मेटि सब दीन्हा॥
और कितेब कुरान उठाये। खुदा नबी कर खोज मिटाये॥

अर्थ–शेख तकी ने जब यह बात सुनाई तो तुलसी ने ध्यान देकर बात सुनी। हृदय अहीर ने कुफ्र की बातें की तथा रोजा तथा नमाज़ आदि सबको झूँठा कह दिया। उन्होंने धार्मिक पुस्तकों और कुरान को उठा (समाप्त घोषित कर) दिया और खुदा एवं नबी (ईश्वर के दूत) का अस्तित्व मिटा डाला॥

॥ सोरठा॥

तुलसी तकी विचार, सब सँवारि विधि मैं कहौं।
कहुँ कुरान निरधार, जो किताब भाखी सबै॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने सब को सँवार कर विधिपूर्वक बातें कही हैं। कहीं कुरान निराधार थोड़े है–उसका किताब में वर्णन तो सभी ने किया है॥

॥ सम्बाद साथ तकी मियाँ के ॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी कहै तकी सों बाता। या का तकी सुनौ बिख्याता॥
चौधा तबक कुरान बताया। और चौबीस पीर पुनि गावा॥
फजल मुहम्मद कीन्ह जहाना। आब ताब पट अबर निदाना॥
सुनौ तकी कहुँ खोज न पावै। कहा किताब ज्वाब नहिं आवै॥
काजी मुल्ला पढ़े कुराना। खुदा खुदा कहे खोज न जाना॥
कोलि कितेब देखिये भाई। खुदा आदि कहौ कहँ से आई॥
खुद खुदाइ कर कहै कुराना। खुद खुदाई का मरम न जाना॥
ये खुदाइ ना कहिये भाई। ये तौ खुद खुदाइ की छाँहीं॥
जहँ खुदाइ रहता है साँई। उस खुदाइ का अंत न पाई॥
तकी खुदा तुम एक बतावो। खुद खुदाइ का खोज लगावो॥

अर्थ–तुलसीदास शेख तकी से अपनी बात कहते हैं, हे शेख तकी! इस विख्यात तथ्य को आप सुनें। कुरान ने चौदह तबक (आधार स्थल) बताया है और फिर चौबीस पीरों के विषय में गाया है।

मुहम्मद साहब की कृपा ने यह सृष्टि बनाई, सूर्य तथा आकाश उन्हीं के बनाए हैं। भिन्न-भिन्न चौदह तबक (आधार स्थल) बतलाए गए हैं और उनके अलग-अलग पीर भी दिखाए गए हैं॥

किस तबक में किस नबी (ईश्वर के दूत) का निवास है। हे शेख तकी उस ईमान हक्क के विषय में कहिये॥

जहाँ वह स्वामी खुदा रहता है, उस खुदा का कोई अन्त नहीं पाता। हे तकी! तुम खुदा को एक बता रहे हो और स्वयं उस खुदा की खोज लगाओ।

अल्लाह ने अपने मुख एवं जुबान से जो कुछ कहा उससे किताब कुरान (धर्मग्रन्थ) बना। भाई पैगम्बर ने यह स्पष्ट किया कि सारा संसार उसकी खिलकत (सृष्टि) है। ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी तकी तलास, खुदा बास कहु कहँ हता।
नहिं जब जिमीं अकास, कोइ किताब स्वाँसा नहीं॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे तकी खोजो, कि खुदा की निवास स्थली कहाँ हैं। इस समय वह कहाँ था, जब कोई धर्म ग्रन्थ नहीं था, न पृथ्वी थी न आकाश था और न वायु थी।

॥ दोहा ॥

मंसूरमियाँ पश्तो कहै तकी बूझ दिल माहँ।
खुद खुदाइ की राह का खुदा खोज नहिं पाइ॥

अर्थ–मंसूर मियाँ पश्तों में यह बात समझाते हैं तू इसे दिल से समझो। स्वयं खुदा भी खुदा की तराह की खोज नहीं कर पाता॥

॥ तुलसी साहब बाच ॥

॥ दोहा ॥

तकी तोल जाना नहीं, कहौ कुरान की बात।
दिल दरियाप्त अपने करो, जो कुरान बिख्यात॥ १ ॥
खुदा चून बेचून है, अस अस कहत कुरान।
बिन जुबान अल्ला मियाँ, कस कस किया बखान॥ २ ॥
अल्ला अलिफ जुबान, बिना बदन जाहिर नहीं।
जुबाँ बदन के माहिं, तौ बेचूँ कहना नहीं॥ ३ ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते है हे शेख तकी उस निर्णय को जानते नहीं और कुरान की बातें करते हो। जो कुरान में विख्यात (सुप्रसिद्ध) है, उस तत्त्व की खोज अपने दिल में करो॥ १ ॥

ऐसा कुरान कैसे कह सकता है– अल्ला मियाँ ने बिना जुबान के ईश्वर (खुदा) स्वयं कुछ कह सुन नहीं सकता।

कैसा-कैसा वर्णन कर दिया है, यह समझ में नहीं आता। कैसा ऐसा कैसा कर दिया है, समझ में नहीं आता॥ २ ॥

अलिफ अल्ला की वाणी बिन मुख के कैसे प्रकाश में आई–अगर मुख में जुबान नहीं है तो कहने का क्या आधार है॥ ३ ॥

॥ चौपाई ॥

तकी मियाँ हक बोल सुनावौ। अल्ला तौ बेचून बतावौ॥
उनके बदन जुवाँ नहिं भाई। कैसे कितेब कुरान बनाई॥
कागद स्याही कस लिख मारा। बिन जुबान कैसे बिस्तारा॥
अल्ला मियाँ कितेब बनाई। कहौ जुबाँ बिन कैसे गाई॥
ये तौ दिल बिच साँच न आवै। तुलसी तकी बोल नहिं भावै॥
बिन जुबान मुख कहा कुराना। अल्ला के नहिं बदन जुबाना॥
चूँ बेचून नमून न ज्वाबा। सुनौ तकी म्याँ कहै किताबा॥
वहि कितेब कह खुदा जुबाना। अल्ला मुख से भये कुराना॥
जो जुबान नहिं उनके भाई। तौ कस कहे कुरान बनाई॥
या की तकी तोल बतलावौ। दिल में समझ बूझ समझावौ॥
दिल और रूह राह बतलैयै। तब कुरान का गाना गैयै॥
रूह रकान असमान ठिकाना। केहि बिधि गई राह पहिचाना॥
सो घर का म्याँ भेद बतावौ। चौधा तबक तोल समझावौ॥
सुनकर तकी तका नहिं बोला। मुख भया बंद जुबाँ नहिं खोला॥
तुलसी कहै कहौ कस भाई। जा से दिल बिच होइ निसाई॥
सुनकर तकी ज्वाब अस दीन्हा। मुरसिद मियाँ मरम हम चीन्हा॥

तुलसी तकी दीन जब देखा। तब भाखा बिधि भेद बिसेखा॥
साँची महजित तन को जाना। जा में चौधा तबक समाना॥
मक्का भिस्त हज्ज येहि माई। मुल्ला काजी राह न पाई॥
मुहम्मद नूर जानि सब केरा। दोजख भिस्त में किया बसेरा॥
नूर नबी ने सब का कीन्हा। तुम हलाल बकरी कस कीन्हा॥
गुनहगार दोजख की रीती। करौ खून ये बहुत अनीती॥
जो महजित उन आप बनाई। सो हलाल करि कै तुम खाई॥
मिट्टी महजित कबर बनाई। झूठा हक ईमान बताई॥
साँची महजित तन मन साईं। खिलकत खुदा खलक के माईं॥
नूर नबी सब माहिं बिराजा। जाकी हर दम उठै अवाजा॥
नूर नबी सब माहिं बिचारा। तब दोजख से होइहै न्यारा॥
नासुत मलकुत जबरुत भाई। लाहुत राह नबी की पाई॥
लामुकाम रब साहिब साँई। वाको खोज भिस्त तब पाई॥
सेख तकी तक थक रहे भाई। ज्वाब स्वाल मुख से नहिं आई॥

अर्थ—हे शेख मियाँ। हक के विषय में बोलकर बताओ। अल्ला मियाँ को बेचून कहते हो। उनके न मुख है, न जुबान है—उन्होंने कितेब (धर्मग्रन्थ) और कुरान कैसे बनाया॥

उन्होंने कागज पर स्याही से कैसे लिख डाला, और बिना जुबान के उसका कैसे वर्णन करके विस्तार किया। यदि अल्ला मियाँ ने कितेब (धर्मग्रन्थ) बनाया है तो बताओ कि बिन जुबान के कैसे गाया॥

यह बात तो दिल में सच्ची तरह से उतरती नहीं—तुलसी साहब कहते हैं किमेरे इस प्रश्न पर तकी मियाँ बोल नहीं पा रहे थे। यदि अल्ला मियाँ के न मुख है, न जुबान तो बिना जुबान के उन्होंने कुरान कैसे कहा?

चून, बेचून और नमून का कोई जबाव नहीं है। हे तकी मियाँ, सुनो, यह किताबें बताती हैं। उसी कितेब (धर्मग्रन्थ) को खुदा की जुबान कहा जाता है और यह भी कहा जाता है कि अल्ला मियाँ के मुख से कुरान निकला था। हे भाई! यदि उनके पास जुबान नहीं है, तो उन्होंने कुरान कैसे कहा था। हे तकी मियाँ! इसका रहस्य समझाइये।

दिल और आला की राह भी बतलाइये तब समझकर कुरान की आयतें गायें। आत्मा रकान (नियंत्रक) आसमान पर रहती है। यह किस तरह अपने राह से आसमान तक गई क्या आपने इसे जाना है? हे मियाँ! उस घर का आप भेद बताइये चौदह तबकों (पृथ्वी और सृष्टि) का तोल (मानदण्ड) भी बतलाएँ॥

इसे सुनकर, तकी ने तुलसी साहब को देखा किन्तु बोल नहीं सके—मुँह बन्द हो उठा, जुबान नहीं खुली। तुलसी साहब ने प्रश्न किया कि हे भाई! कुछ कहो न, जिससे दिल को कुछ शान्ति मिल जाएँ। उसे सुनकर तकी ने इस प्रकार जबाब दिया। हे मियाँ इस मुरशीद (पथ प्रदर्शक) ने आपके रहस्य को पहचान किया है—तुलसी साहब ने जब तकी मियाँ को असहाय की तरह देखा तब उन्होंने विशेष रूप की विधियों का वर्णन किया।

हे मियाँ! इस शरीर को ही सच्ची मस्जिद समझो, इसी में उसके चौदह तबके समाए हुए हैं। मक्का, हज, स्वर्ग सभी इसी में हैं। इसके भेद की राह मुल्ला काजी आदि नहीं पा सके। सबको

मुहम्मद साहब ने प्रकाश समझकर स्वर्ग तथा पृथ्वी दोनों पर अपना निवास बनाया। उस नबी (ईश्वर के दूत) ने सबको नूर दिया फिर तुमने बकरी को उससे अलग समझकर क्यों उसका हलाल किया॥ इ नरक के ये गुनहगार है—तुम रक्तपात करते हो, यह बड़ी अनीति है।

जिस (शरीर रूपी) मस्जिद को ईश्वर ने स्वयं बनाई है, उस (बकरे के शरीर) को हलाल करवे तुम खा जाते हो। तुम झूठे ईमान और अधिकार से प्रेरित मृत (मिट्टी) की शरीर (मस्जिद) को का बनाते हो।

इस स्वामी की सच्ची मस्जिद यही तक मन है और उसी के द्वारा खुदा इस संसार के बीच खिलकत (आनन्दित) है। समस्त नूर एवं नबी उसी में विराजमान हैं—जब तक ऐसा नहीं समझोगे उ इस संसार से अलग कहते रहोगे।

नासुत (संसार), मलकुत (देवलोक) जबरूत (स्वर्गलोक) तथा लाहुत (मृत्युलोक) इ चारो ने यहीं ही नबी (ईश्वर के दूत) की राह पाई थी।

वह स्वामी (मालिक) बिना मुकाम का है (सब जगह है, कोई निश्चित स्थान उसका मुकाम नह है) उसी की खोज से तुम स्वर्ग की खोज पा सकते हो।

इतनी बातें सुनकर मियाँ शेख तकी पूरी तरह से थक रहे और उनके मुख से प्रश्न एवं उत्तर दोन नहीं निकल रहे थे॥

॥ पश्तो १ ॥

खोल देखो रे किताबैं, आद अव्वल कौन था (म्याँ)।
नहिं जमीं असमान खिलकत, खुद खुदा तब था कहाँ॥ १ ॥
कुफल खोले रे कुराना, मूल म्याना भेद का।
था कलम स्याही न कागज, और न था आदम मियाँ॥ २ ॥
नहिं मुहम्मद रब न रे जब, नहिं पैयम्बर पीर थे।
नहिं नबी का नाम निसबत, भिश्त दोजख नहिं रचे॥ ३ ॥
काजी मुल्ला रे बेहोशो, खोज करो दिल्दार का।
मन मुआ मनसूर जब से, आशिक जो चश्मे यार का॥ ४ ॥

अर्थ—हे मियाँ शास्त्र की पुस्तकों को खोल कर देखो, सबसे पहले कौन था? उस समय न पृथ्व थी, न आसमान था तब उस समय खुदा कहाँ था॥ १ ॥

कुरान के कुफल के (रहस्य) को खोलो, उस मूल म्याना (तत्त्व) का रहस्य क्या था। उस सम न कलम थी, न स्याही थी, न कागज था, और न कोई मनुष्य था॥ २ ॥

न मुहम्मद साहब रब (स्वामी) थे, न पैगम्बर और पीर थे, न नबी का निश्वत (अस्तित्व) ना था। न स्वर्ग तथा पृथ्वी लोक रचा गया था॥ ३ ॥

हे ना समझ (बेहोशो) काजी-मुल्ला, उस दिलदार (ईश्वर) की खोज करो-जब से वह मुआ म चश्मे यार (सर्वदर्शक ईश्वर का) मंसूर बना॥ ४ ॥

॥ पश्तो २ ॥

यह खुदा ना है रे कुदरत, खुद खुदा कोइ और है (म्याँ)।
जिन खुदा को तख्त बख्शा, वह सकस कहो कौन है॥ १ ॥
दिल दिया और रूह रोशन, है हसन तन हुस्न को।

अब तबक चौधा दिये हैं, आदि खुदा को जानिये॥ २॥
कुल जहाँ आलम है कुन से, पट अबर अल्ला से है।
यह हर इक ना कोइ किसी पै, भेद दोस्ती दिल मिलै॥ ३॥
महरम मियाँ मनसूर आशिक, वह है बेचूँ बेनमूँ।
यह किताबों में नहीं है, खुद खुदा का राज है॥ ४॥

अर्थ–हे मियाँ! यह खुदा स्वयं कुदरत (प्रकृति) नहीं है–स्वयं खुदा (ईश्वर) इससे भिन्न कोई अन्य और है। जिन खुदा को आदि शक्ति ने संसार का अधिक सौंप दिया, बताओ वह शख्श कौन है?

जिसने सबको दिल दिया, आत्मा को प्रकाश दिया, इस शरीर को सौन्दर्य प्रदान किया, जिसने चौदह तबकों की आकाश के नीचे की धरती को प्रदान किया, उस आदि खुदा को समझें॥ २॥

यह सम्पूर्ण संसार ईश्वर के मुँह से निकलने वाले शब्दों से सम्बद्ध है और इस सारे संसार का नियंत्रण उसी ईश्वर से ही जुड़ा है यहाँ कोई किसी का नहीं है और दिल मिलने के बाद ही एक दूसरे से लोग जुड़ जाते हैं।

लोग राजदार हैं, उनके दिल की बातें मालूम नहीं होतीं और उनका प्रिय भी विलक्षण है और वह ईश्वर तो बड़ा विलक्षण तथा सारे मन की बातें समझ लेता है। ये बातें किसी धर्मग्रन्थ में नहीं लिखी गई हैं–यह ईश्वर का प्राकृतिक रहस्य है।

॥ पश्तो ३॥

ऐन अन्दर चश्म को रे, खोल देखो कौन है (म्याँ)।
कुल खलक आलम इसम बिच, दिल हिये में खसम है॥ १॥
नहिं किताबों में रे है कुछ, कुल कुरानै छूँछ है।
वह पिया आलम की आँखियाँ, और कहीं नहिं पूछ ले॥ २॥
हुस्न है रे हंस जा से, हुस्न तन बिच में रहा।
भूल अपनी आद अव्वल, कट मरे मन मौज में॥ ३॥
होश गाफिल है रे दोजख, दिल दिया नहिं यार को।
बूझ बिल–आखिर खराबो, इश्क ज्यों मनसूर हो॥ ४॥

अर्थ–हे मियाँ! ऐन (आँखों) के अन्दर अपने चश्म (नेत्र शक्ति) को खोल देखो। सम्पूर्ण सृष्टि में उसका आलम (संसार) इसके बीच स्थित है और उसके दिल में उसका खसम (स्वामी) स्थित है॥ २॥

हे मियाँ! इन कुरान जैसी किताबों में यह कुछ भी नहीं है और सारी कुरानें इस दृष्टि से खाली पड़ी हैं॥ यदि कोई (सिद्ध साधक मिल जाए) मिल जाए तो उससे पूछो तो वह बताएगा कि वह ईश्वर आलम (सृष्टि) की आँखों में ही है॥ २॥

हे हंस (आत्म) जिससे हुस्न (सौन्दर्य) बरकरार है और इस शरीर के बीच में हुश्न (सौन्दर्य) बरकरार है तू आदि मूल आदिम स्थिति को भूल रहा है और मन की मौज में कटकर रहा है॥ ३॥

हे गाफिल (बेखबर) तुझे (इस नरक का होश नहीं है और उस परमात्मा रूपी मार को अभी तक अपना दिल नहीं दिया है। अब अन्तिम समय की स्थिति के बारे में समझो–तुम्हारा प्रेम अब कैसे मनसूर (एक साधक का नाम) हो॥

॥ पश्तो ४॥

देख कुछ नहिं इस जहाँ में, सब फना हो जायँगे (म्याँ)।
रहै रब का नाम मरदो, लोग लशकर कूँच है॥ १॥
चार दिन खूबी खलक में, अन्त मरना इक है (म्याँ)।
ज्यों धुएँ का मेघडम्बर, कुल मिटै इक पलक में॥ २॥
तन को देखो आशिको, बस खून चमड़ी हाड़ है।
जब निकल जावै पवन, तब गांड़ मिट्टी में मियाँ ॥ ३॥
यार अजीजों ने कफन में, बाँध धरा ताबूत पर।
जोरू अम्मा कुल कुटम सब, मनसूर तन मन झूठ है (म्याँ)॥ ४॥

अर्थ—हे तकी मियाँ? देखो इस जगत में कुछ भी स्वामी नहीं है और एक दिन सब कुछ गायब हो जाएँगे। हे पुरुषों! केवल रब (परमेश्वर) का ही नाम बचेगा और यहाँ सारे मनुष्य और उनके समूह कूच कर जाएँगे॥ १॥

इस संसार की खूबी केवल चार दिनों तक के लिए ही है, और अन्त में एकमात्र मृत्यु ही शेष है। जैसे, धुएँ के बादल की घटाएँ एक ही पल में सारी की सारी नष्ट हो उठती हैं॥ २॥

हे प्रेमियों! इस शरीर की तरफ देखो, इसमें केवल इसमें खून है, चमड़ी और हड्डियाँ ही हैं और इस शरीर से जब वायु निकल जाती है तो हे मियाँ! इसे मिट्टी में गाड़ देते हैं॥ ३॥

मंसूर कहते हैं कि हे यार अपने साथियों में फिर कफन में बाँधकर उसे ताबूत पर रखा और फिर पत्नी, माँ, परिवार, कुटुम्ब, शरीर, मन आदि सभी झूँठे हो उठते हैं॥ ४॥

॥ पश्तो ५॥

खोज मुरशिद रे मुरीदो, राह रोशन यार को (म्याँ)।
रूह मेहर मुरशिद के दसतों, दिल फिजल दिलदार में॥ १॥
रूह चढ़ावौ रे अबर को, हो खबर उस यार को।
लावै जब रब राह चीन्है, फल में लखै इसरार को॥ २॥
कुफल खोले रे अधर के रूह से फोड़ असमान म्याँ।
जान मलकूत नासूत को, जबरूत की कर कदर म्याँ॥ ३॥
जा मिलै लाहूत रे जब, होश हो हाहूत का।
लौ लगी जो ला के अन्दर, रब मिले मनसूर को॥ ४॥

अर्थ—हे मुरीदों (शिष्यों) मुरशिद (गुरु) की रोशनी भरी राह को खोजो। उस दिलदार की आत्मा प्रकाश है, मुरशिद (पथ-प्रदर्शक गुरु) के दस्त हैं और उस दिलदार में दिल फजल (कृपा) है।

उस परमात्मा के प्रति अपनी आत्मा समर्पित करो जिससे उस साथी को इस बात की खबर हो जाए और जब उसे रब (परमेश्वर) मार्ग पर ले आए तो वह मार्ग पहचान कर उस इसरार (परमेश्वर) को फल भर में देख ले॥ २॥

हे शेख तकी मियाँ! वह अन्तरात्मा के कुफर (धर्म के प्रति दुर्भाव) खोले और आत्मा से शून्याकाश को फोड़ दे॥ तुम इस प्रकार मलकूत (देवलोक) तथा नासूत (मृत्युलोक) को समझो और जबरूत की इज्जत करो॥ ३॥

जब साधक को हाहूत (स्वर्गलोक) का होश हो तब वह लाहूत (मृत्यु लोक) परमात्मा से जाकर मिल जाए। मंसूर साहब कहते हैं कि यदि अल्ला के आनन्द की लौ लगी है, तो निश्चित ही रब (परमेश्वर) उसे मिल जाएगा॥ ।।४॥

॥ दोहा॥

रब्ब राह लौ लाह में, खुदा खोज दिल माह।
रब खोदाइ से अलग है, खुद खुदाय तेहि नावँ॥ १॥
बूझौ खोज किताब में, सब कुरान कुल झार।
कर तलास काजी सुनौ, कहि मनसूर पुकार॥ २॥

अर्थ–'रब' की ओर जाने वाले मार्ग पर लौ लगाकर दिल के अन्दर खुदा की खोज करो। यह रब (परमात्मा) खुदाई से अलग है और खुदा तो स्वयं उसे के अन्दर हैं॥ १॥

मंसूर पुकार कर कहते हैं कि मेरी बात सुनो ईश्वर को पुस्तकों में खोजो खोजकर समझो, कुरान में भी अच्छी तरह ठोंकपीट कर समझ लो उसके बाद उसकी इनसे अलग तलाश करो॥ २॥

॥ सोरठा॥

तुलसी तकी निहार, कहि पुकार मनसूर ने।
मुरसिद खोज बिचार, बन मुरीद मुरसिद मिलै॥

अर्थ–तुलसी साहब तकी शेख को पुकार कर कहते हैं कि मन में अच्छी तरह देखो विचारपूर्वक धर्मगुरु की खोज करो, मन के मुताबिक वह धर्मगुरु मिलेगा।

॥ चौपाई॥

तुलसी कहै तकी सुन बाता। खुद खुदाइ मालिक है दाता॥
उनका खोज खुदा नहिं पाया। नहिं कितेब लिखने में आया॥
काजी मुल्ला खोज न पावै। दे दे बाँग खुदा गोहरावै॥
अब खुदाइ का खोज बताओं। खुदा राह और भिस्त लखाओं॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे तकी! मेरी बातें सुनो, खुदा स्वयं स्वामी और दाता दोनों है। उस मूल खुदा की खोज खुदा भी करके नहीं प्राप्त कर सका है, और लिखी हुई धर्म की पुस्तकों में कहीं भी पढ़ने में नहीं आया है॥ अब मैं आपको खुदा की खोज बताता हूँ और स्वयं आपको खुदा का मार्ग तथा स्वर्ग को दिखाता हूँ।

॥ रेखता॥

अजब अनार दो भिस्त के द्वार पै।
लखै दुरवेस फक्कीर प्यारा॥ १॥
ऐन के अधर दोउ चस्म के बीच में।
खसम को खोज जहँ झलक तारा॥ २॥
उसी बिच फकत खुद खुदा का तखत है।
सिस्त से देख जहँ भिस्त सारा॥ ३॥

तुलसी तत मत मुरसिद के हाथ है।
मुरीद दिल रूह दोजख नियारा॥ ४॥

अर्थ–स्वर्ग के द्वार पर दो आश्चर्यजनक अनार हैं– जिसे प्रभु के प्यारे फकीर एवं दरवेश देखते हैं॥

ऐनक के नीचे दोनों चश्मों के बीच, उस स्वामी को खोजो, वहाँ (स्वतः) एक तारा झलक रहा है॥

उसी के बीच में फकत स्वयं खुदा का तख्त है, उसे सिस्त से देखो जहाँ सम्पूर्ण स्वर्ग है॥ ३॥

तुलसीसाहब कहते हैं कि यह मत मुरशिद (धर्मगुरु) के हाथों में है और ईश्वर के मुरीद के दिल और आत्मा दोनों इस जगत से भिन्न हैं॥ ४॥

॥ सोरठा॥

तुलसी भिस्त मिलाप, खुदा खोज येहि बिधि मिलै।
चौधा तबक निवास, कहौ कुरान किस बिधि कहै॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि आत्मा और स्वर्ग के मिलन में खुदा को खोजो, वह इस प्रकार प्राप्त हो सकता है, उस खुदा का निवास तो चौदह तबको (पृथ्वी की पर्तों) में है–बताइए वह कुरान द्वारा किस प्रकार पाया जा सकता है?

॥ चौपाई॥

तुलसी तबक तरक पहिचानौ। तब मियाँ तकी भिस्त को जानौ॥
बिन मुरसिद पावै नहिं घाटा। ये सब समझ खोज ले घाटा॥
सुनकर तकी बहुत भये दीना। बन्दा गुनहगाह नहिं चीन्हा॥
चरन पकड़ पुनि सीस गिरावा। तुम फकीर हम मरम न पावा॥
तुम खुदाई की जाति अजाती। हम इनके सँग भये सँगाती॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे शेख तकी! पहले 'तबक' का मर्म समझो, तब स्वर्ग को समझो। बिना मुरशिद (गुरु ....) के साधक किनारा नहीं प्राप्त कर सकता–यह परमात्मक की खोज के मार्ग पर आने से होता है॥

इसे सुनकर तकी मियाँ बड़े दुखी हुए, और बोले, यह बन्दा! गुनहगार है क्योंकि आपको पहचान नहीं सका। उन्होंने तुलसी साहब के चरणों को पकड़ कर अपना सिर उस पर गिरा दिया और बोले, आप सिद्ध फकीर है, मैं आपका मर्म नहीं समझ सका। आप स्वयं अज्ञेय खुदा की जाति के फकीर है, मैं तो इन सबका साथी बनकर आपके पास आया था॥

॥ दोहा॥

तकी कहै तुलसी मियाँ, तुम गुरु पीर हमार।
गुनह बक्स अपना करौ, बंदा तकी तुम्हार॥ १॥
तकी दीन तुलसी लखा, पका दीन मत माइँ।
झका तका अपनी तरफ, गुनहगार तुम पाइँ॥ २॥
तकी तबक जाना नहीं, नबी नूर नहिं पाइ।
भिस्त दोजख में तुम रहे, कैसे मिलै खुदाइ॥ ३॥

अर्थ–तब तकी ने कहा कि तुलसी साहब आप हमारे गुरु और पीर हैं। मेरी गलतियों को क्षमा करके मुझे अपना बना लें और यह बंदा तकी अब आपका है॥ १॥

तुलसी साहब ने जब तकी को उस दुखी अवस्था में देखा समझा कि यह पूरी तरह से मेरे मतों मे पक गया है। तब बोले कि तुम अपने को गुहगार पाते हो, अब इससे ऐसा लगता कि तुमने अपनी तरफ से (मन के अन्दर) झाँका और देखा है, आत्मालोचन किया है॥ २॥

तुलसी साहब कहते हैं कि हे तकी! तुमने तबक (सृष्टि की परतें) नहीं समझा और नबी (धर्मगुरु) तथा नूर को भी नहीं प्राप्त किया है–स्वर्ग समझ कर इसनरक में तुम रहते रहे, तुम्हें खुदा कैसे मिल सकते हैं॥ ३॥

॥ रेखता नसीहत॥

तुलसी तबक जाना नहीं, बेहोस गाफिल हो रहा।
जिस ने तुझे पैदा किया, उस यार को चीन्हा नहीं॥ १॥
नाहक अदम दम खोवता, मुरसिद पकड़ नहिं डूबही।
तुलसी खलक कुल ख्याल है, आसिक मुहब्बत कर सही॥ २॥
खोजो मुहम्मद दिल-रहम, जिस इस्म से आलम हुआ।
तुलसी नबी निरखै नहीं, जहँ लग मुसल्लम है नहीं॥ ३॥
रब रूह मरहम ना हुआ, रब देख अंदर है सही।
तुलसी तकी बूझा नहीं, जग में जिया तो क्या हुआ॥ ४॥
गन्दा नजिस क्यों हो रहा, इस जक्त में रहना नहीं।
अरे ऐ तकी तल्लास कर, तुलसी फना होना सही॥ ५॥
चारो चसम को खोल कर, देखो जुलम जालिम वही।
जबरील को तैंना लखा, तुलसी खबर खोजा नहीं॥ ६॥
रोजा निमाज हर दम किया, उस यार को दिल ना दिया।
खोजा नहीं अपना पिया, तुलसी तकी दोजख लिया॥ ७॥
नासूत मलकूत जबरूत हैं, लाहूत लौ तैं ना लिया।
हाहूत हिये खोजा नहीं, ला में रबी जीता पिया॥ ८॥
तुलसी तकी तालिम दिया, हर दम गुनह बंदा हुआ।
मुरसिद मुरीदी दस्त है, पावै तकी अपना किया॥ ९॥
तुलसी रहम राजी हुआ, तोला तकी अपना किया।
दिया दस्त दरदी जान कै, तुलसी तकी मुरसिद हुआ॥ १०॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे शेख तकी तुमने तबक (सृष्टि) नहीं समझा और अपने गर्व में बराबर बेहोश तथा गाफिल (भ्रमग्रस्त) होता रहा। जिसने तुम्हें जन्म दिया है, इस दोस्त ईश्वर को तुमने पहचाना नहीं॥

॥ दोहा॥

तकी दीन तुलसी लखा, दीन्हा पंथ लखाइ।
सुरति सैल असमान कर, चढ़े गगन को धाइ॥

अर्थ–तुलसी साहब ने तकी को दुखी देखकर उस निर्गुण ब्रह्म का मार्ग दिखा दिया। वे सुरति से जुड़कर पर्वत शिखर पर जाकर शून्य पर दौड़कर चढ़ गये॥

॥ चौपाई॥

तकी दीन गति. गाइ सुनाई। दीन्हा सूरति पंथ लखाई॥

अर्थ–दीन सेख तकी के मार्ग को गाकर सुनाया और उसे सुरति का मार्ग दिखला दिया।

॥ सरन में आना तकी मियाँ का॥

॥ दोहा॥

तकी दस्त दोउ जोड़ि कै, करि सलाम सिर टेक।
नेक नजर अपनी करौ, बन्दा तकी निहाल॥

अर्थ–तकी मियाँ दोनों हाथों को जोड़कर तथा नमस्कार करते हुए शिर टेक कर बोले कि यह बन्दा तकी निहाल हो चुका है, अब आप मेरे ऊपर कृपा करें॥

॥ चौपाई॥

नेक निहाला नजर निहारौ। तुलसी बंदा तकी सम्हारौ॥
हमरा गुनह माफ सब कीजै। फजल करौ फिर अज्ञा दीजै॥
चले तकी मारग को जाई। कासी नगरी पहुंचे आई॥

अर्थ–थौड़ी देर के लिए तकी को निहाल करते हुए तुलसी साहब ने शेख तकी को सम्हाला। तकी कहने लगे हे स्वामी जी! हमारी गलतियों को आप क्षमा करें–अब मुझे आज्ञा देकर मुझ पर फजल (कृपा) करे। शेख तकी अपने मार्ग की ओर चल पड़े और धीरे-धीरे काशी नगरी में पहुँच गए॥

॥ दोहा॥

चले तकी मारग गये, बीच बजार मँझार।
कर्मा पल्लीवाल की, गये दुकान के पास॥

अर्थ–शेख तकी उस मार्ग से चलते हुए काशी के बीच बाजार में पहुँचे और कर्मा पालीवाल की दुकान पर गए॥

सम्बाद जैनियों के साथ

॥ चौपाई॥

कर्मचंद इक पल्लीवाला। स्रावग जैन धर्म मत पाला॥
सो करै बनिज बजाजी कोरा। ताहि दुकान बाग तेहि मोरा॥
कर्मचंद ने कीन्ह सलामा। आदर बहुत कीन्ह सनमाना॥
सेख तकी कहै सुन रे भाई। कहौं फकीर अक खुदा गुसाई॥
ता को सब बरतंत सुनावा। कर्मकंद तुलसी ढिंग आवा॥
कर्मचंद और धर्मा जैनी। सब पूछी पुनि हमरी कहेनी॥
कौन धर्म यह साध कहावा। जैन को धर्म मर्म जिन पावा॥
धर्मचंद और कर्मा जैनी। थापी उन निज अपनी कहेनी॥

अर्थ–कर्मचन्द नामके एक पालीवाल जाति वाले थे और उन्होंने श्रावग जैन मत स्वीकार कर रखा था। वह बनियागीरी था और केवल बजाजी (कपड़े की दुकानदारी) करता था। उसकी दूकान मेरी उस बाग में थी।

कर्मचंद ने मुझे देखकर सलाम किया और उन्होंने अति आदरपूर्वक मेरा सम्मान भी किया। शेख तकी ने उनसे कहा कि हे भाई सुनो! उसे मैं फकीर कहूँ बाकि (अक) मालिक ही कहूँ।

उन कर्मचन्द को तकी मिया ने सारा वृत्तान्त सुनाया, उसे सुनकर कर्मचंद तुलसी साहब के पास आए। कर्मचंद और धर्मा दोनों जैनियों ने मिलकर सारे कथनों के विषय में पूछा॥ किस धर्म से सम्बद्ध यह साधु कहा जाता है, जैन धर्म का रहस्य किसने जाना है। उन धर्मचन्द तथा कर्मा जैनी ने मिलकर तुलसी साहब से अपनी (जैन धर्म के सिद्धान्त की) बातें रखी॥

॥ प्रश्न तुलसी साहिब ॥

कहि तुलसी तुम मर्म बताओ। जैन धर्म का भेद सुनाओ॥

अर्थ–तुलसी साहब ने पूछा, कि आप अपना रहस्य बतलाएँ और जैनधर्म के मर्म के विषय में भी बतलाएँ।

॥ उत्तर कर्मचंद और धर्मा ॥

कर्मचंद और बोले धर्मा। होइ मुक्ति जब काटै कर्मा॥
तप कर संजम बन को जावै। हरी त्याग कर जीव बचावै॥
टाटक ध्यान जपै नौकारा। जब या जीव को होइ उबारा॥
कोसिस ऐसी कठिन अपारा। काटै कर्म जीव निरबारा॥
तीर्थंकर चौबीसो जाना। कर्म काटि पहुँचे निरबाना॥

अर्थ–धर्मा एवं कर्मचन्द साथ-साथ बोले, मुक्ति तब मिलती है, जब व्यक्ति कर्म संसक्ति को नष्ट कर डाले॥ तप के संयम बरत कर व्यक्ति बन में जाए और विष्णु (ब्रह्म) को त्यागकर मनुष्य में निहित जीवत्व की रक्षा करे॥

तुरन्त नौ प्रकार के ध्यानों में अपनी साधना लगा दे, तभी इस जीव का उद्धार सम्भव है। इसी के द्वारा कठिन तपस्या करके एवं कर्म बन्धन को काटकर अपने को मुक्त करना चाहिए।

तीर्थंकर चौबीस हो गए हैं–जिन्होंने कर्मबंधन काट कर निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया है।

॥ सोरठा ॥

धर्मा कही जनाइ, जैन धर्म संजम बिधी।
तुलसी सुनौ समाइ, तब पुनि फिरि आगे कहों॥

अर्थ–धर्मा ने सारे जैन धर्म के मर्म को बताते हुए समस्त धर्म एवं संयम विधि बतलाई। वे बोले, हे तुलसी साहब, भली भाँति सुन लो, तब इसके बाद आगे पूछना॥

॥ प्रश्न तुलसी साहिब ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी पूछै ताइ, भेद कहो निरबान को।
तुम कस पायौ जाइ, सो देखी अपनी कहौ॥

अर्थ–तुलसी साहब धर्मा से पूछा, कि तुम निर्वाण के भेदों के विषय में बताओ। उसे जानकर तुमने किस तरह देखा है और जिसे देखा है, उससे जुड़े अनुभवों के बारे में बताओ॥

॥ चौपाई ॥

तुम देखी अपनी बतलावौ। करनी और और की गावौ॥
साँची करनी अपनी भाई। तुम कुछ और और की गाई॥
तीर्थङ्कर पहुँचे निरबाना। कर्म काटि वे जाइ समाना॥
तुम तेहि करनी भाखि सुनाई। हाथ कहा कहौ तुम्हरे आई॥
जीवत मिले देखिये आँखी। ता की करनी कह कर भाखी॥
खावै भूख जाइ पुनि ताही। ऐसी बात कहौ समझाई॥
अब जो तुरत तलब सो पावै। तब तुलसी की प्यास बुझावै॥
तुम तौ कही जुगन की बानी। देखौं अबै सुनौं जो कानी॥
देखौं अबै तो मन पतियावै। ऐसी तत्त बात मन भावै॥
ये सब कही सुनी हम जानी। मुए मुक्ति की करौं बखानी॥
मुए पर कोइ आवै न भाई। जीवत में केहु पहुँचि न पाई॥
ता की खबरं साँच कस आई। सो धर्मा तुम कहौ सुनाई॥
ये तौ अंध अंध कर लेखा। मानौ जो जोइ नैनन देखा॥

अर्थ–तुम अपनी देखी हुई बतलाओ, करनी किसी ने की है, तुम दूसरे बनकर उसे गा रहे हो। हे भाई! अपनी सच्ची आध्यात्मिक करनी बताओ, तुम तो दूसरे हो और दूसरे की करनी गाते हो॥

तुमने तीर्थंकरों की करनी मुझे कहकर सुना दी–उस करनी की समझ तुम्हें कितनी आई। इसे बताओ। जो आँखों के सामने जीवित मिले, उसकी करनी कहकर कहनी चाहिए॥ जिसको भूख है, उसे खाना चाहिए (और उस खाने का अनुभव उसे बताना चाहिए) तुम झूठे अनुभव को मुझे क्यों समझा रहे हो।

जो सही ढंग से ईश्वर के अनुभव के नशे में डूब जाता है, वही तुलसी की जिज्ञासा भरी प्यास बुझा सकता है। तुम तो अनेक युगों के पूर्व के ज्ञान की वाणी कहते हो–जो अभी अभी आँख से देखते हो और कान से सुनते हो, उस ज्ञान के विषय में क्यों नहीं बताते।

जिसे अभी देख लोगे, उस पर मन विश्वास करने लगेगा और तत्त्व की ऐसी ही बातें मन को अच्छी लगती है॥

जो तुमने सारी बातें कही है, उसे हमने भी सुन रखी है–तुम मुझसे उस मुक्ति की बात करते हो जो मर चुकी है॥ हे भाई! मरने के बाद कोई आता नहीं और जीवन में जीवित रहते कोई मृत्यु तक नहीं पहुँच सकता॥

उस पूर्वमृत की खबर तुम्हारे पास कैसे आ गई, हे धर्मा! इसे सच-सच सुनाकर बताओ॥ यह तुम्हारा प्रश्न अंधे के द्वारा अंधे को ले जाने जैसा है, मन तो उस पर विश्वास करता है, जिसे उसने अपने नेत्रों से देखा है।

॥ सोरठा ॥

तुलसी तुरत बताइ जो निज नैननि लखि परै।
सरै जीव को काज परै पार गति देखिये॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे धर्मा, उसके विषय में बताओ जो अपनी आँखों से दिखाई पड़े, उससे जीव का कार्य सिद्ध होगा और उस पार जाकर कह उस विशुद्ध मुक्ति को प्राप्त करेगा और उसे देखेगा॥

॥ चौपाई ॥

सो साँची भानैं हम भाई। ऐसी धर्मा कहौ सुनाई॥

अर्थ–हे धर्मा, ऐसी बातें कहकर सुनाओ, जिसे हे भाई! हम भी अनुभव करें॥

॥ उत्तर धर्मा ॥

कहै धर्मा तुलसी सुनौ, कहौं भे बिस्वास।
बिन संजम पावै नहीं, तप जप बिना उपास॥

अर्थ–धर्मा ने कहा कि, हे तुलसी साहब! सुनें, किसी के बताने से यह विश्वास हुआ कि बिना संयम एवं जप, तप एवं उपवास के कुछ प्राप्त नहीं होता॥

॥ प्रश्न तुलसी साहिब ॥

॥ सोरठा ॥

सुनु धर्मा बिधि बात। संजम तप मुक्ती नहीं॥
पद पावै निरबान। चढ़ि अकास मुक्ती मिलै॥ १॥
निज निरबान बिधान। कहौं भेद भिन भिन सुनौ॥
पद निर्बान निज पार। संत सार आगे चखै॥ २॥

अर्थ–हे धर्मा! मेरी बात सुनो, संयम एवं तपस्या मुक्ति नहीं है, जो निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है, उसे शून्याकाश में मुक्ति मिलती है॥ १॥

अपने निर्वाण विधान के भिन्न-भिन्न भेदों को मैं बतलाता हूँ–निर्वाण का पद अपने (चित्त) के उस पार है–और उसके सारतत्त्व आनन्द का आस्वादन मुक्ति के बाद चखते हैं॥ २॥

॥ रेखता ॥

निकट निरबान की सान जग में लखौ।
फटिक बिच सिला पर स्याम माई॥ १॥
काल की जाल दरहाल जा को कहैं।
भये चौबीस भौ मुक्ति पाई॥ २॥
गुन मिलि गोह चौधा गुनछान हैं।
चौधा जमराय जहँ कसत भाई॥ ३॥
अधर अठबीस लख लोक राचू कहै।
काल निरबान रत रहत गही॥ ४॥
देव मुनि दैत्य गंधर्व और मानवी।
केवली काल मुख सकल जाई॥ ५॥
दास तुलसी निबान पद निरखि कै।
छाँड़ि ये राह घर अधर माई॥ ६॥

अर्थ—अपने ही निकट निवार्ण की गरिमा को देखो—स्फटिक की शिला (चित्त शिला पर) वह श्याममयी है—उसे काल के क्षण-क्षण का समाचार कहा जाता है, चौबीसरूपों (चौबीस तीर्थंकरों) के रूप में इन्होंने मुक्ति प्राप्त की है॥ १-२॥

गुणों से मिलकर चौदह अनुष्ठान हैं—जहाँ चौदह यमराज निवास करते हैं॥ ३॥

अन्तरात्मा में अट्ठाईस दिखाई पड़ने वाले लोक हैं—काल-निर्वाण द्वारा इन्हें सभी ग्रहीत रहते हैं॥ ४॥

देव, मुनि, दैत्य, गंधर्व एवं मानव के बीच क्या ज्ञानी (कवली) मुक्ति का अधिकारी हो गया है॥ ५॥

तुलसीदास कहते हैं कि निर्वाण के पद को देखकर, इस मार्ग को छोड़ दो—और अपनी अन्तरात्मा के घर में निवास करो॥ ६॥

॥ गजल १॥

जैनी जो जैन नैन सूझै नाईं।
आतम को छाँड़ि पूजैं पाहन जाई॥ १॥
कर कर पूजा बिधान अष्टक गावैं।
भादों बिधि मंदिर सब स्त्रावग आवैं॥ २॥
चावल रँग माँड मँडे मनसैं आप का।
नंदेसुर पूजि दीप करैं बाप का॥ ३॥
और अढ़ाई दीप माँड़ि करते पूजा।
अंदर आतम्म ब्रह्म नाहीं सूझा॥ ४॥
करते कल्यान पाँच कामधेनु की।
पूजैं बेहोस फूटि हिये नैन की॥ ५॥
जिन ने तन साज किया जानौ भाई।
वा की विधि भूलि भाव पाहन लाई॥ ६॥
तुलसी ये फंद कीन्ह काल पसारा।
धरमन की टेक बाँधि बूड़े सारा॥ ७॥

अर्थ—जैनी को ज्ञान के नेत्रों से कुछ भी नहीं सूझता और वे आत्मा को छोड़कर पत्थर की पूजा करने जाते हैं॥ १॥

पूजाविधान कर करके अष्टक गाते हैं और भादों के महीने में सभी मन्दिर में (पूजा) के निमित्त आते हैं॥ २॥

चावल को रँगकर माँड़ को रजाकर स्वयं अपनी स्वेच्छा से नंदेसुर की पूजा करके अपने मृत पिता के लिए दीपदान करते है॥ ३॥

उन्हें अपनी अन्तरात्मा में स्थित ब्रह्म नहीं सूझता और उधर ढाई दीपक सजा कर पूजन करते हैं।।४॥

वे पांच कामधेनु जैसी गायों को खिलाते-पिलाते हैं तथा हृदय के नेत्रों से वंचित (फूटि) अज्ञानी जैसे पूजा करते हैं॥ ५॥

हे भाई! समझो, जिसने तुम्हारे इस शरीर की रचना जैसी साज सज्जा की है, उसको भूल करके अपने भावचित्त में पत्थर ला रहे हो॥ ६॥

तुलसी साहब कहते है कि काल ने फंदा बनाकर चारों ओर फैला रखा है और इन धर्मों के टेक के अन्तर्गत बँधे हुए तुम सारे के सारे लोग डूब जावोगे ॥ ७ ॥

॥ गजल २ ॥

ढूँढ़त गिरिनार सिखर आबू जाते।
सतगुरु बिन मेहर नहीं काबू पाते ॥ १ ॥
बूझै सतसंग संग संतन माई।
अंदर पट खोल बोल देत दिखाई ॥ २ ॥
जिनके बड़े भाग सोई निरखि निहारा।
रहते जग बीच बीच जग से न्यारा ॥ ३ ॥
उनकी वोहि चाल हाल घट में देखै।
पूछै कोइ चीन्हैं नहिं बात बिसेखै ॥ ४ ॥
खोजत पहाड़ सिखर मूरति माई।
तुलसी नौकार जपैं सूझै नाई ॥ ५ ॥

अर्थ–आबू पर्वत या गिरनार के शिखर पर जिसे खोजने जाते हो, किन्तु सतगुरु की कृपा बिना पूजा करने वाले अपने पर नियंत्रण नहीं कर पाते ॥ १ ॥

हे भाई! संतों के साथ होने वाले सत्संग को समझो जो अन्तरात्मा के पर्दे को खोल कर उस परमात्मा को दिखा देते हैं ॥ २ ॥

वे लोग, जिनके बड़े भाग्य हैं, वही उसे निरखते और निहारते हैं और संसार में रहते हुए भी संसार से असंसक्त हैं ॥ ३ ॥

उनकी उस चाल तथा हाल कि वे घट के भीतर ही तत्त्व का दर्शन कर लेते हैं, वे पूँछने पर भी किसी को पहचानते नहीं, यह विशेष बात है अर्थात् निरन्तर आत्मरत रहते हैं ॥

हे धर्मा! पर्वत शिखरों पर उनकी मूर्ति को खोजते हुए नौकार जाप करते हैं किन्तु यह सूझ नहीं पड़ता-यह कौन-सी साधना है ॥ ५ ॥

॥ चौपाई ॥

पद निरबान भूमि बतलाई। केवलि ज्ञान तिथंकर गाई ॥
तप संजम पूजा बिधि बानी। ये गति चारि माहिं भौ खानी ॥

अर्थ–मैंने निर्वाण पद की मूलभूमि का वर्णन किया है और केवल तीर्थंकरों के विषय में बताया है। तप, संयम, पूजाविधि, और कीर्तन ये चारों गतियाँ इस सांसारिक बन्धन की खानि हैं ॥

॥ दोहा ॥

जब नौकार निकाम सब, आदि सार नहिं जान।
पद निरबान के पार की, तुलसी करत बखान ॥

अर्थ–जब नौ प्रकार की सभी पूजाएँ व्यर्थ हैं–और कोई मूल स्तर सार तत्त्व नही समझता, (तो निर्वाण पद को क्या समझेंगे) तुलसीदास जी कहते हैं कि इसलिए मैं निर्वाण पद के उस पार की स्थिति का वर्णन करता हूँ ॥

॥ शब्द ॥

अद्‌भुत आज अलेखा री, सखि सइयाँ कौ भेषा ॥ टेक ॥
उदित मुदित दोइ सहर सुहावन, स्याम सेत नित देखा।
अजर खेत्र नभ फटिक, सिला पर, पद निरबान बिसेखा ॥ १ ॥
सिलि पिलि बिजै खेत्र बिंदाचल, लील सिखर पर ठेका।
समुँदर सात पार जल खण्डा, अंडा अब ले पेखा ॥ २ ॥
निरखत चारि खानि गति चारी, बिधि बिधि जीव बिसेखा।
केवलि ज्ञान होत गुंकारा, देखे केवली अनेका ॥ ३ ॥
ये निरबान भूमि मत मारग, आगे जान न लेखा।
स्त्रावग जैन धर्म मत माहीं, इनके वोही टेका ॥ ४ ॥
आतम ज्ञान ध्यान बतलावैं, आगे भेद न पावैं।
सास्तर साखि भाखि बिधि देखैं, खोजत मुए अनेका ॥ ५ ॥
या के परे भिन्न गति न्यारी, सूनि बाइस बिधि देखा।
ता के परे पार सत साहिब, सो पद संतन लेखा ॥ ६ ॥
सुन्न सुन्न प्रति प्रति पद माहीं, जहँ निरबान न पेखा।
केवलि ज्ञान आतमा नाहीं, धरम करम नहिं एका ॥ ७ ॥
सूर चंद नहिं धरनि अकासा, तेज पवन जल छेका ॥
ता के परे पार निर्खि न्यारा, तुलसी हिये दृग देखा ॥ ८ ॥

अर्थ–हे सखी! आज स्वामी (ब्रह्म) की वेषरचना अद्‌भुत एवं अलेख्य है। उदित तथा मुदित नाम के दो सुहावने नगर हैं और वहीं मैंने उनको, श्याम तथा श्वेत इन दो रूपों में देखा है॥ वह क्षेत्र अजर है, शून्याकाश में एक स्फटिक शिला है–उनका विशेष निर्वाण पद वही है ॥ १ ॥

वह जल खंड सात समुद्रों के उस पार है और वहीं ब्रह्मांड रूप इस विश्व को देखा है॥ २१ ॥

यहाँ चारों प्रकार के ज्ञान विभव के स्रोत तथा चारों प्रकार की मुक्ति की गतियाँ और नाना प्रकार के जीव हैं। यहाँ केवल गुंकार (ध्वनि रूप) ज्ञान सुनाई पड़ता है– इसे केवल वे ही देखते हैं जो 'केवल ज्ञानी हैं ॥ ३ ॥

यही निर्वाणभूमि ही धर्म का मार्ग है, आगे कोई न ज्ञान है और न उसे लेखा-जोखा (विवरण) है। श्रावग, जैनधर्म मत के अन्तर्गत इनकी यही अन्तिम मान्यता है ॥ ४ ॥

ध्यान ही आत्म ज्ञान बतलाता है, उसके आगे क्या है, वे उसका भेदभाव नहीं प्राप्त कर पाते। शास्त्र की साक्षी अनेक प्रकार से कह देते हैं किन्तु इसी को खोजते-खोजते वे मर जाते हैं ॥ ५ ॥

इस शास्त्र से परे एक विलक्षण ज्ञान की भिन्न गति है, सुनो! उसे बाईस प्रकार से मैंने देखा है (देखा जाता है)। उसके उस पार सत्य ब्रह्म जैसा स्वामी है–उस स्थान को केवल संतों ने देखा है ॥ ६ ॥

प्रति पद-पद में शून्य-ही शून्य है–वहाँ निर्वाण नहीं दिखता-वहाँ न ज्ञान है, न आत्मा है, न धर्म है, न कर्म है–अर्थात् एक भी नहीं है ॥ ७ ॥

वहाँ न सूर्य है, न चन्द्रमा है, न पृथ्वी है, न आकाश है–और सभी कुछ तीक्ष्ण वायु एवं जल से घिरा हुआ है। उसके पार उस प्रिय विलक्षण ब्रह्म को देखो, और तुलसीदास ने भी हृदय की आँखों से उसे देखा है ॥ ८ ॥

॥ दोहा ॥

तुलसी भूमि निरबान की, धर्मा सुनौ बयान।
केवलि ज्ञान गोंकार का, तुलसी करत बखान॥ १ ॥
फटिक सिला नभ ऊपरै, केवलि करत बखान।
तुलसी चढ़ि असमान पर, निरखा भिनि भिनि छान॥ २ ॥
निरबान निरखि आगे चली, सुनि अँड बाइस पार।
नहिं निरबान गति वहँ चलै, तुलसी देखा झार॥ ३ ॥
जीव अचर चर अंड के, जो ब्रह्मंड के माइँ।
सूरति चढ़ि असमान पर, तुलसी देखा जाइ॥ ४ ॥

अर्थ–हे धर्मा! मेरी बात सुनो, निर्वाण की भूमि, वह केवल 'गोंकार' ज्ञानी भूमि है, ऐसा, तुलसीदास कहते है॥ १ ॥

शून्याकाश के ऊपर स्फटिक शिला केवलतम ज्ञान युक्त सन्तजन उसका वर्णन करते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने भी शून्याकाश पर चढ़कर उन भिन्न-भिन्न केन्द्रों को देखा॥ २ ॥

निर्वाण पद को देखकर आत्मा के आगे चलने पर उसे बाइस ब्रह्मांड दिखाई पड़ते हैं। उन बाईस अंडों के आगे निर्वाण की गति नहीं चलती–तुलसी ने इसे साफ-साफ देखा है॥ ३ ॥

इस अंड के चराचर जीव जो ब्रह्मांड के मध्य हैं–तुलसी साहब कहते हैं कि शून्याकाश पर चढ़कर मैंने उन्हें भी देखा है॥ ४ ॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी धर्म बिलोके सारी। तुरक जैन बाम्हन मत झारी॥
जग थापन जैनी बतलावैं। ऋषभ देव कीन्हा बिधि गावैं॥
तीथंकर चौबीसों बानी। तुरक पीर चौबीस बखानी॥
मुहम्मद थापन कीन्ह जहाना। बाम्हन ब्रह्मा बेद बखाना॥
मुहम्मद तुरक बाम्हन बतलावैं। तीसर जैनी अस अस गावैं॥
अस अस तीनौं कहत बखाना। झूठ साँच कहौ केहि को माना॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि तुर्क, जैन एवं ब्राह्मण धर्म से सम्बद्ध सारे मतों को मैंने देखा है, जैसा कि जैन मतावलम्बी बतलाते है–''ऋषभदेव'' ने इस संसार की स्थापना की है॥

चौबीस तीर्थंकरों की ये कहते हैं और तुर्क, पीर भी चौबीस की ही बातें करते हैं। मुसलमान कहते हैं कि मुहम्मद साहब ने इस संसार की स्थापना की है और ब्राह्मण ब्रह्मा तथा वेद को बतलाते हैं॥

मुहम्मद साहब को तुर्क एवं ब्राह्मण ब्रह्मा को तथा तीसरे जैनी इस प्रकार की बातें करते हैं। इस प्रकार से तीनों कहते हैं और बताइए–इनकों किस तर्क से झूठ या सच माना जाए॥

॥ दोहा ॥

गुनष्टान चौधा कहे, जैन मते में जान।
तुरक तबक चौधा कहे, बाम्हन भुवन बखान॥ १ ॥

चौधा भुवन बाम्हन कहैं, तीनौ मत इक सार।
आदि पार कोइ ना कहै, लखा न रचनेहार॥ २॥

अर्थ–जैन मत के अनुसार यह समझो कि गुणगान चौदह कहे जाते हैं। मुसलमान भी चौदह तब्रक (योनियाँ) बताते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणों के भी चौदह भुवन हैं।। १॥

ब्राह्मण भी चौदह भुवन कहते हैं–ये तीनों मत एक जैसे हैं, लेकिन इसके उस पार क्या है? इसके विषय में कोई नहीं बताता। इस रचने वाले ईश्वर को किसी ने भी नहीं देखा है॥

॥ रेखता ॥

चौधा तबक किताब कुरान में।
पीर चौबीस पुनि वोहू गावा॥ १॥
अल्ला रचि खेल सब जहान आलम किया।
आब और ताब पट अबर आवा॥ २॥
सरा का खेल मुहम्मद से करि कहैं।
येही बिधि तुरक तकरीर लावा॥ ३॥
जैन मत माहिं गुनष्टान चौधा कहैं।
बिधी भगवान चौबीस गावा॥ ४॥
ऋषभजी रचन संसार की थापना॥
आपने मते की वोहू लावा॥ ५॥
बेद पुरान संसार बाम्हन कहै॥
विधी भगवान चौबीस गावा॥ ६॥
चतुरदस लोक लीला बरनन करैं।
रचना बैराट जग बिधि बनावा॥ ७॥
झूठ और साँच कहौं कौन को कीजिये।
हिन्दू और तुरक पढ़ भूल पावा॥ ८॥
जैन सोइ जिंद बुन्द आदि को ना लखा।
तीनि में किनहुँ नहिं चीन्ह पावा॥ ९॥
दास तुलसी कहै अगम घर अधर है।
संत बिन भेद नहिं हाथ आवा॥ १०॥

अर्थ–पुस्तकों में चौदह तवकों (योनियों) का वर्णन है, और पीर उन्हीं चौबीसों का गान करते रहते हैं॥ १॥

अल्ला मियाँ ने खेल खेल में रचकर सम्पूर्ण सृष्टि को सुशोभित कर दिया और उस पर जल तथा चेतना अलग से भर दी॥ २॥

अपनी इस रचना के खेल को बनाकर मुहम्मद साहब से बताया और जो कुछ बताया है, उसको मुसलमान तर्क और बहस के रूप में पेश कहते हैं॥ ३॥

जैन धर्मी भी उसी को चौदह गुनष्ठान कहते हैं और भगवान की विधि की गणना चौबीस बताई है॥ १४॥

संसार की स्थापना तथा रचना ऋषभ देव ने की और उन्होंने भी अपने मत के अनुसार उसे स्थापित किया॥ ५॥

वेद, पुराण, संसार एवं ब्राह्मण सभी कहते हैं कि ब्रह्मा ने चौबीस रूपों का वर्णन किया है॥ ६॥

चौदह लोकों की ये सभी लीला वर्णन करते हैं और कहते हैं कि विधाता ने इस ब्रह्माण्ड को बनाकर उसकी रचना की है॥ १७॥

सच और झूँठ कहो किसको कहा जाए, हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने पढ़कर असत्य प्राप्त किया॥ ८॥

किसी जैन ने आज तक न जिंद को देखा न बुंद को और तुर्क, जैन एवं ब्राह्मण तीनों में से किसी ने भी उसे नहीं पहचान पाया है॥ ९॥

तुलसी साहब कहते हैं कि उस अगम्य का निवास अन्तरात्मा में है, और संतों की मदद के बिना यह रहस्य समझ में नहीं आता (हाथ में नहीं आता) ॥ १०॥

॥ चौपाई ॥

बाम्हन तुरुक जैन मत माई। करता की गति केहु न पाई॥
मत अपने अपने की गावैं। तीनौं करता तीनि बतावैं॥
थापा जग रुचि एक बनाई। ये तीनौं मिलि तीनि बताई॥

अर्थ–हे सखे! ब्राह्मण, तुर्क एवं जैन ये तीनों मत कर्त्ता परमात्मा की गति किसी ने भी नहीं प्राप्त की॥ सभी अपने-अपने मत का गान करते हैं–और तीनों तीन सृष्टि कर्त्ता बताते हैं। उस ईश्वर ने एक ही संसार बनाकर उसकी स्थापना की है– और ये तीनों मिलकर तीन बताते हैं।

॥ सोरठा ॥

धर्मा धर्म पसार, जैन बिधी कस कस कही।
भिनि भिनि कहौ बिचार, तब संजम उपवास बिधि॥

अर्थ–हे धर्मा! जैन विधि से धर्म के प्रसार को किस-किस प्रकार कहा गया है, तुम भिन्न-भिन्न ढंग से तप, संयम, उपवास की विधियों पर विचार करते हो (यह ठीक नहीं है)॥

॥ चौपाई ॥

व्रत संजम जप तप बतलावौ। कहै तुलसी भिनि बिधि दरसावौ॥
कस कस चलन बात बिधि कहिये। स्त्रावग बिधि पुनि धर्म सुनइये॥
स्त्रावग कौन बात बिधि पालैं। सोई कहौ कौन बिधि चालैं॥
धर्मा अष्टक बाँचि सुनाई। तुलसी सुनियौ चित्त लगाई॥

अर्थ–तुम, व्रत, संयम, जप, तप आदि को बतलाते हो और तुलसी साहब कहते हैं, उन्हें भिन्न-भिन्न ढंग से निरुपित करते हो। किस-किस प्रचलन की विधियों की बातें कहें–फिर उसके बाद स्त्रावणों की विधि से धर्म को सुनाते हो॥

स्त्रावक किस विधि से अपनी बातें सिद्ध करते हैं, वही बताओ, कि वे किस प्रकार का आचरण करते हैं। धर्मा ने (इस बात को सुनकर) जैनाष्टक बाँच कर सुनाया और तुलसी साहब ने उसे चित्त लगाकर सुना॥

॥ उत्तर धर्मा। अष्टक १॥

जल नीर निरमल मिष्ट। हिमकर बासनं ॥ १ ॥
धार ते भंडार भौ के। चरन श्रीपति चर्चनं॥ २ ॥
सोइ पूजि पावै सेव सुखदाता। दुरियत कर्म के खंडनं॥ ३ ॥
श्रीपारसनाथ जप सूरज जैनराई। मूल नायक बंदनं॥ ४ ॥
तुम चंद्र बदनी। चंदा पूरी परमेसुरा॥ ५ ॥

अर्थ—चन्द्रमा की किरणों से बासित जल निर्मल एवं मीठा है श्रीपति द्वारा पूजित आपके चरण इस भव सागर के लिए भंडार की धारा हैं। उसकी पूजा तथा सेवा करके सेवक सुख प्राप्त करते हैं और उनके कर्म जनित पाप नष्ट हो जाते हैं। जैन मुनियों के सूर्य की पारसनाथ जी जप सृष्टि रचना कर्त्ता के नायक की वन्दना है। हे आत्मा? तुम चन्द्रबदनी हो—और परमेश्वर की पुरी चन्द्रा पुरी है? श्रेष्ठ ऋषभ देवता कैलास गिरि पर निवास करते हैं और मैं उनके चरण कमलों को हृदय में धारण करता हूँ।॥ १ ॥

॥ अष्टक २ ॥

कुमकुम जो मंजन सगर केसर। मलयागिरि घिसि चंदनं॥ १ ॥
अकल दुक्ख निरवार भौ के। चरन श्रीपति चर्चनं॥ २ ॥
सोइ पूजि पावै सेव सुखदाता। दुरियत कर्म के खंडनं॥ ३ ॥
श्रीपारसनाथ जप सूरज जैनराई। मूल नायक बंदनं ॥ ४ ॥

अर्थ—केशर और कुमकुम से पूरी तरह से मंजन करके और मलयगिरि के चंदन को घिस करके इस भवसागर के अकल्पनीय (अकाल) कष्टों को समाप्त करने वाला श्रीपति जी के चरणों का यह चर्चित रूप है। उस सुख देने वाले श्री पारसनाथ जी को पूजा एवं सेवा करके कर्म के पापों का खण्डन होता है। श्री पारसनाथ जी जैनियों में परमश्रेष्ठ हैं और उन श्री पारसनाथ का जाप करो—इन जैनधर्म के मूलनायक का शरीर सूर्य की भाँति (प्रकाश वान) है।

॥ अष्टक ३ ॥

बेल फूल चमेलि चंपा। काम कामोदिनि केतकी॥ १ ॥
तास परमल बास ऊधौ। अगर आगर सेवती॥ २ ॥
सोइ पूजि पावै सेव सुखदाता। दुरियत कर्म के खंडनं॥ ३ ॥
श्रीपारसनाथ जप सूरज जैनराई। मूल नायक बंदनं॥ ४ ॥

अर्थ—वेला, चमेली, चंपा, कुमोदनी, केतकी, इनके सुवास से नितान्त निर्मल परागयुक्त-अगरबत्तियों के ढेर से सुवासित उन्हीं चरणों की सेवा करके सुख मिलता है और दूषित कर्मफल खंडित होते हैं। श्री पारसनाथ जी का जप करो, जैनधर्म के इन मूलनायक का शरीर सूर्य की भाँति चमक रहा है।

॥ अष्टक ४ ॥

खरि खरेला दाख खिरनी। आम स्रीफल लाइया॥ १ ॥
नारियल नौरंग केला। प्रभुजी के चरन चढ़ाइया॥ २ ॥
मोरी इतनी बिनती दयाल कौ। प्रभुनाथ के गुन गाइया॥ ३ ॥

तुम चंद्र-बदनी। चंदा पुरी परमेसुरा ॥ ४ ॥
कैलास गिरि पर ऋषब जनवर। चरन कँवल हृदे धरा ॥ ५ ॥

अर्थ-खरि, खरेला फल, अंगूर, खिरनी, आम, श्रीफल, नारियल, नारंगी, केला फलों को प्रभु जी के चरणों में चढ़ाया ॥ हे दयालु! मेरी इतनी बिनती है और प्रभु का गुणानुवाद कर रहा हूँ। तुम्हारा मुख चंद्रमा जैसा है और चन्द्रपुर में परमेश्वर निवास करते हैं। श्रेष्ठ मानव ऋषभदेव कैलास गिरि पर हैं और मैंने उनके चरण कमलों पर अपना हृदय रख रखा है ॥ १-५ ॥

॥ चौपाई ॥

धर्मा पूजा बिधी बताई। सुनि तुलसी संजम समझाई ॥
स्रावग भिन्न भिन्न जेहि जाती। स्रावग धर्म जो भये सँगाती ॥
तिनकी बात कहौं समझाई। जेहि जेहि बिधि आदि चलि आई ॥
प्रातहिं उठि अस्नानहिं जावै। पानी छानि आपु फिर न्हावै ॥
पूजा बिधी बिधान करावै। पूजा करि फिर आरति लावै ॥
मंदिर बैठि करै पुनि जापा। माला सूत्र लेय सोइ साफा ॥
दरसन करि पुनि घर को आवै। हरी वस्तु कछु नाहीं खावै ॥
दुइज पंचमी पालै सोई। आठैं ग्यारस यह बिधि जोई ॥
चौदसि पाँच बरत नित पालै। स्रावग धर्म येही बिधि चालै ॥
ता कर होय स्वर्ग में बासा। देव लोक पुनि करै निवासा ॥
और उपास बिधी बतलाऊँ। स्रावग धर्म कर्म गति गाऊँ ॥
मासिक मन पखवारा कीन्हा। मुख धोवन मुख पानी लीन्हा ॥
अठवाई तेला जिन जाना। और अनेक उपास बिधाना ॥
बेला बिधि और करै घनेरा। साधै कर्म कटै भौ बेरा ॥
ऐसा धर्म कर्म जोइ जाना। सो प्रानी पहुँचे निरबाना ॥
आदि नाथ केवलि अस भाखी। सास्त्र पुरान कही सब साखी ॥
और जो सुनौ आदि की बानी। जो केवली मुख कही बखानी ॥
आदि पुरान प्रथम यों भाखा। जुगल्या धर्म बखानी साखा ॥
एक पुरुष इक नारी हाई। आवत छींक मुए पुनि दोई ॥
नासिका माहिं छींक होइ सोई। कन्या पुत्र भये पुनि दोई ॥
ऐसे कछु दिवस गये बीती। चौंधा कुलकर की यह रीति ॥
चौधा माहिं एक नभ जानी। मुरा देबी ताही की रानी ॥
तिनके ऋषभ देव पुनि भयेऊ। काटि कर्म तीर्थंकर कहेऊ ॥
तिन पुनि जगत भाव बिधि थापा। कह्यो नौकार मन्त्र पुनि जापा ॥
ता की साखि सुनौ चित लाई। जाप बिधी मैं कहौं सुनाई ॥

अर्थ–धर्मा जैनी से पूजा विधि बतलाई है जिसे सुनकर तुलसी ने संयमपूर्वक समझाया। स्रावक धर्म के जो साथी बने, वे अपनी भिन्न-भिन्न जातियों के हैं। उनकी बात मैं समझा कर कह रहा हूँ–उनका जो-जो विधान आदि काल से चला आ रहा है, वह ऐसा है।

प्रातःकाल उठकर स्नान के निमित्त जाए और पानी छानकर (जिससे जीव हत्या न हो) पुनः वह स्नान करे। विधिविधान पूर्वक वह पूजा करता है–पूजा करने के बाद फिर आरती करता है। मंदिर में बैठकर, उसके बाद जाप करता है–और फिर अपने स्वच्छ मालासूत्र को ग्रहण करता है। तीर्थंकर की मूर्तियों का दर्शन करके वह फिर घर को लौटता है, और हरी वस्तु को वह नहीं खाता।

द्वितीय तथा पंचमी को वह इसी प्रकार पूजा करता है। अष्टमी तथा एकादशी को भी इसी विधि की पूजा करेगा। चर्तुदशी और पंचमी को व्रत का अनुपालन करता है। यह स्रावग धर्म इसी प्रकार चलता है॥

इस प्रकार के व्रतानुसरण करने वाले का स्वर्ग में निवास होता है, और वह पुनः देवलोक में निवास करता है। मैं उपवास (व्रत) की अन्य विधियों को बतला रहा हूँ, साथ ही, स्रावक के धर्म, कर्म का गान कर रहा हूँ। उपवास के अन्य भी विधान हैं–मन से महीने भर, पन्द्रह दिनों तक–केवल मुख धोने के लिए ही इस व्रत में मुख में जल मात्र ग्रहण करते हैं और आठ दिनों के लिए तैल का व्रत करे। साथ ही, अन्य वेलाविधियों के (समयानुसार) अन्य अत्यधिक व्रत हैं, कर्मों को साधने से भवसागर का बन्धन कट जाता है।

ऐसा धर्म-कर्म जो जानता है, वही प्राणी निर्वाण प्राप्त कर सकता है। आदिनाथ ने केवल ऐसा कहा है–और शास्त्र तथा पुराण उसके साक्षी हैं।

इसके अतिरिक्त आदि नाथ की अन्य जो वाणी सुनी जाती है– वह कैवल्य आकांक्षी के मुख से ही सुनी जाती है, अन्य से नहीं। आदि पुराण ने सर्वप्रथम यों कहा है–जिसे जैनशाखा में युगल्या धर्म के नाम से पुकारा जाता है।

एक पुरुष था, एक नारी थी और छींक आते ही दोनों मृत हो उठे–उनकी नासिका में वह छींक सो गई और उनसे, पुत्र तथा कन्या उत्पन्न हुए। ऐसे कुछ बीत गए और चौदह कुलंकरों की यही रीति रही है–चौदहों में एक आकाश की रानी थी–उनकी देवी का नाम 'मुरा देवी' था। उनके पुत्र ऋषभ देव हुए और उन्होंने समस्त कर्म बन्धनों को काट डाला और सभी ने उन्हें तीर्थंकर कहा॥

उन्होंने इस संसार के समाज की स्थापना अपनी भावना तथा अपनी विधि के अनुसार किया। उन्होंने नौकार मंत्र कहकर उसका जाप किया। उनके साक्ष्य को चित्त लगाकर ध्यान से सुनो-उनकी जाप विधि मैं सुनाकर बताता हूँ॥

॥ सोरठा ॥

सेठ सुदरसन एक, सूली चोर मारग दियौ।
मन्त्र सुनायौ कान, तुरत चोर स्वर्गैं गयौ॥

अर्थ–एक सेठ सुदर्शन था, दूसरा सूली नामक चोर था, दोनों को उन्होंने मार्ग दिखाया। उनके कान में अपना मंत्र सुनाया और उसे सुनते ही वह चोर भी स्वर्ग चला गया।

॥ चौपाई ॥

सूली चोर एक जो दीना। सेठि सुदरसन जाप यकीना॥
अरिहंत सिद्ध दोइ नाम सुनावा। पूरा मन्त्र होन नहिं पावा॥
स्वर्ग बिमान तुरत ही आवा। चोर प्रान सुरलोक पठावा॥

अर्थ–एक सूली नामक चोर था, जिसे सेठ सुदर्शन ने मंत्र दिया। अरिहंत उनका मंत्र भी पूरा नहीं होने पाया कि ये तुरन्त ही स्वर्ग से विमान आया और चोर के प्राण को देव लोक भेज दिया।

।। प्रश्न तुलसी साहिब ।।

।। दोहा ।।

तुलसी पूछै बात, धर्मा यह बिधि कस भई।
जैन बिधी कही झार, सो बृतंत पूछौं तुही ।।

अर्थ–तुलसी ने धर्मा से यह बात जाननी चाही यह यह घटना कैसे घटी। जैन विधि क्या कोई प्रकाश है–यह वृत्तान्त मैं तुमसे पूछता हूँ।

।। चौपाई ।।

तुलसी कहै सुनौ तुम भाई। धर्म आपना भाखि सुनाई ।।
ता में बहम एक मोहिं आवो। ताकी बिधि भिनि भाखि सुनावो ।।
सेठ सुदरसन मन्त्र सुनावा। सूली चोर स्वर्ग कस पावा ।।
अब तुम को बरतंत सुनाऊँ। तुम्हरे सास्तर से दरसाऊँ ।।
ये पुरान में देखौ जाई। ता की बात कहौं समझाई ।।
सेठ सुदरसन जाप सुनावा। ता का मर्म भेद मोहिं आवा ।।
तुम पुरान की भाखौ कहनी। सेठ एक रहे स्रावग जैनी ।।
ता की कथा कहौं बिधि नाना। सो बृतंत बिधि सुनियौ काना ।।
उन इक नेम जाप कर लीना। दीपक तेल रहै जाप यकीना ।।
दीपक तेल करै सोइ जापा। खुटै तेल तब सूझै आपा ।।
ऐसी कठिन ठान तेहि ठानी। जाप इष्ट दूजा नहिं मानी ।।
ता के घर इक नार सयानी। उन का इष्ट नेम सोइ जानी ।।
वा के पुत्र एक रहे भाई। ता कर ब्याह कीन्ह बहू आई ।।
सो अजान कछु मरम न जाना। तेल दिया तेहि देखि बिहाना ।।
बैठा ससुर जाप तेहि देखा। तेल खुटै तब डारै पेखा ।।
डारत तेल राति गइ बीती। वो अजान कछु जानै न रीती ।।

अर्थ–तुलसी साहब ने धर्मा से कहा, हे भाई! तुम अपना यह धर्म सुनाओ।। इस प्रकरण में मुझे एक भ्रम हो गया है–और उसके विषय में मैं तुम्हें कह कर सुना रहा हूँ।।

सेठ सुदर्शन ने मंत्र सुनाया और सूली चोर को स्वर्ग कैसे मिला। अब मैं तुमको वृत्तान्त बताता हूँ और तुम्हारे शास्त्र का वर्णन करके मैं बताता हूँ।।

इस बात को जैन पुराण में जाकर देखो, उनकी बात को मैं समझा कर कहता हूँ। सेठ सुदर्शन ने मंत्र जाप करके सुनाया था और उसका मर्म एवं भेद मुझे समझ में पहले से ही आ चुका है।

तुम जैन पुराण की बात कहते हो–एक जैन मत का स्रावग सेठ था। उसकी कथा मैं विस्तार से कहकर सुनाता हूँ और उसकी वृत्तान्त विधि को कानों से सुनो।।

उन्होंने जाप का एक नियम बना रखा था–जब तक दीपक में तेल रहेगा, जाप चलता रहेगा। दीपक का तेल उस जप से जुड़ा था और तेल के समाप्त होने से आत्म तत्त्व की प्रतीति होती थी। उन्होंने ऐसी कठिन तपस्या विधि शुरू की थी, और अपने जाप में अन्य किसी इष्ट को नहीं मानते थे।

उनके एक पुत्र और एक भाई थे। पुत्र का व्याह किया और बहू आई। वह बहू नासमझ थी– उसे उसने दीपक का तेल घटते हुए देखा। जाप में बैठे हुए ससुर को उसने देखा और तेल जब घटता था तो उसमें (तेल की कमी देखकर) तेल डाल देती थी। तेल डालते -डालते रात बीत गई–वह अज्ञानी बहू इस तप की रीति के विषय में कुछ भी नहीं जानती थी॥

॥ चौपाई ॥

प्यास माहिं उन प्रान गँवाया। मेंढक जनम आइ जल पाया॥
सासु रही बहू के ढिंग सोई। उन जानी बहू जागत होई॥
यह बरतंत सत्त है भाई। सो पुरान में देखौ जाई॥
ऐसी टेक जाप तिन कीन्हा। जनम जाइ मेंढक कौ लीन्हा॥
सेठ सुदरसन मन्त्र सुनावा। कैसे चोर स्वर्ग पहुँचावा॥
ऐसी जाप टेक जिन कीन्हा। अंत जनम मेंढक कौ लीन्हा॥
सो तुम हमको भेद बतावो। कैसे भई बहुरि समझावो॥
कहै तुलसी धर्मा सुनु बाता। आगे कहौं सुनौ बिख्याता॥
तुम्हरा सास्तर कहै बखानी। ये पुरान में देखौ बानी॥
जबै सेठानी पानी जाई। मेंढक गगरी बैठा आई॥
मेंडक अपने घर को लाई। पानी पनैड़े में लै जाई॥
आदिहि नाथ समोसन भयऊ। सैन कराय दरस को गयऊ॥
मेंढक हाथी पाँव कुचाना। भया देवता कहैं पुराना॥
देव भया कहौ कहँ कौ गइया। केते दिवस देव तन रहिया॥
सेठ जीव पुनि कहाँ समाना। या कौ आगे करौ बखाना॥

अर्थ–सेठ ने प्यास से व्याकुल होकर साधना के बीच ही प्राण गँवा दिया और मरने के बाद जल में जाकर मेढ़क का जन्म प्राप्त किया। सेठ सुदर्शन ने मंत्र सुनाया, और किस प्रकार चोर को स्वर्ग पहुँचाया। ऐसे जप पर जिस सुदर्शन सेठ ने हठ किया था– जिससे अन्त में मेढक का जन्म प्राप्त किया (यह सब क्या था) इसका भेद तुम हमको बताओ और कैसे उनकी मुक्ति हुई, इसे पुनः समझाओ।

तुलसी साहब कहते हैं कि हे धर्मा! मेरी बात सुनो, आगे मैं इस विख्यात (प्रसिद्ध) कथा को पुनः कहता हूँ। तुम्हारा शास्त्र ही वर्णन करता है कि और इसे वर्णन को अपने जैन पुराण जाकर देखो।

जब सेठानी तालाब में जल के लिए जाती थीं–मेढक उनकी गगरी (छोटे मटके) पर आकर बैठ जाता था। वे उस मेढ़क को अपने घर में लाई और थोड़े से पानी में उसे रख दिया। आदि नाथ को इसका आभास हुआ तब सेना लेकर उनके दर्शन को चले। वह मेढ़क हाथी के पाँव से कुचल उठा और उसके बाद वह देवता बना, ऐसा पुराण कहते हैं।

बताओ, देवता होकर वह कहाँ गया तथा कितने दिनों तक वह देव शरीर में रहा–सेठ का जीव पुनः कहाँ समा गया, तुम इसके आगे का वर्णन करो॥

॥ सोरठा ॥

कहै तुलसी धर्मा सुनौ, लखि पुरान बिख्यान।
देव भोगि मृत लोक में, आये उन के प्रान॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे धर्मा! सुनो, यह पुराणों में विख्यात है कि देवलोक को भोग करके उनके प्राण पुनः मृतलोक में आए।

॥ चौपाई ॥

देव माल पुनि जाय सुखाई। चारौं गति जिव जाइ समाई॥
पुनि पुनि जीव कर्म बस रहिया। जाप प्रताप यही बिधि भइया॥
आगे या को कहौ बखाना। सेठ जीव पुनि कहाँ समाना॥
यह पुरान तुम्हरी बिधि गावै। येही मुक्ति भाव दरसावै॥
कहौं धर्मा यह साँची बाता। तुम्हरे मत का कहा विख्याता॥
ऐसे स्वर्ग-मुक्ति को भाखै। ये तौ कर्म भोग बस राखै॥
पुनि पुनि आवै पुनि पुनि जाई। बार बार भौ भटका खाई॥
वा घर को है पंथ नियारा। खोजि जीव भौ उतरै पारा॥
जो कोइ जिवत आदि घर पावै। सतगुरु पलक माहिं दरसावै॥
हिया खुलै नैनन से देखै। तुलसी सोई बात परेखै॥
स्वर्ग नर्क तुम भाखौ भाई। यह तौ झूठी मन नहिं आई॥
वा घर जीव बतावै चैना। ता की तुलसी मानै बैना॥
कर्म पलक में तोड़ि बिनासै। ऐसे सतगुरु का मत भासै॥
धर्मा कहौ सेठ की भाई। सो जिव कहौ कहाँ भरमाई॥
जप नौकार बिधी अस भाखी। या से परे काल की फाँसी॥

अर्थ–जीव देवमाला में जाकर सूख जाता है, और वह अपनी चारों गति में समाविष्ट हो उठता है। फिर भी, जीव पुनः पुनः कर्मवश में नियंत्रित रहता है। जाप का प्रताप इसी प्रकार (धर्म ग्रंथों में) वर्णित है। तुम आगे इसका वर्णन करो कि इस घटना के बाद सेठ की जीवात्मा कहाँ समा गई। इस विधि का वर्णन तुम्हारा ही जैन पुराण करता है और इसी प्रकार मुक्ति का तत्त्व समझाता है।

हे धर्मा! यह सच बात है, इसे बतलाओ तुम्हारे कटेंगे तो–यह मुक्ति मनुष्य को कर्म एवं भोग के वस में रखती है फिर कैसी मुक्ति हुई?

पुनः पुनः जीव जन्म लेता है, और पुनः पुनः मृत्यु प्राप्त करता है और बार-बार इस भवसागर में धक्के खाता रहता है। उस मुक्ति लोग का मार्ग विलक्षण है और उसकी खोज करके तथा उस पर चलकर जीव भवसागर प्राप्त कर लेता है जो कोई जीवित रहते ही उस आदि तत्त्व का स्थल प्राप्त कर लेता है उसे क्षण मात्र में ही सत्गुरु (परमात्मा) दिखाई पड़ जाते हैं।. साधक का हृदय खुल जाता है और वह उसे अपने नेत्रों से ही देखता है। तुम स्वर्ग-नरक का वर्णन कर रहे हो, यह तो एक झूठ है–जो मन की प्रतीति का विषय नहीं है॥

(जिस घर के विषय में मैं बता रहा हूँ) उस घर में पहुँच कर जीव अपनी शान्ति का वर्णन करता है–तुलसी साहब स्वयं उसकी बातें स्वीकार करते हैं। सत्गुरु का यह मत है कि कर्म पल भर में संयम को तोड़कर विनष्ट कर देता है। हे भाई कर्मा! सेठ सुदर्शन की बताओ, वह जीव कहो, कहाँ भ्रमित है। नौकार जप ने अपनी साधना विधियों का इस प्रकार वर्णन किया है–उसके आगे तो काल की फाँसी है – मुक्ति कहाँ है?

॥ दोहा ॥

धर्मा यह बिधि यों भई, मन में लेउ बिचार।
स्वर्ग नर्क और मुक्ति कहि, बाँधे कर्म करार॥ १ ॥
आगे आदि पुरान की, सुनौ साखि बिस्तार।
आदि नाथ केवलि कह्यो, जुगल्या धर्म बिचार॥ २ ॥
तुलसी कहै धर्मा सुनौ, जुगल्या धर्म बिचार।
कहौ उनको किनने कियो, सो विधि कहौं सम्हार॥ ३ ॥

अर्थ–हे धर्मा! यह दशा इसलिए हुई और तुम भी इस तथ्य पर मन में विचार करके समझो कि कर्म ने शर्त लगा दी है कि स्वर्ग, नरक तथा मुक्ति जैसी बातें हम क्यों कहें–अर्थात् ये सभी कर्म के वश में हैं॥ १ ॥॥

आगे आदि पुराण के साक्ष्य तथा उसके अन्य प्रकरणों को सुनो आदिनाथ ने केवल युगलयाधर्म पर ही विचार करके अपना सिद्धान्त बताया है॥ २ ॥

तुलसी साहब कहते हैं कि हे धर्मा! सुनो 'युगल्या धर्म' क्या है? बताओ, उसको किसने स्थापित किया और स्पष्टतापूर्वक उसके विषय में बताओ॥ ३ ॥

॥ चौपाई ॥

प्रथम जुगल्या बिधि कहि भाखौ। आदि पुरान बतावै साखो॥

अर्थ–प्रथमतः मैं युगल्या विधि को कहकर वर्णन करता हूँ–आदि पुराण इसे बताता है, वही इसका साक्ष्य है।

॥ सोरठा ॥

तुलसी कहै पुकार, कहौ जुगल्या कस भयौ।
उन तन कौन सँवार, कुलकर नभ कस कस कहै॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैं पुकार-पुकार कर बताता हूँ कि जुगल्या सिद्धान्त कैसे बना, उनके शरीर के सजाएँ क्या हैं? और इन कूलंकरों के आकाश किन-किन रूपों के हैं?

॥ उत्तर धर्मा ॥

॥ चौपाई ॥

सुनियौ तुलसीदास गुसाँई। कहि पुरान सोइ सखि सुनाई॥
इनका करता बिधी न भाई। ऐसे सास्तर साखि बताई॥
अंडा सृष्टी आदि अनादा। फूटै न बनै येही बिधि साधा॥

अर्थ–हे गोस्वामी तुलसीदास जी सुनें, पुराणों ने जो कुछ कहा है, मैं उसकी साक्षी कर सुनाता हूँ। इन सबका कर्त्ताविधि नहीं है–ऐसा शास्त्रों का साक्ष्य बताता है। आदि-अनादि काल में सृष्टि अंडाकार थी। और इसे इस प्रकार साधकर बनाया गया था यह फूट नहीं सकता था और दूसरा बनाये से बन सकता था।

॥ प्रश्न तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

बिन करता कौने बिधि भयेऊ। जुगल्या जन्म नाम कस कहेऊ॥
याकी भिनि भिनि चीन्ह चिन्हावौ। करता बिन कस कस बतलावौ॥

अर्थ–बिना कर्त्ता के यह अंडा किस प्रकार बना। जुगल्या नाम क्यों कहक पुकारा गया। इसकी भिन्न-भिन्न पहचान बताओ–यह कर्त्ता बिना कैसे बना, इसे समझ कर बताओ॥

॥ उत्तर धर्म ॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी सुनौ समझ यह जाना। जस जस आदि पुरान बखाना॥
जुगल्या परे धर्म नहिं गावा। जो बूझा सो बरनि सुनावा॥

अर्थ–तुलसी साहब! सुनें, जैसे-जैसे मैंने इसे समझकर जाना है, और जैसे-जैसे इसके विषय में आदि पुराण ने बताया है। युगल्या के बाहर कोई स्थित नहीं है–और इसका वर्णन वही कर सकता है, जो इसे समझता है।

जुगल्या और जगत की उत्पत्ति कैसे हुई

तुलसी साहिब का वाक्य कि जैन मत के अनुसार उत्पत्ति जुगल्या और जगत की कैसे हुई?

॥ चौपाई ॥

सुनु धर्मा उत्पति बतलाऊँ। सार सवैया में समझाऊँ॥
जस जस भया जैन कौ लेखा। भिनि भाखौं भेद बिबेका॥
धर्मा सुनौ कान दे भाई। जैन धर्म की आदि बताई॥

अर्थ–हे धर्मा! सुनो, जैन मत के अनुसार मैं उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ। उनका 'सारतत्त्व' मैं सवैया छन्द में बता रहा हूँ। जैसे-जैसे जैन धर्म का विकास हुआ–उनके भिन्न-भिन्न भेदों का विवेकानुसार मैं वर्णन कर रहा हूँ। इसे धर्मा! ध्यान लगाकर सुनो, जैन धर्म की ये बातें आदि पुराण में बताई गई हैं॥

॥ सवैया–नभ रीति जैन मत ॥

जैन को जान कहौं मत छान, सो आदि बखान निरबान की बानी।
आदि पुरान कहौं जो प्रमान, सो ताके बयान में जैन की जानी॥
जुगल्या धर्म जो प्रथम कही, सोइ छींकत प्रान तजे नर नारी।
सोइ छींक से होइ कन्यासुत दोइ, सो ऐसी कहै बिधि बात बिचारी॥
अब पीछे केहि की साखि देऊँ, भये चौधा कुलंकर तेहि कहाये।
धेनु जो काम कही कल्प बृच्छ, सो ताहि समय में रहे अस गाये॥
ताहि के माहिं रहे नभ रार , सो साखि पुरान में भाखि सुनाये।
चौधा में एक रहे नभ नेक, सो रानी मुरादेबी नाम धराये॥
ता के भये सुत नाम ऋषभ, सो जब से पाँच धनुष की काया।
ता ने कियो तपध्यान निरबान, सोजाना जोई जा में मुक्ति को आया।
आगे का भेद न जाने निखेद, सो खेद भये पुनि काल ने खाया।
मुक्ति भये जग जीव रहे, पुनि आतम अंड को खण्ड बताया॥
सो यहि बिधि आदि पुरान सही, सो कही जग जैन मती अस गाया।

आँवले प्रमान जो अंडलखा, सो भखा तीनो लोक के जीव की जाती।
यहि बिधि आदि पुरान कहै, सो देखि लई बिधि बेद की बाती।
केवलि ज्ञान कहौं जो प्रमान, सो गुन गोंकार से सास्त्र बनाये॥
गंध्रपसेन से बैन सुने, सो गुने मन माहिं जो भाखि सुनाये।
वोही पुरान करै जो प्रमान, सो देव ऋषभ न थापन ठानी॥
मन्त्र नौकार दियौ येहि कार, सो अरिहंत सिद्ध की कीन्ह बखानी॥
अरियान नाउँ उज्झानं भाउ, सो सरबइ साध सो लौय लगाये।
पाँचोइ पद पैंतीसोइ अच्छर, सो सब जैन मती गदि गाये॥
जोइ निरबान को काल बखान, सो केवली खाइ चौबीस नसाये।
वे जो दयाल बिधी बिधि भिन्न, सो चिन्ह चौबीसोइं नेक न पाये॥
ये बिधि बेद कहै तुलसी, तत आतम जोग तीर्थंकर गाये।
आगे का अंत कहैं सब संत, सो पंथ मते मत नेक न पाये॥

अर्थ–जैन के ज्ञान के विषय में पूरी तरह से मत को निचोड़ करके, वह जो निर्वाण की आदिवाणी कही गई है, मैं उसका वर्णन करता हूँ। जैनमत के आदि पुराण में जो प्रमाण कहे गए हैं, उनके वर्णन से ही मैंने जैन मत को जाना है।) सर्वप्रथम जिस जुगल्या धर्म का वर्णन किया गया है, ठीक उसी के अनुसार–छींक आते ही 'स्त्री-पुरुष' दोनों ने प्राण त्याग दिये। उस छींक से एक ''कन्या एवं पुत्र'' दोनों एक साथ हुए–इस प्रकार की बात बहुत विचारपूर्वक कही गयी है॥

अब इसके बाद मैं किसकी साक्षी दूँ, उसके बाद चौदह कुलंकर कहे गए। उस समय में कामधेनु और कल्पवृक्ष ये दो थे, ऐसा गाया गया है। उसी के मध्य 'आकाश' था, ऐसा साक्ष्य पुराणों में कहकर सुनाया गया। इन चौदह कुलंकरों में एक आकाश के नाम के थे और उनका नाम 'रानी मुरा देवी' ने रखा और वे उनके पति बने।।

उनके पुत्र ऋषभदेव नाम से हुए और उनकी काया पाँच धनुष के बराबर थी। उन्होंने तप, ध्यान करते हुए निर्वाण प्राप्त किया और उन्होंने सबको प्राप्त होने वाली मुक्ति को समझा। उसके बाद के रहस्य का ज्ञान नहीं था और इस अज्ञान का कष्ट उन्हें था और पुनः काल उन्हें खा गया। मुक्त होकर भी वे संसार में जीवों की भाँति रहे और उन्होंने इस आत्मामुक्त पिंड को ब्रह्मांड का एक अंश कहा॥

इस प्रकार आदि पुराण में यह बात कही गई है, वह ठीक है–इस संसार में जैन मतवालों ने ऐसा कहा है। उन्होंने अंड लोक (ब्रह्मांड) को हस्तामलक की भाँति बताया है और संसार के जीव की विविध जातियों का वर्णन किया। इस प्रकार, आदि पुराण ने जो कुछ भी बताया है, उन रहस्य की बातों को हम लोगों ने समझ लिया है। कैवल्य प्राप्त सिद्धजनों ने जिस ज्ञान के विषय में बताया है, वही प्रमाण है–उसके ही 'गोंकार' गुण से शास्त्र बनाये गए॥

गंधर्वसेन से बात सुनकर और उन्होंने जो कुछ कहा, उसे जैन मन-ही-मन विचार करें। पुराण वही है, जो प्रमाण का कार्य करे–इसलिए ऋषभदेव ने पुराण की स्थापना निश्चित की। इसीलिए उन्होंने नौकार मंत्र दिए और अरिहंत सिद्धों का वर्णन किया। उन्होंने इस प्रकार अरियान नाम और उज्झान भाव में समस्त जैनियों में ध्यान को लगाने का उपक्रम किया॥

इस प्रकार, पाँचों पद एवं पैंतीसों अक्षर, इनका जैन मतावलम्बियों ने विस्तार से गान किया॥

यहाँ निर्वाण का वर्णन-काल का वर्णन है–और उस काल ने केवली (कैवल्य ज्ञान से युक्त) को खाकर चौबीसों तीर्थंकर एवं सिद्धों को नष्ट कर दिया। वे परमात्मा जो दयालु एवं विधि के विधान से भिन्न है–इनको ये चौबीसों लेशमात्र भी पहचान नहीं पाये। तुलसी साहब कहते हैं कि जिस आत्म-योग

का इन तीर्थंकरों ने वर्णन किया है–उसके रहस्यों का मैं वर्णन करता हूँ॥ आगे उसके अन्त का सारे सन्त जन वर्णन करते हैं किन्तु मूल ज्ञान पंथ द्वारा स्वीकृत ज्ञानमार्ग को कोई नहीं प्राप्त कर सका है॥

॥ सवैया २ ॥

कोई स्त्रावग होइ चरचा मुख सोइ, तौ भाखौ बिधी जाकौ भेद बतावै।
तम्हरे मत ज्ञान का व्यान कहौं, जो पुरान की पूछौं सो भाखि सुनावै॥
जुगल्या जोड़ धर्म प्रथम्म कहै, तन छूटि मरै पुनि कहाँ समावै।
नाक की नीक से छींक कही, सुत कन्या सरीर को कौन बनावै॥
जुगल्या जोड़ नाम कह्यौ केहि काम, सोकहि की जुबान से नाम धरावै।
तब केवलि ज्ञान नहीं भगवान, न भाखीं पुरान नाम कस पावै॥
औरहु एक कहौ तुम नेक, सो देइ कुलकर को कौन बनावा।
तिथि थापन नहिं बाम्हन जाइ, न पुरान सुनाइ तौ कुल कस पावा॥
कहै नभराइ मुरादेबी ताहि, सो ऋषभ बनाइ कहाँ को कहावा।
कर्महि काटि ऋषभ जो गये, जो निरबान ठिकान कहौ केहि ठाँवा॥
आँवले प्रमान जो अंड कह्यौ, सो हथेली के बीच में कैसे दिखावा।
केवलि कार कहौ गोंकार, सो सीस के पार कौने बिधि आवा॥
टाटक ध्यान कहा जो बखान, सो कहौ मन को केहि राह बढ़ावा।
या की बिधी बिधि बात कहै सुन स्त्रावग नाम जो ताकौ कहावा।
पाहन पूजे से सूझा नहीं, हिये नैन से जानि निहारि कै पावै।
नौकार की जाप करै नित आप, सो ताप तीनों तन साफ सतावै॥
मुए करै आस स्वर्ग की बास, परै जम फाँस को भेद न पावै।
तुलसी तत माहिं निहारि पकै, सो लखै बिधि आतम माहिं समावै॥

अर्थ–यदि वस्तुतः कोई स्त्रावग है तो उसके मुख से उस मूल तत्त्व की चर्चा हो, वह उसके स्वरूप का वर्णन करे और उसके भेदों का वर्णन करे। मैं तुम्हारे सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान का वर्णन करूँ तो जो तुम पुराण की बातें पूछ रहे हो, उसी को मैं बताऊँ। 'जुगल्या' जिसे तुम्हारे जैन मत में प्रथम धर्म कहा गया है, जब उसका शरीर छूट जाता है तो वह कहाँ विलीन होता है। एक नाक से दूसरे नाक की छींक कहते हो उससे जो पुत्र तथा कन्या बने, उसे कौन बनाता है॥

'जुगल्या' जैसा नाम, बताओ किस काम का है, वह किसकी वाणी से नाम रखा गया। उस केवली के लिए ज्ञान ही एकमात्र तत्त्व है, भगवान नहीं, न पुराणों ने की उसका वर्णन किया है, तब वह नाम का गान क्यों करता रहता है। तुमने एक बात और कही, वह कुलंकर की बात है–इन कुलंकर देवताओं की रचना किसने की है। ब्राह्मण ने जाकर उनकी स्थापना तिथियाँ नहीं तय की, न पुराण ही सुनाया–तो इन्होंने कुल परम्परा कैसे प्राप्त की॥

यह जो कहते है–कि नभराई और मुरादेवी ने मिलकर ऋषभदेव की रचना की–वे कहाँ के ऋषभ रहे। जिन कर्म बन्धों को काटकर जो ऋषभ हुए उनके निर्वाण के कौन-स्थल थे, किसने बताया है। इस ब्रह्मांड को उन्होंने हस्तामलक जैसा बताया है–उसे अपनी हथेली के बीच कैसे दिखाया है। करणीय केवल गोंकार को बताते हो, वह इस सिर में चिन्तन के पार किस प्रकार आया है॥

तुम जिसे तुरन्त ध्यान (टाटक ध्यान) कहते हो–बताओ मन को किस मार्ग पर जाने के लिए प्रेरित करना है। तुम उसकी उपासना विधि की बात कहते हो–जिसका नाम स्त्रावग कहा गया है। पत्थर पूजने से वह परमात्मा सूझता नहीं–उसे कभी हृदय के नेत्रों द्वारा तुम देख नहीं पाये। स्वयं तुम अपने आप नौकार की जाप करते रहते हो–और देखो, तुम्हारे मन को भौतिक ताप निरन्तर सताते रहते हैं। मृत्यु के बाद तुम स्वर्ग में निवास की आशा करते हो और फिर यमराज के फंदे में पड़कर उस परमात्मा के रहस्य को समझ नहीं पाते। तुलसी साहब कहते हैं उस मूल तत्त्व चिन्तन के हृदय से देखते हुए अपनी साधना को परिपक्व करो और जो उसे देख लेता है–वह आत्मतत्त्व में विलीन हो उठता है॥

॥ सवैया ३ ॥

तुलसी जो बखान कहै सुनि कान, सो भूले पुरान में भेद न पायौ।
पहिले भयौ नभ नाम अकास, सो बास कियौ तन आस में आयौ॥
सरीर में जोइ मुराइ रह्यौ, मुरादबी ता कौ नाम बतायौ।
जो ये मन जब ऋषब भयौ, सो रह्यो रस धाम ऋषब्ब कहायौ॥
आगे सुनौ सोइ बात गुनौ, जुगल्या मन इच्छा से द्वैत में आयौ।
छींक जो नाक में स्वाँस करै, सो मरै जो अकास को तेज नसायौ।
जब नासिका स्वाँस करै, सो मरै जो अकास को तेज नसायौ।
जब नासिका स्वाँस में बास भयौ, सो कह्यौ मन इच्छा के पुत्र बनायौ।
मन इच्छा मिलि कुल भास भई, सो गुनइंद्री कुल प्रकृति कहायौ॥
ता को बैराट कहैं भगवान, चौधा जम कुलकर बास बसायौ।
काल कौ बृच्छ सरीर कह्यो, सो कामना काम जो धेनु सुनायौ।
आपने आप कियौ जग थाप, सो मन निरगुन नौकार बतायौ।
जगत भुलाइ जो धर्म चलाइ, सो टेक बँधे चारौ गत्ति में आयौ॥
जगत जहान कौ भर्म दियौ, सोइ कर्म बताइ जो आपुहि आयौ।
येही बिधि जगत कौ नास कियौ, पुनि आपनी राह कौ भेद न गायौ।
इंद्री बस कीन्ह ऋषभ देव चीन्ह, सो टाटक गुन में ध्यान लगायौ।
सुनि नासिका ध्यान कियौ जो प्रमान, सो जोग अरंभ से आतम पायौ॥
येहि कार के लार गुंकार भयौ, त्रिकुटी मध बीच अवाज सो आयौ।
येहि तत्त में मन जो लाग रहौ, तो अँवले प्रमानै अंड कहायौ।
अंड के बीच से जीव सही, सो केहि बिधि मुक्ति की बात को गायौ।
मुक्ति भई भौ खानि मई, पुनि मुक्ति को भोग के जीव कहायौ॥
येहि बिधि तोलि कहै तुलसी, सो आगे कौ भेद उनहुँ नहिं पायौ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि जो वर्णन कर रहे हैं, उसे कानों से सुनो और उसके रहस्य को भूल से भी पुराणों में नहीं प्राप्त करोगे। सर्वप्रथम नभ हुआ, जिसका नाम आकाश है, निवास करने की आशा से वह मानव शरीर में आया। इस शरीर में जो मुरा देवी स्थित है–उसका ही नाम मुरादेवी बताया। यह मन जब ऋषभ देव हुआ तब वह इस धाम ऋषब्य कहा गया॥

अब आगे सुनकर मेरी बात पर चिन्तन करो, 'जुगल्या' स्वयं मन के संकल्पेच्छा से द्वैत रूप में आया, वह छींक जो नाक में श्वासभरती हैं, वह बन्द हो जाएगी–यदि आकाश का तेज (स्वरूप) नष्ट होगा और वह व्यक्ति बिना श्वास के मृत हो उठेगा। जब नासिका के श्वास में निवास हुआ उसी को कहा कि उन्होंने इच्छामयी पुत्रों को बनाया है। मन तथा सम्पूर्ण इच्छाएँ मिलकर जब आभासित होती है तो सम्पूर्ण इन्द्रियों के गुण को प्रकृति के नाम से पुकारा जाता है॥

उसी का नाम बैराट है, उसी को भगवान कहते हैं और वही कुछ चौदह कुलंकरों का निवास है। काल का वृक्ष अर्थात् कल्प वृक्ष इस शरीर को कहा गया है और शरीर की कामनाओं को ही कामधेनु कहा गया है। स्वयं अपने आप जिसने मन के अन्तर्गत अपनी स्थापना कर ली है–उस चेतना को मन का नौकार कहा गया। जो संसार को भूलकर जो धर्म का परिचालन करते हैं, वे इस माया के बन्धन में बँधे हुए उसकी गतियों में फँस गए है॥

इन पंडितों ने संसार भर को भ्रम दिया और जिसके द्वारा वे माया के बन्धन में आए हैं, उसी कर्म को बतला रहे हैं। इस प्रकार इन्होंने इस संसार को विनष्ट कर दिया और फिर अपने मार्ग के रहस्य का इन्होंने वर्णन बन्द कर दिया। सुनो, नासिका के श्वास (प्राणायाम) द्वारा जो ध्यान करोगे, वही प्रमाण है–और इसी योगरम्भ से आत्मा की प्राप्ति होगी॥

इसी व्यवस्था के कारण गुंकार बना और त्रिकुटी के मध्य में सुनाई पड़ने वाली ध्वनि ही है। यदि इसी तत्त्व में मन लगा रहा तो उसी संदर्भ में यह ब्रह्मांड आमलक (आँवला) सदृश कहा जाएगा। इस अंड के बीच जीव की स्थिति है–तब इससे पृथक होकर मुक्ति की बात क्यों कर गा रहे हो। यदि मुक्ति भवसागर की आपदाओं की खानि है, तब तो मुक्ति को जब का भोग कहा जाएगा। इस प्रकार, सारे तत्त्वों को भलीभाँति तौलकर (विचार करके) तुलसीदास कहते हैं–और इन जैनियों ने भी उसके आगे के रहस्य का ज्ञान नहीं प्राप्त किया।

॥ सवैया ४ ॥

स्रावग ख्यात कहौ जो बिख्यात, सो आदि अनादि की बात सुनाऊँ।
जुगल्या जोइ धर्म न कुलकर कर्म, ऋषब्ब न नम्भ मुरादेवी नाऊँ।
पानी न पवन जमीं नहिं भवन, सो अगिनि अकास न तत्त न ठाऊँ।
चंदा न सूर न आतम मूर, नहीं मन कूर जा कौ भेद बताऊँ॥
जब पिंड न अंड नहीं ब्रह्मंड, सो कहे नवखंड बने न बिसाऊँ।
जबै सतपुरुष रहे सुख धाम, सो वा में बसै सतलोक कहायौ।
ता ने कियौ सब ठाट बैराट, सो सोला निरबान को ता ने बनायौ।
सोला में एक को दीन्ह निकार, सोई निराकार न जगत भुलायौ॥
पुरुष के अंस से जोति भई, सो वही निराकार की कहियै लुगाई।
ता के पुत्र भये पुनि तीन, सो ब्रह्मा बिस्नु महेस कहाई।
कुंभ निरबान के अंग से जान, लिये पाँचौ तत्त बैराट बनाई।
काल निरबान जो ठाट कियौ, सो बैराट में जोति और काल समाई॥
ता कौ कहै भगवान अज्ञान, सो जाही ने जीव चराचर खाई।
सो ताही को पूजि चलै नर चालि, सो काल निरबान न जाल बिछाई।
अंड के पार कह्यौ नहिं सार, सो जार पसार रहे गति माई।

मुक्ति बताय दई सो कही, बड़े भाग भये कहि भाखि सुनाई॥
औरहु फंद कहौं दुख दंद, सो अंधेइ जीव को मुक्ति बताई।
मुक्ति भये जग जीव रहे, बहु पंचम काल में दीन्ह उठाई।
ये सब काल निरवान की जाल, सो जीव को डालि कै काल चबाई।
सास्तर धान किये जो पुरान, सो धर्म की टेक में जीव बुड़ाई।
तुलसी बिधिबात कहौं जो घनी, सो धनी को भुलाइ भ्रमाइ छिपाई॥

अर्थ–प्रसिद्ध स्रावग ऋषियों के विषय में जो बातें प्रसिद्ध हैं, हे धर्मा! कहो तो उनके आदि-अनादि के रहस्यों का वर्णन करूँ। जिसे जुगल्या धर्म कहा जाता है, वह धर्म नहीं है, न कुलंकर कर्म है, न ऋषभ देव हैं, न आकाश में कोई मुग नाम की कोई देवी। न जल है, न वायु है, न पृथ्वी है, न गृह है, न अग्नि है, न आकाश है और न कोई स्थान है। न चन्द्रमा है, न सूर्य है, न आत्म मूल और क्रूर मन भी नहीं है तो मैं किसके भेदों का वर्णन करूँ॥

जब न पिंड है, न अंड है, न ब्रह्मांड है और जिसे नौ खंड कहते हो–वह कैसे बनेगा, न विस्तार (बिसाऊँ) होगा। जब सत्पुरुष अपने सुख धाम में निवास करेगा तब उस धाम को सत्य लोक (सतलोक) कहा जाएगा। उसी ने सम्पूर्ण वैराट की रचना करके अपना ठाट-बाट बनाया है और उसी ने सोलह निर्वाण की रचना की है। उसने इस सोलह में से एक को अलग कर दिया और वही निरंकार है, उसी ने सम्पूर्ण जगत को विस्मृत कर रखा है॥

पुरुष के अंश से ज्योति बनी–वही ज्योति निरंकार की पत्नी है। उनके तीन पुत्र हुए और वे ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहलाये।। उस निरंकार के अंग से वैराट ने पाँच तत्त्वों की रचना की। इस काल ने निरंकार के साथ जो ठाट बाट किया उसके कारण वह ज्योति के साथ सम्पूर्ण वैराट में समा गया॥

अज्ञानी जब इसी को भगवान कहते हैं, यही सचराचर के समस्त जीवों को खा रहा है। उसी की पूजा करके मानव जाति चली आ रही है। इसी निर्वाण ने काल का जाल बिछा रखा है।

इस ब्रह्मांड के उस पार का सारतत्त्व क्या है, इस विषय में कुछ भी नहीं किसी ने भी कहा। तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने तो मुक्ति के विषय में बता दिया, यह बड़े भाग्य की बात है कि मैंने इसे कहकर सुनाया है।।

मुक्ति के अन्य उपाय फंदे की तरह हैं, वे दुःख और द्वन्द्वमयी हैं वही इन ज्ञान से अंधे जीवों के लिए मुक्ति बताई गई है। मुक्ति होने पर भी क्या संसार में जीव रहता है–उस पंचमावस्था में जीव उड़ जाता है। ये सम्पूर्ण निर्वाण मत काल की जाल की भाँति हैं और उसी में जीव को जलकर काल चबा जाता है। शास्त्र, पुराण आदि का जो ध्यान करता है, वह धर्मों की टेक जीव डूब जाता है। तुलसीदास इस प्रकार ने वही बातें की हैं–जो तत्त्व मार्गी (धनी, भारी) हैं किन्तु इन जैनियों ने उस उन तत्त्वमयी बातों को अपने द्वारा उत्पन्न किये गए भ्रमों में छिपा दिया॥

॥ सवैया ५ ॥

तुलसी नर जीव निरबान कहूँ, पति पार पिया घर आदि लखाऊँ।
थिर थोव सुरति से तत्त लखै, सो पकै नभ नाल कँवल कै ठाऊँ॥
तेहि के मद्ध मिलै दल द्वार, सो पार चढ़ै दल आठ में आई।
जहँ जोति कौ बास अकास के पास, सो तत्त के पार से सार दिखाई॥
पुनि स्रुति सैल से खेल चढ़ै, नव लाख कँवल के दल के माई।
ता में लखै रबि चंद की संध, सो तारा अनेक अकास सुहाई।

पुनिता के परे दल सहस कँवल,सो जल में जानि निरबान के ठाईं।
ता के परे जल कोर के धोर, सो अविगति काल ने जाल बिछाई॥
ता पै फटिक सिला पै मिला, नभ स्याम को बास बसै येहि माई।
आगे चली सुनि साखि अली, सो आतम ताल के तट में आई।
ता के परे दल दोइ कँवल, सो सुन्न प्रमातम बास कराई।
ता के परे सत सब्द का बास, सो चढ़ी सत सूरति सब्द में आई॥
ता के परे दल चारि कँवल, सो साहिब सत्त पुरुष कहलाई।
ता के आगे की गैल की सैल कहौं, खिरकी बिन द्वार में पार है भाई।
जहाँ निर: अच्छर नाम के पार, सो सार, अनाम का धाम न ठाँई।
सूरति सैन की चैन कहौं, पल माहिं पिया पद आवै न जाई॥
सुन जोग न ज्ञान बैराग नहीं, तप संजम ध्यान की कौन चलाई।
सूरति सैल करै असमान, सो फोड़ निसान को पार चढ़ाई।
जो कहौं मत संत कौ अंत नहीं, सो वही घर संत बसैं नित जाई।
जहँ काल निरबान की गम्म नहीं, तहँ केवली काल परे मुख जाई।
कोइ सूरति राह चढ़ै सोइ संत, सो पंथ पिया तुलसी कौ कहाई॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मानव जीव कहाँ है, मैं उसे कहता हूँ और इस भौतिक लोक के उस पार प्रियतम के घर को दिखाऊँगा। स्थिर होकर(थिरथीव) सुरति के मध्य वह तत्त्व दिखता है, वह आकाश सरोवर की नाल में पकता है। उसी के मध्य दस द्वार मिलते हैं–और जब उसके पार मन चढ़ता है तो अष्टदल कमल में आ उठता है। वहाँ ज्योति शून्याकाश में निवास करती है और उस तत्त्व के पार परमात्म तत्त्व दिखाई पड़ता है॥

इसके पश्चात् मन श्रुति पर्वत पर खेल-खेल में चढ़े और नवलक्ष कमलदलों के दल में प्रवेश करे–वहाँ वह सूर्य और चन्द्रमा के समुद्रों और अनेक ताराओं के शोभित प्रकाश को देखें। पुनः उसके पार सहस्त्रार दल कमल है–उसी जल को निर्वाण का स्थान समझो। उसके आगे उस जल के किनारे का तट है–जहाँ अज्ञेय काल ने अपना जाल बिछा रखा है॥

उसके पार स्फटिक शिला से मिला हुआ श्याम आकाश का निवास है–हे सखी! आगे बढ़ो, तब आत्मा के ताल के तट पर पहुँचोगी। उसके पार दो दलों वाला कमल है, वहीं शून्य परमात्मा का निवास है। उसके आगे 'सत्य शब्द' का निवास है फिर आगे चढ़कर शत्-शत् 'सुरति शब्द' में प्रवेश करो॥

उसके आगे के मार्ग के पर्वत शिखर के विस्तार का वर्णन करता हूँ–उस बिना खिड़की के द्वार के पार कोई तत्त्व है। वह नि:अक्षर धाम है और उसके आगे भी एक सार तत्त्व है– उसका कोई नाम नहीं, धाम नहीं, और न कोई स्थान है। सुरति समाधि के संकेत की दशा का वर्णन करता हूँ वह आत्मा-पल में पिया (ईश्वर) के पास न आती है, न जा पाती है। सुनो, इसे प्राप्त करने के लिए न योग न वैराग्य, न ज्ञान, न तप, न संयम, न ध्यान फिर किस साधना की चर्चा की जाएँ॥

सुरति ध्यान का पर्वत शून्य (आकाश) को–फोड़कर आत्मा को आगे बढ़ता है–यदि मैं उस प्रकार के सन्तों के मतों का वर्णन करूँ तो उसका आदि-अन्त नहीं है और वही संत इस घर में जाकर निवास करता है। न वहाँ काल का भय है, न निर्वाण का भय है–वहाँ कैवल्य सुख प्राप्त करने वाले केवली काल के मुख जा गिरते हैं। (सन्त नहीं)। जो भी सुरति मार्ग से वहाँ चढ़ता है, वही सन्त है, वहीं तुलसीदास जी के प्रियतम निराकार ब्रह्म का धर्म पंथ कहा जाता है॥

॥ सोरठा ॥

धर्मा धर्म विचार, जैन सार सगरी कह्यौ।
कुलकर जुगल्या लार, नभ राजा और ऋषभ सब ॥ १ ॥
सार सवैया माइँ, गाइ भेद बिधि सब कही।
जस जस जैन जनाइ, जो उत्पति सुनि सब भई ॥ २ ॥
सास्तर संध बिचार, बिधि पुरान मत देखि कै।
धर्म जैन जस कार, पुनि अगार तुलसी कही ॥ ३ ॥

अर्थ–हे धर्मा! मैंने धर्म पर विचार करते हुए जैनधर्म की समग्र सम्पूर्णता, जैन कुलंकरों की जुगल्या के प्रति संसक्ति, राजा आकाश और सभी ऋषियों के विषय में बताया ॥ १ ॥

सवैया छन्द के अन्तर्गत सारे भेदों तथा जैसे-जैसे जैनियों को ज्ञान होता है और उनकी उत्पत्ति की जो स्थित थी–उसको विधिवत् गाकर सुनाया ॥ २ ॥

जैन पुराण विधि के अनुसार समस्त मतों को देखकर शास्त्र एवं उनकी गोष्ठियों के विचारों को (सुनकर)–जैन धर्म के जैसे विधान (कार) हैं, उन सबका वर्णन इस तुलसीदास ने किया है ॥ ३ ॥

॥ उत्तर धर्मा। चौपाई ॥

धर्मा सुनि मन बात बिचारी। तुलसी कही जैन से न्यारी ॥
संत मता है अगम अपारा। स्त्रावग जैन धर्म से न्यारा ॥
हमने जुगल्या प्रथम बताया। ता के परे भेद नहिं पाया ॥
और कुलंकर नभ राइ बखाना। हम आगे का मर्म न जाना ॥

अर्थ–तुलसी साहब की बातें सुनकर धर्मा ने विचार किया कि तुलसीदास ने जैन धर्म का विलक्षण वर्णन किया है। इस प्रकार, उनका सन्तमत अगम एवं अपार है–और वह स्त्रावगधर्म से विलक्षण है। हमने सर्वप्रथम 'जुगल्या' पर विचार किया है किन्तु उसके उस पार का रहस्य नहीं प्राप्त किया है। हमने कुलंकर और आकाश राजा का वर्णन किया है–किन्तु इसके बाद का रहस्य नहीं समझा है ॥

॥ प्रश्न तुलसी साहिब ॥

॥ चौपाई ॥

जुगल्या प्रथमहिं कौन बनावा। कहौ उन तन कैसे कर पावा ॥
तन बिन देंह कौन बिधि आवा। ता कौ पहिले कौन बनावा ॥
तन तत पाँच कहाँ से अइया। सो धर्मा बिधि बरनि सुनइया ॥
पाँच तत्त बिन कैसे कहिया। तत्त बिना कैसे बिधि भइया ॥
पिंड ब्रह्मण्ड धरती आकासा। केहि बिधि भया कहौ परकासा ॥
पाँच तत्त जब कहँ से आये। कौन जुगल्या जबै बनाये ॥
कर्म धर्म कछु हते न भाई। तब ये जीव कहाँ से आई ॥
सो घर हम से भाखि सुनावै। तब तुलसी के मन में आवै ॥
पद निरबान कहौ तेहि भाई। ता की बिधि कहौ कौन बनाई ॥

या की बिधी कहौ समझाई। पद निरबान कहाँ से आई॥
नहिं निरबान हता जब अंडा। तब को हता परे ब्रह्मडा॥

अर्थ–सर्वप्रथम मुगल्या को किसने बनाया और बताओ, इसे उन्होंने कैसे प्राप्त किया है। इस शरीर के बिना दे॰ किस प्रकार आई और उसे सर्वप्रथम किसने बनाया था। इस शरीर में पंचतत्त्व कहाँ से आए हैं धर्मा! उसके शरीर में प्रवेश करने की विधि का वर्णन करके सुनाओ। उस परमतत्त्व को पाँच तत्त्वों के बिना कैसे स्पष्ट किया जाए और बिना तत्त्व के वह 'विधाता' कैसे बना। पिंड, ब्रह्मांड, धरती तथा आकाश–ये किस प्रकार उत्पन्न हुए–स्पष्ट रूप से बताएँ। ये पाँचों तत्त्व कहाँ से आकर वह कौन 'जुगल्या' थी जिसका इन्होंने निर्माण किया। उस समय हे भाई! न कर्म था, न धर्म था–तब वह जीव कहाँ से आ गया। हे धर्मा! उस घर का वर्णन करके तुम मुझे सुनाओ, वह तुलसी के मन में कैसे आकर समा गया।

हे भाई धर्मा! उस निर्वाण पद का वर्णन करके सुनाओ और (बताओ) कि उसकी विधियों को किसने बनाया है। इसकी विधियों को समझाकर वर्णन करो और यह निर्वाण पद कहाँ से आया, यह भी समझाओ, जब वह सृष्टि अंड रूप में थी, उस समय निर्वाण पद नहीं था–तब इस पिंड को किसने भंग करके ब्रह्मांड में छोड़ दिया था॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी मानै जान, या के आगे भिनि कहै।
हता नहीं निरबान, सो बिधि बरनि सुनाइये॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि 'ज्ञान' को तो स्वीकार करते हो–इसे आगे उससे भिन्न जो कुछ है, उसका वर्णन करो–उस विधि का वर्णन सुनाओ, जो निर्वाण की स्थिति नहीं है॥

॥ चौपाई ॥

कहै तुलसी धर्मा सुनु बाता। आगे कहौं बिधी बिख्याता॥
छींक होत उपजे सुत नारी। कन्या पुत्र कहौ बिधि सारी॥
कहँ से आये कहाँ पुनि गइया। इनकी रचना केहि बिधि भइया॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे धर्मा मेरी बातें सुनो–उसके आगे का प्रसिद्ध सन्दर्भ क्या वर्णित है। (किस रूप में वर्णित है)। छींक होते ही पुत्र तथा पुत्री उत्पन्न हुए–इन 'पुत्र तथा पुत्रियों' का समस्त वृत्तान्त कहकर सुनाओ। ये कहाँ से आए थे, और ये कहाँ चले गए और इनकी रचना किस प्रकार से हुई थी।

॥ सोरठा ॥

कहौ धर्मा समझाइ, या के आगे को हता।
उन तन कौन बनाइ, भाखौ या की आदि सब॥

अर्थ–हे धर्मा! समझाकर, बताओ, इनके आगे क्या था? उस आदि तत्त्व को किसने बनाया था और इस प्रकार इन सबके आदि संदर्भों का वर्णन करो॥

॥ चौपाई ॥

और आगे बिधि पूछौं भाई। पूजा तुम ने भाखि सुनाई॥
अष्टक जल चंदन तुम कहिया। और नैवेद्य पुष्प बिधि लइया॥

केवली केवल की कही साखी। कहौ का की पूजन उन भाखी॥
तब केवली प्रत्यच्छ रहाई। मूरति बिधि जब हती न भाई॥
उन पूजा कहौ किन कीं कहिया। मूरति खोज तबै नहिं रहिया॥
तब पूजा कहौ केहि की भाखी। या कौ भेद बतावौ साखी॥
नायक मूल बंदना कीन्हा। तुम पाहन पूजा कस लीन्हा॥
उन कछु और भेद कहि भाखी। सो तुम्हरी सूझा नहिं आँखी॥
कही घर ध्यान देख उन चाखा। तुम पाहन पूजा कस राखा॥
अपने घर का भेद न जानी। औरन से कहौ ज्ञान बखानी॥

अर्थ–हे भाई, मैं, उसके आगे की और विधियों के विषय में पूछ रहा हूँ। तुमने उनकी पूजा-अर्चना के विषय में वर्णन करके सुनाया है। तुमने अष्टक, (एक प्रकार का स्तोत्र) जल और चन्दन के विषय में बताया है–साथ ही, नैवेद्य पुष्प के विषय में भी कहा है– तुमने कैवल्य प्राप्त करने वाले केवली की शाखाओं का वर्णन किया है। यह बताओं कि उन्होंने क्या पूजन किया और क्या बताया! जब विधाना ने इनके शरीर को हत नहीं किया था, तब केवली प्रत्यक्षतः रहा करते थे और यह बताओ कि ये उस समय किस कुलकंर की पूजा करते थे और उस समय उन केवलियों को तीर्थंकरों की मूर्तियों की खोज का संदर्भ नहीं था–इसके भेद और सम्बद्ध साक्ष्यों को बतालाइए।

जिसके मूल में शीश का झुकाना (नाइक) है, ऐसी वन्दना थी और (तब उस बन्दना के प्रतिकूल) तुमने पत्थर की पूजा क्यों की। उन्होंने क्या अन्य भेदों का वर्णन नहीं किया था, क्या यह तुम्हारी दृष्टियों में नहीं सूझा। तुमने यह भी बताया है कि ध्यान धारण करके उसका आध्यात्मिक स्वाद चखा है फिर तुमने उस ध्यान के स्थान पर पाहन पूजा क्यों रखा। तुम अपने आध्यात्मिक जगत (घर) का भेद तक नहीं जानते और दूसरों से ज्ञान को बखानते हो–यह कहाँ तक उचित है॥

॥ सोरठा ॥

धर्मा कहौ बखान, पाहन पूजा कस करौ।
नायक मूल बिधान, ता की पूजा बिधि कहौं॥

अर्थ–हे धर्मा, वर्णन करके बताओ, क्यों पत्थर की पूजा की–जब शीश झुकाकर नमस्कार ही (नाइक) पूजा की मूल प्रणाली है तो उसकी (शीश झुका कर) मूल पूजा की विधि का वर्णन करो॥

॥ चौपाई ॥

तप संजम उपवास बताई। जो त्यागै सो पावै भाई॥
तप कर राज मिलै पुनि जाई। राज भोग पुनि नर्क समाई॥
कष्टै फल पावै पुनि भोगा। परै चारि गति उपजै सोगा॥
इंद्री दवन उपास कराई। बार बार भौसागर आई॥
इद्री भोग करै पुनि सोई। अस बिधि इन्द्री संजम होई॥
जीवन मुक्ति पलक में पावै। सो संजम हमरे मन भावै॥
जीवन मुक्ति देखिये आँखी। ऐसी बिधि कोइ कहिये भाखी॥
एक पहर में मुक्ति बतावै। सो सतगुरु मोरे मन भावै॥

आदि और अंत पलक में पावै। सारा भेद नजर में आवै॥
जब देखैं हम अपने नैना। तब मानैं सतगुरु के बैना॥
कष्ट करै तप बन को जावै। मारे गये का खोज बतावै॥
ऐसी झूठ बात नहिं मानैं। देखा परे सुनै जो कानै॥

अर्थ–तुमने तप संयम उपवास के विषय में बताया है। हे भाई! वही प्राप्त करता है, जो त्याग करता है। तपस्या के बाद, हे भाई! राज्य मिलता है। राजभोग के बाद पुनः नर्क में जाकर समा जाता है।

तपस्या का कष्ट प्राप्त करता है, उसका वह फलभोग भी प्राप्त करता है और वह नरक की चारों गतियों में पड़कर उत्पन्न शोक से ग्रस्त होता है। इन्द्रियों का दमन करके उपवास करता है इस प्रकार, इन्द्रियों पर संयम होता है। वह पल भर में ही जीवन मुक्ति प्राप्त कर लेता है और वही संयम हमारे मन को भी अच्छा लगता है॥ किसी ऐसी विधि का हे धर्मा! वर्णन करो–जिसके द्वारा इन आँखों से ही जीवन्मुक्ति दिखाई पड़े। मेरे मन में तो वही 'सतगुरु' आकर स्मरणीय हो उठता है-जो एक प्रहर भर में मुक्ति का अनुभव करा दे॥ वह साधक (उसगुरु द्वारा) एक पल मात्र में आदि तथा अन्त को प्राप्त कर लेता है और सम्पूर्ण सृष्टि भेद का रहस्य उसकी आँखों में दिखाई पड़ने लगता है और उसे जब अपने नेत्रों से देखने लगें-तब उसे 'सतगुरु' की वाणी समझें। कष्टपूर्वक वनमें जाकर तपस्या करते हैं और उन मृतों के वे खोज का मार्ग बताते हैं–हम ऐसी झूठ बातों को नहीं मानतें जो न तो आंखों से दिखाई पड़ती हैं और जो न कानों से सुनाई पड़ती हैं।

॥ दोहा ॥

तुलसी धर्मा सों कही, कर्मा सुनियौ बात।
दोइ मिलि भेद बतायऊ, कर्मा धर्मा साथ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि–हे कर्मा! मेरी बातें सुनों, इसे मैंने धर्मा को बताया है–दोनों अर्थात् कर्मा और धर्मा दोनों को एक साथ लेकर मैंने यह बात बताई है॥

॥ चौपाई ॥

कर्मा धर्मा भेद बताई। ये बिधि तुम्हरे सास्तर गाई॥
या से हम कछु भिनि दरसाई। ता का भेद कहौ समझाई॥
तुम्हरे मत की पूछौं बाता। ता की प्रथम कहौं बिख्याता॥
ये बिधि भिन्न भाँति कहि भाखी। कर्मा कहौ याहि की साखी॥
या की बिधी बिधी बतलावै। सो सब भेद भाव दरसावै॥
हम जोइ पूछि पूछि बिधि बानी। सो सो सब सब कहौ बखानी॥

अर्थ–हे कर्मा तथा धर्मा! मैंने वह भेद बताया है, जो तुम्हारे शास्त्रों ने गाया है। मेरा सिद्धान्त इस मत से कुछ भिन्न दिखाया गया है, और मैं उनका भेद समझाकर बताता हूँ।

मैं तुम्हारे मत की बातें पूँछता हूँ–पूर्वकाल में विख्यात उस मत का मैं वर्णन करता हूँ। मैंने-भिन्न-भिन्न मार्गों द्वारा इस मत का वर्णन करता हूँ। मैंने भिन्न-भिन्न मार्गों द्वारा इस मत का वर्णन किया है–और हे कर्मा! मैं इसको साक्ष्य में रखकर पुनः उसका वर्णन करता हूँ। इसकी साधना विधि कोई साधना विधि का ज्ञाता ही बतला सकता है। वही ही, इसके सम्पूर्ण भेदभावों को दिखा सकता है। साधना विधि से सम्बद्ध बातों को मैंने उनसे पूछ-पूछ कर जाना है और साधना की विधि के विशेषज्ञों ने हमें जैसा बताया है, मैं उन सबका तदवत् वर्णन करता हूँ।

।। उत्तर धर्मा और कर्मा ।।

।। चौपाई ।।

कर्मा धर्मा यौं कहि बोले। भेद हमार सबै तुम खोले।।
सास्तर हमरे जो बिधि गाई। सो तुलसी तुम भाखि सुनाई।।
या सों भिनि हम कहा बतावा। भिन्न भिन्न सब तुम दरसावा।।
कर्मा धर्मा ये बिधि बोला। बुद्धि हमारि खाइ झकझौला।।
तुलसी तुम तौ अगम बखाना। नहिं सास्तर नहिं जानै पुराना।।
पुनि इक भर्म भाव दिल आई। स्वामी तुलसी भाखि सुनाई।।
तुम तौ मुक्ति आज दरसावा। या कौ भर्म बहुत मोहिं आवा।।
और सबै भाखी तुम खासी। पुनि इतनी मोरे नहिं भासी।।
मुक्ति गति तुम आज बतावा। सो नहिं जैन मते में गावा।।
चौथे काल मुक्ति बतलावै। पंचम काल जैन नहिं गावै।।
स्वामी तुलसी यह बिधि कहिये। ता में मुक्ति आज बिधि पइये।।
ऐसी कौन जो बिधी कराई। ता सों आज मुक्ति गति पाई।।
जो जो तुमने भेद बखाना। सो तो हम सुपने नहिं जाना।।
जो जो सास्तर कहै पुराना। सो तुम मुख से करी बखाना।।
सो साँची सब मन में आई। चित में खूब खूब ठहराई।।
तुम ने आगे भेद बखाना। हम पुनि परे कछु नहिं जाना।।
ये तौ सत्त सत्त कहि भाखी। मुक्ति आज होइ कहिये साखी।।
हम तुम्हारे चरनन बलिहारी। कहा धर्मा हम सरन तुम्हारी।।
हम अजान कछु बूझि न बाता। तुम कही आदि अंत बिख्याता।।
मुक्ति भाव मो को दरसावौ। मोरे दिल का भर्म नसावौ।।

अर्थ–इसे सुनकर धर्मा एवं कर्मा इस प्रकार कहकर बोले–कि आपने हमारे धर्म के सम्पूर्ण रहस्यों को बतला दिया। हमारे शास्त्रों में (अध्यात्म तत्त्व का) जिस प्रकार वर्णन किया है–हे तुलसी साहब! आपने सब कुछ कहकर सुनाया है। आपके द्वारा कहे हुए धर्म तत्त्व से भिन्न हम क्या सुनाएँ और आपने तो सम्पूर्ण तत्त्वों को स्पष्ट करके सुना दिया।

कर्मा तथा धर्मा इस प्रकार बोले, कि अब हमारी बुद्धि झकझोले खा रही है। हे तुलसी साहब! आपने तो अज्ञेय तत्त्व का वर्णन कर डाला है। उस 'अगम्य' तत्त्व को न शास्त्र जानता है, न पुराण। इसके बावजूद भी, मेरे हृदय में एक विचार आया है–हे स्वामी तुलसी साहब! इसे कहकर सुनाओ।। आपने आज जिस मुक्ति का वर्णन किया है–इसका मर्म मुझे बहुत आता है। इसके अतिरिक्त, तुमने सम्बन्धित विषयों को विशेष रूप से बताया है और हमारे मत में इतना वर्णन नहीं मिलता। आज आपने 'मुक्ति गति' की चर्चा की–यह जैन सिद्धान्त के अन्तर्गत नहीं बताया गया है। वृद्धावस्था में मुक्ति की बात ये जैन साधु बताते हैं–और जैन धर्म के मातवलम्बी पाँचवे काल की चर्चा नहीं करते। वे दोनों, निवेदन करते हुए तुलसी साहब से कहते हैं कि आप मुक्ति विधि का इस प्रकार वर्णन करें उसमें मैं आज ही मुक्तिविधि का ज्ञान कर लूँ।।

आपने जिन-जिन भेदों का वर्णन किया है, उसको तो हमने स्वप्न में भी नहीं जाना था। जो-जो बातें शास्त्र एवं पुराण कहते हैं-उसकी बातें तुमने अपने मुँह से बता दिया। साधना की सारे बातें मन ने स्वीकार कर लीं और हमारे चित्त में ये बातें भली-भाँति ठहर गई।

आपने आगे के भेदों का वर्णन किया-वह हमारे ज्ञान के परे है, और उसे हमने नहीं समझा है। आपने तो इन बातों को सच-सच कह कर बताया है, आप ऐसी साक्षी बताइये की मुक्ति आज ही हो जाए। हम आपके चरणों की बलिहारी चाहते हैं और धर्मा ने कहा कि हम तो आपकी शरण में हैं।

हम अज्ञानी हैं, आपकी बातों का रहस्य बूझ नहीं पाए। आपने तो आत्मतत्त्व के चिन्तन की चर्चा आदि से अन्त तक बताई है। हे स्वामीजी! आप मुझे मुक्ति भाव दिखलाएँ और हमारे हृदय के भ्रम दूर करें।

॥ सोरठा ॥

धर्मा अस बिधि बोल, स्वामी दीन दया करौ।
मुक्ति बिधी गतिखोल, भाखि अगम गम सब कहौ॥

अर्थ- धर्मा इस प्रकार सन्त तुलसी साहब से बोला कि हे स्वामी! इस दीन पर दया करें। आप मुक्ति विधि के ज्ञान को खोल दें और सम्पूर्ण अगम्य तत्त्व का कहकर वर्णन करें॥

॥ उत्तर तुलसी साहेब ॥

तुलसी कहत बुझाइ, कर्मा धर्मा सब सुनौ।
आगे कहौं लखाइ, मुक्ति बिधी दरसाइ कै॥

अर्थ-तुलसी साहब समझा कर कहते हैं-हे कर्मा-धर्मा, सब कुछ सुनो-मैं आगे मुक्ति विधि का साक्षात् दर्शन कराकर उसका वर्णन करता हूँ॥

॥ चौपाई ॥

कहै तुलसी सुन अगम सँदेसा। आदि अंत दरसाओं देसा॥
प्रथम रहे इक पुरुष अनामा। चौथे पद के पार ठिकाना॥
जब नहिं रहे गगन आकासा। चंदा सूरज नहिं परकासा॥
धरती अगिन न पवन निवासा। पानी जगत रहे नहिं बासा॥
पिंड ब्रह्मंड लोक नहिं होई। और अलोक बिधी नहिं सोई॥
चौथा पद रचना नहिं ठानी। ता के आगे पुरुष अनामी॥
तासु लहर सत साहिब भयेऊ। सत्त नाम संतन ने कहेऊ॥
या की बिधी बिधी गति गाई। बिन सतसंग नहीं दरसाई॥
होइ सतसंग कहौं सब लेखा। खुले नैन हिरदे से देखा॥
तीनों लोक पार है चौथा। ता के परे अनामी सो था॥
तासु लहर उपजा सत नामा। चौथे पद की रचना ठाना॥
ता से भये सोला निरबाना। जिन में एक की करौं बखाना॥
सोला निरगुन है निरबानी। निराकार जाही को जानी॥
जोति निरंजन सोई कहाई। ता को संत काल गोहराई॥

सास्तर नाम कहै निरबाना। सोई जीव को काल निदाना॥
जा ने जग जमजाल पसारा। जगत थापना कीन्ह बिचारा॥
दस औतार जाहि के चीन्हो। ब्रह्मा बिस्नु महेसा तीनो॥
जिन के भाखा बेद बिचारा। जग में फैला काल पसारा॥
पूजा पत्री नेम अचारा। देवल पूजा बिधी सँवारा॥
संजम और उपवास बतावा। ता में सकल जीव उरझावा॥
ये निरबान काम अस कीन्हा। मुक्ति राह का भेद न दीन्हा॥
मुक्ति काल चौथे बतलाई। पंचम काल जो दीन्ह छिपाई॥
सास्तर अस पुनि कीन्ह पुराना। धर्म चलाइ जीव उरझाना॥
ये सब भेद कहा हम जानी। यह बिधि जैन धर्म निरबानी॥
सोई काल सब जाल बिछाई। सत्त पुरुष की राह न पाई॥
सत्त पुरुष का भेद नियारा। जहँवाँ संत करैं दरबारा॥
संत सरन जो प्रानी जावै। ता को संत राह बतलावै॥
धर्मा कर्मा चकृत भयेऊ। ये तौ अगम गाइ गति कहेऊ॥
बिन संतसंगति पावै नाहीं। तुलसी कहै सबै गोहराई॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि अगम तत्त्व का संदेश मुझसे सुनो–मैं आदि-अन्त तक उसके स्वरूप का दर्शन कराता हूँ। सर्वप्रथम एक अनाम 'पुरुष' हुआ और उसका स्थान चौथे पद (मुक्ति) के पार था।

उस समय न गगन था, न आकाश था, न चन्द्रमा था, न सूरज था , न प्रकाश था, धरती, अग्नि एवं वायु का भी अस्तित्व नहीं था और जल की भी कहीं गन्ध नहीं थी। उस समय पिंड और ब्रह्मांड आदि लोक भी नहीं थे और अलोक की भी विधियाँ नहीं थीं?

चौथे लोक की रचना का भी कोई क्रम नहीं था और उसके आगे एक अनामी पुरुष का ही अस्तित्व था। उसकी लहर (तत्त्वाकर्षण) से 'सत् साहिब' 'निरंकार ब्रह्म' की रचना हुई और सन्तों ने उनको 'सत्यनाम' से पुकारा।

उनकी गति का वर्णन नाना रूपों में हुआ है और बिना सत्संग के उनके स्वरूप का दर्शन असम्भव है। सत्संग के द्वारा प्राप्त उनके स्वरूप का मैं वर्णन कर रहा हूँ–और (सत्संग द्वारा ही) मैंने उन्हें खुले हुए हृदय नेत्रों से देखा है। इन तीनों लोकों के उस पार चौथा लोक है–उस चौथे लोक के पार 'अनामी' तत्त्व रहता है? उसकी तरंगों से सतनाम पैदा हुआ और इस चौथे स्थान की रचना कुछ भिन्न प्रकार की है। इनसे सोलह निर्वाणों की रचना हुई जिनमें से मैं एक का वर्णन कर रहा हूँ॥

निर्वाण से संयुक्त सोलह निर्गुण तत्त्व हैं–जिनको निराकार के रूप में जाना जाता है। वही निरंजन ज्योति के नाम से पुकारा जाता है– उसी को सन्तगण 'काल' के नाम से पुकारते हैं। इसका शास्त्रीय नाम निर्वाण है–और वही जीव के लिए 'काल' का कारण है।

जिसने इस संसार में यम का जाल फैला रखा है, और जिसने जगत की स्थापना कर रखी है–जिसके दस अवतार पहचाने जा चुके हैं–और ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीनों जिसके स्वरूप हैं। जिसने वेद के सम्पूर्ण विचारों का कथन किया है–और जिसके कारण संसार में काल का प्रसार फैला हुआ है॥

पूजा, पत्रे, नियम, आचार और मंदिर की पूजाविधि को जिसने सँवार रखा है–जिसने संयम तथा

उपवास के रूपों का वर्णन किया है—और उसी में समस्त जीवों को उलझा दिया है। इस निर्वाण रूप की कमी यह है कि इन्होंने वास्तविक मुक्ति मार्ग का भेद नहीं किया। इसने अन्तिम व जीवन फल के रूप में चौथी कालमुक्ति का वर्णन किया है और पाँचवे काल को छिपा दिया है।

इस प्रकार से उसने शास्त्र एवं पुराणों की रचना की और धर्म चलाकर जीवों को उसी में उलझा दिया। जैन धर्म के निर्वाण प्राप्ति में लगे धार्मिक साधु जनों के इन सारे भेदों को समझकर हमने बताया है। उस काल तत्त्व ने समस्त जाल बिछा रखे हैं। अत– किसी ने सत्य पुरुष (ब्रह्म) के मार्ग को प्राप्त नहीं किया।

सत्य पुरुष का भेद विलक्षण है–यहाँ सन्तगण दरबार लगाते हैं। इन सन्तों की शरण में जो प्राणी जाते हैं–उन्हें सन्तजन सही मार्ग बतलाते हैं। इसे सुनकर धर्मा एवं कर्मा दोनों चकित रह गए–और वे सोचने लगे कि इन्होंने तो अगम्य के लक्षणों (राति-ज्ञान) को गाकर सुना दिया। ठीक ही है, बिना ज्ञान के सत्संगति नहीं मिलती–यह तुलसी साहब सबको पुकार-पुकार कर बताते है॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी सत्त बिचार, सँत भेद न्यारा कहौं।
सो पहुँचै वहि द्वार, अगम सार तेहि लखि परै॥ १ ॥
मुक्ति कहौं निरवार, संत चरन लागी रहै।
फिरै संत की लार, करै संत निरबार जेहि॥ २ ॥

अर्थ–तुलसी साहब विलक्षण सन्त भेद के साथ तत्त्वभेद का वर्णन करते हैं। अगम्य तत्त्व का निचोड़ उसे ही दिखाई पड़ सकता है, जो चतुर्थ माल तत्त्व के आगे उस पर पहुँच जाता है॥ १ ॥

यह निरवार मुक्ति निरन्तर सन्त के चरणों में लगी रहती है–सन्त जन जिसके स्वरूप का निर्धारण करते हैं वह मुक्ति सन्तों के प्रेम में डूबी रहती है॥ २ ॥

॥ चौपाई ॥

संत सुरति से चढ़ैं अकासा। गगन फोड़ि वो करैं निवासा॥
पाँच तत्त का वहाँ न बासा। चंद सूर जल पवन न स्वाँसा॥
पार परे सत पुरुष अकेला। संत सुरति नित करती सैला॥
जो कोइ दीन लीन होइ आवै। ता को सतगुरु राह बतावै॥

अर्थ–सुरति साधना द्वारा सन्त शून्याकाश पर चढ़ता है और उस आकाश को फोड़कर आगे जाकर निवास करता है। वहाँ पंच तत्त्व का निवास नहीं है–वहाँ चन्द्रमा, सूर्य, जल, वायु एवं श्वास आदि की स्थिति नहीं है॥

उसको सत्पुरुष अकेला ही पार करता है–वहाँ संतों की सुरति निरन्तर विलास क्रीड़ा करती रहती है। यदि कोई भी साधक यहाँ दीन-हीन होकर आता है–उसी को सद्गुरु इसके मार्ग को बतलाते हैं॥

॥ दोहा ॥

मुक्ति कहौं समझाइ, संत चरन डोलत फिरै।
सो आदरैं न ताइ, पाइ लगन लागी रहै॥

अर्थ–मैं मुक्ति का वर्णन करके कहता हूँ–वह निरन्तर सन्त के चरणों में डोलती फिरती है–किन्तु वह उस मुक्ति का विशेष आदर नहीं करता, फिर भी, वह मुक्ति सन्तों के चरणों में निरन्तर लगी रहती है॥

॥ चौपाई ॥

कहै तुलसी सुन मुक्ति बखाना। धर्मा कर्मा सुनियौ काना॥
मुक्ति संत की निस दिन दासी। परी रहै चरनन के पासी॥
संत जिवत दरसावैं जाई। सतसँग करै बहुत लौ लाई॥
तुम कहौ पंचम काल न पावै। चौथे काल मुक्ति को जावै॥
अब तुम सुनियौ चित्त लगाई। तुम्हरे सास्तर संघ लखाई॥
महाबीर तीर्थंकर कहिया। बरस अठारासै तेहि भइया॥
जेहि तुम कहौ मुक्ति को गयऊ। मुक्ति पाइ तीर्थंकर भयऊ॥
जेहि तुम कहौ मुक्ति गति गाई। पंचम काल मुक्ति कस पाई॥
तुम कहौ आज मुक्ति नहिं जाई। तौ उनने कहौ कहँ से पाई॥
सो उन को तीर्थंकर कहिया। पंचम काल मुक्ति कस भइया॥
या की बिधि मन माहीं पेखो। सास्तर संघ जाइ कै देखो॥
अपनी भूल न बूझौ भाई। मुक्ति भई सो कहौ सुनाई॥
आज मुक्ति तत्कालहि पावै। संत चरन में जो लौ लावै॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे धर्मा-कर्मा! तुम लोग ध्यान से सुनो, मैं मुक्ति का वर्णन करता हूँ। मुक्ति संतों की दिन-रात सेवा करने वाली दासी है और वह उनके चरणों के पास पड़ी रहती है। संतजन अपने जीवन काल में उसे स्पष्ट करते जाते हैं, और बहुत से लोगों के साथ लौ लगाकर (आत्मीयतापूर्वक) सत्संगति भी करते हैं। तुम कहते हो कि पंचम तत्त्व को काल भी नहीं पकड़ पाता और चौथी दशा में काल ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥

अब तुम ध्यान लगाकर सुनो–तुम्हारे शास्त्र में संघ की चर्चा की गई है। महावीर को तीर्थंकर कहा जाता है और उनके हुए अट्ठारह सौ वर्ष हो चुके हैं। जिसके लिए तुम लोग कहते हो कि उन्होंने मुक्ति की गति प्राप्त की थी तो बताओं पाँचवीं अवस्था में उन्होंने मुक्ति कैसे प्राप्त कर ली। जिसके लिए तुम कहते हो कि आज उसे मुक्ति अलग नहीं हो सकती तब उनसे यह भी पूछो कि इसे उन्होंने कहाँ से प्राप्त किया था। इस मुक्ति के कारण ही, उन्हें तीर्थंकर कहते हो, तो उनसे जानो कि पंचम अवस्था में मुक्त कैसे हुए थे। इस समस्या पर मन-ही-मन विचार करो–इसके लिए जाकर शास्त्र सिन्धुओं को देखो। हे भाई! तुम अपनी भूल नहीं समझते, उन्हें मुक्ति मिली, इसे सुनाते रहते हो॥

संत के चरणों में जो लौ लगाते हैं, वे तत्काल (आज ही) मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं॥

॥ शरण में आना कर्मा और धर्मा का॥

॥ छन्द ॥

तुलसी यह भाखा सुनि सब साखा, कर्मा धर्मा दीन भये।
इन कही बुझाई सब बिधि गाई, भिन्न भिन्न दरसाई दये॥ १॥
हमरा मत भाखा दीन्ही साखा, सास्तर बिधि बिधि साखि दई।
हमरे मन मानी बहु बिधि जानी, सत्त सत्त सब तत्त कही॥ २॥
झूठा जंजाला सब बिधि काला, हम अपने मन जानि लई।

तुलसी तुम स्वामी सत्त बखानी, धर्मा कर्मा चरन लई॥ ३॥
चरनन लिपटाने तुम को जाने, दीन जानि अब सरन लई।
स्वामी मति बूझा आँखी सूझा, पूजा दूजा दूर भई॥ ४॥
तुलसी प्रतिपाला होउ दयाला, करौ निहाला सरन लई।
प्रभु दाया कीजै सरनै लीजै, दीजै चरन मति नाहिं बही॥ ५॥

अर्थ–तुलसी साहब ने यह सब बताया और उनके साक्ष्यों को सुनकर धर्मा और कर्मा अत्यन्त दीन हो उठे। उन्होंने पूरी तरह से समझा कि तुलसी साहब ने प्रत्येक प्रकार से बताकर सारी बातें भिन्न-भिन्न रूपों में निरुपित करके सभी बातों को भिन्न-भिन्न रूपों से दिखा दिया॥ १॥

हमारे यहाँ का वर्णन करते हुए उन्होंने अनेक साक्ष्य दिए, और भाँति-भाँति की शास्त्र विधियों का उदाहरण भी दिया। हमारे मन ने इसे स्वीकार कर लिया और हर तरह से उसे समझ भी लिया कि उन्होंने सारे तत्त्वों का वर्णन सही-सही रूपों में किया है॥ २॥

हमने (तुलसी साहब के उपदेश के आधार पर) यह समझ लिया रस सृष्टि का जंजाल असत्य है, और काल प्रत्येक रूपों में है। हे तुलसी साहब, आप ही स्वामी हैं, और आपने तत्त्व का सही-सही विवेचन किया है और ऐसा कहकर उन्होंने उनके चरणों को पकड़ लिया॥ २-४॥

हे स्वामी जी! मैंने आपके सिद्धान्त को समझ लिया है। वह परमतत्त्व आँखों से सूझ पड़ा है और अन्य पूजाएँ समाप्त हो उठी और ऐसा कहकर वे चरणों में लिपट गए और बोले हम लोगों ने आपको समझ लिया है–और हमें भलीभाँति दीन समझकर अपनी शरण में ग्रहण करें। हे तुलसी साहब! आपने हम लोगों का प्रतिपालन करें, हम पर दायलु हों। हमने आपकी शरणागति ले ली है। हे प्रभु! अब आप दया करके अपनी शरण में ले लें। हमारी चेतना को आपके चरणों के प्रति संसक्ति है, और मेरी यह चेतना अन्यत्र न बहकने पाए।

॥ सोरठा ॥

तुलसी देखि बिहाल, तुरत निहाल ता पर भये।
सुरति सैल बतलाइ, तब जिव की संसय गई॥ १॥
धर्मा कर्मा जाइ, तुरत सीस चरनन धरे।
लीन्ही अज्ञा पाइ, उठे धाइ घर को चले॥ २॥

अर्थ–धर्मा और कर्मा को व्याकुल देखकर तुलसी साहब उन दोनों पर तुरन्त कृपालु हो उठे। उन्होंने सुरति बिहार का मार्ग बताया, तब उन दोनों का संदेह नष्ट हुआ॥ १॥

धर्मा-कर्मा दोनों ने जाकर तुरन्त उनके चरणों पर अपना सिर रख दिया और उनकी आज्ञा पाकर वे उठे तथा जल्दी-जल्दी अपने घर चले गए॥ २॥

करिया नामी जैन स्त्री का तुलसी साहिब के दर्शन को आना और शरण लेना

॥ चौपाई ॥

धर्मा कर्मा मारग जाई। कासी नगर लौटि कै आई॥
अपना अपना मारग लीन्हा। अपने भवन गवन जिन कीन्हा॥
कर्मा घर इक नारि सयानी। पूजै साध महातम जानी॥
जैन धर्म में बहुत मलीना। सुनि कर बात कान उन दीन्हा॥

भोर भये देखौं कब चरना। दीन होइ आओं उन सरना॥
करिया नाम नारि कर होई। कर्मा कही दीन जिन रोई॥
बिरह माहिं जिन राति बिताई। भोर भये उठि कै चल धाई॥
सखि सोइ साथ जात को लीन्ही। पाँच नारि मिलि चलीं अधीनी॥
पूछत पूछत मारग जाई। पाँच पचीस मिले मग माई॥
कोइ न सुनै बात दै काना। पूछै तुलसी केर ठिकाना॥
पूछत पूछत हिरदे भेटी। जिन पुनि जाइ बताई कूटी॥
कुटी आइ चरनन उन लीन्हा। दीन डंडवत बिनती कीन्हा॥
मैं तो सरन तुम्हारे स्वामी। चरन देहु मोहिं अंतरजामी॥

अर्थ–धर्मा तथा कर्मा ने मार्ग पकड़ लिया और लौटकर अपनी काशी नगरी में आए। फिर-अलग अलग अपना मार्ग पकड़ा और अपने घरों में गए। कर्मा के घर में एक चतुर स्त्री रहती थी और साधुओं को महात्मा जानकर उनकी पूजा करती थी। जैन धर्म में बड़ी मलिनता है, यह सुनकर इस बात पर ध्यान दिया। प्रातः होने पर मैं कब महात्मा तुलसी साहब के चरणों को देखूँगी और मैं दीन बनकर उनके चरणों में जाऊँगी॥ इस नारी का नाम करिया था–कर्मा ने जब उसे तुलसी साहब के विषय में बताया तो वह दीन जैसी रो पड़ी। उसने सम्पूर्ण रात्रि विरहिणी जैसी व्यतीत की और प्रातः होते ही वह उठकर चली आई॥

अपनी जाति की सखियों को लेकर वह पाँच नारियों के साथ चल पड़ी। मार्ग में वह पूछते-पूछते चली जा रही थी और धीरे-धीरे उसके साथ पाँच-पचीस और मिल गए। कोई एक दूसरे की बातें नहीं सुन रहा है और सभी तुलसी के ठिकाने को ही पूछ रहे हैं। पूछते-पूछते उसकी भेंट हिरदे से हुई और उन्होंने जाकर कुटी (कूटी-आश्रम) की स्थिति के विषय में बताया। उन सभी ने आकर कुटी में स्वामी जी के चरणों में प्रणाम किया और दीन की भाँति दण्डवत् करके निवेदन किया। हे अन्तर्यामी स्वामी! हम सब आपकी चरणों में है, और आप हमें आश्रय दें॥

॥ दोहा ॥

नारि दीन तुलसी लखी, बोले बचन रसाल।
हीन दीन जेहि देखि कर, दरसन दिये बिसाल॥

अर्थ–तुलसी साहब नारियों को दुखी देखकर रसमयी वाणी में बोले और उन्हें दीन तथा उपेक्षिता समझकर दर्शन दिया॥

॥ चौपाई ॥

करिया देखि तुलसी अस कहिया। कहौ कहाँ सों आवन भइया॥
पुरुष नाम तेहि सखी बताई। कर्मा नारि दरस को आई॥
तुलसी दीन हीन जेहि जानी। करिया पूछ बचन मन मानी॥
हाथ जोरि करिया कहै स्वामी। जग संसार भाव भ्रम खानी॥
जीव गती की राह बतावौ। जग में आइ महा दुख पायौ॥
तुलसी कहै जगत सुख भारी। काहे उदास भई तुम नारी॥

कन्या पुत्र सकल परिवारा। सुख संपति भोगो तुम सारा॥
करिया कहै इक अरज हमारी। या जग सँग संसार दुखारी॥
तन बिनसै जैसे जल ओरा। जग जम जाल करत है जोरा॥
तन सराय दिन चारि बसेरा। या मैं कोऊ न काहू केरा॥
धन संपति दिन चारि बिलासा। पुनि तन छूटि झूठ सब आसा॥
ऐसे या जग का ब्यौहारा। जनम जात जूवा जस हारा॥
जैसे रंग पतंग उड़ाई। हवा जात तन जैसे जाई॥
ये तन मन दिन चारि निवासा। छूटै तन जमपुर में बासा॥
भाई बंद सकल परिवारा। पुत्र सब झूठ पसारा॥
या के संग बूड़त जग जाना। छूटै तन फिर नर्क समाना॥
ये जग संग रंग भँग जाना। आदि अंत नहिं मिलै ठिकाना॥
या से साध संग सुखकारी। ऐसे ज्वाब दीन्ह तेहि नारी॥

अर्थ–करिया को देखकर तुलसी साहब ने इस प्रकार कहा–कहो! कहाँ से तुम्हारा आगमन हुआ है। उसकी सखी ने उसके पति का नाम बताया और कहा की कर्मा की पत्नी यह तुम्हारे दर्शन के लिए आई हुई है। जिसे तुलसी साहब ने दीन-हीन समझा था उस करिया ने मन की स्वेच्छा से प्रश्न पूछा। करिया हाथ जोड़कर बोली–हे स्वामी! यह संसार भ्रम की भावना की खानि है। जीव की सद्गति का आप मुझे मार्ग बतलाएँ क्योंकि यह जीव इस संसार में आकर बड़ा ही दुःख प्राप्त करता है॥

तुलसी कहते हैं कि इस संसार में अनेक प्रकार के संकट हैं–हे नारी! तुम उदास क्यों होती है। कन्या, पुत्र एवं समस्त परिवार और इसमें तुमने सम्पूर्ण सुख सम्पत्ति भोग कर ली है। करिया कहती है कि हमारी एक ही प्रार्थना है वह यह कि इस संसार के साथ सभी दुःखी हैं। यह शरीर उसी प्रकार नष्ट होता है जैसे बर्फ का ओला। इस संसार में यम देवता का जाल बड़ी शक्ति लगाता रहता है। यह संसार एक सराय है, और इसमें निवास केवल चार दिनों का है और इसमें कोई किसी का नहीं है। धन-सम्पत्ति ये सब चार दिनों के विलास हैं। उसके बाद यह शरीर छूट जाएगा–सारी आशाएँ झूठी हो चलेंगी। इस संसार का व्यवहार इसी प्रकार का है–सारा जन्म उसी प्रकार चला जाता है–जैसे जुए की हार। जैसे आनन्द से पतंग का उड़ाना–उसी तरह यह शरीर भी धीरे-धीरे हवा में विलीन होती जाती है।

यह शरीर तथा मन इस संसार में चार दिनों का निवास है और शरीर छूटते ही यमपुर में व्यक्ति का निवास शुरू हो जाता है। भाई-बन्धु (बन्द) एवं समस्त परिवार, पत्नी तथा पुत्र उनकी स्थिति मिथ्या है। इनके साथ ही समस्त संसार डूब जाता है फिर नरक के सदृश यह संसार छूट जाता है।

अनेकानेक सुखभोगों से सम्पृक्त यह संसार नष्ट होता है और आदि अन्त तक इसका ठिकाना नहीं मिलता-इसीलिए इस संसार में साधुओं का साथ सुखकारी है–ऐसा उत्तर उन समस्त नारियों ने दिया।

॥ दोहा॥

करिया कहै स्वामी सुनौ, झूठा जगत पसार।
लोभ मोह मद फँसि रहे, क्यों कर उतरै पार॥

अर्थ–करिया ने कहा कि हे स्वामी तुलसी साहब! आप सुनें, इस संसार का प्रसार (प्रपंच) मिथ्या है। मनुष्य यहाँ-लोभ, मोह, मद आदि में फँसा हुआ है, वह इस भवसागर से पार क्यों हो?

॥ चौपाई ॥

तुलसी करिया बहुत भुलाई। ता के मन में एक न आई॥
पहिले जगत भाव दरसावा। ता के मनहि झूठ सब भावा॥
ऐसी नारि पोढ़ जब जानी। मन तेहि केर परम पहिचानी॥
बुद्धि सुद्ध सीतल चित गाता। हित कर बचन प्रीति की बाता॥
बिरह भाव बिधि हिरदे भीनी। ऐसी नारि पार रस चीन्ही॥
ऐसा तोल बोल जब जाना। तब तेहि सगरा भेद बखाना॥
गुप्त बेद सत सत सरसावा। ता कर हिया उमँगी अस आवा॥
दीन्ही सुरति संध तेहि हाथा। अज्ञा ले पुनि नायौ माथा॥
संग सखी सब अचरज लाई। कौन बस्तु येहि काने सुनाई॥
घट का चार बसेरा पाई। पुनि सिर नाय पाँय घर आई॥
कर्मा नारि पूछ बिख्याता। कहौ कहाँ गइ कौन साथा॥
तब करिया बरतंत सुनावा। तुलसी बरनन बिधी बता[illegible]॥
सुनि कर्मा मन भयो अनंदा। अब तोर छूट काल कर फंदा॥
करिया संग सखी इक जैनी। ता कर नाम रहै पुनि सैनी॥
तुलसी दरस गई दरबारा। पुरुष भेद सुनि पायौ सारा॥
सुना पुरुष तेहि भर्म समाना। नारि गई घर भया बिराना॥
पुरुष नाम है कालू जेही। नग्र लोग कहि बरजत तेही॥
कालू नारि धाइ धमकाई। ये फकीर ढिग जान न पाई॥
कालू कहै मोर दुखदाई। जन्क लोग थूकै मुख माई॥
मोरी पाग आब तैं खोवा। अस कहि धाइ धाइ कै रोवा॥
पाड़ पड़ोसन अस समझावै। अब यह कहूँ जान नहिं पावै॥
सब घर टेरि टेरि कह दीन्हा। घर बाहर इन जान न दीन्हा॥
निकर सकै नहिं बाहर जाई। घर में बैठि हिये दुख पाई॥
तुलसी ज्ञान तेहि हिये समावा। कर तुलसी तुलसी गोहरावा॥
पुनि तेहि नारि कार एक कीन्हा। हेमा कहार बुलाइ उन लीन्हा॥
तेहि सन कहि तुलसी बिधिसारी। दरसन करौं स्वामी दरबारी॥
वा को दिये टका दुइ चारी। गये तुलसी जहँ कुटी सँवारी॥

अर्थ–तुलसी साहब ने करिया को बहुत भुलावा दिया किन्तु उसके मन में उस भुलावे की एक भी बात न आई॥ सबसे पहले, उन्होंने लोकभाव की संक्ति बतलाई किन्तु उनके मन में वह सब झूँठा लगा॥ ऐसे नारी को जब उन्होंने प्रबुद्ध समझा और उसके मन का मर्म पहचान गए। उसकी बुद्धि शुद्ध

चित्त तथा शरीर शीतल-हित भरे वचनों एवं प्रीतिभारी संतों को (पहचान गए)। विधाता ने उसके हृदय को ईश्वर के विरह भाव से संसक्त तथा वह ऐसी नारी थी–जिसने परमात्मा के रस को पहचान लिया था। तुलसी साहब ने जब उसके हृदय की यह गरिमा समझी तब उन्होंने उसे समस्त भेद बताया।।

उसे शत-शत गुप्त भेदों से ज्ञान कराया और उस समय अध्यात्मिक सम्पृक्ति से उसका हृदय उमंगित हो उठा। उसके हाथ में तुलसी साहब ने सुरति सिंधु दिया और फिर गुरु से आज्ञा लेकर उसने शीश झुकाया।

समस्त सखियाँ आश्चर्य से भर उठीं–और सोचने लगी कि गुरु ने कौन ऐसी बात इसके कान में २ु ग दी। उन घट के भीतर आत्मा के चार निवास स्थानों को समझ लिया और फिर तुलसी साहब के सिर पर पाँव झुका कर अपने घर लौटी।।

कर्मा ने उस विदुषी नारी से पूछा कि बताओ, जिसके साथ कहाँ गई थी। तब करिया ने वह समस्त वृतान्त सुनाया और तुलसी की वार्ता एवं साधना विधि बताई। उसे सुनकर कर्मा का मन आनन्दित हो उठा और बोला कि अब तुम्हारा यम (मृत्यु) का फंदा टूट गया। करिया के साथ उसकी एक जैनी सखी थी उसका नाम सैनी था। तुलसी साहब के दर्शन के निमित्र उनके दरबार में गई पर उसके पति ने उसके जाने का सम्पूर्ण रहस्य समझा। जब स्वामी तुलसी साहब के यहाँ जाने की बात सुनी तो उसके हृदय में भ्रम समा गया। मेरी नारी अन्य पुरुष (अज्ञात बिराने पुरुष) के यहाँ गई है। पुरुष का नाम कालू था और उसके इस आचरण पर नगर के लोग रोक रहे थे।

॥ चौपाई ॥

हिदै अहीर मिल्या तेही बाटी। हेमा ताहि भेंटि चढ़ि घाटी॥
जिन सैंनी बरतंत सुनाया। हिरदे चल ता के घर आया॥
सैनी हिरदे से लौ लाई। स्वामी कुटी मोहिं देव बताई॥
ता के जाइ मैं परसौं पाँई। दरसन मिलै और नहिं चाही॥

अर्थ–कालू ने जाकर अपनी पत्नी को धमकाया–कि वह फकीर के पास जाने न पाये। वह कहता है कि उसका किसी फकीर के पास जाना दुःखकर है–जगत के लोग उसके इस कार्य पर मेरे मुख पर थूँकेगे। इसने मेरा मौर (प्रतिष्ठा), मेरी पगड़ी (इज्जत) और मेरी आबरू (आब) नष्ट कर दी और ऐसा कहता हुआ वह दौड़-दौड़ कर रो रहा था। उसे पास (पास के) तथा पड़ोसी इस प्रकार समझा रहे थे–अब पड़ोसी इस बात को कहने लगे कि अब वह कहीं जाने न पाये। आसपास के सारे पड़ोसियों को रो-रोकर कह दिया कि यह मेरी पत्नी घर के बाहर जाने न पाये।

उसकी पत्नी घर के बाहर नहीं निकल सकती थी और घर में बैठी-बैठी हृदय से दुःखी रहा करती थी। तुलसी साहब का ज्ञान उसने चित्त में समा गया था और वह तुलसी -तुलसी कहकर पुकारती रहती थी। उसके बाद उस नारी ने एक सेवक किया और उसने हेमा कहार को बुला लिया। उसने तुलसी के विषय में सारी बातें बताई और कहा कि मैं उन स्वामी का उनके दरबार में दर्शन करना चाहती हूँ। उसको दो-चार रूपए दिए और वह वहाँ गया–जहाँ तुलसी ने अपनी कुटी सँवार रखी थी।

वह मार्ग में हृदय अहीर से मिला और वह हेमा कहार घाटी पर चढ़कर उससे मिला। उसने सैनी का सारा वृत्तान्त सुनाया और वह हृदय चलकर उसके (सैनी ने) घर आया॥ उसने (सैनी ने) कहा कि मैं स्वामी के चरण का स्पर्श करना चाहती हूँ जिससे उनका दर्शन मिल जाए–मैं और कुछ नहीं चाहती।

॥ सोरठा ॥

हिरदे कहै सुन बात, सैनी सावित धीर धर।
ये सब जगत लबार, या से बच करि चालिये।

अर्थ–हृदय अहीर ने कहा, तुम मेरी बातें सुनों–हे सैनी। तू पूरी तरह से हृदय में धैर्य धारण कर यह सारा संसार लबार है, इससे बचकर चलो॥

॥ दोहा ॥

सैनी मन धीरज नहीं, बिरह बिथा की लार।
सार भेद मो से कहौ, तब दिल समझि सिहार॥ १॥
हिरदे कहै सैनी सुनौ, सूरति देउ लखाइ।
लै लगाइ ऊपर चढ़ौ, निज घर अपना पाइ॥ २॥

अर्थ–विरह व्यथा की संसक्ति से पीड़ित सैनी के मन में धैर्य नहीं रह गया–आध्यात्मिक तत्त्व का रहस्य मुझे उन्होंने बताया था तब से उसे हृदय में समझ कर पीड़ा हुई थी॥ १॥

हृदय ने कहा, हे सैनी! सुनो, मैं तुझे सुरति समाधि दिखा दूँ–तुम ध्यान लगाकर उस समाधि में ऊपर चढ़ों और अपना घर तुम पा जाओगी॥ २॥

॥ चौपाई ॥

हिरदे तेहि को सुरति लखाई। पुनि उठि कै अपने घर आई॥
तुलसी से सब कथा सुनाई। सुनि तुलसी कै मन सुख पाई॥
एक दिवस ऐसी बिधि भयऊ। सैनी करिया के ढिंग गयऊ॥
करिया ने अस बचन उचारा। तुलसी पैं चलिहैं दोउ लारा॥
प्रात राति चलिहैं दोउ संगा। तैं अपना चित करौ न भंगा॥
समझ बूझ अपने घर आई। चलने की बिधि मति ठहराई॥
निस पुनि बीत गई अधराती। पुनि दोउ उठि चाली संग साथी॥
पहुँची तहाँ कुटी निज साजा। तुलसी तुलसी करै अवाजा॥

अर्थ–हृदय ने उसे सुरति दिखा दी और वह पुन: उठकर अपने घर आया और तुलसी साहब से सारी कथा सुना दी, जिससे सुनकर उनके मन को सुख मिला॥

एक दिन ऐसी घटना घटी कि सैनी करिया के पास गई। करिया ने उससे इस प्रकार कहा कि हम दोनों उनके भक्त तुलसी साहब तक चलें। सबेरे की रात दोनों साथ-साथ चलेंगी और तुम अपने मन को दुखी न करो। वह समझ बूझकर अपने घर आई और चलने की स्थिति के विषय में मन में तय किया। पुन: आधी रात बीत गई फिर दोनों ने साथ उठकर चल दिया। जहाँ तुलसी साहब ने अपनी कुटी सजा रखी थी वहाँ पहुँच कर तुलसी तुलसी की पुकार करने लगीं॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी पूछै बात, अर्ध राति कस आइया।
करिया कहि बिख्यात, सैनी के सँग में चली॥

अर्थ–तुलसी उनसे पूछते हैं कि आधीरात को आप लोग क्यों आईं–करिया ने स्पष्ट किया कि वह सैनी के साथ चली है (चलकर आई है)॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी कहै सुनौ तुम बाता। कस आई तुम आधी राता॥
करिया सैनी कहै कर जोरा। तुम्हरे दरसन को मन ठौरा॥

अब इक अरज सुनौ हो स्वामी। तुम मोहिं दीन्ह सुरति सहदानी॥
सुरति सैल हम निस दिन पाला। सो तुम सुनियौ दीनदयाला॥
दृग द्वारे दीसै इक खिरकी। ता में होइ सुरति मोहि सरकी॥
चढ़ि गइ चटक जाइ वहि द्वारा। फटिक सिला के होगइ पारा॥
वहँ जो कौतुक देखा जाई। सो स्वामी सब भाखि सुनाई॥
तहँवाँ लोक अलोक समाना। ता का कहिये कौन बिधाना॥
ता के परे अधर रस देखा। नहिं तहँ लोक अलोक अलेखा॥
जो निज नैन निरखि कै जानी। मुक्ती भरै वहाँ कौ पानी॥
अस अस कहत रात गइ बीती। मन परतीत काल सों जीती॥
भोर भयौ जब आज्ञा लीन्ही। सूरति उठी गवन तब कीन्ही॥
करिया सैनी चरन पखारी। आज्ञा लेकर भवन सिधारी॥

अर्थ–तुलसी साहब ने कहा कि तुम लोग मेरी बातों को सुनो, तुम आधी रात क्यों आई हुई हो। करिया तथा सैनी दोनों हाथ जोड़कर कहती हैं–आपके दर्शन के लिए हमारे मन में स्थिति (ठौर) था।

हे स्वामी! अब हमारी एक प्रार्थना सुनो, आपने हमें उपहार के रूप में सुरति समाधि दे दी है। सुरति समाधि के आनन्द को हम प्रतिदिन लेते हैं–हे दीन दयालु स्वामी! आप इसे सुनें। नेत्र के दरवाजे पर एक खिड़की दिखाई पड़ती है–उसमें हमें निरन्तर सुरति की साधना होती रहती है। उस द्वार तक उत्साह के साथ पहुँच गई और स्फटिक शिला के उस पर चली गई॥

वहाँ जाकर जो कौतुक हम लोगों ने देखा –हे स्वामी! हम लोग उसे कह कर सुनाते हैं। वहाँ एक लोक-अलोक जैसा है उसके विधान के विषय में आप बतायें। उसके उस पार अन्तरात्मा के आनन्द को देखा–न वहाँ कोई लोक था, न अलोक था, और न कुछ भी आदर्शनीय था।

जिसे अपने नेत्रों द्वारा हमने पूरी तरह से निरख करके देखा था वह यह कि मुक्ति वहाँ पानी भरने का कार्य करती है। ऐसा-ऐसा कहते हुए सारी रात बीत गई–मन के विश्वास ने काल को भी जीत लिया। प्रातः होने के बाद उन्होंने आज्ञा दी–सूरति ज्ञान समाप्त हुआ और वे चल पड़ीं। करिया तथा नैनी ने तुलसी साहब के चरण धोये तथा उनकी आज्ञा लेकर घर चल पड़ीं॥

॥ सोरठा॥

गई भवन के माहिं, तुलसी सब्द निरखत चलै।
उठै घोर घरमाहिं, ता में निस दिन बसि रहै॥

अर्थ–वे अपने गृहों को चली गई–तुलसी साहब उनके जाने की ध्वनि सुनते रहे–शब्द धक्के बराबर उठते रहे–और उसी में वे समाधिस्थ रहीं।

॥ चौपाई॥

करिया सैनी घरहि सिधाई। अपने अपने मंदिर आई॥
निस दिन उठै गगन घनघोरा। ता में अटकि रहै मन मोरा॥
कर्मा धर्मा रहे पुनि दोई। भोर भये उठि पहुँचे सोई॥
तीजे सेख तकी उठि धाये। तीनों मिलि तुलसी पै आये॥
बैठे भेद भाव सब चीन्हा। तीनों बात आपनी कीन्हा॥

धर्मा कर्मा भेद बतावा। निज निरबान भेद हम पावा॥
सो निरबान पार इक द्वारा। निरखा फटिक सिला के पारा॥
जहँवाँ देखा पुरुष नियारा। ता की सोभा अगम अपारा॥
ता का भेद निरबान न पावै। नैन सो देखि नजर में आवै॥
कर्मा धर्मा बोले बोली। गुप्त राखि परगट नहिं खोली॥
दोउ मिलि भाखी अस अस बाता। तुलसी समझि लीन्ह बिख्याता॥
सेख तकी उठि है तब बोला। अपनी बिधी बात सब खोला॥
खुदावंत इक अरज हमारी। मैं मुरीद मुरसिद को लारी॥
फजल नजर मेरे पर कीजै। मेरी अरज चित्त में दीजै॥
बंदे ने बकसीसी पाई। सो हजरत मैं कहौं सुनाई॥
एक रोज फजल अस कीदा। रूह चढ़ गई अगम के दीदा॥
चौधा तबक देख वहँ जाजा। जहाँ नबी की उठै अवाजा॥
रूह दौड़ पट अंबरा तोड़ा। चौधा तबक रूह से फोड़ा॥
लै लगि जाइ लाइ के माईं। साहिब रब्ब बसै तेहि ठाँईं॥
चूँ बेचूँ बेज्वाबी साँईं। वो साहिब दिल अंदर पाई॥
खुद खुदाइ वो मालिक प्यारा। मुहम्मद खुदा दोऊ से न्यारा॥
अल्ला नबी रसूल न जाना। चौधा तबक से अधर ठिकाना॥

अर्थ–करिया तथा सैंनी घर की ओर चल पड़ीं और फिर वे अपने-अपने घर पहुँची।

रात दिन मन में घनघोर घटाएँ उठती थीं–उसी में निरन्तर हमारा मन अटका रहता है। धर्मा तथा कर्मा दोनों साथ थे और प्रातः होते ही उठकर वे तुलसी साहब की कुटिया पर पहुँचे। तीसरे-शेखतकी भी उठकर दौड़े और तीनों मिलकर तुलसी के पास आए॥

वे सभी बैठे, और तुलसी साहब ने उनके सम्पूर्ण भेदभावों को समझ लिया। धर्मा कर्मा ने अपने भेद बताए और यह भी बताया कि हमने अपने निर्वाण का भेद प्राप्त कर लिया है॥

उस निर्वाण के पार एक द्वार है और उसके पार उन्होंने स्फटिक शिला देखी–वहाँ उन्होंने एक विलक्षण पुरुष देखा–उसकी शोभ अगम्य तथा अपार है। उसके रहस्य को निर्वाण भी नहीं समझ सकता था–नेत्र उसे जिस भी प्रकार से देखें, वह दृष्टि गोचर हो रहा था।

कर्मा धर्मा उसे देखकर परस्पर कह रहे थे, इसके विषय में गुप्त ही रखो, उसे बताकर स्पष्ट न करो। दोनों ने मिलकर इस प्रकार कहा, किन्तु समझदार तुलसी उनकी बातें समझ गए।

उसके पश्चात् शेख तकी तब उठकर बोले, आपने अपनी तरह से सारे रहस्यों को बताया है। वे खुदावन्त, हमारी एक प्रार्थना है–मैं आपका मुरीद तथा आपका भक्त हूँ। मेरे ऊपर कृपादृष्टि (फजल नजर) करें और मेरी प्रार्थना आप अपने मन में रख लें। मुझ बंदे ने यह पुरस्कार प्राप्त किया है–उसे आपको सुनाकर कह रहा हूँ॥

॥ सोरठा ॥

तकी तका निज खेल, मुरसिद तुलसी सो कहै।
यहि बिधि कीन्ही सैल, सो अदबुद अंदर लखा॥

अर्थ–इस तकी मियाँ ने सारा रहस्य समझ लिया है। धर्मगुरु तो तुलसी साहब ही हैं। उन्होंने इस प्रकार आनन्द तत्त्व को व्यक्त किया है जिसे अद्‌भुत तत्त्व के रूप में मैंने स्वयं अपने में ही देखा है।

॥ चौपाई ॥

कहै तकी सुन मुरसिद प्यारे। मिहर फजल से जाइ निहारे॥
हर दम रूह लहर लहराई। बिरह भाव हर वक्त सताई॥
रूह लिपट लिपट तेहि बूझै। साम सुबह कुछ और न सूझै॥
दम दम बिरह लहर अकुलानी। जेहि बिधि मीन भुलानी पानी॥
अस्त रबी जस कँवल बँधाना। चंदा अस्त कमोदनि जाना॥
चंदा अस्त बीत जब जाई। तब वा की कह बिरह समाई॥
ये जहान खिलकत है अंधा। बिरह भाव बूझै कोइ बंदा॥

अर्थ–तकी साहब ने कहा कि हे प्यारे धर्म गुरु! सुनें, आपने मुझे अपनी कृपा दृष्टि से देखा है। प्रतिक्षण मेरी आत्मा में तरंगे लहरें लेती हैं और प्रतिक्षण विरह भाव सताता रहता है। आत्मा प्रत्येक क्षण उससे लिपट-लिपट कर बूझती है और सुबह-शाम उसको इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सूझता है। हर क्षण आत्मा आनन्द और विरह की लहरों में लिपटी रहती है जैसे मछली रात-दिन पानी के अन्दर भूली भटकी रहती है। सूर्यास्त होने पर जैसे कमल का सर्वस्व पंखुरियों में बंद हो उठता है और चन्द्रमा के अस्त होने पर जैसे कमलिनी में बंद हो उठती है। चन्द्रमा के अस्त उस कमलिनी को उसके न होने की पीड़ा का अनुभव होने लगता है। यह सम्पूर्ण सृष्टि अंधी है, उसे कुछ सूझ नहीं रहा है किन्तु मुझ जैसा कोई साधक उस अगम्य तत्त्व के विरह में अंधा हो रहा है।

॥ सोरठा ॥

कमोदनि बिलखाई, चंद अस्त आसिक गये।
बिलखै बिरह बेहाल, चंद देखि निस हरखही॥

अर्थ–कमलिनी चन्द्रमा के अस्त होने पर बिलखने लगती है कि उसका प्रेमी चला गया और विरह में बेहाल होकर बिलखती रहती है किन्तु रात्रि में उसे देखकर वह आनन्दित हो उठती है॥

॥ चौपाई ॥

सेख तकी दिल बिरह समानी। आवै न बात नैन बहै पानी॥
दम दम बिकल खुदाइ पुकारी। तन मन सुध बुध सकल बिसारी॥

अर्थ–शेख तकी के हृदय में उस अगम्य का विरह समागय बातें मुँह से नहीं निकलती। नेत्रों से आसू गिर रहे हैं। प्रतिक्षण व्याकुल होकर खुदा को पुकार रहे है और शरीर तथा मन की सारी सुध बुध खो बैठे हैं।

॥ शेर ॥

बेहोशिये आदम से, वह ख्याल जुदा है।
बाहर जो है मुहम्मद, अंतर में खुदा है॥

अर्थ–बेहोश व्यक्ति भी संज्ञाहीन हो उठता है कि साधक की यह साधना उस बेहोशी से भिन्न है। जिसे बाहर हम मुहम्मद साहब कहते हैं–वही अन्दर से अल्लाह खुदा है॥

॥ सद १ ॥

ऐ बेहोस प्यारे तैं यार बिसारा।
खिलकत का खेल सबै झूठ पसारा ॥ १ ॥
इक पल में फना होत देख जक्त असारा।
इन नैनों से देख तेरा कौन हैं यारा ॥ २ ॥
अपनी तू आदि देख कहँ से आया।
उस यार को बिसार के लौ कहँ को लाया ॥ ३ ॥
हम ने दिल बीच यार अन्दर पाया।
उस बिरहिन के तन में रोम रोम में छाया ॥ ४ ॥
वो मरती बेहाल पिया पिया पुकारै।
तन मन में नहिं होश नहीं बदन निहारै ॥ ५ ॥
ऐसी बेहोश सहै सूल कटारी।
जैसे मन बीच सेल तेगा मारी ॥ ६ ॥
ऐसी बिरहिन के बीच बिरह सँवारी।
सोई बिरहिन तो लगै पिउ को प्यारी ॥ ७ ॥
जा का यह हाल सोई अधर सिधारी।
तुलसी सो नारि भई जग से न्यारी ॥ ८ ॥

अर्थ–हे बेहोश नासाधक तूने अपने यार को भूल गया और तुम इस संसार के झूठे खेल में फँस गए क्योंकि संसार ने अपना यह सारा झूँठा खेल फैला रहा है ॥ १ ॥

देखो, यह सारा संसार एक क्षण में ही विनष्ट हो उठता है और इन बिवेक की दृष्टि से देखो कि यहाँ तुम्हारा सगा कौन है ॥ २ ॥

तु अपनी आदिस्थली (उद्‌गम स्थल) देखो और समझों कि कहाँ से आया है और अपने उस युगों युगों के साथी (अगम्य तत्त्व) को भूलकर अपनी संसक्ति किसमें लगाए हुए हो ॥ ३ ॥

हमने तो उसे अपने परमप्रिय दोस्त को हृदय के अन्दर ही प्राप्त किया है और इस विरहिणी के रोएं-रोएं में उसका वह प्रियतम छाया हुआ है ॥ ४ ॥

वह बेहाल होकर मरणासन्न दशा में प्रियतम-प्रियतम कहकर पुकार रही है। उसके शरीर और मन में लेश मात्र भी चेतना नहीं है और वह रात-दिन का प्रियतम-हा प्रियतम कहकर पुकारती रहती हैं ॥ ५ ॥

वह इस प्रकार बेहोशी में कटारी के घाव की पीड़ा निरन्तर सह रही है जैसे शरीर के ऊपर किसी भाले और तलवार चला दी हो ॥ ६ ॥

ऐसी ही मुझ बिरहिणी के बीच आकर यह विरध्वेदना सँवारी हुई है–यह देखते कि सेठी ही विरहिणियाँ प्रियतम को भली लगती हैं ॥ ७ ॥

जिसकी ऐसी बिरह दशा है, वही अगम्य प्रभु ने पास पहुँचती है और तुलसी साहब कहते हैं कि वह साधक रूपी नारी उस अगम्य तत्त्व को संसार में सबसे प्रिय हो उठती है ॥ ८ ॥

॥ गजल १ ॥

अरे ए तकी तकते रहो, मुर्शिद ने दस्त पंजा दिया।
बेहोश बिरह बिरहिन लिया, पिय पीर की बातैं कहौ॥ १॥
अरे ऐ शिनाबी आ पिया, बिरहा सरप मुझको डसा।
निसरै न चंदा जाय के, सूझै नहीं नैनन किया॥ २॥
चंदा बेदरदी तैं हुआ, दरदी कमोदिन क्या किया।
हर दम बिरह में हूँ बिकल, चंदा बिना दम दम मुआ॥ ३॥
बिरहिन पिया बेहोश है, तन मन बदन सूझै नहीं।
बूझै चशम बिन क्या कहै, दिल हेर रहम-दिल दोस्त है॥ ४॥
हर वक्त हाजिर मैं खड़ी, नैना नजर नदियाँ बहीं।
याँ कोई मेरा महरम नहीं, अब तो चरन में आ पड़ी॥ ५॥
आशिक इशक हर दम लहर, दिल से जुदा दरदी हुआ।
कहौं क्या जो सिर खटकै जुवा, हर दम हिये बिच में लहर॥ ६॥
इस इश्क में गाफिल फिरौं, कहुँ बस नहीं बेहोश हौं।
दम की खबर कुछ ना रहै, अब तो दिलै बिच में मरौं॥ ७॥
पल पल इसमें दिल यों किया, ये तलब के ताईं चहौं।
तुलसी तकी खुब समझ के, तब यार का मारग लिया॥ ८॥

अर्थ–अरे, हे तकी, इसी प्रकार देखते रहो, उस मुर्शिद ने हाथ का पंजा लगाया है–उसने उस विरह की विरहिणी को मूर्च्छा की दशा में डाल दिया है और अब उसे उस प्रिय की पीड़ा की बातें सुनाओ॥ १॥

अरे ओ (विष झाड़ने वाला) प्रिय तू आ–मुझे तो विरह सर्प ने डस लिया है। इतना अँधेरा है, चन्द्रमा भी वहाँ जाकर नहीं उगता और नेत्रों के द्वारा कुछ भी नहीं सूझ रहा है॥ २॥

हे चन्द्रमा! तू बेदर्दी हो चुका है–तुमने कुमुदिनी के दर्द की मुक्ति के लिए क्या किया–हर क्षण मैं कुमुदिनी की भाँति विरह में व्याकुल हो रहा हूँ और बिना चन्द्रमा के मेरी चेतना क्षण-क्षण खतम हाती जा रही है॥ ३॥

हे प्रिय! यह विरहिणी बेहोश है, उसे न शरीर सूझता है और न मन। उसे बिना आँखों से देखे क्या कहे–हे रहम दिल दोस्त। यह दिल तुझे खोज रहा है॥ ४॥

हर क्षण आपके दर्शनों के लिए मैं हाजिर खड़ी हूँ, हमारे नेत्रों से निगाहों की नदियाँ बह चली है–यहाँ आपके अतिरिक्त अन्य कोई मददगार नहीं है और अब मैं आपके चरणों में आ पड़ी हूँ। मुझे अंगीकार कर लें॥

मेरे प्रियतम के प्रेम की लहरें निरन्तर उमंगित होती रहती हैं–वह दर्द देने वाला जैसे मेरी आत्मा से अलग हो चुका है–यह जुबान तो जुबान ही है, मैं इसे क्या कहूँ–मेरे हृदय में प्रतिक्षण मेरे प्रियतम की याद उमंगित होती रहती है।

मैं उसके प्रेम में गाफ़िल भटक रहा हूँ। उस पर मेरा कोई वश नहीं है, मैं तो निरन्तर उसी के लिए बेहोश हूँ। अब मेरी शक्ति का कुछ अता-पता नहीं है–लगता है, इस दिल के बीच ही मेरी मौत होगी॥ ७॥

उसने पल-पल के लिए इस दिल को ऐसा बना दिया है कि मैं उसके नशे की तरह चाह रहा हूँ। तुलसी साहब कहते हैं कि हे तकी! तू खूब अच्छी तरह समझ ले और तब इस प्रियतम दोस्त के लिए मार्ग पकड़ो॥ ८॥

॥ गजल २॥

अरे ऐ तकी दीदार दिल, दिल दिल दिलों बिच तिल में दिल।
नैना नजर से आन मिल, खिल खिल खुशी दिल कर मियाँ॥ १॥
चल गैल गेंद तक आज पिल, ऐसे हिये बिच आन हिल।
झोका न दे दर्दी जलल, अरे हाल मिल फिर ना निकल॥ २॥
दिल दूर से दरदी फजल, इस राह से पहुँचे मँजल।
अरे बूझ ले सुझै अदल, उसकी मेहर दिल में शकल॥ ३॥
मन मार हो दिल में कुसल, प्यारा अधर आवै अजल।
ये वक्त फिर आवै न कल, पानी बिना पावै न थल॥ ४॥
देखो नजर कोइ ना अचल, भल भल भला सोई सथल।
तुलसी तकी मुर्शिद से मिल, कर दोस्ती फिर बेखलल॥ ५॥

अर्थ—दे दीदार दिल तकी! दिलों के बीच स्थित वह दिल (यार) ऐसा है—जैसे तिल में दिल जैसा सूक्ष्म तत्त्व। उसको तुम नेत्रों की नजर से देखो, और मिलो। उससे मिलकर अपने दिल को खुशी से भर ले॥ १॥

तू चलकर गली में डुलती गेंद को पकड़ने जैसे पिलकर उसे प्राप्त करो और गली जैसे अपने हृदय में तू चलो। कोई अन्य दर्द वाला जलल तुझे धोखा न दे पाए और जब उसके लिए तू प्रतिबद्ध हो तो फिर किसी तरह से उससे अलग न हो॥ २॥

वह दर्द देने वाला दयालु ईश्वर दिल से भी बहुत दूर है और इस रास्ते से तू उसके मंजिल तक पहुँचो॥ ३॥

मन को नियंत्रित करके ताकि हृदय में स्थित वह तुमसे सही ढंग से जुड़ा रहे और वह प्रियतम अन्तर्रात्मा से जिससे अजल आता रहे। यह समय कल फिर नहीं लौटेगा और बिना पानी (साधना) के वह स्थल नहीं प्राप्त होगा। ॥ ४॥

अपनी नजरों से भलीभाँति देख लो—कोई अडिग (अमर) नहीं है जो भलीभाँति किया हुआ हित (भला) है, वही अच्छा स्थल है। तुलसी साहब कहते हैं कि हे तकी! अपने आराध्य से मिलकर फिर वेफिक्र उनसे दोस्ती करो॥ ५॥

॥ गजल ३॥

तिल में नकल न्यारी अकल, मुर्शिद शकल रूह राह चल।
चल आज मिल पावै असल, पी प्यार मिल सोवै अचल॥ १॥
नल राह रल गुस्ले कँवल, पावै तु फल होवै सुफल।
अरे ऐ मुसाफिर जल्द चल, होगा वहाँ तुझ पर फजल॥ २॥
अज आज अल कूकै कँवल, स्वाँसा निकल हर दम खलल।
झल झिल झिलल आमिल अमल, पल पल परे पर पाखिलल॥ ३॥

तकी जो तुल तुलसी अतुल, देखौ जलल ये जहान फल।
कुछ ना असल हम हैं अबल, आखिर निकल न्यारा हुआ॥ ४॥

अर्थ–उसकी ऐसी विलक्षण चित्त शक्ति है कि वह तिल जैसी छोटी वस्तु की नकल बना देता है, अतः हे साधक तुम धर्मगुरु के ही तरीके से धर्म की राह पर चलो॥ १॥

हे साधक, उस श्वास साधना के मार्ग पर ही चलो, तुम उस साधना के पवित्र कमल दल को प्राप्त करोगे और तुम्हारे जीवन का परिणाम सार्थक हो उठेगा। हे यात्री! तू जल्दी-से-जल्दी उस मार्ग पर चलो, वहाँ तुम्हारे ऊपर शीघ्र ही उस अनादि शक्ति की कृपा होगी॥ २॥

आज ही उस तुम्हारी साधना से प्रभावित होकर कमल से ध्वनि निकलेगी और तुम्हारी श्वास निकल कर हमेशा ऊर्ध्वगमन करेगी। हे ख्वाहिशमन्द तुम्हारी सम्पूर्ण आध्यात्मिक आकांक्षाएँ झिलझिलाती हुई आगे बढेंगी और तुम्हारे दुर्गण दूर होंगे॥ ३॥

तुलसी साहब कहते हैं कि हे शेखतकी! इस अतुलनीय तत्त्व को देखो, यह इस सृष्टि का सत्य तत्त्व है। उसके अतिरिक्त और कुछ सत्य नहीं है, हम तो मनुष्य के रूप में तो नितान्त निर्बल हैं और इसीलिए वह परम तत्त्व हमसे पृथक् हो उठा है, उसे साधना द्वारा प्राप्त करो॥ ४॥

॥ रेखता॥

दिल दिल दिया हुलसै पिया, दीदा लहर हर दम मेहर।
पाऊँ खुशी आशिक रहूँ, दिल से रहम-दिल यारिया॥ १॥
मेरे मियाँ मैं प्यारिया, तन मन बदन सब वारिया।
बदनाम सुद्ध बिसारिया, रहूँ लै लपट नैनों जिया॥ २॥
माँगूँ मेहर कीजै किया, इस इश्क से आशिक लिया।
लागी रहूँ हर दम हिया, मानो मनो सब कुछ दिया॥ ३॥
पाऊँ मेहर महलन रहूँ, आऊँ अटारी कर कहूँ।
बिजली अँध्यारी सम चहूँ, उमगै कड़क बदरी सहूँ॥ ४॥
चुनरी रँगीली रँग चुवा, पानी घटा हर दम धुआँ।
कोइ ना अकेली लार लै, हर दम मियाँ मनुआँ मुआ॥ ५॥
खिलकत खलक थूकै सुवा, तन मन बदन हारी जुवा।
पौढ़ी पलँग हर वक्त सुवा, जागूँ मेहर माँगूँ दुआ॥ ६॥
अरे ये अधर आदर करौं, ये जक्त की जाली जरौं।
भावै नहीं जेवर जहर, तुलसी तकी खिलकत मरौ॥ ७॥

अर्थ–अपना दिल प्रियतम के दिल को दे दिया–प्रियतम इससे उमंगित है। हमने प्यार की लहर देख ली और वह मुझ पर हर क्षण कृपालु हैं। मैं उनका निरन्तर प्रेमी बना रहूँ, इसकी खुशी हमेशा मिलती रहे–वह मेरा प्रियतम निश्चित ही दिल से (स्वभाव से) कृपालु है॥ १॥

हे मेरे स्वामी! मैं तो आपकी प्रिया हूँ और मैंने आपके प्रति तन-मन एवं शरीर सब कुछ अर्पित कर चुकी हूँ। मैं तो आपके लिए सदा बदनाम हूँ–आप मुझे भूल जाते हैं–किन्तु मैं तो आपको नेत्रों में लिपट कर निरन्तर देखती और जीती रहती हूँ॥ २॥

मैं आप से आपकी प्राप्ति की कृपा माँगती हूँ जो करणीय है, उसे आप करें। इस आपके प्रेमी ने

इसी प्रेम से आपको प्राप्त किया है। मेरी कामना यही है कि मैं हरदम आपके हृदय से लगी रहूँ। हमें लगता है मानो मेरे मन को आपने सब कुछ दे दिया है॥ ३॥

मैं आपकी दया प्राप्त करके आपके साथ आपके ही महल में ही रहूँ और कभी-कभी (आज जहाँ हैं) उस अटारी (अट्टालिया, कोठे) पर आऊँ। वहाँ आकर मैं बादलों की कड़कड़ाहट सुनूँ, जहाँ अँधेरे में बिजली-जैसी चमक होती रहती है।। ४॥

पानी बरसने से मेरी रंगीली चुनरी का सारा रंग चू गया है–जब पानी थम हुआ तो हर दम (कुहरे का) धुँआ उठ पड़ा। मैं अकेली हूँ–कोई मुझे प्यार भी नहीं दे रहा है–हे प्रियतम! मेरा मन प्रतिक्षण आपके बिना मृत-सा है॥

मैं अपना शरीर, मन तथा अपनी चेतना हार चुकी हूँ। सम्पूर्ण संसार खिलकत मुझपर घृणा करके भूल रहा है--मैं चिन्ता में डूबी हुई निरन्तर पलँग पर लेटी रहती हूँ और जगने पर आपकी ही दया और आपका ही आशीर्वाद मांगती रहती हूँ॥ ७॥

॥ दोहा॥

तुलसी तकी निहार, निकर न्यार पारै हुआ।
खुद खुदाइ की लार, जग जहान सगरा हुआ॥

अर्थ–तुलसी साहब ने इतना कहने के बाद तकी को देखा–वह (तकी साहब) इस संदेह एवं सांसक्ति से निकल कर बाहर हो उठे थे–वे स्वयं ईश्वर की संसक्ति बन गए? और सारा संसार उनका अपना हो गया॥

॥ छन्द॥

तुलसी तक पाया अगम लखाया, गिरा गजल सोइ भाखि कही॥
सूरति चढ़ि जागी अगम को भागी, लखा अलख की आदि भई॥
देखा सब न्यारा अगम पसारा, मुरसिद ने जद राह दई॥
तकी तलब बुझानी प्यारा जानी, खुद खुदाइ की राह लई॥
मुरसिद मत पाया दस्तन आया, फजल मेहर की मौज भई॥
रूह चढ़ी असमाना फोड़ निसाना, देखि आदि की आदि कही॥

अर्थ–तुलसी साहब ने शेख तकी को प्राप्त करके उन्हें अगम्य तत्त्व दिखाया और अपनी वाणी से (आध्यात्मिक संदर्भ युक्त) वही गजल भी गाकर सुनाई। संदेह तथा संसक्ति से निकल कर उनका सुरति ध्यान अगम्य की ओर भागा और उन्होंने आदितत्त्व के रूप में वर्णित अलक्ष्य तत्त्व को देखा॥

उस अगम्य में फैले समस्त विलक्षण तत्त्वों को देखा और उन्हें आध्यात्मिक गुरु ने जब परमात्मा की राह दी। उस परम तत्त्व को जानने के बाद शेख तकी की सम्पूर्ण जिज्ञासामयी प्यास बुझ गई और वे स्वयं ब्रह्म (खुदा) के मार्ग पर चल पड़े॥

आध्यात्मिक गुरु का मत प्राप्त हो गया और वह परम तत्त्व उनके हाथों में आ गया तथा उस प्रभु की आनन्दमयी कृपा हुई–षट् चक्र का भेदन करके उनकी आत्मा शून्याकाश में चढ़ चली और आदिकाल से स्थित बताई गई उस आदि आत्मा को देखा॥

॥ दोहा॥

तकी तलब मुरसिद भरी, तुलसी पीर हमार।
दस्त फजल अपना करौ, रहम रब्ब दरबार॥ १॥

मुरसिद फजल गुलाम पर, करौ रहम-दिल प्यार।
अबै हुकम मुझ पर करौ, अज्ञा होइ दीदार॥ २॥

अर्थ–उन आध्यात्मिक गुरु मुर्शीद ने उनकी (शेख तकी की) सारी आध्यात्मिक जिज्ञासा शान्त की और शेख तकी साहब कह उठे तुलसी साहब ही मेरे पीर हैं। अपना दया भरा हाथ मुझपर सदैव रखे रहें, और मैं उनके दरबार में रहम (कृपा) प्राप्त करता रहूँ॥

आध्यात्मिक गुरु की कृपा इस दास पर सदा रहे और दिल से आप मुझ पर कृपा एवं प्यार करते रहें। अब मुझे हुक्म दीजिए–आपकी दीदार भरी आज्ञा मेरे प्रति हो।

॥ चौपाई॥

तुलसी हुकम तकी को दीन्हा। पुनि चलि कै मारग उन लीन्हा॥
मारग चलि पुनि कासी आये। अपने घर को आन सिधाये॥

अर्थ–तुलसी साहब ने शेख तकी को आज्ञा दी और तब चलकर मार्ग पकड़ा। मार्ग चलते हुए वे काशी पहुँचे और फिर अपने घर की ओर चले गए।

॥ दोहा॥

कर्मा धर्मा अरु तकी, करिया सैनी नार।
बस्तु पाइ मारग गहे, दीन्हा पंथ लखाई॥

अर्थ–धर्मा, कर्मा तथा शेख तकी एवं रिया तथा सैनी नामक स्त्रियों ने आध्यात्मिक वस्तु पाकर मार्ग पकड़ा क्योंकि तुलसी साहब ने उन्हें आध्यात्मिक मार्ग दिखा दिया था॥

सम्बाद माना, नैनू, स्यामा पंडितों के साथ

॥ दोहा॥

नैनू पंडित और सब, स्यामा सब मिलि झार।
कहै भेद तुलसी सुनौ, तुम कीन्हा झूठ पसार॥

अर्थ–नैनू पंडित एवं श्यामा के साथ सभी मिलकर आवेशित हुए और बोले, हे तुलसी! सुनो, तुम रहस्य की बातें करते हो–सबको भ्रमित करके मिथ्या झूँठा ज्ञान प्रसार की बातें करते हो॥

॥ सोरठा॥

नैनू गुसा गुहार, हार हिये मन तमक से।
बोला बचन बिकार, तुलसी तुम मिथ्या कही॥ १॥
स्यामा सोच बिचार, अनल झार हिये उठत जिमि।
क्रोध कुबुधि की लार, लटी लटी कर कर कही॥ २॥
माना मान अपूर, झूर झूर बोलै सबै।
बुधि बल मत का कूर, चूर अंग अज्ञान में॥ ३॥

अर्थ–नैनू पंडित हृदय में हारे हुए क्रोध और गुहार लगाते हुए मन के तमक से आवेशित विकृत विचार युक्त वाणी बोले, हे तुलसी तुमने सारी बातें गलत की हैं॥ १॥

स्याम और भी क्रोधित थे–उनका सोच-विचार तो ऐसा था जैसे हृदय से आग की लपटें उठ रही

हों। तुलसी साहब कहते हैं कि क्रोध कुबुद्धि की संसक्ति है (क्रोध से कुबुद्धि पैदा होती है) और वह मनुष्य की बुद्धि से लिपटी उसके अंग-अंग को वश में किए रहती है॥ २॥

मान-अपमान से भरे हुए सभी निष्ठुरता से बात करते हैं और इस क्रोध के कारण अज्ञान (अविवेक) से आवेष्ठित हुए बुद्धि, बल, चैतन्य से निष्ठुर हैं॥ ३॥

॥ चौपाई॥

नैनू स्यामा यों कर बोले। नाक फुलाइ बचन अस खोले॥
नैन सुरख और मूछैं मोड़ी। भुजा चढ़ी पुनि भौंहैं टेढ़ी॥
मुख सों कड़कि स्वाल अस डारा। तुलसी तुम से करिहौं रारा॥
तुलसी कहौ आदि बिख्याता। नैनू पूछै सब बिधि बाता॥
बेद पुरान आदि गति गावौ। और ब्रह्मा की आदि बतावौ॥
सिव स्वामी अरु बिस्नु बिचारा। कहौ आदि रचना बिस्तारा॥
भये भगवान दसौ औतारा। और बैराट का कहौ पसारा॥
ब्रह्मा कहौ कहाँ से अइया। उन रचना कौने बिधि करिया॥
सातौ दीप और नौखंडा। केहि बिधि रचा सकल ब्रह्मंडा॥
तब साधू तुम पूरे ज्ञानी। आदि अंत की करौ बखानी॥
स्त्रावग तुरक मता दरसावा। ये गरीब को ज्वाब न आवा॥

अर्थ–नैनू एवं श्याम पंडित तुलसी साहब से इस प्रकार बोले, नाकें फुलाते हुए (क्रोध में) वे इस प्रकार की वाणी बोले। आँखें (क्रोध से) लाल-लाल थीं और मूछें मोड़ी रखीं थीं, भुजाएँ चढ़ीं थीं और फिर भौंहें टेढ़ी थी। मुख से कड़कते हुए इस प्रकार का तुलसी साहब से प्रश्न किया–हम सब तुझसे लड़ाई-झगड़ा करेंगे। सैनू ने पूछा–हे तुलसी साहब! उस आदि बिख्यात तत्त्व के विषय में कहिए और वे हर प्रकार से उसके विषय में बातें पूछ रहे थे॥

बेद-पुराण आदि में वर्णित ज्ञान का विवेचन करें–और ब्रह्म से परे उस आदि तत्त्व के बारे में बताइये। स्वामी शिव और विष्णु पर विचार करते हुए आदिकाल से विस्तारित इस सृष्टि की बातें बताओ॥

भगवान विष्णु के दशावतार हुए हैं और फिर इस विराट सृष्टि के विस्तार के बारे में बताइये। बताओ, यह ब्रह्माजी, कहाँ से आए और उन्होंने यह सृष्टि रचना किस विधि से की। उन्होंने सात दीप, नौ खण्ड एवं समस्त ब्रह्मांडों की रचना कैसे की?

यदि यह सब बता देते है तो तुम साधु एवं पूर्ण ज्ञानी हो। जैन स्त्रावगों एवं शेख तकी के तुरक मत को बताकर ज्ञानी बन गए और इन बेचारे गरीबों (नासमझों) की समझ में भी कुछ नहीं आ सका॥

सम्बाद माना, नैनू, स्यामा पंडितों के साथ

॥ चौपाई॥

हम पंडित बिद्या बिधि आगर। बेद बिधी से कहौ उजागर॥
हम सँग जीति जाव गुरु ज्ञानी। तुम्हरा साध मता तब जानी॥
बिना पुरान ज्ञान कहँ पावा। बिन सास्तर कहौ कहँ से आवा॥
बेद बिना काहू नहिं पावा। या के परे कोऊ नहिं गावा॥

ब्यास मुनी जो पुरान बनाये। नारद सुकदेव को समझाये॥
राम कृष्न बिधि भाख्यो भेवा। जोगी ऋषी मुनी सब देवा॥
सब उठाइ अपना मत ठानै। बेद बिधी बिन हम नहिं मानैं॥
सब पंडित मिलि टेकी टेका। बिना निसान नहिं मानै एका॥
होहोकार सबन बहु कीन्हा। कासी माहिं रहन को दीन्हा॥
कौन मते का साध कहावै। सब को झूठ झूठ बतलाबै॥
यह पुनि साध कहाँ से आवा। कौन गुरू यह ज्ञान पढ़ावा॥
नैनू नैन गुसा भरि लाये। सरक सरक हमरे ढिंग आये॥
कह तुलसी तुम कहौ जवाबा। अब कस मौन बैठि मोरे बाबा॥

अर्थ–हम पंडित जन है और विद्या विधि के अग्रणी हैं और आप अपने ज्ञान को वेद विधि द्वारा उजागर (स्पष्ट) करो। हे गुरु ज्ञानी। यदि आप हम सभी लोगों से जीत जावेंगे तो तब हम तुम्हारे साधु मन (की श्रेष्ठता) समझेंगे॥

किसी को बिना पुराणों के ज्ञान कहाँ मिलता है। इन पुराण ज्ञान से परे कोई ज्ञान नहीं आता। व्यास मुनि ने पुराणों की रचना की और उन्होंने नारद एवं शुकदेव को समझाया। उन्होंने राम तथा कृष्ण के भेदों का निरूपण किया और उसे योगिजन, ऋषिगण एवं देवताओं ने भी सुना है। तुम सब को दबाकर अपने मत का वर्णन करते हो किन्तु हम सब वेद विधि से शून्य ज्ञान को नहीं स्वीकार करते।

इस प्रकार, सारे पंडितों ने मिलकर टेकाटेकी (जोर देकर दबाव डालना) की। बिना सही-सही लक्षणों (निसान) के हम एक भी बात नहीं मानेंगे। उन सभी ने मिल चिल्लाहट (हो-हो) की बहुत अधिक ध्वनियां की और कहा कि तुम्हें हम सबने काशी में रहने की जगह दी है, किन्तु यह समझ में नहीं आता कि तुम किस मत के साधु हो--और सभी को ज्ञान की झूंठी बातें बतलाते रहते हो। वे सभी पंडित अत्यन्त क्रोध के साथ बोले, यह साधु कहाँ से आया है, किस गुरु ने इसे ज्ञान पढ़ाया है। नैनू एवं सैनू पंडित क्रोध से भर उठे और खिसक-खिसक कर हमारे पास तक आ गए और बोले–हे तुलसी! तुम हमारी बातों का उत्तर दो, हे मेरे बाबा! अब मौन क्यों बैठे हो।

॥ दोहा ॥

नैनू पंडित तमक सों, कह तुलसी से बात।
इक इक बिधि बतलाइ दे, नहिं होइहै उतपात॥

अर्थ--नैनू पंडित तमकते हुए तुलसी साहब से बात करते हैं--हमारे प्रश्नों के एक-एक करके उत्तर दे दो–नहीं तो (अभी) उत्पादत खड़ा हो उठेगा॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥

॥ दोहा ॥

कह तुलसी नैनू सुनौ, मोरा मनिहौ बात।
पूछा सोई बताइहौं, जो चित बसै बिख्यात॥

अर्थ–तुलसी साहब ने कहा, हे नैनू पंडित सुनें और मेरी बातों को मानें। आपने जो पूछा है, मैं उसी के विषय में बताऊँगा–वह चित्त के अन्तर्गत अत्यन्त विख्यात तत्त्व बनकर निवास करता है॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी ज्वाब धीर सों दीन्हा। सुनौ भेद भाखौं मैं चीन्हा॥
भाखौं आदि साध गति न्यारी। नैनू बूझौ बुधि अनुसारी॥
कह तुलसी सुन नैनू पाँडे। पंडित सुनौ सबै चित माँडे॥
कौन बेद की आदि बखानौं। पंडित कहौ सोई मैं मानौं॥
वेद चारि ब्रह्मा निज कीन्हा। पंचम सुषम बेद को चीन्हा॥
छठवाँ प्रसंगै बेद कहाई। वा की बिधी सुनौ हो भाई॥
चारि बेद जो गुप्त रहाई। ता में कागद लगै न स्याही॥
ता को भेद बेद नहिं जानै। ता के परे कहे को मानै॥

अर्थ—तुलसी साहब के अत्यन्त धैर्यपूर्वक उत्तर दिया। मैं उन रहस्यों का वर्णन करता हूँ जिनको मैंने जान लिया है। सबसे पहले आदि तत्त्व की विलक्षण ज्ञान का वर्णन करता हूँ—हे नैनू! मेरी बात को बुद्धि लगाकर समझो॥

तुलसी साहब ने कहा, हे नैनू सुनें, और समस्त पंडित भी चित्त देकर मेरी बात सुनें। वेद के आदि में कौन था, मैं उसका वर्णन करता हूँ—हे पंडितों मैं जिसे कह रहा हूँ, मैं उसी को मानता हूँ। चारों वेदों की रचना ब्रह्मा ने की और पाँचवें सूक्ष्म बेद को भी उन्होंने पहचाना। इसमें छठवाँ प्रसंग भी वेद कहा जाता है—उसकी विधि के विषय में हे भाइयों! सुनों॥

जो चारों वेदों के अतिरिक्त गुप्त वेद हैं, उसमें न कागज लगता है और न स्याही। उनका भेद वेद भी नहीं जानते, इसलिए उनके परे मेरे कहने को कौन विश्वास करेगा॥

॥ सोरठा ॥

बेद दसौ बिधि गाई, का की पूछौ आदि तुम।
सो मैं देउँ बताइ, नैनू स्यामा भाखिये॥

अर्थ—बेद ने दसों सृष्टिविधियों का गान किया है—तुम उनमें से किसकी आदि विधि पूछ रहे हो। हे नैनू तथा स्यामा पंडित!—बताइये मैं उसी के विषय में बता दूँ॥

॥ उत्तर नैनू पंडित ॥

॥ चौपाई ॥

तब नैनू कुछ ज्वाब न दीन्हा। मौन रहे कुछ बोल न कीन्हा॥
तुलसी दसौ बेद बिधि गाई। कौन बेद की आदि बताई॥
और ब्रह्मा की आदि बखानी। ब्रह्मा अनेक भये उतपानी॥
कइ उपजे कइ बिनसे भाई। कइ कइ परे कर्म भौ माईं॥
पूछौ जौन कहौं जेहि नामा। भाखौं सोइ मैं कहौं बिधाना॥
सिव बिस्नू पुनि भये अनेका। नाम कहौ बरनन करौं जिनका॥
और भगवान दसौ औतारा। जिनका कहौ कहौं निरबारा॥
बहुत बहुत औतारी भइया। जेहि पूछौ तेहि की हम कहिया॥
पुनि बैराट पूछिया ज्ञाना। भये बैराट अनेक बिधाना॥

फूटै बनैं बनै फिरि फूटै। ऐसे अनेक बार पुनि टूटै॥
जैसे कुम्हरा घड़ा बनाई। फूटै घड़ा काम नहिं आई॥
झूठा अस बैराट बनावा। ज्यौं बाजीगर आम लगावा॥
आम लगाइ जगत दिखलावैं। पुनि कौड़ी माँगन को आवै॥
रूप बैराट अनेकन कहिया। पुनि पुनि नास सबन को भइया॥
पुनि पुनि आवै पुनि पुनि जाइ। ये सब हैं परलय के माईं॥
जिन के भये दसौ औतारा। अंधा जग तेहि कहै करतारा॥
कर्म बंध वे उपजे आई। पुनि पुनि उपजै पुनि पुनि जाई॥
कइ बैराट नास ह्वै गइया। औतारी कैसे कर रहिया॥
ता कौ नाम कहौ भगवाना। आये पुनि पुनि बहुरि नसाना॥
नास पाल बिधि इन की होई। और बैराट नसे सब कोई॥
ब्रह्मा नाभि कँवल से भाखौ। फिरि फिरि नास भयौ पुनिता कौ॥
ब्रह्मा बिष्नु की कहौं बुझाई। नसि बैराट येहू नसि जाई॥
चारि खानि के जीव बिचारा। इन का कौन करै निरबारा॥
मरिहै धरती पवन अकासा। पानी मरै अगिनि कौ नासा॥
ऐसे सब बैराट नसाना। सो ब्रह्मा का कौन ठिकाना॥

अर्थ–तब नैनू ने कोई जबाब नहीं दिया, चुप रहे और उनके मुख से बोली नहीं निकली। तुलसी साहब ने वेद की दसों विधियाँ गाई और वेद के आदि कौन है, यह बतलाया। इसके बाद, ब्रह्मा की आदि का वर्णन किया और बताया कि ब्रह्मा अनेक रूपों में अनेक उत्पन्न हुए। कितने ब्रह्मा उत्पन्न हुए, कितने विनष्ट हुए और किन्तु इस कर्म जगत के माया जाला में फँस गए।

जिसके बारे में पूछो, मैं उनके नाम बताऊँ और मैं उनके ही उस विधान का वर्णन करूँ–जिसे उन्होंने बताया है।

शिव एवं विष्णु भी पुनः अनेक हुए जिनका मैं नाम कहता हुआ, वर्णन कर रहा हूँ। यही नहीं, भगवान के भी दसों अवतारों में जिनके विषय में कहो मैं उनके विषय में निर्णय बताऊँ। हे भाई! अनेकानेक अवतारी हुए हैं, और आप लोग जिनके विषय में पूछे, उसे बताऊँ॥

इसके बाद ब्रह्मांड के ज्ञान के विषय में पूछना–बैराट अनेक हुए हैं, और उनके विधान भी भिन्न-भिन्न है। ब्रह्मांड एवं अंड फूटते हैं, बनते हैं, फिर फूटते हैं और ये इसी प्रकार टूटते हैं। जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है और घड़ा फूट जाने पर किसी काम में नहीं आता–ठीक उसी प्रकार, यह विराट ब्रह्मांड भी असत्य बना है। जैसे बाजीगर द्वारा लगाया गया कल्पित आम का पेड़। आम का पेड़, लगाकर वह संसार भर को दिखलाता है और फिर उसके बदले (तमाशा दिखाने के बदले) कौड़ियाँ मागने के लिए आता है। बैराट के अनेक रूप बताये गए हैं, और उनका पुनः पुनः नाश होता रहता है। यह पुनः पुनः सृजित होकर आता है और नष्ट होकर चला जाता है। ये सभी के सभी बैराट प्रलय के साथी हैं। जिन विष्णु के दस अवतार हुए है, यह अंधा संसार उन्हें सृष्टि का सर्जक बताता है।

वे कर्मबंधन में आकर उत्पन्न होते हैं, पुनः पुनः उपजते हैं, पुनः पुनः स्वर्ग लोक सिधारते हैं। हे नैनू, पंडित बताएँ–अगर बैराग ही (उनका आधार ब्रह्मांड) ही विनष्ट हो उठा तो यह अवतारी पुरुष कैसे बचा रह जाएगा।. जिनका नाम, आप लोग भगवान बतलाते हैं, वे यहाँ बार बार आकर बार-बार

विनष्ट होते रहते हैं। ये पलते हैं और विनष्ट होते हैं और बैराट के नष्ट होते ही सभी विनष्ट हो उठते हैं। विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति कही गई है और उनका तो बार-बार विनाश होता रहता है। मैं ब्रह्मा तथा विष्णु की बातें कर रहा हूँ—यदि ब्रह्मांड नष्ट हो उठता है। जो क्या ये नहीं नष्ट हो जाएँगे। चारों योनियों के जीवों पर भी विचार करें, इनका निराकरण कौन करेगा। पृथ्वी, वायु, आकाश ये महाभूत तत्त्व भी मर जाएँगे और जल भी मरेगा तथा अग्नि का भी नाश हो जाएगा। यह समग्र बैराट जब ऐसे ही विनष्ट हो उठेगा तो उस ब्रह्मा का क्या ठौर ठिकाना है?

॥ उत्तर नैनू पंडित ॥

॥ दोहा ॥

नैनू कहै तुलसी सुनौ, सब बैराट नसाइ।
भगवान है इक बृच्छ पै, जब जल बास रहाइ॥

अर्थ—नैनू पंडित कहते है कि हे तुलसी साहब सुनें, जब समस्त ब्रह्मांड विनष्ट हो उठता है और केवल जल ही बचता है तब भगवान विष्णु एक वृक्ष (अक्षयवटवृक्ष) के पत्ते पर रहते है॥

॥ चौपाई ॥

नैनू कहै जल रहै निदाना। अछै बृच्छ पर श्रीभगवाना॥

अर्थ—नैनू पंडित ने बताया कि उस समय सृष्टि में केवल जल ही जल रहता है और उस अक्षयवट वृक्ष पर श्री भगवान जीवित मिलते हैं॥

॥ बचन तुलसी साहिब ॥

॥ चौपाई ॥

तुम कहौ जल तत रहै निवासा। तौ बैराट कहाँ भयौ नासा॥
जल के जीव जलहि में होई। जल तत जीव जगत रहा सोई॥
रहै भगवान और कोइ नाहीं। तुम अस कहि बिधि भाखि सुनाई॥
नौलख जोनि खानि जल माहीं। जल रहिया वे कैसे जाहीं॥
पिरथी बिन जल कैसे रहिया। पंडित यह बिधि बरनि सुनइया॥
अछै बृच्छ रहै जल जाना। ता पर सैन कीन्ह भगवाना॥
या की बिधि बिधि कहौं बुझाई। पंडित सुनियौ चित्त लगाई॥

अर्थ—यदि तुम कहते हो कि आदि ब्रह्म का जल तत्त्व में निवास रहता है तो विराट सृष्ठि का नाश कैसे हुआ। (क्यों जल भी बैराट का अंग है)। जल के जन्तु जल रहने पर जल ही में निवास करते हैं, और इस प्रकार, जल तत्त्व के साथ जीव और जगत तत्त्व दोनों रहे हैं। जल में केवल भगवान रहते हैं, और कोई नहीं, इस प्रकार तुम कैसी बातें कह रहे हो। जल में नौ लाख योनियों की खान है—जल यदि रहेगा, तो वे कैसे नहीं रहेंगे। हे पंडित! मुझे वह विधि वर्णित करके सुनाइये कि पृथ्वी के बिना जल कैसे रहेगा?—उस जल में अक्षयवट वृक्ष का, उस वृक्ष पर भगवान शयन किए हुए थे, इस शयन विधि की बात तर्कपूर्वक मैं समझा,कर बताता हूँ। हे पंडित! तुम इस बात को ध्यान पूर्वक सुनो॥

॥ प्रलय की सवैया १ ॥

बाम्हन बेद बताइ कहैं, भगवान महाप्रलय सैन कराई॥
भये तत नास बैराट अकास, अछैबट वृच्छ सो पात के माई॥

आतस पिरथी जो पवन नहीं, तब थो न कछू जल जलहि बताई॥
ये बिधि भाखि बिचारि कहैं, तौ कहौ थल बिन जल कैसे रहाई॥
नीर रहै जल जीव सभी, सो पिरथी भये बिन नीर न भाई॥
बैराट बिनास तो ब्रह्मा की नास, तो बेद बिनास भयौ जल माई॥
कागद स्याही न कलम बची, तुलसी तब की बिधि कौन सुनाई॥

अर्थ--ब्राह्मण वेद की बात कहकर महाप्रलय में भगवान को शयन करा देते हैं। सारे तत्त्वों का विनाश, बैराट, आकाश के विनष्ट होने की बात कहकर अक्षयवट वृक्ष के पत्ते पर भगवान की चर्चा करते हैं।

अग्नि, पृथ्वी, वायु कुछ भी नहीं था और तब कुछ भी नहीं था--किन्तु जब जल ही जल था, ये ऐसा कहते हैं--ये इस प्रकार विचार करके अपनी बातें कहते हैं किन्तु (तुम्हीं बताओ) स्थल के बिना जल कैसे रह सकता है?

जल में समस्त जल जीव रहते हैं और बिना पृथ्वी के जल भी नहीं रह सकता। यदि बैराट का विनाश होता है तो ब्रह्म का भी नाश समझो और तब न स्याही थी, न कलम बच पाई थी--न कागज था तब तुलसी साहब कहते हैं कि यह सब कैसे कह कर सुनाया गया॥

॥ सवैया २ ॥

महा परलय जल बेद कहैं, सुन भेद बिना सब झूठ कहानी॥
पाँचहि तत्त बैराट नसौ, और ब्रह्मा नसौ नसी बेद की बानी॥
नाद गयै नस बेद बहे, जब कौन कही बिधि बात बखानी॥
ज्ञान विचार से बूझि कहौ, तब सूझि परै हिये आँखि निसानी॥
नीर भयौ जल तत्त रह्यौ, पिरथी बिन तत्त रह्यौ कस पानी॥
पिरथी भई जुग तत्त सही, पिरथी और नीर के तत्त में खानी॥
जो कोइ जानि बयान करै, भगवान की नाक में स्वाँस समानी॥
स्वाँस बसे तत तन फँसे, सो अकास रहे बिन स्वाँस न बानी॥
चारिहि तत्त रहे रस मन्न, तौ अगिनि कहौ बिधि कैसे नसानी॥
पाँचोइ तत्त कौ ठाट रह्यौ, बैराट नसौ कहौ कैसे बखानी॥
तुलसी तत तोल के बोल कहै, तिन कीहिये आँखि से भाखौ बखानी॥

अर्थ--महाप्रलय काल में जल-ही-जल था बिना रहस्य समझे सारी कहानी झूँठी है। बैराट के पाँचों तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश) जब नष्ट हो उठे तब ब्रह्मा भी नष्ट हो उठे, वेद की वाणियाँ भी नष्ट हो उठीं। नाद (उच्चारण) जब नष्ट हुआ तो वेद भी नष्ट होकर बह गए तब बात किस प्रकार विधाता ने किस प्रकार इन बातों का वर्णन करके कहा। अपने ज्ञान तथा विचार से इन बातों को समझकर बताओ तब आपके प्रज्ञा चक्षु होने का लक्षण समझ में आएगा॥

सम्पूर्ण सृष्टि जलमयी थी, जल ही एक मात्र तत्त्व था। बताओ, बिना पृथ्वी के जल तत्त्व कैसे रहेगा? यह सत्य है--कि जल और पृथ्वी दो तत्त्व हो सकते हैं किन्तु पृथ्वी और जल तत्त्वों में जीवों का समूह (खानि) निवास करता है। जो कोई यह समझकर वर्णन करता है कि श्वास भगवान विष्णु की नासिका में निवास करता था--यदि श्वास में वायु थी, तब तीन तत्त्वों। (पृथ्वी, जल एवं वायु) का

अस्तित्व था। और जब वायु है तो यह भी सत्य है कि बिना आकाश और वाणी के कैसे रह सकता है? यदि चार ही महाभूत तत्त्व परस्पर समग्न होकर थे तो बताओ, बेचारी अग्नि, किस प्रकार नष्ठ हो उठी॥

पाँचों तत्त्वों का यदि स्वरूप रहा है तब बताइये, यह विराट सृष्टि कैसे नष्ट हुई। तुलसी साहब इन पाँचों तत्त्वों के सार तत्त्व को तौलकर बताते है, जो उनके हृदय में वर्तमान है, मैं उसे आँख से देखकर वर्णित कर रहा हूँ॥

॥ सवैया ३ ॥

बास बैराट भयौ तत नास, सो पाँच कौ बास न स्वाँस रह्यौ थो।
आदि अकास कौ भास नसौ, पिरथी और पवन निवास नहीं थो॥
और अनल जल रह्यौ कछु नाहिं, यह बोल रह्यौ जाको बास कहाँ थो।
तुलसी जब की बिधि बात कहौ, जब कागद स्याही न बेद रह्यौ थो।।

अर्थ–वैराट में निवास करने वाले पाँचों तत्त्वों का विनाश होने पर पाँचों का निवास स्वास में कैसे रहेगा? यदि मूल आकाश का स्वरूप नष्ट हो उठेगा तो पृथ्वी और वायु का निवास नहीं रहेगा। तब अग्नि और जल कुछ भी नहीं रहेगा–और वह ध्वनि भी नहीं थी–क्यों फिर इसका निवास क्या होगा? हे पंडित नैनू और स्यामा! तुम लोग जब की बातें कहते हो–तब न कागज था, न स्याही थी, और न वेद थे।

॥ उत्तर पंडित। सवैया ४॥

बाम्हन ज्वाब दियौ तुलसी, परलय जल और रहै कछु नाहीं॥
यदि बिधि बेद बताइ कहै, सोइ स्वाँस में बेद भयौ सो बताही॥
सबही बैराट नसै कोइ नाहिं, जल बृच्छ भगवान सो पात के माहीं॥
और कहैं कछु रहत नहीं, सोइ स्वाँस में बेद रहै बतलाहीं॥
तुलसी सुनि के मन मौन गही, सुन बोल बैराट में स्वाँस नसाही॥

अर्थ–उन ब्राह्मणों ने तुलसी साहब को उत्तर दिया उस प्रलय युग में जल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। यदि वेद की विधि बताते हो तो बताया गया है कि चारों बेद ब्रह्म की श्वास में थे। समस्त वैराट नष्ट हो चुके थे, इस जल में स्थित वटवृक्ष एक पत्ते पर भगवान थे। कहा गया है कि और कुछ नहीं रहता केवल भगवान की श्वास में वेद स्थित थे। तुलसी साहब उनकी बात सुनकर चुप हो रहे और पंडितों ने कहा है कि ध्वनि एवं श्वास दोनों वैराट में विलीन होकर नष्ट हो गए॥

॥ सवैया ५ ॥

पवन रही जोइ प्रलय कही, ये तो बिधि बात मिली नहिं भाई॥
अकास और स्वाँस सब तत्त रहैं, सोइ मत्त येही बिधि बेद बताई॥
नास भये कोइ नाहिं रहै, जब जोइ रह्यो जाके पार सुनाई॥
पंडित तोल न बोल कही, तुलसी चुप बैठि न बात बताई॥

अर्थ–वायु थी, जिसे प्रलय कहा गया हैं– इस तरह की बातें कहीं वर्णित नहीं मिली हैं। श्वास और आकाश में दोनों तत्त्व थे–इस मत को वेदों ने इसी प्रकार बताया है किन्तु विनाश हो जाने के बाद कोई नही रहता, और जो रहता है, उसके बाद कोई नहीं रहता, और जो रहता है, उसके बाद कुछ है–ऐसा सुनाई पड़ता है। पंडितों ने बहुत नाप तौल कर बातें नहीं कही। अतः तुलसी साहब उसे सुनकर चुपचाप बैठे रहे, कोई उत्तर नहीं दिया॥

॥ बचन तुलसी साहिब ॥

॥ सवैया ६ ॥

पंडित मौन कहै तुलसी, अब भाखि कहौं सुन भेद बताई॥
नास अकास पवन पिरथी, जल नास अनल्ल न कोइ रहाई॥
ब्रह्मा और बेद बैराट नसौ, सिव चंद न सूर न तारे तराई॥
निरगुन नास निवास नहीं, सोइ सरगुन सृष्टि की कौन चलाई॥
ये लखि भेद कहै तुलसी, पुनि परलय भइ ता की लेख लखाई॥

अर्थ–पंडितगणों को मौन देखकर तुलसी साहब कहते हैं कि अब मैं वर्णन करके सारे रहस्यों को बतलाता हूँ–आप लोग सुनें, आकाश, वायु, पृथ्वी, जल, अग्नि का नाश हो जाता है, यहाँ कोई नहीं बचता। ब्रह्मा, वेद तथा वैराट सभी विनष्ट हो उठते हैं–न शिव रहते हैं, न चन्द्रमा रहता है, न तारे हैं और न क्षितिज है। निर्गुण तत्त्व भी विनष्ट हो उठता है, उसका कहीं निवास स्थल नहीं रहता–तो बताइये, इस सगुण सृष्टि को कौन चलाएगा॥ इन सारे रहस्यों को देखकर तुलसी साहब कहते हैं कि प्रलय हो जाने के बाद उसी प्रलय की स्थिति दिखाई पड़ने लगती है, उसका वर्णन कौन कैसे करे।

॥ सवैया ७ ॥

आदि अनादि अगाधि बिधी सुन, याद करिलेकहौं महाप्रलय गाई।
प्रथम पवन कौ भास नस्यौ, पुनि नीर नस्यौ मिलि स्वाँस के माई।
नीर औ स्वाँस में मन अगिनी, चलै तीनों भास अकास में जाई।
चारिहि तत्त के मत्त मिलै, पुनि पिरथी नसी वोहि बास में आई।
पाँचहि तत्त कौ नास भयौ, नसि आइ समाने अलख के माई।
आदि अलख और जोति नसी, सो बसे अविगत्ति में जाइ जो भाई।
अविगति नास की बात कहौं, नसि जाइ के हँस में वास कराई।
आतम हंस प्रमातम बन्स, सो ये दोउ नसि गये सुन्न के माई।
सुन्न नसी और धुन्न नसी, सोइ जाइ लसे दोउ सब्द के माई।
सब्द का नास कहौं पुनि बास, सो सत्तपुरुष में जाइ समाई।
सत्तपुरुष कौ नास नहीं, सुन महा प्रलय बिधि ऐसी बताई।
कोटि प्रलय बिधि आदि अनादि, सो सत्तपुरुष पै एक न जाई।
ता के परे पद आदि अनाम, सो संत बसैं वोहि धाम के माई।
तुलसी निज देखि कै बास बिधी, सोइ पास अनाम के संत समाई॥

अर्थ–आदि, अनादि, अगाध ब्रह्म के विषय में सुनो, मैं महाप्रलय की कथा गा रहा हूँ उसे याद कर लो। सर्वप्रथम वायु का स्वरूप नष्ट हुआ, पुनः जल स्वाँस से मिलकर नष्ट हुआ। नीर और श्वास से मन की अग्नि नष्ट होकर तो भासमान आकाश में चले गए। चारों तत्त्वों के एक में मिल जाने के कारण उसके सम्पर्क में आकर पृथ्वी भी नष्ट हो गई। इस प्रकार पाँचों तत्त्वों का विनाश हो उठा और सभी नष्ट होकर अलक्ष्य तत्त्व में आकर मिल गए। आदि अलक्ष्य और उसकी ज्योति भी नष्ट हो उठी और इस सन्दर्भ में वही रच रहा जो उस अज्ञेय (अविगत) तत्त्वमें जाकर स्थित हो उठा। मैं अब

अविगत के विनाश की बात कर रहा हूँ, वह भी नष्ट होकर हंस में वास करता है। आत्मा रूपी हंस और परमात्मा के परम तत्त्व दोनों विनष्ट होकर शून्य तत्त्व में जाकर विलीन हो गए॥

शून्य लोक भी नष्ट हो गया, ध्वनि लोक भी नष्ट हो गया। ये दोनों जाकर शब्द लोक में निवसित हो उठे। शब्द के विनष्ट हो जाने के बाद उसका निवास जाकर सत्पुरुष में हो गया। इस सत्यपुरुष का विनाश नहीं होता, हे पंडितगण सुनें, महाप्रलय की विधि इस प्रकार की बताई गई है॥

इसके बाद उस आदि एवं अनाम तत्त्व का निवास है, उस धाम में जाकर संत जन निवास करते हैं। तुलसी साहब कहते हैं इस निवास विधि को देखकर संतजन अनाम तत्त्व में समाविष्ट होकर निवास करने लगते हैं।

॥ सवैया ८ ॥

बिस्व बैराट हता नहिं ठाट, सो ब्रह्म की बाट कौ घाट कहाँ थो।
जीव नहीं तब सीव नहीं, पति पीउ के प्यार में जीव बसो थो।
जहँ काल कराल की जाल नहीं, तब साह की कोठी में माल धरो थो।
पिंड ब्रह्मंड न अंड हतौ, तब जीव अजीव न खानि परो थो।
जब ब्रह्मा न बेद न खेद हतौ, तब आयौ अभेद न मारे मरो थो।
तोल कहै तुलसी निज कै, जब जक्त के जीव को सार कहाँ थो।

अर्थ–जब विश्व का विराट ब्रह्मांड ही भलीभाँति नहीं बनाया गया था तब उस ब्रह्म के मार्ग का केन्द्रीय स्थान कहाँ था–जब जीव भी नहीं था, उसकी सामर्थ्य भी नहीं थी और यह जीव भी अपने प्रियतम के प्यार में प्रेरित नहीं था। न पिंड था, न ब्रह्मांड था, न अंड था, तब जीव एवं अजीव दोनों एक ही खानि में निष्क्रिय पड़े हुए थे। जहाँ इस सृष्टि में भयंकर काल की सत्ता नहीं थी और तब सेठ की कोठी की भाँति उस अनाम तत्त्व में ही सम्पूर्ण जीव एवं अजीव तत्त्व भरे पड़े थे। जब न ब्रह्मा थे, न वेद था और न पीड़ा थी–तब उस समय अभेद भी आया था न किसी के मारने से न मरने वाला अभेद उत्पन्न हुआ। सम्पूर्ण तत्त्वों का निष्कर्ष निकालते हुए तुलसी साहब कहते हैं कि तब इस जगत के जीव का मूल तत्त्व कहाँ था, यह कौन बता सकता है।

॥ सवैया ९ ॥

अंड ब्रह्मंड बैराट न पिंड, अखंड जो ब्रह्म की बाट बताऊँ।
जीव अजीव न ब्रह्म हतौ, जब जोइ हतौ ता कौ भेद सुनाऊँ।
वोहू नहीं कछु और कही, सुन और से भिन्न का भेद लखाऊँ।
आदि न अंत कहै सोइ संत, सो पंथ परे पर पार दिखाऊँ।
तुलसी तब की बिधि बात कहूँ जब कोइ न थो जाके रूप न नाऊँ।

अर्थ–उस समय न अंड था, न वैराट रूप ब्रह्मांड था, न पिंड, था केवल अखंड तत्त्व था–फिर उसका मार्ग कौन बता सकता है। इस जीव एवं अजीव दोनों को जब ब्रह्म ने विनष्ट कर दिया और जब उस समय जिसने नष्ट किया था, उसके भेद का वर्णन करता हूँ। वह नहीं है, उसके अतिरिक्त वह कुछ और कहा जाता है–सुनो, वह अन्य से भिन्न है और मैं उसका भेद वर्णित करता हूँ। सन्त जन कहते हैं कि वह न आदि तत्त्व है, न अन्त तत्त्व है–जो इस मार्ग का अनुसरण कर उसको मैं सृष्टि के उस पार दिखाता हूँ। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं उस परम तत्त्व की उस विधि का वर्णन करता हूँ–जब कोई भी नहीं था, और न किसी का कोई रूप था, न नाम था।

॥ सवैया १० ॥

अब सत्तहि सत्त कहौं मत मूल, नहीं अस्थूल न नाम कहायौ।
आदि अनादि की आदि कहौं, सो अगाध उपाध जो एक न गायौ।
आदि पुरुष निःनाम अनाम, सो ठाम न ठौर न धाम कहायौ।
तास हिलोर भया इक सोर, सोर लहरि समुद्र की खाइ कहायौ।
खाइ का ब्यान कहौ सत नाम, सो धाम रहै सतलोक में आयौ।
नाम निःच्छर की लघुता, रँगता से भये सोला ब्रह्म जनायौ।
तुलसी बिधि ब्रह्म की आदि कही, अब ब्रह्म भयौ जग जीव जो भायौ॥

अर्थ–अब मैं उस मूल तत्त्व को सच-सच कहता हूँ, वह न स्थूल (रूपवान) था और न उसका कोई नाम था। जिसे आदि-अनादि कहा जाता है, उपाधि का वर्णन नहीं है। वह आदि पुरुष निःनाम तथा अनाम था–उसका कोई निवास, न ठिकाना था न उसका धाम (पूज्य स्थल) था। उसके कम्पन से एक भयंकर ध्वनि गूँज उठी–वही शोर समुद्र की लहरों की खाई कहलाई। उस खाई का वर्णन सतनाम से करता हूँ–वह धाम आकर सतलोक में स्थित हुआ। बिना अक्षर वाले नाम की इतनी प्रभुता थी कि उससे रंग की उत्पत्ति हुई और उसने सोलह ब्रह्म को उत्पन्न किया। तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने आदि ब्रह्म के अवतरण की आदि विधि बतलाई है–इस प्रकार ब्रह्म की उत्पत्ति हुई और वह सृष्टि में उत्पन्न जीवों को भला लगा।

॥ सवैया ११ ॥

निरगुन सोला की साखि कहौं, सोइ बास बसै सत दीप के माई।
निरगुन एक की नेक कहौं, बिधि बेद कहै परमातम ताई।
सोइ परमातम सुन्न बसै, ता की धुन्न से आतम जीव कहाई।
मान सरोवर घाट बसै, येही आतम जीव की बाट बताई।
आतम तत्त तमातम मारग, तत्त भये अबिगत्ति कहाई।
तुलसी बिधि बात निहारि कहै, सो पुकारि पुकारि कै कहत सुनाई।

अर्थ–सोलह निर्गुण ब्रह्म का साक्ष्य कहता हूँ, सत्यदीप के पास उनका निवास है, एक निर्गुण ब्रह्म की अल्पकथा कहता हूँ–बेद विधि उसे परमात्मा के नाम से पुकारते हैं। वह परमात्मा शून्य में निवास करता है, उसकी ध्वनि से उत्पन्न जीव तथा आत्मा कहे जाते हैं। वे मानसरोवर के घाट पर निवास करते हैं–इस प्रकार मैंने आत्मा और जीव का मार्ग बताया है। आत्म तत्त्व का मार्ग-अंधकार-प्रकाश है और आत्म तत्त्व हो जाने के कारण वह 'अविगत' के नाम से जाना जाता है। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं सम्पूर्ण विधियों का आत्मदर्शन करके बताता हूँ और यही मैं पुकार-पुकार कर बता रहा हूँ॥

॥ सवैया १२ ॥

अविगति रीति करी जग प्रीति, सो ध्यान से जीति कैमान बढ़ायौ।
सत्त पुरुष की डोरि गही, सो पुरुष के अंस से जीव जो आयौ।
जीव के तेज से जोति भई, जिव जोति मिले भगवान कहायौ।
ता को बैराट कहै नर अंध, सो फंद गुना गुन तीन में गायौ।

अब तत्त की साखि कहौं बिधि भाखि, सो लोग की लाख कौ ताख बनायौ।
कुंभ के उद्र अकास औ स्वाँस, अकास जो तीनोइँ तत्त में आयौ।
पाँचहि तत्त भये बिधि एक, सो याहि कौ नाम बैराट कहायौ।
अकास के नूर से सूर भयौ, तत्त तारे के बंद से चंद चलायौ।
सब ही बिधि बंद बैराट बनौ, बिधि भूलि पिया चित नेक न लायौ।
तुलसी जब की नहिं बात लखी, जब जाही में नाम अलख्य कहायौ॥

अर्थ–अविगत (निर्गुण) ब्रह्म से संसार ने प्रेम किया और उसने अपने ध्यान ने उसे ध्यान द्वारा प्राप्त करके अपना सम्मान बढ़ाया। सत्य पुरुष की डोरी पकड़ कर वह उस पुरुष तत्त्व के अंश द्वारा जीव कहा गया– उसे पकड़ा। इस जीव के तेज द्वारा ज्योति उत्पन्न हुई–और जीव को जब वह ज्योति मिली तो भगवान कहा जाने लगा। अज्ञानी पुरुष उसी को विराट सृष्टि कहते हैं। वह तीन गुणों (तम, रज एवं सत्त्व) के फंदे में निरन्तर फँसा हुआ है।

अब बिधिपूर्वक तत्त्वों की साक्षी का वर्णन करता हूँ। कुंभ के उदर में आकाश और वायु का जन्म हुआ और यही आकाश शेष तीनों तत्त्वों में समाविष्ट हुआ। इस प्रकार, इस विधि से पाँचों तत्त्व एक हो गए–इसलिए इसका नाम विराट पड़ा। आकाश के प्रकाश से सूर्य बना और तारों के तत्त्व बन्धन से चन्द्रमा चल पड़ा। इस प्रकार सूर्य, तारे-चन्द्र एवं पृथ्वी आदि के बन्धन से विराट सृष्टि बनी और सब इसी में भूल गए। प्रियतम ब्रह्म के विषय में किसी ने अपना चित्त नहीं लगाया। उस समय की बात कोई नहीं देखता–क्योंकि उसी अगम्य का नाम 'अलक्ष्य' बताया गया।

॥ सवैया १३ ॥

अलख निरंजन नाम सोई, जिन जोति से भोग कियौ भग जाई।
तीनिहि बुन्द के तीनि भये, सोइ ब्रह्मा बिस्नु महेश हे भाई।
पहिले जग जीव अलख्य हतौ, गन तीनि में मन सो लख्य कहाई।
तुलसी बिष भास में बास बस्यौ, सो फँस्यो बिधि बेद से खानि में आई।

अर्थ–अलख निरंजन वही हैं, जिन्होंने योनि में जाकर ज्योति से भोग किया था। उस अलख निरंजन के वीर्य की तीन बिन्दुओं से ब्रह्मा, विश्नु एवं महेश ये तीनों हुए। संसार के जीव पहले अलक्ष्य थे किन्तु तीन गुणों से आविद्ध होने के कारण वे मन लक्ष्य हो गए। तुलसी साहब कहते हैं कि ये जीव विषय वासनाओं की संसक्ति के कारण वे कर्म कांड आदि की निधियों में फँस इस मृत्यु लोक में आ गए॥

॥ सवैया १४ ॥

चारोइ बेद की आदि कहौं, पुनि पंचम स्वाँस सुषम्म से आयौ।
बेद सुषम की छाया लई, ता से ब्रह्मा ने चारोइ बेद बनायौ।
षटवाँ सोइ बेद प्रसंग जोई, सो आये सुषम्म प्रसंग से गायौ।
ये षट बेद का भेद कही, सो रहे पुनि चार सो संत बतायौ।
चारोइ बेद की आदि कही, सोइ कागद स्याही न लेख लिखायौ।
सुनौ दस बेद कहै तुलसी, सो कहौ पुनि पंडित कौन बनायौ।

अर्थ–मैं चारों वेदों के आदि तत्त्व का वर्णन करता हूँ–जब पांचवी श्वास सुषम्ना में आई, वेद ने तब सुषम्ना की छाया प्राप्त की और उसी से ब्रह्मा ने चारों वेद बनाए। वेद प्रसंग में जिस छठें श्वास की चर्चा है–वह भी सुषम्ना के सन्दर्भ में गाया गया है। ये छवों वेदों का भेद है–जो अन्त में, चार हो गए, ऐसा सन्तों ने बताया है। यही चारों वेदों की आदि है–मैंने इसे बताया है–वह कागज-स्याही द्वारा लिखित लेख के रूप में नहीं लिखा गया है। तुलसी साहब कहते हैं कि दस वेदों के विषय में सुनों, उसे मैं कहता हूँ और पुनः उसे किस पंडित ने बताया है–यह समझो॥

॥ सवैया १५ ॥

लख्य रहा गुन तीनि गहा, सो पलक्क में आ कियौ बास बसेरो।
ऐसे बैराट भयौ सब ठाट, सो घाट तीनों गुन बाट में धेरो।
रजो कहुँ ब्रह्मा सतो कहुँ बिस्नु, कियौ तम संकर साज घनेरो।
भया भगवान बैराट बिधान, सो माया का चाट में काल कौ चेरो।
चंदा रबि नैन नहीं सुख चैन, सो राहु बिमान करै नित फेरो।
देखि दुखी मन राम फिरै, गुन गोरस खानि में कामना पेरो।
तुलसीबिधि आदि बिख्यात कही, भगवान नसौ नहिं कीन्ह निबेरो।

अर्थ–वह सर्वथा लक्ष्य रूप में दिखाई पड़ता था, उसने तीनों गुणों को ग्रहण किया और पलकों में आकर अपना निवास बनाया। इस विराट सृष्टि का सारा ठाठ ठट गया, और उसने तीनों गुणों का मार्ग भी घेर लिया। रजो गुण ब्रह्मा है, सतोगुण विष्णु हैं और तमो गुण ने शिव के अन्तर्गत अपनी साज सज्जा बनाई। इस प्रकार विकार सृष्टि का विधान ब्रह्ममय हो उठा किन्तु वह माया का चाटुकर और काल का दास था॥

सूर्य तथा चन्द्रमा के नेत्रों में शान्ति नहीं थी क्योंकि राहु केतु के विमान उनका निरन्तर चक्कर लगाते थे। इस रूप में अपने को दुखी देखकर उनके मन में रक्षित होने का भाव निरन्तर रहता था और उन्हें लगता था जैसे गुण तत्त्व रूपी गोरख के भंडार को कामना पा रही हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने आदि विधि का वर्णन किया कि (इस देखते-देखते) भगवान नष्ट हो उठे और वे इसका निराकरण नहीं कर पाए॥

॥ सवैया १६ ॥

चारोइ खानि भयौ भगवान, सो याही से नाम अनेक कहायौ।
काल बली कियौ जाल छली, सोइ बाँदि चले जो अनेकन आयौ।
जोगी जती जग ज्ञान मती, सोइ सीता सती और राम को खायौ।
ऋषि मुनि रोवैं सीस धुनी, और ब्रह्मा बिस्नु महेस चबायौ।
तुलसी तत छान बिचार कहै, जब जोइ बच्यो जा को संत बचायौ।

अर्थ–भगवान चारों (योनियों) में हुए इसीलिए उनके अनेक नाम कहाए गए। बली काल ने छल का जाल बिछाया और जो अनेक भगवान आए थे, वह उन्हें बाँधकर चला गया। योगी, यती, संसार के ज्ञान, मतिवान, सीता, सती एवं राम को वही काल खा गया। ऋषि, मुनि उस काल के सामने सिर धुन धुनकर रक्षा के लिए रोते रहते हैं, और वह काल तो ब्रह्म-विष्णु एवं शिव को चबा गया है।

तुलसी साहब सारे तत्त्वों को निचोड़कर कहते हैं कि उस समय वही काल के गाल से बचा, जिसे सन्तों ने बचाया है।

॥ सवैया १७ ॥

पंडित भाखि कहैं बिधि ब्रह्मा ने, चारोइ बेद बनाइ लियै हैं।
साम जजुर जो भये हैं लघू, ऋगु बेद अथरवन चारौ किये हैं।
येहि बिधि जगत सुनाइ कहैं, सो बनाइ कै गाइ जनाइ दिये हैं।
झूठी जो बात करैं जग साथ, अनाथ अनारी ने मान लिये हैं।
ये भौ खानि करी तुलसी, सो बेद ने मारि कै घानि किये हैं।

अर्थ–पंडितगण यह स्पष्ट रूप से कहते हैं कि ब्रह्मा ने चारों वेदों की रचना की। सामवेद तथा यदुर्वेद लघु हैं किन्तु ऋग्वेद तथा अर्थवर्ण चारों उन्हीं के द्वारा बनाये गए हैं। इस प्रकार, उन्होंने संसार को सुनाकर कहा है और उन्होंने बनाकर उसकी रचना के विषय में बल दिया है। संसार में साथ रहकर जो झूँठी बातें करता है अनाड़ी और आश्रयविहीन जनों द्वारा वह मान लिया जाता है। तुलसी साहब कहते हैं कि पंडितों ने इस संसार को पीड़ा की खानि बना दी है और वेद ने तो उसे स्वीकृति देकर और भी प्रबल कष्टकारी बना दिया है।

॥ सवैया १८ ॥

पंडित बेद का भेद कहौं, जा की उतपति भाखि कै साखि सुनाऊँ।
जक्त रहा पीछे बेद भया, जा की आदि कहौं बिधि बात लखाऊँ।
पिरथम बैल किसानी हती, धरती बन बोइ कै सन्न कहायौ।
ता की रसी कर टाट बन्यो, फिर कागदी कूटि कै धोइ ले आयौ।
पुनि चूनेदिवाल पै लेप कियौ, सो भयौ बिधि कागद लेख लिखायौ।
तिली जो तेल कियौ पुन पेल, सो तेल से काजल स्याही बनायौ।
स्याही भई पुनि कलम सही, लिखि ब्रह्मा ने याही से बेद सुनायौ।
तुलसी तत तोल बिचार कहै, जग बेद के भेद से खानि में आयौ।

अर्थ–मैं पंडितों एवं वेदों की उत्पत्ति का बेद बताता हूँ–जिनकी उत्पत्ति बताकर उसकी साक्षी बताऊंगा। पहले संसार हुआ फिर वेद बना–जिसके मूल में जो बातें कही गई है, मैं उसे बताता हूँ। पृथ्वी थी, बैल था, कृषि थी, धरती में जो बोया, उसे सन (सनई) कहकर पुकारा। उसकी रस्सी बनाकर पुकारा। उसकी रस्सी को बरकर टाट बनाया गया फिर उसे धोकर तथा कूटकर कागज बनाया गया। पुनः चूने से दीवाल पर लेप किया, उसी प्रकार कागज भी हुआ और उस पर लेख लिखे गए। स्याही बनाई गई, फिर कलमें बनीं–और इसी से ब्रह्मा ने लिखकर बेद सुनाया। तुलसी सम्पूर्ण तत्त्वों का तौल (मूल्यांकन) करके विचार करते हैं कि इस वेद के भेद से जीव इस जगत में कर्मवासना के सं ट में फँसा, और कोई अन्य कारण नहीं है।

॥ सवैया १९ ॥

पंडित झाड़ की आड़ लई, कहैं ताड़ के पात पर जात लिखो थो।
येहि बिधि बेद बखान करैं, सो अजान न जानै जो बेद कहाँ थो।
अस्थावर, बावर बृच्छ हते तरु, तीस जो लाख में कौन नहीं थो।
अठरावन भाँति की जाति सभी, सो सभी संसार कोकार सही थो।

उषमज अंडज पिंड हतो, अस्थावर चारि चौरासी बनो थो।
पात प्रथम्म भयौ तरु कौ, तुलसी पीछे पात के बेद भयौ थो।

अर्थ–पंडित कर्मकांड की झाड़ की आड़ लेकर कहने लगा कि ताड़ के पत्ते पर लिखे गए धर्म शास्त्र में जाति लिखी थी। वह अज्ञानी यह नहीं जानता कि वेद कहाँ था, वह इस संसार वेदों का बखान करता है। स्थावर, जंगम, वृक्षादि इन तीस लाख योनियों में कौन नहीं है। अट्ठावन भाँति की सभी जातियाँ इस संसार का कारण बनी थीं॥

ऊष्मज, अंडज, पिंड से सम्बद्ध जीव हैं, चार सौ चौरासी स्थावर जीव बने हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि सर्वप्रथम ताड़ बना, फिर उसके बाद उस पर वेद लिखा गया॥

॥ सवैया २० ॥

बेद मथौ जिन पुरान कथौ, बहु सिम्रित सास्त्र को ज्ञान हतौ।
नेम अचार अचारज रीति, सो जीतै नहीं जम खायौ खतौ।
परमहि हंस बँधे जड़ संग, सो ब्रह्म अरंग न जानौ मतौ।
जगत अजान रहा रस खान, सो माया के मान में रंग रतौ।
तुलसी जब जानि कै मौन गह्यौ, सो कह्यौ पद साखी में सारो पतौ।

अर्थ–वेदों का मंथन करके जिन्होंने पुराणों का कथन किया और स्मृति तथा शास्त्रों के अनेक ज्ञान हैं। नियम, आचार एवं आचरण की रीतियाँ–वह कहीं जीत नहीं सका, उसको पूरी तरह से यम खा गया। परम हंस ने जड़ वस्तुओं के साथ बँधे इस वर्णहीन (निर्गुण) ब्रह्म को जाना नहीं। यह अज्ञेय जगत रसानन्द का भण्डार रहा है, वह भी माया के मान के रंग में रंग गया। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं इस बात को समझकर चुप बना रहा और उसके सारे रहस्यों का वर्णन मैंने पदों एवं साखियों में बताया है॥

॥ सवैया २१ ॥

अरे मन मान अचेत अजान, सो ऊसर खेत में काह मिलैगो।
ये जग संग पतंग कौ रंग, सो माते मतंग से घानी पिलैगो।
ये जम जाल महा बिकराल, सो खालहिं खैंचि के भूस मिलैगो।
तुलसी तब की बिधि याद करौ, तन छूटै न देंही से माल मिलैगो।

अर्थ–रे अचेत एवं अज्ञानी मन! तू समझ, इस नश्वर ऊसर की खेती में तुझे क्या मिलेगा। संसार के ये सारे साथी पतिंगे की भाँति हैं, ये उन्मत्त हाथी की भाँति घानी ही पेरेंगे, यह यम का फंदा बड़ा ही भयंकर है, उसमें खाल खिंच जाने के बाद अन्त में उसमें भरा हुआ भूसा ही प्राप्त होगा। तुलसी साहब कहते हैं कि उस अवस्था का स्मरण करो, यह शरीर छूटने न पाए और देही (आत्मा) से पूर्ण आनन्द प्राप्त हो॥

॥ सवैया २२ ॥

तेल फुलेल करै रस केल, सो माया के फेल में सार भुलानौ।
मात पिता सुत नारि निहारि, सो झूठ असार को देखि भुलानौ।
ये दिन चार बिचार न लार, सो भूलि असार के संग तुलानौ।
तासे कहै तुलसी निज कै, तन छूटि गये जम देत उलानौ।

अर्थ–तेल-फुलेल आदि से सुगंधित तुम रसकेलि करते हुए माया के फेर (फेल) में सार तत्त्व को भूल गए। माता, पिता, पुत्र तथा पत्नी को देखकर इस तत्त्वविहीन मिथ्या संसार में भ्रमित हो उठे। ये केवल चार दिनों के लिए हैं, इनमें न सत्यता है न आत्मिक प्रेम और तुम आत्म विस्मृत होकर मिथ्या (असार) तत्त्वों के साथ लगे रहे। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं उसे अपना समझकर कह रहा हूँ कि जब यह संसार छूट गया तो (कर्म के फल भोग की पीड़ा के समय) यम को उलाहना देते हो॥

॥ सवैया २३॥

दृष्टि पसारि के देखि तुही, जग माहिं रह्यौ कोइ बूझ अमाना।
पंडो भभीषन भीम बली, गये खोज गली केहि राह समाना।
रावन लंकपती पै हती, सो रती भर संग न देखि निदाना।
तू केहि लेखे में देख कहौं, तुलसी सतसंग से होत न हाना।

अर्थ–अपनी ज्ञान दृष्टि को खोलकर तू ही देख और समझ इस संसार में क्या कोई तुच्छ बनकर रहता है। पांडव, विभीषण, शक्तिशाली भीम, सभी चले गए उन्हें खोजो, वे किस गली में समा गए। लंकापति रावण था–वह भी मारा गया और उसके साथ कोई लेखमात्र संग नहीं रहा। तुम किस लेखा बही में पढ़कर सांसारिक अज्ञान की बातें कह रहे हो, तुलसी साहब कहते हैं–अन्ततः सत्संगति करो, उससे कोई हानि नहीं होती॥

॥ सवैया २४॥

कियेतन काज की लाज करौ, सो बनाइ के साज ले तोहि पठायौ।
ता को बिसारि दियौ मतिमंद, जगत के फंद में बंद बँधायौ।
अंत जो कौन बिचार करौ नर, जाने रच्यौ ता की याद न लायौ।
लेत हिसाब बनै नहिं ज्वाब, सो ख्वाब के खेल में तोहि भ्रमायौ।
तुलसी तब बात बिचार पड़ै, जब आनि चढ़ै जम छाती पै धायौ।

अर्थ–उसके द्वारा बनाए गए इस शरीर के प्रति तो लज्जा करो–उसने तुझे बनाकर साज सामान के साथ तुझे यहाँ भेज दिया। हे मतिमंद तूने उसे भुला दिया और संसार के फन्द के बन्धन में अपने को बंधा लिया। तूने अन्त में मृत्यु के समय भी जिसने इसकी रचना की थी, उसका स्मरण नहीं किया। यम द्वारा हिसाब लेते समय जबाब देते नहीं बनता–तू तो पहले स्वप्नों की क्रीड़ा (खेल) में खोया हुआ था। तुलसी साहब कहते हैं कि बात तब समझ में आती है–जब यमराज दौड़ते हुए आकर छाती पर चढ़ बैठते हैं॥

॥ सवैया २५॥

सुनौ सतसंग का रंग कहौं, सो उतंग अमोल जो मोल न आवै।
कहैं सबही सब संत पुकारि, बिना सतसंग नहीं कछु पावै।
संत मिलैं सतपंथ चलै, सो कुपंथ कलह सब दूरि बहावै।
ज्ञान बिबेक बैराग लखै, मन मान मनी बिधि सारी नसावै।
संत मता कछु और लखै, सो पकै गुरु मारग में स्रुति लावै।
तुलसी तत तोल बिचार कहै, सो अमोल पिया घर सहज समावै।

अर्थ–हे पंडितों! सुनो, मैं सत्संग का हाल बताता हूँ, वह अत्यन्त ऊँचा एवं अमोल है–जिसका मोल (मूल्य निर्धारण) नहीं किया जा सकता। सभी को समस्त संतगण पुकार कर कहते हैं कि बिना

सत्संग के कुछ भी नहीं पावोगे। संतों के मिलने पर व्यक्ति सुमार्ग (सन्मार्ग) पर चलता है और वह समस्त कुपंथ तथा कलह अपने से दूर भगा देता है। वह ज्ञान, विवेक तथा वैराग्य को देख लेता है और वह मन की समस्त मानविधि को पूरी तरह से नष्ट कर देता है। संतों के मार्ग दर्शन द्वारा वह कुछ और प्राप्त कर लेता है—उसका ज्ञान गुरु मार्ग पर पकता है और श्रुति परम्परा से वह निरन्तर जुड़ा रहता है।

तुलसी साहब, तत्त्व को तौलकर विचारपूर्वक कह रहे हैं कि वह अति मूल्यवान व्यक्ति अत्यन्त मूल्यवान अपने पति परमेश्वर के घर में सहज ही समाविष्ट हो उठता है॥

॥ सवैया २६ ॥

सतसंग में भेद अबेद मिलै, स्त्रुति सैल दुर्बीन को माँजा करै।
मन की मत झार निहार लखै, सो पकै स्त्रुति घाट पै आनि धरै।
पच्छिम बास की आस तकै, नित नेम स्त्रुति सत चाह करै।
येही बिधि डोर लगी निस बास, पिया पद खेल कौ माल भरै।
तुलसी निज सूझ कै बूझ परी, जिन को पति प्यार से कार सरै।

अर्थ—सत्संगति से भेद तथा अभेद दोनों प्राप्त होते हैं। इसी के द्वारा श्रुति के पर्वत को देखने वाली दूरबीन को साधकगण साफ करते रहें। मन की मायावी वृत्तियों को चित्त खोल-खोल कर न देखा करें और श्रुति रूपी घाट पर जो परिपक्व विचार हो उसे ग्रहण करें। पश्चिम की ओर के निवास की निरन्तर आशा करते रहो और नित्य नियम से 'श्रुति सत्य' की कामना रखें। इसी प्रकार, प्रभु के प्रति रात-दिन आशा लगाए रखें और प्रियतम के पदों में खेलते हुए आनन्दित रहें। तुलसी साहब कहते हैं कि जिनको अपने प्रियतम (ब्रह्म) से सरोकार है, उन्हें अपनी ही सूझ-बूझ से काम होना चाहिए।

॥ सवैया २७ ॥

संत मता अज आद अलग्ग, बिलग्ग बिधी कोउ नेक न जाना।
राह रसी रजु पोढ़ करै, लागी डोर की मोर पै सुरति ठिकाना।
पील पै लील की खील करै, सो अपील अकास को मारि निसाना।
मानसरोवर हंस बसै, तेहि माहिं अन्हाइ के देस दिखाना।
तुलसी तत आतम भेद कही, पुनि आगे चले पर और कहाना।

अर्थ—संतमत अज और आदि है और उससे अलग-विलग होने की विधि किसी ने थोड़ा-बहुत भी नहीं जाना है। राह पर ले जाने रस्सी की रज्जुओं को थोड़ा अधिक मजबूत रखो—इसी रस्सी के मूलभाग (किनारा – मोर – मोड़) पर ही सुरति का स्थान है। उस रस्सी की डोरी (पीठ-पील) पर लीला की गाँठ (खील) बाँधता है, वही निर्द्वन्द्व (अपील) आकाश (शून्य) में लक्ष्य साध सकता है। वह मानसरोवर जहाँ निर्मल आत्मा रूपी हंस निवास करते हैं, वही उसे झुकाकर उस देश को दिखा देगा। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं उस आत्मा का भेद बताया हूँ, और पुनः आगे चलने पर अभी और कहना है।

॥ सवैया २८ ॥

मानसरोवर पार चली, ता की आली सुनौ सत सैन लखाऊँ।
जाहि सखी सनु सुन्न सुमारग, पार कौ ब्रह्म परमातम नाऊँ।
जाहि चढ़ी सत सुरति सुहागिल, पाइ लखौ ब्रह्मंड कौ ठाऊँ।

जीव चराचर जाति सभी, सब देखि निहार कै भाख सुनाऊँ।
तुलसी गुरु से स्रुति राह लखी, बिधि सोई अगोचर ताहि बताऊँ।

अर्थ–मानसरोवर के उस पार जो प्रियतमा चल पड़ी है, हे सखी! सुनों, उसकी नेत्र भंगिमाओं को सही-सही दिखाता हूँ। वह सखी शून्याकाश के सुमार्ग से घर जा रही है–और उसके उस पार स्थित ब्रह्म का नाम परमात्मा है। वह सुहागिनी सत्य सुरति पर चढ़ती चली जा रही है–उसको प्राप्त करके मैं ब्रह्मांड के सारे स्थलों को देखता हूँ। चराचर के समस्त जीव-जातियों को देखकर मैं कहकर सुनाता हूँ। तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने गुरु द्वारा श्रुति की राह देखी है–और वह जो अत्यन्त अगोचर तत्त्व है, उसके विषय में सुनाता हूँ।

॥ सवैया २१ ॥

सत्त पुरुष को भेद कहौं, सतलोक में जाहि कौ बास बसेरो।
संत सबै रस सह लखैं, सो चखैं वोहि मारग साँझ सबेरो।
सहस कँवल्ल चढ़ै चक देस, सो जाइ लखै जा में ज्योति को डेरो।
ताहि के पास निरंजन बास, सो स्वाँस बसै वोहि धाम के नेरो।
ता के परे दल दोइ के पास, अकास के पास अलख्य को पहरो।
ताहि के मध्य झरन्न के पार, अवीगत काल के जाल को घेरो।
ता के परे तट ताल में हंस, सो बंस अवीगत है तेहि केरो।
ता के परे पर बेनी को घाट, प्रमातम ब्रह्म सो सुन्न में हेरो।
आगे सखी बिधि बात कहौं, दल चारि परे सतलोक निबेरो।
ता के परे खिरकी से नियार, सो साहिब सत्त पुरुष है मेरो।
जा के रोमहि रोम ब्रह्मंड और अंड सो कोटि रबी जा के रोम उजेरो।
सोइ सतनाम कहौ सत साहिब, ता को भयौ तुलसी निज चेरो।

अर्थ–जो सत्य लोक में जाकर अपने निवास में बसता है, उस सत्य पुरुष का रहस्य बतला रहा हूँ। समस्त संत गण उसके उस आनन्दमयी मार्ग को देखते रहते हैं और जो उस रस को चख लेते हैं वे उसी मार्ग में ही सबेरा कर देते हैं। उस चक्र (चक) के देश में स्थित सहस्रार कमल पर चढ़ जाते हैं, वे जाकर वहाँ परम ज्योति का निवास स्थल देख लेते हैं। उसी के पास निरंजन ब्रह्म का निवास है। उनका श्वास (वायु) उस धाम (गृह) के पास निवास करने लगता है॥

उसके और आगे, दो दलों के पास और आकाश के समीप अलक्ष्य तत्त्व के प्रहरी निवास करते हैं। उसी के मध्य स्थित झरने के पास अविगत (अज्ञेय) के जाल का घेरा है। उसके आगे तट के सरोवर में हंस निवास करते हैं वे उस अविगत तत्त्व के वंश के हैं। उस परे, त्रिवेणी का घाट है और परमात्मा ब्रह्म का उस शून्य में अन्वेषण करो॥

हे सखी! मैं आगे की विधि की बात कहता हूँ–आगे चार दलों का कमल है– और उसके आगे सतलोक है। उसके आगे खिड़की के अन्दर देखो तो वहाँ मेरा स्वामी 'सत्य पुरुष' है। उसके रोम-रोम में ब्रह्मांड एवं अंड है–और उसके रोयो में कोटि-कोटि प्रकाश है। वही सतनाम है, उसी को सतसाहब कहा जाता है–और यह तुलसीसाहब उन्हीं का दास है॥

॥ सवैया ३० ॥

एक अगत्त अगाध अनाम, सो धाम न गाम न ठाम ठिकाना।
जहँलख्य अलख्यकौ खेलनहीं, सो खलक्क बिचारेनेकाहे के जाना।
ता की बिधी कोइ संत लखै, सो अपेल अकेल का रूप न नाना।
आतम हंस प्रमातम बंस, सो इन दोउ नहिं यह देस पिछाना।
जहँ ब्रह्म न जीव अजीव को बास, सो चंद न सूर जमीं असमाना।
पिंड ब्रह्मंड जो तत्त नहीं, जहँ सत्तहि लोक नहीं असथाना।
सो साहिब सत्त के पार बसै, सो अगार अनाम जो संत समाना।
जा की बिधि तुलसी लखि पाई, सो देखि अनाम को जानि बखाना।

अर्थ–वह परम ब्रह्म एक है, अगत्य (अज्ञेय) है, अगाध है, अनाम है–उसका न धाम है, न ग्राम है और न कोई ठौर ठिकाना है। जहाँ लक्ष्य तथा अलक्ष्य का कोई खेल नहीं है–उसे विचारे ये लोक संसार के निवासी कैसे जानेंगे? उनकी स्थिति को संत ही देख सकता है–जिसने 'अपेल एवं अकेल' का स्वरूप नहीं जाना है। आत्म लोक में रहने वाले हंसगण एवं उनके वंशज सिद्ध महात्मा ये दोनों भी इस देश को आज तक नहीं पहचाना है॥

जहाँ न ब्रह्म है, न जीव है न अजीव का निवास है, वह न चंद्रमा है, न सूर्य है, न पृथ्वी है, न आसमान है? वहाँ पिंड और ब्रह्मांड दोनों का नामो निशान नहीं है–जहाँ सत्यलोक के लिए भी स्थान नहीं है। वह मेरे स्वामी उस सत्लोक के उस पार निवास करते हैं और वे संतों की ही भाँति अगेह (गृह-विहीन) तथा अनाम (बिना नाम) के हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने उनको देख लिया है–और उनको देखकर ही मैं उस अनाम ब्रह्म का वर्णन कर रहा हूँ॥

॥ सवैया ३१ ॥

संत का भेद अभेद अपार, सो सार वोही वोहि देस को जानै।
सूरति सैल से केल करै, सो अपेल अकेल की साखि बखानै।
बेद पुरान नहीं मत ज्ञान, सो जोगी कौ ध्यान न पहुँचै निदानै।
ता की कहै तुलसी बिधि तोल, सो संत बिना नहिं भेद पिछानै।

अर्थ–संत के भेद नहीं होते हैं, और किए भी जाएँ तो अनुक्त होंगे–वह आध्यात्मिकता का सार तत्त्व है और वही प्रभु की स्थिति को जानता है। वह सुरति रूपी रमणीक स्थली में केलिक्रीड़ा करता रहता है, वह दबाव रहित-सदन में अकेला है यह साक्ष्य बतलाते हैं। यद्यपि उस संत के पास वेद, पुराण और शास्त्र चर्चा का ज्ञान नहीं है किन्तु योगी जन जिस ध्यान केन्द्र तक पहुँचते हैं, उनका कोई ज्ञाता नही है। उनका मूल्यांकन करते हुए, तुलसी साहब कहते हैं कि संत वही हैं, जिनका मूल्यांकन ज्ञान से नहीं साधना से होता है।

॥ सवैया ३२ ॥

नीर निरंजन काल बिधी, सो कराल बसै मन ऐन के माईं।
चैन अचैन बिचैन करै, सोइ नीत अनीत में देत भुलाई।
जगत जहान करै जे हैरान, सो खानि में डारि कै घानि पेराई।
जो कोइ जानि बिचार करै, सोइ संत के पाँउ परै नित आई।

वे सो दयाल करैं प्रतिपाल, सो काल के जाल से लेत छुड़ाई।
ये तत बात कहै तुलसी, सो बसी निज सूरति सत्त में जाई।

अर्थ–नीर निरंजन जो काल की विधि है, वह निरन्तर मन को अपना घर बनाकर भयंकरता उपस्थित करता रहता है। वह कभी शान्ति देता है, कभी अशान्ति देता है और कभी बेचैन करता है और वह नीति एवं अनीति (नैतिकता एवं अनैतिकता) के प्रकरणों में सब कुछ विस्मृत करा बैठता है। वह समस्त संसार को हैरान करता रहता है और मनुष्य की चित्तात्मा को खंदक में डालकर उसे कोल्हू में घानी की भाँति पेरता है। जो भी, इस प्रकरण को समझकर इस पर विचार करता है उसी सन्त के चरणों में आकर मैं नित्य पड़ूँगा।

ये जन्तु जन अत्यन्त दयालु हैं, वे निरन्तर लोकजन का प्रतिचालन करते रहते हैं और उन्हें काल के उस जाल से छुड़ा लेते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि ये सन्त जन तत्त्व की बातें कहते हैं। (इनकी विशेषता यह है कि) ये निरन्तर अपनी सुरति समाधि के सत्य में जाकर निवास करते हैं॥

॥ सवैया ३३ ॥

गीता की भाखि कहौं पुनि साखि, सो आँखि से पोथी में देख बिचारो।
कहा भगवान अरजुन सुन कान, सो साँचे विधान को जानि निबेरो।
अरजुन ठाढ़ रहौ रन माहिं, सो कौरौ को मारि कै राज सम्हारो।
अरजुन देखि बिचारि कहै, परिवार मरै ऐसे राज को जारो।
येहि बिधि ज्ञान उठौ मन माहिं, सोई धनु बान पलक में डारो।
कृष्न कह्यौ पुनि ज्ञान बैराग, सो जोग विज्ञान बिधी से पछारो।
अरजुन भक्त गरीब अजान, सो जानै नहीं या को फंद पसारो।
अरजुन गह्यो जो नहीं धनुवाँ, सो बताइ त्रिलोकी को डाढ़ में चारो।
अरजुन जो देखि भयंक भयो, सो कह्यो बिधि कौरौ को सस्त्र ले मारो।
ये झल दाव दियो धनवाँ, सो कह्यो अरजुन से मारि बिडारो।
तो को कछू नहिं पाप लगै, सो करै करता कछु तोहि न भारो।
येहि बिधि भाखि कही भगवान, सो काटि कै मारि कुटुम्ब सँधारो।
धनुवाँ अरजुन्न उठाइ लियौ, सो भिड़ौ रन खेत कुटुम्ब को मारो।
अरजुन जीति गहे जब पाँड़, सो पाप लगाइ कै दूरि निकारो।
दूरि रह्यौ सिर पाप गह्यौ, सो हत्या कौ पाप लगौ तोहि सारो।
जज्ञ करौ असुमेद जबै, सो तबै कुल हत्या से होइहौ न्यारो।
अरजुन जज्ञ कियौ मत मान, सो हत्या कौ पाप भयौ नहिं न्यारो।
अरजुन भाखि कह्यौ भगवान, सो देही हिवारे में जाइ कै गारो।
पाँचोइ पण्डा हिवारे गरे, सो मरे गये नर्क में चारो के चारो।
जोइ युधिष्ठिर एक बचौ, जा को कहत स्वर्ग में भयौ सुख सारो।
अरजुन मित्र बड़े भगवान, सो मारि कै ताहि को नर्क में डारो।
नर्क की जाल भया सो बेहाल, सो काल जो कृष्न ने ऐसे बिडारो।

ऐसे कुटिल से प्रीति करी, दुख पाइ कै कर्महि कर्म पुकारे।
मित्र बड़े सोइ नर्क परे, सो कढ़े नहिं कृष्न के भारी थे प्यारे।
वोही जो कृष्न कौ इष्ट करै, सो मती भई भ्रष्ट जो दुष्ट के लारे।
प्रतच्छ जो कृष्ण ने ऐसी करी, तुलसी कहै मूरति कैसे उबारे॥

अर्थ–गीता में कथित सत्य को मैं साक्षी देकर कहता हूं कि और तुम उसे अन्तरात्मा की आँखों की पोथी में भी देखकर समझो। भगवान कृष्ण ने कहा कि हे अर्जुन! कान देकर सुनो और इस वास्तविक विधान को समझकर निपटारा करो॥ हे अर्जुन! तुम युद्ध के मध्य खड़े रहो और कौरवों को मारकर उनके राज्य को सम्हालो। अर्जुन इसे देखकर और सोच विचार कर उत्तर देते हैं–इस कार्य को जो परिवार करता हैं, उसका ऐसा राज्य जलकर स्वतः नष्ट हो जाए॥

इस ज्ञान के उत्पन्न होते ही अर्जुन ने धनुष बाण पल में ही पृथ्वी पर डाल दिया। इसके बाद भी कृष्ण ने ज्ञान तथा वैराग्य की बातें बताई और परामर्श दिया कि शत्रुओं को योग तथा वैराग्य विधि से परास्त करो॥

अर्जुन तो श्रीकृष्ण के एक भक्त मात्र थे जो प्रवृत्ति से ना समझ एवं साधनहीन थे, अतः उसके फैले हुए फंदों को भली भाँति जानते नहीं थे। जब अर्जुन ने धनुष नहीं धारण किया तब त्रिलोकी श्री कृष्ण ने अपनी दाढ़ों में चोरों लोकों को दिखाया॥

उसे देखकर अर्जुन सुदृढ़ निश्चयी हो उठे और श्रीकृष्ण ने वह विधि बताई–जिससे कौरव सशस्त्र मारे जा सकते थे। इस छल के दाँव-पेंच के साथ उन्हें उनका गांडीव धनुष थम्हाया और अर्जुन से कहा कि इन्हें मारकर विनष्ट करो। यह भी उन्हें बताया कि इस कृत्य से तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा क्योंकि जो कुछ कृत्य है, वह (कर्त्ता – विधाता) करता है, उसका भार तुम्हारे ऊपर नहीं है। इस प्रकार से भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कहे जाने पर मार-काट करने के लिए अर्जुन युद्ध भूमि के प्रति आकर्षित हुए?

यह अर्जुन ने धनुष उठा लिया और वह रणक्षेत्र में जुड़े और सम्पूर्ण कुटुम्ब कौरव पक्ष को काट-मार कर बध कर बैठे। अर्जुन ने युद्ध जीतकर जब श्रीकृष्ण का पाँव पकड़ा तो उन पर पाप का आरोप लगाकर दूर निकाल दिया। उन्होंने कहा, तुम दूर रहो, तुम्हारे सिर पर पाप चढ़ा है। और तुम्हारे ऊपर सम्पूर्ण हत्या का पाप लगा है। जब तुम अश्वमेध यज्ञ करोगे तभी तुम्हारा सम्पूर्ण कुल हत्या से अलग होगा। उनके विचारों को स्वीकार करके अर्जुन ने यज्ञ किया और तब वे हत्या के पाप से मुक्त नहीं हुए।

इस पर अर्जुन से भगवान कृष्ण ने कहा कि इस देह को हिमालय में जाकर गला दो–पाँचों पांडव हिमालय में गल गए–उनमें से चार के चार नर्क (हिवारे) में गए। जिनमें से अकेले युधिष्ठिर बच गए–जिनके विषय में कहा जाता है कि उनको स्वर्ग में सारा सुख प्राप्त हुआ। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के बहुत बड़े मित्र थे, फिर भी, उन्हें मारकर नर्क में डाल दिया। वे नर्क की जाल में अत्यन्त पीड़ित थे–श्रीकृष्ण ने उस समय इस प्रकार काल द्वारा दण्डित कराया।

इस प्रकार के कुटिल कृष्ण से अर्जुन ने प्रीति की और नरक का दुःख प्राप्त करके, वे नरक में पड़ गए और जो कृष्ण भगवान के अति प्रिय थे, वे नर्क से मुक्त नहीं हो सके। उसी कृष्ण को जो अपना इष्ट बनाता हैं, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी है क्योंकि वह दुष्ट से प्रेम कर रहा है। प्रत्यक्षतः जब श्री कृष्ण ने ऐसा किया तो तुलसी साहब कहते है कि उनकी मूर्ति उनके भक्तों के लिए क्या कर सकती है।

॥ सवैया ३४॥

भागवत बूझि बिचार करौ, सो कहै सतसंग से संत हैं न्यारा।
आतम ज्ञान की बात कहै, दुतिया असकंध में बूझि बिचारा।

नेम अचार अनेकन कार, सो झूठि असार कौ सार निकारा।
पुनि जो धर्म अनेकन कर्म, सो जीव कौ काज न एक सँवारा।
भागवत माहिं कहै परसंग, सो नेक बिवेक से देखि निहारा।
भये नृगराइ कहौं पुनि गाइ, सो गाइ के गोसठि देत अपारा।
देवहि देत जो जनम गयौ, सो भयौ गिरगट जो देहिं को धारा।
पुन्न जतन्न कियौ बहु भाँति, सो कर्म के भोग टरे नहिं टारा।
पुन्न से जीव कौ काज नहीं, सो परे नृगराइ कुए बिच डारा।
बाम्हन पुन्न से स्वर्ग कहै, तुलसी सब बात अनीति पसारा।

अर्थ–भागवत तत्त्व को समझकर जो तत्त्वार्थ पर विचार करता है, वह कहता है कि सत्संग से भी संतजन विलक्षण हैं। वह निरन्तर आत्मज्ञान की बात करता है और द्वितीय संसार के विविध पक्षों (असकंध) को विचारता है। नियम, आचरण तथा अनेक प्रकार के कर्मों द्वारा झूठे तथा असत्य तत्त्वों के अन्तर्गत सन्त जन सार तत्त्व को निकालते हैं। पुनः जो धर्म है, अनेक प्रकार के कर्म है–ये जीव का एक भी काम नहीं सँवार पाते।

भागवत के अन्तर्गत एक प्रसंग कहा जाता है–उसे जरा विवेक से विचार कर समझो। एक नृगराज हो गए थे, उनके विषय में मैं जोर देकर कहता हूँ वे अनन्त गायों का (या साठ हजार गायों का) रोज दान देते थे। गायों का दान देते-देते जब उनका दूसरा जन्म हुआ वे अगले जन्म में गिरगिट बने। उन्होंने अनेक प्रकार के पुण्य एवं यज्ञ किये किन्तु कर्मों का भोग टालने से नहीं टला। पुण्य से जीव का कोई मतलब नहीं है, देखो, यह नृगराज कुएँ के बीच डाला हुआ दिखाई पड़ता है। ब्राह्मण कहता है कि पुण्य से स्वर्ग प्राप्त करने की बात कहता है–तुलसी साहब कहते हैं कि यह सब अनीति का प्रसार मात्र है।

राजा नृग जो साठ हजार गऊ रोज दान देते थे एक गऊ को धोखे में दो ब्राह्मणों को दान कर दिया, जब दोनों ब्राह्मण झगड़ते हुए राजा के निकट न्याय को आये तो राजा सोच में दोनों की बात पर सिर हिलाता रहा। जिस पर एक ब्राह्मण ने शाप दिया कि तुम गिरगिट की भाँति सिर हिलाते हो सो वही योनि पाओगे। इस शाप से राजा नृग को गिरगिट योनि मिली और एक अन्धे कुएँ में पड़े रहे जब कृष्णावतार हुआ तब श्रीकृष्ण ने अपना चरण छुआ कर उनका उद्धार किया।

॥ सवैया ३५ ॥

ऊधौ के मित्र बड़े भगवान, सो प्रीति करी जा की रीति बखानी।
भोजन साथ करैं बहु भाँति, सो ऊधौ बिना सुख नेक न मानी।
कृष्न गये तजि देंह निवास, सो ऊधौ ने रोइ दियौ सोइ जानी।
बद्रिका जाइ कै तप्प करयौ, सोइ रोइ कै तप कौ कीन्ह निदानी।
जो कहुँ कृष्न से मुक्ति हुती, तो करौ तप कष्ट कहौ केहि कामी।
तुलसी बिधि बूझि कै बात लखौ, तुम्हरी गति मुक्ति की कैसे बखानी।

अर्थ–भगवान श्री कृष्ण उद्धव के बड़े गहरे मित्र थे–और उन्होंने गोपिकाओं से जो प्रेम किया था, उसको उन्हें बताया। वे दोनों साथ-साथ भोजन करते थे और उद्धव के बिना वे एक क्षण का भी सुख नहीं मानते थे। श्रीकृष्ण अपनी देह का त्याग करके स्वर्गलोक में गए और इस बात की जानकारी होने पर उद्धव रो पड़े। उन्होंने जाकर बद्रिकाश्रम में तप किया और रोकर ही उन्होंने तपस्या की समाप्ति कर दी। यदि कहीं श्रीकृष्ण के द्वारा मुक्ति होती है तो तप का कष्ट किस काम का। तुलसी साहब पूरी तरह से बात को समझ कर कहते हैं कि तप द्वारा तुम्हारी मुक्ति कैसे होगी (यह बात समझ में नहीं आती)।

॥ सवैया ३६ ॥

भागवत के मत्त की गत्ति कहौं, सो परीछित को सुकदेव सुनाई।
ब्यास कथे जो पुरान बिधी, ता के पीछे संबाद कहौ कस गाई।
ब्यास प्रथम्म अरम्भ कियौ, सुकदेव परीछित ग्रंथ में लाई।
पुरान लिखे भये ब्यास मुनी, ता के पीछे परीछित को समझाई।
पंडित या की बिधी कहौ भाई, सो तोल कहौ तुलसी को बुझाई।

अर्थ–मैं भागवत पुराण के ज्ञान की स्थिति के विषय में बतला रहा हूँ, जिसे शुकदेव जी ने परीक्षित को सुनाया था। व्यास जी जिस पुराण विधि का कथन करते हैं, उसके साथ स्थित संवादों को मैं सुनाकर कहता हूँ। व्यास ने सर्वप्रथम उसे प्रारम्भ किया था, पुनः शुकदेव एवं परीक्षित की संवाद कथाओं ने कथाओं को ग्रंथ में रखा। पुराण लिखने के कारण वे व्यास मुनि पहले कहे गए और व्यास होने के बाद परीक्षित को कथा को समझा कर बताया। हे पंडित लोगों, इसकी विधि समझाकर बताओ और उसका मूल्यांकन तुलसी साहब को सुनाओ।

॥ सवैया ३७ ॥

जो तुम पंडित ज्वाब कहौ, सुकदेव सुनावन पीछे गयौ।
ब्यास पुरान में पहिले कही, सो त्रिकाल के तेज से भाखि कह्यौ।
पंडित ता को जुवाब सुनौ, सुकदेव चले मोह ब्यास भयौ।
मोह भयौ सँग लारे लयौ, तबहीं जड़ बृच्छ ने ज्ञान दयौ।
या की कहौ सुन भाख बिधी, सों त्रिकाल कहौ तब काँह हिरावौ।
तुलसी तब की विधि छान कहौ, सोइ जानि परै या की बूझ मिलावौ।

अर्थ–यदि तुम पंडित हो तो, इसका जवाब सुनाओ, शुकदेव तो बाद में परीक्षित को कथा सुनाने गए। व्यास ने भागवत पुराण में अपनी बातें पहले कहीं और उन्होंने इसे अपने त्रिकाल के ज्ञान से सुनाया। हे पंडितों, उनकी बातें सुनों, शुकदेव वन में चल पड़े और व्यास पुत्र मोह में फँस गए–मोह से ग्रस्त हो प्रेम में उनके पीछे व्यास चल पड़े तब उन्हें एक जड़ वृक्ष ने ज्ञान देकर समझाया। इनकी विधि का वर्णन मैं कहकर करता हूँ कि यदि वे त्रिकाज्ञ थे तो उनका ज्ञान कहाँ खो गया था। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं उनके ज्ञान की बात समझा कर कहता हूँ, यदि समझ में बात आती है , तो मुझे समझाकर बताओ।

॥ सवैया ३८ ॥

एक बिचार की और कहौं, ता की ठीक बिधी बिधि भाखि सुनावा।
जबही रच साज बैराट भयौ, तब देव उठावन कैसे कै आवा।
ता की बिधी को बिचार कहौ, सो पहिले जो देवन कौन बनावा।
और पुरान जो और कहै, सोइ ब्रह्मा को कस्यपदेव बतावा।
या की कहौ सही कौन बिधी, सो बैराट को देव उठावन आवा।
तुलसी बिधि तोल के बात कहौ, जो ब्रह्मा के पुत्र से देव कहावा।

अर्थ–मैं इस संदर्भ में एक बात और समझा कर कहता हूँ, उसकी उचित विधि को विधिपूर्वक समझाओ। जब वह विष्णु देव शयन के समय विराट सृष्टि को रच बैठे तो देवता उन्हें उठाने के लिए

कैसे पहुँचे। उनकी व्यवस्था पर विचार करो कि उसके पहले देवताओं को किसने बनाया था। भागवत के अतिरिक्त अन्य पुराण जो अन्य प्रकार की बातें कहते हैं–वहाँ कश्यप ऋषि ने ब्रह्म की सारी बाते बतलाई हैं। इन दोनों में कौन-सी बात सही है कि उस वैराट को देवगण कब उठाने आए थे। इस बात का सही निर्णय करके बताओ कि क्या देव भी ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं।

॥ सवैया ३९ ॥

पंडित एक बिचार कहौं, जोइ बात सुन्यौ ता को भर्म समाई।
कहत तुम्हीं नित बात पुनी, भागवत्त सुनी जिन मुक्ति को पाई।
ऐसी बिधी बिधि भाखि कहौ, पुनि वाहू को भूत की जोनि बताई।
जोई पुरान सुनै नित कान, किरिया करि वाही को भूत बनाई।
पुरान सुनै सोइ भूत बनै, भागवत के मत्त की साखि जो जाई।
एक बिचार कहौ तुम सार, तुलसी बिधि सहज में भाखि सुनाई।

अर्थ–हे पंडितों! मैं एक बात विचारपूर्वक कहता हूँ जो बात सुनी गई है–उसके मर्म को समझो। तुम्हीं इस बात को भी कहते हो कि जिन्होंने भागवत पुराण सुना, उन्होंने मुक्ति प्राप्त की। इस विधि को मैं विधिपूर्वक बताकर कहता हूँ–फिर उस मुक्त व्यक्ति के लिए भूत की योनि बताई गई। मैं उसी पुराण में निरन्तर इसी बात को अपने कानों से सुनता रहा हूँ कि परिवार के लोगों ने क्रियाकर्म करके उसे भूत बनाया। विश्वास विनष्ट हो जाता है। तुम एक विचार को अन्तिम रूप से निचोड़ बनाकर कह दो–इस प्रकरण में तुलसीदास ने सहज रूप से बताकर सुना दिया है।

॥ सवैया ४० ॥

और जो एक बयान करौं, सुन पंडित प्रेम से कान लगाई।
गऊ करन्न कहौ, धुँधकारी कथा बिधि जाइ सुनाई।
भागवत के मत्त की साखि सुनौ, सोइ भूत भयौ ऐसी कहत बुझाई।
उठै कथा भास फुटै तब बाँस, छुटै तब भूत से मुक्ति बताई।
ऐसी बिधी विधि भाख कहौ, ये तौ ब्यास लिखी तब ग्रंथ बनाई।
ग्रंथ लिखे भये ब्यास मुनी, धुँधकारी सुनो जा के पीछे जो आई।
ये तो आगेइ ब्यास मुनी, धुँधकारी सुनो जा के पीछे जो जाई।
ये तो आगेइ ब्यास ने भाखि लिखी, सो पुरान बने जा के पाछे सुनाई।
धुँधजो कारी तौ पहिले लिख्यौ, सोवा की कहौ बिधि मोहिं बताई।
सातहि पोरि कौ बाँस कह्यो, सोइ बाँस को भेद बतावौ आई।
जंगल के बीच में बाँस बसै, की कहौ बाँस जो और है भाई।
या कौ विचार करौ मन में, तुलसी कहै बूझ सो सूझ में लाई।

अर्थ–मैं एक वर्णन और कर रहा हूँ, हे पंडितो! प्रेम से कान लगाकर सुनो, गौकर्ण की कथा का वर्णन करता हूँ और धुंधकारी की कथा उससे सम्बद्ध है–जिसे मैं सुनाता हूँ। भागवत के मत का साक्ष्य ले तो यह कहा गया है कि वह भूत बना। कथा का प्रसंग उठते ही बाँस का एक खंड फूटता था और उससे भूत की मुक्ति बताई गई है। ऐसी विधि से मुक्ति के मार्ग का यहाँ वर्णन व्यास ने करके बताया है। इस ग्रंथ के लेखन के बाद व्यास मुनि कहे जाने लगे–धुँधकारी ने सुना जो उनके बाद पैदा हुआ था।

इसको सबसे पहले ही व्यास ने कहकर भागवत लिखा है और बाद में पुराण हुआ—उसके बाद यह सुनाया गया। धुँधकारी के होने के पहले जो भागवत पुराण लिखा गया था, उसे क्या कहा गया था, इसे मुझे बताओ। बाँस सात पोर का था। हे भाई! उस बाँस का भेद आकर बताओ। जंगल के बीच बाँस उपजता है—मुझे बताइये कि वह बाँस था—या कुछ और। हे पंडितो! इस तथ्य का विचार मन-ही-मन करके बताओ, तुलसी साहब कहते हैं कि जो सत्यता इस प्रसंग में निकल सके, उसे बूझो (समझो)।

॥ सवैया ४१ ॥

एक प्रसंग बिधी बिधि बात कहौं सोइ बूझि कै भेद बतावौ।
एक बयान सुनौ सोइ कान, तो गूलर फल ब्रह्मंड सुनावौ।
ब्यास कही कथा ग्रंथ सही, सोइ अंड को गूलर खोज लगावौ।
कौन ठिकाने को ठाट कह्यौ, सो बैराट भयौ ता में भेद सुनावौ।
ताकी बिधी भिनि भाखि कहौ, तुलसी हिये आँखि से देखि बुझावौ।

अर्थ—एक प्रसंग की बात और विधिवत् इस प्रकार है—मैं उसे कहता हूँ, बूझ करके (समझ करके) उसका रहस्य बताओ। इसी कान से मैंने एक कथन यह भी सुना है कि ब्रह्मांड गूलर छल के समान है। व्यास ने अपने ग्रंथ में कहा है, और ठीक ही कहा होगा, ब्रह्मांड गूलर जैसा है, इसे खोजकर बताओ। वह किस ठिकाने पर है—वही अन्त में समग्र सृष्टि बैराट बना—उसके भेदों को समझाइये। सन्त मत के बैराट से भिन्न उसकी सत्ता का वर्णन करके सुनाओ और तुलसी साहब कहते हैं कि उसे हृदय में देख करके समझाओ॥

॥ सवैया ४२ ॥

बेदांत कहै जग ब्रह्म मई, सो ईसुर कर्म मीमांसा ने गायौ।
कथन पातंजल जोग कह्यो, सो बिसेसिक सार समय जो बतायौ।
न्याय जो गाइ करतार कहै, सोइ सांख्य ने नीत अनीत सुनायौ।
तुलसी षटरीति प्रपंच करी, सो करयौ जिन जक्त को जानि बुड़ायौ।

अर्थ—वेदान्त कहता है कि यह संसार ब्रह्ममय है—और वह ईश्वर है—साथ ही, मीमांसा में कर्म का वर्णन किया गया है। पातंजल के कथानुसार योग है और उसे वैशेषिक ने समय (सार तत्त्व) कहकर बताया है। न्याय में व्याख्या करके उसे 'करतार' कहा गया है—और सांख्यमत के अन्तर्गत उसे 'नीति-अनीति' तत्त्व के रूप में बताया गया है। तुलसी साहब कहते हैं कि ईश्वर का विवेचन करने वाली ये छः रीतियाँ प्रपंच हैं-- जिसने यह किया है, समझो कि उसने इस जगत को जानबूझ कर जल में डुबो दिया है।

॥ दोहा ॥

ज्ञानी पंडित भेष सब, परमहंस ब्रह्मचार।
ये सब भूले घट महीं, कर्म भूप की लार॥ १ ॥
परमहंस बेदांत से, ब्रह्म जो कहत लबार।
पातंजल जोगी ठगे, जक्त मिमांसा लार॥ २ ॥
ज्ञानि बैरागी पंडिता, समया लिखैं निहार।
और कहौं का की कहौं, बहे भर्म की धार॥ ३ ॥

पंडित भूले बेद में, सास्तर पढ़त पुरान।
ये गति मति है काल की, बूझै संत सुजान॥ ४॥
पंडि बूझौ भेद को, देखि लखौ पद सार।
लार ग्रन्थ पढ़ि कै कहौ, ये सब झूठ पसार॥ ५॥
अगम निगम से भिन्न है, पंडित लखा न जाइ।
संत मिलै कोइ महरमी, पल में देत लखाइ॥ ६॥

अर्थ–सभी वेष धारण किये हुए ज्ञानी तथा पंडितजन परमहंस तथा ब्रह्मचारी जी ये इन्ही षट् दर्शन में सभी भूल गए हैं–कर्म जीवन रूपी राजा की संसक्ति का तत्त्व है॥ १॥

वेदान्त के द्वारा परमहंस जो ब्रह्म की बात कहता है, वह लबार है, पांतजलिशास्त्र के व्याख्याता योगी ठग हैं, संसार की संसक्ति मीमांसा दर्शन है॥ २॥

ज्ञानी, वैरागी, पंडित ये सभी समयानुसार परिस्थिति देखकर लिखते हैं और मैं किसकी बात कहूँ–सभी कुछ भ्रम की धारा है॥ ३॥

पंडित जन वेद में स्वयं भ्रमित हो उठे हैं और वे शास्त्र तथा पुराण का निरन्तर पठन-पाठन करते रहते हैं किन्तु इसे संत जन ही समझते है,सब कुछ (गति-मति) काल पर ही आश्रित है॥ ४॥

हे पंडितों! इस रहस्य को समझो और इस संसार का रहस्य देखकर समझो। परम तत्त्व प्रेम के साधनात्मक ग्रंथों को पढ़कर सभी को बतलाओ कि यह साधना नहीं, झूँठ का जाल है॥ ५॥

वह परम तत्त्व आगम एवं निगमों में वर्णित तत्त्व से सर्वथा भिन्न है–पंडित तो उसे देख ही नहीं पाते। यदि कोई सिद्ध तथा उदारमना सन्त मिले, तो वह सब कुछ पल में ही बता देता है॥ ६॥

॥ चौपाई॥

या की पंडित कहौ बुझाई। भया बैराट नास कस भाई॥
पाँच तत्त का रहा पसारा। नास बेद कस कहत पुकारा॥
या कौ भाखि सुनावौ लेखा। अस बेदन कस कही बिबेका॥
या की बिधी बतावौ भाई। जा में लेखा लगै बनाई॥
या की दिसा भिन्न भिन दीजै। पुनि घर गवन आपने कीजै॥
हम परलय बिधि कही बनाई। या की बूझ समझ में लाई॥
और अनेक भाँति कहा लेखा। ज्वाब स्वाल लखि कहौ बिबेका॥

अर्थ–हे पंडितगण! इस बात को समझा कर बताओ–वैराट तत्त्व का विनाश कैसे हुआ, सृष्टि में पाँचों तत्त्वों का प्रसार रहा है–फिर वेद विनाश जैसी बात पुकार कर क्यों कह रहा है। इसका रहस्य मुझे कहकर सुनाओ। किस विवेक के अनुसार इस प्रकार के संकट (वेदन) की बात कही है। हे भाई। इस तरीके से यह बताओ ताकि बात सही-सही लगे। इसकी दिशाओं को पृथक्-पृथक् न करें–और तब आप अपने घरों को पधारें। हमने प्रलय की विधि बनाकर कही है और इसे सूझबूझ सहित तर्क संगत बनाया है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक विषयों का विस्तार सहित वर्णन किया है। हमारे प्रश्नों को समझकर विवेकपूर्वक बतलाओ।

॥ सोरठा॥

पंडित कहौ बिचार, वार पार परचा लखौ।
बेद पुरान नहिं सार, अगम ज्ञान कस लखि सकै॥

अर्थ–सृष्टि के इस पार (मृत्युलोक) और उस पर (मुक्ति लोक) का परिचय प्राप्त करके बताओ, वह वेद पुराण का सार तत्त्व नहीं है, वह तो अगम्य ज्ञान का विषय है, सामान्य रूप से वह कैसे दिखाई पड़ सकता है॥

॥ चौपाई ॥

संत मता सुन अगम अपारा। ब्रह्मा बेद न पावै पारा॥
और बैराट ठाट भगवाना। संत मता उनहूँ नहिं जाना॥
संत रीति गति सब से न्यारी। कहि कहि थाके नेति पुकारी॥
तुम ने बेद बेद ठहरावा। बेद नेति कहि भेद न पावा॥
साखि ताहि की करौ बखाना। बूझ नहीं हिये तिमिर समाना॥
जल जल रहा कहौ अस भाई। अस अस बेद कहै बिधि गाई॥
जल तत रहा बूझ अस ज्ञाना। थल बिन जल केहि बिधि ठहराना॥

अर्थ–संतों के अगम्य एवं अपार मत को सुनकर ब्रह्मा तथा वेद भी पार नहीं प्राप्त कर सके हैं। वैराट तो ईश्वर का ठाट-बाट है–यह सन्तों का मत है, अन्य इसे नहीं जानते। संतों की ज्ञानरीति सबसे विलक्षण है–इसे लोग कह कह कर थक गए और अन्त में उसे 'नेति' के नाम से पुकारा है। आप लोगों ने वेद को वेद बताया है और यह वेद उस अगम्य तत्त्व को नेति-नेति कहता है, और उसे इसका रहस्य ज्ञात नहीं हो सका है।

साखियाँ उसी का वर्णन करती हैं–किन्तु श्रोता के हृदय में अंधकार समाया रहता है, अतः वह ज्ञान सूझता नहीं। एक मात्र जल-ही-जल था ऐसा वेद गाकर कहते हैं किन्तु हे भाई! ऐसे ज्ञान को समझो कि केवल एक तत्त्व 'जल' ही कैसे रहा होगा–बिना स्थल में जल को किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है।

॥ सोरठा ॥

ऐसी बूझ बिचार, लार तत्त जल थल रहा।
जल थल तत्त मँझार, दुइ तत के जिव सब रहे॥

अर्थ–इस प्रकार इसे समझो और विचार करो कि मूल तत्त्व जल एवं स्थल था लेकिन (यह भी समझ लो कि) जल तथा स्थल इन दो तत्त्वों के बीच ही सम्पूर्ण जीव निवास करते हैं–अत– निष्कर्ष रूप में जल एवं स्थल के साथ समस्त जीव उस समय थे॥

सम्बाद माना, नैनू, स्यामा; पंडितों के साथ

॥ चौपाई ॥

नौ लख जीव जाति जल माईं। पिरथी लाख सताइस भाईं॥
ये सब जल थल जीव समाना। अछै बृच्छ कस रहे भगवाना॥
थल बिन बृच्छ रहा कस भाई। बिन थल बृच्छ बहा जल माईं॥
और जीव जल माहिं रहाई। अस भगवान रहे उन माईं॥
थल बिन बृच्छ कौन बिधि रहिया। अछै बृच्छ पुनि जल में बहिया॥
और जीव रहे जल माईं। तस भगवान रहे तेहि ठाईं॥
ब्रह्मा बेद कहाँ तब राखा। जल में कागद रहै न आँका॥

पुनि आगे का कहौ बिबेका। तेहि पीछे भयो कस क़स लेखा॥
हमरे मन में संसय आई। सो नैनू तुम कहौ बुझाई॥

अर्थ-नौ लाख जीव जातियाँ जल में रहती हैं-पृथ्वी पर सत्ताईस लाख लोग रहते हैं। ये सभी जल-थल के जीव समान हैं-फिर, भगवान अक्षयबट के वृक्ष पर कैसे रहे? हे भाई! बिना स्थल के वह वृक्ष कहाँ था? यदि स्थल न होता तो वृक्ष जल में बह जाता और अनेकानेक जीव जल में रहे होंगे। भगवान इनकी भाँति क्यों नहीं, जल में रहे। उस जलप्लावन की समग्रता ने ब्रह्मा ने वेदों की रक्षा कहाँ की-जल में कागज कभी साबूत नहीं बचता (क्योंकि बेद तो कागजों पर लिखा गया होगा) है। पंडितो? पुन: आगे भी बात समझो-उस आगे घटित होने के बाद पीछे की घटनाओं का क्या प्रमाण हैं। ये हमारे मन के संदेह हैं, हे नैनू पंडित; तुम इसे समझाकर बताओ॥

॥ उत्तर नैनू पंडित॥ चौपाई॥

ऐसी बेद कहत गोहराई। सास्त्र पुरान कहै सब गाई॥

अर्थ-जैसा हमने बताया है, उसे वेद भी बुला-बुलाकर बताता है-और इन सबका गायन शास्त्र-पुराणादि भी करते हैं।

॥ प्रश्न तुलसी साहिब॥

जल में कागद रहा न होई। परलय माहिं बचा नहिं कोई॥
परलय ब्रह्मा बचा न भाई। ये बेदन कस कस गोहराई॥

अर्थ-जल में कागज नहीं रहा होगा-प्रलय के समय क्या ये सब कुछ भी नहीं बचा होगा। हे भाई! प्रलय में ब्रह्मा भी न बचा होगा फिर ये वेद क्यों? ये बातें पुकार-पुकार कर हम कहते हैं॥

॥ उत्तर नैनू पंडित॥

स्वाँसा माहिं बेद तब रहिया। तिन सब यह बरतंत सुनैया॥

अर्थ-प्रलय के समय ब्रह्म की श्वाँस में बेद था और उसने प्रलय से सम्बद्ध यह सारा वृत्तान्त सुनाया है॥

॥ प्रश्न – तुलसी साहिब॥

स्वाँसा पवन तत्त जब भयऊ। पवन तत्त जिव जग सब रहेऊ॥
तुम तौ कहौ पवन तत नासा। जल पुनि पवन तत्त रहा वासा॥
कस बैराट कहौ तुम नासा। पानी पवन रही पुनि स्वाँसा॥
आई स्वाँस कस बिना अकासा। या कौ भाखौ भेद खुलासा॥
बिना अकास स्वाँस नहिं आवै। या की बिधि हम प्रगट सुनावैं॥
देखौ निरखि गगन को भाई। जहँ से स्वाँस सिमटि सब आई॥
पिंड ब्रह्मंड बिधि एक बखाना। तन में स्वाँसा गगन समाना॥
गगन रहै स्वाँसा भइ नासा। बेदन कस कस कहा तमासा॥
जल पिरथी बिन केहि बिधि रहिये। नैनू या की समझ सुनैये॥
जल रहिया तुम ऐसी भाखी। स्वाँसा पवन बतावौ साखी॥
तौ अकास होइहै पुनि सोई। जल पुनि रहै प्रिथी पुनि होई॥

जल पवना पुनि गगन अकासा। रही अगिनि चारौ में बासा॥
तुम कहौ पाँच तत्त कर नासा। ये बिधि पाँचौ रहे निवासा॥
तुम कहिया इक जलहि रहाई। ऐसे बेद कहै गोहराई॥
पाँच तत्त से जग रहा सोई। कहौ या की कस परलय होई॥
जल के रहे सभी पुनि रहिया। झूठी सकल बेद बिधि कहिया॥
एक तत्त कधी रहत बतावौ। पाँच तत्त कधी नास सुनावौ॥
ऐसा कस कस ज्ञान तुम्हारा। या कर कहौ भेद निरबारा॥

अर्थ–जब श्वास से पवन (वायु) तत्त्व का निर्माण हुआ तब यह तत्त्व संसार के सारे जीवों में रहा होगा। तुमने तो कहा है कि सारे तत्त्व विनष्ट हो गए थे–किन्तु जल तत्त्व में पवन तत्त्व का वास रहता है। इस विशाल सृष्टि के विनाश की बात तुम कहते हो–किन्तु पानी तथा वायु में दोनों विष्णु के श्वास में थे।

बिना आकाश के श्वास कहाँ से आएगी, इसका रहस्य स्पष्ट करके बताइये। हे भाई! आकाश में दृष्टि लगाकर देखो जहाँ से सिमट कर सारी श्वासें आई हैं। पिंड तथा ब्रह्मांड की एक ही विधि है, और शरीर की श्वास गगन में समाई रहती है–आकाश रहेगा और श्वास का विनाश हो उठेगा–ऐसा तमाशा वेदों ने कैसे-कैसे कहा है। पृथ्वी के बिना जल कैसे रहेगा, हे नैनू पंडित इसे समझ कर सुनाइये और तुमने कहा कि बिना जल के पृथ्वी रहेगी–फिर, श्वास तथा वायु की भी साक्षी बताओ–तो क्या आकाश बिना वायु के रहेगा–और जल पृथ्वी पर बराबर बना रहेगा॥

जल, वायु, गगन तथा वायु–इन चारों तत्त्वों में अग्नि का निवास रहता है। तुम कहते हो, प्रलय में पाँचों तत्त्वों का विनाश हो उठा था किन्तु पाँचों इस प्रकार निवास करते हैं।

तुम कहते हो, अकेले जल ही रहता है, ऐसा वेद पुकार कर कहता है। पाँचों तत्त्वों से यह समग्र संसार संयुक्त रहा है–तुम बताओ इसका प्रत्यय कैसे होगा? जल के रहने पर पुनः सभी रहेंगे–और इस प्रकार वेद की सम्पूर्ण विधियाँ झूँठी हैं। तुम अकेले एक तत्त्व का कभी रहना बताते हो और यह भी बताते हो कि कभी पाँचों तत्त्वों का विनाश होता है? इस प्रकार का तुम्हारा यह ज्ञान कैसा है? इसके रहस्य का तुम निवारण करो॥

॥ उत्तर – श्यामा पंडित ॥

पाँच तत्त पाँचो में जाई। मरना जीना ना कछु भाई॥
जल में जल पवना में पवना। गगन में गमन अगिनि में अगिना॥
प्रिथी प्रिथी में जाइ समानी। ऐसे पाँच तत्त अलगानी॥

अर्थ–पाँचों तत्व पाँचों में जाकर विलीन हो जाते हैं–न मृत्यु है, न जन्म है। जल में जल, वायु में वायु, आकाश में आकाश और अग्नि में अग्नि पृथ्वी में पृथ्वी समाविष्ट हो उठते हैं–इस प्रकार पाँचों तत्त्व अलग-अलग हैं।.

॥ प्रश्न – तुलसी साहिब ॥

॥ चौपाई ॥

ये पाँचौ पाँचौ में रहिया। पुनि पुनि नास कौ बिधि भइया॥
अंडा नसि तत कहाँ समाना। ता का हम से कहौ ठिकाना॥
कहिये तत्त कौन उपजाई। इन की आदि कहाँ से आई॥

जब ही ठाट बैराट नसाना। तब तत रहि कहौ कौन ठिकाना॥
कहौ तत पाँच पाँच में जाहीं। मरन जिवन और कुछ नाहीं॥
पुनि तेहि पाप पुन्य बतलावा। तुम कहौ कीन्ह दीन्ह तस पावा॥
तीरथ ब्रत सुभ कर्म बतावौ। कहौ उन्हें पुनि कस कस पावै॥
पाँच तत्त पाँचौ में जाई। पाप पुन्य कहौ कौन भुगाई॥
जज्ञ करै सो स्वर्गै जाई। पाँच तत्त तौ रहै न भाई॥
पाँच तत्त पाँचौ में जाई। स्वर्ग भोग कहौ कौन कराई॥
नैनू स्यामा पाँड़े भाई। या की बिधि बरतंत सुनाई॥
ये सब ज्वाब बतावौ भाई। तब तुम हम से जाने पाई॥
नैनू मन में गुनन बिचारा। या कौ कहा करौं निरबारा॥
बुधि चित मन में कछू न आवा। बुधि चित ज्ञान बहुत दौड़ावा॥
एकहु ज्वाब साफ नहिं दीन्हा। बुधि गई मानौ मतिहीना॥
बोले न ज्वाब काँप अस आई। या की कौन बिधी समझाई॥
जौन जौन बरतंत सुनावा। तौन तौन सुपने नहिं पावा॥

अर्थ–जब ये पाँचों तत्त्व पाँच तत्त्वों के रूप में रहते हैं तो उनका पुन: नाश किस प्रकार से होता है? ब्रह्मांड नष्ट होकर कहाँ समाता है, हे पंडित! उसका ठिकाना हमें बताएँ। बताइए कि इन पाँचों तत्त्वों को कौन उत्पन्न करता है। इनका आदि स्वरूप कहाँ से आया है जब इस विराट सृष्टि का समग्र स्वरूप नष्ट हो उठा–तब बताओ, ये तत्त्व किस स्थान पर रहेंगे। तुमने कहा है कि पाँचों तत्त्व पाँचों तत्त्व में विलीन हो जाते हैं–जन्म मृत्यु और कुछ भी नहीं है।

पुन: उसको पाप पुण्य बतलाया है, तुम कहते हो जैसा तुमने किया या दिया, उसी को प्राप्त करते हो। तीर्थ, व्रत, शुभकर्म बतलाते हो और लोगों को यह भी बतलाते हो कि वे उसे कैसे-कैसे प्राप्त करते हैं।

पाँचों तत्त्व पाँचों तत्त्वों में प्रवेश कर जाते हैं–फिर स्वर्ग भोग शरीर का कौन-सा रूप प्राप्त करता है। जो यज्ञ करता है, वह स्वर्ग गमन करता है किन्तु हे भाई! उस यज्ञकर्त्ता के पाँचों तत्त्व तो रहते नहीं तो स्वर्गभोग किसे कराया जाता है। हे नैनू तथा स्यामा पांडे भाई! इसका तरीका और वृतान्त स्पष्ट करें।

हे भाई! ये सब उत्तर हमें बताओ-तब तुम हमारे पास से जाने पाओगे। नैनू पंडित ने मन-ही-मन चिन्तन करके विचार किया–मैं इस बात का निराकरण कैसे करूँ। उनके मन, बुद्धि औचित्त में कुछ नहीं सुझाई पड़ा और उनको उन्होंने खूब दौड़ाया। उन्होंने एक भी उत्तर स्पष्ट रूप से नहीं दिया मानों उनकी बुद्धि ज्ञानहीन हो गई हो।

वे उत्तर नहीं दे सके, शरीर में अशक्यता के कारण कम्प जैसा उत्पन्न हुआ और विचार आया कि इन सब बातों का उत्तर किस विधि से समझाया जाए। जिन-जिन वृत्तान्तों को उन्होंने पूछा, वे भूलकर उनके स्वप्न में भी उनके मन में नहीं आए।

॥ सोरठा॥

तुलसी पूछै बात, खोल बुद्धि कछु कछु कहौ।
तुलसी माहिं खिसियात, सूझ बूझ आवै नहीं॥

अर्थ–तुलसी साहब, उनसे प्रश्न पूछते हैं–कि बुद्धि खोलकर कुछ भी तो कहो। वे पंडितगण तुलसी के प्रति खीझ रहे थे–उनकी सूझ-बूझ में कोई उत्तर नहीं निकल रहा था॥

सम्वाद तुलसी साहब और पंडित का

॥ चौपाई ॥

पंडित रहैं तीन सै साठा। देखे एक एक से भाठा॥
तिन में इक पंडित रहे माना। ता घर रहैं बहुत से दामा॥
मन में मस्त बिद्या बिधिमाई। बहुत पढ़े मद कहा न जाई॥
माया मद बिद्या मद दोई। ब्राह्मन जाति पाँचि मद सोई॥
चारि चरन में ऊँच बखाना। ता मद का कहौ कौन ठिकाना॥
माना पंडित का कहौं कैसा। सब भैंसिन में मानो भैंसा॥
बोले बचन मान मद मारे। काल के चीन्है साँझ सबा रे॥
कासी नगर छत्र कर थापा। मान मई सूझै नहिं आपा॥
ज्ञान बिधी विद्या बल ठाने। आदि अंत की खबर न जाने॥
माना पंडित बोले बानी। बेद विधी इन एक न जानी॥
बैदन कही आदि चलि आई। ता को छाँड़ि अंत कहँ जाई॥
बेद से कौन बात है न्यारी। ता को ढूँढ़ै हाथ पसारी॥

अर्थ–वहाँ तीन सौ साठ पंडित एकत्रित थे और देखने में एक से एक विद्वान थे। उनमें एक माना नामके पंडित थे। उनके घर बहुत सारे छात्र थे। हे भाई! वे मन से मस्त और विद्या विधि से सम्पन्न थे। बहुत पढ़ने से भी मद कहाँ समाप्त होता है। सम्पत्ति का मद तथा विद्या का मद और तीसरे ब्राह्मण जाति के होने का मद। चारों वर्णों में जो सर्वोच्च समझा जाता है, उस ब्राह्मण के मद का कौन ठिकाना है? मान पंडित का अभिमान इतना भरा हुआ था–जैसे अनेक भैंसों के बीच भैंसा का होना?

मान और मद से पूरी तरह से ग्रस्त वचन बोले और कहा कि काल सन्ध्या और प्रातः नहीं देखता। यह काशी नगरी काल क्षेत्र से छाई हुई और उन मान से भरे माना पंडित को अपनत्व नहीं सूझ रहा था। ज्ञान, कर्म काण्ड विधि, विद्या तथा बल से संयुक्त उन्हें आदि अन्त की कोई खबर नहीं थी। माना पंडित बड़े गर्व से बोले, ये सभी एक भी वेद विधि नहीं जानते। वेदों ने ऐसा कहा है और यह आदिकाल से बात चली आ रही है और इसलिए उसको छोड़कर दूसरी जगह और कहाँ जाया जाए। वेद से भिन्न और कौन बात हो सकता है और उसे हाथ पसार कर लोग खोजते रहते हैं।

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥

॥ चौपाई ॥

कहै तुलसी तुम सीतल होई। भाखौं भेद बेद कहै जोई॥
बाहिर भेद नहीं कछु गावा। बेद कहै हम भेद न पावा॥
नेतहि नेत बेद गोहरावा। ऐसी कौन बस्तु नहिं पावा॥
ता कर मन में करौ बिचारी। उन से कौन वस्तु रही न्यारी॥
निराकार को नेति पुकारा। जोति सरूप होत उँजियारा॥

ऐसे बेद कहै समझाई। कहै बेद हम भेद न पाई॥
ता की महिमा साखि बखाना। बेद कहै हम मरम न जाना॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि तुम थोड़े धैर्य धारण कर ठण्डे होकर वेद ने जिन भेदों को कहा है, उसी को ही बताओ। इन भेदो के विषय में बाहर कुछ भी नहीं कहा गया है। लोग कहते हैं कि ऐसा वेद कहते हैं किन्तु हम वेद में नहीं पाते।

वेद उस परम तत्त्व को नेति नेति कहकर पुकारता है–ऐसी कौन वह वस्तु है–जिसे किसी ने भी नहीं प्राप्त किया है। उसका मन के अन्तर्गत विचार करो कि उन ईश्वर से पृथक् कौन-सी वस्तु है। निराकार को वेद ने नेति कहकर पुकारा है, वह ज्योति स्वरूप है किन्तु चारों तरफ अँधेरा है। वेद इस प्रकार समझा कर कहते हैं किन्तु हम उसका रहस्य भी नहीं प्राप्त करते। उनकी महिमा का वर्णन साखियों में है–अर्थात् वेद कहते हैं किन्तु हम उसका रहस्य नहीं जानते॥

॥ सोरठा ॥

माना मन में रोस, तुलसी से पूछै सबै।
आदि जगत की बेद, सो तुलसी बरनन करौ॥

अर्थ–माना पंडित के मन में रोष है, और सब तुलसी साहब से पूछ रहे हैं कि इस संसार का आदि वेद है, आप इस आदिवेद का वर्णन करें॥

॥ चौपाई ॥

कहै तुलसी सुन माना बाता। बेद बिधी बिद्या बिख्याता॥
सब पहिले संसार रचाना। ता के पीछे बेद पुराना॥
अंडज पिंडज उषमज खाना। अस्थावर चर अचर बखाना॥
चारि लाख चौरासी धारा। जब जग का था सकल पसारा॥
जा के पीछे बेद रचाना। ता को परथम कीन्ह बखाना॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे माना पंडित! मेरी बात मानो। बेद विधि के अन्तर्गत यह विद्या विख्यात है। सबसे पहले संसार रचा गया–उसके पीछे वेद-पुराण आदि। इस संसार में अंडज, पिंडज, उषमज आदि जीव रचे गए और जंगम-स्थावर, चर-अचर (वे जीव) बताये गए। चार लाख चौरासी धाराओं के जीवों से सम्पूर्ण संसार भरा पड़ा था। उसके पीछे वेद रचा गया–किन्तु आप लोग उस वेद को सर्वप्रथम रचा गया कहते है।

॥ प्रश्न – माना पंडित ॥

॥ चौपाई ॥

कहै माना तुलसी सुन बानी। ये तौ तुम ने कूर बखानी॥
जग के पीछे बेद बतावा। यह हमरे मन में नहिं आवा॥
तुम तो कहौ जगत है पहिले। पुनि फिर रचा बेद का खेले॥
ऐसी बात अनीति बखानी। अब सुनियौ हम से सहदानी॥
कहौ बैराट रूप भगवाना। नाभि कँवल ब्रह्मा उतपाना॥
तिन पुनि बेद चारि रचि लीन्हा। ऋगु और साम जजुर को कीन्हा॥
और अथरबन कीन्ह बनाई। ता पीछे सृष्टी उपजाई॥

अर्थ—माना पंडित कहते हैं कि हे तुलसी साहब! मेरा बात सुनें। यह सब तुमने क्रूरता पूर्ण वर्णन किया है। संसार के पीछे आप वेद का वर्णन कर रहे हैं, यह बात हमारी समझ में नहीं आ रही है। तुमने यह कहा है कि संसार पहले है और उसके बाद वेदों की रचना की गई। ऐसी बातें, अनीतिमयी हैं—अब इसका साक्ष्य हमसे सुनिये। तुम भगवान को वैराट रूप कहते हो-भगवान की नाभि से कमल और कमल से ब्रह्म उत्पन्न हुए। फिर, ब्रह्मा ने चारों वेदों की रचना की और ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्वेद की रचना की और उसके बाद यह सृष्टि उत्पन्न की।

॥ उत्तर – तुलसी साहिब ॥

॥ चौपाई ॥

पंडित माना सुन बिधि बाता। या की कहौं सकल बिख्याता॥
अब मैं कहौं सत्त सत भाई। चित दे सुनियो कान लगाई॥
अब कहौं अगम निगमगति भाखी। वेदन में मिलि है नहिं साखी॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस न रहिया। नहिं बैराट निरंजन भइया॥
दस औतार नहीं थे भाई। पाँच तत्त नहिं देंही पाई॥
आदि अंत मध कछु न होती। अकथ कथा की भाखौं पोथी॥
अब कहौं आदि अंत की बानी। भाखौं आदि भेद सहदानी॥
पिरथम पुरुष अनाम अकाया। रहै नहीं बैराटी माया॥
जिन से सत्त नाम भया जाना। चौथा पद सोइ संत बखाना॥
जहँ सोइ सत्तनाम अस्थाना। सत्त लोक की करौं बखाना॥
सत्त लोक से निरगुन आया। आदि अंत का भेद सुनाया॥
जा सुत सोल्हा निरगुन होई। ता की बिधि भाखौं सुन सोई॥
चंद न सूर गगन नहिं तारा। धरति न पानी पवन अकारा॥
सेस कुरम नहिं दस औतारा। आदि अंत नहिं कीन्ह पसारा॥
ब्रह्मा बिस्नु बेद बिधि नाहीं। बिधि बैराट रचौ नहिं जाई॥
तब नहिं बेद बेद का करता। रूप रेख बिन रहै अकरता॥
निरगुन पुत्र पुरुष को सोई। ता कर नाम निरंजन होई॥
चौथा पद सतनाम दयाला। ता कर पुत्र निरंजन काला॥

अर्थ—हे माना पंडित! मेरी तर्कसंगत बातें सुनें। यह बात पूरी तरह से सर्वत्र प्रख्यात है। हे भाई! अब मैं सच-सच ही कहूँगा—कान लगाकर और ध्यान देकर (चित्त लगाकर) उसे सुनिये। अब मैं उस अगम्य तत्त्व निगम के ज्ञान को कहता हूँ। इसकी साक्षी वेदों में नहीं मिलेगी। जब ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश नहीं थे और न वैराट था और निरंजन ब्रह्म हे भाई! उस समय दशावतार भी नहीं थे, और इसने पांचों तत्त्वों को नहीं प्राप्त किया था।

आदि-मध्य-अन्त कुछ भी नहीं था और मैं उस अकथ्य कथा की पोथी आपको सुना रहा हूँ। अब मैं आदि-अन्त की वाणी समझा कर कहता हूँ। मैं आदि भेद का साक्ष्य कह रहा हूँ। प्रथम पुरुष बिना नाम और बिना शरीर का था और उसके चारों ओर विराट सृष्टि की माया नहीं थी। जिनके कारण यह सतनाम ब्रह्म, जाना जाने लगा, वे सन्त जन हैं, और संत चतुर्थ ब्रह्म पद है। जहाँ वह 'संतनाम' का

स्थान है, उस सत्यलोग का मैं वर्णनकर रहा हूँ। इस सतलोक से ही निर्गुण ब्रह्म आया है, मैंने उसके आदि अन्त का रहस्य बता दिया है। इस सत् से सोलह निर्गुण ब्रह्म बनते हैं, मैं उनकी प्रणाली का वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनें॥

न चन्द्र था, न सूर्य था, न आकाश था और न तारे थे। न धरती थी, न जल था, न वायु और आकाश ही थे। न शेष तथा कूर्म आदि दश अवतार थे, और आदि अन्त तक किसी तत्त्व का न फैलाव था। न ब्रह्मा थे, न बिष्णु थे, न वेद की रचना विधियाँ थी और तब ब्रह्मा द्वारा यह विशाल सृष्टि भी रची नहीं गई थी। तब न वेद था और न वेद का रचयिता था। और वह अकर्त्ता तत्त्व जो भी वर्तमान था–वह रूप, रेख, गुण एवं जातिविहीन था। उस निर्गुण को जो पुरुष पुत्र हुआ, उसी का नाम निरंजन था। चौथा पद दयालु सतनाम का है और उसी का पुत्र निरंजन रूप काल तत्त्व है।

॥ चौपाई ॥

जिन पुनि तप कीन्हा बहु ध्याना। सत्तनाम जिन निजकर जाना॥
उन माँगा होइ दीन अधीना। तीनि लोक ता कौ पुनि दीन्हा॥
धरती नीर पवन असमाना। ता से रचिया सकल बिधाना॥
पाँच तत्त वाही पर आवा। पुनि तिन रचि बैराट बनावा॥
जोती तेज पुरुष से आई। जीव अंस दै ताहि पठाई॥
जोती निरगुन के ढिंग आई। रति कर भोग कीन्ह पुनि ताही॥
तीनि बार रति कीन्हा जाई। ब्रह्मा बिस्नु कीन्ह उपजाई॥
तीजे संभू छोटे भाई। येही बिधि इनकी आदि बताई॥
ता पीछे जग कीन्ह पसारा। चारि लाख चौरासी धारा॥
सृष्टि भई तब अगम अपारा। जोति निरंजन जाल पसारा॥
सुषम बेद स्वाँसा से आवा। आदि भेद उनहूँ नहिं पावा॥
सुषम बेद की छाया लीन्हा। ब्रह्मा बेद बनाइ जो कीन्हा॥
अब या की मैं बिधी बताऊँ। चारि बेद की आदि लखाऊँ॥
जग संसार थपा था पिहले। पुनि फिरि रचा बेद का खेलै॥
अब या की हम बिधी बनाई। माना सुनियौ चित्त लगाई॥
धरती बैल किसानी होई। सन कर खेत भया पुनि सोई॥
बृछ बढ़ई जब काटा होई। हल बनाइ धरती पुनि बोई॥
डारा बीज भयौ सन साजी। रसरी कीन्ह ताहि की भाँजी॥
भया टाट तब किया बिछाना। सड़ा टाट तब हुआ पुराना॥
ता को जाइ कागदी लीन्हा। कूट काट कर सूधा कीन्हा॥
नदी माहि पुनि धोय सँवारा। तब कीन्हा ता का बिस्तारा॥

अर्थ–उस निरंजन काल ने ध्यान लगाकर बहुत तप किया और तब उसने अपना नाम 'सत्तनाम' के रूप में समझा। उसने उस अगम्य ब्रह्म के अधीन होकर तीनों लोकों को माँगा और उन्हें प्राप्त हुआ। पृथ्वी, जल, पवन, आकाश से उसने सम्पूर्ण सृष्टि का विधान रचा। पाँचों तत्त्व वहाँ आए और उनसे उसने विराट सृष्टि की रचना की। उस तेज पुरुष से ज्योति उत्पन्न हुई। उसने उसे जीव का अंश बनाकर

पठाया। वह ज्योति निर्गुण ब्रह्म के पास आई और उसने उससे रतिकर्म किया। उसने तीन बार जाकर उस ज्योति से रतिकर्म किया—ब्रह्मा-विष्णु को उत्पन्न किया तथा तीसरा उनका सबसे छोटा भाई शंभु हुआ—इस प्रकार, मैंने इस परमदेवों की आदि स्थिति का वर्णन किया।

उसके बाद उसने इस संसार का प्रसार किया और चार लाख चौरासी जीवों की धारा बनी। उसके बाद, अगम्य और सृष्टि अवतरित हुई और निरंजन की ज्योति ने अपना जाल फैला दिया। सुषम वेद उस निरंजन की श्वास से उत्पन्न हुआ था। इस भेद को निरंजन ने भी नहीं समझा। इस सुषम बेद (सूक्ष्म वे) की छाया लेकर ब्रह्मा ने वेदों को बनाया। अब मैं इसकी उस व्यवस्था को बता रहा हूँ और चारों वेदों के रहस्य को बतलाता हूँ। इस सृष्टि में सबसे पहले संसार स्थापित हुआ उसके बाद वेद रचना की क्रीड़ा हुई। अब मैं इस वेद की रचना की विधि बतलाता हूँ। हे माना पंडित! ध्यान लगाकर इस बात को सुनें।

इस धरती पर बैलों से कृषि शुरू हुई फिर उसके बाद सन की खेती शुरू हुई। बढ़ई ने जब वृक्ष काटा होगा तो हल बनाकर पृथ्वी बोई गई होगी। बीज डाला गया और खेत में सन सज गया होगा। इसी सन से माँजकर रस्सी बनाई गई-टाट बना होगा वह बिछौने के रूप में बिछाया गया होगा और कुछ दिन बाद वह टाट पुराना पड़ गया होगा, कागज बनाने वालों ने उसे खरीदा होगा और उसे कूट-काट कर ठीक किया होगा। उसको पुनः नदी में धोकर सँवारा होगा और तब उसका विस्तार किया गया होगा॥

॥ चौपाई ॥

गाय भैंस जब होइहै भाई। पुनि कागद की बिधी बताई॥
चूने दिवाल लेप ठहराना। तब कागद पर बेद लिखाना॥
जग में नद्दी नाला होई। टाट बनाइ कागदी धोई॥
कागद पीछे बेद लिखाया। सो ता को तुम आदि बताया॥
तिल्ली तेल पेल जब लीन्हा। रुई कपास की बाती कीन्हा॥
अगिनि तत्त जब होइहै बाई। दिया वारि काजर भइ स्याही॥
बन बरुई से कलम कर लीन्हा। ब्रह्मा बेद लिखन जब कीन्हा॥
चारि बेद की आदि बताई। जो ब्रह्मा से उपजे भाई॥
ता कर नाम गती गुन गाऊँ। पिरथम साम बेद तेहि नाऊँ॥
ऋग्ग जजुर कौ भाखि सुनाऊँ। चौथा अर्थ अथरवन गाऊँ॥
ऐसे चारि बेद बतलावा। ता की आदि बिधी बिधि गावा॥
तर से सास्तर भये पुराना। करमी जीव बहुत लपटाना॥
पूजैं पानी पत्थर देवा। तीरथ बरत बताई सेवा॥
ऐसे जीव खानि भरमावा। आदि अंत का मर्म न पावा॥

अर्थ—हे भाई! जब गाय-भैंस हुई होगी तब कागज के बनने की विधि का ज्ञान हुआ होगा। चूने को लगाकर दीवल पर लेप स्थिर किया गया होगा—फिर, उससे कागज बना और कागज बनने के बाद ही वेद लिखा गया होगा। संसार में बहुत से नदी-नाले हैं और सन से टाट बनाकर कागज के लिए उन्हें धोया। इस कागज बनने के बाद वेद लिखे गए और उसको तुम आदि सनातन वेद कह रहे हो।

पेर करके जब तिल से तेल निकाला गया और कपास के रुई की बत्ती बनाई गई। अग्नि तत्त्व उस समय वेद के पहले रहा होगा क्योंकि उस बातीको जला दिया गया जिससे काजल बना। बरुई

(जवास) से कलम बनाकर ब्रह्मा ने वेद रचना प्रारम्भ की। ब्रह्मा से उत्पन्न हुए चारों वेदों की मैंने अवतारणा बता दी।

मैं इन वेदों का नाम, उनकी गति तथा गुणों का वर्णन करता हूँ—सर्वप्रथम उसका नाम 'सामवेद' था। ऋग्वेद, यजुर्वेद के विषय में कहता हूँ और चौथे वेद अथर्ववण का वर्णन करता हूँ। मैंने इस प्रकार, चार वेदों के विषय में बतलाया और उनकी रचना की प्रारम्भिक विधियों का वर्णन किया।

इसके बाद पुराने शास्त्र बने और कर्मप्रवृत्त मनुष्य इन शास्त्रों में अधिक लिपटे। वह जल, पानी. पत्थर आदि देवता की पूजा करने लगा और शास्त्रों में वर्णित तीर्थ, व्रत आदि की सेवा शुरू की॥

इन शास्त्रों ने इस प्रकार मानव समूहों को भड़काया किन्तु उन्हें आदि अन्त का रहस्य न प्राप्त हुआ।

॥ सोरठा ॥

तुलसी कहै पुकार, माना पंडित सब सुनौ।
रहा जो होइ सम्बाद, कहौं बहुरि जो फिरि कहौ॥

अर्थ—तुलसी साहब पुकार-पुकार कर कहते हैं कि हे माना पंडित! तुम सुनो, जो संवाद इस समय हो रहा है, उनमें से जिसके विषय में पूछों, मैं उसे पुनः बताऊँ॥

॥ छन्द ॥

कहौं यह बिधि गाई तुमहिं सुनाई। आदि अंत सब भाख भई॥
बेदन बिधि चारी कहौं पुकारी। शिव ब्रह्मा की आदि कही॥
निरगुन मति गाई जोति सुनाई। जो रचना ब्रह्मंड मई॥
सिम्रित समझाई पुरान सुनाई। अस अस सब की आदि भई॥

अर्थ—आदि-अन्त का जो भी वर्णन किया है, यदि पुनः जानना चाहो तो मैं उसे फिर से कहकर सुनाता हूँ। चारों वेद की रचना की विधियाँ हमने पुकार कर कह दी तथा शिव एवं ब्रह्मा के आदि स्वरूपों का भी वर्णन किया है। मैंने निर्गुण ब्रह्म के ज्ञान के विषय में बताया है और उनकी ब्रह्माण्डमयी रचना का भी वर्णन किया है। स्मृति को समझा दिया तथा पुराणों के विषय में सुनाकर बता दिया कि इस प्रकार से सबका प्रारम्भ हुआ॥

॥ दोहा ॥

तुलसी कहै माना सुनौ, स्यामा नैनू बात।
तीनों मिलि यह बिधि कहौ, पूछौं सब बिख्यात॥

अर्थ—तुलसी साहब कहते हैं कि हे माना, श्यामा एवं नैनू पंडितगण मेरी बातें सुनो—यदि कहीं कोई इस आदि रचना के विषय में कोई बात हो तो उसे पूछों क्योंकि इनके विषय की सारी बातें विख्यात हैं।

॥ सोरठा ॥

दसौं बेद की आदि, जो तुम से मैं भाखिया।
कहा पाँच बिख्यात, रहे पाँच सो तुम कहौ॥

अर्थ—दसों वेद ग्रंथों की आदि रचना सृष्टि जिसके विषय में मैंने तुमसे मैंने कहा है—इनको पाँच विख्यात वेद बताया गया है, तुम बताओ कि वे पाँच कौन हैं।

॥ चौपाई ॥

सुषम बेद बिधि सबहि सुनाई। साम जजुर और ऋगू बताई॥
और अथरवन भाखि सुनावा। ऐसे पाँच बेद बिधि गावा॥

अर्थ–सूक्ष्म वेद की सारी विधियाँ मैंने सुना दी, साम, ऋक्, यजु को बता दिया। अथर्वण के विषय में कहकर सुनाया–इस प्रकार, पाँचों वेदों की आदि विधि का मैंने गान किया है।

संवाद तुलसी साहिब और माना पंडित का

॥ चौपाई ॥

रहे पाँच सो भाखि सुनावौ। तिन की आदि अंत समझावौ॥
और सतनाम आदि हम कहिया। कहौ निरगुन ता से कम भइया॥
और जोति की बिधी बताई। ब्रह्मा बिस्नु कौन बिधि आई॥
कौन बिधी से बेद लिखाही। जग तब कागद रहे न स्याही॥
ऐसी भिन्न भिन्न दरसैहौ। तब तुम हम से जाने पैहौ॥
सब जग लूटि लूटि कर खाई। अब नहिं छोड़ै तुलसी गुसाँई॥
नैनू स्यामा माना पाँडे। ये सब कहौ बिधी बिधि माँडे॥
बिन कहे ज्वाब न जाने पैहौ। कासी ढिंढोरा पुनि पिटवैहौ॥
जग को पुन्य दान बिधि साजा। सो सब अपने पेट के काजा॥
तीरथ थापि चलाई राही। ये सब अपने पेट के ताईं॥
ब्रितीपात परदोस बताई। ये सब झूठी बात चलाई॥
एकादसि चौदस और अट्टमी। ऐतवार मंगल और नौमी॥
तीज चतुर्दसि करवा चौथी। झूँठे बरत बतावैं पोथी॥

अर्थ–ये जो पाँच वेद थे, उनके विषय में कहकर सुनाओ और अब उनकी आदि और अन्त समझाओ. इसी के साथ ही 'सतनाम' आदि तत्त्वों के विषय में कहो और बताओ कि निर्गुण इनसे कैसे कम है। अन्य ज्योतियों की विधि भी बतलाओ तथा यह भी बतलाओ कि ब्रह्मा तथा विष्णु किस प्रकार आए। किस विधि से वेद लिखा गया, उस समय संसार में कागज था कि नहीं! ऐसी भिन्न-भिन्न बातें हमें बताओं। तब तुम हमसे छूट पावोगे। सारे संसार को आप लूट-लूट करा रहे हैं–हे स्वामी तुलसी साहब! हम अब आपको नहीं छोड़ेंगे। नैनू, स्यामा एवं माना पाण्डेय इन सबको विधि पूर्वक (तर्क एवं उदाहरण आदि द्वारा) मंडित करके समझाओ। इनका उत्तर दिए बिना जाने नहीं पावोगे अन्यथा मैं इस विषयमें काशी के अन्तर्गत ढिंडोरा पिटवा दूँगा। संसार में किया गया, दान, पुण्य आदि कार्य सबको ब्राह्मण अपनी उदरपूर्ति के लिए करता है। तीर्थों की स्थापना करके यात्रियों को मार्ग पकड़ा दिया–यह सब ब्राह्मणों की अपने पेट को पालने की विधि है। व्रतादि के लिए परदोष बनाते हैं–ये सब कही गई झूँठी बाते हैं। एकादशी, चतुर्दशी, अष्टमी, इतवार, मंगल और नौमी, तीज, चतुर्दशी तथा करवाचौथ आदि के विषय में पोथियों में मिथ्या व्रत बताया गया है॥

॥ चौपाई ॥

जो कोई करै बरत से प्रीती। ये सब कर्म खानि की रीती॥
जो कोइ बर्त राह चलै भाई। पुरखा तास नर्क में जाई॥

गंगा जमुना चारौ धामा। ये सब जैहैं भव की खाना॥
कातिक और बैसाख अन्हावैं। ये सब नीच जोनि में आवैं॥
देवल देव पखान पुजावै। ये सब भौसागर भरमावै॥
राम राम जो जपै अघाई। जा कौ जन्म अकारथ जाई॥
सिव पूजै और देवी पूजै। नीच होइ नीचा मत सूझै॥
कथा पुरान जो सुनै अघाई। बार बार भौं भटका खाई॥
जो जो बाम्हन कहै बिचारा। काल खानि ये जम की जारा॥
ऐसे पंडित जाल बिछाई। कोई जीवन बचन नहि पाई॥
अज्ञानी को बरत बतावा। ज्ञानी को पोथी समझावा॥
अस अस पंडित डारी जारा। ता से न उतरै भौ के पारा॥
ता कौ अब बरतंत सुनाऊँ। भागवत की बिधि मैं अरथाऊँ॥

अर्थ–जो कोई व्यक्ति व्रत से प्रीति करता है–ये समस्त कर्म असमृद्धि की खानि हैं। हे भाई! जो कोई व्रत के मार्ग पर चलता है, उनके पूर्वज नरक में जाते हैं। गंगा, यमुना एवं चारों धाम में जाना भवसागर की खानि में जाना है। कार्तिक एवं वैशाख में जो स्नान करते हैं, वे नीच योनि में उत्पन्न होते हैं। मंदिर में देवता की पाषाण पूजा होती है सभी पूजक अन्तर में भवसागर में भटकते हैं। जो तृप्त होकर राम-राम जप करता है, उसका जन्म निरर्थक हो उठता है। जो शिव और देवी पार्वती की पूजा करता है, वह नीच होता है और हमेशा उसे छोटी बातें सोचनी पड़ती हैं। जो तृप्त होकर कथा पुराणों को सुनता है, वह बार-बार संसार में झटके खाता है। ब्राह्मण जिन-जिन विचारों को मुक्ति के लिए समझाते हैं–वे सब काल की खानि एवं यमलोक में यम से दण्डित हैं। पंडितों ने इस प्रकार मनुष्यों के लिए काल का विधान बिछा दिया है–और उससे कोई जीव बचने नहीं पाता। उन्होंने अज्ञानी के लिए व्रत बैठा दिया और ज्ञानी के लिए पोथियाँ। इस प्रकार से, पंडितों ने जाल डाल दिया है, उससे उबर कर कोई भवसागर के पार नहीं जा सकता। अब मैं उनका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाता हूँ और भागवत के रहस्य का भी अर्थापन (स्पष्टीकरण) करता हूँ।।

॥ चौपाई ॥

पिरथम पंडित यों कर भाखै। भागवत बिना मुक्ति नहिं राखै॥
और पुनि भाखि कहै परभावा। जिन जिन कीन्हा तिन तिन पावा॥
ऐसी कहि कहि कै समझावै। या बिधि सकल जीव भरमावै॥
माना स्यामा तुमहिं सुनाई। नृग राजा परसंग बताई॥
ता को पुनि बिधि बिधि अनुसरई। प्रात दान गोसठि सो करई॥
तिरपित बाम्हन भोजन देबै। यदि बिधि पुन्य जज्ञ सोइ सेवै॥
ऐसे पुन्य बरत तेहि ठाना। भागवत ऐसी करत बखाना॥
दई गऊ बाम्हन की आई। सो गोसठि में आन समाई॥
राजा भूलि और को दीन्हा। बाम्हन बाम्हन झगरा कीन्हा॥
पुनि तिन स्राप ताहि को दीन्हा। गिरगट देंह राइ ने लीन्हा॥

याही पुन्य की करौ बड़ाई। अंत जन्म गिरगट कौ पाई॥
भोजन पुन्य कीन्ह बहुतेरा। किंचित सँग न चला तेहि केरा॥
इतना पुन्य कीन्ह उन भाई। और गया पुनि अंधा चाही॥
सर्व गया चौथाई पावै। तौ हमरे परतीती आवै॥
चौथाई में कछु नहिं पावै। ऐसे बाम्हन पुन्य करावै॥
ऐसा पुन्य कीन्ह तेहि राजा। ता के आयौ कछू न काजा॥
जिन जिन को तुम पुन्य कराई। वे बपुरे कैसे करि पाई॥
जग अंधा तुम हूँ पुनि अंधा। या से मचि गया अंधाधुंधा॥
मूए पुन्य बतावै पावै। कोई मुए की खबर न लावै॥
झूठहि झूठ रचा सब ठाटा। ता से जगत न पावै बाटा॥

अर्थ–सबसे पहले पंडितों ने यह बताया कि बिना भागवत के मुक्ति नहीं मिलती। इसके बाद वे, उसके प्रभाव को स्पष्ट करके बताते हैं–और बताते हैं कि जिन-जिन ने भागवत का व्रत ग्रहण किया, उन्हें उन्हें मुक्ति मिली।

हे माना पंडित! तुम्हीं ने नृग राजा का प्रसंग सुनाया है। भागवत की विधि का विधिपूर्वक अनुसरण लोग करते हैं और प्रातः राजा गायों का दान करते थे। तृप्ति पर्यन्त तक ब्राह्मण को भोजन कराते और इस प्रकार वह पुण्य यज्ञ का लाभफल प्राप्त करते हैं।

उन्होंने ऐसा पुण्य व्रत ठाना था–उसका भागवत वर्णन करता है। ब्राह्मण को दी हुई एक बार गायों के समूह में दान की गई एक गाय आ गई। और भूलवश राजा ने उसे दूसरे को दान में दे दिया और ब्राह्मणों ने उसके लिए आपस में झगड़ा किया। इसके बाद उन्होंने राजा नृग को शाप दिया और राजा ने गिरगिट की देह ग्रहण की। क्या तुम लोग इसी पुण्यका वर्णन करते हो कि (दान के फल के कारण) अन्त में, गिरगिट के रूप में जन्म होता है। भोजनदान का पुण्य बहुत अधिक किया किन्तु यह अन्त तक साथ न चला। हे भाई! तुमने इतना पुण्य किया और उसके फलस्वरूप अन्त में, अंधे कुएँ में गए। सब कुछ नष्ट हो उठा। उसके बदले में चौथाई पा रहे हो मुझे ऐसा ही लगता है। इस चौथाई में भी तुम कुछ नहीं प्राप्त करते–ब्राह्मणों का कराया गया पुण्य कार्य ऐसा ही है।

इस प्रकार का पुण्य उस राजा ने भी किया था–उसके काम वह पुण्य कुछ भी नहीं आया। जिन-जिनसे तुमने पुण्य कर्म करवाये थे–वे बेचारे उस पुण्य कर्म का फल कैसे प्राप्त करते । संसार अंधा है, उसी में तुम भी अन्धे हो और इसी से इसमें अंधाधुंध मचा हुआ है। मृत्यु के बाद पुण्य मिलता है, यह तुम बताते हो–किन्तु कोई मरने के बाद का कोई समाचार नहीं लाता। सारा तुम्हारा ठाट झूँट-झूँठ से बना है, इसी से यह संसार तुम्हारे निर्दिष्टि ज्ञान द्वारा मुक्ति का वास्तविक मार्ग नहीं प्राप्त कर रहा है।

॥ उत्तर – माना और स्यामा पंडितों का ॥

॥ चौपाई ॥

माना स्यामा यों करि बोले। तो पुनि रचा झूठ का खेले॥
ब्यास भागवत कही बखाना। सुनै मुक्ति जो होइ निदाना॥
सुनिया की मैं साखि बताऊँ। सुकदेव कह्यौ परीछित राऊ॥
सपता सात दिवस उन भाखा। भागवत कहै सुनौ तुम साखा॥

अर्थ–इस पर माना तथा श्यामा पंडित इस प्रकार बोले, तो फिर यह पुराण एवं ब्राह्मण कर्मादि क्या मिथ्या प्रपंच के रूप में रचा गया है। व्यासजी ने भागवत में बताया है कि इसे जो सुनेगा, उसे मुक्ति होगी। सुनने की मैं साक्षी बता रहा हूँ। शुकदेव ने परीक्षित राजा को भागवत सुनाया। सात दिन अर्थात् भागवत सप्ताह तक उन्होंने इसका वर्णन किया (उन्हें मुक्ति मिली) यह भागवत में ही कहा गया है–हे तुलसी साहब, इसका यह साक्ष्य सुन लें॥

सम्बाद – तुलसी साहिब और माना पंडित का

॥ प्रश्न – तुलसी साहिब ॥

॥ चौपाई ॥

भागवत तौ पिरथम्म लिखाना। परीछित सुकदेव नाम बखाना॥
ये पिरथम कहि ग्रंथ बनावा। सुकदेव नृप दोउ ता में आवा॥
सुकदेव राजहिं कथा सुनावा। ऐसे ब्यास भागवत गावा॥
ब्यास भागवत लिखी बनाई। पुनि सुकदेव राय समझाई॥
ये तौ ब्यास पहिले लिखि गयेऊ। भागवत में बरनन करि कहेऊ॥
को सुकदेव परीक्षित होई। ता की मुक्ति बताई सोई॥
पहिले ब्यास ने कथा बनाई। पीछे सुकदेव नृपहिं सुनाई॥
सुकदेव कथा सुनावत गइया। तब प्रीछित की मुक्ती भइया॥
ब्यास मुक्ति पहिले लिखि गाई। ता पीछे सुकदेव सुनाई॥
कौन परीक्षित मुक्ती पाई। ये तौ बिधी मिली नहिं भाई॥
ब्यास ग्रंथ में पहिले गावा। तुम ने ये सुकदेव बतावा॥
वो नृप कौन परीक्षित होई। ता की ब्यास मुक्ति कहि सोई॥
ये तौ पीछे जाइ सुनाई। ब्यास ग्रंथ लिखि पहिले गाई॥

॥ उत्तर – माना पंडित ॥

॥ चौपाई ॥

तब माना तुलसी से भाखी। या की बिधी कहौं सुनु साखी॥
थे अवतार ब्यास तिरकाली। अगमन कही ध्यान ब्रत ताली॥
या से अगमन भाखि सुनाई। येहि बिधि ब्यास भागवत गाई॥
जो तिरकाल लखै पुनि भाई। अगम् भेद सोइ भाखि सुनाई॥

अर्थ–तब माना पंडित ने तुलसी से कहा, मैं इस रहस्य को बतलाता हूँ, इसका प्रमाण सुनें। व्यास प्रभु के अवतार एवं त्रिकालज्ञ थे। अपने ध्यान व्रत के फलस्वरूप इस कर्ता को उन्होंने पहले (त्रिकालज्ञ होने कारण) की बात बता दी। इसीलिए उन्होंने पहले ही कह कर सुना दिया। इसी विधि से व्यास ने भागवत का गान किया। हे भाई! जो त्रिकालज्ञ है, वह सब कुछ देखता है, और वह अज्ञेय के रहस्य को कहकर सुना देता है।

॥ वचन – तुलसी साहिब ॥

॥ चौपाई ॥

माना यह बिधि बरनि सुनाऊँ। या की पहिली साखि बताऊँ॥
महादेव ये मंत्र सुनावा। बीजक पारवती मन लावा॥
सब पंछिन कौ दीन्ह उड़ाई। सुवा अंड इक रहा छिपाई॥
वन पंछी उड़ाई। सुवा अंड इक रहा लुकाई॥
तब मंत्र इक भाखि सुनावा। पारबती सुनि निद्रा आवा॥
पुनि पुनि सुवा हुँकारी दीन्हा। महादेव कोप तब कीन्हा॥
सुवा भागि ब्यास त्रिय गर्भा। गर्भ रहा बिधि भाखौं सर्बा॥
बारा बरस गर्भ में रहिया। यह पुरान बिधि ऐसी कहिया॥
गर्भ बढ़ा तिरिया अकुलानी। निकसै नहीं मंत्र बिधि जानी॥
गये भगवान तीर पुनि ब्यासा। ब्याकुल तिरिया गर्भ तिरासा॥
सींघ भाव जस राई सेवा। माया भिन्न भये सुकदेवा॥
नारि उठाइ हाथ में लीन्हा। तप को चले कहौं अस चीन्हा॥
ब्यास मोह उपजा दुख लागा। पुत्र पुत्र कहि पीछे भागा॥
पुत्र मोह ब्याकुल बहु क्रोधा। तब पुनि कीन्ह बृच्छ ने क्रोधा॥
तब तिन का तिरकाल हिराना। गई बुद्धि मति मोह भुलाना॥

अर्थ--तुलसी साहब कहते है कि हे माना! तुमने यह रहस्य वर्णित करके सुनाया–मैं इस सम्बन्ध पहला साक्ष्य बतला रहा हूँ। महादेव (शिव) ने एक मंत्र सुनाया और उसे बीजक में पार्वती ने मन लगाया। सम्पूर्ण पक्षियों को वहाँ से उड़ा दिया किन्तु एक तोता वहाँ अपने अंडे को छिपा दिया। सभी जातियों के वन पक्षियों को उड़ा दिया किन्तु तोते का एक अंडा वहाँ छिपा रहा। शिव ने तब एक मंत्र कह कर सुनाया उसे सुनकर पार्वती को निद्रा आ गई। अंडे से तोता बार-बार हुकारी भरता रहा–और वास्तविकता समझकर शिव ने तब महाक्रोध किया। तोता भागकर व्यास पत्नी के गर्भ में चला गया और उस गर्भ में वह बराबर बना रहा। बारह वर्षों तक वह गर्भ में रहा–यह भागवत पुराण की विधि इस प्रकार बताती है। यह गर्भ का काल इतना बढ़ गया कि व्यास की पत्नी व्याकुल हो उठी--वह शिव मंत्र की विधि जान गया था, गर्भ से निकलता नहीं था।

इस सन्दर्भ को जानकर व्यास भगवान के पास गए और अपनी पत्नी की गर्भ विषयक व्याकुलता की चर्चा की। पशु की सींघ को नोक पर जितनी देर राई टिक सकती है। उसी प्रकार शुकदेव माया मुक्त होकर जन्में। उनकी पत्नी ने उन्हें उठाकर हाथ में ले लिया–उन्होंने बताया कि (ब्रह्म तत्त्व) को समझ लिया है--अब मैं तपस्या के लिए चलता हूँ। शुकदेव के इस कार्य से व्यास को पुत्रमोह उत्पन्न उठा और पुत्र-पुत्र कहते हुए उनके पीछे लग गए। उनमें पुत्र के कारण मोह, व्याकुलता तथा क्रोधभाव था–उसे देखकर एक वृक्ष ने उन पर क्रोध करके समझाया। उस समय उनकी त्रिकालज्ञता विनष्ट हो चुकी थी। उनकी बुद्धि विनष्ट थी तथा मतिमोह में भूल चुकी थी।

॥ चौपाई ॥

ता कौ कहौ अगम तिन भाखा। बुद्धी गई मोह अभिलाखा॥
सुकदेव परमहंस नहिं जाना। कस कस कीन्ह अगम बखाना॥
तिरिया गर्भ पीर के काजा। ब्याकुल सोग मोह उपराजा॥
तिरकाली भगवान बतावौ। चौबीसन में भाखि सुनावौ॥
सुन माना यह भेद बताई। सुनि कै समझि लेउ मन माईं॥
अब परिछित की बूझौ बाता। और सुकदेव सुनौ बिख्याता॥
सुकदेव सप्ता पीछे कीन्हा। परिछित कथा सुनायौ चीन्हा॥
कथा सुनावन पीछे गयेऊ। मुक्ती तौ पहिले होइ गयेऊ॥
ये सब झूठ झूठ सी होई। अस अस समझि परा बिधि सोई॥
सुने सुने मुक्ती बर होई। तौ सब जग बूड़ै नहिं कोई॥
सुने सुने मुक्ती जो पावै। गुड़ गुड़ कहे मीठ मुख आवै॥
ता का मैं बरतंत बखानूँ। पंडित तुम सुनियौ दै कानूँ॥
माल दिवासर तेजी होई। चिट्ठी में लिखि भेजा सोई॥
चिट्ठी सुनि कर माल लदावा। ता का नफा तिनै पुनि पावा॥
पढ़े सुने कछु हाथ न आवै। ज्यों बैपारी रीता जावै॥
सुनि कर करै सोई है गाजी। सुनि सुनि मरि गये कोटिन पाजी॥
मुए मुक्ति की खबर बतावै। मूए जनम काग कौ पावै॥
ये पंडित तुम्हरो ब्यौहारा। जनम जात जूवा जस हारा॥

अर्थ–हे माना! उनके लिए कहते हो कि वे अगम्य-अगोचर के विषय में बतलाते हैं, बात समझ में नहीं आती। देखो, इन व्यास की बुद्धि जा चुकी है और इनमें केवल मोह तथा लालसा बनी हुई है। परमहंस शुकदेव के विषय में उन्हें कोई ज्ञान नहीं हुआ–फिर अगम्य का कैसे-कैसे वर्णन किया होगा। पत्नी के गर्भ मोह से पीड़ित व्यास में व्याकुलता, शोक, मोह सभी उत्पन्न हो उठे। उन्हें त्रिकालज्ञ भगवान कहते हो और चौबीस अवतारों के अन्तर्गत उनका वर्णन करते हो। हे माना पंडित! सुनो, मैं उनका रहस्य बतला रहा हूँ–उसे सुनकर मन में समझ लो।

अब परीक्षित की बात समझो और विख्यात शुकदेव के विषय में भी समझो। वे कथा तो सुनाने पीछे गए किन्तु उनकी मुक्ति तो पहले हो चुकी थी? ये सारी बातें झूंठ-सी लगती हैं–ऐसा रहस्य मुझे समझ में आया है। यदि सुनने-सुनने से श्रेष्ठ मुक्ति मिलती है तो संसार में कोई भी व्यक्ति भवसागर में न डूबे। सुनने से यदि मुक्ति मिलती है तो केवल गुड़ शब्द के कहने मात्र से (न कि खाने से) मुँह मीठा हो उठेगा। इसलिए इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं समझाकर कहता हूँ–हे पंडितगण। आप लोग कान लगाकर सुनें।

दिन-रात माल (विक्रीत वस्तु) में तेजी आ रही है–उसे किसी ने किसी व्यापारी को लिखकर भेज दिया। चिट्ठी पढ़कर मूल व्यापारी ने माल लदवाया और उसने उसका मुनाफा प्राप्त किया। केवल पढ़ने और सुनने से कोई फल (परिश्रम) हाथ नहीं लगता–कर्महीन व्यापारी इसीलिए खाली हाथ जाता है? सुनकर उसे जो कर्म द्वारा पूरा करता है, वही श्रेष्ठ है–और सुन-सुनकर कल्पना करने वाले लाखों दुष्ट मृत हो गए।

उस मुये और उसकी मुक्ति का जो समाचार बतलाते हैं–वे मरने के बाद कौए का जन्म प्राप्त करते हैं। हे पंडितों! यही तुम्हारा आचरण है–और जुए में हारे जुआड़ी की भाँति तुम्हारा जन्म निरर्थक होता जा रहा है॥

॥ उत्तर – माना पंडित ॥

॥ चौपाई ॥

मुक्ती हमरे हाथ न सोई। जो भगवान करै सो होई॥
मुक्ती तौ भगवान से पावै। जो कोइ उनके सरनै जावै॥
हम अपंग मारग नहिं जाना। पल में मुक्ति करै भगवाना॥

अर्थ–मुक्ति हमारे हाथ में नहीं है, जो ईश्वर करते हैं, वही होता है। मुक्ति तो (मनुष्य को) ईश्वर से मिलती है–जो कोई उसकी शरण में जाता है, उसे मिलती है। हम तो पंगु हैं, मार्ग भी नहीं जानते, भगवान तो शरण में जाने पर पलभर में मुक्ति दे देते हैं॥

॥ श्लोक ॥

मूकं करोति बाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत् कृपालमहं बंदे परमानंद माधवः॥
हम तो हैं उनकी सहनाई। तन मन बचन पर उन पाँई॥
हमरे नेत्र दोइ पुनि होई। अरजुन उधौ पार लगाई॥

अर्थ–जो मूक व्यक्ति को वाचाल बना देते हैं और जिनकी कृपा से पंगुल (लंगड़ा) पर्वत को नाघ जाता है–ऐसे कृपालु परमानन्द माधव की मैं वन्दना करता हूँ।

हम मानव समूह तो उनकी शहनाई हैं–तन, मन, वाणी के परे उन परमेश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। हमारे पास तो जगत को देखने के लिए दो ही नेत्र है–प्रभु के पास तो अनेक नेत्र हैं।

॥ श्लोक ॥

द्वै द्वै लोचन सर्बानां बिद्या त्रय लोचनं।
सप्त लोचन ज्ञानीनां भगवान अनंत लोचनं॥
हम तौ उनकी चरनन सरनाई। तन मन बचन परे उन पाँई॥
जैसी ऊधौ की उन कीन्हा। हमहूँ सरना उसकी लीन्हा॥

अर्थ–सभी के पास तो दो-दो नेत्र हैं, विद्या तृतीय नेत्र है, ज्ञानियों के पास सात नेत्र हैं–भगवान तो अनन्त लोचनों से संयुक्त हैं

मैं तो उन ईश्वर की शरण में हूँ जिन्होंने अर्जुन तब उद्धव का उद्धार किया है। उन्होंने उद्धव के लिए जैसा उपकार किया है, हमने भी उशी साधना की शरण ले रखी है॥

॥ वचन तुलसी साहिब ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी कहै पुकार, ऊधौ की भइ सो सुनौ।
अरजुन सुनौ बिचार, वै लबार कैसी करी॥

अर्थ–तुलसी साहब पुकार-पुकार कर कहते हैं कि कृष्ण सखा उद्धव की जो दशा हुई, उसे सुनों- अर्जुन के विषय में मेरे विचारों को सुनो लाचार होकर उन्होंने क्या किया।

॥ चौपाई ॥

ऊधो के मित्र बड़े भगवाना। एकादस में कीन्ह बखाना॥
जिन की मित्र भाव की करनी। प्रीति अधिक कुछ जाइ न बरनी॥
जब भगवान धाम कियौ गौना। भाखा ऊधो से कहों जौना॥
तुम तप करौ बद्रिका जोई। तब ऊधो ने दीन्हा रोई॥
जब उन अपने प्रान गँवाये। तब ऊधो तप करने आये॥
उन को मुक्ति न दीन्ही भाई। तुम पुनि मुक्ति कहाँ से पाई॥
मित्र प्यार कीन्हा बहुतेरा। नहिं उन उनका कीन्ह निबेरा॥
जो उनकी मुक्ती होइ जाती। तौ तप को जाते केहि भाँती॥
उन की मुक्ति न कीन्ही भाई। तुम भूले केहि लेखे माईं॥
और अरजुन की कथा सुनाई। उनके बड़े मित्र थे भाई॥
जब बंधुन से जुद्ध करावा। बन्धु मराइ पाप सिर लावा॥
जज्ञ करा पुनि पाप न छूटा। जबै कृष्न की देंही टूटा॥
उन से कहा हिवा रे जावौ। ता में देंही जाइ गरावौ॥
पुनि सो परे नर्क के माईं। गीता में देखौ तुम जाई॥
अरजुन मुक्ति न पाई भाई। माँगौ उन से केहि बिधि जाई॥
कृष्न काल सब जग को खाई। ता कौ जपौ बहुत मन लाई॥
ऐसी तुम्हारी मती हिरानी। काल से माँगौ मुक्ति निसानी॥

अर्थ–भगवान उद्धव के बहुत बड़े मित्र थे। भागवत के एकादश अध्याय में इसका वर्णन है। जिनके मित्र भाव का आचरण सुन्दर था और उनमें इतनी अधिक प्रीति थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जब श्रीकृष्ण मृत्यु के क्षण परमधाम के लिए गमन करने लगे तब उद्धव से कहा कि मैं जो कह रहा हूँ, उसे करो। तुम बद्रिकाश्रम में जाकर तपस्या करो तब उद्धव रो पड़े। जब श्रीकृष्ण ने अपना प्राण छोड़ा तब उद्धव बद्रिकाश्रम तपस्या करने आए। श्रीकृष्ण ने उन्हें भी मुक्ति नहीं दी और तुम मुक्ति कहाँ से प्राप्त करोगे। यद्यपि उन्हें मित्र का प्यार बहुत-सा दिया किन्तु उद्धव का उद्धार नहीं किया। यदि कृष्ण द्वारा उनकी मुक्ति हो जाती तो तपस्या करने के लिए क्यों जाते। जब श्रीकृष्ण ने अपने बाल-सखा को मुक्ति नहीं दी तो हे भाई! तुम किस भ्रम में पड़े हो।

और अब मैं अर्जुन की कथा सुनाता हूँ जो उनके बहुत बड़े मित्र थे। जब कृष्ण ने उनको बन्धुओं से युद्ध कराया और बन्धुओं को मरवा कर सिर पर पाप लगा दिया। उन्होंने यज्ञ किया किन्तु उससे भी पाप नहीं छूटा। जब कृष्ण मृत्यु के निकट पहुँचे तब उन्होंने अर्जुन से कहा कि तुम हिमालय जाओ और वहाँ जाकर इस शरीर को नष्ट कर दो। गीता में जाकर पढ़ो और देखो, इसके बाद भी अर्जुन नरक में क्यों पड़े?

जब श्रीकृष्ण के कथनानुसार आचरण करके अर्जुन मुक्ति नहीं प्राप्त कर सके तो तुम उनसे किस प्रकार मांग रह हो। कृष्ण रूपी काल सारे संसार को खा रहा है–उसका जप बहुत ही मन लगाकर

करते हो। इस प्रकार सोचने से जैसे तुम्हारी मति खो उठी है और तुम काल (कृष्ण) से मुक्ति माँग रहे हो।

॥ दोहा ॥

सुनि पंडित मन में गुनो, तुलसी कहत प्रमान।
ये तौ दरसै यदि बिधी, गीता करत बखान॥

अर्थ–इसे सुनकर पंडित ने मन में विचार किया कि तुलसी साहब अपनी बात सप्रमाण कह रहे हैं–गीता में भी यही कहा गया है और श्रीकृष्ण तो इस प्रकार (प्रतिकूल रूप में) दिखाई पड़ रहे हैं॥

॥ प्रश्न माना पंडित ॥

॥ चौपाई ॥

तब माना बोले कर जोरे। ये तौ फूरि आई मन मोरे॥
ऊधो एकादस में गाये। गीता में अरजुन समझाये॥
मुक्ति न भई तबैं तप कीन्हा। येहि बिधि से मोहिं भयो यकीना॥
माना पंडित बिनती लाई। इक संसय मोरे मन आई॥
भागवत सुने मुक्ति होइ जाई। अस अस साख सनातन गाई॥
सो तुलसी मोहिं समझ सुनावौं। या की समझ बूझ समझावौं॥

अर्थ–इसे सुनकर माना पंडित हाथ जोड़कर बोले, आपकी ये बातें सत्य हैं, मेरी समझ में यह आ गया। एकादश अध्याय में उन्होंने ऐसा कहा है और गीता में अर्जुन को भी यही समझाया है। मुक्ति नहीं मिली, इसी लिए उद्धव ने तपस्या की–इस प्रकार मुझे विश्वास हो गया। माना पंडित विनती करते हुए बोले कि एक और संदेह मेरे मन में उत्पन्न हुआ है कि भागवत सुनते ही मुक्ति हो जाती है–ऐसा प्रमाण परम्परा में बताया गया है। इसलिए हे तुलसी साहब! यह प्रश्न आप समझ कर सुनाएँ–और इसे खूब सोच-विचार करके समझाएँ॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥

॥ चौपाई ॥

सुनु माना बरतंत बताऊँ। भागवत बिधि सब राखि सुनाऊँ॥
पहिले पंडित जनम बिताना। भागवत मति बिन मुक्ति न जाना॥
सुनते सुनते करत बखाना। मुए भूत का किया बिधाना॥
पुनि घट साध बनायो साजा। तबहुँ न भयौ मुक्ति कौ काजा॥
किरिया करिके पिंड बनाई। तबहुँ न उन मुक्ती को पाई॥
गंगा माहिं उड़ाई छारा। तबहुं न भया जीव निरबारा॥
दसवाँ करिके मूछ मुड़ावा। तबहुं न मुक्ति गती को पावा॥
बाम्हन भोजन पञ्च खवाये। मुक्ति बाट तबहूँ नहिं पाये॥
गया जाइ कैं पिंड सँवारा। तऊ न पाया मुक्ती द्वारा॥
मास पाख छैमासी बरसी। मुक्ति न भई खानि गति परसी॥

ये सब झूठ मुक्ति की आसा। मुक्ति रहै संतन के पासा॥
इतनी मुक्ति जुक्ति बतलावै। तबहुँ न प्रानी मुक्ती पावै॥
अस बिधि कहै भागवत भाई। मुक्ति बताइ न भूत बनाई॥
और अनेकन जतन करावै। भौ में जाइ मुक्ति नहिं पावै॥
अस अस भाखा झूठ पसारा। मुक्ति न होइ न होइ उबारा॥

अर्थ–हे माना पंडित! सुने, भागवतविधि का सम्पूर्ण साक्ष्य मैं सुनाता हूँ। पहले पंडित ने यह कहा करते थे कि भागवत ज्ञान से किसकी मुक्ति नहीं होती? इसे सुनते-सुनते सारा जन्म बीत गया और यहाँ (भागवत पुराण में) मृत के भूत होने का विधान किया गया है। क्रियाकर्म करके पिंड बनाया गया, तब भी उन्होंने मुक्ति नहीं प्राप्त की। पुन: घड़े को सजाकर उसकी स्थापना की गई, तब भी मुक्ति का कार्य नहीं हुआ।

गंगा के अन्तर्गत उस मृत की राखें फेंकी गई, तब भी जीव का कोई निराकरण नहीं हुआ। दसवाँ में बाल बनवाकर मूँछ मुड़ा ली – फिर भी, मुक्ति की गति नहीं प्राप्त की। पाँच ब्राह्मणों को भोजन कराया तब भी मुक्ति का मार्ग नहीं प्राप्त किया। गया में जाकर मृत पिंड बनाकर श्राद्ध किया तब भी मुक्ति का द्वार नहीं दिखाई पड़ा। मास, पक्ष, त्रैमास एवं वर्षो में क्रियाकर्म करने के बाद भी मुक्ति नहीं मिली और भवसागर से ही जुड़े रहे। ये सभी मुक्ति की आशाएँ झूँठी हैं–मुक्ति तो संतों के पास रहती है। ये संत गण मुक्ति की इतनी युक्तियाँ बतलाते हैं, फिर भी प्राणी मुक्ति नहीं प्राप्त करते।

भागवत पुराण में तो ऐसी स्थिति है कि बताते मुक्ति की बात हैं और बनाते भूत हैं। इसी के साथ वे अन्य यत्न कराते हैं कि व्यक्ति भवसागर में जाता है, मुक्ति नहीं मिलती। उसमें ऐसी -ऐसी झूँठी बातों का प्रसार है कि न मुक्ति मिलती है, न माया से छुटकारा॥

॥ प्रश्न माना। चौपाई॥

॥ चौपाई॥

तुलसी स्वामी मुक्ति न पावा। ये पुरान झूठे गोहरावा॥
सिम्रित सास्तर झूठ बनावा। ये तौ आदि अंत चलि आवा॥

अर्थ–क्या मुक्ति नहीं मिली किन्तु क्या ये पुराण मुक्ति-मुक्ति झूँठे ही बुलाते हैं। क्या स्मृतियाँ एवं शास्त्र झूँठ बनाये गए हैं और आदि से अन्त तक चली आ रही है ये बातें क्या असत्य हैं।

॥ बचन तुलसी साहिब॥

॥ चौपाई॥

माना सुनियौ काल पसारा। वो दयाल पद इन से न्यारा॥
ब्रह्मा बिष्नु काल की जारा। इन सब कीन्हा झूठ पसारा॥
कर्म कराइ जगत बौराया। ता से आदि अंत नहिं पाया॥

अर्थ–अर्थ–हे माना पंडित सुने! यह काल चारों ओर फैला हुआ है और वह परम दयालु ब्रह्म इन सबसे भिन्न है। ब्रह्मा, विष्णु भी काल से कवलित हैं–और इनसे सम्बन्धी बातें मिथ्या हैं। कर्म में फँसा कर सारे संसार को इन्होंने पागल बना रखा है–इसीलिए इन्हें आदि अन्त का ज्ञान नहीं होता॥

॥ प्रश्न माना॥ चौपाई॥

माना कहै सुनु तुलसी स्वामी। तुम तौ औरइ और बखानी॥
मुख से बचन जोई जोइ भाखा। भिनि भिनिवा की दीन्ही साखा॥

जो जो मुख से भाखि बखानी। ता की निसा दीन्ह सहदानी॥
जो जो बात कही मुख गाई। सो सो दरपन सी दरसाई॥
एक भरम मोरे मन आवा। ता को स्वामी भाखि सुनावा॥
तीरथ धाम बरत अरु पूजा। या में मो कौं कछू न सूझा॥
पुनि स्वामी इक पूछौ बाता। तीरथ में कछु आवै न हाथा॥
न्हाय धोय कछु हाथ न आया। तीरथ सब बिधि झूठ बनाया॥

अर्थ–माना कहते हैं कि हे तुलसी स्वामी! सुनें--आपने तो कुछ और का और बताया है। मुख से जिन-जिन बातों को कहा है--उसी का आपने भिन्न भिन्न रूपों में साक्ष्य दिया है। मुख से जो-जो आपने कहकर बताया आपने उसकी निशानी और प्रमाण दिया है। फिरभी, मेरे मन में एक भ्रम उत्पन्न हुआ है–हे स्वामी उसका साक्ष्य सुनायें। जो-जो बातें मुख से कहकर आपने सुनाया है--उसे-उसे आपने दर्पण की भाँति स्पष्ट रूप से दिखा दिया। मेरे मन में एक भ्रम उत्पन्न हुआ है–उसे स्पष्ट करके सुनाएँ। तीर्थ, धाम, व्रत तथा पूजा--इनमें मुझे कुछ भी सुनाई नहीं देता। फिर भी, स्वामी मैं एक बात पूछ रहा हूँ कि तीर्थ में कुछ हाथ नहीं आता–तीर्थ इस प्रकार क्या सब झूंठ बने हैं॥

॥ बचन तुलसी साहिब। चौपाई॥

सुन माना तोहि भाखि सुनाऊँ। या की बिधी बिधी दरसाऊँ॥
कर्म ख्याल सब जाल पसारा। इन सँग से चौरासी धारा॥
लोमस ऋषी एक जो भइया। भाखा उन सब बिधि बिधि कहिया॥
उन पुनि तीर्थ बर्त बहु ठाना। तप जप पुन्य अनेक बिधाना॥
पितु से पूछि मुक्ति की बाता। गंगा का फल कहौ बिधाता॥
गंगा का फल भाखि सुनाई। गंगा आदि मुक्ति की दाई॥

अर्थ–हे माना सुनों, मैं तुम्हें समझाकर सुनाता हूँ साथ ही, इन तीर्थों की विधि को विधि पूर्वक कहता हूँ। कर्म तथा काल ने चारों ओर जाल फैला रखा है–उन्हीं के साथ चौरासी लाख जीवों की भी धारा जुड़ी है। लोमश ऋषि थे। उन्होंने समस्त विधानों का विधिपूर्वक वर्णन किया है। उन्होंने अनेक तीर्थ एवं व्रतों की स्थापना की और जप, तप आदि अनेक विधानों को व्यवस्थित किया॥

अपने पिता से मुक्ति की बातें पूछकर उन्होंने गंगा के महात्म्य के बारे में बताया। गंगा के फल के बारे में उन्होंने कहकर सुनाया और कहा कि गंगा आदि मुक्तिदात्री हैं॥

॥ लोमस ऋषि-चौपाई॥

सहस इकादस गंगा न्हाया। जा से जोनि मच्छ की पाया॥
अनेक जीव मारि मोहिं खाया। ऐसे बहुत बहुत दुख पाया॥
जे जे तीरथ सबै अन्हाये। जल जिव जोनि माहिं भरमाये॥
ऐसी कौन कौन बिधि गाऊँ। जल आसा जल माहिं समाऊँ॥
ऐसी जुक्ति मुक्ति बतलावौं। भौजल पार उतरि कै जावौं॥

अर्थ–हजारों एकादशियों को गंगा स्नान किया जिससे मगरमच्छ की योनि प्राप्त हुई। अनेक जीवों ने मारकर मुझे खाया और इसी प्रकार के अनेक-अनेक कष्ट भोगे। जो-जो तीर्थ थे, मैंने सभी में स्नान किया। मैं जल जीव की अनेक योनियों में इसीलिए, भटकता रहा। मैं ऐसी अब कौन-सी व्यवस्था का

वर्णन करूँ कि जल की आशा करता हुआ जल में ही समाया रहा। आप ऐसी मुक्ति बतलाएँ जिससे हे पिताजी! इस भवसागर से पार उतर कर मैं जाऊँ॥

(पिता)॥ चौपाई॥

लोमस ऋषि यह सुनिये भाई। सेवा ठाकुर कीजै जाई॥
चरनामृत ब्रत साधौ सोई। सहजै में मुक्ती पुनि होई॥

अर्थ–हे प्रिय! लोमश ऋषि इसे सुनें–ठाकुर स्वामी की जाकर सेवा करें। उनके चरणामृत का पान करते हुए ब्रत साधिए और हे पुत्र! फिर, सहज में ही तुम्हें मुक्ति मिल जाएगी॥

(लोमस ऋषि)॥ चौपाई॥

सहस बरस ठाकुर को सेवा। दूजा जाना और न भेवा॥
बिधि बिधि ध्यान बिधी से कीन्हा। फल जोनी पाहन की लीन्हा॥
सेवा सिव कीन्ही बिधि भाँता। फूल पत्र जल अच्छत साथा॥
येहि बिधि पूजा करी बनाई। अंत जोनि पाहन की पाई॥
अनेक दिवस पाहन कर आसा। अंत तहाँ पुनि लीन्हौं बासा॥
ऐसी कहाँ कहाँ की गाऊँ। जेहि पूजौं तेहि माहिं समाऊँ॥

अर्थ–एक हजार वर्ष ठाकुर की सेवा की और (उनके अतिरिक्त) अन्य कोई दूसरा भेद नहीं समझा। विधि पूर्वक उनका ध्यान किया और मुझे उसका फल मिला-पाहन की योनि। शिव की सेवा मैंने भाँति-भाँति से की, साथ में, फूल, फल, जल तथा चावल का अक्षत था। इस प्रकार, नियम से मैंने विधानपूर्वक उनकी पूजा की और अन्त में पत्थर की योनि प्राप्त की। अनेक दिवसों तक पाहन की आशा करता हुआ और अन्त में, मैंने वहीं अपनी निवासस्थली बना ली। मैं इस प्रकार से कहाँ-कहाँ की पूजाओं का वर्णन करूँ-मैं जिसकी-2 पूजा की, उन्हीं में समा गया॥

(पिता)॥ चौपाई॥

पूजौ तुलसी प्रीति लगाई। पीपर में जल नाओ जाई॥
ऐसी भक्ति करै मन लाई। सहजै में मुक्ती होइ जाई॥
एक दिया तुलसी पै लावै। सो तौ कोटि जज्ञ फल पावै॥

अर्थ–हे पुत्र! तुलसी में प्रीति लगाकर पूजा करो और पीपल वृक्ष में जाकर जल डालो। जो मन लगाकर ऐसी भक्ति करता है, उसकी मुक्ति सहज ही हो जाती है। यदि तुलसी पर एक दीप जलाकर चढ़ाता है तो वह कोटि यज्ञों का फल प्राप्त करता है॥

(लोमस ऋषि)॥ चौपाई॥

सहन तीन तुलसी कौ पूजा। बृच्छ जोनि पाई येही बूझा॥
पीपर पूजा बरस हजारा। ता की बिधि भाखौं निरबारा॥
कानखजूरा देंही पाई। बार-बार भौ में भरमाई॥

अर्थ–तीन हजार वर्ष तुलसी की पूजा की और इसके कारण मुझे वृक्ष योनि प्राप्त हुई। एक हजार वर्ष पीपल की पूजा की। मैं बिना किसी भ्रम के उसके रहस्य का वर्णन करता हूँ। कानखजूरा की योनि पाकर बार-बार मैं भव सागर में भरमता रहा॥

(पिता) ॥ चौपाई ॥

एकादसी करौ तुम जाई। ता से मुक्ति सहज में पाई॥

अर्थ–तुम जाकर एकादशी का व्रत करो, तुम्हें सहज ही मुक्ति मिल जाएगी॥

(लोमस ऋषि) ॥ चौपाई ॥

सहस बरस एकादसि कीन्हा। अंत जनम माखी कौ लीन्हा॥
ऐसे बर्त कीन्ह बहुतेरा। ता का सुनु बरतंत निबेरा॥
पिरथम ऐतवार को कीन्हा। ता से जनम चील्ह कौ लीन्हा॥
मंगल बहु बिधि बरत रहाई। ता से जनम सुवर कौ पाई॥
अरु पुनि बरत तीज कौ कीन्हा। कूकर जनम ताहि से लीन्हा॥
अरु परदोस नेम से कीन्हा। खर कौ जनम ताहि से लीन्हा॥
बितीपात बिधि से बिधि कीन्हा। जनम जाइ बंदर कौ लीन्हा॥
नौमी बरत अष्टमी कीन्हा। ता से जनम मूस कौ लीन्हा॥
अरु अनंत चौदस पुनि कीन्हा। ता से जनम ऊँट कौ लीन्हा॥
और चतुरथी बरत बखाना। ता से जन्म भैंस कौ जाना॥
और बरत करै झार बनाई। पुनि मुक्ती हम ने नहिं पाई॥

अर्थ–एक हजार वर्षों तक एकादशी का ब्रत किया और अन्त में मक्खी का जन्म लिया। इसी प्रकार, अनेक बार अनेक ब्रतों को किया, उनका तुम वृत्तान्त सुनो। सर्वप्रथम इतवार का व्रत किया, उससे चील्ह का जन्म मिलया। मंगल का ब्रत अनेक प्रकार के रूपों में रहा, उससे मुझे सुअर का शरीर मिला। उसके बाद तीज का व्रत किया उसके कारण मैंने कुत्ते का जन्म प्राप्त किया। इसके बाद नियम से प्रदोष व्रत रखा। उसके कारण गधे का जन्म लिया। नौमी तथा अष्टमी का ब्रत किया उससे मुझे मूस (चूहे) का जन्म मिला। इसके बाद अनन्त चौदस का व्रत किया उससे मुझे ऊँट का जन्म मिला। इसके बाद चतुर्थी का व्रत कहा गया उससे भैंस का जन्म समझो। और नाना प्रकार के व्रतों का अनुशीलन पूरी तत्परता से पूछा–फिर भी मुक्ति नहीं प्राप्त की॥

(पिता) ॥ चौपाई ॥

पुन्य गऊ का सब से भारी। या से मुक्ती होइ बिचारी॥

अर्थ–गौ दान का पुण्य सबसे अधिक है, इससे बेचारी मुक्ति मिलेगी॥

(लोमस ऋषि) ॥ चौपाई ॥

गऊ दान दीन्हा बहुतेरा। जन्म मिला जो बकरी केरा॥
बाम्हन भोजन दिये अघाई। बिच्छू जन्म ताहि से पाई॥
और अनेक पुन्य बिधि कीन्हा। जा से जोनि जोनि दुख लीन्हा॥
जो तुम कही सभी हम कीन्हा। मुक्ति न पाई रह्यो अधीना॥
जो जो मुक्ति जुक्ति बतलाई। सो सो सब मैं कीन्ह बनाई॥

अर्थ–मैंने अनेक बार गौदान किया और उसके फलस्वरूप बकरी का जन्म मिला। पूर्णहृप्त कराके ब्राह्मणों को भोजन कराया–उससे बिच्छू का जन्म मिला। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के पुण्यों को

मैंने विधिवत् किया और उनसे मैंने योनि-योनि के संकटों को भोगा। जो तुमने कहा मैंने सब कुछ किया-मैंने मुक्ति नहीं प्राप्त की, माया के अधीन ही रहा। आपने जितनी-जितनी युक्ति की युक्तियाँ बतलाई है-उन-उनको मैंने विधिवत् किया है॥

(पिता) ॥ चौपाई॥

लोमस ऋषि मैं कहौं बिचारा। संत सरनि से होइ उबारा॥
तीरथ ब्रत सब झूठ पसारा। नहिं होइहै या से निरबारा॥

अर्थ-हे लोमश ऋषि! मैं विचारपूर्वक कहता हूँ, सन्तों की शरणागति से ही उद्धार हो सकता हूँ। तीर्थ-व्रत आदि सारे झूठे फैलाव हैं, इनसे कोई निराकरण (हल) नहीं होगा॥

॥ दोहा॥

तुलसी कहै बुझाइ, माना पंडित सुन बिधी।।
लोमस ऋषि सम्बाद, तीरथ ब्रत बिधि यों कही॥

अर्थ-तुलसीदास ने समझाकर कहा, हे माना पंडित! मुक्ति की विधि जो लोमश ऋषि (और उनके पिता) के संवाद द्वारा तीर्थ, व्रत के विषय में इस प्रकार मैं कहता हूँ।

॥ तुलसी साहिब-चौपाई॥

सुन माना स्यामा और नैनू। ये सब भाखि सुनाओं बैनू॥
तीरथ ब्रत का सुनौ बिचारा। लोमस ऋषि बिधि कीन्ह सँवारा॥
तीरथ ब्रत का ऐसा लेखा। लोमस ऋषि ये सब करि देखा॥
के सुन कर पंडित घबराना। ज्वाब न आवै मती हिराना॥

अर्थ-हे माना, श्यामा तथा नैनू पंडित सुनो, अपनी बातों से ही इन सब रहस्यों को मैं बताता हूँ। तीर्थ एवं पुराणमतों का विचार सुनो, लोमश ऋषि ने भी उसे अच्छी तरह से बताया है। तीर्थ व्रतों का यही लेखा जोखा है-और इन लोमश ऋषि ने इन सारी बातों को करके देख लिया है। इन बातों को सुनकर वे पंडित घबड़ा गए उनकी मति खो गई और इनको उत्तर देते नहीं बनता॥

॥ माना स्यामा और नैनू॥ चौपाई॥

तब तीनौ मिलि बोले बानी। ये बातैं तौ अकथ कहानी॥
हम तौ बेद बिधी में भूला। ये सब आहि कर्म बिधि मूला॥
तुम तौ स्वामी और सुनावा। बेद बिधी को सब समझावा॥
सब बिधि भिन्न भिन्न कर भाखी। तब सूझा हमरी निज आँखी॥

अर्थ-तब तीनों ने मिलकर यह बात कही। आपकी ये बातें तो न कही जा सकने वाली कथा जैसी है। हम सब ब्राह्मण वेदों के विधान में डूबे रहे। यह सारा संसार कर्मविधि में भूला है। हे तुलसी स्वामी। अभी आप और कुछ सुनावें और वेद के सम्पूर्ण रहस्यों को समझाएँ? सारी बातों को भिन्न-भिन्न करके उनका वर्णन करें-तब हमारी आँखों से भी हमें शायद सूझ जाए।

॥ तुलसी साहिब-चौपाई॥

ये तुम्हरी कछु भूल न भाई। या की बिधी कहौं समझाई॥
सत्तनाम इक साहिब स्वामी। सो निज रहै अगमपुर धामी॥

तिन के पुत्र निरंजन होई। जा ने रची सकल बिधि सोई॥
जोति अंस स्वाती से आवा। दोनों मिलि बैराट बनावा॥
आई जोति निरंजन पासा। निराकार जोती को ग्रासा॥
जब पुनि पुरुष दीन्ह तेहि स्त्रापा। लच्छ जीव करिहौ नित ग्रासा॥
जाउ निरंजन होइहौ काला। जग में रचिहौ बहु जंजाला॥
ऐसा ज्वाब पुरुष मुख डाला। भया निरंजन जग में काला॥
तीन लोक में रहे समाई। चौथे में नहिं जाने पाई॥
ऐसा स्त्राप पुरुष ने दीन्हा। काल निरंजन को अस चीन्हा॥
पुरुष पुत्र जग जाग्रत नामा। ता को हुकम दीन्ह तेहि ठामा॥
निरंजन काल जोति को ग्रासा। जाहि काटि आवौ हम पासा॥

अर्थ–हे भाई! यह तुम्हारी कुछ भी भूल नहीं है, मैं इन सबके विधान के विषय में समझाकर कहता हूँ। सत्तनाम के एक स्वामी साहब, जो अपने अगमपुर धाम में रहते हैं, उनके पुत्र निरंजन हुए और उन्होंने ही समस्त व्यवस्था को रच कर बनाया है। स्वाति नक्षत्र से ज्योति का अंश प्रगट हुआ और निरंजन तथा ज्योति दोनों ने मिलकर विराट सृष्टि की रचना की। ज्योति निरंजन के पास आई और तब उसके निराकार ज्योति को ग्रस लिया। तब उस परम पुरुष ने उसे शाप दिया कि मैं तुम्हारे लाखों जीवों का विनाश कर दूँगा–हे निरंजन! तुम जाकर काल बनोगे, और संसार में अनेक प्रपंचों की रचना करोगे। ऐसा उत्तर उस परम पुरुष ने अपने मुख से निकाला और तब जाकर निरंजन काल बन गए। ये कालरूप निरंजन तीनों लोगों में समा गए किन्तु ये चौथे लोक में नहीं जाने पाये। परम पुरुष ने उसे ऐसा शाप दिया और उसने निरंजन काल को इस प्रकार पहचाना। संसार में अत्यन्त जागृत नाम पुरुष उनका प्रथम पुत्र हुआ–और उसको उसी स्थान पर ही आज्ञा दी कि वह काल एवं ज्योति का ग्रास है–दोनों के बंधनों से मुक्त होने के बाद ही वह हमारे पास आएगा॥

॥ चौपाई॥

जग जाग्रत नख भव पर मारा। पटकि निरंजन ज्योति निकारा॥
जग जाग्रत गये अपने धामा। रहिया जोति निरंजन ठामा॥
दोनों भये एक रस गजी। तीन बार भग भोगे साजी॥
तीन पुत्र ता न उपजावा। ब्रह्मा बिस्नु महेस कहावा॥
ब्रह्मा पिता ध्यान को गयऊ। पायौ न पिता चारि जुग भयऊ॥
जोती मैल काढ़ि जब लीन्हा। रच कन्या गायत्री कीन्हा॥
कन्या ब्रह्मा लेन पठाई। गायत्री ब्रह्मा पर आई॥
गायत्री कहै चलिये भाई। माता तुम कौ लेन पठाई॥
ब्रह्मा कहै कौन बिधि जाई। पिता दरस अजहूँ नहिं पाई॥
माता से ऐसी कहौ साखी। परस्यो पिता देख निज आँखी॥
येहि बिधि हमरी साखि सुनाये। तब तुम्हारे सँग हम चलि जाये॥
गायत्री अस बचन उचारी। कहिहौ झूठी साखि सम्हारी॥

चलौ बेग माता पै भाई। माता तुम को लेन पठाई॥
गायत्री अस बचन सुनइया। तब ब्रह्मा उनके सँग गइया॥
दोनों आये माता पासा। पिता भेद पूछ परकासा॥

अर्थ–इस प्रकार जागृत संसार से उत्पन्न भवसागर पर निरंजन ने नख का प्रहार किया और उसे पटक कर उससे ज्योति निकाली॥ सारा संसार अपने स्थान पर जागृत हो उठा और ज्योति निरंजन के पास रह गई। ज्योति एवं निरंजन एक रस (आनन्द) की स्वीकृति से तीन बार भग को भोगा। उनसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए–वे ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहलाये। ब्रह्मा अपने पिता की ध्यान करने के लिए गए और चार युग बीत गए। ज्योति ने जब सर्वत्र व्याप्त मैल निकाल दी तो कन्या को रचकर उसे 'गायत्री' के रूप में बना दिया। उस कन्या को, ब्रह्मा को लेने के लिए भेजा और गायत्री ब्रह्मा के पास आई। गायत्री ने ब्रह्मा से कहा, हे भाई चलें, माता ने तुम्हें अपने पास ले जाने के लिए बुलाया है। ब्रह्मा ने उत्तर दिया मैं किस विधि से जाऊँ पिताजी को तो अभी तक नहीं देखा है। माता ने इस प्रकार की साक्षी की बात कही है कि आप पिता को अपनी आँख से देखकर स्पर्श करो। इस तरह से गायत्री ने हमें तुम्हारी साक्षी सुनाई, तब उसके साथ हम चले आए हैं। गायत्री ने कहा, मैं तुम्हारी साक्षी को झूँठा करूँगी। हे भाई! जल्दी माता के पास चलो-माता ने तुम्हें लेने के लिए भेजा है। गायत्री ने उन्हें ऐसी वाणी सुनाई, तब ब्रह्मा उनके साथ चले गए। वे दोनों माता के पास आए और स्पष्टत– पिता का पता पूछा॥

॥ चौपाई॥

पिता दरस माता मैं पावा। दोनों मिलि ये सब्द सुनावा॥
जोति मन में सोच बिचारा। झूठी बातै करै लबारा॥
वे तो काल कराल कसाई। वा से बचै कौन बिधि भाई॥
जानेउ पिता दरस नहिं पावा। मिथ्या साखि भाखि गोहरावा॥
जोति झलक क्रोध तन ताषा। तब पुनि दीन्ह दोऊ को स्रापा॥
गायत्री को स्राप सुनाई। बृछ तन धरौ केतकी माई॥
ब्रह्मा कुल परपंची जोई। मैला मन बुधि सुधि नहिं होई॥
माता स्राप यही बिधि दीन्हा। माना सुन कर करौ यकीना॥
ब्रह्मा स्राप जो कहूँ बिचारी। सब मिलि कै सुनियौ बिधि सारी॥
तुम्हरा कुल परपंच दुखारी। मति का हीन लोभ संसारी॥
आगे होइ है साखि तुम्हारी। मिथ्या पाप करै बहु भारी॥
प्रगट नेम जो करै अचारा। अंतर मैल पाप बिस्तारा॥

अर्थ–हे माता जी! मैने पिताजी का दर्शन पा लिया–दोनों ने मिलकर यह शब्द कहा। ज्योति ने मन में यह विचार किया कि लबार व्यक्ति झूँठी बातें करते हैं–वे काल तो पिता नहीं भयंकर कसाई हैं–हे भाई! उनसे किस प्रकार बचा जाए। वह समझ गई कि इन्होंने अभी तक पिता का दर्शन नहीं कर पाए हैं और भिन्न साक्ष्य देकर ऐसी झूँठ कह रहे हैं॥

क्रोध की अभिव्यक्ति से ज्योति का शरीर लपकने लगा और तब उसने दोनों को शाप दिया। उसने गायत्री को श्राप दिया कि तुम जाकर केतकी के वृक्ष का शरीर धारण करो। ब्रह्मा का सम्पूर्ण परिवार प्रपंची होगा–वे सब मैले मन के होंगे और उन्हें बुद्धि और स्मृति नहीं होगी। हे माना पंडित! तुम सुनकर विश्वास करो, माता ज्योति ने इसी प्रकार का शाप गायत्री तथा ब्रह्मा को दिया। यदि मैं विचार करके

ब्रह्मा के शाप का विवरण दे रहा हूँ, सभी मिलकर इस सम्पूर्ण प्रकरण को सुनें। हे ब्रह्मा, तुम्हारा कुल प्रपंचपूर्ण और दुखी होगा। वह बुद्धिहीन, लोभी तथा सांसारिक वासनाओं में संसक्त होगा। तुम्हारी साक्षी देकर कहता हूँ कि आगे आप के वंशज मिथ्याभाषी तथा बहुपापाचारी होंगे। वे खुले रूप से नियम तथा आचरण करेंगे किन्तु हृदय में मान एवं पाप का विस्तार होगा।

॥ चौपाई ॥

राम कृष्न की भक्ति दृढ़ावै। आप करै सोइ और सिखावै॥
बिस्नु भक्ति से करै हंकारा। ता से परै नर्क को धारा॥
कथा पुरान और समझावै। चालि बेहूद आप दुख पावै॥
इन से और जो सुनि है ज्ञान। सो परिहै चौरासी खाना॥
झूठा बेद बिधी गावै। दछिना कारन गला कटावै॥
जा को सिष्य करै पुनि जाई। परमारथ तेहि नाहिं लखाई॥
अपना स्वारथ ज्ञान सुनावै। अपनी पूजा ज्ञान दढ़ावै॥
परमारथ के निकट न जाई। स्वारथ हेत सबै समझाई॥

अर्थ–राम कृष्ण की भक्ति में चित्त की दृढ़ता उत्पन्न करेंगे–जो स्वयं करेंगे वे दूसरों को भी सिखावेंगे। विष्णु भक्ति करते हुए अहंकार करेंगे, इससे वे नर्क की नदी धारा में पड़ेंगे। कथा पुराणों से वे सारी बातें समझायेंगे और अपने आचरण से स्वयं नाना प्रकार के कष्ट भोगेंगे। इन व्यक्तियों से जो ज्ञानचर्चा सुनेंगे, वे चौरासी लाख योनियों के बीच में पड़ेंगे। ये मिथ्या ही मिथ्या वेदविधियों का गान करेंगे और दक्षिणा प्राप्त करने के निमित्त दूसरों का गला कटवा देंगे। उनके उपदेश का अनुपालन जो शिष्य करेगा–उसे परमार्थ तत्त्व का दर्शन नहीं होगा। अपने स्वार्थ के लिए ज्ञान की कथा सुनाते हैं और उस पूजा के द्वारा अपने प्रति आस्था का भाव पैदा कराते हैं। वे परमार्थ के निकट नहीं जाते और अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए सभी को ज्ञान देकर समझाते हैं।

॥ दोहा ॥

ब्रह्मा को भयौ स्राप, तुम्हरा कुल मिथ्या परै।
झूठ चलावै चाल, उद्र काज नरकै परै॥

अर्थ–ब्रह्मा को यह शाप हुआ कि तुम्हारा सम्पूर्ण कुल मिथ्या भाव में पड़ा रहेगा। वह अपनी झूँठी चालें चलाता हुआ उदरपूर्ति के निमित्त नरक में पड़ेगा॥

॥ चौपाई ॥

जोति स्राप ब्रह्मा को दीन्हा। तुम्हरा कुल होइ है मति हीना॥
तुलसी कहो भई बिधि मूला। स्राप पाप से ब्रह्मा भूला॥
स्राप बिधी निरगुन ने जानी। उन पुनि स्राप जोति पर ठानी॥
द्वापर जुग आवैगा सोई। जब तुम पंच भरतारी होई॥

अर्थ–ज्योति ने ब्रह्मा को शाप दिया कि तुम्हारा वंश बुद्धिभ्रष्ट होगा। तुलसी साहब कहते है कि इस प्रकार ब्रह्मा भी शाप के पाप से भूल गए। निर्गुण को जब शाप की विधि का ज्ञान हुआ – तो उन्होंने ज्योति पर शाप देने का निश्चय किया। जब द्वापर युग आएगा तब तुम पाँच पतियों की पत्नी होगी।

॥ सोरठा ॥

अस अस दीन्हौ स्त्राप, बाम्हन की मति यों गई।
ता से न मानै बात, बुद्धिहीन मानहिं मरै॥

अर्थ–ऐसा शाप उन्होंने दिया–उस ब्राह्मण की बुद्धि इस प्रकार नष्ट हो चुकी है, उसकी बातें कहीं भी न मानो, जो मानते हैं, वे मृत्यु को प्राप्त करते हैं॥

॥ चौपाई ॥

ता से बाम्हन की मति मैली। मन और बुद्धि पाप से फैली॥
देबी बकरा गला कटावै। मछरी मास बहुत बिधि खावै॥
ऐसा कर्म करै सोइ भाई। का को कहिये और कसाई॥

अर्थ–इसीलिए ब्राह्मण की बुद्धि मैली दिखाई पड़ती है–उसके मन और बुद्धि दोनों में पाप की वृत्ति फैली हुई है। देवी के समक्ष वह बकरे का गला कटवाता है–मछली और माँस को वह नाना रूपों में खाता है। हे भाई! वह ऐसा कर्म करता है कि उसके अतिरिक्त और किसको कसाई कहा जाए॥

॥ श्लोक ॥

कामार्त्तस्य कुतो लज्जा, निर्द्धनस्य कुतः क्रिया।
सुरापानस्य कुतः शौचं, मांसाहारे कुतो दया॥

अर्थ–कामी पुरुष को कैसी लज्जा, गरीब व्यक्ति के लिए कैसी कर्मशुचिता, सुरापन करने वाले के लिए कैसी पवित्रता और मांसाहारी के लिए दयाभाव कैसा?

॥ चौपाई ॥

या से तुम को परै न सूझा। तुम्हरी मति अस भई अबूझा॥

अर्थ–इससे तुमको कुछ भी नहीं सुनाई पड़ता और तुम्हारी बुद्धि इस प्रकार अमूझ बनी हुई है।

सम्बाद मानगिरी सन्यासी के साथ

॥ चौपाई ॥

सब पंडित मिलि कीन्ह बिचारा। माना स्यामा नैनू हारा॥
सुन कर परमहंस इक आवा। मानगिरी सन्यासी नाँवाँ॥
पंडित से झगरा सुनि पावा। सो बिधि सुनि हमरे पर आवा॥
ईसुर ब्रह्म एक नहिं मानै। बेद बेदांत नहीं कुछ ठानै॥
गीता की मानै नहिं भाई। है कोई ऐसा तुलसी गुसाँई॥
ये सुनि के हमरे ढिंग आये। जहँ सब पंडित बैठि रहाये॥

अर्थ–सारे पंडितों ने यह निर्णय किया कि माना, श्यामा एवं नैनू पंडित हार गए। यह सुनकर एक परमहंस आए–जिनका नाम मानगिरि सन्यासी था। उसने पंडितों से झगड़ा सुना, वह सुनकर वह हमारे पास (तुलसी साहब) के पास आया। ईश्वर तथा ब्रह्म में से किसी को भी नहीं मानते तथा वेद एवं वेदान्त को कोई भी महत्त्व नहीं देते। गीता की भी बातें नहीं मानते-क्या ऐसा कोई तुलसी साहब नामका व्यक्ति है। यह सुनकर वे हमारे पास आए जहाँ सारे पंडित बैठे हुए थे॥

॥ परमहंस उवाच ॥

मानगिरी बोले अस बाचा। जो बेदांत कहै सो साचा॥
जो बेदन ने कही बखाना। गीता सत्त कहै परमाना॥
एक ब्रह्म है सब के माईं। और कोई दूजा है नाहीं॥
ये बेदांत कहै गोहराई। गीता में भगवान सुनाई॥
मानगिरी कहै सुनौ गुसाँईं। मैं बेदांत कहौं समझाई॥
आतम सब में ब्रह्म बखाना। ता को नाम निरंजन जाना॥
सो तो ब्रह्म हमीं हैं भाई। हम को छाँड़ि अंत नहिं पाई॥

अर्थ–मानगिरी सन्यासी ने यह बात कही कि जो वेदान्त कहता है, वह सच है। गीता सत्य का प्रमाण देती हुई कहती है। सबके स्वामी, एक ही ब्रह्म है और कोई अन्य दूसरा नहीं है। इस बात को वेदान्त घोषित करके कहता है और गीता में स्वयं भगवान कृष्ण ने इसे समझाकर कहा है। मानगिरी ने कहा, हे गोस्वामी तुलसी साहब! सुनो, मैं वेदान्त तत्त्व को समझाकर कहता हूँ। सब में स्थित आत्मा ही ब्रह्म है, और उसी का नाम निरंजन है–इस प्रकार 'अहं ब्रह्माऽस्मि' हैं और इस 'अहम्' को छोड़कर अत्यन्त अन्त नहीं है।

॥ चौपाई ॥

सब जग हम हम माहिं समानौं। हम से कोई और नहिं जानौं॥
जग भूला आँखी नहिं सूझैं। केवल ब्रह्म न हम को बूझैं॥
ये संकल्प जग जीव भुलाना। यों अज्ञानी जग्त कहाना॥
बालक रूप ब्रह्म को भाखा। त्याग सबै कोपीनै राखा॥
ब्रह्म रूप सब जग्त बिचारै। येहि बिधि आतम ब्रह्म निहारै॥
जाग्रत सुपन सुषोपति त्यागी। तुरिया तत्त रहै अनुरागी॥
चारौ बानी को हम जाना। परा पसंता भेद बखाना॥
और बैखरी भाखि सुनाऊ। सो सब जग में प्रगट दिखाऊँ॥
पाँचौ मुद्रा कहौं बखानी। चाचरि भूचरि खेचरि जानी॥
और अगोचरि उन मुनि जाना। सब जोगिन का भेद बखाना॥
परमहंस ऐसी बिधि बोला। तुलसी तोल स्वाल अस खोला॥

अर्थ–सम्पूर्ण सृष्टि अहम्मय है और हमीं से सम्पूर्ण सृष्टि समायी हुई है और इस 'अहम्' से भिन्न अन्य तत्त्व को न समझो। संसार भ्रमित है, उसे आँखों से सूझ नहीं रहा है–वह 'अहम्' ही केवल ब्रह्म है,इसे वह समझ नहीं पा रहा है। इसी संकल्प में सारा संसार भ्रमित है–वह अज्ञानी है, और संसार की मायाग्नि में वह जल रहा है, ऐसा करके जाता है। लोग ब्रह्म को बाल रूप कह रहे हैं, सब का त्याग करके केवल कोपीन पहन रहे हैं किन्तु जब सम्पूर्ण जगत को ब्रह्म रूप में देखोगे तो इस प्रकार आत्मा को ही ब्रह्म समझोगे। जगृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति की तीनों अवस्थाओं का त्याग करके तुरीयावस्था में वह अनुरक्त रहता है। चारों वाणियों को हम जानते है–परा, पश्यन्ती –उनके भेद कहे जाते हैं–इसी के साथ बैखरी का वर्णन करके मैं सुनाता हूँ–और वे संसार में प्रगट रूप में दिखती है। पाँचों मुद्राओं का मैं वर्णन करके कहता हूँ–चचरी, भूचरी और खेचरी कहके इन्हें जानिये। इसके बाद, अगोचरी तथा

उन्मनी कहके उसे जानो—और उनसे सम्पूर्ण योगियों का भेद वर्णित है। वह परमहंस इस प्रकार तुलसी साहब से बोले और सुनकर तुलसी साहब ने उनके मूल्यांकन के लिए ऐसा प्रश्न पूछा॥

प्रश्न तुलसी साहिब

॥ चौपाई॥

कहै तुलसी स्वामी सुन बाता। परमहंस बेदान्त सनाता॥
अब हम तुम से पूछैं बाता। ब्रह्म कहो तुम आदि सनाता॥
तुम तो ब्रह्म आप को जाना। रहो तत पाँच सरीर बिधाना॥
तुम पुनि पाँच तत्त कस आया। रूप रेख रहो अकाया॥
पिता बीर्ज माता रकतानी। तब सरीर की रचना ठानी॥
माता पिता तत्त नहिं रहिया। तब कहँ हते सोई निज कहिया॥
पाँच तत्त बैराट सरीरा। तब तत नहीं बसौ केहि तीरा॥
पाँच तत्त में केहि बिधि आये। तत्त नहीं तब कहाँ रहाये॥
धरती अगिनि अकास न रहिया। पानी पवन भवन नहिं भइया॥
तब तुम कहाँ रहे सोइ भाखी। तब की आदि बताओ साखी॥
तुम कहौ सब में हमीं समाना। जब नहिं रहे सुन्न असमाना॥
नहिं सरीर बैराट बनाया। पाँचौ तत्त न उपजी माया॥
जब बेदान्त हतो नहिं भाई। तब नहिं गीता कथा बनाई॥
जब तो तुम्हीं तुम्हीं तुम रहिया। गीता साखि कौन बिधि कहिया॥
नहिं सरीर नहिं लिखनेहारा। कागद स्याही न कलम सँवारा॥
तब बेदांत कहाँ था भाई। सो ताकी तुम साखि बताई॥

अर्थ—तुलसी साहब कहते हैं कि हे स्वामी! सुनो! हे परमहंस? यह बेदान्त का सनातन सिद्धान्त है। अब हम तुमसे प्रश्न पूछ रहे हैं, तुम उस आदि सनातन ब्रह्म के विषय में बताओ। आप तो 'अहम् ब्रह्मास्मि' को जानते हो फिर, ये पाँचों तत्त्व इस शरीर में किस विधान से रहते हैं। तुम फिर, इन पाँच तत्त्वों में कैसे आए तुम अपने स्वरूप एवं पहचान के लक्षणों में हो—कायाहीन तो नहीं हो। यदि माता-पिता के तत्त्व न रहते तब तुम कैसे होते, यह बताओ। यह पाँच तत्त्वों से युक्त विराट सृष्टि का शरीर और यदि ये तत्त्व नहीं है तो तुम कहाँ रहते? तुम पाँच तत्त्वों में किस प्रकार आए, यदि ये नहीं थे, तब तुम किसमें समाये हुए थे।

पृथ्वी, अग्नि, आकाश, न है और न पानी पवन का भी आश्रय, तब तुम कहाँ थे, यह मुझे बताओ यह विराट सृष्टि जब तुम्हें नहीं लायी थी और मायामय ये पाँचों तत्त्व नहीं उत्पन्न हुए थे—हे भाई! तब न वेदान्त था और न तब यह गीता की कथा बनी थी। उस समय केवल 'तुम्ही-तुम' इस सृष्टि में वर्तमान थे गीता ने वह साखी किस-किस प्रकार से दी है।

न यह शरीर था, न गीता का लेखक था, उस समय न स्याही थी, न कलम थी, न कागज था। उस समय हे भाई! यह बेदान्त यहाँ था, तुम इस बात का साक्ष्य हमें बताओ॥

॥ चौपाई ॥

तब तो तुम्हीं तुम्हीं निज रहिया। तब की बात बिधी बतलइया॥
तब हमरे मन साँची आवा। बिना बेद सब झूठ कहावा॥
अब गीता की साख सुनावौ। और बेदांत बिधी बिधि गावौ॥
जो जो कही बचन बिधि भाखी। सो सो समझि लीन्ह सब साखी॥
पाँच तत्त रचि बास बनावा। कर्म भोग फिरि भौं में आवा॥
तुम ता को कहौ ब्रह्म बखानी। ये तो भरमै चारो खानी॥
ये बैराट खानि भौ माहीं। ब्रह्मा बिस्नु कहौ कहँ रहहीं॥
पांच तत्त नहिं रहत सरीरा। तब कहँ हते कहौ केहि तीरा॥
प्रथमहि कहौ कहाँ से आया। नहिं तब तन बैराट बनाया॥
तब की कहौ सकल बिधि गाई। तो तुलसी के मन में आई॥

अर्थ–उस समय तो केवल तुम-ही-तुम थे। उस समय की बात विधिपूर्वक समझाइये। उस समय भी हमारे मन में यह बात आई थी, कि बिना भेद के सारी बातें झूँठी हैं। अब मैं गीता की बात सुनाता हूँ और वेदान्त की व्यवस्था का भी वर्णन करता हूँ। मैंने अपनी वाणी से जो-जो बातें कहीं है–मैं समझता हूँ कि उन-उन साक्ष्यों को आपने भलीभाँति समझ लिया है। पाँच तत्त्वों द्वारा रचना करके इस शरीर का निवास बनाया है और पुनः इस संसार में कर्म का भोग आया। तुम उन सबको क्या ब्रह्म कहते हो–ये तो अपने चारों तरफ से निरन्तर भ्रमित करतीं हैं। यह बिराट सृष्टि भवसागर की भोगमयी खानि है–ब्रह्मा और विष्णु बताओ, कहाँ रहते हैं। क्या इस शरीर में पाँचों तत्त्व नहीं रहते, तब वह ब्रह्म बताओं कि किस स्थान पर रहता है। सबसे पहले वह कहाँ था, और कहाँ से आया है–और क्या तब यह विराट सृष्टि रूप अंग नहीं बना था। उस समय की समस्त विधियों को बताकर सुनाओ–जिससे कि सारी बातें तुलसी की समझ में आ सके।

॥ परमहंस चौपाई ॥

ये वेदांत कहै सब साखी। गीता की तुम एक न राखी॥
गीता कहे ईस्वर सब माईं। आतम ब्रह्म बेदांत बताई॥

अर्थ–ये सब वेदान्त के साक्ष्य हैं और तुम गीता की एक बात को भी नहीं मान रहे हो। गीता कहती है कि सब ईश्वर के अंश हैं–और वेदान्त कहता है कि आत्मा ही ब्रह्म है।

संवाद मानगिरी सन्यासी के साथ

॥ चौपाई ॥

ये तुम्हरे मन में नहिं आई। सब को तुम ने दीन्ह उड़ाई॥
ब्रह्म सनातन सब में भाखा। सो तो तुमने एक न राखा॥

अर्थ–ये बातें तुम्हारे मन में नहीं आईं और तुमने अद्वैत वेदान्त की सारी बातों को उड़ा दिया। ब्रह्म सनातन है, वह सबमें है, यह कहा गया है, किन्तु उसकी तुमने एक भी नहीं राखा-सबको अस्वीकार कर दिया।

॥ तुलसी साहिब–चौपाई ॥

ब्रह्म ब्रह्म सब तुमहिं बखानौ। आदि ब्रह्म की कछू न जानौ॥
भाखौ ब्रह्म कहाँ से आया। कहौ ब्रह्म को कौन बनाया॥
जग नहिं हता ब्रह्म कहँ रहिया। कहौ ब्रह्म को कौन बनइया॥
ऐसा परमहंस मत गावौ। नहीं ब्रह्म की आदि बतावौ॥
बिन सतसंग भेद नहिं जाना। करता ब्रह्म नहीं पहिचाना॥

अर्थ–तुम ब्रह्म-ब्रह्म कहकर जिसका वर्णन कर रहे हो, उस ब्रह्म की आदि के विषय में कुछ भी नहीं जानते हो। यह बताओ कि ब्रह्म कहाँ से आया है और यह बताओ कि उस ब्रह्म को किसने बनाया है। संसार जब विनष्ट हो उठा तो ब्रह्म कहाँ था। और बताओं उसके बाद ब्रह्म को किसने बनाया। इस सारी बातों को हे परमहंस? आप कह रहे हैं किन्तु ब्रह्म की आदि का वर्णन नहीं करते। बिना सत्संगति के यह भेद नहीं समझ में आता और उस कर्त्ता ब्रह्म को कोई नहीं पहचानता।

॥ साखी ॥

नर पंछी मन पींजरा, ज्ञान पंख भयौ नास।
सतसंग बृछ पाये बिना, ब्रह्म अकास न पास॥

अर्थ–मानव जाति पक्षी है, उसका शरीर पिंजड़ा है–उसके ज्ञान पंख का विनाश हो चुका है। सत्संगति रूपी वृक्ष (पर-विश्राम) के बिना प्राप्त किए हुए–ब्रह्म पास में नहीं, आकाश में है॥

॥ चौपाई ॥

अब गीता की साखि बताऊँ। तुम भगवान कहनि मुख गाऊँ॥
गीता में पांडो बिधि भाखी। कौरौ जुद्धि कही सब साखी॥
अरजुन ज्ञान धनुष चढ़वावा। सब कौरौ का नास करावा॥
पुनि फिर तिनहिं हिवारे गारे। नर्क माहिं अरजुन को डारे॥
मित्र बड़े उनके दुख पावा। और जीव की कौन चलावा॥

अर्थ–अब मैं गीता के रहस्य को कहकर सुनाता हूँ। जैसा कि तुमने कहा, अब मैं भगवान के कथन को अपने मुख से कह रहा हूँ। गीता के अन्तर्गत श्रीकृष्णा ने पांडुपुत्र अर्जुन के लिए विधिपूर्वक वर्णन किया था और उसमें कौरवों से युद्ध साक्ष्य के रूप में कहा गया है। ज्ञान से प्रेरित अर्जुन से श्री कृष्णा ने धनुष चढ़वाया और कौरवों का नाश कराया। उसके बाद उन्हें पुनः हिमालय में गला दिया और अर्जुन को नर्क में पहुँचा दिया। उनके मित्र अर्जुन ने अत्यन्त कष्टों को प्राप्त किया और जीवों की तो बात छोड़िए।

॥ साखी ॥

कृष्न समीपी पडवा, गरे हिवारे जाइ।
लोहे के पारस मिलै, तौ काहे काई खाइ॥

अर्थ–कृष्ण के समीप रहने वाले उनके समस्त पांडव मित्र हिमालय में जाकर गल गए। यदि लोहे (पांडव को) पारस (कृष्णा) मिल गया तो क्यों उन लोहा रूप पांडवों को क्यों काई (मोर्चा) खा रही है। अर्थात् वे हिमालय में क्यों गल रहे हैं॥

॥ चौपाई ॥

मानगिरि सुन बचन हमारा। आदि अंत बेदांत बिचारा॥
सास्तर ब्रह्मा बेद बनाई। और बैराट ब्रह्म बिधि गाई॥
आतम और परमातम बानी। कहूँ ब्रह्म की आदि बखानी॥
जो बेदांत ज्ञान गति गाई। सास्तर आतम अंत सुनाई॥
नाम भेद भिनि भिनि बतलाऊँ। गुन गति ज्ञान गिरा समझाऊँ॥
ठेका ठामी ठौर ठिकानी। पिंड ब्रह्मंड की करौं बखानी॥
जहँ से ब्रह्म आतमा आई। सो पद द्वार सुनाऊँ गाई॥
भिनि भिनि कर बरतंत सुनाऊँ। मानगिरी सुन ज्ञान लखाऊँ॥

अर्थ–हे मानगिरि सन्यासी! मेरी बातें सुनो और आदि से अन्त तक वेदान्त पर विचार करो। कहा जाता है कि ब्रह्मा ने वेदशास्त्र बनाया है और सृष्टि रचना की यह बात अन्य भी शास्त्रों में गाई गई है। आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में विचार करके –जिनके बारे में यह कहा गया है कि ब्रह्म ने जो बात सर्वप्रथम बताई है, उसी का वर्णन कर रहा हूँ। वेदान्त ने जिस ज्ञान की गति की चर्चा की है–शास्त्रों में उसे अन्त में, आत्मा कहकर, उसके विषय में बताया है। उसके भिन्न-भिन्न नाम भेदों की चर्चा कर रहा हूँ और मैं गति, ज्ञान एवं वाणी के विषय में समझा रहा हूँ। उनका ठौर-ठिकाना तथा उसकी ठेका ठामी तथा पिंड एवं ब्रह्मांड का मैं वर्णन कर रहा हूँ। जहाँ से ब्रह्म एवं आत्मा का आगमन हुआ उस द्वार के स्थान का वर्णन मैं कहकर सुना रहा हूँ। मैं ब्रह्म के भिन्न-भिन्न रूपों को सामने रखकर उनका वृत्तान्त सुना रहा हूँ–हे मानगिरी, सुनो! मैं उनको ज्ञान द्वारा आपके सामने प्रत्यक्ष करता हूँ॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्म बेद बैराट की, भिनि भिनि भाखूँ आद।
आतम अंत बेदांत की, बूझैं बिरले साध॥ १ ॥
बेद मता मत काल ने, कीन्हा झूठ पसार।
ब्रह्मा बेद बेदांत से, संत मता है पार॥ २ ॥

अर्थ–ब्रह्म की, वेद की एवं विराट सृष्टि की बात मैं पृथक्-पृथक् आदि बता रहा हूँ। कोई बिरले ही साधु हैं जो वेदान्त के आत्मा के रहस्य को समझते हैं॥ १ ॥

वेद के मत से काल ने अपना झूठा प्रसार सृष्टि के भीतर किया है किन्तु सन्त मत ब्रह्मा, वेद एवं वेदान्त से सर्वथा पृथक है॥ २ ॥

॥ चौपाई ॥

मानगिरी सुनि कै चित लाऊँ। आदि अंत बिधि जरनि सुनाऊँ॥
नसिहत-नामा भाखि सुनाऊँ। या की बिधि ता में दरसाऊँ॥

अर्थ–हे मानगिरी सन्यासी! मैंने भी उसे सुनकर ही चित्त में समझा है और मैं उसी के अनुसार आदि से अन्त तक इस संसार की नश्वरता का वर्णन करता हूँ। मैं आपके लिए नसीहतनामा (आदर्शपरक-शिक्षा) कहकर सुनाऊँगा और इस व्यवस्था को उसी में स्पष्ट करूँगा॥

नसीहतनामा

॥ रेखता ॥

चली अली खोज खबर धसि धाई ॥ टेक ॥

गवन भवन भिन भेद लखाऊँ, तत मत जोति नाद नहिं जाई ॥
अलख जोति बिन खलक समाना, जाना जिन जिन गाई ॥ १ ॥
नाम निवास बास सत लोका, जेहि का कँवल तेज सुन भाई।
परमातम पद सुन पर धामा, सुन धुनि आतम आई ॥ २ ॥
आतम बास बसै सरवर में, वहि तत बास अकास कहाई।
अली अकास चारों तन कीन्हा, तन बैराट बनाई ॥ ३ ॥
सुन नभ वार तार सुर्त स्यामा, ता में आतम मनहिं कहाई।
पँच इंद्री कर्म ज्ञान पाँच में, दस बस फाँस फँसाई ॥ ४ ॥
इंद्री कर्म असुभ बस बाँधे, सुभ करिके गति ज्ञान गिराई।
सुभ अरु असुभ कर्म मन मारग, ये दोउ भव भुगताई ॥ ५ ॥
आसा बास बसै कर्मन में, फिरि फिरि जनम जोनि भरमाई।

अर्थ–उस आवागमन के भवन में प्रवेश का मैं भिन्न मार्ग बतला रहा हूँ–उसमें ज्योति एवं नाद तत्त्व का भी प्रवेश नहीं होता। ऐसा लगता है कि सम्पूर्ण सृष्टि (संसार-खलक) बिना समायी हुई अलख ज्योति के है–किन्तु जिन्होंने इसे जाना है, वही कह सकते हैं (बता सकते हैं) ॥ १ ॥

उसका निवास स्थल नाम तत्त्व में है, उसका निवास सतलोक में है, जिसके कमल तेज के विषय में है भाई! सुनो। उस धाम में परमात्मा का पद सुनाई पड़ता है–वह ध्वनि केवल आत्मा को सुनाकर आती है ॥ २ ॥

आत्मा का निवास उस सरोवर में है, और उसके वास के कारण ही वह शून्याकाश कहलाता है–उसने आकाश के चार शरीर बनाकर विराट सृष्टि की रचना की ॥ ३ ॥

सुनो, उस शून्याकाश के स्यामा सुरति है–उस सुरति में स्थित आत्मा को मन कहा जाता है। पाँचों इंद्रियाँ-पाँच कर्ममयी और पाँच ज्ञानमयी इन दसों ने मन को फन्दे में फँसाकर वश में कर लिया ॥ ४ ॥

इन्द्रियों एवं कर्मों के अशुभ बन्धन में बँधे शुभ कर्म ने (तथा कथित पूजादि) ज्ञान की गति को नष्ट कर दिया। कर्म के शुभमय तथा अशुभमय में मार्ग दोनों ही भवबंधन में कष्ट भुगताते हैं ॥ ५ ॥

यहि बिधि आवागवन भवन में, फिरि फिरि खानि समाई ॥ ६ ॥
यहि बिधि संत सभी सब गावैं, सब्द साखि सब बरनि सुनाई।
बूझै न मूढ़-चलै मन मत के, सत सत बचन उड़ाई ॥ ७ ॥
आतम ज्ञान ब्रह्म बन बैठे, कहते लाज न मन बिच आई।
द्वैत भाव भर्म मन बरत, अद्वैती दरसाई ॥ ८ ॥
तजि मन मूढ़ कूड़ पाखंड को, झूर झूठ सब धोखा खाई।
तन कर नास बास चौरासी, फिरि फिरि जम धरि खाई ॥ ९ ॥

या से मान मनी मति डारौ, लख गुरु गगन गवन बतलाई।
सूरति डोर लील बिच खोलौ, घोड़ि कै पछिम समाई॥ १०॥
लीला सेत स्याम सुन पारा, न्यारा द्वार दीदा दरसाई।
जहँ परमातम आतम नाहीं, खिरकी पुरुष लखाई॥ ११॥
जहँ सतलोक मोष परबेनी, मंजन करिके सहज अन्हाई।
चढ़ि कर द्वार देखि सत साहिब, सुभ और असुभ नसाई॥ १२॥
जे जे बंद फंद कर्मन के, सत्त पुरुष दरसत नसि जाई।
यहि बिधि भाँति सुरति से खेलै, सतगुरु कहत बुझाई॥ १३॥
सतसँग रंग दीन दिल पावै, मोटे मन तन बूझ न आई।
जिन मन नीच कीच सम कीन्हा, उनकी दृष्टि समाई॥ १४॥
जोगी भेष भर्म मन ज्ञानी, परमहंस बैरागी गुसाँई।
करि करि खोज रोज पचि हारे, वा की खबर न पाई॥ १५॥
सास्त्र संग बिधि साखि बिचारै, बिधि बेदांत ब्रह्म बतलाई।
बेद नेति कर कहत पुकारा, ब्रह्मा आपु हिराई॥ १६॥
बिधि बैराट कँवल नाभी में, खोजत खोजत फिर फिरि आई।
ब्रह्मा भूले बेद कहै नेता, ये दोउ भेद न पाई॥ १७॥
ये बेदांत ब्रह्म कस गावै, या को कहौ किन बूझ बताई।
या के गुरु का भेद बतावौ, बिन गुरु कहौ कस गाई॥ १८॥
पिरथम बन बैराट बनावा, ता पीछे ब्रह्मा उपजाई।
ब्रह्मा पीछे बेद बिधाना, ये सब खोज न पाई॥ १९॥
बेद बिधी से सास्तर कीन्हा ता पीछे बेदांत बनाई।
ये तौ ब्रह्म ब्रह्म कहि गावैं, वा ने नेति सुनाई॥ २०॥
या की साखि समझ नहिं आवै, झूठ साच निरनै न बुझाई।

अर्थ–प्रत्येक कर्म में आशा का निवास है, वही पुनः पुर्नजन्म द्वारा नाना योनियों में भरमाती है। उस आवागमन भवन में (असार संसार में) पुनः पुनः जीवों के रूप में प्रवेश होता है। ६॥

इस प्रकार से सबद एवं साखी के द्वारा वर्णन करके सारे संत गाते हैं। किन्तु यह मूढ़ जीव समझता नहीं, अपने मन के मत से सत्य-सत्य वचनों का तिरस्कार करके चलता है॥ ७॥

आत्मज्ञान के द्वारा ब्रह्म बनकर साधक लोग मिथ्या रूप में बैठ जाते हैं। उन्हें लज्जा भी नहीं आती। उनका मन तो निरन्तर द्वैत भाव के भ्रम में भटकता रहता है किन्तु कथनी के रूप में अद्वैत भाव का रूप दिखाते हैं॥ ८॥

ये मूढ़ मन इस पाखंड के कूड़े का परित्याग करो, कोरे झूँठ से क्यों धोखा खा रहे हो। चौरासी हजार योनियों में शरीर का वास कराते हो–यमराज तुम्हें बार-बार पकड़ कर खीँचेंगे॥ ९॥

इसीलिए मन के अन्दर ऐसा विचार न उत्पन्न करके गुरु की ओर देखो जो शून्याकाश के गमन

का मार्ग बतलावेंगे। अपनी सुरनि समाधि की डोर लीला के बीच में खोलो और समाधि रूपी पश्चिमी प्रवेश द्वार की ओर से मन रूपी अश्व का प्रवेश कराओ॥ १०॥

श्याम तथा श्वेत तत्त्व लीला के उस पार हैं, उस विलक्षण द्वार का दृश्य (दीदा) दिखाओ। जहाँ न आत्मा है, न परमात्मा है–केवल एक खिड़की मात्र से वह परम पुरुष (परम ब्रह्म) दिखाई पड़ता है॥ ११॥

वहाँ सतलोक के मोखे पर (चौखटे पर) त्रिवेणी (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना) है–आत्मा रूपी चित्त से स्नान करके प्रविष्ट हो जाओ। वहाँ द्वार पर चढ़कर सत साहब का दर्शन करो और उनके दर्शन मात्र से पाप विनष्ट हो उठते हैं (उन्हें नष्ट करो)॥ १२॥

जो-जो कर्म बन्धन के फाँस है, वे सब उन्हें देखते ही विनष्ट हो उठते हैं। और इसीलिए सत्गुरु समझाकर कहते हैं कि इसी प्रकार अब तुम यहीं सुरति से क्रीड़ा करो॥ १३॥

श्रोता का दुखी हृदय सत्संगति से दुःख की मुक्ति प्राप्त करता है–मेरे भौतिक मन से यह नहीं सूझता तथा बूझता। जिन्होंने अपने बीच मन को साधना द्वारा रौंदकर कीचड़ बना दिया है, यह उन्हीं की दृष्टि में समझ में आता है॥ १४॥

मन का ज्ञानी योगी बेषभूषा के भ्रम में रहता है, और परमहंस गोसाई-बैरागी प्रतिदिन उसे खोजते हुए पूरी तरह से हार मान लेते हैं, किन्तु उसकी खबर नहीं पाते॥ १५॥

ब्राह्मण शास्त्रों के साथ मिलकर साक्षियों द्वारा उस पर विचार करते हैं, और उसी को वेदान्ती ब्रह्म बतलाते हैं। वेद उसको नेति-नेति कहकर पुकारता है और उसका विवेचन करते-करते स्वयं ब्रह्मा खो गए॥ १६॥

नाभि में कमल, विराट सृष्टि आदि को खोजते खोजते-ब्रह्मा घर आए–ब्रह्मा स्वयं भूल कर उसे वेद जैसा नाम देते हैं किन्तु ये दोनों (ब्रह्मा एवं उनके समर्थक) मार्ग नहीं पाते॥ १७॥

तीसरे प्रकार के चिन्तक वेदान्त ब्रह्म की बात कैसे कहते हैं, बताओ किसने समझ-बूझकर इसे बताया है। इनके गुरु का तुम भेद बताओ और बिना गुरु के बताओ, इसे कैसे गाते रहते हो॥ १८॥

प्रथम विराट सृष्टि की रचना की, उसके पीछे ब्रह्मा को उत्पन्न किया। ब्रह्मा के बाद वेद का विधान हुआ–ये सब इस रहस्य को खोज नहीं पाते॥ १९॥

वेद विधि द्वारा शास्त्र रचना हुई, उसके पीछे बेदान्त को बनाया ये तो ब्रह्म ब्रह्म करके गायन (कथन) करते हैं, वेद में तो नेति-नेति (अर्थात् जिसका थाह आदि अन्त नहीं है) ऐसा सुनाई पड़ता है॥ २०॥

सोल पोल बिधि कोइ न बिचारै, टेकै टेक चलाई॥ २१॥
ब्रह्मा बाप बैराट कहावै, जा में आतम ब्रह्म समाई॥
सूर चंद दोउ नैना वा के, राहु बिमान सताई॥ २२॥
ब्रह्मा बाप आप भये रोगी, भोग रोग नित राहु सताई।
उन का बाप आप दुख पावै, ता का दुख न छुड़ाई॥ २३॥
बेद भेद सँग जगत उबारै, अस अस पंडित कहत सुनाई।
पीछे सास्तर नाती कहिये, आजा दुर्ग दुख पाई॥ २४॥
जग बेदान्त ब्रह्म कहै ज्ञानी, राहु बैराट ब्रह्म दुखदाई।
पंडित बूझ सूझ समझावौ, ये कहौ समझ सुनाई॥ २५॥
तन को तेल फुलेल रसिक में, खान पान पोसाक सुहाई।

नित नित सैल करै बागन में, तन नित माँजि अन्हाई॥ २६॥
ये सब मौज चौज सुख संगा, तन हबूब बल्ल सम जाइ।
पल पल घट घड़ियाल पुकारै, जग जम सोंटे खाई॥ २७॥
लेत हिसाब ज्वाब नहिं आवै, आतम ज्ञान गैल गिरि जाई।
ब्रह्म बूझि बैराट दुखारी, परलय माहिं नसाई॥ २८॥
ता के भीतर चेतन बासी, परलय तन तत कहाँ रहाई।
ब्रह्मा नसि और बेद नसाना, जब का भेद सुनाई॥ २९॥
पिरथम पवन अकास नसाना, ब्रह्मा बेद बैराट नसाई।
कागद स्याही न लिखनेहारा, तब की बिधि समझाई॥ ३०॥
बिधि बैराट नास सब जानै, आगे भेद न कहत सुनाई।
जेहि जेहि पूछौं सोइ अस गावैं, आगे न खबर सुनाई॥ ३१॥
काल जाल, सब चालि बखानै, बेद नेति सास्तर समझाई।
या में जोग ज्ञान फँसि भारे, सब को भर्म भुलाई॥ ३२॥
अगम निगम पर नेक न पावै, बेद नेति आतम कहि गाई।
सोइ सास्तर सुनि मुनि जन गावैं, आगे भेद न पाई॥ ३३॥
आतम ब्रह्म अबाच बतावैं, कहत दृष्टि नहिं देत दिखाई।
बिन देखे बरनन जिन कीन्हा, नहिं परमान कहाई॥ ३४॥
कहत बेद कोइ देख न पावै, पुनि अबाच कहौ कौन सुनाई।
बिन बाचा सास्तर नहिं भयऊ, अर्थ बाच किन गाई॥ ३५॥
वह अबाच कहौ बोलत नाहीं, बाचा बिन किन खबर सुनाई।
सुनि कहौ बेद नाद बाचा से, या को भेद बताई॥ ३६॥
पूछौं जित जो अबाच बतावै, बाचा में बरतंत सुनाई।
बाचा बचन न जाने पावै, पूजौं कहौ सुनाई॥ ३७॥
बाक बचन कहौ बात न मानै, बिना बाचा में कहौ समझाई।
सुनि द्वैति बिन बाच न आवै, बचन बिना दरसाई॥ ३८॥
ये सब काल जाल जग बाँधा, ज्ञानी पंडित भेष भुलाई।
मान मनी मद अहं बतावै, यहि बिधि जाल जमाई॥ ३९॥
पढ़ि पंडित रुजगार चलावै, कुटम्ब काल परपंच बसाई।
ता में ज्ञानी जग्त अबूझा, सो सुनि समझि सुनाई॥ ४०॥

अर्थ–इसका साक्ष्य मुझे समझ में नहीं आता और इनके कथनों से सत्य- असत्य के निर्णय को नहीं समझा जा सकता। मूल तत्त्व (सोलपोल) की रचना विधि पर कोई विचार नहीं करता, और केवल ये शास्त्रों का सहारा (टेक-टेक) ही लेकर चलते हैं॥ ३१॥

ब्रह्मा का बाप विराट सृष्टि है, जिसमें आत्म ब्रह्म स्वयं छिपा है–उसके सूर्य तथा चन्द्रमा दो नेत्र हैं और राहु केतु विमान पर चढ़कर उन्हें सताता रहता है॥ २२॥

ब्रह्मा (चन्द्रमा का पिता है) किन्तु चन्द्रमा रोगी है और रोग तथा भोग की अवस्थाओं में उसे राहु निरन्तर कष्ट देता रहता है। उनका बाप ब्रह्मा स्वयं कष्ट भोगता रहता है, वह उसके (चन्द्रमा) के दुख को क्या छुड़ा पावेगा॥ २३॥

वेदों के भेद जलते हुए संसार से मुक्ति प्रदान करते हैं, ऐसा-ऐसा पंडितजन (ब्राह्मण जन) कह कर सुनाते हैं। शास्त्रों को ब्रह्मा का नाती कहा जाना चाहिए और नातियों के आगे पितामह (ब्रह्मा) निरन्तर कष्ट भोगते रहते हैं॥ २४॥

इस संसार में ज्ञानी वेदान्त के ब्रह्म की बातें कहते हैं किन्तु राहु रूपी यह विराट सृष्टि स्वयं ब्रह्म के लिए कष्टमयी है। ये ब्राह्मणों सूझ-बूझ करके भूल मन्तव्य को समझाओ और सभी बातों को पूरी तरह से समझकर सुनाओ॥ २५॥

शरीर में तेल-फुलेल लगाकर सुन्दर खानपान एवं वस्त्र सज्जा से अलंकृत नित्य प्रति बगीचों में आनन्दपूर्वक प्रणय क्रीड़ा करता है। ये सम्पूर्ण भौतिक आनन्द, उमंग-सुख से जुड़े इस शरीर को माँजकर रखते हैं॥ २६॥

ये सम्पूर्ण आनन्द, नाना साधनों से सुखभोग आदि इस शरीर रूपी हबूब के बुल्ले की भाँति नष्ट हो उठेगा। हर पल इस शरीर को काल रूपी घड़ियाल पुकार रहा है और व्यक्ति इस संसार में यम के सोंटे खाता रहता है॥ २७॥

यम द्वारा हिसाब लेते समय उत्तर नहीं सुझाई पड़ता और सम्पूर्ण और आत्म ज्ञान गली में गिर कर खो जाता है, ब्रह्म को समझता हुआ यह वैराट दुखी रहता है क्योंकि वह भी प्रलय के समय नष्ट हो उठता है॥ २८॥

उसके भीतर स्थित चैतन्य तत्त्व प्रलय काल में कहाँ कहाँ रहता है, ब्रह्म नष्ट हो उठता है, वेद भी नष्ट हो आता है, उस समय का रहस्य समझाओ॥ २९॥

सर्वप्रथम पवन एवं आकाश नष्ट होता है और ब्रह्मा, वेद एवं वैराट नष्ट हो उठता है–उस समय न कागज बचा रहता है, न स्याही और न लिखने वाला मनुष्य। उस समय की स्थिति हमें समझाएँ॥ ३०॥

विराट सृष्टि का समग्र नष्ट हो जाने के बाद, आगे का रहस्य कहते एवं सुनते नहीं बनता। जिससे-जिससे पूछोगे, वही-वही ऐसा कहेगा–आगे की चर्चा नहीं सुनाई पड़ती॥ ३१॥

काल के जाल को सभी खूब सोच समझकर समझाते हैं, वेद उसे नेति-नेति कहते हैं, और उसे शास्त्र अपने ढंग से समझाते हैं। इसी काल के जाल में योग, ज्ञान आदि फँस कर मर जाते हैं और सभी को यह काल का भ्रम भुलाए रहता है॥ ३२॥

अगम-निगम तो उसको छू भी नही पाते और वेद आत्मा को 'नेति नेति' कह कर गाते हैं। उसी शास्त्र को सुनकर मुनि जन उसका वर्णन करते हैं–उसके आगे का वे रहस्य नहीं प्राप्त करते॥ ३३॥

वेद आत्म ब्रह्म को अतिवर्चनीय (अवाच्य) कहते हैं और कहते है और हैं कि वह दृष्ठि से नहीं दिखाई पड़ता। बिना देखे, जिन लोगों ने ब्रह्मा का वर्णन किया है, उसका कोई प्रमाण नहीं कहा गया है॥ ३४॥

वेद कहते हैं कि उसे कोई देख नहीं पाता, वह अकथनीय है, और कौन कह सकता है। बिना वाच्य हुए तो शास्त्रों का भी निर्माण होता-बताओ, यह अवाच्य किसने कहा है–(वेद ही ने तो कहा है)

वह वाणी रहित है, कहो वह बोलता नहीं, बिना बोले, उसकी खबर किसने सुनाई है–किन्तु मैंने तो वाणी द्वारा वेद का नाद सुना है–मैं इसका भेद बता रहा हूँ॥ ३६॥

जिससे भी उसके विषय में पूछा जाता है, वह अवाच्य बतलाता है– और वाक् में ही उसका वृत्तान्त सुनाई पड़ता है। मैं उसे इस प्रकार बताऊँगा कि वाक् में वाणी का प्रवेश नहीं होगा॥ ३७॥

मैं वाक् द्वारा उसे समझाने का कथन करूँगा तो मेरी बात नहीं स्वीकार करेंगे–मैं बिना वाक् के उसे समझा कर कहता हूँ। सुनों, बिना द्वैत के बात भी नहीं फूटती मैं बिना बचन के ही उसे दिखा रहा हूँ (बता रहा हूँ)॥ ३८॥

यह समस्त संसार काल जाल में बँधा है, ज्ञानी पंडित ये दोनों अपने वेषों में भुलाए पड़े हैं। ज्ञानी पंडित अपने अहम् को बताता है–ज्ञान को नहीं–और परिवार के भरणपोषण के लिए वह प्रपंच फैला रखा है॥ ३९॥

पंडित अध्ययन के बाद उसका रोजगार करता है और अपने परिवार के भरण पोषण के लिए प्रपंचों को रचता है--उसमें ज्ञानी पुरुष ना समझ होकर कष्ट पाता है, उसे समझों मैं उसको जानकर उसका वर्णन करता हूँ॥ ४०॥

यहि बिधि बुधि बेदन सँग बाँधी, संत मता बेदन सम गाई।
नाद बेद से संत नियारे, सो नहिं कोइ गति पाई॥ ४१॥
ये अबाच पर और अबाचा, सो कोइ संत भेद बतलाई।
उन देखा सुर्त से चढ़ि चौथे, सो सब सत सुनाई॥ ४२॥
पिरथम एक नाम अबाचा, वा की गति मति संत जनाई।
सत्त लोक पर नाम अबाचा, सो पद चौथे माई॥ ४३॥
परमातम पद सुन पै अबाचा, सुनि धुनि नीचे आतम आई।
मानसरोवर तेहि कर धामा, सोइ आकास समाई॥ ४४॥
जड़ अकास चेतन जिन्ह कीन्हा, स्याम सेत बिच नाम गुसाँई।
मोह निज नाम निरंजन भाखा, बेद अबाच सुनाई॥ ४५॥
सहस कँवल मध धाम कहावै, ता पर तीनि अबाच रहाई।
ब्रह्मा बेद बैराट न पावै, ऋषि मुनि भ्रम मन माई॥ ४६॥
सास्तर मिलि पुनि आतम गावा, काल की कला अबाच सुनाई।
पंडित पढ़ि गुनि ज्ञान गठाने, या से जग बौराई॥ ४७॥
निरगुन कंज गह नहिं पावै, संत सुरति से निज नित जाई।
जो वाहि देस भेस के भेदी, जिन जिन खबर जनाई॥ ४८॥
उनको जग नास्तिक ठहरायैं, बोल बचन उनके न सुहाई।
वे पुनि चढ़ि चढ़ि अगम निहारैं, बिधि सब कहत सुनाई॥ ४९॥
काल निरंजन बाच अबाचा, कहत नाद बिच बेद बनाई।
आतम तमा अबाच कहावै, येहि बिधि काल जनाई॥ ५०॥
संत मता कछु और पुकारै, आतम जीव मानसर माईं।
परमातम सुन खिरकी पारा, संतन देख जनाई॥ ५१॥
आगे सत्तलोक चौथे में, सो अबाच सत्त पुरुष कहाई।
जहँ नहिं निरगुन बेद बिचारा, ये सब वार रहाई॥ ५२॥
चौथे पार अनाम अमाया, नाम न रूप अगम गति गाई।

सो सब संत करैं दरबारा, ये गति बिरले पाई॥ ५३॥
ये गति धाम अगमपुर ठामा, जाहि देत जो जाइ जनाई।
या की साखि बेद नहि जानै, संत कृपा से पाई॥ ५४॥
संत सरन बिन पथ न पावै, सतगुरु गैंल खेल खुलि गाई।
मन होय छोट मोट छल छाँडै, तब सत सुरति लखाई॥ ५५॥
सत मत रीत जीत जब जानै, ज्ञान मान मद दूरि बहाई।
मन और कर्म बचन बुधि साँची, काँची कुबुधि उठाई॥ ५६॥
संत दयाल चाल जब चीन्है, लीन दीन दिल लेत लगाई।
सब अस भाँति जाति एक परखै, तरकै तन बिच जाई॥ ५७॥
वे अन्तर घट घाट बिचारै, कर कर फैल गैल नहिं पाई।
कूड़ कपट सब झारि निकारैं, जब रस राह लखाई॥ ५८॥
सत मत सुरति निरति नितन्यारी, सारी समझ बूझ बतलाई।
लील सिखर पट परदे माहीं, पल पल मनहिं लगाई॥ ५९॥
काग भुसुंड धाम धसि पावै, कँवल कंज करिया के माई।
ता पर सेत सुरति सत द्वारा, चढ़ चढ़ सुन्न समाई॥ ६०॥

अर्थ–इस प्रकार बुद्धि को वेदों के साथ बाँध दिया और सन्त मतों को वेद के समान बता दिया गया। वेचारा संत नाद एवं वेद दोनों से भिन्न हैं–उन्हें इसका कोई ज्ञान नहीं है॥ ४१॥

जो बोल नहीं सकते थे वे और भी अवाच्य है–उनमें से कोई एक संत का रहस्य बतलाते हैं। इन सन्तों ने सुरति समाधि में चढ़कर चौथे तत्त्व को देखा–ऐसा सन्तों ने सुनाया है॥ ४२॥

पृथ्वी पर एक आवाच्य एवं अनाम तत्त्व है–उसकी गति-मति सन्तों द्वारा जानी जाती है। सतलोक के ऊपर स्थित ब्रह्म अवाच्य है–वह स्थान चौथे तत्त्व को प्राप्त हुआ है॥ ४३॥

शून्य में स्थित परमात्मा का पद अवाच्य है, उसकी ध्वनि सुनकर आत्मा नीचे आ जाती है। उसका निवास स्थान मानसरोवर धाम है और वह आकाश में समाया हुआ है॥ ४४॥

जिन्होंने जड़ आकाश को चैतन्य बना दिया–जिसका नाम श्वेत (ज्ञान, ज्योति) तथा श्याम (अज्ञान एवं अंधकार) दोनों के बीच व्याप्त है, उसने स्वयं अपना नाम निरंजन बताया है-उसी को वेद अवाच्य कहा जाता है॥ ४५॥

सहस्त्रार कमल पर जिनका निवास है, उस पर तीन अवाच्य तत्त्व रहते हैं–उसे विराट सृष्टि ब्रह्म तथा वेद नहीं प्राप्त कर सकते॥ हे सखी! इसके विषय में सदा ऋषियों एवं मुनियों का मन भी भ्रमित रहता है॥ ४६॥

उसी को शास्त्रों ने मिलकर आत्मा के रूप में कहा है, वहाँ काल की अवाच्य कलाएँ सुनाई पड़ती है–मंत्रिगण उसी का अध्ययन करके गुण एवं ज्ञान में पागल तने रहते हैं–उसे न जानने के कारण ही यह संसार पागल बना हुआ है॥ ४७॥

सन्तजन नित्य प्रति नित्य सुरति में प्रवेश करके उसे खोजते हैं किन्तु कमल में स्थित निर्गुण तत्त्व की वे राह नही पाते-यह खबर उन लोगों ने बताई है–जिन्होंने उस मार्ग का भेदन कर रखा है॥ ४८॥

ऐसे सन्तों का सारा संसार नास्तिक ठहराता है, ऐसे सन्तों के बोल-वचन संसार को अच्छे नहीं लगते, ये सन्त कमल के ऊपर ध्यान रूप होकर उस अगाम्य तत्त्व को देखते रहते हैं, इस प्रकार मैं सारी रहस्य भरी बातें सुनाकर कहता हूँ॥ ४९॥

काल निरंजन वाच्य-अवाच्य इनको नाद के बीच का भेद कहकर पुकारा जाता है–ये आत्म एवं अवाच्य तत्त्व हैं–इस प्रकार इनके द्वारा ही काल का बोध होता है ॥ ५० ॥

सन्तों का मत इसे कुछ और कहता है–आत्म तत्त्व से जुड़ा जीव मानसरोवर जाता है–यह सुनकर कि परमात्मा तत्त्व उस खिड़की के उस पार है–सन्त जन उसे निरन्तर देखने जाते हैं ॥ ५१ ॥

आगे चौथे सतलोक में रहने वाला पुरुष अवाच्य कहलाता है, वहाँ निर्गुण ज्ञान का विचार नहीं है, ये सभी बाहर ही रहते हैं ॥ ५२ ॥

इस चौथे तत्त्व के उस पार अनाम और अमाया तत्त्व है, न उसका नाम है, न रूप है, उसकी गति अगम्य गाई गई है। वहीं सारे सन्त जन दरबार करते हैं, यह गति बिरले सन्त को ही प्राप्त होती है ॥ ५३ ॥

यह गति अगमपुर नामक धाम एवं स्थान की है, यह वही प्राप्त करता है, जिसे परमात्मा ज्ञान करा देता है–इस स्थल की साक्षी वेद भी नहीं जानते, यह स्थान सन्त वृत्तान्त से ही मिलता है ॥ ५४ ॥

सतगुरु के स्थल पर पहुँचने का मार्ग का वर्णन बड़ा ही खुला हुआ है किन्तु सन्तों की शरणागति के बिना यह मार्ग नहीं मिलता। मन में लघुता का प्रवेश कराएँ, छल तथा अहम् का परित्याग करें तभी यह सतनाम की सुरति दिखाई पड़ती है ॥ ५५ ॥

सन्त मत द्वारा ही विजय की सारी रीतियाँ समझ में आ जाती–ज्ञान, मद, मान आदि को दूर बहाकर सच्चे मन, बुद्धि, वचन तथा कर्म द्वारा कच्ची कुबुद्धि दूर करके सत्य का आधार ग्रहण करे ॥ ५६ ॥

साधक दयालु सन्तों की चाल जब समझता है, तब दीनों में लीन अपने दिल को परमात्मा उसे दिखा देता है वह इस प्रकार सन्तों की उस जाति को परखकर उनके बीच जाकर वह स्वयं स्फुरित (तरके) होता है ॥ ५७ ॥

ये परमात्मा इस शरीर में स्थित निर्मल चित्र (स्थान) को समझते हैं, और फिर उसमें फैले हुए उस करकट (करकर) को जिससे मार्ग नहीं मिलता या अवरुद्ध हो जाता है, वे इसके सारे कूड़े करकटों को निकालकर निर्मल बना देते हैं और तब रसमय मार्ग देखने लगता है ॥ ५८ ॥

संत मत में कहे गए सुरति तथा निरति का मार्ग विलक्षण है–उसका सम्पूर्ण मार्ग मैं समझ बूझकर बतलाता हूँ–उस निरंजन तत्त्व के लीला शिखर पर कोई परदा नहीं है, हे साधक उसमें क्षण-क्षण मन लगाओ ॥ ५९ ॥

इस कमल के चतुर्थ धाम में प्रवेश करके कागभुशुंडि निरन्तर उड़ते रहते हैं, उसी पर श्वेत वर्ण के सुरति के शत द्वार हैं और उसी पर चढ़-चढ़कर वे शून्य में समाहित हो उठते हैं ॥ ६० ॥

सुनि धुनि ताल तरँग आतम जिव, पछिम दिसा दिस देत दिखाई।
खिरकी खोल अबोल अबाचा, सो रचि जीव जनाई ॥ ६१ ॥
ताल निहार पार चलि आगे, सुन्न सिखर फाटक में जाई।
तहँ कहुँ ताक भाख दोउ द्वारा, पारब्रह्म पद पाई ॥ ६२ ॥
सुरति सैल जहँ खेल निहारी, लख लख गगन अंड अरथाई।
जा बिच सुरति सिरोमनि पेली, ज्यों चींटी सम जाई ॥ ६३ ॥
अस भुसण्ड भिन अंड निहारा, राम रमा मुख जाइ समाई।
रामायन लखि साखि सुनाऊँ, हिये दृग देत दिखाई ॥ ६४ ॥
चर और अचर खानि सब सारी, भिन भिन भेद भुसँड सुनाई।
काग भसुंड काया के माहीं, लखि जनि जानि जनाई ॥ ६५ ॥
या से परखि पार पद न्यारा, पारै चढ़ि चल चस्म चिन्हाई।

सुनि धुनि आत्म पद परमातम, इनके पार लखाई॥ ६६॥
ये दोउ वार पार सतलोका, परदा तीनि फोड़ जोइ जाई॥
सूरति सब्द पुरुष पद पारा, जब घर अपने आई॥ ६७॥
ता पर धाम नाम नहिं न्यारा, तारा चन्द न सुरज रहाई।
धरती न गगन गिरा नहिं बानी, जानी जिन जिन गाई॥ ६८॥
पिंड ब्रह्मंड न अंड अकारा, न्यारा अली अलोक कहाई।
जहँ सब संत पंथ पद माहीं, नित नित सैल समाई॥ ६९॥
सतगुरु साथ हाथ हित पावै, संत सरन स्रुत सार लखाई।
सतसँग संत बिना नहिं पावै, फिर फिर कर्मन माई॥ ७०॥
आगे सुन गुन ज्ञान बताऊँ, जीव कर्म बस ब्रह्म बँधाई।
ब्रह्म जीव बस कर्म बिचारै, जड़ सँग ज्ञान गिनाई॥ ७१॥
अब या की सुन साखि सुनाऊँ, भागवत मत बिधि ब्यास बताई।
जब बैराट ठाट ब्रह्म भइया, देवन जाइ उठाई। ७२॥
नहिं बैराट उठा बिन आतम, पुरुष अस आतम जब आई।
मध बैराट जीव आंतम अस, तब तन सुरत उठाई॥ ७३॥
अंस जीव आतम कहौ कहँ से, आया सो बिधि खोज कराई।
सो स्वामी का कहौ कहँ बासा, जिन से अंस जो आई॥ ७४॥
अंस बुन्द आतम तन बासा, सिंध खोज कहुँ अंत रहाई।
यहि बिन संत पंथ नहिं पावै, फिरि फिरि जड़ तन माई॥ ७५॥
बिन साखी संध फंद न टूटै, छूटै न ज्ञान जो कोटि कराई।

अर्थ–ताल के तरंगों की ध्वनि सुनकर आत्मजीव को पश्चिम दिशा की ओर वह केन्द्र दिखाई पड़ता है, जहाँ खिड़की खोल कर वह अबोल और अवाच्य तत्त्व है–वह आत्म जीव की रचना करके उसे बोध शक्ति प्रदान करता है॥ ६१॥

उस ताल को देखकर आगे चलो, तुम शून्य शिखर के फाटक तक पहुँचोगे–वहाँ यदि किसी प्रकार भी उसका नाम लेता है, या यदि देख लेता हैं, परमब्रह्म का पद वह प्राप्त करता है॥ ६२॥

वह सुरति पर्वत जहाँ इस खेल को किसी ने देखा–वहाँ आकाश के अंड को देखकर उसका विस्मयपूर्वक अर्थ भेद करने लगता है, उसी के बीच सुरति रूपी शिरोमणि चींटी की भाँति उसमें जा रही है॥ ६३॥

स्वयं रमे हुए राम के मुख में जाकर इस प्रकार कागभुशंडि ने भिन्न-भिन्न ब्रह्मांडों को देखा–मैं तुलसीदास कृत श्रीरामचरित मानस का साक्ष्य देकर इसे बता रहा हूँ, जो हृदय की आँख से प्रत्यक्षत: दिखाई दे रहा है॥ ६४॥

चर तथा अचर लोगों में समस्त जीव खानि के भिन्न-भिन्न भेदों को भुशुण्डि ने सुनाया है, उन्होंने समस्त तत्त्व श्रीराम के शरीर में देखकर तथा समझकर बताया था॥ ६५॥ इसलिए उस स्थान के उस पार देखकर तथा पार चलकर जाओ, वह आँखों द्वारा देखने पर समझ में आएगा। आत्मपद परमात्मा की उस ध्वनि को सुनने के बाद ही वह उसके उस पार दिखाई पड़ेगा॥ ६६॥

ये दोनों सतलोकों के उस पार हैं—जो रज, तम एवं सत्त्व के तीनों परदों को तोड़कर वहाँ जाएगा, उसे देखेगा। वहाँ वह विलक्षण ईश्वर पुरुष उस पार है—उसे तब प्राप्त करोगे जब आत्म जीव उस अपने घर में पहुँचेगा॥ ६७॥

वहाँ न कोई विलक्षण धाम है, न नाम है, तारे चन्द्रमा तथा सूर्य भी वहाँ नहीं हैं। वहाँ न तो पृथ्वी है, न आकाश है, न गिरा है, न वाणी है—जो जो वहाँ पहुँचे हैं, उन्होंने ही उसका वर्णन किया है॥ ६८॥

न वहाँ पिंड है, न ब्रह्मांड है, न अंड है, न कोई आकृति है, वह ईश्वर का लोक विलक्षण है। सारे सन्त जहाँ जाने के लिए अभी रास्ते में ही है—(पहुँचे नहीं) प्रतिदिन चल-चलकर वे उसी पर्वत में खोते जा रहे हैं॥ ६९॥

सतगुरु के हाथों के साथ अपना हित प्राप्त करते हैं, सन्तों की शरण में उन्हें श्रुतियों (सन्त वचन) का सार तत्त्व दिखाई पड़ता है। बिना संतों के सत्संगति नहीं मिलती और वे पुनः पुनः कर्मों में आकर फँस जाते हैं॥ ७०॥

अब और आगे सुनो, मैं उनका गुणमयी ज्ञान बता रहा हूँ, जीव के कर्मवश ब्रह्म भी बँधा रहता है। ब्रह्म जीव के वश में होकर कर्म पर विचार करता है और जड़ मति के लोगों के बीच वह ज्ञान की गणना करने लगता है॥ ७१॥

अब सुनो, आगे मैं इसका साक्ष्य बतलाता हूँ,यह भागवतपुराण के मतानुसार व्यास कथित है। जब विराट सृष्टि का जन्म हुआ तब देवों ने जाकर उसे (उस सोते हुए ब्रह्म को) जगाया॥ ७२॥

बिना आत्म के वह विराट सृष्टि के बीच सोया हुआ ब्रह्म उठा नहीं था। करुणा के पुरुष का अंश (ब्रह्म का अंश) जीव के शरीर में तब तक नहीं आया था। पुरुष में आत्म तत्त्व के आगमन के बाद ही वैराट उठा। वैराट के मध्य में जीव का आत्म तत्त्व है और उसके आने के ही कारण उसने शरीर की उसे याद दिलाई॥ ७३॥

इस जीव के अंश के रूप में बताओ, यह आत्म तत्त्व कहाँ से आया—उसकी अच्छी तरह से खोज करके बताओ—इस जीव का अंश देने वाले स्वामी का निवास कहाँ है, उसे बताओ। ७४॥

आत्म तत्त्व अंश के बूंद के रूप में शरीर में व्याप्त हो उठा, समुद्र में उसे खोजो, कहीं उसका रूप नहीं नहीं है। जीव में बिना आत्म तत्त्व के अंश के उसके पास सन्त भी नहीं आते और बार-बार वह तत्त्व जड़ में परिणत होता रहता है॥ ७५॥

बिन बिधि सुरति सिंध नहिं पावै, बिन सिंध बुन्द बहाई॥ ७६॥
चेतन जड़ तन गाँठि बँधानी, छूटे बिन बस ब्रह्म न भाई।
छूटै गाँठि गगन चढ़ चीन्है, तब बिधि ब्रह्म कहाई॥ ७७॥
जैसे गगन रबी रहै बासा, किरनि भास भूमी पर आई।
जब सब सिमटि भास गति रबि में, बुन्दा सिंध कहाई॥ ७८॥
नास अकास सूर सब बिनसै,तब रबि रहै कहौ कहँ जाई।
सो ठेके का खोज लगावौ, वो पद कौने ठाई॥ ७९॥
सास्तर ने गति गैल भुलाई, ब्रह्म बाँधि जड़ जीव रहाई।
यहि बिधि भूल फूल मन मारग, या से गति नहिं पाई॥ ८०॥
ज्ञान ठान दृढ़ सास्तर भाखा, परमहंस ज्ञानी उरझाई।
चारि अवस्था भाखि बताई, सो सब कहत सुनाई॥ ८१॥
सब ज्ञानी तुरिया गति गावैं, पूछौ भेद सो मन मुख माई।

जाग्रत सुपन सुषोपति तुरिया, तुरियातीत सुनाई॥ ८२॥
जाग्रत सुपन का भेद न बूझै, सुषोपति तुरिया मुख से गाई।
तुरियातीत रीत मन मारग, आगे भेद न पाई॥ ८३॥
बानी चार लार कर बोलै, परा पसंता मधिमा भाई।
बैखरी बिधि बोलै सुन बोली, कँवल पेट के माई॥ ८४॥
यहँ से बानी उठन बतावैं, बिष्टा बास बतावत आई।
जहँ से बानी उठत अबाचा, वहँ का खोज न पाई॥ ८५॥
ज्ञान तीन गत्ति गाइ सुनावैं रेचक पूरक कुम्भ कहाई।
ये सच ज्ञानी बानी बूझैं मन सँग बुद्धि बहाई॥ ८६॥
मन बिधि ज्ञान बुधि बस देखे, ब्रह्म ब्रह्म कर कहत सुनाई।
आतम को अद्वैत बतावै या से बूझ न आई॥ ८७॥
आतम कुबुध बंध कर्मन में, ब्रह्मज्ञान मति कहत बुझाई।
रहै अज्ञान बास जड़ देही, ता बिच गाँठि बँधाई॥ ८८॥
ठट कर ठाट ठटै जब मूरति, अंडा फोड़ अगम गति पाई।
सब्द सिंध सुरति चढ़ जावे, जब पावै पद आई॥ ८९॥
तुलसी तुच्छ कुच्छ नहिं जानै, संत सत्त कहि कहत सुनाई।
मैं मति नीच कीच सम किंकर, सनसंग समझ सुनाई॥ ९०॥

अर्थ–बिना साक्ष्य के इस आत्मसिंधु का पाश नहीं टूटता, चाहे कोटि उपाय करें, ज्ञान भी नहीं छूटता। बिना किसी विधि के यह आत्म तत्त्व सुरति सिन्धु को भी नहीं प्राप्त करता और व्यक्ति बिना सिन्धु ज्ञान के आत्म ज्ञान बिन्दु की चर्चा करता रहता है॥ ७६॥

इस शरीर में जड़ तथा चेतना की गाँठ बँधी हुई है, बिना उस गाँठ के छूटे, ब्रह्म बोध सम्भव नहीं है। गाँठ छूटने पर आत्म तत्त्व शून्याकाश पर चढ़कर उस परमतत्त्व को पहचानता है, इस प्रकार उसे ब्रह्म (बोध होने वाले तत्त्व को) कहा जाता है॥ ७७॥

जैसे आकाश में सूर्य का निवास है और उसकी किरणों का आभास भूमि पर होता है, जब-जब किरणों की आभासंगति सिमटती है (उसी किरण से ही सूर्य का बोध होता है) उसी प्रकार, जीव अंश की एक बूँद से परमात्मा रूपी सिंधु की समग्रता की बात कही जाती है॥ ७८॥

आकाश के नष्ट होने पर समस्त सूर्य नष्ट हो उठते हैं, उस समय बेचारा सूर्य, बताइये किस स्थान पर जाकर रहेगा उस उसकी निवासस्थली की खोज करो, वह स्थल किस जगह है। ७९॥

शास्त्रों ने उसकी गति और मार्ग भुला दिया, ब्रह्म को जड़ जीव में रख दिया। इस प्रकार मन का मार्ग अहन्ताग्रस्त (फूल) होकर वह भूल बैठा, इसलिए उसे सही मार्ग नहीं मिला॥ ८०॥

शास्त्रों ने कहा है कि ज्ञान का स्थान स्थिर है, परमहंस ज्ञानियों ने उसे उलझा दिया है, ये ज्ञान की चार अवस्थाओं को झुकाकर बताते है, उन्हें मैं सुनाकर बताता हूँ॥ ८१॥

सभी ज्ञानी जन तुरीयावस्था के ज्ञान का वर्णन करते हैं, यदि उनसे उसका रहस्य पूछये तो वे चुप हो उठते हैं और फिर जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया एवं तुरीयातीत गति कहकर बताते हैं॥ ८२॥

वे जागृत तथा स्वप्न का रहस्य नहीं समझते, केवल सुषुप्ति एवं तुरीया का मुख से गान करते रहते

हैं। तुरीयातीत मन के मार्ग तक बात केवल कहते हैं (किन्तु उनका ज्ञान खाली (रीत) रहता हैं), उसके आगे का मार्ग नहीं जानते॥ ८३॥

वाणी के लिए चार भाग निर्दिष्ट करके बोलते हैं–परा, पशन्ति, बैखरी एवं मध्यमा। वे किसी से सुनकर बैखरी की बात कहते हैं कि वह उदर कमल में निवास करती है॥ ८४॥

वाणी का उठना वे पेट से बताते हैं और विष्टा (मल) के बीच उसका निवास। वहाँ से, उनके अनुसार अवाच्य वाणी उठती है, उस मूल स्थान की खोज वे नहीं कर पाये॥ ८५॥

ज्ञान की ये तीन गतियाँ गाकर सुनाते है, जिन्हें रेचक, पूरक एवं कुम्भक कहा गया है। ये सब ज्ञान को अनुभव से न बूझकर वाणी द्वारा बूझते हैं और मन के साथ बुद्धि को बहा देते हैं॥ ८६॥

मन की विधि द्वारा जिस ज्ञान को समझा जाता है, उसे वे बुद्धि द्वारा समझते हैं और दूसरों के लिए सुनाकर ब्रह्म-ब्रह्म कहते रहते हैं, वे आत्मा को अद्वैत बताते हैं, यह बात इसीलिए समझ में नहीं आती।। ८७॥

ये पंडित आत्मा को कुबुद्धि के कारण कर्म बंधन में बँधा मानते हैं, फिर वे ब्रह्म ज्ञान की बात कहकर समझाते हैं। वह जड़ देही (बुद्धि) अज्ञान के बन्धन में बँधी रहती है और उसके बीच अज्ञान की गाँठि बँधी रहती है॥ ८८॥

जब ठाट ठटकर वह आत्मभूति अभिव्यक्त होती है, तो वह उस पिंड को तोड़कर अगम्य ब्रह्म की गति प्राप्त कर लेती है। वह शब्द रूपी सिन्धु की मदद से सुरति रूपी समुद्र पर आ पहुँचती है और आकर तब ब्रह्म का स्थल प्राप्त कर लेती है॥ ८९॥

तुलसी साहब कहते है कि मैं तो अज्ञानी हूँ, इस विषय में कुछ भी नहीं जानता–इस सन्दर्भ का सत्य सार सन्त जन सुनाकर कहते हैं। मैं तो ज्ञान से दुर्बुद्ध हूँ कीचड़ जैसा हूँ, किन्तु संतों का दास होने के कारण भी उनकी सत्संगति से प्राप्त ज्ञान द्वारा समझा कर कहता हूँ॥ ९०॥

॥ चौपाई॥

मानगिरी बूझौ बिधि सारी। संत अंत गति सब से न्यारी॥
गीता ज्ञान ब्रह्म समझावा। अरजुन छले नर्क बिच नावा॥

अर्थ–हे मानगिरि! आप सारी बातें समझें। संतों की अन्त गति सबसे विलक्षण होती है। कृष्ण ने अर्जुन को गीता का ज्ञान बताया किन्तु उन्होंने उनका छल करके नर्क में डाल दिया।

॥ प्रश्न परमहंस – चौपाई॥

सुन कर परमहंस अस बोला। ये बरनन गीता में खोला॥
पुनि अस भेद सबै सब गावा। सास्तर सुध आतम समझावा॥
सब ने सब में ब्रह्म बताई। और वेदांत साखि समझाई॥
या को मरन जिवन कछु नाईं। आवै नहीं नहीं कहुँ जाई॥
सोई सनातन सत्त समाना। आतम आवागवन न जाना॥
ऐसे सास्तर साखि बतावै। सबहि महातम अस अस गावै॥

अर्थ–ऐसी बातों को सुनकर परमहंस इस प्रकार बोले, आपने इन वर्णनों द्वारा गीता के अर्थ को उद्घाटित किया है। फिर ऐसा तो भेद सभी-के-सभी गाया करते हैं। शास्त्र के अन्तर्गत शुद्ध आत्मा को समझाया गया है। सभी ने सभी में ब्रह्म की चर्चा की है और सभी ने वेदान्त का साक्ष्य देकर इसे समझाया है। इसके मरने जीने का कोई प्रश्न नहीं है वह (आत्मा) न कहीं आता है न कहीं जाता है। वही सनातन सत्य के सदृश है और इस आत्मा के आवागमन के विषय में किसी ने नहीं जाना है। वही

सनातन सत्य के समान है और किसी ने भी इसके आवागमन के विषय में नहीं जाना है। ऐसे शास्त्रों की आप साक्षी बताएँ और यह भी बताएँ कि इस इस प्रकार से वे सभी इसके माहात्म्य का गान करते हैं।।

॥ उत्तर तुलसी साहिब॥

॥ दोहा॥

परमहंस अस भाखेउ सब में ब्रह्म समान।
सब सास्तर अस अस कहै और स्रुति कहत पुरान॥

अर्थ–परमहंस ने ऐसा कहा कि इसी में ब्रह्म एक समान है, सभी शास्त्र इस प्रकार की बातें कहते है और श्रुतियाँ तथा पुराण इसी रूप में बनाते हैं॥

॥ चौपाई॥

सास्तर सब में ब्रह्म बखाना। पाँच तत्त जड़ चेतन जाना॥
जीवत पाँच तत्त से छूटै। गगन चढ़ै असमान जो फूटै॥
वहँ से अधर और है धामा। जीवत चढ़ै जाइ वोहि ठामा॥
पाँच तत्त जड़ चेतन छूटै। ऐसे चढ़ै अधर तब टूटै॥
वोही धाम धसि जाइ समाना। अस चढ़ि चलै ब्रह्म जेहि माना॥

अर्थ–शास्त्रों ने सब में ब्रह्म होने का वर्णन किया है और जड़ चेतन के भेद के पांच तत्त्व जाने जाते हैं। इन पांच तत्त्वों के अलग हो जाने पर व्यक्ति शून्य में प्रवेश कर जाता है। उसके नीचे और भी धाम हैं–और उस स्थान पर वह जीवित ही चढ़ जाता है। इस जड़-चेतन दोनों से ये पाँचों तत्त्व छूट जाते हैं और साधना द्वारा इस प्रकार साधक आगे बढ़े तो अधर (आत्मा) भी छूट जाता है। वह साधक उसी धाम में जाकर स्वयं धँस जाता है और इस प्रकार, वह वहाँ चढ़ जाता है, जिसे ब्रह्म माना गया है॥

॥ चौपाई॥

ज्ञान दृष्टि से बूझै कोई। सो नहिं ब्रह्म ब्रह्म गति होई॥
जो तो सास्तर करत बखानी। उनने सब सास्तर की जानी॥
स्वाँस उपर का भेद न जाना। ता की कहा करै परमाना॥
सास्तर में इस लोक बखाना। वे उस लोक का मरम न जाना॥
पढ़ि पढ़ि सुनि सुनि साखी बतावें। ब्रह्म अदेख देख बतलावैं॥
तब तो हमरे मन में आवै। और बात मन नाहिं समावै॥

अर्थ–उसे कोई सन्त ज्ञान दृष्टि से ही उसे कोई समझ सकता है, वह ब्रह्म नहीं होता, उसकी चित्तदशा ब्रह्ममयी हो उठती है। शास्त्र जिस ब्रह्म का वर्णन करता है, वह सभी शास्त्रों को जानता है। ऊपर की श्वास का वह रहस्य नहीं जानता और शास्त्रों में कही हुई बातों को प्रमाण मान लेता है। शास्त्रों में इस लोक का वर्णन किया गया है, वे शास्त्र तो उस लोक का मर्म तक नहीं जानते। साक्ष्यों को वे पढ़-पढ़कर, सुन-सुनकर बतलाते हैं और वह अदर्शनीय ब्रह्म को दर्शनीय बतलाते हैं। तब मूल तथ्य हमारी समझ में आ जाता है किन्तु उनकी चिन्तन भरी बातें हमारी समझ में नहीं आतीं॥

॥ प्रश्न परमहंस – चौपाई॥

परमहंस पंडित से बोले। तुलसी और और बिधि खोले॥
परमहंस मन में सकुचाना। ये तो भेद हमहुँ नहिं जाना॥

पंडित परमहंस भये एका। तुलसी भाखा अगम अलेखा॥
हमरी बुद्धि न पहुंचै ताहीं। ये तो अकथ कथा गति गाई॥
परमहंस कहै ब्रह्म समाना। सुन पंडित ये और बिधाना॥
मन में पंडित करते बिचारा। परमहंस अंतर मन हारा॥
तुलसी स्वामी अगम बखानी। सब पंडित मिलि ऐसा जानी॥

अर्थ–परमहंस मानगिरि पंडित तुलसी साहब से प्रश्न करते हैं और तुलसी अनेक रूपों में उनके रहस्यों का उद्‌घाटन करते हैं। परमहंस मन ही मन सकुचा गए कि ये बातें तो मुझे भी नहीं ज्ञात हैं। सारे पंडित और परमहंस एक हो उठे–तब उनके प्रश्नों को सुनकर तुलसी साहब अनुभव की वाणी बोलने लगे। जहाँ हमारी सब की बुद्धि नहीं पहुँच पा रही है, ये तुलसी साहब उसकी अगम्य कथा कह रहे हैं। परमहंस कह रहे हैं, ब्रह्म सर्वत्र समान है और जो आप (तुलसी साहब) कह रहे हैं, उनका विधान भिन्न है। पंडितगण मन ही-मन विचार कर रहे हैं कि परमहंस का अन्तर्मन परास्त हो चुका है। सभी पंडितों ने मिलकर ऐसा समझा कि तुलसी स्वामी ने अगम्य का वर्णन कर डाला है।

॥ चौपाई ॥

परमहंस पंडित भये दीना। तब हमसे पूछन इक कीन्हा॥
तुलसी स्वामी मन को रहिया। पूछौं ब्रह्म कहाँ से भइया॥
पवन कहौ कहौं से आई। हम को यह बिधि कहौ बुझाई॥
या के परे और कछु भाखा। जा की संध बतावौ साखा॥

अर्थ–इसके बाद, परमहंस पंडित अत्यन्त दुखी हो उठे, तब उन्होंने मुझसे एक अन्य प्रश्न पूछा। हे तुलसी साहब! यदि ब्रह्म मन में रहता है तो मैं पूछता हूँ कि ब्रह्म का उद्‌भव कहाँ से हुआ। यह वायु कहाँ से आई है, हमें यह समझाकर बताओ। क्या इसके अतिरिक्त इसे और भी कुछ कहा गया है, उसकी संधि की शाखा का वर्णन करो।

॥ उत्तर तुलसी साहिब – चौपाई ॥

पंडित परमहंस सुन ज्ञानी। अब या का हम भेद बखानी॥
सत्त पुरुष इक साहिब स्वामी। ता सुत भया निरंजन जानी॥
मन का नाम निरंजन होई। आतम ब्रह्म कहै सब कोई॥
मन से पवन भई उतपानी। तब मन बँधा देह में आनी॥

अर्थ–हे ज्ञानी पंडित परमहंस सुनें, अब मैं आपको इसका रहस्य बताता हूँ। सत्य पुरुष ही अकेला साहब और सबका स्वामी है–उसका पुत्र निरंजन हुआ। मन का ही नाम निरंजन है और इसे आत्म ब्रह्म कहते हैं। इसी मन से वायु की उत्पत्ति हुई और तब यह मन आकर देह में बँध गया॥

॥ प्रश्न पंडित और परमहंस और उत्तर तुलसी साहिब ॥

(१)

स्वामी जी–(१) मन (२) पवन, (३) शब्द, (४) ब्रह्म (५) जीव, (६) सीव कौन हैं?

अर्थ–स्वामी जी–(१) मन (२) पवन, (३) शब्द, (४) ब्रह्म (५) जीव, (६) सीव कौन हैं?

संवाद – मानगिरि सन्यासी के साथ

(१) मन चकोर है, (२) पवन घोर, (३) शब्द अडोल, (४) ब्रह्म निरंजन काल, (५) जीव काल कर्म बंध, (६) सीव कर्ममुक्ता।

अर्थ–(१) मन चकोर है, (२) पवन घोर, (३) शब्द अडोल, (४) ब्रह्म निरंजन काल है, (५) जीव काल कर्म बंध, (६) सीव कर्ममुक्ता है।

(२)

स्वामी जी–(१) मन, (२) पवन, (३) शब्द, (४) ब्रह्म, निरंजन, (५) जीव, (६) सीव, (७) प्रान, (८) हंस, (९) काल, (१०) सुन्न का कहाँ बास है?

अर्थ–स्वामी जी–(१) मन, (२) पवन, (३) शब्द, (४) ब्रह्म, निरंजन, (५) जीव, (६) सीव, (७) प्रान, (८) हंस, (९) काल, (१०) सुन्न का कहाँ निवास है?

॥ उत्तर ॥

(१) मन और, (२) पवन का नभ गगन में बासा है, (३) शब्द का हृदय अधर में, (४) ब्रह्म निरंजन का सुषमना में, (५) जीव का काया में, (६) सीव का मन में, (७) प्रान का निरंतर में, (८) हंस का गगन पार, (९) काल का कलह में, (१०) सुन्न का अनूप में।

अर्थ–(१) तथा (२)–मन और पवन का आकाश में वास है। (३) शब्द का हृदय अधर (अन्तश्चेतना) में है (४) ब्रह्म निरंजन का सुषमना का निवास मन में है। (५) जीव का निवास काया में है। (६) सीव का निवास मन में है। (७) प्राण का निवास निरन्तर में है (८) हंस का निवास शून्याकाश में पार है (९) काल का निवास कलह में है। (१०) शून्य का निवास अनूप में है।

(३)

स्वामी जी–(१) जब गगन नहीं था, तब मन कहाँ रहता था, (२) जब नभ नहीं था तब पवन कहाँ रहता था, (३) जब हृदय नहीं था तब शब्द कहाँ रहता था, (४) जब निरन्तर नहीं था तब प्रान कहाँ रहता था, (५) जब ब्रह्मंड नहीं था तब ब्रह्म कहाँ था, (६) जब गगन नहीं था तब हंस कहाँ रहते थे, (७) जब कलह नहीं था तब काल कहाँ था, (८) जब अनूप था तब सुन्न कहाँ था, (९) जब काया नहीं थी तब जीव कहाँ था, (१०) जब जीव नहीं था तब सीव कहाँ था?

अर्थ–स्वामी जी–(१) जब गगन नहीं था, तब मन कहाँ रहता था, (२) जब नभ नहीं था, तब पवन कहाँ रहता था, (३) जब हृदय नहीं था, तब शब्द कहाँ रहता था, (४) जब निरन्तर नहीं था, तब प्रान कहाँ रहता था, (५) जब ब्रह्मंड नहीं था, तब ब्रह्म कहाँ था, (६) जब गगन नहीं था तब हंस कहाँ रहते थे, (७) जब कलह नहीं था, तब काल कहाँ था, (८) जब अनूप नहीं था, तब सुन्न कहाँ था, (९) जब काया नहीं थी, तब जीव कहाँ था, (१०) जब जीव नहीं था, तब सीव कहाँ था?

॥ उत्तर ॥

तब (१) म . ज्योति सरूप में रहता था, (२) पवन निराकार में, (३) शब्द ओंकार में और ओंकार की उत्पत्ति के पहिले सुन्न में रहता था, (४) प्रान निरंजन में और निरंजन की उत्पत्ति के पहिले अविगत में रहता था, (५) ब्रह्म सत्तनाम में, (६) हंस सहज में, (७) काल सुन्न में, (८) सुन्न संस्कार में, (९) जीव सीव में, (१०) सीव निरंजन में।

अर्थ–तब (१) मन ज्योति सरूप में रहता था, (२) पवन निराकार में, (३) शब्द ओंकार में और ओंकार की उत्पत्ति के पहिले शून्य में रहता था, (४) प्रान निरंजन में और निरंजन की उत्पत्ति के पहिले अविगत में रहता था, (५) ब्रह्म सत्तनाम में, (६) हंस सहज में, (७) काल शून्य में, (८) शून्य संस्कार में, (९) जीव सीव में, (१०) सीव निरंजन में।

(४)

स्वामी जी–(१) निरंजन, (२) मन, (३) सीव, (४) हंस, (५) काल, (६) शब्द, (७) पवन, इनकी उत्पत्ति कहाँ से हुई?

अर्थ–स्वामी जी–(१) निरंजन, (२) मन, (३) सीव, (४) हंस, (५) काल, (६) शब्द, (७) पवन, इनकी उत्पत्ति कहाँ से हुई?

(१) अक्षर से उत्पत्ति निरंजन की हुई, (२) निरंजन से मन की (३) मन से सीव की, (४) सीव से जीव की, (५) हंस और, (६) काल की सत्तनाम से, (७) शब्द की नाम से, और (८) पवन की सुन्न से।

अर्थ–(१) अक्षर से उत्पत्ति निरंजन की हुई, (२) निरंजन से मन की (३) मन से सीव की, (४) सीव से जीव की, (५) हंस और, (६) काल की सत्तनाम से, (७) शब्द की नाम से, और (८) पवन की शून्य से।

(५)

स्वामी जी–ये सब कहाँ कहाँ समाते हैं–(१) मन, (२) पवन (३) शब्द अनाहद, (४) प्रान, (५) ब्रह्म, (६) हंस, (७) जीव, (८) सीव, (९) निरंजन, (१०) जोति?

अर्थ–स्वामी जी–ये सब कहाँ कहाँ समाते हैं–(१) मन, (२) पवन (३) शब्द अनाहद, (४) प्रान, (५) ब्रह्म, (६) हंस, (७) जीव, (८) सीव, (९) निरंजन, (१०) जोति?

॥ उत्तर ॥

स्वामी जी–ये सब कहाँ कहाँ समाते हैं–(१) मन जोति सरूप में समाया, (२) पवन निराकार में, (३) शब्द अनाहद ओंकार में, (४) प्रान अविगत में, (५) ब्रह्म हंस में, (६) हंस सत्तनाम में, (७) जीव सीव में, (८) सीव निरंजन अथवा ब्रह्मांडी मन में,

(९) निरंजन जोति में, (१०) जोति अलख में, अलख अबिनाशी में, अबिनाशी अगम में, अगम सत्तपुरुष में।

अर्थ–(१) मन ज्योति स्वरूप में समाया (२) पवन निराकार में, (३) शब्द अनाहत ओंकार में (४) प्रान अविगत में (५) हंस सतनाम में (६) जीव सींव में, (८) सींव निरंजन अथवा ब्रह्मांडी मन में (९) निरंजन ज्योति में, (१०) ज्योति अलख में–अलख अबिनाशी में, अविनाशी अगम में, अगम सत्र पुरुष में।

सत्तनाम चौथे पद स्थान, आवै न जाय, मरै न जन्मै।

शेष तीन लोक बैराट स्थान ब्रह्म, बैराट, आतमा, भगवान मन, औतार, बेद, ब्रह्मा, बिष्नु, शिव, जक्त उदर में रहे, ब्रह्म नाश, बैराट नाश, आतमा नाश, जोति नाश, निराकार नाश, आकार नाश, ब्रह्मा बिष्नु शिव नाश, ओंकार शब्द नाश, बेद शब्द नाश, अंडा तीन लोक सीव नाश।

अर्थ–सत्तनाम चौथे पद स्थान पर है–वह न आता है, न जाता है। न मारता है, न जन्मता है।

शेष तीन लोक बैराट सृष्टि में स्थान ब्रह्म रूप में, वैराट, आत्मा, भगवान, मन औहार, वेद ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि जगत के उदर में रहें।

ब्रह्मा नाश, वैराट नाश, आत्मा नाश, ज्योति नाश, निराकार नाश, आकार नाश, ब्रह्मा, विष्णु, शिवनाश, निराकार नाश, आकार नाश, ब्रह्मा, विष्णु शिवनाश निराकार नाश, आकार नाश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव नाश, ओकार शब्द नाश, वेद शब्द नाश, ब्रह्मांड का लोक खीव का नाश॥

(६)

स्वामी जी–तीन लोक बैराट नाश होकर कहाँ समाते हैं?

अर्थ–स्वामी जी! तीन लोक की विराट सृष्टि नष्ट होकर कहाँ समाती है?

॥ उत्तर ॥

ब्रह्मा निराकार जोति तीन लोक बैराट नाश होकर सुन्न में समाता है। सुन्न नाश होकर महासुन्न में समाता है। महा सुन्न के परै सत्तलोक है जहाँ सत्त साहिब रहता है, यहाँ प्रलय और महाप्रलय की गम नहीं।

अर्थ–ब्रह्म निराकार ज्योति है। तीन लोक का विराट नाश होकर शून्य में समाता है। शून्य नाश होकर महाशून्य में समाता है। महाशून्य के परे सत्त लोक है, जहाँ 'सत्त साहब' रहते हैं। यहाँ प्रलय तथा महाप्रलय की गम नहीं है।

सम्बाद मानगिरी सन्यासी के साथ

सत्त साहिब की लहर से महासुन्न होता है, महासुन्न से सुन्न, सुन्न से शब्द, शब्द से ब्रह्म, ब्रह्म से ज्योति निराकार, निराकार जोति से मन, मन से जक्त, ब्रह्मा बिष्नु शिव बेद सब उत्पन्न होते हैं।

अर्थ–सत्त साहिब की लहर से महाशून्य होता है, महाशून्य से शून्य, शून्य से शब्द, शब्द से ब्रह्म, ब्रह्म से ज्योति निराकार, निराकार ज्योति से मन, मन से संसार, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वेद सब उत्पन्न होते हैं।

।। प्रश्न परमहंस। चौपाई।।

स्वामी तुलसी पूछौं बाता। औतारी नसि कहाँ समाता।।
तीनि लोक जस नास कहाई। ब्रह्मा नसि कहौ कहाँ समाई।।
सिव बिस्नू और बेद नसाना। ये सब नसि कहो कहाँ समाना।।
पारब्रह्म और जोति नसाना। निराकार नसि कहाँ समाना।।
सुन्न नसी पुनि कहाँ समानी मन। भया नास कहौ कहँ को जानी।।

अर्थ–हे स्वामी तुलसी साहब! मैं आपसे बातें पूछना चाहता हूँ। अवतारी ब्रह्म नष्ट होकर कहाँ समाता है। तीनों लोकों के विनाश की बात कही जाती है–बताइये ब्रह्म नष्ठ होकर कहाँ समाते हैं। शिव, विष्णु और वेद नष्ट होकर, बताओ, कहाँ समाते हैं। पारब्रह्म और ज्योति की नष्ठ हो उठती है–तुन्हीं के साथ निराकार नष्ठ होकर कहाँ समा जाता है। शून्य नष्ट होकर फिर कहाँ समा जाता है और जब मन का विनाश हो उठता है तो बताओ वह कहाँ जाता है।

।। उत्तर तुलसी साहिब।।

दस औतार नास जो भइया। सो ये सब मन माहिं समइया।।
और सब जगन नास जब होई। सो सब मन के माहिं समोई।।
ब्रह्मा बिस्नु और महादेवा। नास भये मन मत के भेवा।।
मन को नास सुनौ पुनि भाई। मन नसि गया निरंजन माईं।।
नास निरंजन ब्रह्म समाना। ब्रह्म जो नसा शब्द में जाना।।
शब्द नास जो सुन्न समाना। सुन्न नास महासुन्न में जाना।।
यहं से उत्पत्ति परलय होई। आगे भेद न जानै कोई।।
वहँ से आवै यहँ लै जावै। आगे भेद न कोई पावै।।
सत्तलोक महासुन्न कहाई। तीनि लोक सब सुन्न में जाई।।
तीनि लोक करता नहिं जावै। वा पद को कोइ संत समावै।।
वो पद है संतन कर सारा। वँह कोइ संत करै दरबारा।।
निराकार जोती नहिं जावै। जम और काल गम्म नहिं पावै।।
दस औतार न पहुँचै भाई। ब्रह्मा बिस्नु की कौन चलाई।।
सत्तलोक सत साहिब साँई। मिलै कोइ संत अंत जब पाई।।
संत दयाल दया जो करई। लख लख भेद जीव निस्तरई।।
संत अगम कोइ बिरले पावा। होइ दीन जब भेद लखावा।।

अर्थ–जब दशों अवतारों का नाश हो उठता है, तो ये सभी मन के बीच समा जाते हैं।। अब जब सारे जगत का नाश हो उठता है, तो वे सब भी मन में समा जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव विनष्ट हो जाने पर ही मन से जुड़ते हैं।

हे भाई! पुनः सुनो, मन के नाश हो जाने पर वह निरंजन में चला जाता है। निरंजन नष्ट होकर ब्रह्म में समा जाता है और ब्रह्म नष्ट होकर शब्द में जाता है। शब्द का नाश होने पर वह शून्य में समाविष्ट हो

उठता है–शून्य यदि विनष्ट होता है तो महाशून्य में समा जाता है। यहीं से सम्पूर्ण सृष्टि के अन्तर्गत उत्पत्ति और प्रलय का क्रम चलता है, आगे का रहस्य कोई नहीं जानता।

सत्तलोक ही महाशून्य कहा जाता है–समस्त तीनों लोक विनष्ट होकर शून्य में विलीन हो जाते हैं। इन सबके होते हुए भी तीनों लोकों का कर्त्ता नहीं नष्ट होता–उनको कोई सन्त अपने में समाविष्ट कर लेता है। वह समस्त स्थान संतों का है और वहाँ वहाँ कोई-न-कोई सन्त हमेशा दरबार करता रहता है।

निराकार ब्रह्म की ज्योति कभी नहीं नष्ट होती। उसका काल और यम दोनों भेद नहीं पा पाते। वहाँ तक दसों अवतार नहीं पहुँच पाते-ब्रह्मा-विष्णु आदि की बातें कौन कहे?

सत्तलोक के स्वामी सत्त साहब हैं, जब उनको सन्त समझ लेता है, तब ऐसा कोई अन्त उनसे मिल पाता है। 'सत्त साहब' दयालु है, दया करते रहते हैं और जीवगण उनके लाखों लाखों भेदों के साथ जीवन निर्वाह करते रहते हैं। सन्त अगम्य है, कोई विरला ही उन्हें प्राप्त करता है–वह तभी प्राप्त करता है जब नितान्त दीन बनकर अपने को उनके सामने रखता है॥

॥ चौपाई ॥

अपना ज्ञान मान मत डारै। नीच होइ सोइ सहज निहारै॥
दीनदयाल नाम उन केरा। दीन होइ जब होय निबेरा॥
मोट ऊँचाई अपनी मानै। अपना ज्ञान ऊँच कर ठानै॥
ता से संत नजर नहिं आवैं। नीचा होइ ताहि दरसावैं॥
संत दयाल बड़े सुखदाई। निमिख एक में देत लखाई॥
नीचा होय होय निरबारा। ज्ञान मान बस फिरै लबारा॥
ज्ञानी गान खानि की रीती। संत कृपा से भौजल जीती॥
संत कृपा जेहि हेतु निहारैं। कोटिन कर्म काटि कै डारैं॥
संतन की गति अगम अपारा। ब्रह्म राम दोउ लखैं न पारा॥
ब्रह्म राम से नाम नियारा। सो घर है संतन कर प्यारा॥
सत्त नाम सतलोक दुहेला। जहँवाँ संत करैं नित केला॥
जा को सतगुरु संत लखावैं। एक पलक में लोक दिखावैं॥
उन की कृपा दृष्टि जब होई। दीन होय पंद पावै सोई॥
परमहंस सुनि कै भय माना। तुलसी तो कछु और बखाना॥

अर्थ–अपने ज्ञान तथा मान का दम्भ उन पर न डाले, जो अत्यन्त दीन होकर उनके प्रति समर्पित होता है, उसको वे सहज ही निहारते रहते हैं। उनका नाम दीन दयालु है–भक्त जब दीन बनेगा तभी उनके द्वारा उसका निराकरण होगा। घमण्डी व्यक्ति अपनी ऊँचाई मानता है और अपने ज्ञान को सर्वोच्च बतलाता है। इसीलिए उसे संतगण दिखाई नहीं पड़ते–जो दीन बनकर रहेगा, वे उसी को अपना स्वरूप दिखाते है। संत दयालु एवं गति आनन्ददाता हैं। उनकी ये विशेषताएँ एक ही क्षण में दिखाई देने लगती हैं। दीन होकर शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त हो उठती है–ज्ञान के घमण्ड में तो लबार घूमते हैं जिन्हें वे दर्शन नहीं देते। ज्ञानी जन गर्व में डूबे यहाँ फँसे रहते हैं किन्तु सन्त जन उनकी कृपा से यह भवसागर पार कर जाते हैं। संत जन कृपापूर्वक जिसे देख ले, उसके करोड़ो कर्म बन्धन काट डालते हैं। सन्तों की गति अगम्य एव अपार है, ब्रह्म एवं राम उसको पूरी तरह से समझ नहीं पाते।

ब्रह्मराम से उनका नाम विलक्षण है–और वहीं नाम का घट सन्तों के लिए प्रिय है। सत्तनाम एवं सत्तलोक दोनों दुर्लभ हैं और वहाँ पर सन्त जन निरन्तर के लिए क्रीड़ा किया करते हैं। सतगुरु संत

जिसको मार्ग दर्शन करते हैं, समझ लें, एक पलक में उसे लोक दिखा देते हैं। जब सतगुरु की कृपा होती है तो, भक्त दीनता भाव से उन्हीं जैसा स्थान और महत्त्व पा जाते हैं।

इसे सुनकर परमहंस भयभीत हो उठे, कि तुलसी साहब ने और विलक्षण चर्चा शुरू कर दी॥

॥ चौपाई ॥

ये तो भेद पार पद न्यारा। ऐसा मन में किया बिचारा॥
तुलसी संत भेद बिधि गाई। संत भेद सब अगम लखाई॥
बिना संत नहि होइ है न्यारा। संत सरन से उतरै पारा॥
परमहंस ये मन में जानी। ये तो अकथ अगाध बखानी॥
ये बेदांत वेद में नाईं। गीता सास्तर भेद न पाई॥
संत मता कछु इनसे न्यारा। सो तुलसी ने कही बिचारा॥
हम अपने मन त्याग बिचारा। ये सब आहि कर्म भौ जारा॥
त्यागै जोइ जोई पुनि पैहै। बार-बार भौसागर अैहै॥
बिन को पीन बस्त्र बिन रहिया। अपने कर भोजन नहिं खइया॥
मुखहिं न बोला मौनि बिचारा। ये सब झूठा फैल पसारा॥
ऐसी बूझ बात मन लावा। तब चरनन पर हाथ चलावा॥
तुलसी पकरि हाथ तेहि लीन्हा। परमहंस पूछै इक चीन्हा॥

अर्थ–मैंने ऐसा मन में समझ लिया कि ये तो उस पर के विलक्षण रहस्य को बता रहे हैं। तुलसी साहब ने संत के रहस्य की विधियां बताई हैं–सन्तों का रहस्य तो सर्वथा अगम्य और अपार होता है। बिना सन्तों के किसी समस्या का कोई निराकरण नहीं हो सकता और सन्तों की ही शरण से पार उतरा जा सकता है। परमहंस ने मन ही मन विचार किया कि इन्होंने (तुलसी साहब ने) तो अकथनीय एवं अगाध का वर्णन किया है। यह ज्ञान, वेद एवं वेदान्त दोनों में नहीं है। गीता तथा शास्त्र दोनों इनके ज्ञान को समझ नहीं सकते। संतमत इन वेद तथा वेदान्त मत से विलक्षण है। स्वामी तुलसी साहब ने उनके विषय में विचारपूर्वक बताया है। हमने अपने मन से यह विचार त्याग किया है कि ये सब कर्म के भौजाल हैं–जिनमें हम संकटझेल रहे हैं। जो-जो त्यागो, उसी को पुनः प्राप्त करोगे–और बार-बार भवसागर में आवेगे। बिना कोपीन वस्त्र के कौन रहना चाहता है–अपने हाथ से बनाया भोजन नहीं ग्रहण करेंगे। मुख से बोलेंगे नहीं, मौनव्रत रहकर तत्त्व चिंतन करेंगे यह सब मिथ्या कर्मफल का फैलाव है।

ऐसी बात समझकर मन में तय किया (तुलसी साहब के महत्त्व को स्वीकार किया) और तब उनके चरणों पर अपना हाथ लगाया। तुलसीदास ने उनका हाथ पकड़ लिया और परमहंस एक पहचान पूछने लगे।

॥ प्रश्न परमहंस – चौपाई ॥

परमहंस पूछत सकुचाया। परमहंस मत कब से आया॥
सो तुलसी मुख भाखि सुनाई। या की आदि अंत बतलाई॥

अर्थ–परमहंस पूछते हुए संकोच कर रहे थे–यह संदेह कब से उनके मन में बैठा था। उसके विषय में तुलसीदास जी ने अपने मुँह से कहकर सुनाया और उसका आदि अन्त भी बतला दिया॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब । चौपाई ॥

मानगिरी सुन बात हमारी। काल रचा बैराट सँवारी॥
पाँच तत्त से पिंड बनाया। पुरुष अंस चेतन जब आया॥
जड़ चेतन दोउ गाँठि बँधानी। सोइ निज ज्ञान जानि मन मानी॥
मौन रहै मुख बोलत नाईं। करि कपड़ा कोपीन बनाई॥
बालक रूप ब्रह्म मन जानै। दुइत भाव और नहिं आनै॥
निराकार ने बेद उपाया। ज्ञान ब्रह्म बिधि भाखि सुनाया॥
मन से ब्रह्म आप को माना। जड़ चेतन की गाँठि न जाना॥
करि करि कर्म रहे भौ खाना। ता को कहौ ब्रह्म कस माना॥
ये मतकाल जाल परचावा। ब्रह्म ज्ञान जड़ गाँठि बँधावा॥
ता से आदि अंत नहिं जाना। बोलै सब में हमीं समाना॥
भौजल कालजाल उरझाया। परमहंस मत यहि बिधि अ.या॥
आदि मते का खोज न पावै। बिना संत कहौ को दरसावै॥
मानगिरी कहै सरना लीजै। आद अरु अंत भेद मोहिं दीजै॥
चरन सरन में राखौ स्वामी। हमरी भूल भेद हम जानी॥

अर्थ–हे मानगिरि! मेरी बातें सुनों, काल ने इस विराट सृष्टि को सँवार कर बनाया है। पाँच तत्त्वों से उसने पिंड की रचना की है और पुरुष के अंश से जब उसमें चैतन्य का प्रवेश हुआ, तब जड़ चेतन की दो गाँठे बँध गई किन्तु कतिपय ज्ञानी जन अपने ही ज्ञान को सर्वोच्च समझकर मनमानी करने लगे। मौन धारण करके तो कुछ बोलते नहीं और कपड़े लेकर कोपीन बना लेते हैं। वे ब्रह्म को बालक रूप समझते हैं और द्वैत भाव से संसक्त और कुछ भी नहीं जानते। निराकर ब्रह्म ने उसके अनुसार वेद उत्पन्न किया और विधिपूर्वक ज्ञान द्वारा ब्रह्म के विषय में बताकर सुनाया। मन-ही-मन स्वयं को ब्रह्म मान रहे हैं और जड़-चेतन की इस गाँठ से अपरिचित हैं। इस प्रकार, इस ब्रह्म का न तो आदि जानते हैं और न अन्त और वे कहते हैं कि सभी में हमी समाए हुए हैं।

यह समस्त संसार काल के जाल में उलझा हुआ है, परमहंस लो यह मत इस प्रकार समझ में आया। आदि मत की खोज कोई नहीं कर पा रहे है। सन्त के पास वे जाते नहीं बिना उनके उस विषय को कौन समझाये।

मानगिरी ने अन्त में कहा कि हे तुलसी साहब, आप हमें शरण में ले लें और इनके आदि अन्त का भेद मुझे बता दीजिए।

हे स्वामी! आप हमें शरण में ले लें, शरण में ले लें–मुझे अपने अज्ञान (भूल) का रहस्य ज्ञात हो गया॥

॥ चौपाई ॥

परमहंस गति दीन बिचारी। दीन्हा उन आपा सब डारी॥
कपड़ा फारि कोपीन बनाई। परमहंस को ले पहिराई॥
सूरति संध पंथ दरसावा। चौथे पद की राह बतावा॥
भेद भाव और ताला कूँची। दीन्ही परमहंस को सूची॥

चरन सीस धरि पंथ सिधारे। बिधी देख पंडित सब हारे॥
परमहंस गति दीन निहारे। तब पंडित मन माहिं बिचारे॥
अपनी गती गती गति धारी। दीन होय मग भवन सिधारी॥
नैंनू स्यामा माना भाई। पंडित तीन रहे ठहराई॥
कुटी राति रह कीन्ह बसेरा। राति रहे दिन भया सबेरा॥
भोर भये तेहि संघ लखाई। तीनों सिरे चरन पर आई॥
भेद भाव बिधि सब दरसाया। सीस टेक कै भवन सिधावा॥
कासी नगर पहुँचे जाई। जह कबीर चौरा नियराई॥
पहुँचे पहर दिवस भयौ भ्याना। गये कबीर चौरा अस्थाना॥
चौरा ऊपर पहुँचे आई। फूलदास महंत गोहराई॥

अर्थ—परमहंस अपनी अत्यन्त दीनता की गति से सम्पूर्ण अपनत्व को उनके प्रति समर्पित कर दिया। तुलसी साहब ने कपड़ा फाड़कर कोपीन बनाया और उसे लेकर परमहंस को पहनाया। सुरति समुद्र का मार्ग उन्हें दिखाया और चतुर्थ सत्त पंथी राह बताई। भेदभाव एवं ताला कुंजी (अपनी सम्पूर्ण ज्ञानात्मक धरोहर) को परमहंस को सौंप दिया। परमहंस ने उनके चरणों पर सिर रखकर अपना रास्ता पकड़ लिया और इस गतिकी दीनता को देखकर पंडितों ने मन-ही-मन यह विचार किया इन्होंने अपनी मूल गति प्राप्त कर ली और अत्यन्त दीन बनकर अपने घर के रास्ते पर चल पड़ें।

नैंनू स्याम तथा माना—ये तीनों पंडित ठहरे हुए थे। उनकी कुटी में रात्रि में रहकर निवास किया थोड़ी रात शेष रह गई, सबेरा हो उठा, और प्रातः होते ही उन्हें भी सुरति सिन्धु दिखाया और वे तीनों आकर उनके चरणों पर गिर पड़े। सम्पूर्ण भेदभाव वे भूल गए और वे शीश नवाकर घर के लिए चले।

काशी नगर वे जाकर वे कबीर चौरा के समीप पहुँचे। उनके पहुँचने पर एक प्रहर बीत गया और सबेरा शुरू हो गया और वे कबीर चौरा के स्थान पर गए। उस कबीर चौरे के पास पहुँचकर महंत फूलदास को पुकारा॥

सम्वाद फूलदास कबीर पंथी में साथ

फूलदास पंडित से बोलेउ। तुलसी बचन बिधी बिधि खोलेउ॥

अर्थ—फूलदास ने पंडितों से कहा कि तुलसी साहब ने विधिपूर्वक ही रहस्यों को स्पष्ट किया है।

॥ फूलदास उवाच। चौपाई॥

माना महंत से कहै बुझाई। फूलदास सुनियो चित लाई॥
तुलसी गत मत कहौं बिचारी। उन सब मता नहीं संसारी॥
साध संत मत भये अनेका। तुलसी सम हम एक न देखा॥
मत तुम्हरा हमहूँ पुनि जाना। तुलसी मता अगाध बखाना॥
सुनि महंत तन समकं समानी। को कबीर सम करत बखानी॥
खुद कबीर अविगति से आया। पुरइन पाता वो भया अकाया॥
सत्त पुरुष की आयस लाये। जग में जीव नेग मुक्ताये॥
उन सम मता न जानो भाई। होइहै यह कोई साध गुसाँई॥

हम पूछैं सोइ भेद बतावै। फूलदास के मन जब आवै॥
जो कबीर मुख अपने भाखा। सो बिधि देखौं अपनी आँखा॥
सत्त लोक की करै बखाना। पूरा साध ताहि हम जाना॥
सत्त सत्त जो सत्त कबीरा। उन भाखा अदबुंद मत हीरा॥
आदि अंत उन भाखि सुनावा। सो तुलसी पैं कहँ से आवा॥
तुम पंडित जानौ नहिं भाई। तुम को ज्ञान दीन्ह समझाई॥

अर्थ–माना पंडित ने फूलदास महंत को समझाकर बताया कि फूलदास, आप मन लगाकर हमारी बातें सुनें। मैं तुलसी के ज्ञान और मत को मैं विचार कर कहता हूँ, उनके समान इस संसार में कोई ज्ञानी नहीं है। आपके मत को हमने समझ लिया है किन्तु तुलसी साहब का मत अगाध है। इसे सुनकर महन्त फूलदास के अन्तर्गत आवेश उत्पन्न हुआ–ऐसा कौन साधु है, जो कबीर की भाँति वर्णन करता हो।।

कबीरदास जी निर्गुण ब्रह्म से उत्पन्न हुए थे। कमलिनी के पत्ते की भाँति वे आकाश से प्रगट हुए थे। उन्होंने उस सत्त पुरुष की मुक्ति दी॥ कबीर की भाँति वाले सन्त उन्हें न समझें, हे भाई, ये कोई साधु, गोस्वामी होंगे। मैं आप लोगों से ऐसे साधु के विषय में पूछता हूँ, जो फूलदास के मन में आए। जो सतलोक का वर्णन करता है उसे मैं सम्पूर्णत: ज्ञानी साधु मानता हूँ। जो सत्य है, जो सत्य है,वही सत्य कबीर हैं। उन्होंने हीरे जैसे निर्मल अद्‌भुत मत को बताया है। आदि से अन्त तक उन्होंने कहकर सुनाया–उसे तुलसी जैसा साधु बताकर सुना सकता है। आप लोग पंडित एवं ब्राह्मण है, आपको उसकी समझ नहीं है–उसने आपको ज्ञान समझा दिया।

॥ चौपाई॥

हमरे सनमुख बात न आवे। एक सब्द में देंह पुजावै॥
अब हम उनको देखब जाई। केहि बिधि ज्ञान कहै समझाई॥
पंडित कहै भोर तुम जइये। हम अपने घर से पुनि अइये॥
पंडित उठि मारग को लीन्हा। घर को गवन आपने कीन्हा॥
पुनि घर पहुँचे अपने आई। करी जुगति तुलसी जो बताई॥
निसि दिन सुरति निसाना लावै। निरखि परै तुलसी पै आवै॥
फूलदास भोरहि चलि आई। पूछत कुटिया तुलसी गोसाँई॥
पूछत पूछत हिरदे पाई। उन पुनि कुटी दीन्ह बतलाई॥
हम पुन जानि साध कोई आवा। आदर भाव करन मन लावा॥
जब सुखपाल पास नियरानी। तुलसी गति मति दीन बखानी॥
लारै भीर भार बहु भारी। चौंर ढुरै सुखपाल सवारी॥
जब निज चालि कुटी पर आवा। उठे चरन पर सीस चढ़ावा॥
आदर भाव चरन लिये दोनो। साल प्याल को कियो बिछौनो॥
आदर भाव दीन गति गाई। मैं मति नीच साध सरनाई॥
बड़े भाग साधू के सरना। कुटी पुनीत भई तुम चरना॥
स्वामी गवन कहाँ से कीन्हा। भाखौ नाम कहौ अस चीन्हा॥

अर्थ–हमारे सामने जब तक बात नहीं आती (तब तक मैं नहीं मान सकता) क्योंकि कतिपय साधु एक शब्द कहकर अपनी पूजा करवाते हैं। अब मैं अब उनको जाकर स्वयं देखूँगा, वे किस प्रकार ज्ञान को समझाकर कहते हैं॥ पंडितों ने कहा, कल प्रातः आप जाइये। हम तो अपने घर से आए हैं। पंडितों ने उठकर मार्ग पकड़ा और अपने घरके लिए प्रस्थान किया। वे फिर अपने घर आ पहुँचे और तुलसी साहब ने जो साधना बताई थी, उसकी युक्ति की। प्रतिदिन सुरति को निशाने पर लाते हैं और जब वह उन्हें दिखाई पड़ जाता था, तो तुलसी साहब के पास जाते थे।

गोस्वामी तुलसी साहब की कुटिया को पूछते-पूछते फूलदास प्रातः आ गए। हमने समझा कि कोई साधु आया है, और उनके प्रति आदर भाव करने की आकांक्षा व्यक्त की। उसके बाद उनके शिष्य सुखपाल पास आए और उन्होंने तुलसी की गति-यति का वर्णन किया। उनके साथ साथियों की बड़ी भीड़-भाड़ थी–और जो सवारी उस पर बैठी थी। सुखपाल उनका चँवर हुला रहा था। उसके बाद, अपनी चाल (पैदल) कुटी पर आए और फूलदास के आते हुए चरणों पर शीश झुकाया। अत्यन्त आदर भाव से उनके दोनों चरणों का स्पर्श किया और शाल का बिछौना बनाया। अत्यन्त आदरभाव से तुलसी साहब ने अपनी दीनता को व्यक्त किया और कहा कि मैं तो अत्यन्त छोटा हूँ तथा निरन्तर साधु की शरणागति में रहता हूँ। बड़े भाग्य से साधु की शरणागति प्राप्त होती है और आपके चरणों से आज यह कुटी पवित्र हो गई। हे स्वामी! आपने कहाँ से पदार्पण किया है, आप अपना नाम कहें ताकि आपकी पहचान हो सके॥

॥ प्रश्न फूलदास॥ चौपाई॥

फूलदास तब बचन बखाना। सत्त कबीर पंथ अस जाना॥
फूलदास महंत अस नामा। कासी कबीरचौरा अस्थाना॥
महिमा सुनि पुनि हमहूँ आये। दरस कीन्ह सुख मन उपजाये॥
फूलदास तब बचन उचारा। गुरू पंथ बिधि कहौ बिचारा॥
को है गुरू पंथ को कहिये। कौन मते के साध कहइये॥

अर्थ–इसे सुनकर तब फूलदास ने कहा आप सन्त कबीर पंथ के विषय में जानते होंगे। मेरा नाम फूलदास है और उस पंथ का महन्थ हूँ। मेरा स्थान काशी में कबीर चौरा में है। आपकी महिमा सुनकर मैं भी आया हूँ। मैंने आपका दर्शन करके मन में सुख उत्पन्न हुआ। फूलदास ने उसके बाद पुनः पूछा कि अपने पंथ के विषय में आप बतलायें। आपके पंथ के गुरु कौन हैं, इसे आप बताएँ तथा आप किस मत के साधु कहलाते हैं।

॥ उत्तर तुलसी साहिब॥ चौपाई॥

संत गुरू और पंथ न जाना। येही संत पंथ हित माना॥
दूजा इष्ट न जानौं कोई। संत सरनि नित सुरति समोई॥

अर्थ–संत, गुरु एवं अन्य किसी पंथ को मैं नहीं जानता और इसी सन्त पथ को मैं अपना हितैषी मानता हूँ। मैं किसी दूसरे इष्ट को नहीं जानता। सन्तों की शरणागति के बीच मेरी सुरति समाई रहती है।

संन गुरू बिन पंथ न होई। अपना गुरुमत भाखौ सोई॥
सतगुरु बिना ज्ञान नहिं आवै। सतगुरु बिना भेद नहिं पावै॥

अर्थ–बिना सन्त गुरु के बिना कोई धर्म मान नहीं होता, मैंने अपना गुरुमत आपको बता दिया है। बिना सतगुरु के ज्ञान नहीं आता और सतगुरु के बिना कोई रहस्य समझ में नहीं आता।

॥ प्रश्न तुलसी साहिब। चौपाई॥

कहौ कैसे गुरु भेद लखावै। कौन राह से पंथ बतावै॥
ता की बिधी कहौ तुम साखी। सो किरपाल दया करि भाखो॥

अर्थ–आप यह बताइये कि गुरु रहस्य को कैसे दिखाते हैं, और किस राह पर चलकर धर्मपंथ दिखलाते हैं। इस विधि का कोई साक्ष्य दें। हे कृपालु फूलदास? इसे कृपा पूर्वक बताये॥

॥ चौपाई॥

हम आजन कछु मरम न जाना। तुम हौ साधू परम निधाना॥
तुम को कस सतगुरु दरसावा। भाखि भेद सोइ मोहि सुनावा॥
मैं अति दीन दया कर कीजै। दोउ दयाल भेद पुनि दीजै॥

अर्थ–हम इस विषय में अज्ञानी हैं, कोई रहस्य नहीं जानते-आप तो ज्ञान के परम भंडार से युक्त साधु हैं। आपको यह सब ज्ञान गुरु ने कैसे दिखाया–उनके बेदों का वर्णन करके मुझे आप सुनायें। मैं अत्यन्त दीन हूँ, इसे सुनाकर आप मुझपर कृपा करें। मुझ पर कृपालु होकर यह रहस्य मुझे बतलायें।

॥ उत्तर फूलदास॥ चौपाई॥

तुलसीदास सुनौ चित लाई। पंथ भेद मैं कहौं सुनाई॥
सत्तपुरुष रहै पुहप मँझारा। संपुट कँवल खुले तेहि बारा॥
सत्तपुरुष तेहि बचन उचारा। ज्ञानी बेगि जाउ संसारा॥
काल देत जीवन को त्रासा। संत कबीर काटौ जम फाँसा॥
पिरथम चले जीव के काजा। सतजुग चलै पास धर्मराजा॥
धर्म देखि अस बोले बानी। जोगजीत कित कीन्ह पयानी॥
तब कबीर अस कही पुकारी। जीव काज मैं जगत सिधारी॥
सत्त पुरुष अस कहा बुझाई। जग में जाइ जीव मुकताई॥
धर्मराइ अस बचन सुनाई। तुम भौसिंधु बिगारन चाही॥

अर्थ–हे तुलसीदास! चित्त लगाकर सुनें–मैं अपना पंथ भेद आपको सुनाता हूँ। सत्पुरुष पुष्प के मध्य रहता है और उस पुष्प का संपुट कभी-कभी समय खुलता है। सतपुरुष संपुट खुलने के समय यह कहता है कि हे ज्ञानी पुरुष! जल्दी संसार में जाओ। काल जीवन को निरन्तर संकट देता रहता हूँ–हे सत्य कबीर? आप संसार में जाकर यम के इस फंदे को काटो। संसार के जीवों के कल्याण के लिए वे (कबीरदास) इस संसार में आए और सत्युग धर्मराज के पास चले। धर्मराज उनको देखकर इस प्रकार बोले–कि हे योगजीत धर्मराज आपने कहाँ प्रस्थान किया है। तब कबीरदास ने यह पुकार कर बताया कि जीवों के हित के लिए मैं संसार में जा रहा हूँ। सत्तपुरुष ने मुझे यह समझाकर कहा है कि संसार में जाकर जीवों की मुक्ति का प्रयास करो॥ उनकी बात सुनकर धर्मराज ने यह कहा कि तुम जाकर इस भवसागर को बिगाड़ना चाहते हो॥

॥ चौपाई॥

तब कबीर बोले अस बाता। तुम्हरी करहुँ प्रान की घाता॥
पुरुष बचन अब देहौ टारी। तौ हम तुम को देहिं निकारी॥

मन में सोचि धरम सकुचाना। तब कबीरजग कीन्ह पयाना॥
सतजुग नाम मुनिंद्र धरावा। चौका करि जिव लोक पठावा॥
चौका करि परवाना पावै। छूटै जीव मुक्ति को जावै॥
और त्रेता जुग कीन्हा चौका। जीव मिले बहु किये बिसोका॥
द्वापर जुग की कहौं बखानी। धुधल सुपच खेवसरी जानी॥
मुक्ति लोक जिव किये पयाना। अस अस जीव मुक्ति को जाना॥
चौका करि परवाना पावा। नरियर मोड़ि तिनुका तुरवावा॥
कलजुग नाम कबीर कहाये। पुरइनि सेत पान पर आये॥
कासी नगर कीन्ह कर काया। नूरा नीमा के घर आया॥
बालक जानि चीन्ह नहिं पाये। कई दिवस अस बीति सिराये॥
एक दिवस धर्मदास चितावा। चौका करि परवाना पावा॥

अर्थ–तब कबीर साहब ने इस प्रकार की बात कही कि मैं तुम्हारे प्राणों पर आघात् करूँगा अर्थात् यमराज से सबको मुक्त करूँगा। उस पुरुष परमात्मा के वचन को असत्य करके और मैं आपको इस भवसागर से निकाल दूँगा। इसको सुनकर तथा मन से इस सोचकर धर्मराज संकुचित हुए और फिर कबीरदास ने इस संसारके लिए प्रस्थान किया। सतयुग ने उनका नामकरण मुनीन्द्र के रूप में किया। कबीरदास जी ने चौका कर्म के द्वारा जीवों को सत्यलोक पहुँचाना शुरु किया। चौका करने के बाद जीव को प्रमाण मिल जाता था और इस संसार से मुक्त होकर जीव मुक्ति लोक में प्रस्थान करता था। उन्होंने उस त्रेता युग में भी चौका कर्म किया और अनेक जीवों को उन्होंने भवसागर के शोक से मुक्त किया?

मैं अब द्वापर युग की कथा कहता हूँ–जीव ने मुक्ति लोक के लिए प्रस्थान किया और सामान्य जीवों ने भी मुक्ति को समझा। चौका करने के बाद उन्हें मुक्ति का परवाना मिला और नारियल मोड़करके उसके तिनके को जीवों से तुड़वाया।

कलियुग में वे ही सन्त कबीरदास हुए और वे कमलिनी के श्वेत पत्र पर अवतरित हुए। उन्होंने काशी नगर में अपनी काया प्रगट की और फिर नूरा-नीमा के घर आए। वे कबीर को बालक जानकर पहचान नहीं पाये और इसी प्रकार कई दिन बीत गये। एक दिन उन्हें धर्मदास नामक शिष्य ने देखा और चौका करके उन्होंने सनद प्राप्त कर ली॥

॥ प्रश्न तुलसी साहिब । चौपाई॥

भर्म एक मोरे उपजाई। चौका बिधी कहौ समझाई॥
चौका कीन्ह दीन्ह परवाना। सो बिधि मो से कहौ बखाना॥
धर्मदास जस चौका कीन्हा। जब कबीर वा को कहि दीन्हा॥
सो बिधि मो को बरनि सुनावौ। दया भाव यह त्रिधि दरसावौ॥

अर्थ–हे फूलदास! एक भ्रम मेरे मन में उत्पन्न हो रहा है, यह चौका विधि क्या है। समझाकर बतायें। किस प्रकार, चौका करके परवाना दिया, यह विधि मुझे बतायें। धर्मदास ने जिस प्रकार चौका दिया और जिस प्रकार कबीरदास ने उन्हें ज्ञान दिया। वह सभी विधियाँ मुझे बतलाकर सुनावें। इस प्रकार, मेरे प्रति आप अपनी दया दिखाएँ॥

॥ उत्तर फूलदास। चौपाई ॥

तुलसीदास सुनौ तुम काना। चौके का मैं कहौं बिधाना ॥

अर्थ–तुलसी साहब! आप कान से सुनें, मैं चौके का वर्णन कर रहा हूँ॥

॥ छन्द ॥

निज भाव आरति सुनौ खेवसरि, तोहि कहौं समझाई कै ॥ १ ॥
मिष्ठान पान कपूर केरा, अष्ट मेवा लाइ कै ॥ २ ॥
पाँच वासन सेत बस्तर, कदली पत्र अछेदना ॥ ३ ॥
नारियर और पुहप सेतहि, सेत चौका चंदना ॥ ४ ॥

अर्थ–आत्मभाव से हे, महात्मा तुलसी साहब, मुक्ति की आरती के बारे में सुनें मैं इसे आपके प्रति समझाकर बताता हूँ। मिष्ठान, पान, कपूर, केला तथा आठों प्रकार के मेवा ले आकर, पाँच बर्तन, श्वेत वस्त्र और बिना छिद्र के केले का पत्ता, नारियल और श्वेत पुष्प और श्वेत चौका-चन्दन॥

॥ सोरठा ॥

और आरति अनुमान, सब बिधि आनौ साज तुम ॥
पुंगीफल परमान, सब्द अंग चौका करौ ॥

अर्थ–इस प्रकार आरती का अनुमान करके इन्हें हर तरह से सजा दें। प्रमाण के रूप में सुपारी रखकर शब्द अंग का चौका करें॥

॥ चौपाई ॥

और वस्तु आनौ सुठि पावन। गऊ घिर्त और सेत सुहावन॥
ऐसे सिष्य सिखापन मानै। ततखन सब बिस्तार जो आनै॥
सेत चदरवा दीन्हेउ तानी। आरति कीन्ह जुगति बिधि ठानी॥
चौका पर बैठक जब लयऊ। भजन अखण्ड सब्द धुनि भयऊ॥
पाँच सब्द का दल जब फेग। पुरुष नाम लीन्हौ तेहि बेरा॥
नरियर मोड़त बास उड़ाई। सत्त पुरुष को जाइ जनाई॥
छिन में पुरुष परस पद आये। सकल सभा उठि आरति लाये॥
पुनि आरति बिधि दीन्ह मड़ाई। तिनुका तोरे जल अचवाई॥
सोइ सिष हाथ दीन्हा जब पाना। पावै पान सोइ लोक पयाना॥
सब्द अंग दीन्हो समझाई। सिष्य बूझि कै सुरति लगाई॥
पहुँचै लोक अगम के द्वारा। चौका बिधी कबीर पुकारा॥
येहि बिधि जीव करै जो चौका। जा का मिटि गया संसय सोका॥

अर्थ–अन्य पवित्र और सुन्दर वस्तुओं के ले आएँ। श्वेत वर्ण की सुन्दर गाय का धृत ले आएँ। ऐसे शिष्यों को बुलाएँ जो गुरु के प्रति आज्ञानिष्ठ हों और तत्क्षण आरती का समस्त विस्तार करा दें। शीघ्र ही श्वेत चद्दर को तान दे और मुक्ति एवं विधिपूर्वक आरती करे। जब चौका पर वह बैठे फिर एकाएक भजन की अखण्ड ध्वनि प्रारम्भ हो जाए।

पाँच शब्दों का वह जब दल फेरे, उस समय पुरुष का नाम ले। नारियल के फोड़ते ही उसमें से सुगंध निकल पड़े और वह जाकर इसकी प्रतीति सत्यपुरुष को करा दे। वह एक क्षण मात्र में पुरुष (ब्रह्म) के चरणों का स्पर्श प्राप्त करेगा। फिर वह उठकर समस्त सभा की आरती करें। फिर, आरती की विधि से उसका आवाह्न करे और तिनका तोड़कर उसे जल से आचमन कराए। वही शिष्य जब हाथ से पान अर्पित करेगा, और आराध्य के पान प्राप्त करते ही वह सत् लोक में प्रस्थान करेगा।

मैंने शब्द अंग के विषय में बता दिया और शिष्य समझकर सुरति में ध्यान लगवा दिया है। इस प्रकार लोग अगम्य के द्वार पर पहुँचने लगे और इस विधि को कबीर साहब ने चौका विधि का नाम से पुकारा है। इस प्रकार जो प्राणी चौका करेगा उसके सारे संशय तथा शोक मिट जाएँगे।

॥ तुलसी साहिब। चौपाई॥

तुलसीदास मन में मुसिकानी। मौन रहे कछु कही न बानी॥

अर्थ–तुलसीदास मन ही मन मुसकाये–वे चुप रहे, और कोई बात नहीं नहीं।

॥ प्रश्न फूलदास॥ चौपाई॥

फूलदास बिधि कहै सुनाई। कहौ तुलसी कछु मन में आई॥
कहै तुलसी नहिं बूझ बयाना। फूलदास मन में रिसियाना॥
तुलसी रीस ताहि पहिचानी। दीन होइ जोरे जुग पानी॥
फूलदास अस कहै बिचारी। तुलसी कैसे मौन सम्हारी॥
चौका कबीर भाखि बतलावा। तुम्हारे मन कछु एक न आवा॥
सत्त कबीर जो बिधी बताई। सो हम तुमको भाखि सुनाई॥

अर्थ–फूलदास ने कहा कि मैंने इसे इस प्रकार से समझा दिया है, हे तुलसी साहब बताओं को मेरी बात समझ में आई।

तुलसी साहब ने उत्तर दिया, कि आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आईं, इस पर फूलदास मन ही मन नाराज हुए। तुलसीदास अपने प्रति उन्हें नाराज देखकर उनकी नाराजगी, समझ ली और दीन होकर उन्होंने दोनों हाथ जोड़ लिये।

पुनः फलूदास विचार कर कहते हैं, मौन द्वारा तुलसी ने अपने को कैसे सम्हाल लिया है (और वे बोले) मैंने कबीर के चौका के विषय में कहकर समझाया है, किन्तु आपके मन में कोई बात नहीं आई है। सत्य कबीर ने मुझे जो भी रहस्य बताया था, वह सब कुछ मैंने आपसे कहकर सुना दिया॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब। चौपाई॥

कहि कबीर जो चौका गावै। सो बिधि कहौ तो मन में आवै॥
दास कबीर जो कही बखाना। सो बिधि चौका है परमाना॥
वा का भेद बिधी बिधि गावै। तब तुलसी के मन में आवै॥
उन पुनि चौका कौन बताया। तुम ने कौन बिधी ठहराया॥
नरियर उन पुनि कौन बतावा। मोड़ि तास जो बास उड़ावा॥
तुम बजार से नरियर लावा। ता की बिधि तुम हमैं सुनावा॥
जो कबीर नरियर फरमावा। सो तौ तुम्हरी बूझ न आवा॥
सिलिपिलि दीप से नरियर आवा। ता के पाँच फूल बतलाये॥

बोही दीप जलखंडी राजा। ता से आना नरियर साजा॥
सो नरियर का भेद बतावै। तब तुलसी के मन में आवै॥
नरियर बास उड़ावत जानौ। ता की बिधि तन भीतर मानौ॥
जो जो मुख से संतन भाखा। सो काया के भीतर राखा॥
पिंड ब्रह्मंड दोऊ हैं एका। होइहै नरियर पिंड बिबेका॥
ता की बिधी भेद दरसावौ। सो बिधि हम को भाखि सुनावौ॥

अर्थ–कबीरदास जी ने जिस चौका का गान किया है, उसे उसी विधि से कहें तो बात समझ में आती है। दास कबीर ने वर्णित करके कहा है, वही विधि ही चौका का प्रमाण है, अन्य नहीं। उसके रहस्य को आप उसी चौका विधि से बताएँ, तभी तुलसी की समझ में आ सकता है, अन्यथा नहीं। उन्होंने किस चौके को बनाया था और उसे आपने उसे दूसरी विधि से निस्तारित किया है।

उन्होंने नारियल का क्या अर्थ बताया है, और उसको फोड़कर उसके किस सुगंध के उड़ाने की बात कही है। आप बाजार से जो नारियल लाते हैं और उसकी विधि का वर्णन हमसे कर रहे हैं। यदि कबीर साहब ने नारियल की बात कही है, तो वह बात तुम्हारी समझ में नहीं आई है। यह ब्रह्मा (सिलपिली – आदिम शिल्पी) के दीप से नारियल आया था–और उसके पाँच फूल बतलाये गए हैं। उसी द्वीप में जलखंडी नामक राजा है–जिसने इस नारियल को सजवाया। हे फूलदास! आप उस नारियल का भेद बतलाएँ, तब मर्म की बात तुलसी की समझ में आएगी॥

नारियल की उड़ती हुई सुगन्ध की गति को व्यक्ति के शरीर के भीतर की स्थिति समझो। सन्तों ने अपने मुख से जो-जो कहा है, उन्हें, उन्हें शरीर के भीतर ही समझो। पिंड एवं ब्रह्मांड दोनों एक हैं। और इस नारियल से इस शरीर (पिंड)का ज्ञान होगा। उसकी विधि का रहस्य आप मुझे समझाएँ-वह जिसके रूप में (प्रतीक बद्ध करके) कहा गया है, उसे हमें कहकर सुनाएँ।

पान प्रवाना भाखा लेखा। ता का मन में उठै बिसेखा॥
बेचै बरई पान बतावा। सो परवाना मन नहिं आवा॥
अंबू सागर देखौ जाई। नरियर पान की बिधी बताई॥
चौथा हाथ पान बतलावा। सो कबीर अपने मुख गावा॥
चौथा हाथ पान बतलावौं। सो परवाना भाखि सुनावौं॥
वो भी काया में कहुँ होई। संत कृपा से पावै सोई॥
अठ मेवा तुम भाखि सुनावा। छ्वारा दाख बदाम मँगावा॥
ये हमरे मन में नहिं आवै। कही कबीर सो भाखि सुनावै॥
कबीर बिधी अठ मेवा भाखी। पुरुष आठ मेवा कहौ साखी॥
और कपूर उन भाखि सुनावा। तुम दुकान बनिये से लावा॥
वो कपूर काया के माईं। ता की बिधि कोइ संत बताई॥

अर्थ–आपने पान के प्रमाण का विवरण बताया है, उसके लिए मन में विशेष प्रश्न उठ खड़ा होता है। बरई नामक जाति पान बेचती है, ऐसा कहा गया है किन्तु उसका प्रमाण मन में नहीं आ रहा है। 'अंबू सागर' ग्रंथ जाकर देखो, नारियल और पान की विधि बताई गई है। चौथे हाथ को पान कहा गया है, वह कबीर ने स्वयं अपने मुख से बताया है। चौथा हाथ पान है, हे फूलदास, इसका प्रमाण बताएँ। वह भी, कहीं-न-कहीं इसी शरीर में ही है–और कोइ बिरला उसे सन्तों की कृपा से ही समझ पाता है।

आपने आठ मेवा (सूखे फलों) के विषय में कहकर बताया है और इसके लिए छुहारा, किसमिस (मुनक्का) एवं बदाम मँगाने की बात कहते हो। यह बात हमारे मन में नहीं आ रही है। जिसे कबीर ने आठ मेवा कहा है, उसे सुनावें।

कबीर की विधि से आठ मेवा का वर्णन करें और उसी पुरुष (आदि ब्रह्म) में आठ मेवा का साक्ष्य दें। और उन्होंने (कबीर साहब ने) कपूर के विषय में कहकर सुनाया है। और तुम उसे बनिये की दूकान से ला रहे हो। वह कपूर तो काया के मध्य है, उसका रहस्य कोई सन्त ही बतलाता है।

गऊ घिर्त जो भाखि बतावा। सो तुम दही दूध मथि लावा॥
सो कबीर बिधि और बतावा। गो इन्द्री का घिर्त कहावा॥
कदली पत्र कहा उन गाई। काया में सादृष्ट दिखाई॥
कदली पत्र छेदन बतलावा। काटि पेड़ तुम खंभ गड़ावा॥
कदली छेदन कौन बखाना। तुम ता की बिधि नहिं पहिचाना॥
बासन पाँच कबीर बतावा। तुम ताँबा पीतर मँगवावा॥
पाँचौ बासन काया माईं। करता ठठेरे आपु बनाई॥
सो बासन का कहौ बिचारा। तब जिव उतरै भौजल पारा॥
तुम जो बस्तर सेत सुनावा। धोया कपरा आनि मँगावा॥
बस्तर सेत कबीर बखाना। सो बिधि तुमने नहिं पहिचाना॥
संत सरन सेवा चित लइहौ। कोई साध बिरले से पइहौ॥
एुंगीफल उन भाखि सुपारी। ता का मरम न जानि विचारी॥
निकरै पवन सुपारी माहीं। सो फल पुंगी चौका गाई॥
पवन सुपारी सन्तन पासा। दीन होय पावै निज दासा॥
पाँच सब्द चौका उन भाखा। भिनि भिनि भेद बतावौ ता का॥

अर्थ–गाय का घी जो कहकर बताया गया है, उसे तुम दूध या दही मथकर लाये हो। उसके विषय में कबीर ने अन्य विधि का वर्णन किया है। शरीर की इन्द्रियों को ही घृत कहते हैं। उन्होंने गाकर कदलीपत्र की बात कही है, और उसका सादृश्य शरीर में दिखाया है। तुमने छेदहीन कदलीपत्र की बात कही है और तुमने पूरे पेड़ को काटकर कदली स्तम्भ गाड़ दिया। कदली में छिद्र न हो, यह किसने बतलाया है, तुमने उसके रहस्य को नहीं समझा है।

कबीरदास ने पाँच धातुओं के बर्तनों की बात कही है, तुम ताँबे और पीतल द्वारा गढ़े गए बर्तनों की बात करते हो। उस बासन के विषय में विचार करो, तब तुम्हारी आत्मा इस भवजाल के पार उतरेगी।। तुमने जिस श्वेत विस्तरकी बात की है–उसके सन्दर्भ में, धोया कपड़ा मँगा लिया। कबीर ने श्वेत वस्त्र की बात की है, उसके रहस्य का मतलब समझ में नहीं आया।

मन से सन्तों के चरणों की सेवा में लगें, वह रहस्य इसी से प्राप्त होगा। कोई बिरला ही सही साधु व्यक्ति को मिलता है। उन्होंने पुंगीफल सुपारी की चर्चा की है, उसके रहस्य को न समझकर पुनः उस पर विचार नहीं किया। वायु इसी सुपारी के बीच से निकलता है, चौका के अन्तर्गत उसी पुंगीफल पर विचार किया गया। यह वायु की सुपारी सन्तों के पास है–अत्यन्त दीन भाव से सन्तों के पास रहकर वह उसे प्राप्त करता है। चौका के अन्तर्गत उन्होंने पाँच शब्दों का वर्णन किया है–हे फूलदास उनके भिन्न-भिन्न रूपों (रहस्यों) का आप वर्णन करें।

एक सब्द काया के माईं। और चारि का भेद बताई॥
चारि चारि बिधि कौन ठिकाना। न्यारा न्यारा कहौ मकाना॥
न्यारी न्यारी बिधि बतलइया। पाँचौ सब्द कबीर सुनइया॥
चौका कीन्ह सब्द धुनि गाजा। कहौ सब्द केहि ठाम बिराजा॥
और चार की बिधी बतावै। तब तुलसी के मन में आबै॥
सेत चदरवा दीन्ह तनाई। सो कबीर ने कहा बताई॥
कपड़ा तानि चदरवा कीन्हा। कही कबीर सो बिधि नहिं चीन्हा॥
आरति करन साज बतलाई। सूरत रित रति मरम न पाई॥
आवै सुरति सब्द रित माहीं। सो कबीर ने भाखि सुनाई॥
चौका कौन ठिकाने कीन्हा। ता की राह रीति नहिं चीन्हा॥
कही कबीर चौका सोइ साजा। जहँवाँ सब्द अखंडित गाजा॥
चौका माहिं सब्द तुम गाई। स्वाँस थकै खंडित होइ जाई॥
आठ पहर चौंसठ घड़ि गाजा। या बिधि सब्द अखंडित साजा॥

अर्थ–एक शब्द इस शरीर में कहा गया है, और अन्य चारों का आप रहस्य बतायें। इन चार शब्दों का कौन निवास स्थल हैं–और उनके पृथक्-पृथक् भवनों का वर्णन करें। जिस प्रकार, कबीरदास जी ने पृथक्-पृथक् उनके रहस्यों का वर्णन किया है, उसी प्रकार आप भी बतलायें। चौका पर शब्द हुआ, ध्वनि की गूँज फैल गई, बताओ यह शब्द किस स्थान पर हुआ। शेष अन्यों चारों का रहस्य बतलायें तब तुलसी के मन में आपकी बातों के प्रति विश्वास होगा।

श्वेत चादर तनवा दिया, आप यह बतायें कि इसे कबीरदास जी ने कहाँ बतलाया है। कपड़े को तान करके चादर बना दी–जो कबीर दास ने रहस्य बताया है, उसे आपने नहीं समझा। आरती करते हुए आपने आरती सज्जा की बात कही है किन्तु आकृति (सूरति) मंत्र (रित-ऋत), संसक्ति (रति), का रहस्य नहीं समझ सके। मंत्र शब्द के भीतर ही सुरतिध्यान की वृत्ति आती है–ऐसा कबीरदास जी ने कहकर सुनाया है। इस चौथे को किस स्थान पर समर्पित किया–न उसके मार्ग के विषय में बताया न उसकी पद्धति के विषय में। कबीरदास जी कहते हैं कि चौके को हमने वहीं सजाया है–जहाँ अखंडित शब्द ध्वनित हो रहा था। चौके के शब्द की तुम बात कहते हो, किन्तु (इसे समझ लो) कि शब्दोच्चारण के काल में जब श्वास रुक जाती है तो वह शब्द खंडित हो उठता है। आठों प्रहरों तथा चौबीसों घड़ियों तक जो निरन्तर अनुरंजित होता रहता है, इस शब्द ध्वनि के ध्वनन रहस्य को अखंडित गुंजन कहते हैं॥

ता चौके का करौ बयाना। सो कबीर मुख आप बखाना॥
कहो कबीर सोई बिधि हैरै। पाँच सब्द के दल को फेरै॥
सो दल सब्द कौन केहि ठामा। या की बिधि भिनि भाखि बखाना॥
कौन ठिकान पाँच दल फेरा। पुरुष नाम केहि ठीके हेरा॥
नरियर मोड़त बास उड़ाई। सो नरियर मोड़ा केहि ठाईं॥
नरियर बनिये हाट मँगावा। सो नरियर मन में नहिं आवा॥
नरियर मोड़त बास उड़ानी। सो कहौ बातैं ठीक ठिकानी॥

नरियर मोड़त बास उड़ाई। तुरत पुरुष के दरसन पाई॥
सो ततवर कहौ पुरुष दिखाना। सो ठौके का करौ बयाना॥
नरियर ऐसे कबीर बतावै। मोड़त छिन पद पुरुष दिखावै॥
तुम तो नरियर मोड़े अनेका। उमर गई पुनि पुरुष न देखा॥
चौका करि परवाना लीन्हा। तन बीता पुनि पुरुष न चीन्हा॥
मिलन कबीर आज बतलावा। पूछै कोइ नहिं भेद बतावा॥
कहा कबीर जीवत कर लेखा। तन बीता सुपने नहिं देखा॥

अर्थ–उस चौके का वर्णन करो जिसे कबीर दास जी ने अपने मुख से बताया है। जिस विधि से कबीर ने यह बात कही है, उसी विधि से ही इसे निर्दिष्ट करें। और उन्हीं के कथानुसार पाँच शब्द को पुन: उसी दलों में लौटाएँ। उस दल के लिए कौन-सा शब्द कहा गया है और उसका स्थान क्या है, बतायें यही नहीं, इनकी भिन्न-भिन्न विधियों का वर्णन करें। इन पाँच दलों के कौन-से स्थान हैं, इनमें से 'पुरुष' नाम किसका है, और उन्हें किस स्थान पर खोजा जाएँ।

नारियल मोड़ते ही उसकी गंध उड़ चलती है, उस नारियल को किस स्थान पर मोड़ा है। वह नारियल जो बाजार में बनिये के यहाँ से मँगाया गया है, वह नारियल तो मन में आया ही नहीं था। नारियल के मोड़ते ही गंध उड़ चली, बताइये कि क्या यह बातें ठीक-ठाक हैं। नारियल के मोड़ते ही गंध उड़ चली और तुरन्त पुरुष (परमात्मा) के दर्शन हो गए–तो उस श्रेष्ठ पुरुष का ठौर ठिकाना बताओ। ऐसे नारियल के विषय में कबीर बताते हैं, जिसके मोड़ते ही एक क्षण में पुरुष (परमात्मा) के दर्शन हो उठता है।

तुलसी तो अनेक नारियल फोड़े होगे, सारी उमर बीत गई किसी पुरुष को न देखा होगा। साधक और परमात्मा का मिलन तो कबीरदास बतलाते हैं किन्तु पूछने पर उसका रहस्य कोई नहीं बतलाता है।

कबीर दास जी कहते हैं कि शरीर जीवित रहते रहते सब देख लो, अन्यथा शरीर मृत हो जाने पर उसे स्वप्न में भी नहीं देख पाओगे॥

परवाना सत लोक पठावै। जिवत मिलै न मुए कोइ पावै॥
कह कबीर छिन लोकै जाई। सो परवाना भेद न पाई॥
संत कबीर परवाना भाखी। सो तुम्हरी सूझा नहिं आँखी॥
तिनुका तोरि न जल अचवाई। ये बिधि तुमने भेद बताई॥
तिनुका तुरन कबीर न गावा। तिनुका कौन मरम बतलावा॥
सिष के हाथ पान पुनि दीन्हा। कौन पान भाखा उन चीन्हा॥
चौथा हाथ पान बतलावा। तुम बरई की हाट मँगावा॥
पावै पान सो लोक पयाना। ये कबीर ने करी बखाना॥
तुमहूँ पान लिये हैं हाथा। देखा कहौ लोक बिख्याता॥
जोइ जोइ कहौ देखि दृग अपना। हाल मिला कहौ कहौ न सुपना॥
जाना बिधि-बिधि पाइ न होई। पाये कहैं कबीर बिलोई।।
सब्दै अंग कबीर बुझाई। सिष्य बूझि के सुरति लगाई॥
पहुँचे सिष्य अगम के द्वारा। चौका सुरति कबीर पुकारा॥

निरत कबीर द्वार दृग भाखा। सूरति सब्द मिलै सिख साखा॥
सूरति सब्द मिलै चढ़ि चाँपा। घर लिपाय चौका तुम थापा॥
नौतम चौका द्वार लिपाई। ये कबीर चौका नहिं गाई॥

अर्थ–उसके प्रमाण को किसी दूसरे लोक में मत भेजो–वह न जीते-जी मिलता है और न उसे कोई मृत स्थिति में प्राप्त करता है। कबीरदास जी कहते हैं कि मनुष्य एकक्षण में मृत्यु पाकर परलोक में चला जाता है, इसलिए वह इस परवाना का रहस्य नहीं प्राप्त कर पाता। संत कबीर ने परवान के विषय में बताया है, वह तुम्हारी आँखों में (बुद्धि में) सूमा नहीं। एक तृण तोड़कर जल में आचमन कराते हैं इस तिनके का रहस्य कौन बतलाता है। शिष्य के हाथ में उन्होंने पान दिया। वह कैसा पान था, उसके विषय में वही कहता है, जो उसे पहचानता है। चौथे हाथ को पान कहा गया है और उसे तुम बरई की बाजार से मँगाते हो। जो पान प्राप्त करता है, वह लोक से प्रस्थान कर देता है, ऐसा कबीरदास ने वर्णन किया है। तुमने भी अपने हाथ में पान लिया था–क्या उससे तुमने कभी इस लोक विख्यात को देखा था। जिससे–जिससे भी कहता हूँ कि उसे अपनी आँखों से देखा है–यह समाचार मिला कि यह बात स्वप्न जैसी है। उसे शायद कोई जानता हो, उसके रहस्य को कोई नहीं जानता–कबीर दास जी कहते कि उसे प्राप्त करते ही लोग उसी में विलीन हो उठते हैं। शब्द ही उसके अंग प्रत्यंग हैं और उसके शिष्य इसे समझ कर सुरति में विलीन हो उठते हैं। उनके शिष्य इस प्रकार उस अगम्य ब्रह्म के द्वार पर पहुँचते हैं। उसी को कबीर ने सुरति का चौका कहकर पुकारा है। इस सुरति द्वार पर कबीर ने निरति ज्ञान के विषय में कहा है–और इसी के साथ-ही-साथ सुरति शब्द मिल जाता है। सुरति शब्द मिलते ही आत्मचेतना उस पर चढ़ जाती है और–उसी को तुमने घर लिपवाकर चौका का रूप दे दिया। तुमने नवीन (नौतम) चौका का द्वार लिपवा दिया, इस चौका के विषय में कबीर ने भी नहीं बताया है।

चौका नौतम भेद बतावौ। तब कबीर का गाना गावौ॥
जो कबीर बिधि भाखा चौका। सो मेटै जिव संसय सोका॥
देखो तुम अपने मन माहीं। संसय सोक अनेक बताई॥
चौका करै सोक नहिं आवै। ये तौ सोक अनेक सतावै॥
चौका कहौ कौन है भाई। ता से संसय सोक नसाई॥
करि करि चौका लोक सुनावै। छिन छिन संसय सोक मिटावै॥
ये चौका परतीत दृढ़ाया। सो तुलसी के मन नहिं आया॥
चौका करि पावै परवाना। एक पलक में लोक पयाना॥
लोक बिधी सिष आइ बखानै। सो चौका मोरे मन मानै॥
चौका पान अनेकन खाया। बपुरे कोई लोक नहिं पाया॥
चौका करिकै साख बतावै। जीवत कोई लोक नहिं पावै॥
चौका करिकै जन्म सिराना। अब मरने का भया ठिकाना॥
मूए पर मुक्ती नहिं पावै। ये कहौ लोक कौन बिधि जावै॥

अर्थ–इस नौतम चौका का रहस्य बताओ, तब कबीर के नाम से उसका वर्णन करो। जब कबीर इस विधि से चौका के विषय में बतायेंगे–वही इस जीव के शोक तथा संशय को दूर करेगा। दूसरी तरफ, तुम अपने को देखो, तुम्हें अनेक संदेह-शोक सता रहे हैं। चौका करने से शोक नहीं आते और तुम्हें तो अनेक शोक सताए हुए हैं। हे भाई! वह चौका कौन सा है, जिससे संशय और शोक नष्ट हो

उठते हैं। चौका कर-करके लोग को सुनाते हो और क्षण-क्षण शोक तथा संशय नष्ट करते हो। आपने स चौके पर विश्वास दृढ़ किया है किन्तु वह तुलसी साहब के मन में नहीं आया है। चौका करके जो परवाना प्राप्त करता है, और पलभर में ही सत्यलोक में प्रस्थान कर देता है। परलोक लोकविधि के लिए शिष्यों को बनाकर जो इसका वर्णन करता है, वही चौका मेरे मन के लिए विश्वसनीय है। चौका पर पान तो अनेक लोगों ने खाया है, किन्तु किसी भी विचार ने परलोक प्राप्त नहीं किया। चौका करके जो उसका साक्ष्य बताता है–वह जीते-जी कोई परलोक नहीं प्राप्त करता। चौका करते-करते जन्म बीत गया, अब मृत्यु का भी समय आ पहुँचा किन्तु मरने के बाद मुक्ति नहीं होती, मुझे बताओ कि वह मुक्ति का दूसरा लोक किस प्रकार का है।

जो कबीर ने चौका गाया। सो चलि आज लोक निज पाया॥
जो कछु पंथ कबीर चलाया। पंथ भेद कोइ मरम न पाया।।
पंथ कबीर जौन बिधि भाखी। सो ता की बिधि सूझि न आँखी॥
पथ कबीर कौन बिधि गावा। गये कबीर सोइ मारग पावा॥
पंथ नाम मारग कौ होई। मारग मिलै पंथ है सोई॥
बिन मारग जो पथ कहावा। सो उन नहीं पंथ को पावा॥
पंथ कबीर सोई है भाई। गये कबीर जेहि मारग जाई॥
ये नहिं पंथ कहावै भाई। चेला करि सिष राह चलाई॥
ये सब जाति पाँति कर लेखा। या से गुरु सिष तरत न देखा॥
अब कबीर की साख सुनाई। जो कबीर अपने मुख गाई॥
पुरइन सेत पान कियौ चौका। चौन्हौ पुरइनि छाँड़ौ धोका॥
पुरइनि सेत का खोज लगावौ। ढूँढ़ि ताहि पर चौका लावौ॥
तुम धरती पर चौका ठाना। पुरइनि सेत कबीर बखाना॥
ये तौ बिधि मिली नहिं भाई। कही और तुम और चलाई॥
ये तुम बनिया हाठ लगावा। कहा कबीर सो मरम न पावा॥

अर्थ–यदि कबीर ने चौका का गान किया है, तो वे भी चलकर आज अपना लोक पाए हैं। कबीरदास जी ने जो मार्ग चलाया है, उस पंथ का मर्म कोई नहीं प्राप्त कर सका है। कबीरदास जी ने अपने पंथ का जिस तरह से वर्णन किया है, आज उसका रहस्य मन की आँखों को भी नहीं सूझ पड़ता। कबीरदास ने अपने पंथ का किस प्रकार वर्णन किया है–कबीर के मतानुसार चलने पर ही वह मार्ग मिलेगा। उस मार्ग का नाम पंथ है, जिसे उनका मार्ग मिल जाता है, उसे उनका पंथ मिल जाता है। बिना मार्ग का जो पंथ कहा जाता है, वह मार्ग-पंथ नहीं है और चलने वाले उस पंथ को भी नहीं प्राप्त कर पाते। हे भाई कबीर का पंथ वही है, जिस मार्ग से कबीर ने अपना आध्यात्मिक पंथ का गमन किया था। हे भाई ये सब पंथ नहीं कहलाते–यहाँ तो चेला बनाकर शिष्यों को अपनी राह पर चलाते हैं। ये सभी जाति-पाँति लेखा जोखा है–इससे न गुरु को और न शिष्य को तरते देखा है। ऐसी मेरी नहीं, कबीरदास जी की अपनी साक्षी है और उसे कबीरदास की ने अपने मुख से गाया है।

कमलिनी के श्वेत पुष्प पत्र को चौका बना दिया है, पुरइन को पहचानो और भ्रम त्यागो। श्वेत कमलिनी की खोज लगाओ और उसे खोजकर उसी पर चौका लगाओ। तुमने पृथ्वी पर चौका स्थापित किया है, कबीरदास ने उसे श्वेत कमलिनी कहा है। इस प्रकार से इन दोनों का कोई मिलान नहीं है–

उन्होंने इसे दूसरे ढंग से कहा है, और तुम दूसरे ढंग से चला रहे हो। यहाँ तो तुमने बनिया की बाजार लगा दी, जो कबीरदास जी ने बताया है, तुम उसका रहस्य नहीं जान सके॥

जो कबीर ने बिधी बताई। सब्द राह मारग समझाई॥
सब्द चीन्ह कर बूझि बिचारा। केहि बिधि सब्द कहै निरबारा॥
जा को कहिये साधु सुजाना। सब्द चीन्ह सोइ बूझै ज्ञाना॥
सोई साध बिबेकी होई। कहा कबीर पद बूझै सोई॥
सब्द पंथ सब राह बतावै। भिन्न भिन्न बिधि बिधि दरसावै॥
कोऊ न बूझै सुरति लगाई। चौका पट्टा औरहि गाई।।
सब कहि भिन्न भिन्न दरसाई। सो पंथिन की दृष्टि में आई॥
पंथ और मग औरै जाई। कही कबीर सो राह न पाई॥
अब कबीर मुख साखि सुनाऊँ। फूलदास सुनि मन में लाऊँ॥
चौका राह पंथ दरसाऊँ। कहि कबीर-मुख सब्द सुनाऊँ॥
तुलसी सब्द कबीर सुनाई। फूलदास सुनि सुरति लगाई॥

अर्थ–जो कबीरदास जी ने चौका की विधि बताई है, उन्होंने जिस शब्द के रास्ते का मार्ग बताया है–हे नासमझ! उन शब्दों को पहचानो और उस पर विचार भी करो कि ये शब्द मूल समस्या का समाधान कैसे करेंगे। जिसको साधु या सुजान के नाम से पुकारा जाता है, वही शब्दों को पहचानता है और उसे ज्ञानपूर्वक समझता है। वही साधु विवेकवान है, और कबीरदास जी कहते हैं कि वह आध्यात्मिक मर्म को भी समझता है।

शब्द ही पंथ है, ऐसा सभी मार्ग बतलाते हैं और उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से दिखाते हैं। उन्हें समझकर भी कोई सुरति समाधि भी नहीं लगा पाता। चौका आदि की बात तो और कही गई है।

इन सारी बातों को, हे फूलदास, भिन्न-भिन्न रूपों में कहकर दिखाओ (बताओ) क्योंकि ये बातें इस धर्म के पंथ पर चलने वालों की समझ में नहीं आता।

आज पंथ दूसरा है किन्तु दूसरे मार्ग से जा रहे हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि ये पंथभ्रष्ट मार्ग नहीं पा रहे हैं। अब कबीर के मुख से कही हुई साखी सुनाकर मैं बताता हूँ, हे फूलदास! मन लगाकर सुनो॥ मैं चौका राह का मार्ग बतलाऊँगा और कबीरदासजी के मुख से कहे हुए शब्दों द्वारा सुनाऊँगा। तुलसी साहब ने कबीरदासजी के शब्दों को सुनाया और उसे सुनकर फूलदास ने सुरति समाधि लगा ली॥

॥ मंगल १ ॥

खोजो साध सुजान, सो मारग पीउ का।
परख सब्द गहौ सरन, मूल जहँ जीव का॥ १॥
भौजल अगम अपार, लहर बिकार है।
कठिन ये पाँचौ मगर, बीच जम जार है॥ २॥
इंद्रादिक ब्रह्मादिक, पार न पावहीं।
गुरु बहियाँ कड़िहार, जो पार लगावही॥ ३॥
निरखि पकरि कड़िहार, तो घर पहुँचावही।
देत नाम की डोरि, तो दुख बिसरावही॥ ४॥

बैठि के आनँद महल, परम गुन गावही।
सुखमन सेज जगाइ, तो पिया रिझावही॥ ५॥
बिन जल लहर अनूप, तो मोती झिलमिलै।
देखि छत्र उँजियार, तो हंसा हँस मिलै॥ ६॥
अग्र जोति उँजियार, तो पंथ सिधावही।
कोटिन भान निछावर, आरति साजही॥ ७॥
का लिखि दीन्हे पान, तो तिनुका तोरई॥
का नरियर के मोरे, जो जम धरि बोरई॥ ८॥
सत लिखि दीन्हे पान, सो निरगुन तोरई।
सुरति फूल बरमूल, सो नरियर मोरई॥ ९॥
नरियर भेद अगम्म, संत जन मोरई।
कहै कबीर तेहि जाचौ, तो बंदी छोरई॥ १०॥

अर्थ–हे सुजान साधु! अपने अपने पति श्रीराम के मार्ग की खोज कर। शब्द को परखकर उनकी शरण में जाओ और उसी शरण ही जीव का मूल आश्रय है।। १॥

यह भवसागर अगम्य है, अपार है, लहरें विवृतियाँ (माया) हैं, ये पाँचों तत्त्व बड़े ही कठिन हैं– इनके बीच में यम कटकमय जंजाल के रूप में हैं॥ २॥

इन्द्र तथा ब्रह्मादिक इसका पार कोई नहीं प्राप्त कर सकता। केवल गुरु ही कर्णधार हैं–यदि वे बाँह पकड़कर पार लगा दें तो भलीभाँति देख करके और बाँह पकड़करके वही भवसागर से बाहर करके उनके घर तक पहुँचाते हैं॥ वे नाम साधना की डोरी पकड़ा देते हैं–जो भवसागर से उस पार पहुँचा देता है और सारे दुःखों को विस्तृत कर देते हैं॥ ३-४॥

साधक उनके आनन्द महल में बैठकर उनके परम गुणों का गान करता है और वह सुषम्ना की सेज पर परमात्मा को जगाकर उसे रिझाते हैं॥ ५॥

बिना जल के ही अनुपम लहरें उठती हैं, उसमें मोती झिलमिलाते रहते हैं और वहाँ क्षत्रपर एकदम प्रकाशमयी उजाला देखकर वह हंस हँसकर प्रसन्न भाव से मिलता है॥ ६॥

आगे ज्योति का उजाला है और वह अपने मुक्ति मार्ग की ओर गमन करता है। उस पर कोटि-कोटि सूर्यों को निछावर करते हुए भक्तगण उसकी डगर ही सजाते हैं॥ ७॥

पान पर उसने क्या लिख दिया, इसका जानने के लिए तिनका तोड़ते हैं, नारियल के मोड़ने में कौन बात है, जिसे यम पकड़ कर बोर (डुबो) रहा है॥ ८॥

उस सत् पुरुष ने उस पान पर कुछ लिख दिया है, उसे निर्गुण ब्रह्म तोड़ रहा है, सुरति समाधि रूपी फूल सिद्धि (नारियल) है, इसीलिए नारियल मोड़ रहा है॥ ९॥

नारियल का भेद अगम्य है, उसे निरन्तर सन्त जन मोड़ते रहते हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि उससे इस बात की याचना करो जोकि वह तत्त्व प्राप्त हो उठे, जो भवसागर के बंदियों को मुक्त करता है॥ १०॥

॥ मंगल २॥

तेरो संगी निकरि गयो दूरि। सोहागिल आइ मिलौ ॥ टेक॥
आया सँदेसा आदि घरै का। लिये सब्द टकसार॥ १॥

सतगुरु घाट अगम तोहि चढ़ना। चढ़न के पंथ सिधार॥ २॥
नवएँ धाम खोलिये कुंजी। दसएँ गुरु परताप॥ ३॥
चौका चार गुप्त हम कीन्हा। ता का सकल पसार॥ ४॥
कह कबीर धर्मदास से। ये चौका है निरधार॥ ५॥

अर्थ—हे सुहागिनी (आत्मा)! तुम्हारा साथी तो मार्ग में तुमसे दूर निकल गया, आकर उससे शीघ्र मिलो। उस आदि घर का संदेशा आया है, उसमें 'शब्द' खजाने के रूप में है॥ १॥

तुम्हें सतगुरु के अगम्य घाट पर चढ़ना है, तुम चढ़ने के लिए पंथ गमन करो॥ २॥ उस नौंव धाम पर पहुँचकर चाभी खोलो, दसवें धाम पर तो स्वयं गुरु का प्रताप है॥ ३॥ हमने चारों चौकों को गुप्त कर दिया है, किन्तु सम्पूर्ण सृष्टि भर में उसका फैलाव है॥ ४॥ कबीरदास धर्मराज शिष्य से कहते हैं कि, यह चौका तो आधाररहित सृष्टि है॥ ५॥

॥ चौपाई॥

ये कबीर चौका अस भाखा। मूल बृच्छ तजि पकरौ साखा॥
पंथ राह चौका अस जाना। सोइ कबीर-पंथी को माना॥
कही कबीर सो राह उठाई। अपनी मन मत राह चलाई॥
झूठा पंथ जगत सब लूटा। कहा कबीर सो मारग छूटा॥
कहा कबीरा जीवत निरबारा। तुम लै उलटी फाँसी डारा॥

अर्थ—कबीरदास जी ने चौका का इस प्रकार से वर्णन किया है। उसके अतिरिक्त मूलवृक्ष को समझकर ही उसकी डाल पकड़ों (ताकि मूल तत्त्व का बोध हो)। पंथ के मार्ग को इस प्रकार चौका समझो। वही कबीर पन्थियों को मान्य है। कबीरदास जी कहते हैं कि उस मार्ग को समाप्त कर दो और अपने मन की राह पर चलो। पंथ झूठे हैं, उसने सारे संसार के प्राणियों को लूट रखा है, कबीरदास जी ने जो मार्ग समझाया था, इन पंथों से वह मार्ग छूट गया है। कबीरदास जी कहते हैं कि इस समय जो मानव समाज जीवित है, उसका निराकरण करो, तुमतो इस समस्त मनुष्यों के गले में उल्टी फाँसी डाल रहे हो॥

॥ प्रश्न फूलदास। चौपाई॥

सुनकर फूलदास सकुचाना। तुलसी वचन सत्त कर माना॥
तुम कबीर बिधि भाखी रीती। या में एक न कही अनीती॥
जो कबीर ने पंथ चलाई। सोही तुमने राह बताई॥
साहिब ने एक बानी भाखा। धरमदास कुल दीन्ही साखा॥
बंस बयालिस तुम्हरे होई। अटल राज भाखा पुनि सोई॥
ऐसी सब्द साखि सब गावैं। और ग्रंथ ये बेद बतावैं॥
अस कबीर अपने मुख भाखा। अटल बयालिस बसी साखा॥
या की तुलसी कस कस भइया। कहौ बुझाइ कैसी बिधि कहिया॥
कहि कबीर ने बंस बखाना। सो कहो तुलसी केहि बिधि जाना॥
बंस बयालिस अटल बतावा। कसकस धरमदास सोइ गावा॥
या की बिधि बिधि भेद बतइये। सो तुलसी बरतंत सुनइये॥

अर्थ–इन बातों को सुनकर फूलदास सकुचा गए और तुलसीदास के बचनों की सत्यता स्वीकार की। आपने कबीर के मार्ग का कुछ छोड़कर वर्णन किया है, इसमें एक बात अनुचित कही है।

कबीर साहब ने जो पंथ चलाया है, वही राह आपने भी बताई हैं। कबीर साहब ने केवल वाणी कही है, और उनके शिष्य धर्मदास ने उसमें अनेक शाखाएँ निकाली हैं। इस प्रकरण में बयालीस पंथवंशों का वर्णन है और उसके अटल राज्य का वर्णन किया है। सारे शब्द तथा साखियाँ इस प्रकार के मतों का गान करते रहते हैं और हमारे ग्रंथों में ये भेद बताये गये हैं। ऐसा ही,कबीर साहब ने अपने मुख से कहा है कि वंश की अटल बयालिस शाखाएँ हैं।

ये तुलसी साहब, ये शाखाएँ किस-किस प्रकार से हुई हैं, हमें समझाकर बताओ, किस प्रकार समझाओगे। जिन वंशों का वर्णन कबीर साहब ने कर रखा है, हे तुलसी साहब, बताइये कि आपने उन्हें कैसे समझा। कुल, अक्षरित बयालीस वंश है, उसका वर्णन धर्मदास जी ने किस-किस प्रकार से किया है–उसके रहस्य-भेद को आप मुझे बतायें और उनका वृत्तान्त मुझे सुनायें॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब। चौपाई॥

बंस बयालिस भाखि सुनाऊँ। मुख कबीर बिधि में समझाऊँ॥
जो कबीर मुख भाखे बैना। ता की बिधी सुनाऊँ सैना॥
काया बीर कबीर कहाई। सब्द रूप है घट के माईं॥
ता को नाम कबीर कहाई। सो कबीर है जग के माईं॥
चौथे पद से सब्द जो आवै। संत कबीर सोइ नाम कहावै॥
निज निज पद से सब्द जो आवैं। धरमदास तेहि नाम कहावै॥
काया बीर कबीर कहाई। धरमदास ये मन है भाई॥
एक सब्द और एक कबीरा। धरमदास मन भया अनीरा॥
धरमदास को पंथ बतावा। धरमदास मन सब्द समावा॥
ता की पंथ राह बतलाई। ये कबीर मुख अपने गाई॥
काया बीर कबीर कहावा। धरमदास मन को दरसावा॥
बंस बयालिस मन के भाई। ता की बिधी कहूँ समझाई॥
चालिस बंस बास मन केरा। इकतालिस स्रुत सार बसेरा॥
बिधी बयालिस सब्द बखाना। ऐसे बयालिस अटल कहाना॥
ये कबीर मुख भाखि सुनावा। तुम कछु और और ठहराया॥
मन और सुरति सब्द में जावै। अस अस बयालिस अटल कहावै॥

अर्थ–कबीर के मुख से निःश्रित बयालिस वंशों का वर्णन मैं समझाकर बताऊँगा कबीर ने जिस तत्त्व का वर्णन मुख से किया था, उसका रहस्य मैं संकेतों द्वारा सुनाऊँगा। काया-सिद्ध (बीर) को कबीर कहते हैं और वह प्रत्येक घट के स्वामी के रूप में विद्यमान हैं। इसीलिए उनका नाम कबीर कहा जाता है, वही कबीर ही जग का स्वामी है।

चौथे पदसे जो शब्द आते हैं, उसी का नाम 'सत' कबीर है अपने-अपने पद से जो शब्द आते है, वही धरमदास यही मन है। एक शब्द है और एक कबीर है–धर्मदास बिना माया जल में (असंस्क्त) डूबने वाले व्यक्ति बने॥

कबीरदास जी ने धर्मदास जी को अपना मार्ग बतलाया और धर्मदास का मन शब्द में समा गया। उन्होंने अपने पंथ का मार्ग उन्हें बतलाया और इसे स्वयं कबीरदास जी ने अपने मुँह से कहा है।

काया सिद्ध (वीर) कबीर कहे गए हैं, उनके मन धरमदास हैं इस मन के बयालिस वंश हैं, मैं उनकी विधि समझाकर बताता हूँ इनमें चालीस वंशों का निवास मन के अन्तर्गत है, इकतालिसवाँ सन्तों की आध्यात्मिक वाणी के सार तत्त्व में निवास करता है। इस विधि से बयालीस शब्द कहे जाते हैं और ये इस रूप में बयालीस अटल तत्त्व कहे जाते हैं॥

मन और सुरति सब्द भया मेला। अस कबीर भाखा निज खेला॥
ग्रंथ माहिं पुनि देखौ साखी। ये कबीर मुख अपने भाखी॥
अब आगे का कहूँ बखाना। फूलदास सुनियौ दै काना॥
भिनि भिनि भाखूँ भेद बुझाई। आदि अंत सुन गुन मन माई॥
अगम निगम भिनि कर भाखी। कह कबीर स्रुति समझौ वाकी॥
औरौ और संत सब गाये। जोइ जोइ अगम पंथ पद पाये॥
जिनकी सुरति अगमपुर धाई। तिन तिन की पुनि साखि सुनाई॥
कही कबीर सोई पिरथम भाखा। छूटै तिमिर होय अभिलाखा॥
सुन और महासुन के पारा। जहँ वो सार सब्द बिस्तारा॥
येहि अलोक कब्बीर लखावा। ता पीछे सतलोक बतावा॥
सुन और महासुन्न उन गावा। हम अनाम निःनाम सुनावा॥
सत पुरुष सतलोक कहाये। ता को हम सतनाम सुनाये॥
सोला सुत कब्बीर बखाना। हम ने सोला निरगुन ठाना॥

अर्थ—मन और सुरति शब्दों का मेल हो जाने के कारण और कबीर ने अपने लीलाभाव के अन्तर्गत बताया है। ग्रंथों में देखो और विशेष रूप से उनकी साखी में इन्हें तो कबीर ने स्वयं अपने मुख से कहकर सुनाया है। अब मैं, इसके आगे का वर्णन करता हूँ, हे फूलदास इसे कान देकर सुनें। मैं उसके भिन्न-भिन्न भेदों को बताता हुआ वर्णन करूँगा—मेरे द्वारा कहे हुए उसके आदि-अन्त के प्रसंगों को सुनें। आगमों तथा निगमों ने भी उसको भिन्न-भिन्न करके वर्णित किया है, कबीरदास बताते हैं कि उसकी श्रुति (संतवचनों का सार) आप समझें। इसी प्रकार, अन्य सन्तों ने भी उसका गान किया है—विशेष रूप से वे संत जो इस अगम पंथ पर आगे बढ़े हैं। जिनकी सुरति समाधि अगम्य स्थल पर समाधिस्थ होती है, उन-उनकी मैं पुनः साखी सुना रहा हूँ। उसी तत्त्व का विवेचन कबीरदास जी ने सर्वप्रथम किया है, इससे अंधकार विनष्ट हो उठता है—धर्म की अभिलाषा चित्त में बढ़ जाती है। शून्य तथा महाशून्य के उस पार स्थित जहाँ से उस मूल तत्त्व का विस्तार हुआ है—उस अलोक तत्त्व को कबीरदास जी ने दिखाया था, और उसके पीछे सत्लोक बताया है। उन्होंने उसे शून्य तथा महाशून्य कहकर बताया था और हमने उसे अनाम और निःनाम कहकर पुकारा है। सत् पुरुष के लोक को सत्लोक कहा जाता है, उसको हम 'सत् नाम' कहकर सुनाते हैं। कबीरदास जी ने सोलह पुत्रों की बात कही है, मैंने सोलह निर्गुण स्थल कहकर उन्हें पुकारा है॥

सोला माहिं निरंजन पूता। हम माना निरगुन मजबूता॥
सोई निरंजन मन भया भाई। जा ने जग रचना उपजाई॥
हम निरगुन से सरगुन भाखा। मन को सरगुन कहि कर राखा॥

मन सरगुन सब जग उपजाई। कही कबीर तुलसी पुनि गाई॥
मनहिं कबीर निरंजन गावा। ब्रह्मा बिस्नु सिव पुत्र बतावा॥
निरगुन से सरगुन मन भाखा। हम पुनि तीनि गुनन में राखा॥
तीनों गुन मन से उपजाई। ब्रह्मा बिस्नु सिव गुन के नाईं॥
सरगुन मनहिं निरंजन कहिया। मनहिं निरंजन निरगुन भइया॥
ये कबीर बिधि तुलसी कहिया। सोइ कबीर निज मुखहि सुनइया॥
संत मता बिधि एकहि जाना। नाम कही बिधि आनहि आना॥
ता से तुम को बूझ न आवै। अनि अनि नाम घरे बिधि गावै॥
यह साहिब सत नाम सुनावा। सार सो सब्द अनाम कहावा॥
निरगुन नाम निरंजन जाना। राम कहा सोइ मनहिं बखाना॥
कहि कहि संतन भाखि सुनाई। सोइ कबीर अपने मुख गाई॥
और संत और बिधि समझाई। येहि कबीर और बिधि गाई॥
मत पहुँचे पहुँचे पर एका। जो अबूझ सो बाँधै टेका॥
जिन जिन अनुभौ भाखि सुनावा। अगम पंथ बिधि एकहि गावा॥

अर्थ—इन सोलहों में एक निरंजन का पुत्र भी है। हमने स्वीकार किया है कि इनमें निर्गुण यथा सबल है। वही निरंजन बना और उसी से संसार की रचना उत्पन्न की गई। हमने निरगुन से उसे सगुण कहा है—यह मन ही है, जिसे हमने सगुण कहा है। मनरूपी सगुण ने समस्त संसार उत्पन्न किया, इसके विषय में कबीर एवं तुलसी ने बताया है। कबीर ने मन को निरंजन कहा है और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को निरंजन का पुत्र बताया है। निरगुण के बाद ही सगुण को मन कहा गया है और बाद में उन्हें रज, सत्त्व एवं तम इन गुणों में बाँटा गया। ये तीनों गुण मन से उत्पन्न होते हैं। सगुण में निरंजन को मन कहा गया है और इसी मन निरंजन से निर्गुण हुआ। इस विधि को कबीर एवं तुलसी दोनों ने बताया हैं और कबीरदास जी ने तो स्वयं अपने मुख से सुनाया है। सन्तों के मत से ये दो नहीं एक ही हैं और नाम इनके अलग-अलग बताये गए हैं। इसी से यह बात आपकी समझ में नहीं आ रही है कि उनके अलग-अलग नाम रखकर यह रहस्य बताया गया है। सत्त साहब ने सत् नाम सुनाया है और उसका सार अनाम शब्द कहा गया है। निर्गुण का नाम ही निरंजन समझो और मन से सोचो कि वही राम कहा गया हैं। इनके विषय में सन्तों में बार-बार कहकर सुनाया है और उसी को कबीर ने अपने मुख से वर्णित किया है। अन्य सन्तों ने इसे अन्य विधियों से समझाया है और इसे कबीरदास जी ने इसी प्रकार कहा है। मत तक पहुँचते-पहुँचते सब मत एक हो उठते हैं—जो इसे नहीं समझते वे हठ किया करते हैं। जिन-जिन अनुभवों को मैंने कहकर सुनाया है, उनका पंथ अगम्य है किन्तु वे रहस्य की दृष्टि से एक ही बताये गए हैं।

पुरइनि पात कबीर सुनाये। पुरइनि सोइ संत सब आये॥
पुरइनि सेत कबीर सुनावा। सोइ सब सेत संत बतलावा॥
सुरति सब्द कबीरहि खेला। सार सब्द मत अगम अकेला॥
सूरति सत्त नाम कियौ सैला। सूरति सार सब्द करै मेला॥
निःअच्छर सोइ आदि अमेला। कहिये सार सब्द तेहि खेला॥
जो जो संतन कही अगारा। सो सो दास बीर पुकारा॥

या में भर्म न कीजे भाई। संत द्रोह नीच ऊँच न गाई॥
संत को नीच ऊँच बतलावै। आद अरु अंत नर्क गति पावै॥
सत देस गति अगम बखाना। फूलदास तुम राह न जाना॥
चौका पंथ ये हाट बजारा। चौका संत पंथ गति न्यारा॥
फूलदास सुनि सीतल भइया। तुलसी स्वामी अगभ सुनइया॥
हम तो पंथ भेष में भूला। तुम कहा सार भेद पद मूला॥
फूलदास ऐसी बिधि बोला। तब हम अपनि दीन गति खोला॥
तुलसि निकाम संतन कर चेरा। संत कृपा से अगम पद हेरा॥

अर्थ–इनके विषय में कबीर ने पुरइन के पत्ते का साक्ष्य दिया है, वे श्वेत हैं, यह सारे सन्तों ने बताया है। सुरति शब्द से कबीर ने क्रीड़ा की उसका शब्द का यह सार तत्त्व अगम्य एवं अद्वितीय है। इसी को सुरति सत्त का पर्वत बताया गया है, इस सुरति के सार तत्त्व शब्द से मेल-मिलाप किये रहता है। वह अनादि तत्त्व निःअक्षर एवं अमेल है, और बताया है कि उससे वह सार तत्त्व क्रीड़ा करता है। संतों ने जिन-जिन तत्त्वों के विषय में आगे सन्तों के आगे बताया है, वही-वही कहकर उन्हें कबीरदास ने भी पुकारा है। हे भाई! इसमें भ्रम न उत्पन्न करें, सन्तों के द्रोह के विषय में नीच-ऊँच किसी सन्त के समर्थन नहीं किया है। जो सन्तों को उत्कृष्ट या निकृष्ट बताते हैं, वे आदि से अन्त तक नरक में गति प्राप्त करते हैं। सत्त देश की अगम्य गति बताई गई है। किन्तु, हे फूलदास! तुमने अभी तक सही मार्ग नहीं समझा।

चौथा पंथ यह हाट-बाजार की भाँति है, ये चौथे सन्त प्रत्येक पंथ की गति से अलग है। इसे सुनकर, फूलदास शान्त हो उठे कि इन तुलसी साहब ने अगम्य तत्त्व को सुनाया है। इसे सुनकर वे बोले, हम तो अब तक प्रेमपंथ में भूले थे, और आपने कबीर मत के सार तत्त्व के मूल को समझाया है। फूलदास जब इस प्रकार बोले तो तब हमने (तुलसीदास कहते हैं) अपनी दीनता और भी स्पष्ट कर दी। हम तुलसी साहब निष्काम सन्तों के शिष्य हैं और इन्हीं सन्तों की कृपा से मैंने अगम्य पद को खोजा है।

संत चरन परसांदी पाई। ता से सब कहै तुलसि गुसाँई॥
सब मिलि कै पुनि कहै गुसाँई। मैला मन मत बुद्धि न पाई॥
मैं किंकर संतन कर दासा। संत चरन बिन और न आसा॥
दास कबीर संत है स्वामी। उन सम फूलदास को जानी॥
तुम साधू हौ चतुर सुजाना। तुलसी जानौ दास सयाना॥
मैं साधन कर दास विचारा। संत चरन की लागौं लारा॥
दीन जानि किरपा करि हेरा। वे दयाल सब कीन्ह निबेरा॥
तुमहूँ साध दया के स्वामी। फूलदास तुम चरन नमामी॥
भूल न मोरी अचरज मानौ। मैं तुम्हरे चरनन लपटानौ॥

अर्थ–हमने भी सन्त चरणों से इस आध्यात्मिक ज्ञान को प्रसादी (परसाद) के रूप में प्राप्त किया है। इसी के ही कारण मुझे सभी तुलसी गुसाईं कहते है। यही नहीं, सभी मुझे बार-बार गुसाईं कहते हैं। हम मलिन मन वाले तथा बुद्धि से हीन हैं। मैं तो सन्तों का किंकर और दास हूँ। सन्त के चरणों के बिना कोई और कोई आशा नहीं है। कबीरदास जी तो स्वयं सन्त हैं, और उन्हीं के समान हम लोग फूलदास

को भी समझते हैं। आप साधु है, सहृदय एवं चतुर हैं और तुलसीदास को आप अपना दास समझें। हम तो साधको के दास है और हमेशा हममें सन्त चरणों की संसक्ति लगी रहती है। आपने इसे दीन समझकर खोजा और कृपा की। प्रभु दयालु हैं, वे सबका निस्तारण करते हैं। आप साधु है, दयामय स्वामी हैं, हे फूलदास! मैं तुम्हारे चरणों का नमन करता हूँ।

यह मेरी भूल नहीं वरन् आश्चर्य है कि मैं आपके चरणों में संसक्त एवं लिपटा हुआ हूँ॥

॥ फूलदास। चौपाई॥

फूलदास कहै स्वामी सूझा। है कबीर तुलसी नहिं दूजा॥
मैं महंत मन मान निकामा। मैं मति नीच न तुमको जाना॥
हाथ चरन पर तुरत चलावा। दीन होय सिर चरन गिरावा॥

अर्थ–फूलदास बोले, हे तुलसी स्वामी! मुझे समझ में बात आ गई, तुलसी साहब कोई दूसरा नहीं, कबीरदास ही हैं। मैं महन्त हूँ, मन और मान दोनों से निष्काम हूँ, अत्यन्त नीच ज्ञान वाला व्यक्ति मैंने आपको पहचाना नहीं, और ऐसा कहकर उन्होंने तुलसी साहब के चरणों पर अपना हाथ लगा दिया और अत्यन्त दीनता भाव से उनके चरणों पर अपना सिर गिरा दिया।

॥ तुलसी साहिब। चौपाई॥

तुलसी धाइ पाँइ को लीन्हा। चरन सीस तेहि आपन दीन्हा॥
तुलसी कहै ऐसी नहिं कीजै। कृपा चरन अपना मोहिं दीजै॥
फूलदास बिधि कैसी भाखी। दीन साधना क्या कहुँ जा की॥

अर्थ–तुलसी ने जल्दी ही उनके पाँवों को पकड़ लिया और उस पर अपना शीश रखा। तुलसी साहब बोले, हे सन्त फूलदास ऐसा मत करें और कृपापूर्वक आप अपना चरण मुझे दें। फूलदास की वह दशा कैसी हो उठी, उनकी दीनता भरी साधना की मैं क्या बात करूँ?

॥ प्रश्न फूलदास। चौपाई॥

फूलदास कहै अंध अचेता। तुलसी स्वामी दीन्ही चेता॥
मोरा मन मैला अति नीचा। ये महंत मत मन सम कीचा॥
मोरी मति पर दृष्टि न दीजै। फूलदास अपना करि लीजै॥
तुम्हरे चरन माहिं निरबारा। बिना चरन नहिं होइ उबारा॥
जो कबीर सो तुम ही स्वामी। दया करहु मोहिं अंतरजामी॥
मैं अपनी गति कस कस गाऊँ। सुरति न छाँड़ै तुम्हरा पाऊँ॥
एक बात मोरे मन आई। भाखौ स्वामी तुलसि गुसाँई॥
है सरीर में बीर कबीरा। सात दीप नौ खंड अमीरा॥
ऐसी साखि कबीर पुकारा। बूझौ यह बिधि कौन बिचारा॥
या कौ भेद भर्म मोहिं आवा। भाखौ स्वामी भर्म नसावा॥

अर्थ–फूलदास ने कहा मैं तो एकदम साधनाहीन अंधा और अज्ञानी पुरुष हूँ हे तुलसी साहब! आपने मुझे ज्ञान दिया है। मेरा मन अत्यन्त मलग्रस्त एवं नीच है, यह महन्त का मन माया से सना कीचड़ जैसा है। हे स्वामी! मेरी मति पर आप ध्यान न दें और फूलदास को आत्मीय बनाकर स्वीकार कर ले। आपके ही चरणों में मेरा निवारण है– बिना आपके चरणों में रहे मेरा उद्धार सम्भव नहीं है।

यदि आप ही स्वामी कबीर है, तो हे अन्तर्यामिन? आप दया करें। मैं अपनी दुर्गति का कैसे-कैसे वर्णन करूँ, अब किसी भी प्रकार से मेरी स्मृति आपके पावों को नहीं छोड़ेगी। एक बात मेरे मन में आ गई है, हे स्वामी तुलसी साहब मैं उसे कहता हूँ। शरीर में यह सिद्ध कबीर यदि है और वह सातों दीपों एवं नवों खंडों में आलोकित है। ऐसी साखी, स्वयं कबीरदास जी ने भी कहा है, यह बात कैसे आई है, कृपया समझायें। इस विषय में मुझे भेद एवं भ्रम है, हे स्वामी! इस विषय में बतायें ताकि भ्रम नष्ट हो जाए॥

॥ उत्तर तुलसी साहब। चौपाई॥

फूलदास सुनिये दै काना। या का भाकूँ सकल बिधाना॥
धरमदास मनहीं को जानौ। काया बीर कबीर बखानौ॥
बिधि कबीर संबाद बखाना। धरमदास मन तुलसी जाना॥
काया बीर मन कहि संबादू। ये कबीर मुख भाखी आदू॥
सातौ दीप कबीर समाना। सो कबीर मन माहिं भुलाना॥
मन भूला इंद्री सँग साथा। काया बीर देंह में राता॥
सात दीप नौ खंड समाई। रहत कबीर भर्म उपजाई॥
तन सँग कर्म माहिं किया बासा। उपजै बिनसै पुनि पुनि नासा॥
तन सँग पाइ हिये रहै सोगा। उपजै बिनसै दुख सुख भोगा॥
मन से इंद्री बास उड़ाई। सो मन धर्मदास है भाई॥
काया बीर जो धर्म न जानै। होइ कबीर आदि पहिचानै॥
सुरति सैल जो चढ़ै अकासा। फोड़ि अकास अमर पद बासा॥
सत्त गहै सतगुरु पद पासा। सत्त लोक सत पुरुष निवासा॥
ता के परे अगमपुर धामा। देखै लोक अलोक अनामा॥

अर्थ–हे फूलदास! कान देकर सुनें, मैं इसके सम्पूर्ण विधान का वर्णन करता हूँ। धर्मदास को ही मन समझो और सिद्ध शरीर को कबीरदास। इस रहस्य को कबीर ने संवाद द्वारा कहा है, तुलसी का परमदास मन इसे जानता है। सिद्ध काया ने मन से संवाद किया–उसके आदि स्वरूप को मैं कबीर के मुख से वर्णित करता हूँ। सातों द्वीप कबीर हैं और सब कुछ इसी कबीर के मन में भूला हुआ है। इन्द्रिय के संग-साथ के कारण मन भी भूल गया–किन्तु शरीरसिद्ध कबीर देह में ही निरन्तर सहज अनुरक्त रहा है। इस प्रकार,सातों द्वीपों एवं नवों खंडों में व्याप्त यह कबीर भ्रम उपराजता रहता है।

तन के साथ कर्म है, उसमें कबीर ने निवास बना रखा है, और यह शरीर बार-बार उपजता एवं बिनसता है। मन तो शरीर को प्राप्त कर लेता है किन्तु उसके हृदय में शोक है और निरन्तर उसमें सुख-दु:ख का बोध उत्पन्न होता रहता है। यदि मन से इन्द्रियों की यह वासना समाप्त हो उठे तो, हे भाई। वही मन धर्मदास है। सिद्ध-सिद्ध कैसा है? जो धर्म को नहीं पहचानता, कबीर बनकर वह अपने आदि तत्त्व को तो पहचाने। सुरति समाधि के ऊपर चढ़कर जो शून्याकाश में प्रवेश करे और उस आकाश को भी फोड़कर वह परमपद में निवास करें। सत्त पुरुष को स्वीकार करके वह सतुरु के चरणों के पास बैठे क्योंकि सत्पुरुष का निवास सत्त लोक में ही होता है। उसके आगे अगमपुर धाम है, वहाँ, लोक, अलोक एवं अनाम तीनों दिखाई पड़ते हैं।

सत कबीर होइ वहँ को जाई। और कबीर भौ भटका खाई॥
सत कबीर जाहि कर नामा। चढ़ै सुरति सतलोक समाना॥

सतगुरु सत्त पुरुष है स्वामी। सो गुरु करै चला परमानी॥
सतगुरु सत्त पुरुष है सैला। वो कबीर सतगुरु का चेला॥
वो कबीर जेहि राह बतावै। सुरति सैल सोइ अगम लखावै॥
वो कबीर भौ पार लगावै। और कबीर भौ भटका खावै॥
और गुरु चेला झूठ पसारा। दोनों बूड़े भौजल धारा॥
सतगुरु सत्तपुरुष की बाटा। चेला चढ़ै सुरति से घाटा॥
सोइ चेला है पद परवाना। और सगरा जग निगुरा जाना॥
कनफूका से काज न होई। दोनों जाहिं नर्क में सोई॥
सत्त सोई गुरु गगन प्रकासा। जा से मिटै काल की त्रासा॥
गगन चढ़ै सोइ सतगुरु पाई। नहिं तो चेला निगुरा भाई॥
गगन चढ़ै गुरु परसै आई। चेला से पुनि गुरु कहाई॥

अर्थ–सतकबीर होकर सन्त जन कहाँ जाते हैं, अन्य कबीर इस भौसागर में झटका खाते रहते हैं। जिसका नाम सत्त कबीर है, वह सत्तलोक सदृश सुरति लोक में चढ़ते हैं। सत्गुरु ही स्वामी है, सत्त पुरुष है–वह गुरु के महत्त्व को प्रमाणित करने के लिए सुरति लोक में चढ़ता है? सत्त गुरु सत्त पुरुष ही वह शून्य शिखर है और वह भी सत्गुरु कबीर का शिष्य है। ऐसे कबीर जो मार्ग बतलाते है और सुरति शिखर पर जाकर अगम्य तत्त्व का मार्ग दिखाता है वही कबीर व्यक्ति को भवसागर से पार करता है–शेष कबीर इस भवसागर में भटके खाते रहते हैं॥ इस प्रकार, गुरु एवं चेला दोनों मिल झूठ का प्रसार करते हैं और गुरु शिष्य दोनों इस भवसागर की धारा में डूब जाते हैं। सत्य. पुरुष एवं सत्गुरु के मार्ग से होकर शिष्यगण सुरति के मार्ग पर चलते हैं। वही शिष्य, उस पद के प्रमाण हैं जो सगुण संसार को निर्गुण करके जानता है।

कान फूँकने वाले गुरुओं से काम निकलने वाला नहीं है और ये दोनों गुरु शिष्य नर्क में जाते हैं। सत्य वही है जो इस गंभीर शून्याकाश को प्रकाशित कर दे जिससे शिष्य को काल का भय थिर जाए सत्गुरु को पाकर वह शून्याकाश में चढ़े नहीं तो वह शिष्य भी निगुरा (बिना गुरु) का है। शून्याकाश में चढ़े और पुनः वहाँ से लौट कर गुरु के चरणों का स्पर्श करे, वह चेला होकर पुनः गुरु की संज्ञा प्राप्त करता है।

सत्त कबीर ताहि कर नाई। काया कबीर का राह बताई॥
कनफूका गुरु जग ब्यौहारा। उनसे न उतरै भौजल पारा॥
सतगुरु सत्त कबीरहि पावै। चौका की बिधि बिधी बतावै॥
सुरति सब्द की डोर लगावै। चौके से चौथा पद पावै॥
सब्द सोर जो उठै अखंडा। सुरति राह से चढ़ि गई डंडा॥
होवै सत्त पुरुष पद मेला। सो कबीर सतगुरु का चेला॥
सो कबीर चौका बिधि जानै। चौथे पद की राह बखानै॥
चौका बिधि भिनि भिनि बतलावै। पंथ राह सतगुरु दरसावै॥
सूरत चढ़ै पंथ जब पावै। चौका पंथ राह सोइ आवै॥
ये चौका कब्बीर बतावा। चौका राह राति समझावा॥

अर्थ–सन्त कबीर ने भी उसी की भाँति काया कबीर का मार्ग दर्शन किया। कान फूँकने वाले गुरु का सांसारिक व्यवहार ऐसा है कि उनसे इस भवसागर के उस पार नहीं जाया जा सकता। सत्तगुरु सत्त कबीर को ही प्राप्त करते हैं और वे विधिपूर्वक चौका की विधि बतलातें हैं। वे सुरति शब्द में डोर बाँधते हैं और इस चौके के द्वारा वे चौथा पद प्राप्त करते हैं। उस समय जो अखण्ड शब्द की गूँज उठती है, वह सुरति मार्ग द्वारा डंडे (सुषम्ना) पर चढ़ जाती है और उसके बाद उससे सत्पुरुष का मिलन हो जाता है और वही कबीर सत्गुरु का चेला है। वह कबीर चौका की विधि जानता है, वह चौथे पद की राह का वर्णन करता है। अनेक सन्त चौका की विधियों का भिन्न-भिन्न रूप में वर्णन करते हैं और इस धर्मपंथ का मार्ग उसी की समझ में आता है। इसी चौका के विषय में कबीर साहब ने बताया है, और उस चौके की राह-रीति को समझाया है।

॥ प्रश्न – फूलदास ॥

॥ दोहा ॥

फूलदास बिनती करै, तुलसी स्वामी साथ।
चौका बिधि बतलायऊ, कस कस बिधि बिख्यात॥

अर्थ–फूलदास तुलसी साहब से विनय करते हैं कि आपने साथ बैठकर चौका की विधि का वर्णन किया और यह भी बताया कि यह कैसे-कैसे विख्यात हुआ।

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥

॥ दोहा ॥

फूलदास बिधि बिधि सुनौ, चौका बिधि सब सार।
जो कबीर मुख भाखिया, सो बिधि हम निरबार॥

अर्थ–हे फूलदास! आप विधिपूर्वक सुनें यह चौका समस्त साधनाविधियों का सार तत्त्व है–आप ने जिसके कबीरदास की वाणी द्वारा वर्णित किया है, उससे हम लोग आनन्दित हैं।।

॥ चौपाई ॥

चौका बिधि काया में गाई। जो कबीर ने कही लखाई॥
सिलिपिलि दीप जलखंडी राजा। ये सब बिधि काया में साजा॥
पाँच फूल नरियर के गावा। सो सब काया माहिं लखावा॥
सतगुरु मिलै तो भेद लखावै। नरियर मोड़त बास उड़ावै॥
बहुतक नरियर मोड़ेव भाई। पत्थर पर फोडेव तुम जाई॥
नरियर मोड़त बास उड़ाई। तुम ने गंध बास ठहराई॥
या से भेद मिले नहिं भाई। ढूँढ़ौ बनिये हाठ बिकाई॥
अब वो पान का भाखौं लेखा। पान परे पर आवै न पेखा॥
तुम बरई का पान मंगावा। बीरा करि करि ताहि खवावा॥
बीरा पान कबीर लखावा। सोई पान घट माहिं बतावा॥
सतगुरु मिलै पान पर आना। बिन सतगुरु कोइ राह न जाना॥
मेवा आठ बखाने जोइ। वह अठमेवा पुरुषै होई॥

सत कबीर ऐसी विधि भाखा। मेवा फल लीन्हें सिष साखा॥
काया पूर जोति है ताई। तुम कपूर बनिये से लाई॥
इंद्री पाँच वासना नासा। पाँचौं बासन तन में बासा॥

अर्थ–संत तुलसी साहब ने शरीर के अन्तर्गत चौका विधि का वर्णन किया–जिसकी ओर कबीरदास जी ने कोई संकेत नहीं किया है। सिलपिली दीप के राज जलखंडी थे। उन्होंने चौका विधि को पूरी तरह से शरीर में रचकर सज्जित किया था। नारियल के पाँच फूलों का वर्णन है, उन सबको उन्होंने शरीर के बीच दिखाया है। कोई सतगुरु मिले तो वह उसका रहस्य बताये कि नारियल को मोड़ते ही क्यों गंध उड़ती है। बहुत लोगों ने नारियल मोड़े हैं और तुम उसे जाकर पत्थर पर फोड़ते हो। नारियल के मोड़ते ही गंध निकल पड़ती है, उस गंध को तुमने वास की संज्ञा दी है। इससे इस आध्यात्मिक प्रकरण का रहस्य नहीं मिलता। बनिये की हाट में नारियल बिकता है, इससे अच्छा तो ही वहीं उसकी दूकान पर ही जाकर इसके आध्यात्मिक अर्थ को खोजो।

अब मैं उस पान का हिसाब बता रहा हूँ। पान मुँह में पड़ने पर दिखाई नहीं पड़ता। तुमने बरई से पान मंगवाया और बीरे बना बना कर उसे खिला दिया। पान के बीरे को कबीर ने बताया है और उस खाये हुए पान को उदर के भीतर स्थित बताते हो। सत्गुरु पान पर आकर मिलते हैं और बिना सत्गुरु के किसी ने यह राह देखी नहीं है।

जिन आठ मेवे की चर्चा करते हो, वस्तुतः पुरुष ही अठमेवा है। सत्य पुरुष कबीर ने उसे इस प्रकार से बताया है कि मेवा थाल को तो शिष्य अपनी काया में लिए रहता है। पूर्ण काया में जो ज्योति है, उस कपूर को तुम बनिये के यहाँ से खरीदकर ले आते हो। ये पाँचों इन्द्रियाँ वासनाओं द्वारा विनाश करती हैं–ये पाँचों वर्तन शरीर में इन्द्रियों का निवास है॥

तुम लीन्हा ताँबा और काँसा। या से भूले अगम तमासा॥
पुंगीफल सुपारी गाई। स्वाँसा पवन चलै तेहि माई॥
सो पारी पारी पद जाई। तुम बनिये की हाट मँगाई॥
सेतै बस्तर बास बतावा। तुम बजार से कपरा लावा॥
उन चंदा पर तानि बतावा। तुम घर कपरा बाँधि तनावा॥
उन तन्दुल सेर सवा बतावा। तुम चौके चाँवल मंगवावा॥
कदली पत्र छेदन उन कहिया। तुम केले के खंभ गड़इया॥
सेत मिठाई उन बतलाई। तुम गुड़ मीठा खाँड़ मँगाई॥
नौ के तुम चौका चिन्हवावा। तुम सगरा घर जाइ लिपावा॥
आवै रित उन साज बतावा। तुम दीपक की आरति लावा॥
पाँचौ सब्द अखंडित कहिया। तुम खँजरी पर सब्द सुनइया॥
पाँच सब्द का कहौं बिधाना। न्यारा न्यारा ठाम ठिकाना॥
सत्त सब्द पहिले परवाना। सो कोइ साधू बिरले जाना॥
सत्त सब्द सतलोक निवासा। जहँवाँ सत्तपुरुष कर बासा॥
दूजा सब्द सुन्न के माईं। तीजा अच्छर सब्द कहाई॥
चौथा ओंकार बिधि गाई। पंचम सब्द निरंजन राई॥
चढ़ि ब्रह्मंड फोड़ असमाना। सुरति सब्द में लगै निसाना॥

अर्थ–तुम ताँबे और कांसे को खरीदते हो, इससे उस अगम्य तत्त्व की रचना क्रीड़ा को भूल बैठे हो। पुंगीफल और सुपाई की बात कही गई है–जिसके अन्तर्गत श्वास वायु चला करती है। उसको तुम सुपारी कहकर उसे बाजार के बनिये से मंगाते हो। श्वेत वस्त्र एवं विस्तर बताया गया है, तुम उसके लिए बाजार से कपड़ा खरीद कर लाते हो। वे 'चन्द्रमा' (सुषम्ना) के ऊपर तानकर वर्णन करते हैं और तुम घर में उस कपड़े को बाँधकर तनवा देते हो। वे सवा सेर चावल की बात कहते हैं और तुम चौंके पर चावल रखने के लिए मंगाते हो।

वे कदली पत्र के छेदन की चर्चा करते है और तुम केले का खम्भ गाढ़ देते हो। श्वेत मिष्ठान की बात वह कहते है और तुम गुड़, मीठा एवं खाँड़ मगाते हो। तुम नौ चौके की बात करते हो पर सारे घर भर में जाकर गोबर से लिपवा देते हो। ऋत् के आगे के पूर्व वे उसकी सज्जा बताते हो और उसके बदले तुम दीपक की आरती लाते हो।

पाँचों शब्द सन्तों द्वारा असंठित कहें गये हैं और तुम खजड़ी पर गाकर शब्द सुनवाते हो। मैं पाँचों शब्दों के विधान के विषय में बताता हूँ–उनके पृथक् -पृथक् स्थान तथा ठिकाने हैं। सत्य शब्द प्रथम प्रमाण है–उसे कोई ही एकाध बिरला साधु समझाता है। इस सत्य शब्द का सत्तलोक में निवास है, वहाँ पर सत्पुरुष का निवास स्थान है। दूसरा शब्द शून्य से सम्बद्ध है, तीसरा अक्षर 'शब्द कहलाता है। चौथा अक्षर ओंकारविधि है और पाँचवाँ शब्द निरंजन राय है। ब्रह्मांड पर चढ़कर शून्याकाश को फोड़ दो और तब सुरति शब्द लक्ष्यविद्ध होता है।

ताहि पार सतलोक बिराजा। अखंड सब्द ता ऊपर गाजा॥
मिलै संत कोइ भेद बतावै। सत वोहि पंथ संत से पावै॥
दीन होइ गरुवाई डारै। संत कृपा से उतरै पारै॥
पंथी भेष टेक नहिं राखै। सुरति चीन्हि कै द्वारा ताकै॥
चौका काया कबीर बतावा। बोली चीन्ह भेद जिन पावा॥
जो समान चौका कर साजा। सो समान तन माहिं बिराजा॥
जो जो वस्तु चौका में गाई। भिनि भिनि घट भीतर दरसाई॥
अंतर घट जो चौका कीन्हा। मरम सत्तलोक सोइ चीन्हा॥

अर्थ–उसके उस पार सत्य लोक शोभित है और उसके ऊपर खण्ड शब्द शोभित है। कोई संत के मिलने पर ही, वह उसका रहस्य बतलाता है और तब उस संत द्वारा वह मार्ग प्राप्त करता है। साधक दीन बनकर अपने भारी पन को दूर करता है और वह संतों की कृपा से भवसागर पार उतरता है। धर्मानुयायी वेष रचना और केवल अपने मत की दृढ़ता पर ही नहीं टीका रहता। वह सुरति को पहचानकर उसके द्वारा उसके माध्यम से देखता। काया कबीर के चौंके का मैंने वर्णन किया–भाषा पहचान कर उसके लक्षणों को निर्दिष्ट किया। जो कुछ सामान खरीदकर चौका की सज्जा करते हो, वह सामान सभी कुछ शरीर में ही है। जिन-जिन वस्तुओं का वर्णन चौका में किया गया है, इसी घट के भीतर ही उन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाया गया है। जो व्यक्ति इस शरीर के अन्तर्गत स्थित चौका सिद्ध कर लेता है, वह सत्यलोक का रहस्य पहचानना है।

॥ छन्द ॥

चौका बिधि गाई भाखि सुनाई, जो कबीर मुख आप कही।
तुलसी सब भाखी देखा आँखी, जब कबीर की साखि दई॥ १॥
घट भीतर जाना भेद बखाना, फोड़ि निसाना पार गई।

अंतर गति गाई भेद सुनाई, तन भीतर बिधि बात कही ॥ २ ॥
देखा सतलोका अगम अलोका, चौका चौथे पार गई।
येहि बिधि हम भाखा नैनन ताका, सेतु पुरइन तन तार लई ॥ ३ ॥
तोरा तन ताला खोलि किवारा, अगम निगम का भेद कही।
तुलसी कहै साँची यह बिधि बाँची, सब्द सुरति गुरु गैल गई ॥ ४ ॥

अर्थ–जिसे कबीरदास जी ने स्वयं अपने मुख से गाया है, मैंने उस चौकाविधि को सुना दिया है। जब कबीर की साक्षी मैंने दी और बताया तो उस चौका को सभी ने अपनी आँखें से देखा। उसे शरीर के भीतर समझा, भेदों का वर्णन किया और सुरति उस निशान को फोड़कर उस पार जा पहुँची। मैंने साधना की अन्तर्गति वर्णन किया और शरीर के भीतर उसकी रचना की बात बताई। उस अगम्य एवं अलोक्य सतलोक को मैंने देखा, और चौका चौथे लोक के उस पर जा पहुँचा। अपने नेत्रों से देखकर मैंने इस प्रकार उनका वर्णन किया, और इस शरीर में ही श्वेत कमलिनी की स्थिति प्रगट हुई। मन के ताले को तोड़कर मैंने किवाड़ खोल दीं और अगम निगम का भेद बता दिया। इस प्रकार समझाकर तुलसीदास ने सही-सही बातें की और शब्द सुरति गुरु के मार्ग पर चल पड़ी ॥

॥ छन्द ॥

सतगुरु मारग चीन्ह दीन दिल लाइ कै।
बूझै अगम की राह पाइ पद जाइ कै ॥ १ ॥
दृग पर चौका पान जानि जब पाइये।
नरियर सीस सँवारि सार समझाइये ॥ २ ॥
तत मत गुन हैं तीनि सो तिनुका तोरिया।
सुरत निरत निज नैन नारियर मोरिया ॥ ३ ॥
सूरति चढ़ै असमान पोढ़ि सुर्त डोरि है।
दीन्हा दीनदयाल काल सिर फोड़िहै ॥ ४ ॥
इंद्री वासन पाँच बासना जाइआ।
अठमेवा है पुरुष बाट तब पाइया ॥ ५ ॥
काया मद्धे पूर कपूर जनाइया।
पाँच तत्त तन अगिनि जोति दरसाइया ॥ ६ ॥
होत जोति उँजियार पार स्रुत से लखौ।
सार सब्द मत द्वार लार स्रुत से पकौ ॥ ७ ॥
मन बैठक है बास स्वाँस सुन से भई।
पान सुपारी सेत सोई चौका कही ॥ ८ ॥
गगन चढ़ै असमान चदरवा तानिया।
सेत माहिं है स्वामि पान सोइ आनिया ॥ ९ ॥
नौतम द्वार लिपाइ सोई नौ द्वार है।
अष्ट कँवल दल फूल मूल सोइ सार है ॥ १० ॥

अर्थ–दिल लगाकर (आत्मीयता पूर्वक) इस दीन ने सत्गुरु के मार्ग को पहचान लिया। पद पाकर तथा वहाँ जाकर इसके अगम्य का मार्ग समझा॥ १ ॥।॥

आँखों पर चौका और पान को पाकर नब उनके विषय में जाना तब नारियल रूपी शीश सँवारकर उसका तत्त्व समझाया। उस मत के हिसाब से, उन्हें समझाकर तिनका तोड़ा और सुरति तथा निरति के प्रज्ञादृष्टि से नारियल को मोड़ा। सुरति की डोर पर चढ़कर शून्याकाश तक पहुँचा और उसे दीन दयालु सत्पुरुष की दे दिया और उन्होंने काव्य रूपी नारियल का सिर तोड़ डाला॥ १-४॥

इन्द्रिया वर्तन है और पाँच वासनाएँ इनके द्वारा उत्पन्न की गई हैं–अठमेवा पुरुष का मार्ग है, वह बिना इनके नहीं मिलता॥ ५॥

काया के मध्य में पूरित कपूर तब समझ में आता है। जब पाँच तत्त्व रूपी अग्नि की ज्योति दिखाई पड़ने लगती है॥ ६॥

उस ज्योति में उजाला हो उठता है, यदि श्रुति से पार उन्हें देखें। शब्द का सार तत्त्व सत्त का द्वार है और वह साधक के प्रेम की धारा में पका हुआ है। शून्य से उत्पन्न श्वास बास है, मन बैठक है, पान और सुपारी श्वेत है, इसीलिए उसे चौका कहा गया है॥ ७-८॥

शून्याकाश में चित्त चढ़ता है और चढ़कर समाधि की चद्दर तान लेता है–वह श्वेत में श्याम वर्ण का है, और वही पान ले आता है॥ ९॥

नए द्वारों की लिपाई होती है, वह नव द्वार हैं, अष्ठ कमल दल के मूल का वही सार तत्त्व है॥ १०॥

येहि बिधि चौका चार सार सोइ भाखिया।
और चौका जग रीति चित्त नहिं राखिया॥ ११॥
येहि बिधि चौका चाह थाह जब पाइया।
अगम चढ़े सोइ संत पंथ दरसाइया॥ १२॥
धरमदास धरि ध्यान सुरति समझाइया।
सुरति फोड़ असमान सब्द जब पाइया॥ १३॥
अटल बयालिस बंस राज अस गाइया।
या को भाखूँ भेद भाव दरसाइया॥ १४॥
चालिस सेर मन फेर इकतालिस स्रुत भई।
बिधी बयालिस सब्द अटल ऐसे कही॥ १५॥
जो कोइ मिलि हैं संत भेद अस भाकिया।
मन चढ़ि सुरति सँवारि सब्द में राखिया॥ १६॥
सुरति सब्द मन मेल सैल समझाइया।
अटल बयालिस बंसराज अस गाइया॥ १७॥
तुलसी भाखा भेद भाव दरसाइया।
चौका कीन्ह कबीर हंस मुकताइया॥ १८॥

अर्थ–इस प्रकार से उस चार चौके के सार तत्त्व को मैंने बतलाया है। अन्य संसार की रीति के रूप में प्रचलित चौके हैं, उस चित्त में नहीं रखना चाहिए॥ ११॥

इस प्रकार, जब चौके की थाह प्राप्त करेंगे तो उसकी चाह होगी। वही संत अगम ब्रह्मांड पर चढ़ता है, वह। इसके विषय में बताता भी है ॥ १२ ॥

संत धर्मदास (कबीर के शिष्य) ने ध्यान धारण करके इसे समझाया था और उसे उन्होंने तब किया, जब सुरति समाधि द्वारा शून्य मंडल को उन्होंने फोड़ा ॥ १३ ॥

ऐसा गाया गया है कि बयालीस वंशों का राज्य अटल रहेगा। इसके भेदभाव को दर्शित करते हुए मैं इसका वर्णन कर रहा हूँ ॥ १४ ॥

चालीस मन के फेर है और इक्तालिसवाँ स्तुति (सत्तसंत कथन) बयालिसवाँ अटल वंश 'शब्द' है,इसे इस प्रकार कहा गया है।। १५ ॥

जो कोई सन्तों से मिलेगा, वह इस भेद का वर्णन करेगा। मन पर चढ़कर सुरति को सँवार कर इसे 'शब्द' में रखेगा। सुरति शब्द एवं मन के सम्मिलन के शिखर को वह समझाएगा। बयालीस अटल वंशों का वर्णन इस प्रकार से गाया गया है ॥ १७ ॥

तुलसी साहब कहते हैं कि बदली हुई (अपनी भाषा में) भाषा में इसके भेदभाव का स्पष्ट किया है। संत-रूपी हंसों की मुक्ति के लिए कबीरदास जी ने यह चौका किया है ॥ १८ ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी कहै पुकार, फूलदास चौका बिधी।
ये गति तनिहिं बिचार, जो कबीर चौका कहा ॥ १ ॥
चौका चार चिताव, सुरति सब्द तुलसी कहै।
दीन लीन मन भाव, भेद संत दरसावही ॥ २ ॥

अर्थ–तुलसी साहब पुकार कर चौका की इस विधि को बतलाते हैं। ये सारी चौका की गतियाँ शरीर में ही हैं, कबीर ने इसी चौका (शरीर चौका के विषय में कहा है ॥ १ ॥

इस चार चौके के देखो, तुलसी देखने के लिए केवल सुरति शब्द (माध्यम के रूप में) कहता है। उसके समर्पित दीन मन का भाव उसी में लीन है, उसके भेदों का वर्णन तो संत ही कर सकता है (अन्य नहीं)।

॥ चौपाई ॥

अस चौका कबीर पुकारा। पुरइनि पात पर साज सँवारा।।
जो जल पुरइनि बूझ न लावौ। तन में पुरइनि खोज लगावौ ॥
ता पर बैठि करौं चित चौका। सूरति चढ़ै मिटै मन धोका ॥
जब कोइ संत सुरति लखवावै। पुरइनि सेत सत चौका पावै ॥
पुरइनि पात नभ गगन अकासा। पावै सोइ सतगुरु का दासा ॥
ता कर भेद लखावै संती। पावै सोई कबीरा पंथी ॥
पान फोड़ि कै सुरनि चढ़ावै। सहस कँवल दल अंदर पावै ॥
दोइ दल कँवल द्वार में ताकै। सुन की धुन्न सुरति से राखै ॥

अर्थ–कबीर के ऐसे चौके के विषय में पुकार कर कहा है। उन्होंने सारी समाधि को पुरइन के पत्ते पर सँवारा है। यदि जल में स्थित पुरइन समझ में नहीं आती तो इस शरीर में स्थित कमलनी को खोजो। उस पर बैठकर चित्त में चौका बनाओ। जब कोई संत किसी को सुरति समाधि का दर्शन कराए, तब वह शत श्वेत कमलिनी पर चौका प्राप्त करेगा। कमलिनी के पत्ते नभ है, गगन है, आकाश है और उसे

वही प्राप्त करते हैं, जो सतगुरु के दास हैं। उसके रहस्य को सन्तजन दिखलाते हैं, इन्हें वही प्राप्त करते हैं–जो कबीरपंथी हैं। पान को तोड़कर जो पुरति समाधि ले और सहस्रार कमल दल के अन्दर प्रवेश करे–वही कमलदल उसके द्वार पर है, और वहाँ पहुँच कर शून्य में उत्पन्न होने वाली ध्वनि (अनाहत नाद) सुरति समाधि में स्थिर कर ले॥

धरती ऊपर तरे अकासा। ता के चारि कँवल मधि बासा॥
बा के बीच नाल नल जानी। धधकै जोर गगन से पानी॥
ता नाली चढ़ि सुरति सँवारा। निरखै पिंड ब्रह्मंड पसारा॥
ता के परै अगमगढ़ घाटी। हिये दृग नैन निरखिये बाटी॥
जोड़ा कँवल दोइ दल चारी। तिरबेनी सोइ संत पुकारी॥
सुरति अन्हाइ सुन्न के पारा। ता के परे अगम का द्वारा॥
पुनि सुन महासुन्न के पारा। सत्त लोक सत पुरुष अपारा॥
सूरति सतगुरु मिलै ठिकाना। तुलसी चौका भाखि बखाना॥
सूरति सिष्य सब्द गुरु पावै। चौथा पद सतगुरु गति गावै॥

अर्थ–ऊपर पृथ्वी है, आकाश नीचे है, और उसके मध्य में चारकमलों का वास है। उसके बीच में कमलिनी के मृणाल दण्ड की नल समझो और उसी के माध्यम से उस शून्यकांश में (अग्नि की भाँति) जल धधकता है। उसी नाली पर से चढ़कर साधक सुरति सँवारता है और ब्रह्माण्ड में प्रसरित पिंड को वह देखता है। उसके आगे, अगम्य दुर्ग की घाटी है और हृदय की आँखों के द्वारा उसके मार्ग को परखो। यहाँ दो कमल हैं–दो–दो दलों से विकसित चार दल हैं और संत जन इसी को त्रिवेणी कहते हैं। इस शून्य के पास सुरति में स्नान करके उसके उस पर अगम्य का द्वार है (पहुँचो)। पुनः सुनो, उस महाशून्य के उस पार अपार सामर्थ्य से सम्पन्न सत्यलोक एवं सत्पुरुष हैं। वहाँ सुरति एवं सत्गुरु इन दोनों की मदद से स्थान मिलता है। इस प्रकार तुलसी ने चौका का वर्णन करके स्पष्ट किया है। 'शब्द' गुरु है, सुरति शिष्य है, और चतुर्थ पद सत्गुरु की गति गाई गई है।

॥ सोरठा ॥

तुलसी समझ बिचार, फूलदास चौका बिधी।
ये गति मति है सार, जो कबीर चौका कहा॥

अर्थ–हे फूलदास! तुलसी ने समझ करके और (पूरी तरह से) विचार करके चौका की विधि बताई है। यह सम्पूर्ण गति (ज्ञान) और मति (बुद्धि) का सार तत्त्व है, इसे कबीर ने चौका के रूप में बताया है॥

॥ चौपाई ॥

फूलदास चौका बिधि जाना। ये कबीर तन माहिं बखाना॥
चौका तन के माहिं सँवारा। ये कबीर बिधि माहिं पुकारा॥

अर्थ–इस प्रकार महन्त फूलदास ने चौका की विधि समझी। वह चौका शरीर के अन्दर ही है। यह चौका शरीर के अन्दर ही सँवारा हुआ है और कबीर की साधना विधि के अन्तर्गत इसका (इस प्रकार) वर्णन किया गया है।

॥ फूलदास उवाच। चौपाई॥

तुलसी राह पंथ बिधि गाई। सो सब समझ परा मन माईं॥
बिन सतसंगति राह न पावै। सत्त सत्त तुलसी गोहरावै॥
मन महंत कछु कान न आवै। अंत बाद नरकै लै जावै॥
ये सब भूल भाव हम चीन्हा। चौका पट्टा जगत अधीना॥
चौका से कछु काज न होई। वे चौका औरं बिधि जोई॥
तुलसी स्वामी चौका भाखी। बिधि बिधान बिधी कहि जा की॥
काया माहिं रीति बतलाई। सोइ चौका सत सत्त चिन्हाई॥
ये सब और पखंड पसारा। भौजल खलक खानि की धारा॥
जो कबीर चौका बिधि गाई। सो स्वामी तुम समझ सुनाई॥
चौका काया माहिं पुकारा। जस कबीर कहि तुलसी सारा॥
खूब खूब मन में ठहरानी। तुलसी बचन सत्त कर मानी॥
तुलसी कबीर भेद नहिं दूजा। हमरी बुधि नैनन अस सूझा॥
जग अजान कछु मरम न जाना। डिंभि पखंडि भेष भरमाना॥
ये जग रीति जीति नहिं पावै। भेष पंथ सब पोल चलावै॥
माला कंठी सेली माहीं। भूले पंथ भेष यहि राही॥
जो कोई मंत्र जंत्र को जानै। उन को बड़े संत करि मानै॥
जो रथ गाड़ी बैल चलावै। जग सोइ बड़े साध ठहरावै॥
गाय भैंस और खेती होई। चेला गाँव महंती सोई॥
माया मोह बँधा संसारा। जिन को साधू कहै लबारा॥

अर्थ–तुलसी साहब ने मार्ग तथा पंथ का विधिपूर्वक गान किया, जो सबके मन में समझ में आ गया। बिना सत्संगति के मार्ग नहीं मिलता। यह तुलसी सही पुकार कर कहते हैं। मन रूपी महन्त के बिना सत्संगति से ज्ञान नहीं मिलता और मृत्यु के बाद उन्हें वह नरकगामी बनाता है। इस समस्त भूलों के मन्तव्यों को मैंने समझ लिया है। अभी तक चौका-पट्टा को हम संसार के अधीन कहते रहे हैं। चौका से कोई काम नहीं होता। यह चौका तो अन्य प्रकार का है। जिस विधिविधान से उसकी बात बताई गई है, तुलसी स्वामी ने चौका की विधि का वर्णन किया है। हे स्वामी, आपने उसके विषय में अपनी समझ सुनाई है। आपने चौका को शरीर के मध्य पुकारा है, जैसे कबीरदास जी ने कहा है, उन सारी की सारी बातों को तुलसी साहब ने भी कहा है। आपकी बात अच्छी तरह से मन में ठहर गई है। तुलसी साहब और कबीर के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है, इस प्रकार, मेरी बुद्धि के नेत्रों को दिखाई पड़ा। संसार अज्ञानी है, वह रहस्य के मर्म को नहीं समझता। वह तो पुत्र एवं पाषंड के भेष में भरमा हुआ है। इस संसार को ही जीता हुआ कहता है, किन्तु जीत नहीं पाता। पंथ और भेष सब पाखंड है। माला, कंठी, सेली द्वारा धर्म पंथ सब भूल चुके हैं, और इस प्रकार की भेष रचना तथा गलत मार्ग पकड़ रखा है। जो कोई मंत्र तंत्र को जानता है, उनको बड़ा सन्त बताया जाता है। जो सन्त धर्म के रथ तथा धर्म की बैलगाड़ी चलाये हैं, संसार उन्हीं के बड़ा साधु तय करता है। जिसकी गाय, भैंस और खेती होती है उसे के चेलों की गाँवों में महन्ती होती है। इस माया मोह में संसार बंधा हुआ है, लोक जिन्हें साधु कहते हैं, वह साधु नहीं लबार है।

॥ चौपाई ॥

जग अंधा अंधा भया भेषा। ये दोउ पंथ इष्ट की टेका॥
जग में इष्ट टेक लौ लावै। भेष टेक पंथी गोहरावै॥
जग अंधा पुनि भेष भुलानो। ये सब काल राह रस जानौ॥
जहँ लग अंत पंथ जग माईं। भूले फिरैं राह नहिं पाई॥
चेला करैं द्रव्य के काजा। भोजन खान पान कर साजा॥
येहि आसा बस फिरैं अयाना। बंधन जीव काल नहिं जाना॥
जिनसे मुक्ति जगत सब माँगै। आपा सँग रह भोग न त्यागै॥
जस जस रीति जगत की होई। तस तस साधू समझि बिलोई॥
अस अस साध जगत में लेखा। जो कथि कही सो नैनन देखा॥
संत रीति रस जगत न जाना। डिंभ करै तेहि संत बखाना॥
संत दयाल दरस नहिं चीन्हा। उन बिन फिरै कर्म लौलीना॥
वे दयाल के दरसन पावै। मुक्ति राह और अगम लखावै॥

अर्थ–सारा संसार अंधा हो चला है, (साधु बेष को देखकर) वह और भी अंधा है। ये दोनों धर्म मार्ग (साधु की अंधता और बेष की अंधता) इच्छा तथा कामनाओं (इष्ट) के प्रति समर्पण से सम्बद्ध हैं। लोग संसार में इन्हीं दोनों के प्रति संसक्ति रखते हैं। जो भेषभूषा के प्रति संसक्ति रखते हैं, उन्हें धर्मपंथी कहा जाता है। सारा संसार अंधा होकर साधुवेष को देखकर उसी में भूल बैठा है। समझ लो, यही मृत्यु के बाद भवसागर की राह है। जहाँ तक काल द्वारा मृत्यु का अन्त है, वहाँ तक धर्ममार्ग जाते हैं–साधक एवं शिष्य दोनों विस्मृत होकर भूले फिर रहे हैं, उन्हें राह नहीं मिल रही है। द्रव्यार्जन के लिए गुरु शिष्य बनाते हैं–और उनकी दृष्टि भोजन, खान-पान तथा साज-सज्जा में लगी रहती है।

इसी आशा में लिप्त वह अज्ञानी की भाँति भटकता रहता है–वह कर्मबन्धन, जीवस्वरूप एवं कालगति तीनों को नहीं समझता। जिन व्यक्तियों से सारा संसार मुक्ति की याचना करता है, असत्य एवं भोग संसक्ति के साथ रहते हैं, (भोग को त्यागते नहीं)। जैसे-जैसे संसार में रीति रिवाजों वे प्रचलन होता है, ठीक उसी प्रकार से वे उसे समझकर उन्हीं में विलीन हो उठते हैं। आज साधुओं की संसार में यही दशा है, जो उनके बारे में जो कथनी कही जा रही है, मैंने अपने नेत्रों से उसे देखा है। संतों की रीति एवं रस को संसार नहीं समझता और उसके मूल स्वरूप में साधुगण विलीन रहते हैं। संसार ऐसे साधुओं का वर्णन हँसी और परिहासपूर्वक करता है। आज के साधुओं ने दयालु सन्तों को देखा तक नहीं है, और उनके बिना वे धर्म में पूरी तरह से लीन दिखाई पड़ते हैं। यदि कभी वे दीन के प्रति दयालु संतों के दर्शन पा जाते हैं–तब वे युक्ति के मार्ग एवं अगाम्य तत्त्व को उन्हें दिखाते है।

॥ चौपाई ॥

जिनके बड़े भाग जग माईं। नित प्रति संत चरन लौ लाई॥
काल जाल और जम की फाँसी। दरसन संत कर्म भये नासी॥
वे साधू बिरले जग माईं। जग जल में जस कँवल रहाई॥
वे सज्जन सत साध कहावैं। उनकी गति मति बिरले पावै॥
संत भेद भिनि कोउ कोउ जाना। भेष डिंभ सब भर्म भुलाना॥

ये सब जग में कीन्ह दुकाना। या में जगत भेष लपटाना॥
जीव लोक की राह नियारी। कृपा संत बिन पावै न पारी॥
हम तो जनम वादि सब खोवा। समझि परी तब सिर धुनि रोवा॥
बार बार नर देंह न पावै। ये तन दुरलभ सब गोहरावै॥
जोगी ऋषी मुनी अरु देवा। तप जप जोग ज्ञान बहु सेवा॥
पुनि निज नर देंही नहिं पाया। हम सबूझ तन बादि गँवाया॥
अब ये समझि परा सब लेखा। भेष पंथ में कछु न देखा॥
भेष पंथ मद राह अबूझा। सब अबूझ बस काहु न सूझा॥
मान बड़ाई दोजख काजा। जिभ्या इन्द्री सब सुख साजा॥
ये कबीर ने कहा पसारा। उन सब कीन्ह जीव निरबारा॥

अर्थ—हे स्वामी! जिनके बड़े भाग्य से यह सारा संसार-नित्य प्रति संतों की चरण सेवा में लगा रहता है तथा काल जाल एवं यम द्वारा मृत्युदण्ड तथा कर्म का विनाश इन संतों के दर्शन का फल है। वे साधु इस संसार में विरले हैं, जो इस संसार रूपी संसक्ति के जल में कमल की भाँति रहते है। वे सज्जन हैं तथा उन्हें ही साधु कहा जाता है। सन्तों के भिन्न-भिन्न भेदों को कोई-कोई ही समझता है। यहाँ तो सारा संसार भेष रचना एवम् डिंभ (आडम्बर) के भ्रम में भूला हुआ है। ये सारे भ्रष्ट साधुजन संसार में दुकान किए हुए हैं, इनके भेष में समस्त संसार लिपटा हुआ है। इस जीव लोक (पृथ्वी लोक) की बात विलक्षण है—यहाँ सन्तों की कृपा के बिना अपना पक्ष नहीं दिखता। हमने तो व्यर्थ के कार्यों में सारा जन्म नष्ट कर दिया। मुझे तब यह बात समझ में आई तो मैं सिर धुन-धुन कर रोने लगा। व्यक्ति-बार-बार इस मानव शरीर को नहीं प्राप्त करता, सभी बताते हैं कि यह शरीर दुर्लभ है। योगी, ऋषि, मुनि और देवता, जप तप, भोग, ज्ञान एवं अनेक प्रकार की सेवाओं के बाद ली यह नर देह पुनः नहीं प्राप्त होती और हम नासमझ हैं तथा शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर देते हैं। अब यह सारी बातें समझ में आ गई—और मैंने इस वेष रचना और धर्मपंथ के अनुसरण को त्याग दिया है। वेष तथा पंथ ये सब मार्ग अबूझ हैं, सबकुछ अबूझ है, कुछ भी नहीं सूझता। मान एवं यश जिह्वा का स्वाद और सारे सुख-साज नरक के हेतु हैं। कबीर ने इन सबको नरक का हेतु बताया है। कबीरदास जी ने कहा है कि ये सभी संसार के फैलाव है और इसी पर समस्त जीवों का सन्तुलित जीवन आश्रित है।

॥ चौपाई ॥

ना कोइ बूझी समझ बिचारा। इन सब कीन्ह दुकान बजारा॥
ये दुकान से लोक जो जावै। तौ सब जगत रहन नहिं पावै॥
साँच झूठ सब परा निवेरा। चित्त चीन्ह नैनन से हेरा॥
तुलसी बिधि बिधि सत्त बखानी। मन में ठीक ठीक पहिचानी॥
तुलसी स्वामी संत सुजाना। अस अस बूझ सुनाई काना॥
तन और प्रान छूटि सब जाता। ये पुनि भेद हाथ नहीं आता॥
साखी सब्द अनेकन देखा। ग्रंथ कबीर अनेक बिबेका॥
सो सब देखि देखि पचि हारी। बस्तु न पाई रहे अनारी॥
सार बेद संतन ने जाना। सो ग्रंथन में नाहिं बखाना॥

साखी सब्द पढ़ै जो कोई। वस्तु न पइहै सिर धुनि रोई॥
कह्यो कबीर सारपद गुप्ता। परगडट माहिं लखो सब थोथा॥
ये तो संत गुप्त मत भाखी। ता की नकल ग्रंथ में राखी॥
ढूँढ़ै अब या में अज्ञाना। पचि पचि मूरख भये हैराना॥

अर्थ–किसी ने भी समझ विचार कर इनके विषय में नहीं सोचा और आज के धर्म पंथियों ने तो सम्पूर्ण संसार को दुकान बना दिया है। इन दुकानों में दुकानदारी करके जो उस लोक (मृत्यु लोक) में जाता है, तो वह पूरे लोक में रहने नहीं पाता। सत्य और झूठ का सारा-का-सारा निपटारा अभी बाकी है, चित्त उसे पहचानता है किन्तु भौतिक नेत्र उसे खोज रहे हैं। हे तुलसी साहब! आपने अनेक प्रकार से सत्य का वर्णन किया और आपने अपने मन द्वारा उन्हें सही-सही ढंग से भी पहचान रखा है।

हे तुलसी साहब, आप स्वामी है, सन्त हैं, चतुर सहृदय है, आपने ऐसे-ऐसे रहस्यों को इस कान को सुनाया है। शरीर और प्राण धीरे-धीरे वय के बीतने के साथ छूट जाते किन्तु ये रहस्य हाथ नहीं आते। अनेको लोगों ने, शब्द, साखी को देखा है, कबीर साहब के ग्रंथों के अनेक विवेक तत्त्वों से अनेक लोग परिचित हैं। उन सब ने उन्हें देख देखकर पूरी तरह से हार मान ली है–क्योंकि मूल तत्त्वों की प्राप्ति उन्हें नहीं मिली–वे आज भी पूरी तरह से अनाड़ी हैं। यही व्यक्ति कबीरदास जी के सबद और उनकी साखियों को पढ़ते हैं, उसे वस्तु तत्त्व का ज्ञान तो होता नहीं, उसे वस्तु की प्राप्ति तो होती नहीं, उसे प्राप्त करने के लिए सिर पकड़ कर रोता रहता है॥ कबीर ने समस्त निचोड़ को गुप्त रूप से कहा है और उस प्रगट तत्त्व में भी सभी को ही झलकता है। मैंने वह तो सन्तों के गुप्त मत को कहा है और उसकी नकल मैंने कृति में की है। अब उसमें लोग (सार तत्त्व नहीं) अज्ञान की खोज करें। उन्हें पा-पाकर ये मूर्ख साधु और हैरान हो उठे।

॥ चौपाई ॥

ये सब ग्रंथ देखि हम भूला। साखी सब्द माहिं बहु झूला॥
आँखी फार फार हम जोवा। जनम अकारथ बादहि खोवा॥
सब्द साखि जो पढ़ि पढ़ि चलिहै। संत दृष्टि बिन कछू न मिलिहै॥
जो कबीर मुख कहि कर भाखी। संत दृष्टि बिन परै न आँखी॥
ता से संत चरन सिर दीजै। कारज और बात में छीजै॥
जो कबीर ग्रंथन में कहिया। सो तो भेद संत पै रहिया॥
हम जूझे ग्रंथन के माईं। केहि बिधि हमरे हाथे आईं॥
संत सुरति चढ़ि गये जो पारा। पावै तिन से भेद नियारा॥
जगत भेष नहिं भेद बिचारै। ये कहा समझै सार असारै॥
दीन होइ सतसंगति तौला। जा से सूझै बस्तु अमोला॥
तौलै दीन होइ निज दासा। सो स्रुति सार मिलै उन पासा॥
हम तो सरन संत कर लीन्हा। और बात नहिं आइ यकीना॥
जो कोइ लाख लाख समझावै। हमरे मन में एक न आवै॥

अर्थ–इन समस्त ग्रंथों की स्थिति देखकर हम भूल गए। वस्तुतः साखी और शब्द में बहुत पेंच (झूला) है। आँखों को फाड़-फाड़ करके हमने देखा, और आकरण सम्पूर्ण जीवन वाद-विवाद में नष्ट कर दिया। सबद और साखी जो पढ़-पढ़कर चलेंगे, वह व्यर्थ है, सन्तों की दृष्टि के बिना कुछ भी नहीं

मिलेगा। कबीर दास जी ने जो कुछ अपने मुख से कहकर बताया है, सन्तों के द्वारा दिखाई गई दृष्टि के बिना वह बात बुद्धि के नीचे नहीं आएगी। इसीलिए सन्तों के चरणों में अपना सिर रख दो और यह शरीर यथार्थ कार्य एवं वार्तालाप में समाप्त हो। कबीरदास जी ने जो ग्रंथों के अन्तर्गत कहा है, वही भेद हमें सन्तों में दिखाई पड़ता है। हे स्वामी! हम सब ग्रंथों में जूझ रहे हैं–हमें इसकी चिन्ता नहीं है कि किस प्रकार वह हमारे हाथों में आए। संत जन सुरति समाधि द्वारा चढ़कर जो उस पार चढ़ गए हैं, उनके द्वारा वे विलक्षण रहस्यों को प्राप्त करते हैं। वे न संसार की भेद रचना एवं भेद पर विचार करते हैं और असार-सार की भी इन्हें पूरी समझ नहीं है। दीन बनकर ये अपने को सत्संगति द्वारा तौलते हैं उससे इन्हें अमूल्य वस्तुओं की सूझ होती है। ये यदि दीनभाव से परिपूर्ण होकर अपनी दासता को तौलें तो उन्हें श्रुति (सन्तों की वाणी का सार तत्त्व) प्राप्त हो। मैंने तो सन्त की शरणागति प्राप्त कर ली है और अन्य किसी बात पर विश्वास नहीं होता। यदि कोई मुझे लाख-लाख तरीके से समझाए किन्तु मूल बात मेरी समझ में एक भी नहीं आती।

॥ चौपाई ॥

कहो को खोज सार कर दीन्हा। हम तो स्वामी तुलसी चीन्हा॥
संत कही और दास कबीरा। जो जो अगम पंथ पद धीरा॥
जिन जिन स्वाद पाइ पद हेरा। होइ हौं उन चरनन कौ चेरा॥
चरन लाग तुलसी के तीरा। उनहिं लखाया अद्‌बुद हीरा॥
अब कहुँ चित्त लगै नहिं भाई। तुलसी बस्तु अमोल लखाई॥
बार बार चरनन सिर नाई। कहिहैं तुलसी मोर सहाई॥
अब तौ पोढ़ पोढ़ कर पकड़ा। तुलसी चरनन में मन जकड़ा॥
और कहूँ मोहिं बोध न आवै। जो कोइ कोटि कोटि समझावै॥
समझि परा सब बात बिधाना। तुलसी बिन सूझै नहिं आना॥

अर्थ–बताइये किसने उस मूल तत्त्व के निचोड़ का अन्वेषण किया है, हमने तो इस विषय में केवल स्वामी तुलसी साहब को पहचाना है। निर्गुण मत के अन्तर्गत जो-जो अगम्य धर्म पन्थ हैं, उसे सन्तों ने कहा है या कबीरदास जी ने जिन-जिन सन्तों का स्वाद प्राप्त करते हुए स्वामी के पदों में उसे खोजा है, मैं उनके चरणों का दास हुआ। इस प्रकार मैं, तुलसी के चरणों के तट से लग गया हूँ। इन्होंने ही अद्‌भुत हीरे का दर्शन कराया है। हे भाई! अब यह चित्त और कहीं नहीं लग रहा है। तुलसी साहब ने अमूल्य वस्तु दिखा दी है। मैं बार-बार उनके चरणों में शीश झुकाता हूँ तुलसी साहब मेरी सहायता करेंगे। अब तो उनके चरणों को मैंने लेट-लेट कर पकड़ रखा है और तुलसी साहब के मन में यह चरण जकड़ उठा है। अन्य कहीं भी स्थान पर मुझे तत्त्व की बात समझ नहीं आती–चाहे कोई मुझे करोड़ों-करोड़ों बार क्यों न समझाए। सारी बातें एवं उनमें निहित रहस्य मुझे समझ में आ गया और बिना तुलसी साहब के कथनों को समझे यह अन्य किसी द्वारा सम्भव नहीं था।

॥ दोहा ॥

फूलदास बिनती करै, पुनि पुनि सरन तुम्हार।
मैं अचेत चेतन कियौ, तुलसि उतारयो पार॥

अर्थ–फूलदास तुलसी साहब से विनय कर रहे हैं कि मैं पुनः आपकी शरण में हूँ। मेरा मन अब संत चरणों में बस गया है और लगता है, तुलसी साहब की मदद से मैं अब भवसागर के उस पार उतर गया हूँ॥

॥ वचन तुलसी साहिब। दोहा॥

फूलदास सज्जन बड़े, तुम चित मति बुधि सार।
संत चरन अब मन बस्यौ, पैहौ सतसंग सार॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते है कि–हे फूलदास! तुम बड़े सज्जन हो, तुम्हारी मति, तुम्हारा चित्त और तुम्हारी बुद्धि सारग्राहिणी है। अब तुम्हारा मन सन्तों के चरणों में बस गया है और तुम्हें सत्संगति का सार तत्त्व (निष्कर्ष तत्त्व) प्राप्त होगा।

॥ चौपाई॥

फूलदास तुम साध सुजाना। तुम्हरी बुधि निरमल परमाना॥
दिन दोपहर भयौ मध्याना। अब परसादी करौ समाना॥
आटा चून चना कर होई। करौ प्रसाद भाजी सँग सोई॥
घीव न पास न पैसा होई। नोन मिरच चटनी सँग सोई॥
किरपा कर प्रसाद बनाई। पुनि वा को सब भोग लगाई॥

अर्थ–तुलसी साहब फूलदास को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे फूलदास! तुम सहृदय साधु हो अब प्रसादी (भोजन) की व्यवस्था करो, दिन दोपहर का मध्याह्न हो उठा है॥

चनाचूर्ण (चूनी) का आटा है, उसके साथ भाजी बनाकर प्रसाद ग्रहण करें। घी नहीं है और पास में पैसा भी नहीं है–नमक, मिर्च और चटनी के साथ उसे बनाएँ। कृपा करके आप प्रसाद बनायें और उसका सब भोग लगाएँ॥

॥ फूलदास उवाच। चौपाई॥

हम नहिं अपने हाथ बनैहैं। सीत उचिष्ट चरनामृत पैहैं॥
तुलसी उठि परसाद बनावा। भया प्रसाद साध सब आवा॥
सब साधू मिलि भोग लगाई। भोजन करि आसन पर आई॥
फूलदास बंदगी सिर नाई। सीस टेक कर परसे पाँई॥
हाथ जोड़ कर बिनती लाई। स्वामी मोहिं भव पार लगाई॥
हमहूँ दीन दडवत कीन्हा। सीस नवाइ चरन पुनि लीन्हा॥

अर्थ–हम उसे अपने हाथ से नहीं बनाएँगे। मैं तो उच्छिष्ट और ठंडा प्रसाद ग्रहण करेंगे। तुलसी साहब ने उठकर प्रसाद बनाया। प्रसाद बना, समस्त साधु गण आ गए। सभी साधुओं ने मिलकर प्रसादी का भोग लगाया और भोजनोपरान्त अपने आसनों पर आ बैठे। फूलदास ने प्रणाम करते हुए सिर झुकाया और कहा, हे स्वामी? आपने मुझे भवसागर के पार लगा दिया।

तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने भी दीनतापूर्वक दंडवत् और फिर उनके चरणों में शीश झुकाकर उसे ग्रहण किया।

रेवतीदास चरित्र

॥ वचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

फूलदास संग रहि इक साधा। मनमुख और मान मद माता॥
रेवतीदास ताहि कर नामा। फूलदास देखि घबराना॥
पुनि बोला मन में रिसियाना। स्वामी अब चलिये अस्थाना॥
फूलदास कहे आज न आवौं। तुम सब मिलि अस्थानै जावौ॥
हमहूँ भोर बिहानै अइहैं। राति यहीं चरनन में रहिहैं॥
तिन पुनि तरक कीन्ह इकबाता। तुम हूँ रहि हौ इनके साथा॥
हम को सूझि परा अस लेखा। तुम्हरी मति बुधि अचरज देखा॥

अर्थ–एक साधु फूलदास के साथ रहता था, वह अन्तर्मुखी तथा मान एवं मद में मस्त रहता था। उनका नाम रेवतीदास था और फूलदास को देखकर वह घबड़ा गया और मन-ही-मन नाराज होकर वह पुनः बोला कि हे स्वामी! अब आप अपने स्थान (मठ) में चलिए। फूलदास ने उत्तर दिया कि मैं आज नहीं आऊँगा और तुम सब मिलकर अपने स्थान (मठ) पर जाओ। मैं भी कल प्रातः आऊँगा और आज की रात्रि यहीं पर तुलसी साहब के चरणों में विश्राम करूँगा। उसके बाद पुनः उसने एक बात की तर्कणा की कि आप भी इनके साथ रहेंगे। हमें कुछ ऐसा समझ पड़ा है कि मैं आपकी मति और बुद्धि को आश्चर्य से देख रहा हूँ।

॥ फूलदास ॥ चौपाई ॥

गुसा खाइ बोल अस बोली। लै उतार दीन्ही सोइ सेली।।
फूलदास दीन्ही तेहि हाथा। रेवती सीस नवायौ माथा॥
गल बिच डारि महंती दीन्हा। सुखपालै बकसीसी कीन्हा॥
तुम तौ करौ महंती जाई। अब हम नहिं अस्थानै आई॥
चेला चला बैठि सुखपाला। फूलदास भया और हवाला॥
चेला मारग मता बिचारा। मन में सोच किया अधिकारा॥
छाँड़ि महंती हमको दीन्हा। या से अधिक बात कछु चीन्हा॥
सब सुख भोग मनै नहिं लाये। ये तौ अधिक बात कछु पाये॥
जो महंत पद होता भारी। तौ छाँड़त ये देत न डारी॥
ये सब बात तुच्छ सम होई। तल हमरे सिर डारी सोई॥
ये बिचार मन माहि समाना। मति भई सुद्ध उठा अस ज्ञाना॥
फिरि पीछे मारग से आये। सुखपालै अस्थान पठाये॥
सब मिलि कै जावौ अस्थाना। हम महंत संग उपज्यो ज्ञाना॥
मंगलदास रहे गुरु भाई। टोपी सेली तेहि पहिराई॥
आये पुनि महंत के पासा। जहँ तुलसी की कुटी निवासा॥

चौरदार सुखपाली गाइया। चौरा पर उन खबर जनाइया॥
मंगलचेला सुनि पछिताना। चौरा सून भया अस्थाना॥
पुनि बिचार कीन्हा मन माईं। यह अस्थान महंती जाईं॥
ये दोनों मिलि कीन्ह बिचारा। हम छाँड़ै तौ होय बिगारा॥
जो कछु होइ होइ सो होई। अब निबाह बिन बनै न सोई॥
मंगल मन मैं बहुत रिसाना। सेली पहिरि बैठि अस्थाना॥
रेवतीदास कुटी पर आवा। ले पकरे तुलसी के पाँवा॥
रेवतीदास बोले अब बानी। मैं रहि हौं इनके ढिंग स्वामी॥
कुटी सामने कुटी बनाई। दोनों रहे कुटी के माईं॥
रेवतीदास दीन दिल आनी। स्वामी से पूछौं इक बानी॥
गुरु चेला कर कैसा लेखा। सो स्वामी मोहिं कहौ बिबेका॥

अर्थ–गुस्सा होकर वे (फूलदास) इस प्रकार की बातें कहीं और अपनी उस सेली (महन्ती का चिह्न) को उतार दिया। फूलदास ने उसे उसके हाथों में दे दिया और रेवती दास ने अपना माथा और सिर झुका दिया। उसे रेवतीदास के गले में डालकर उन्हें महन्ती दे दी और एक प्रकार से सुखपाल के लिए पुरस्कार प्रदान किया। हे भाई! तुम जाकर अब महन्ती करो और अब मैं उस स्थान पर नहीं जाऊँगा। चेला रेवतीदास तो चल पड़ा किन्तु सुखपाल बैठा रहा और फूलदास की एक अन्य विशेष स्थिति हुई। शिष्य सुरतिदास ने मार्ग में यह विचार और मन-ही-मन अपने अधिकार के बारे में भी सोचा। महन्ती छोड़कर हमें दे दी है–लगता है, महन्ती से कोई बड़ी बात उनके समझ में आ गई है। यहाँ समस्त सुखों का भोग है, जिनके प्रति उन्होंने मन को नहीं संसक्त किया है, इन बातों से कोई बड़ी बात तुलसी के मठ में पा गए हैं। यदि महन्त का पद बड़ा होता तो उसे इस प्रकार वे न छोड़ देते। ये सारी महन्ती की बातें तुच्छ जैसी हो उठी है और उसे हमारे ऊपर डाल दिया है।

यह विचार रेवतीदास के मन में समाविष्ट हो उठा–इनकी मति शुद्ध हो उठी और उसमें इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न हुआ। वे मार्ग से लौट कर उनके पास आए और सुखपाल को अपने स्थान पर भेज दिया। अब तुम सभी मिलकर कबीर मठ में जाओ, हम महन्त के साथ रहेंगे ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ है। उनके गुरुभाई मंगलदास थे–उन्होंने सेलीमाला तथा टोपी उन्हें पहना दी और इसके बाद वे महन्थ फूलदास के पास आए–जहाँ पर तुलसी की कुटी उनके निवास स्थली के रूप में थी। चौबदार ने सुखपाली गाई और कबीर चौरा पर यह खबर दी।

उसे सुनकर मंगलदास नाम के शिष्य को बड़ा पछतावा हुआ और उसने कहा कि लगता है, कबीर चौरे का स्थान सूना हो उठा। उनहोंने पुनः मन में विचार किया कि यदि यहाँ कोई नहीं रहता तो इस स्थान की महन्थी समाप्त हो उठेगी। ऐसा उन दोनों (मंगलदास और सुखपाली) ने विचार किया कि यदि हम इस स्थान को छोड़ देते हैं तो यहाँ की व्यवस्था नष्ट हो उठेगी। जो कुछ होगा, सो होगा, बिना निर्वाह के अब यह कबीर चौरा का स्थान समाप्त हो उठेगा। यद्यपि मंगलदास मन में बहुत खिन्न थे, फिर भी, सेली पहन कर उस स्थान पर बैठ गए।

उधर रेवतीदास तुलसी साहब की कुटी पर आए, और उनके पावों को पकड़ लिया। रेवतीदास ने उनसे इस प्रकार की बात कही कि हे स्वामी! मैं फूलदास के पास ही रहूँगा। उन्होंने फूलदास के सामने कुटी बनाई और दोनों के मध्य रहे। रेवतीदास ने दिल में दीनता ले आकर कहा मैं स्वामी से (तुलसी साहब) से एक बात पूछना चाहता हूँ। गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध कैसा है–हे स्वामी! तुलसी साहब! इस सम्बन्ध में कतिपय ज्ञान की बातें कहें।

बचन, तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

रेवतीदास सुनौ तुम भाई। याकी बिधि कहौ समुझाई ॥
नहि कोई गुरू नहीं कोइ चेला। बोलै सब में एक अकेला ॥
जो कोइ गुरु चेला कर जाना। सोइ सोइ परे नर्क की खाना ॥
एक बोल सब माहिं बिराजा। गुरु चेला दोइत बिधि साजा ॥
चेला होइ नीकि बिधि भाई। कुरू होई चौरासी जाई ॥

अर्थ–हे भाई! रेवतीदास तुम सुनो, मैं इस विषय में समझाकर बताता हूँ। न कोई किसी का गुरु है और न कोई किसी का शिष्य। सभी के अन्तर्गत वह अकेला 'निरंकार' तत्त्व बोल रहा है। जो कोई एक दूसरे को गुरु या चेला कहकर जानता–वे सभी नरक की खानि में पड़ते हैं। एक शब्द सभी में विराजमान है और उस एक शब्द को इस संसार ने 'गुरु तथा शिष्य' के इन दो शब्द रूपों में सजा दिया है। हे भाई! चेला होकर अच्छी पवित्र विधियों को प्राप्त कर सकता है–और गुरु होकर वह चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है।

॥ दोहा ॥

तुलसी मैं तू जो तजै, रहै दीन गति सोइ।
गुरू नवै जो सिष्य को, साध कहावै सोइ ॥ १ ॥
तुलसी कह रेवती सुनौ, कहौं कबीर मुख बात।
कहि कबीर सब में बसौं, को गुरु चेला साथ ॥ २ ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि जो हन्ता एवं त्वदीप (मैं तुम) को परित्यक्त करता है, दीनता भरी गति में जीवन यापन करता है वह गुरु यदि शिष्य के प्रति नमन करता है तो वही सच्चा साधु है ॥ 1 ॥

तुलसी साहब कहते हैं कि हे रेवती! सुनो मैं स्वयं कबीरदास के मुख से कही हुई एक बात कहता है हूँ कि मैं (कबीर) गुरु तथा चेला के साथ-ही-साथ सभी में एक समान रूप से निवास करता हूँ।

॥ चौपाई ॥

कब कबीर सब माहि बिराजौं। सब मैं किया सभी मैं साजौं ॥
कह कबीर हम सब के माईं। सब हम किया सभी सब ठाईं ॥
सब के माहीं बासा कीन्हा। सब में हमीं हमीं को चीन्हा ॥
जो महंत चेला करै भाई। सब में रहा कबीर समाई ॥
ये बिधि बिर्धी कबीर पुकारा। का को चेला करै लबारा ॥
घट घट माहिं कबीर समाना। का को चेला करै हैवाना ॥
कहा कबीर मोपि सब में बूझा। चेला करै आँखि नहिं सूझा ॥
है कबीर सब काया माईं। ता को तुम चेला ठहराई ॥
कह कबीर सब ठाम ठिकाना। सोई कबीर का फूँकौ काना ॥
तुम्हरी मति कहौ कौन हिराई। कहा कबीर हम ठामै ठाई ॥
कहते तुमको लाज न आई। कहौ कबीर फिर गुरू कहाई ॥
कहौ कबीर सब माहिं समाना। गुरू कबीर की करौ बखाना ॥

तुम कबीर को स्वामी गावौ। पुनि वा को चेला ठहरावै॥
कस कस ज्ञान तुम्हारा भाई। भूल न अपनी देखौ जाई॥

अर्थ–कबीर साहब ने कहा है कि मैं सभी में समान रूप से विराजमान हूँ। मैंने ही समस्त सृष्टि की रचना और उसकी साज सज्जा की है। कबीर साहब कहते हैं कि मैं ही सभी का स्वामी हूँ, मैंने ही समस्त सृष्ठि रचना की है और उसमें मैं सर्वत्र स्थित हूँ। मेंने सम्पूर्ण सृष्टि के बीच निवास किया है–सभी में मैं ही हूँ और सभी मुझे ही पहचानते हैं। जो महन्त और उनके शिष्य करते हैं, मैं उनमें समाया रहता हैं। जगत के विधाता कबीर ने इस प्रकार बताया है फिर कौन ऐसा लबार गुरू होगा जो किसी को चेला बनाने की बात करेगा।

घट-घट में कबीर समाये हुए हैं, फिर, राक्षस जैसा गुरु किसे चेला बनाएगा। कबीर ने बताया है कि मुझे ही सबमें समझो फिर वह कौन-सा ऐसा अंधा गुरु होगा, जो चेला बनाएगा। गुरु-शिष्य दोनों इसी काया (शरीर) में वर्तमान हैं और उसे गुरु बनकर चेला निर्धारित करते हो, यह गलत है। कबीर दास जी ने कहा है कि सभी का निवास स्थान यह शरीर ही है और उन्हीं कबीर रूपी (मनुष्य) शिष्य का (गुरु बनकर) कान फूंकते हो। कबीरदास जी ने कहा है कि हम स्थान-स्थान (सर्वत्र) हैं–ज्ञात नहीं, तुम्हारी मति को कहो किसने खो डाला है। यह कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आ रही है, इस पर भी तुम कबीरदास जी को गुरु कहते हो।

जब कबीर सर्वत्र समाए हुए हैं तो तुम लोग गुरु कबीर का वर्णन कर रहे हो, (यह आश्चर्य का विषय है)। तुम सब कबीर को परमात्मा कह कर मानो। और तब तुम सब लोग उनके शिष्य बनो। हे भाई! तुम्हारा यह ज्ञान कैसा है, अपने ही घर की (मन की) भूल जाकर नहीं देखते।

अगम निगम का ज्ञान सुनावौ। अपने घर की भूल न पावौ॥
कहि कबीर मुख गाना गावौ। सब्द न खोजौ पोल चलावौ॥
नहिं कोई तुम को पकरन हारा। सो धन सब्द समझ की लारा॥
ता से सील पोल तुम लाई। पकरै तो कछु ज्वाब न आई॥
और अनेक बात अस नासी। कौन कौन कहुँ तुम्हारी फाँसी॥
अपना मता ऊँच करि ठानौ। ऊँचे का कछु भरम न जानौ॥
कहि कबीर मुख साँची बानी। तुम अबूझ कछु परख न जानी॥
कहि कबीर कथनी को गावै। बूझै वान न ता कौ आवै॥
मूक स्वाल हम पूछैं भाई। कँवल चौरासी कौने ठाईं॥
या की भेद राह बतलाई। कौन ठाम वे कँवल रहाई॥
नौलख कंवल कबीर बखाना। कहौ तु न उनका कौन ठिकाना॥
सहस कँवल दल सो पुनि भाखा। अष्ठ कंवल दल भेद कहौ ताका॥
चारि कँवल दल देव बताई। दोह दल कँवल कौन से ठाईं॥
ये सब कँवल जोग से न्यारा। जोगी न जानै भेद बिचारा॥
कँवल चक्र षट जोगी गाई। ऊन कँवलन से न्यारे भाई॥
या की बिधि बिधि कहौ बुझाई। कही कबीर पंथ तेहि नाहीं॥
जो कबीर मुख भाखि बखानी। ता की तुम या पूछौं बानी॥

अर्थ–अगम-निगम का ज्ञान तुम सुनाते हो लेकिन अपने मन की भूल तुम्हें समझ में नहीं आती। कबीर का नाम लेकर अपने मुख से कहते हो तुम शब्दों (कबीर के अनुभव एवं ज्ञान से जुड़े शब्द) को नहीं खोजते, झूठी गप्पे चलाते हो। तुम्हें यहाँ कोई पकड़ने वाला (समझाने वाला) नहीं है--मूल तत्त्व (धन , तो 'सबद' है, और वही आध्यात्मिक समझ का सारतत्त्व है। उसके स्थान पर तुमने कल्पित बातों को लाकर रख दिया है, और कोई उसे समझाए तो उसका उत्तर तुम्हारे पास नहीं मिलेगा। इसके अतिरिक्त अ‍ौर कई बाते हैं, जो तुम्हारा विनाश कर रही हैं--तुम्हीं बताओ, तुम्हारे और कौन-कौन बन्धन हैं।

तुम अपनी बातें ऊँची कहकर स्थापित करते हो, किन्तु तुम श्रेष्ठता का कोई मर्म नहीं पहचानते। कबीरदास जी कहते हैं कि जो केवल कथनी का गान करता रहता है, उससे पूछने पर उत्तर नहीं मिलता। हे भाई! हम केवल एक सीधा प्रश्न पूछते हैं, कि चौरासी कमल किस स्थान पर हैं। उनके रहस्य तथा मार्गों का वर्णन करें तथा यह भी बतलाएँ कि ये कमल किस स्थान पर रहते हैं? कबीरदास जी ने तो 'नौलख' कमलों की चर्चा की है, तुम्हीं बताइये, उनके ठिकाने क्या हैं? उन्होंने सहस्त्रदल कमल की व्याख्या की है–यह बताओ कि अष्टदल कमल किसके भेद हैं।

इसी के साथ ही, तुम चार कमल दलों का रहस्य बतला दो–और यह भी बताओ कि दो दल कमल का स्थान क्या है?

ये समस्त काल योग से विलक्षण हैं और इसीलिए बेचारे योगिजन भी इनके भेदों को नहीं समझते। योगिजन षट् चून कमल का गायन करते रहते हैं–ये कमल उन कमलों से विलक्षण हैं।

इनकी समस्त विधियों को समझा कर बताओ-इनका वर्णन कबीर पंथ में नहीं किया गया है। जिसे कबीर ने अपने मुख द्वारा कहकर बताया है, उसी की बात मैं तुमसे पूछता हूँ।

॥ चौपाई ॥

असु सब भेद कहौं समझाई। रेवतीदास सुन चित्त लगाई॥
षष्ट कँवल जोगी पुनि गाई। या का तुम को भेद बताई॥
रहै चार दल गुदा के मईं। और दूजो को बिधी बताई॥
छः दल कँवल नाके नीचें। अष्ट दलमल पुहमी के बीचे॥
पखड़ी बारह हिरदे माईं। सोलह पखड़ी कंठ रहाई॥
उदित मुदित दीप कहावै। ता में सहस कँवल को पावै॥
कँवल चक्र पट खुल के कहिया। संत कंवल भिनि न्यारे रहिया॥
ये कँवला षट चक्र से न्यारा। उनकी जानै संत बिचारा॥
षोड्स द्वार काया के माईं। तुम जानौ दस द्वार रहाई॥
छः त्रिकुटी काया के माईं। तुम जानौ पुनि एकै भाई॥
नाल सताइस काया के माईं। अट्ठाइस पुनि बंक कहाई॥
बाइस सुन्न संत बतलावा। ये कबीर मुख अपने गावा॥
मान सरोवर सुषमनि नारी। तिरबेनी ब्रह्मंड के पारी॥
इतना भेद कहा हम गाई। भिन्न भिन्न कर दिया बुझाई॥
ये हम कहा भाखि सोइ देखा। ये कबीर ने भाखा लेखा॥

जो कोइ या का भेद बखानै। पथ कबीर जाहि को जानै॥
कहि कबीर की भाखि सुनावै। ये झूठै औरन की गावै॥
अपना चखा स्वाद बतलावै। और की करनी काम न आवै॥
और की करनी बूझ बुझावै। सो अपना कारज नहिं पावै॥
गुरु चेला का बूझौं लेखा। सौ गुरु का मैं कहाँ बिबेका॥
जगत गुरू नहिं संत पुकारा। सतगुरु भेद जगत से न्यारा॥
जो कोई चढ़ै गगन को धावै। सो सतगुरु के सरनै आवै॥
सतगुरु सत्त पुरुष हैं स्वामी। सो चौथा पद संत बखानी॥

अर्थ–हे रेवतीदास! मन लगाकर इसे सुनो–मैं समझाकर इनके भेदों को बताता हूँ। योगी 'षष्टकमलदल' का गान करते हैं, मैं तुम्हें इसका भेद बताता हूँ।

गुदा के पास 'स्वाधिष्ठान केन्द्र' में चार दल कमल हैं और अन्य दूसरे की विधि इस प्रकार है। षष्टदल कमल नाम के नीचे हैं और अष्टदल कमल पृथ्वी के बीच में। बारह पंखड़ियाँ हृदय के मध्य में हैं और सोलह पंखड़ियाँ कंठ में रहती हैं. इस शरीर में 'उदित तथा मुदित' नामक दो द्वीप हैं–उसी में सहस्त्रार कमल को प्राप्त किया जाता है षट् चक्र कमल का खुलकर वर्णन करता हूँ, संत जन इन कमलों से भिन्न अलग ही रहते हैं।

यह कमल षट्चक्र कमल से भिन्न है, उनके विषय में संतों के विचार आप जाने। शरीर के मध्य सोलह द्वार हैं–तुम तो केवल यही जानते हो कि केवल दस द्वार हैं। इस शरीर के मध्य छः त्रिकुटियाँ हैं और तुम तो यही जानते हो कि वह केवल एक है। इस शरीर के बीच सत्ताइस नाल हैं–और पुनः अट्ठाइस बंक नाल हैं। बाइस शून्यों के विषय में सन्तों ने बतलाया है और स्वयं कबीरदासजी ने अपने मुख से कह रखा है। सुषुम्ना नाड़ी मानसरोवर है और त्रिवेणी ब्रह्मांड के उस पार है। इतना रहस्य भेद हमने कहकर बताया और उनके विषय में अलग-अलग समझाया है। यह हमने उसे बताया है–जिसे स्वयं देखा है और कबीरदास जी ने इनका लेखाजोखा कह रखा है। जो भी व्यक्ति इनका भेद बताता है, उसी को कबीर पंथ का साधु समझिए। (लोग तो ऐसे हैं कि) नाम तो कबीर साहब का लेते हैं और झूँठे ही दूसरों की बातें गाते हैं। जो अपने द्वारा चखा गया हो, उसी को स्वाद बतलाना चाहिए। किसी दूसरे की करनी और उसका अनुभव (गप्प की तरह) समझो और समझाओ–कोई उसके द्वारा अपने कार्य की सिद्धि नहीं प्राप्त करते॥

इस प्रकार, गुरु और शिष्य के सत्य संदर्भ को समझो और मैं ऐसे गुरु के ज्ञान (विवेक) के विषय में कह रहा हूँ। इस सांसारिक गुरु को सन्त नहीं कहा जा सकता। सत्गुरु का भेद तो इस संसार से विलक्षण है। जो साधक शून्याकाश पर चढ़कर दौड़े, वही सत्गुरु की शरण में आता है, दूसरा नहीं। सत्गुरु ही स्वामी परमात्मा एवं सत्त पुरुष है और उसका स्थान चौथा पद है, ऐसा सन्तों ने वर्णित किया है।

॥ सोरठा ॥

तुलसी कहै बिचार, रेवती यह बिधि गुरु लखौ।
चखौं अमर पद सार, देखि आदि अन्दर मई॥

अर्थ–तुलसीदास विचार करके कहते हैं कि हे रेवती! इस प्रकार गुरु को देखो। उसको देखते हुए अमरत्व के पद से जुड़े सार तत्त्व का आस्वादन करो और उस आदि तत्त्व को अपनी अन्तरात्मा में ही देखो।

प्रश्न, रेवतीदास और फूलदास ॥ चौपाई ॥

सुनि रेवती मन संसय आनी। तुम ने औरै और बखानी॥
जस जस बचन बिधी समझावा। अस आगे कोउ संत न गावा॥
औरो संत गये वहि राही। सो अब उनकी साखि सुनाही॥
सत्त सुधा रस जिनकी बानी। कहिये नाम भेद गुर छानी॥
येहि बिधि फूलदास पुनि बोला। पूछै बिधि गुरू और चेला॥
स्वामी या की साखि सुनाई। अगम पंथ को संतन पाई॥
भिनि भिनि न्यारा नाम बताई। जिनकी साखी सब्द सुनाई॥
अनुभौ भिनि भिनि सज कर न्यारा। भाखौ एक एक बिस्तारा॥
संत संत की न्यारी बानी। एक एक की कहौ निसानी॥

अर्थ–इसे सुनकर रेवतीदास के मन में संदेह उत्पन्न हुआ और कहा कि आपने तो और का और अन्यथा) वर्णन कर डाला। जिन-जिन वर्णन रूपों द्वारा आपने उनकी विधि समझाई है–ऐसा आगे किसी सन्त ने नहीं कहा है–अनेक सन्तगण भी उसी मार्ग का अनुभव किये हैं–अतः अब मैं उनकी साखी (अनुभव का साक्ष्य) सुना रहा हूँ। जिनकी बाणी ही सत्य सुधारस है: गुरु ने उनके नाम तथा वेद को निचोड़कर कहा है। इस प्रकार पुनः फूलदास भी बोले और गुरु तथा चेला की विधि पूछी। हे स्वामी! इसकी साखी (अनुभव साक्ष्य) बताइये क्योंकि सन्तों ने ही उस अगम्य पंथ को प्राप्त किया है, अन्यों ने नहीं। उन्होंने इसका भिन्न-भिन्न विलक्षण नाम बताया है और जिनके विषय में साखी (आत्मानुभव का साक्ष्य) एवं सबद (परम्परा के ऋषि अनुभवों का कथन) सुनाया है। सभी के अनुभव भिन्न-भिन्न और विलक्षण हैं और उनका एक-एक करके विस्तारपूर्वक वर्णन करें। सन्तों की पारस्परिक वाणी भिन्न-भिन्न रूपों की है और हर एक बाणी को चिह्नित करते हुए हमें बतायें॥

॥ उत्तर, तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

कहै तुलसी तुम सुनिये काना। संत शब्द का करौं बखाना॥
दादू मीरा नाभा भाई। नानक दरिया सूर सुनाई॥
अरु कबीर पुनि भाखा भाई। और अनेक संत बिधि गाई॥
जो जो संत अगम पर धाये। जिन जिन साखी शब्द सुनाये॥
सत चरन रज तुलसीदासा। कछु कछु भाखा अगम बिलासा॥
तुलसी संत चरन की लारा। मेरी बुद्धि न उन अनुसारा॥
संत चरन महिमा पुनि भाखौं। उनके चरन सीस पर राखौं॥

अर्थ–तुलसी साहब ने कहा, तुम लोग कानों से सुनो–मैं, 'सन्त' शब्द का वर्णन करता हूँ। दादू, मीराबाई, नाभादास, नानकदेव, दरियादास, सूरदास के विषय में कहता हूँ। हे भाई! पुनः कबीरदास ने भी इनके विषय में कहा है और अनेकों ने इस 'संत' के विषय में वर्णन किया है।

जो-जो सन्त अगमपुर में गए-जिन-जिन ने साखी और शब्द को सुनाया है–यह तुलसीदास तो उन सन्तों के चरणों की धूलि है और उन्हीं की कृपा [illegible] अगम्य आध्यात्मिक विलास का गान किया है।

तुलसी साहब को स्वयं सन्त चरणों की संग[illegible] है, मेरी बुद्धि तो उन संतों जैसी है। मैं सन्त चरणों की महिमा का पुनः वर्णन कर रहा हूँ और मैं निरन्तर उनके चरणों पर अपना शीश रखे रहता हूँ।

॥ दोहा ॥

संत शब्द विधि बिधि कहौं, सुनियों फूलादास।
जो जो शब्द उन भाखिया, कहौं चरन होइ दास॥

अर्थ–मैं सन्त शब्द का विवेचन विधिपूर्वक करूँगा, हे फूलदास। आप उसे सुनें. जिन-जिन शब्दों को उन्होंने कहा है, मैं उनके चरणों का सेवक बनकर कहूँगा॥

॥ शब्द ॥

तुलसी तुल जाई, गुरु पद कंज लखाई॥ टेक॥
मैं तो गरीब कछू गुन नाहीं, मो को कहत गुसाँई।
जो कछु कीन्ह कीन्ह करुनामय, मैं उनकी सरनाई॥ १॥
मैं अति हीन दीन दारुन गति, घट रामायन गनाई।
रावन राम की जुद्धि लड़ाई, सो नहिं कीन्ह बनाई॥ २॥
ये तत सार तती निज जानत, जो ये लखै लखाई।
काल काया परिवार मयाई, ये गुन ग्रन्थन गाई॥ 3॥
ता में सार पाद पद न्यारा, सो कोइ संत जनाई।
पंडित भेष जगत अरु ज्ञानी, भेद कोऊ नहिं पाई॥ 4॥
अब बरतत कहौं याही कौं, भरत चत्रगुन भाई।
दसरत सीता और कौसिल्या, सिया लछमन्न कहाई॥ 5॥
काग भसुंड गरुड़ सबै सब, मंथा अरु केकाई।
रघुपति रंग संग परिवारा, येहि बिधि जगहिं सुनाई॥ 6॥
और सुनौ रावन रंग राई, सब परिवार बताई।
कुंभकरनं भाभीषन भाई, इंद्रजीत सुत राई॥ ७॥
रानी राइ मँदोदरि सोइ, सब परिवार सुनाई।
ये घट माहिं घटा घट ही में, रामायन्न बनाई॥ ८॥
रावन ब्रह्म बसै त्रिकुटी में, लंक त्रिकूट बनाई।
कुम्भ तनै करता मनहीं को, कुम्भकरन्न कहाई॥ ९॥
भय भौ खानि भभीषन भाई, सो भौ माहिं भ्रमाई।
इंद्रजीत जीतै मनहीं को, सो इंद्रजीत कहाई॥ १०॥
रावन ब्रह्म बसै मन दौरा, ता को मंदोदरी बनाई।
मन की दौर को दूर बहावै, त्रिकुटी ब्रह्म कहाई॥ ११॥
दस इंद्री रत दसरत कहिये, राम रमा मन जाई।
सत की सीता असत सिया को, कुमति कौसिल्या बसाई॥ १२॥
मन थिर सुरति करै थिर कोई, सो मन संथा कहाई।

अर्थ–तुलसी साहब कहते है कि गुरु के चरण कमलों को देखते ही, उनके लिए यह बिक जाएगा। मैं तो एक नितान्त निर्धन व्यक्ति हूँ, मुझमें कोई गुण नहीं हैं–फिर भी, लोग मुझे गोस्वामी कहते हैं। जो कुछ किया, उन्हीं करुणामय मेरे गुरु ने ही किया है, मैं उनकी शरण में हूँ। मैं अत्यन्त तुच्छ, दीन तथा विपत्तियों से संसक्त हूँ और इस दशा में मैंने घट रामायण की रचना की है। राम तथा रावण के युद्ध की स्थिति की मैंने रचना नहीं की है॥ 1-2॥

यह रामायण तत्त्वों का सार है, और इसको वही जानता है, जिसे यह दिखाई पड़ जाए काल, शरीर, परिवार और माया इन सबके गुण ग्रन्थों में गाए गए हैं किन्तु इन सबमें सार तत्त्व सबसे विलक्षण है–उसे कोई सन्त ही बताता है। उसके रहस्य का ज्ञान पंडित, वेषधारी साधु, यह संसार तथा ज्ञानी कोई नहीं पाता। अब मैं इसी का वृत्तान्त कह रहा हूँ–भरत-शत्रुघ्न तो भाई-भाई हैं। दशरथ, सीता और कौसल्या तथा सुमित्रा और लक्ष्मण कहे जाते हैं। ॥ ३-५॥

कागभुशुंडि, गरुण तथा अन्य मंथरा एवं कैकेयी सभी श्रीराम के साथ उनका समस्त परिवार जिस प्रकार यह लोक इस कथा को सुनाता है। और दूसरी ओर अपने रंग में राते रावण के विषय में सुनें–मैं उसके समस्त परिवार के विषय में बताता हूँ। कुंभकर्ण, विभीषण उसके भ्राता के तथा इन्द्रजीत राजा रावण का पुत्र था। ७॥

रावण की रानी मंदोदरी थी और इस प्रकार मैंने उसके परिवार के विषय में सुनाया। ये सारे के सारे पात्र अन्तः शरीर की घटाएँ हैं (शरीर के अन्तर्गत ही हैं) औ इसी रूप में मैंने इस रामायण की रचना की है॥ ८॥

त्रिकुटी को लंका बनाकर रावण ब्रह्म त्रिकुटी में निवास करता है, कुम्भ रूपी शरीर का कर्त्ताधर्त्ता होने के कारण ही वह कुम्भकर्ण कहलाता है॥ 9॥

जो सासारिक माया के भय की खानि है, वही विभीषण है और वह निरन्तर माया के संसार में ही भ्रमित रहता है। जो मन को जीत लेता है। उसे इन्द्रजीत कहते हैं। मन के मध्य रावण रूपी ब्रह्म निरन्तर निवास करता है, उसी के लिए मन्दोदरी बनाई गई है। जो मन की व्याप्ति को दूर करके (उसे केन्द्रित कर ले) वही त्रिकुटी ब्रह्म है। जो दसों इन्द्रियों में संसक्त रहता है वह दशरथ है, उसका मन राम और रमा में लगा रहता है। सत्य ही सीता हैं किन्तु असत्य सीता को कुमति रूपी कौसल्या ने अपने पास रखा॥ 10-12॥

वहँ की बात कहौं कौन सुनाई, कर्मन थिर केकाई॥ १३॥
ले छे रस मनहीं को भाई, लछमन बीर बड़ाई।
गो में रूढ़ गरूढ़ गिनाई, भय ले भसुण्ड भुलाई॥ १४॥
भय रत भरम भरत है सोई, चाह त्रिगुत्र गिनाई।
ता को नाम चतुरगुन कहिये, ये सब भेद बताई॥ १५॥
ये नौ द्वार काया के माहीं, सो हनुमान हँसाई।
ये तो चिन्न भिन्न बिन देखे, जोग करै करै सो जनाई॥ १६॥
काया सोध कसै इन्द्रिन को, त्रिकुटी ध्यान लगाई।
स्वाँसा धाइ बंक खुल खोलै, सहस कवल दल पाई॥ १७॥
जो कोई जोग जुगति करि लाई, जेहि घट ब्रह्म दिखाई।
जोगी का जोग इष्ट जगही को, ये गति यों बिधि गाई॥ १८॥
दूजा जोग ज्ञान गति गाई, आतम तत्त लखाइ।
मुद्रा पाँच अवस्था चारी, ज्ञान तीनि गति गाई॥ १९॥

चाचरि मूचरि और अगोचरि, खेंचरि खेह लगाई।
उनमुनि उभै अकास के ठाईं, ज्ञान बिधी बतलाई॥ २०॥
रेचक पूरक कुम्भक कहिये, येहि बिधि ज्ञान गिनाई।
और अवस्था अरथ बताई, ज्ञाना किनहूँ न पाई॥ २१॥
जाग्रत सुपन सुषोपति कहिये, तुरियातीत कहाई।
तुरियातीत बसै वोहि पारा, जो या करै तिन पाई॥ २२॥
चारो बानी का भेद बताई, सास्तर संघ लखाई।
परा पसंता मधिमा सोई, बैखरी वेर बताई॥ २३॥
ये सब जोग ज्ञान गति गाई, ज्ञानी यही बताई।
इनके परे भेद है न्यारा, सो कोइ संत जनाई॥ २४॥
और सुनौ जो अगाध अघाई, संतन की गति गाई।
जा को भेद भेद नहिं जानै, जोगी किनहुँ न पाई॥ २५॥
परमहंस बैरागी गुसाँईं, जगत की कौन चलाई।
ये कहुँ देखि कहूँ न कहाई, काहू प्रतीति न आई॥ २६॥
तुलसी तोड़ फोड़ असमाना, सूरति सार मिलाई।
सरकी चाँप चली धौ धाई, धनुवा धनुष चढ़ाई॥ २७॥
तीनि लोक तिल खेई पारा, चौथे जाइ समाई।
वो साहिब सतनाम अपारा, तिन मोहिं अंग लगाई॥ २८॥
या के पार परे गति न्यारी, सो कोई संत जनाई।
जा को नाम अनाम अमाई, केहि बिधि कहौं बुझाई॥ २९॥
ता के रंग रूप नहिं रेखा, नाम अनाम कहाई।
तुलसी तुच्छ कुच्छ नहिं जानै, ता घर जाइ समाई॥ 30॥
सब संतन के चरन सीस धरि, आदि अजर घर पाई।
तीनि लोक उपजै और बिनसै, चौथे के पार बसाई॥ 31॥

अर्थ–मन को स्थिर करके जो सुरति ध्यान करता है और उसे स्थिर कर लेता है, वह मन से स्थिर कहलाता है। वहाँ रामकथा की बात कहो किसने बताई है, वह कर्मों में स्थिर कैकेयी थी। मन द्वारा द्रवों एवं रसों का स्वाद लेकर जो भोज्य सरस दृढ़ है–वही लक्ष्मण है। जो इन्द्रियों पर आरूढ़ है (नियंत्रित कर रखा है) वही गरुण है। जो भय को भूल जाए, वह भुशुंडि है। जो भय से संसक्त व्याकुल होकर इस लोक में भरम रहा है, वह भरत है और उसकी आशा सदा त्रिकुटीसाल्यकता में है। इसके सबके नाम चतुर्भुजों के अनुसार है और इसके ये सारे भेद बताए गए हैं। सम्पूर्ण नवों द्वार शरीर के ही बीच हैं, हनुमान के लिए वही उपहास के कारण हैं। वे जो चिन्मय से भिन्न न करके योग साधना में रमा रहता है, उसे (घट रामायण) यह सब प्रतीत होता है–सभी को नहीं ॥ (१३-१६)॥

त्रिकुटी में ध्यान लगाकर, जो इन्द्रियों के स्वरूप का शोधन करता है तथा श्वासमार्ग से दौड़कर बंक नाल में प्रवेश करके उसे खोल दे, वह सहस्त्र दल कमल प्राप्त कर लेता है। यही नहीं जो भी कोई युक्तिपूर्वक योगक्रिया को सम्पन्न कर लेता है, उसके इसी घट में ब्रह्म गोसाईं पड़ जाता है। योगी का

योग संसार के सभी लोगों के लिए अभीष्ट हैं। इस गति को इस प्रकार ही प्राप्त किया जा सकता है॥ १७-१८॥

द्वितीय योग का वर्णन ज्ञान गति द्वारा गाया जाता है, इसमें आत्म तत्त्व दिखाई पड़ता है। पाँच मुद्राएँ, चार अवस्थाएँ तथा तीन ज्ञान की गतियों का वर्णन किया गया है। इसमें चाचरि, भूचरि, अगोचरि एवं खेचरी मुद्राओं में ध्यान लगाना पड़ता है। शून्याकाश की उभय स्थली में उन्हें उन्मनि दशा ज्ञान की विधि इंगित करती है॥ १९-२०॥

रेचक, कुम्भक तथा पूरक योगविधियों द्वारा ये ज्ञान के स्वरूप की गणना कराते हैं। ये अन्य अनेक अवस्थाओं के अर्थ तथा स्वरूप का वर्णन करते हैं किन्तु इनमें किसी को भी ज्ञान नहीं प्राप्त होता॥ २१॥

जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति कहकर अब तुरीयातीत दशा का वर्णन करते हैं। तुरीयातीत इस ज्ञान धारा के उस पार निवास करता है, जो इसकी साधना करता है, वही उसे प्राप्त भी करता है॥ चारों वाणियों का मैं भेद कहता हूँ, उसे शास्त्र रूपी सिंधु ने दिखाया है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी की चतुर्थ अवस्था को ज्ञान कहते हैं (वेद वर्णित करते हैं)। ये स[illegible]ी के सभी = योग मार्ग के अन्तर्गत ज्ञान की गति के रूप में गाये गये हैं और इनके विषय में ज्ञानी जन यही बताते हैं॥ इनके आगे ज्ञान का विलक्षण स्वरूप है—जिसे कोई सन्त ही बतलाता है॥ २२-२४॥

उसके आगे जो परिपूर्ण एवं अगाध है, उसके विषय में सुनो, उसके भेद (रहस्य) को वेद भी नहीं जानते-योगीजन तो उसे लेशमात्र भी नहीं प्राप्त करते॥ २५॥

इस संसार के प्राणियों की कौन बात कहे परमहंस, वैराग[illegible]कामी-ये कहीं कहीं देखकर कहीं भी बातों का रहस्य नहीं बताते, अतः इन बातों के प्रति विश्वास नहीं होता॥ २६॥

तुलसी साहब कहते हैं कि ये शून्याकाश को तोड़ फोड़कर उससे सुरति समाधि के सार तत्त्व को जोड़ देते हैं। दृढ़ धनुष की प्रत्यंचा देवी से संरक जाती है और सुषम्ना रूपी धनुष को चढ़ा लेते है। तिल-तिल खेकर तीनों लोकों को ये पार कर लेते हैं और अन्त में , चौथे में जाकर ये स्वयं विलीन हो उठते हैं। उन अनन्त-सतनाम साहब का पार नहीं पाया जा सकता--वे मुझे अपने अंकों में समेट लेते हैं॥ २७-२८॥

उनके पार के उस ध्यान की गति विलक्षण है, उसे किसी संत के ही समझ में आता है। जिसके नाम में वह अनाम ब्रह्म तत्त्व समाया हुआ है--मैं किसी प्रकार उसको समझा कर बताऊँ॥ २९॥

उनका न रूप है, न रंग है, न लक्षण (रेखा) है, और वह नाम से अनाम कहलाता है। तुच्छ तुलसीदास उसके विषय में कुछ भी नहीं जानते, केवल उस घर में जाकर वह घुसे पड़े हैं॥ ३०॥

सम्पूर्ण सन्तों के चरणों पर शीश धारण करके मैंने उस आदि अजर-अमर के घट को पा लिया है। यह तीनों लोक निरन्तर उत्पन्न होते और विनष्ट होते रहते हैं, इसलिए मैंने चौथे पद के पार अपना घर बसा लिया है॥ ३१।

॥ सोरठा॥

येहि बिधि रघुपति रंग, रावन संग प्रसंग भयो।
सुरति चढ़ी चित चंग, ज्यों पतंग डोरी गह्यो॥

अर्थ–इस प्रकार राम के रंग में रंगे रावण के साथ यह प्रसंग घटित हुआ। चित्त आनन्द के साथ सुरति समाधि में चढ़ा, जैसे डोरी के साथ जुड़ा हुआ पतंग॥

॥ शब्द १ दादू साहिब॥

दादू देखा अदीदा, सब कोइ कहत सुनीदा॥ टेक॥
हवा हिरस अंदर बसकीदा। तब यह दिल भया सीधा॥ १॥

अनहद नाद गगन चढ़ गरजा। तब रस पिया अमीं दा॥ २॥
सुखमनि सुन्न सुरति महलौं नभ। आया अजर अकीदा॥ ३॥
अष्ट कंवल दल में दृग दरसन। पाया खुद खुदी दा॥ ४॥
जैसे दूध दूध दधि माखन। बिन मथे भेद न घी दा॥ ५॥
ऐसे तत्त मत्त सत्त साधन। तब टुक नसा पिय पीदा॥ ६॥
नहिं ये जोग ज्ञान मुद्रा तत। यह गति और पदीदा॥ ७॥
जो कोइ चीन्ह लीन्ह यह मारग। कारज हो गया जी दा॥ ८॥
मुरसिद सत्त गगन गुरु लखिया। तन मन कीन्ह उसी दा॥ ९॥
आसिक यार अधर लखि पाया। हो गया दीदम दीदा॥ १०॥

अर्थ–सन्त दादू ने आदर्शनीय तत्त्व को देखा, सभी कोई कहते हैं, उसे सुन लो। वायु को हृदय के अन्दर वश में कर लिया (प्राणायाम द्वारा वायु रोक ली) तब उनका हृदय अत्यन्त निर्मल बना॥ १॥

अनाहत नाद शून्याकाश में चढ़कर ध्वनित हुआ और तब उन्होंने समग्र अमृत रस का पान किया॥ २॥

सुषम्ना सुरति महल के मध्य शून्यावकाश तक पहुँची और उस स्थान पर वह अबिनाशी तत्त्व आकर उपस्थित हुआ॥ ३॥

यहाँ अष्ट कमल दल के अन्तर्गत उस अपूर्व तत्त्व का दर्शन हुआ और इस चित्त ने स्वयं उस निरंजन ब्रह्म को प्राप्त किया॥ ४॥

जैसे दूध और दूध में दही, मक्खन, सब कुछ है किन्तु बिना मंथन किए घी के रहस्य का पता नहीं चलता है॥ ५॥

इसी प्रकार ही, साधक का चित्त अनेक साधनों में मत्त रहता है, तब कहीं जाकर–एकाध बार थोड़ा-बहुत प्रिय के नशे का पान करने का अवसर मिलता है॥ ६॥

यह तत्त्व न योग से प्राप्त होता है, न ज्ञान मुद्राओं से परन्तु यह दशा अन्य माध्यमों से मिलती है॥ ७॥

जो कई भी व्यक्ति इस मार्ग की पहचान कर लेता है, उसके हृदय का सम्पूर्ण कार्य पूर्ण हो जाता है॥ ८॥

आध्यात्मिक गुरु उस शून्याकाश में वह तत्त्व देखता है और उसको देखने के बाद वह समस्त तन-मन उसी को अर्पित कर देता है। वह याद अपने प्रेमी को अन्तआंत्मा में देख पाया और देखते हो वह तन्मययी भूत (तन्मयीभूत, तन्मय) हो गया॥ ९-१०॥

॥ शब्द २ : दादू सहिब॥

जानै अंतरजामी अचरज अकथ अनामी॥ टेक॥

नौ लख कँवल जुगल दल अंदर। द्वादस साहिब स्वामी॥ १॥
सूरत कड़क कँवल दल नभ पर। झटकि झटकि थिर थामी॥ २॥
जैसे जहाज चलै सागर में। बरदबान बहै धीमी॥ ३॥
तैसे यार प्यार लखि पाया। तब सूरति ठहरानी॥ ४॥
सूरति सब्द सब्द में सूरति। अगम अगोचर धामी॥ ५॥
का से कहौ पिया सुख सारा। ज्यों तिरिया मुसकानी॥ ६॥

नहिं ये जोग ज्ञान तुरिया तत। यह गति अकथ कहानी॥ ७॥
कंद न सूर पवन नहिं पानी। क्योंकर करौं बखानी॥ ८॥
सुन्न न गगन धरन नहिं तारा। अल्ला रब्ब न रामा॥ ९॥॥
कहा कहौं कहिबे की नाहीं। जानत संत सुजानी॥ १०॥
बेद न भेद भेष नहिं जानत। कोऊ देत न हामी॥ ११॥
दादू दृग दीदार हिये के। सूरति करति सलामी॥ १२॥
मैं पिया प्यार प्यार पिय अपने। मिलि रहे एक ठिकानी॥ १३॥
सूरति सार संघ लखि पाई। ये गति बिरले जानी॥ १४॥

अर्थ–अन्तर्यामिन ही उस आश्चर्यपूर्ण, अकथनीय एवं अनाम तत्त्व को समझता है॥

दो कमल दलों के अन्दर नौ लाख कमल हैं और उनके मालिक तथा स्वामी बारह हैं॥ १॥

उस कमल दल पर स्थित आकाश पर सुरति एकाधि बड़ी ही गतिशील है और वह–झपट-झपट कर उसे पकड़ती और स्थिर करती रहती है॥ २॥

जैसे जलयान सागर में चलता है और उसकी पाल धीरे-धीरे चलती है॥ ४॥

उसी प्रकार, इस साथी ने अपने उस प्रियतम को देखकर प्राप्त कर लिया, तब तक सुरति एकाधि स्थिर हो उठी थी॥ ८॥

सूरति समाधि 'शब्द' में स्थित हो उठी और 'सबद' ही सुरति बन उठा अर्थात् समाधि के अनुभव शब्द तथा अनुभव शब्द की समाधि दोनों एक हो उठे। ये दोनों शब्द एवं अनुभूति अगम्य एवं अगोचर में स्थित है। प्रियता के साहचर्य की उस अनुभूति का हैं वर्णन कैसे करूँ–वह तो युवती की स्थिति जैसी आनन्द दायिनी है। यह अवस्था योग की तुरीयावस्था की ज्ञानानुभूति तत्त्व से विलक्षण है–यह अनुभूति तो अकश्य कथा के रूप में विलक्षण है। न यहाँ चन्द्र है, न सूर्य है, न वायु है, न जल है, मैं इस स्थिति का कैसे वर्णन करूँ। यहाँ न शून्याकाश है, न आकाश है, न पृथ्वी है, न तारागण हैं, न अल्लाह है, न स्वर्ग है, न राम हैं॥ ५-९॥

इसके विषय में क्या कहें, कुछ भी कहने के लिए शेष नहीं है इसे कोई सहृदय एवं चतुर संत ही जानता है। वेद कोई रहस्य नहीं जानता तथा वर्णन करते समय उसके लिए स्वीकृति भी कोई नहीं देता। सन्त दादूदास कहते हैं कि वह हृदय नेत्रों से ही देखा जाता है और सदा-सदा मैं उसके रूप को प्रणाम करता हूँ। मैं निरन्तर इस प्रियतम के प्यार में डूबा रहता हूँ, और वह प्रिय मेरे प्यार में और दोनों परस्पर मिलकर एक जैसे स्थान पर हो जाते हैं। मैंने उसे सुरति के तत्त्व रूपी सिन्धु में देख सका हूँ, मेरी इस दशा को बिरले ही समझते हैं।

॥ शब्द नानक साहिब॥

उघरा वह द्वारा वाह गुरू परिवारा॥ टेक।
चढ़ गइ चंग पतंग संग ज्यों। बंद चकोर निहारा॥ १॥
सुरति सोर जोर ज्यों खोलत। कुंजी कुलफ किवारा॥ २॥
सुरति धाइ धसी ज्यों धारा। पैठि निकसि गइ पारा॥ ३॥
आठ अटा की अटारि मँझारा। देखा पुरुष नियारा॥ ४॥
निराकार आकार न जोती। नहिं वह बेद बिचारा॥ ५॥
ओंकार करता नहिं कोई। नहिं वह काल पसारा॥ ६।

वे साहिब सब संत पुकारा। और पखंड पसारा॥ ७॥
सतगुरु चीन्ह दीन्ह यह मारग। नानक नजर निहारा॥ ८॥

अर्थ–गुप्त द्वार उकर (खुल) गया, गुरु का परिवार धन्य है। उन्हीं के साथ ही चित्त समाधि लग गई–जैसे डोरी के साथ पतंग और एक क्षण में उन्हीं के साथ ही चित्त समाधि लग गई। डोरी के साथ पतंग और एक क्षण के बाद उनको उस प्रकार देखने लगा जैसे चन्द्रमा को चकोर निहारता है॥ १॥

सुरति की समाधि के जोर एवं शोर से उसे ज्यों ही मैं कुंजी द्वारा उस जटिल दरवाजे को खोलता हूँ, सुरति दौड़ती हुई उसमें उसी प्रकार धँस उठी जैसे नदी की धारा में पानी॥ वह उसी में प्रविष्ट होकर उस पार निकल गई॥ 2-3॥

आठ खंड की अटारी (महल) के बीच मैंने उस विलक्षण पुरुष को देखा॥ 4॥

उसकी कोई रूप रचना नहीं है, न कोई आकार है, न कोई ज्योति है और उसके विषय में न वेदों में भी कोई विचार हुआ है। न वह ऊँकार रूप है, किसी के लिए कर्त्ता रूप भी नहीं है, और न ही वह काल की व्याप्ति के बीच फैला हुआ है॥ ५-६॥

वही एक मात्र साहब (स्वामी) हैं, ऐसा सन्तों ने बताया है, शेष सब, पाखण्ड का प्रसार-प्रसार है॥ ७॥

यही एक मार्ग है (केवल सुरति समाधि का) जिसने सत्गुरु सत्गुरु की पहचान दी है और नानक ने (उस पर चलते हुए) अपने नेत्रों से उसे देखा है॥ ८॥

॥ शब्द, दरिया साहिब॥

दरिया दरबारा खुल गया अजर किवारा।। टेक॥
चमकी बीज चली ज्यों धारा। ज्यों बदरी बिच तारा॥ १॥
खुलि गया चंद बंद बदरी का। घोर मिटा अँधियारा॥ २॥
लै लगी जाइ लगन के लारा। चाँदनी चौक निहारा॥ ३॥
सूरति सैल करै नभ ऊपर। बंक नाल पट फारा॥ ४॥
चढ़ि गइ चाँप चली ज्यों धारा। ज्यों मकरी मुख तारा॥ ५॥
मैं मिलि जाइ पाय पिया प्यारा। ज्यों सलिता जल धारा॥ ६॥
देखा रूप अरूप अलेखा। लेखा वार न पारा॥ ७॥
दरिया दिल दरवेस भये तब। उतरे भौजल पारा॥ ८॥

अर्थ–दरिया साहब करते हैं कि उस प्रभु के दरबार का कभी न नष्ट होने वाला किवाड़ (दरवाजा) खुल गया।

बिजली चमक गई और वह नदी की धारा की भाँति चल पड़ी–जैसे चलते हुए बादलों के बीच तारा। बादलों का बंद (बन्धन द्वार) खुल गया–चन्द्रमा निकल आया–घना अँधेरा मिट गया॥ १-२॥

उनकी संसक्ति में मेरा सारा प्रेम खुल गया, उस चाँदनी के बीच चौक (बाजार) जैसा दृश्य दिखाई पड़ने लगा॥ ३॥

सुरति समाधि का पर्वत मेरे समाधिस्थ चित्त को अपने शिखर के ऊपर ले जाने लगा और उसने बंक नाल की संधि स्थली रूपी वस्त्र को फाड़ डाला॥ ४॥

वह नदी की धारा की भाँति उसे दबाता हुआ आगे बढ़ गया जैसे मकरी के मुख से निकलने वाला तार (जाल तंत्र)॥ ५॥

मैं जाकर, अपने प्रियतम को प्राप्त करके उनसे मिल गया—जैसे नदी से जलाशय॥ ६॥

मैंने मिलने के बाद (अपने प्रियतम के) अल्प एवं अलेख (लक्षणविहीन) रूप को देखा और मुझे उसका आदि-अन्त समझ में नहीं आया॥ ७॥

तब से इस साधक दरियादास का हृदय साधु होकर इस मायाजाल के पार हो उठा॥ ८॥

॥ शब्द, मीराबाई॥

मीरा मन मानी सुरति सैल असमानी॥ टेक॥
जब जब सुरति लगै वा घर की। पल पल नैनन पानी॥ १॥
नहीं हिये पीर तीर सब सालत। कसक कसक कसकानी॥ २॥
रात दिवस मोहिं नींद न आवै। भावत अन्न न पानी॥ ३॥
ऐसी पीर बिरह तन भीतर। जागत रैन बिहानी॥ ४॥
ऐसा बैद मिलै कोइ भेदी। देस बिदेस पिछानी॥ ५॥
ता से पीर कहौं तन केरी। फिरि नहि भरमौं खानी॥ ६॥
खोजत फिरौं भेद वा घर का। कोऊ न करत बखानीं॥ ७॥
रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु। दीन्ही सुरति सहिदानी॥ ८॥
मैं मिलि जाइ पाइ पिया अपना। तब मोरी पीर बुझानी॥ ९॥
मीरा खाक खलक सिर डारी। मैं अपना घर जानी॥ १०॥

अर्थ—मीराबाई कहती हैं कि सुरति समाधि द्वारा शून्याकाश के शिखर पर मेरा मन लग गया है॥

जब-जब उस घर की स्मृति आती है, मेरे नेत्रों में प्रतिपल अश्रु भर उठता है॥ १॥

मेरे हृदय की पीड़ा हृदय में प्रविष्ट वाण की भाँति सालता है—और उसकी कसक क्षण-क्षण कसकती रहती है॥ २॥

मुझे रात दिन निद्रा नहीं लगती, अन्न-जल भी अच्छा नहीं लगता॥ ३॥ ऐसी विरह की पीड़ा रस शरीर के भीतर उठ रही है कि मैं रात्रि-दिन जागती रहती हूँ॥ ४॥

देश-विदेश में ऐसा कोई पहचान का वैद्य मिले, जो इसके रहस्य से परिचित हो। मैं उससे अपने शरीर की पीड़ा बताऊँ और पुनः इस भ्रम की खानि रूपी संसार में न भटकना पड़े॥ ५-६॥

मैं अपने प्रियतम के उस घर का रहस्य खोजती फिर रही हूँ, उसका वर्णन कोई नहीं कर पा रहा है॥ ७॥

सत्गुरु रविदास (रैदास) मुझे सत्गुरु के रूप में एक बार मिले थे और उन्होंने सुरति समाधि का अभिज्ञान कराया था। उससे मैंने जाकर अपने प्रियतम को प्राप्त किया था—तब मेरी पीड़ा शान्त हुई थी॥ ८-९॥

मीराबाई कहती हैं कि मैंने तो व्यर्थ ही इस सृष्टि (खलक) की राखों का अम्बार अपने शिर पर डाल रखा है—मुझे तो अब अपने घर की समझ आ गई—(यह संसार व्यर्थ है)॥ १०॥

॥ शब्द, सूरदास जी॥

मुरली धुनि गाजा, सूर सुरति सर साजा॥ टेक॥
निरखत कँवल नैन नभ ऊपर। सब्द अनाहद बाजा॥ १॥
सुनि धुनि मैल मुकर मन माँजा। पाया अमी रस झाँझा॥ २॥
सूरति संध सोध सत काजा। लखि लखि सब्द समाजा॥ ३॥

घट घट कुंज पुंज जहँ छाजा। पिंड ब्रह्मंड बिराजा॥ ४॥
फोड़ि अकास अललपछ भाजा। उलटि के आपु समाजा॥ ५॥
ऐसे सुरति निरखि नि:अच्छर। कोटि कृष्न तहँ लाजा॥ ६॥
सूरदास सार लखि पाया। लखि लखि अलख अकाया॥ ७॥
सतगुरु गमन गली घर पाया। सिंध में बुन्द समाया॥ ८॥

अर्थ–वंशी की ध्वनि गुंजरित हुई, सूरदास जी कहते हैं कि मैंने सुरति समाधि रूपी सरोवर सजा दिया।

शून्याकाश के ऊपर कमल को मेरे नेत्र देख रहे हैं। अनाहत शब्द की ध्वनि निकल रही है॥ १॥

इस ध्वनि को सुनकर अपने मन-दर्पण पर लगे सांसारिक मैल को साफ कर दिया और उसके फलस्वरूप अमृत रस को उस सुरति ध्वनि में प्राप्त किया॥ २॥

शब्द साक्ष्य के विविध रूपों को देखकर संतों के लिए मैंने उस सुरति सिन्धु का शोधन किया॥ ३॥

प्रत्येक (प्राणी में) घट रूपी कुंजों के पुंज में वह शोभित है तथा इस पिंड के बीच समग्र ब्रह्मांड समाविष्ट है॥ ४॥

अपने इस लौकिक सांसारिक समाज को उलट-पुलट कर तथा उस शून्याकाश को फोड़कर मैं उस अदर्शनीय पक्ष की ओर भगा॥ ५॥

उस अक्षर-शून्य ऐसी सुरति समाधि को देखा जहां कोटि-कोटि कृष्ण शोभित हो रहे हैं॥ १६॥

बिना शरीर वाले उस अलक्ष्य तत्त्व को देख देखकर सूरदास कहते हैं कि मैंने सृष्टि के निचोड़ तत्त्व को देख लिए॥ ७॥

सतुरु की कृपा हुई उस गली से घर तक पहुंचा। मुझे लगा जैसे बूँद समुद्र में विलीन हो उठी॥ ८॥

॥ शब्द॥ नाभा जी॥

नाभा नभ खेला, सुरति केल सर सैला॥ टेक॥
दरपन नैन सैन मन माँजा। लाजा अलख अकेला॥ १॥
पल पर दल दल ऊपर दामिनि। जोत में होत उजेला॥ २॥
अंडा पार सार लखि सूरति। सुन्नी सुन्न सुहेला॥ ३॥
चढ़ि गई धाय जाय गढ़ ऊपर। सब्द सुरति भया मेला॥ ४॥
ये सब खेल अपेल अमेला। सिंध नीर नद मेला॥ ५॥
जल जल धार सार पद जैसे। नहीं गुरू नहिं चेला॥ ६॥
नाभा नैन ऐन अंदर के। खुलि गये निरखि निहाला॥ ७॥
संत उचिष्ठ वार मन झेला। दुरलभ दीन दुहेला॥ ८॥

अर्थ–नाभादास दी कहते हैं कि मैंने शून्याकाश में सुरति शिखर पर स्थित सरोवर में केलि क्रीड़ा की।

मैंने अपने चित्त रूपी दर्पण, नेत्र, भंगिमाएँ, मन सबको माँजकर निर्मल करके उस अलक्ष्य प्रियतम को अकेले देखकर लज्जित हो उठी॥ १॥

उसके पलक के ऊपर कमल दल है, उस कमल दल के ऊपर विद्युत धारा है और उस ज्योति में अद्भुत उजालापन है। इस सृष्ठि (अंड) के उस पार सुरति समाधि द्वारा उस सुरति तत्त्व को देखा–जहाँ शून्य ही शून्य का साथी था॥ २-३॥

उस शिखरगढ़ पर मैं दौड़कर जा चढ़ी और 'सबद' सुरति समाधि से साक्षात्कार हो उठा ॥ ४ ॥

ये सारे के सारे खेल सहज् (मेल) तथा बिना साक्षात्कार (अमेल) के ही हो उठे–वहाँ (मैंने देखा)–सिन्धु, नदी तथा जल का सहज ही जमघट (मेला) लगा हुआ है ॥ ५ ॥

वह तत्त्व स्थान सम्पूर्णतः तत्त्व रूप जल धारामय था (न कोई बड़ा था, न छोटा) वहाँ न कोई गुरु था, न चेला ।॥ ६ ॥

नाभादास जी कहते हैं कि हृदय-नेत्र थे जहाँ बाणी का बार झेल गया–निश्चित ही दीन जो पर उसकी दुर्लभ कृपा है ॥ ८ ॥

।। शब्द ॥ कबीर साहिब ॥

कबीर पुकारा, मैं तो जगत से न्यारा ॥ टेक ।।
आदि पुरुष अविगत अबिनासी। दीप लोक पद पारा ॥ १ ॥
सरयि सहर हेर हिये द्वारा। सब्द न सिंध अकारा ।। २ ॥
काल न जाल स्वाल नहिं बानी। सो घर अधर हमारा ॥ ३ ॥
अंत न आदि साध कोइ जानै। सतगुरु पदम निहारा ॥ ४ ॥
नहिं तहँ आदि निरंजन जोती। सत्त पुरुष दरबारा ॥ ५ ॥
ब्रह्मा बिस्नु बेद बिधि नाहीं। नहीं आदि ओंकारा ॥ ६ ॥
ये सच यार प्यार लख पूरा। रूप न रेख जहूरा ॥ ७ ॥
कहै कबीर संत वोहि द्वारा। चकवा चौक हुकारा ॥ ८ ॥

अर्थ–कबीरदास पुकार-पुकार कर कहते हैं कि मैं तो इस संसार से अलग हूँ।

वह आदि पुरुष ज्ञानातीत और अविनष्टधर्मा है और शून्य द्वीप के लोक में उसका स्थान भी विलक्षण है।

हृदय के द्वारा समस्त नगर में मैंने उसे हृदय द्वारा तलाशा, किन्तु उसके लिए न कोई 'सबद' मिला, न सिंधु मिला, न रूप आकार मिला ॥ २ ॥

उसके लिए न काल है, न कोई जाल (संकट) है, न कोई प्रश्न है, न कोई वाणी है–वही अन्तरात्मा ही मेरा घर है। उसी अन्तरात्मा रूपी घरमें मैंने उसे देखा है, वैसे उसका आदि अन्त नहीं है, किन्तु सोई साधु ही उसे जानता है ॥ ३-४ ॥

उस निरंजन ज्योति का कोई आदि तत्त्व नहीं है, वही सत्य पुरुष (निर्गुण ब्रह्म) का दरबार है। न वहाँ आदि ओंकार तत्त्व है, न वहाँ ब्रह्म है, न विष्णु हैं, न वेद विधि वर्णित कोई अन्य तत्त्व ॥ ५-६ ॥

उस सत्य स्वामी साथी को प्यार से देखो, न उसका कोई रूप है, न लक्षण है और न पहचान तत्त्व है। कबीरदास जी कहते हैं कि उसके द्वार पर सन्तगण रहते हैं और चक्रवाक की भाँति ये सन्तगण उसके घर में स्वर करते (हुंकारते) रहते हैं ॥

॥ दोहा ॥

फूलदास तुलसी कहै, सन्त शब्द की रीत।
जो जो गये अगाध को, सोइ सोइ सन्त समोर॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे फूलदास' सन्त' शब्द की यही परम्परा है कि जो-जो उस अगाध तत्त्व तक पहुँचे हैं, वही-वही सन्तों के भिन्न है॥

॥ छन्द ॥

तुलसी गति गाई सब्द सुनाई, पंथ अगम सुर्त सार भई॥ १ ॥
नानक और दादू दरिया साधू, मीर सूर कबीर कही॥ २ ॥
नाभा नभ जानी भाखि बखानी, सुरति समानी पार गई॥ ३ ॥
सब की बिधि न्यारी एक बिचारी, सब संतन इक राह लई॥ ४ ॥
सब चढ़े इक धारा पहुँचे पारा, लखा गगन गति गवन गई॥ ५ ॥
कोइ करिहै संका महामति रंका, तुलसी डंका दीन्ह सही॥ ६ ॥
ये सतमत भाखा देखा आँखा, साखि सब्द मै गाइ कही॥ ७ ॥

॥ छन्द ॥

अर्थ–सन्तों के अनुभूत तत्त्व, 'सब्रद' को गाकर सुरति की सार तत्त्वमयी अगम पंथ को वर्णित किया है। नानक, दादू, साधु दरियादास, मीरा, सूरदास और कबीर का साक्ष्य देखकर बताया है॥ १-२ ॥

नाभादास ने उस तत्त्व को शून्याकाश में समझा था, मैंने उनके अनुभव को कहकर बताया–और सम्पूर्ण अनुभूति सुरति समाधि में समाविष्ट होकर उस पार जा पहुँची॥ ३ ॥

विचारक एक है किन्तु सबकी विधि अलग-अलग है–किन्तु सारे संत एक ही राह चलते हैं॥ ४ ॥

सभी एक धारा पर चढ़कर उस पार पहुंचे हैं, उन्होंने देखा कि उनका अनुभव शून्याकाश में प्रविष्ट हो उठा है॥ ५ ॥

कोई इस बात पर संदेह कर सकता है कि यह महामति से दरिद्र (हीन) है, किन्तु तुलसीदास ने अपना डंका ठीक तरह से बजाया है॥ ६ ॥

मैंने सन्तों के इस सत्यमत का वर्णन किया, आँखों से इसे देखा और सन्तों के साक्षी द्वारा कथित शब्दों द्वारा सुनाया है॥ ७॥

ये करी बखाना भेष न जाना, सब्द निसाना सुरति लई॥ ८ ॥
कागद नहिं स्याही ग्रन्थन पाई, गाइ गाइ सब जनम गई॥ ९ ॥
कोइ संत लखै हैं न्यारौ कहिहैं, कथन बदन में नाहिं नहीं॥ १० ॥
जो पोथी पढ़ि हैं ज्ञान से अड़िहैं, नरक परैं पन भक्ति नहीं॥ ११ ॥
बिन भक्ति न पैहैं जनम गमै हैं, संत सरन बिन राह नहीं॥ १२ ॥
जिन जिन यह मानी सत कर जानी, भक्ति संत सब भाखि कही॥ १३ ॥
संतन को जाना शब्द पिछाना, सुरति समानी आदि लई॥ १४ ॥
तुलसी तत सारा अगम निहारा, गुरू पिया पद पार लई॥ १५ ॥
महुँ पुनि गाई संत सुनाई, संत सब्द रस अगम कही॥ १६ ॥
सब संत पुकारा महँ पुनि लारा, सारा चारा पार गई॥ १७॥
चौथा पद गाई संत सुनाई, सुरति सैल अज आदि लई॥ १८ ॥

अर्थ–इन संतों ने इस ज्ञान तत्त्व का वर्णन किया है, ये आडम्बर (भेष) नहीं जानते और उनके अनुभव के शब्द के लक्ष्य पर केवल सुरति समाधि है॥ ८ ॥

न इनके पास कागज है, न स्याही है, इन्होंने तो ग्रन्थों में ही पढ़ा है, और उन ग्रन्थों को गा-गाकर उनका सम्पूर्ण जीवन बीत गया॥ ९॥

जो कोई सन्त उस परम तत्त्व को देखा है, वह विलक्षण तत्त्व को कहता है, और उसका कथन उसके मुँह में स्थायी रूप से बना नहीं रहता (शास्त्रादि तो स्वामी हैं)॥ १०॥

जो पोथियों को पढ़ेंगे, उसमें लिखे हुए ज्ञान तत्त्व पर अड़े रहेंगे, वे नरक में पड़ेगे किन्तु भक्ति नहीं मिलेगी॥ ११॥

बिना भक्ति के वे कुछ भी नहीं प्राप्त करेंगे, सम्पूर्ण जन्म नष्ट कर देंगे क्योंकि सन्तों की शरणागति के बिना कोई मुक्ति मार्ग नहीं है॥ १२।

जिन्होंने इसे स्वीकार किया, इसे सत्य की भाँति समझा, उनको सन्तों ने सम्पूर्ण भक्ति कहकर समझाया॥ १३॥

जिसने सन्तों को जान लिया वे 'सबद' भी पहचान गए। वे सुरति समाधि में लीन हुए और आदि तत्त्व को प्राप्त किया॥ १४॥

स्वयं तुलसी ने स्वयं उस समस्त अगम्य तत्त्व को देखा और गुरु की कृपा से उस पार प्रियतम के पद को प्राप्त किया॥ फिर मैंने गाकर उसे सन्तों को सुनाया–निश्चित ही, सन्तों ने उस अगम्य रसमय तत्त्व का वर्णन किया है। सारे सन्तों ने बताया है, मुझे भी उसमें संसक्ति है और मैं सम्पूर्ण लोक सीमा के पार हो गया। सन्तों को चौथा पद गाकर सुनाया और सुरति शिखर पर उस अजन्मा तत्त्व को प्राप्त किया॥ १५-१८॥

संतन कर भेदा जानै न बेदा, खेद कर्म की दूर भई॥ १९॥
संतन की सरना दुख सुख हरना, बरना तुलसी तोल लई॥ २०॥
संतन मुख भाखी अगम की आँखी, उनसे ताकी तरक कही॥ २१॥
कोइ बूझेन संधा पड़ा जम फंदा, अंधा जग को बूझ नहीं॥ २२॥
संतन बिधि लाई सब्द सुनाई, भई बानी सब गाइ कही॥ २३॥
सब्द जो गावै आँखि न आवै, बिन सत संगति भर्म सही॥ २४॥
छूटै सब टेका बूझै एका, ये संतन ने सार दई॥ २५॥
तुलसी गोहराई बूझे न पाई, बिन बूझें सब खानि मई॥ २६॥
दीन निहारा संत पुकारा, सब्द बिचारा पार भई॥ २७॥

अर्थ–वेद भी सन्तों के भेद नहीं जानते और सन्तों की कृपा से ही कर्म की पीड़ा दूर होती है (मुक्ति मिलती है)। सन्तों की शरण ही सुख-दुख (भौतिक) दोनों का हरण करती है–तुलसीदास जी ने इसे भली भाँति तौलकर (मूल्यांकन करके) समझ लिया है॥ १९-२०॥

उस अगम्य की आँख तथा सन्तों के मुख से इसका वर्णन किया है, इसमें कोई तर्क नहीं है, केवल उस अनुभव को समझा है॥ २१॥

कोई भी, यम के फंदे में पड़ा हुआ साधु इसे समझ नहीं सकता, उसे इस अंधे संसार की समझ नहीं है॥ २२॥

सन्तों ने इसे विधिपूर्वक व्यवस्थित किया है, और उसी क्रम में इसका वर्णन सुनाया है, वह वाणी बनी और फिर आगे सन्तों ने उसे गाकर सुनाया॥ २३॥

जो अनुभव साक्ष्य 'सब्द' सुनाये जाते हैं, वे तब तक आँख के सामने प्रत्यक्ष नहीं होते क्योंकि सत्संगति के बिना भ्रम बना रहता है॥ २४॥

सन्तों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सत्संगति के सम्पर्क में आने पर सम्पूर्ण प्रतिज्ञाएँ छूट जाती हैं– केवल एक तत्त्व ही समझ में आता है॥ २५॥

तुलसी पुकार-पुकार कर बताता है किन्तु उसे सभी समझ नहीं पाते–और बिना समझे सभी नरक में पढ़े रहते हैं॥ २६॥

दीन दुखियों को हृदय से समझा, सन्तों की पुकार की, सब्द पर विचार किया और इन तीनों के द्वारा अन्त में मुक्ति मिली॥ २७॥

॥ सोरठा॥

तुलसी सब्द बिचार फूलदास ये बिधि सुनौ।
सब्द करै निरधार सार पार पद लखि परै॥ १॥
सब्द सब्द बहु भेद, ये अभेद गति भाखिया।
तुलसी ता की धार, सब्द निरखि रस जिन पिया॥ २॥

अर्थ–हे फूलदास! 'सबद' के विषय में मेरे इस प्रकार के विचारों को सुनें। शब्द ही व्यक्ति का निस्तारण करते हैं–और उसी के द्वारा ही उस पार स्थित वह सार तत्त्व दिखाई पड़ता है॥ १॥

सबद 'सबद' में बहुत अन्तर है किन्तु ये 'सबद' अभेद गति का वर्णन करते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि उसकी धारा को वही समझता है, जो 'सबद' को टटोल कर उसका रसपान करता है॥ २॥

॥ चौपाई॥

तुलसी सब्द संत जो भाखा। निज निज संत जो गये अगाधा॥
अपने अपने सब्द बनाये। अपनी अपनी साखि सुनाये॥
जों जो गये अगम के द्वारा। पंथ अगम के उतरे पारा॥
पार जाय बिधि सगरी भाखौ। जो जो देखा अपनी आँखी॥
अपनी देखी कही बखानी। आदि अंत जों जिन ने जानी॥
कही संत और कही कबीरा। सब मिलि कही एक बिधि हीरा॥
पहुँचे पहुँचे एक ठिकाना। बिन पहुँचे का और बखाना॥
जो जो सत जो भये सनाधा। पहुँचे पार सार रस माता॥
बरनि न जाइ संत गति न्यारी। मोरी मति कछु नाहि बिचारी॥
संतन की गति कस कस गाऊँ। दादू की कहौ साखि बताऊँ॥
दादू सब्द संत गति गाई। सब्द संत उन भाखि सुनाई॥
उनकी निसा साखि दरसाऊँ। तुलसी उनकी अगम सुनाऊँ॥

अर्थ–तुलसीदास कहते हैं कि जिन शब्दों को सन्तों ने कहा है, वे सन्त अपने-अपने सब अनुभव के अगाध तत्त्व में प्रवेश कर गए। अपने-अपने सब्दों बनाकर अपनी-अपनी सखियाँ उन्होंने सुनाई।

जो-जो सन्त उस अगम्य के द्वार पर पहुँचे–वे अगम के पंथ से उस पार उतर गए। उस पार जाने की समस्त विधियों का मैं वर्णन करता हूँ–मैंने जो-जो अपनी आँखों से देखा है (वह बता रहा हूँ)।

जिसने आदि अन्त तक उसे जितना देखा, उसने उतना ही उसका वर्णन किया है। उसके विषय में अन्य सन्तों ने बताया है और कबीरदास जी ने भी सभी ने उस परम तत्त्व को एक ही तरह से बताया है। सभी-के-सभी, अन्त में, एक ही ठिकाने पर पहुँचे हैं–क्योंकि बिना वहाँ-पहुँचे उसका और क्या वर्णन करते।

वे-वे सन्त जो आश्रययुक्त (सनाथ) बने; वे सभी उस रसमय सार तत्त्व के पास पहुँच चुके हैं।

सन्तों की विलक्षण गति का वर्णन नहीं किया जा सकता–मेरी गति भी इस सन्दर्भ में विचार करने योग्य नहीं है। सन्तों की ज्ञानानुभूति का मैं कैसे-कैसे वर्णन करूँ और कहें तो दादू की ही साखी मैं सुनाऊँ।

दादू ने 'सबद' के द्वारा सन्तों की गति का वर्णन किया है और उन्होंने शबद द्वारा सन्त के विषय में कहकर सुनाया है। कहिये तो उनकी पहचान साखी में ही दिखाऊँ और उनके द्वारा अनुभूत अगम्य तत्त्व का वर्णन करूँ॥

फूलदास संवाद

॥ शब्द (३)॥ दादू साहिब॥

दादू जानै न कोई, संतन की गति गोई॥ टेक॥
अविगत अंत अंत अंतर पट। अगम अगाध अगोई॥ १॥
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा। अगुन सगुन नहि दोई॥ २॥
अंड न पिंड खंड ब्रह्मंडा। सूरति सिंध समोई॥ ३॥
निराकार आकार न जोती। पूरन ब्रह्म न होई॥ ४॥
इनके पार सार सोइ पैहै। तन मन गति पति खोई॥ ५॥
दादू दीन लीन चरनन चित। मैं उनका सरनोई॥ ६॥

अर्थ–सन्तों की गति गुह्य (गोप्य) है, दादू कहते हैं कि इसे कोई नहीं जानता॥

उस अज्ञेय ब्रह्म तत्त्व का जहाँ अन्त होता है, वह अन्त लोक की अन्तरात्मा ही है, वह अगम्य है, अगाध है, इन्द्रियातीत है॥ १॥

शून्याकार शून्य में है, वह शून्य के उस पार है–वह न निर्गुण है और न सगुण दोनों॥ २॥

न वह ब्रह्मांड है, न सृष्टि है, वह न ब्रह्मांड का कोई अंश तत्त्व है किन्तु वह सुरति समाधि में सर्वथा समाया हुआ है॥ ३॥

वह न निराकार है, न आकारमय है, न ज्योति स्वरूप है, और वह पूर्ण ब्रह्म भी नहीं है॥ ४॥

इन सबके उस पार उस सार तत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है–(और उसे प्राप्त करने लिए) शरीर, मन, ज्ञान, मर्यादा सभी को नष्ट कर देना पड़ता है॥ ५॥

दादू कहते हैं कि मैं अंकिचन उनके चरणों में निरन्तर चित्त लीन किए रहता हूँ मैं तो (सदा-सदा के लिए) उनका शरणागत हूँ॥ ६॥

॥ सोरठा॥

तुलसी कहै बुझाय, फूलदास सुन संत गति।
दादू साखि बताय, निसा बूझि कै यह कही॥

अर्थ–तुलसी समझाते हुए कहते हैं कि हे फूलदास! सन्तों की गति को (ध्यान देकर) सुनो। दादू ने तो यह साखी ज्ञानान्धकार को ही देखकर कही है?

॥ चौपाई॥

फूलदास सुनियौ चित लाई। यह दादू की साखि बताई॥
जो संतन ने देखा माहीं। रूप रेख बिन रहै अकाई॥

तन भीतर जो लखा अलेखा। रूप रेख ना रहै अदेखा॥
जा के रूप रेख कुछ नाहीं। सो वो देखा घट के माहीं।।
पुनि दादू की साखि बताऊँ। सब्द एक जो गाइ सुनाऊँ।।
जो जो संतन दिल में देखा। जिन जिन भाखा अगम अलेखा॥

अर्थ–हे फूलदास, मन लगाकर सुनें दादू साहब की साखी यह बतलाती है कि जो सन्तों ने स्वयं देखा है, वह रूप, लक्षण के बिना अशरीर रहता है। वह अलेख्य शरीर के ही भीतर रहता है–चूँकि उसका न कोई रूप है और न लक्षण, इसलिए वह अदृश्य ही रहता है। जिसके न रूप है न कोई लक्षण-वह इसी शरीर के भीतर समाधि द्वारा दिखाई पड़ता है। इसके बाद फिर से, मैं दादू की साखी सुनाता हूँ, उनका एक सब्द गाकर सुनाता हूँ–वह यह कि जिसे-जिसे सन्तों ने अपने हृदय में देखा है, और जिसे अगम्य एवं अलेख्य तत्त्व बताया है–वह ब्रह्म तत्त्व है॥

॥ शब्द (४)॥ दादू साहिब॥

दादू दिल बिच देखा, रंग रूप नहिं रेखा॥ टेक॥
हद हद बेद कितेब बखानै। मैं कहा बेहद लेखा॥ १॥
मुल्ला सेख सैयद और पंडित्त। ये मुए अपनी टेका॥ २॥
राम रहीम करीम न केसों। हरि हजरत नहिं एका॥ ३॥
वो साहिब सबहिन से न्यारा। कोइ कोइ संतन पेखा॥ ४॥
दादू दीन लीन हुई पाया। क्यों कहुँ अगम अलेखा॥ ५॥
जिन जिन जाना तिन पहिचाना। मिटि गया मन का धोखा॥ ६॥

अर्थ–दादू साहब कहते हैं कि मैंने उसको अपने हृदय के मध्य देखा है, वैसे न उसका कोई रंग है, न रूप है और न लक्षण।

वेद तथा धर्मग्रंथ उसे एक सीमा के भीतर ही वर्णित करते हैं, मैंने तो ओ असीम बताया है। मुल्ला, शेख, सैयद और पंडितगण ये तो अपनी दृढ़ता में ही नष्ट हो गए। १-२॥

वह न राम है, न रहीम है, न केशव है–और विष्णु तथा हजरत साहब–दोनों में से एक भी नहीं है॥ ३॥

वह स्वामी सभी से विलक्षण है, उसे किसी-किसी सन्त ने देखा है। दादू साहब कहते हैं कि अत्यन्त दीन होने के बाद उसे प्राप्त किया है–मैं उसे अगम्य एवं अलक्ष्य क्यों कहूँ। जिसने-जिसने उसे समझा है, उसने उसे पहचाना है और उसके मन का भ्रम इस प्रकार समाप्त हो गया॥ ४-६॥

॥ शब्द (५)॥ दादू साहिब॥

दादू देखा मैं प्यारा, अगम जो पंथ निहारा॥ टेक॥
अष्ट कँवल दल सुरति सब्द में। रूप रेख से न्यारा॥ १॥
पिंड ब्रह्मंड और बेद कितेबै। पाँच तत्त के पारा॥ २॥
सत्त लोक जहँ पुरुष बिदेही। वह साहिब करतारा॥ ३॥
आदि जोत और काल निरंजन। इनका वहँ न पसारा॥ ४॥
राम रहीम रब्ब नहि आतम। मुहम्मद नहि औतारा॥ ५॥
सब संतन के चरन सीस धर। चीन्हा सार असारा॥ ६॥

अर्थ–संत दादूदयाल जी कहते हैं कि मैंने जिस पंथ को देखा, वहाँ अपना प्रियतम दिखा।

सुरति समाधि के सब्द में वह अष्ट दल कमल है, वह रूप तथा लक्षण से विलक्षण है॥ १॥

पिंड, ब्रह्मांड, वेद और धर्मग्रन्थों में इंगित वह पाँच महाभूत तत्त्वों से विलक्षण है। सत्य लोक में वह परमात्मा अनासक्त है, वही स्वामी है, वही सृजनकर्त्ता है॥ २-३॥

आदि चेतना के प्रकाश एवं काल निरंजन द्वारा वह प्रसारित नहीं है। वह न राम है, न रहीम है, न वह ईश्वर है, न आत्मा है और न वह मुहम्मद साहब का अवतार है॥ ४-५॥

समस्त संतों के शीश पर चरणों को रखकर मैंने इस असार सृष्ठि के बीच स्थित उस सार तत्त्व को पहचाना है॥ ६॥

॥ शब्द (६)॥ दादू साहिब॥

दादू दरस दिवाना, आरसी यार दिखाना॥ टेक॥
आधी रात गगन मध चंदा। तारा खिलक खिलाना॥ १॥
चटकी सुरति चढ़ी ज्यों चकरी। फूटि गया असमाना॥ २॥
लै लगी जाइ महल मध ऊपर। सूरति निरत ठिकाना॥ ३॥
मिल गया यार प्यार बहु कीन्हा। खुलि गया अरस निसाना॥ ४॥
आदि अन्त देखा मध म्याना। क्योंकर करूँ बखाना॥ ५॥
गुप्त बात गुप्तै भई गाफिल। अंदर माहिं छिपाना॥ ६॥
मैं कछु कीन लीन सोइ जानत। और कहूँ नहि चीन्हा॥ ७॥
दादू पीर मिटी परलै का। जन्म मरन नहिं माना॥ ८॥

अर्थ–दादू उस अपने प्रियतम के दर्शन की दीवाने हो उठे हैं, ये मित्र! दर्पण में ही यार का मुख बिम्ब दिखा दो॥ १॥

आधीरात हो गई है, चन्द्रमा आकाश के मध्य आ गया है और तारे खिल-खिलाकर फूल जैसे खिल उठे हैं॥ २॥

सुरति समाधि एकाएक चटककर चकरी व जैसी चढ़ गई और शून्याकाश फूट गया॥ ३॥

मैं प्रियतम के महल के मध्य में ऊपर स्थित (अटारी पर) जा लगी। वहाँ सुरति-निरति का ठिकाना देखा॥ ४॥

उसके आदि मध्य अन्त में सर्वत्र उसे समाया हुआ देखा, मैं उसका वर्णन कैसे करूँ॥ ५॥

गुप्त बातें गोपनीय ही रहीं, मैं उसका वर्णन क्यों करूँ, कैसे करूँ–वह अन्दर-ही-अन्दर छिप गया॥ ६॥

मैंने उसमें पूरी तरह संसक्त होकर जो कुछ भी किया, वह वही जानता है, किसी अन्य ने तो न उसे न मुझे पहचाना तक नहीं॥ ७॥

सृष्टि के प्रलयकाल से जलने तथा मरने की सारी पीड़ा समाप्त हो उठी और जन्म-मृत्यु का संदर्भ भी खत्म हो गया॥ ८॥

॥ सोरठा॥

जो देखा घट माहि, जिन जिन संतन सब कही।
रूप रेख नहिं ताहि, सो अदृष्ट अन्दर लखी॥

अर्थ–जिन-जिन, संतों ने सारी बातें बताई थी, उसे अपने शरीर के मध्य देखा। उसका न रूप था, न लक्षण, उस अदृष्ट तत्त्व को मैंने अपने भीतर देखा॥

॥ चौपाई ॥

सब संतन ने पाया लेखा। जोई अगम पंथ जिन देखा॥
जोइ जोइ संतन भाखि सुनाई। सो सब देखा अपने माईं॥
बिन देखे नहिं संत पुकारा। देखे बिन कहै झूठ लबारा॥
फूलदास बूझौं मन माईं। संत कही जो कबीर गुसाँई॥
संत कबीर से अंतर नाहीं। भिन्न कहै सो नरकै जाई॥
जो जो संत गये निज धामा। सो कबीर न कहे मुकामा॥
चढ़े संत जो गगन ठिकाना। उनकी गति काहू नहिं जाना॥
संत मते कों दुइ कर जानै। ता तें परै नरक की खानै॥
संत की निन्दा करै बनाई। आदि अन्त भौ भटका खाई॥
संतन की गति भेष न जाना। संत बिना कहुँ नाहिं ठिकाना॥
भेष भुलाना भौ के माहीं। रहै काल बस जम की छाहीं॥
मैं कछु कही न निन्दा भाई। जस जस देखा तस तस गाई॥

अर्थ–जिन-जिन संतों ने अगम पथ को देखा, उन सबने उसकी समझ प्राप्त की है। जिन-जिन संतों ने इसके विषय में कहकर सुनाया है, उन्होंने उसे स्वयं अपनी दृष्टि से देखा है। बिना देखे, सन्तजन उसे कह नहीं सकते–और झूठ तथा लबार बिना देखे उसके विषय में कहते हैं।

हे फूलदास! तुम इसे मनहीं-मन समझो–जिसे गोस्वामी कबीर दासजी ने कहा है, वह सत्य है। संत और कबीर के बीच कोई अन्तर नहीं है जो दोनों को (कबीर और सन्त को) अलग-अलग बताते हैं, वे नरक में जाते हैं। जो-जो संत-संत अपने धाम गए, कबीरदास जी ने उनके उनके स्थानों का वर्णन किया है और जो संत शून्याकाश के ठिकाने पर पहुँच चुके हैं, उनकी दशा के विषय में कोई नहीं जानता॥

संत मत को जो अलग-अलग (दुइ करि) करके जानता हैं, उसके कारण वह नरक की खान में पड़ता है और जो अपने से गढ़-गढ़कर सन्तों की, निन्दा करता है, वह इस भवसागर में आदि से अन्त तक भटकता रहता है।

लोग सन्तों के भेष तथा उनके ज्ञान के विषय में नही जानते (लोगों को यह समझना चाहिए कि) कि उनके बिना संसार में किसी का कोई ठिकाना (अस्तित्व) नहीं है। भवसागर में पड़कर लोग वेशभूषा में भूल जाते हैं–इसलिए वे वेषधारी साधु जन की छाया में (सदैव) काल के ही वश में रहते हैं।

मुख अपने निदा नहि गाऊँ। और संत की साखि सुनाऊँ॥
ओरौ और और पुनि गाऊँ। तिन तिन की मैं साखि बताऊँ॥
तुलसी संत भेष कर चेरा। ये भौ सिंध अनीत अनेरा॥
तुलसी संत चरन की धूरी। दादू सब्द बताऊँ मूरी॥
उनकी साखी सब्द बताऊँ। पुनि दादू की साख सुनाऊँ॥
भेष भूल तब जग के माईं। ता कारन ये सब्द सुनाई॥
भेष भुलान खान सुख कारन। ता तें दादू सब्द पुकारन॥

अर्थ–हे भाई! मैंने कुछ निन्दाभाव में नहीं कहा है, संसार में मैंने जैसा-जैसा देखा है, उसे वैसा-वैसा बतलाया है। मैं अपने मुख से किसी की निन्दा नहीं करूँगा और केवल सन्तों के साक्ष्यों को ही सुनाऊँगा। इसके अतिरिक्त भी मैं अन्य बातें कहूँगा, तथा अन्य अनेक सन्तों की साखियों को और कुछ सुनाकर बताऊँगा और उनके-उनके साक्ष्यों को बताकर सुनाऊँगा।

तुलसी साहब कहते हैं कि वेश तो सन्तों का दास है—और इसी भेष के कारण यह सम्पूर्ण संसार के अनीति और स्वच्छन्दता का केन्द्र है। मैं तुलसीदास तो सन्त चरणों की धूलि हूँ। मैं दादू साहब के शब्दों में इसके मूल रहस्य को वर्जित करूँगा॥

उनकी साखियों तथा शब्दों को मैं बतलाऊँगा, फिर मैं दादू की साखियों को सुनाऊँगा। मैं इन सबद को इसलिए सुना रहा हूँ कि संसार के मूल में मैंने वेश रचना को ही प्रधान रूप में देखा है।

सुख के अन्य कारणों के केन्द्र को भूलकर व्यक्ति वेश रचना में ही संसक्त हो उठा है, इसीलिए ही, दादू ने अपने सबदों में इसे पुकार-पुकार कर बताया है।

॥ शब्द (७)॥ दादू साहिब॥

दादू भेष भुलाना, जम संग कीन्ह पयाना।। टेक॥
षट दरसन पंडित और ज्ञानी। पढ़ि पढ़ि मुए पुराना॥ १॥
परहंस जोगी सन्यासी। बेद करत परमाना।। २॥
आतम ब्रह्म कहैं अपने कों। सब में हमीं समाना॥ ३।।
ता से भौजल पार न पावैं। अहंग ब्रह्म मन माना॥ ४॥
मन बिहंग की खबरि न जानै। तन निहंग है बाना॥ ५॥
जग जज्ञास मोह पद माते। ता से बहु लपटाना॥ ६॥
बे साहिब समरथ हैं दाता। तिन को नहिं पहिचाना॥ ७॥
वा को भेद बेद नहिं पायौ। अगम पंथ नहिं जाना॥ ८॥

अर्थ–अरे यह साधु वर्ग वेश रचना में भूल गया है, दादू साहब कहते हैं कि इसीलिए यह यमराज के साथ प्रस्थान कर रहा है।

छः दर्शन सिद्धान्त, उनके पंडित तथा ज्ञानी एवं पुराणवाचक सभी के सभी उन्हें पढ़ते हुए मर गए॥ १॥

परमहंस, योगीगण, सन्यासी आदि जो वेद के प्रभाव का ज्ञान मानते हैं, वे अपने को आत्म ब्रह्मरूप कहते हैं और गाते हैं कि सभी में आत्मरूप-ब्रह्म समाया है॥ २-३॥॥

इन कारकों से वे माया संसार से मुक्त नहीं होते—वे अहम् में विलीन ब्रह्म को मानते हैं॥ ४॥

वे मन रूपी पक्षी की खबर नहीं जानते और वे इस शरीर को पूरी तरह से धर्मचिह्न बनाए हैं। वे संसार के प्रति जिज्ञाशावान् किन्तु मोह तथा मद में माते हुए हैं और उनसे उनके अनेक भाई -बन्धु संसक्त तथा लिपटे हुए हैं॥ ५-६॥

वे परमात्मा स्वामी हैं, समर्थ हैं, दाता हैं, ये उन्हें नहीं पहचानते। उन स्वामी के रहस्य का ज्ञान वेद भी नहीं समझते—और वे उस परमात्मा के अगम्य पंथ को भी नहीं जानते।

॥ शब्द (८)॥ दादू साहिब॥

दादू दो दिन रहिहौ, जम दुख बंधन सहिहौ॥ टेक॥
तू मत जान ज्ञान आतम कस। इन बस धोका खैहौ॥ १॥
ये संसार भाव भय भावत। खोजत फिरि फिरि वहौ॥ २॥

भेष भुलान खान सुख कारन। सार न पुनि फिरि पैहौ॥ ३॥
ये जग खोट मोट कौ पूजत। सूझत स्वारथ दैहौ॥ ४॥
ये भौ-सिंध अथाह अपारा। बूझि बूझि पग दैहौ॥ ५॥
जम की जाल बड़ी अति दारून। आपै आपु बँधैहौ॥ ६॥
दादू कहत पुकारि जगत जग। भेष सबै सुनि लैहौ॥ ७॥
भौजल पार जबै होइ जैहौ। सुरति शब्द समैहौ॥ ८॥

अर्थ–दादू साहब कहते है कि इस संसार में थोड़े दिन (दो दिन) ही रहना है–इसका दुखदायी बन्धन सहो। तू यह समझने की चेष्टा मत करो कि 'आत्म ज्ञान' कैसा है, इसको बताने वाले इन साधुओं के वश में आकर धोखा खा जाओगे॥ १॥

यह संसार भावमय है, सुन्दर लगता है, और उस परम तत्त्व को खोजते-खोजते फिर-फिर बह जाओगे॥ २॥

भौतिक सुखों के कारण यह संसार वेशरचना में ही भूल उठा, (और अब आगे) वह उस मुक्ति के सारतत्त्व को पुन: नहीं प्राप्त कर सकेगा॥ ३॥

यह संसार नासमझों एवं सम्पन्नों (महन्थादि) की पूजा करता है और उन्हें समझ में आता है कि ये हमारे स्वार्थ (लोकाकांक्षाओं) को पूर्ण कर देगें॥ ४॥

यह भवसिन्धु अपार हैं, अथाह हैं, इसमें प्रवेश करने के लिए समझ-समझकर पद रखना॥ ५॥

यम की जाल के फंदे अत्यन्त दारुण एवं व्यापक हैं, तुम स्वयं उसमें अपने आप बँध जाओगे॥ ६॥

दादू साहब समस्त संसार को पुकार-पुकार कर कहते हैं कि इस वेश रचना के विषय में सभी सुन लें। इस भवसागर के पार तभी हो सकोगे-जब सुरति के शब्द ज्ञान (अनुभव ज्ञान) में प्रविष्ट होगे॥ ८॥

॥ शब्द (९)॥ दादू साहिब॥

दादू दीन अवाजा, अग जिव भेष न लाजा॥ टेक॥
सिव सनकादि सिगी पारासर। इनकौ सरयौ न काजा॥ १॥
ये तन तोर काल कर खाजा। छिन छिन सिर पर गाजा॥ २॥
सुकेदव व्यास जनक नारद मुनि। घट घट उन पर छाजा॥ ३॥
तू केहि लेखे माहि न बचिहै। पचि पचि मरत अकाजा॥ ४॥
बाघ उपाव करै गउ कारन। जम दल यहि बिधि साजा॥ ५॥
पल में छुटि जैहै सुख सम्पति। ज्यों माखी मधु राजा॥ ६॥
राति दिवस धावै धन कारन। मरन काल कित आ जा॥ ७॥
जिन कोइ सरति सत्त लखि चीन्हा। जन्म मरम भौ भाजा॥ ८॥
दादू भेष भेद जब छूटै। सुरति शब्द समा जा॥ ९॥
जब भया सिंध बुँद का मेला। बोहि साहिब को लाजा॥ १०॥

अर्थ–दादू साहब ने आवाज देकर कहा, हे संसार (अग) के जीवों! तुम्हें इस वेश रचना से लज्जा नहीं आती है।

शिव, सनकादि, शृंगी ऋषि एवं पारासर आदि की वेश रचना से भी उनका आध्यात्मिक मन्तव्य पूरा नहीं हुआ॥ १॥

यह तुम्हारा शरीर काल का खाद्य पदार्थ है और क्षण-क्षण तुम्हारे सिर पर कालकी गाज गिर रही है॥ २॥

शुकदेव, व्यास, जनक एवं नारद आदि के घट-घट पर वह फैला हुआ है॥ ३॥

हे मनुष्य! तू किस विचार से उनसे बच निकलेगा, व्यर्थ ही, तू पच-पच कर मर रहा है॥ ४॥

जैसे कोई व्याघ्र गाय के लिए रक्षा का कोई उपाय करता हो, ठीक उसी तरह यमराज की सेना तुम्हारे लिए सजाई गई है॥ ५॥

सम्पूर्ण सुख सम्पत्ति पलभर में छूट जाएगी–जैसे मधुराजा के हटते ही छत्ते से मक्खियाँ छूट जाती है॥ ६॥

धन के निमित्त तुम रात्रि दिवस दौड़ते हो, किन्तु मृत्यु कहाँ कब आ जाए। तय नहीं है॥ ७॥

जिन संतों ने सुरति के सत्य भी पहचान कर ली है उसके लिए जन्म-मृत्यु एवं भौजाल स्वयं भाग जाते हैं॥ ८॥

जब सन्त में सुरति का साक्ष्य ज्ञान समाविष्ट हो जाता है तो वेश रचना का भेद समाप्त हो उठता है तथा बूँद (आत्मा) और सिंधु जैसे परमात्मा का मिलन हो जाता है तो वह स्वामी परमात्मा स्वयं जीव की रक्षा के लिए लज्जित हो उठते हैं॥ ९-१०)॥

॥ शब्द (१०)॥ दादू साहिब॥

दादू कहत पुकारी, कोइ मानै नाहिं हमारी।। टेक॥
पंडित काजी बेद कितेबा। पढ़ि पढ़ि मुए लबारी॥ १॥
ये तीरथ ये हज को जाते। बूढ़े भौजल धारी॥ २॥
हिन्दू तुरक दीन दोउ भूले। करम धरम पचि हारी॥ ३॥
नूर जहूर खुदा हम पाया। उतरे भौजल पारी॥ ४॥

अर्थ–दादू पुकार-पुकार कर कहते हैं, कोई हमारी बातें नहीं मानता।

पंडित, काजी, वेद, धर्मशास्त्र–इन्हें पढ़ पढ़कर लोग लबार बन गए हैं॥ १॥

वे तीर्थ को और वे हज को जा रहे हैं और वे सभी भौजल की धारा में डूब चले हैं॥ २॥

हिन्दू और मुसलमान दोनों अपने धर्मो को भूल गये हैं और इसी धर्म तथा कर्म में फँस कर मर गए है॥ ३॥

हमने ईश्वर का तेज और उसकी कृपा प्राप्त की है, परिणामस्वरूप हम सब इस भौजल के पास उतर गए हैं॥

॥ शब्द (११)॥ दादू साहब॥

दादू दीन अधीना, मैं मति काहु न चीन्हा॥ टेक॥
देह भाव जानत जग सारा। मैं तिन से तस कीन्हा॥ १॥
मैं अति नीच जाति कर बेहना। का कहुँ बूझि न सैना॥ २॥
जो कछु कही सही नहिं लीन्हा। पुनि पुनि उत्तर दीन्हा॥ ३॥
मैं कहा सार पार परमारथ। स्वारथ जग मति हीना॥ ४॥
जो कोइ कहन गहन लखि लीन्हा। कही संतन मत भीना॥ ५॥
आठ अरब बानी पद पूरन। सूर न सार यकीना॥ ६॥

दादू दूरि गाँव बसि पारा। धुनि कपास रस पीना॥ ७॥
सतगुरु संध मारग अति झीना। ज्यों जल तैरत मीना॥ ८॥

अर्थ–दादू साहब कहते हैं कि मैं तो प्रभु के अधीन उनका एक दास हूँ, मैंने किसी के ज्ञान को नहीं पहचाना तथा चीन्हा है।

यह सारा संसार भेद भाव को अच्छी तरह जानता है किन्तु मैंने तो सबके साथ समान आचरण रखा॥ १॥

मैं अत्यन्त नीच जाति से सम्बद्ध 'बेहना' हूँ। मैं क्या बताऊँ, इशारे से ही समझो न?॥ २॥

मैंने जो कुछ भी कहा है, उसे लोगों ने ठीक ढंग से नहीं लिया है और बार-बार मेरी बातों को स्वीकार न करके लोग मुझे उत्तर देते रहे हैं॥ ३॥

मैंने बताया कि परमार्थ के उस पार जीवन का सार तत्त्व है, और यह संसार अपने स्वार्थों में फँसा गतिहीन है॥ ४॥

जिस किसी ने भी कथनी को स्वीकार करके उसके सार तत्त्व को स्वीकार कर लिया है, उसने सन्तों के मतों को भिन्न तरह से कहा है॥ ५॥

आठ रबों से भी अधिक पदों से परिपूर्ण सन्तों की वाणी है–किन्तु इन विद्वानों को उस वाणी के सार तत्त्व पर विश्वास नहीं है॥ ६॥

दादू दास कहते है कि मैं तो गाँव के उस पार निवास करता हुआ और मैंने कपास को धुन कर के उस आध्यात्मिक आनन्द का पान किया है॥ ७॥

सतगुरु के साथ चला जाने वाला मार्ग अत्यन्त झीना है–जैसे तैरते हुए जल में मछली का मार्ग॥ ८॥

॥ सोरठा॥

तुलसी भेष भुलाना, जानि मानि भौ में लसा।
फँसा रस सार न जान, जानि कानि बूझी नहीं॥

अर्थ–यह जान करके कि और समझ करके कि वह भवसागर में संसक्त हो उठा है। उसमें फँसा हुआ व्यक्ति रस के सार तत्त्व को नहीं समझता। वह उसे समझ करके भी उसे समझता नहीं है॥

॥ चरचरी॥

तुलसी सब तोल देख, भेष भाव जाई॥ टेक॥
तलसी रस खान पान, जान मान माई।
ऐसा मन भूल भेष, भिन्न चिन्ह न पाई॥ १॥
संतन से बैर हेर, साथ चहत नाई।
तुलसी सब भेष मूल, अपने हँस माई॥ २॥
देखा सब झार झार, पार कोउ न पाई।
लाई लै लार लार, जग असार साईं॥ ३॥

अर्थ–सम्पूर्ण तत्त्वों का जिस दिन मूल्यांकन कर लोगे, यह भेष का भाव नष्ट हो उठेगा।

तुलसी साहब कहते हैं कि हे मान! खान, पान एवं आध्यात्मिक रस के के ज्ञान को मानो।

उस आध्यत्मिकता का मन के बीच ऐसी भिन्न वेश रचना है कि उसका कोई भिन्न स्पष्ट चिह्न नहीं पा रहा है। सन्तों से बहुत अधिक बैर करके, तुम उनका साथ नहीं चाहते। हे भाई, तुलसी साहब कहते है कि अपनी अहन्ता में सभी फँसे हुए तुम सभी बेषभूषा को मूलतत्त्व माने हुए हो॥ १-२॥

मैंने सारे के सारे गोपनीय स्थानों को देखा किन्तु उस पार (आध्यात्मिक लोक में) किसी को नहीं प्राप्त किया। मैं हर तिनके को प्रेम में जोड़कर ले आया किन्तु हे स्वामी? यह समस्त संसार असार ही दीख पड़ा॥ ३॥

भूलो हक सक्क नाहिं, तुलसी कछु गाई।
पैहै सुख संत साथ, और कहूँ नाहीं॥ ४॥
सत साँच और काँच, पाँच भूत माई।
तुलसी सब हेर देख, भेष अनेक ठाईं॥ ५॥
देखा सब जोड़ जोड़, चौज कहँ न पाई।
तुलसी मन टूट फूट, छूट छाँड़ ताही॥ ६॥
बिना संत सत्त तत्त, हाथ नहीं आई।
देखा सब जोड़ दोड़, द्वार खानि माई॥ ७॥
तुलसी निरखा निहार, पार सार नाहीं।
चित्त कहन बर्त बूझ, कर्म काल जाई॥ ८॥
मैं तो कही पेख नैन, देख भेद जाई।
बूझा नहिं सुपन सैन, ऐन आद नाहीं॥ ९॥
ता से मन चेत बूझ, देखि दृष्टि जाई।
तुलसी तन तोड़ फोड़ मोड़ पोढ़ पाई॥ १०॥

अर्थ--इसमें कोई शक नहीं है कि सभी अपने अहंकार में भूले हुए हैं, तुलसी साहब उसी के विषय में कुछ कह रहे हैं--यहाँ तो सम्पूर्ण सुख सन्तों के ही साथ मिलेगा, अन्य और कहीं भी नहीं।। ४॥

सन्त ही सच्चे हैं और हे भाई! ये पाँचों महाभूत तत्त्व कच्चे हैं, तुलसी ने सबको अनेक बेशों एवं अनेक धार्मिक स्थानों पर देखा है॥ ५॥

सभी का निरीक्षण करके देखा है किन्तु वह आनन्द विलास कहीं भी नहीं मिला, उन्हें देखते ही तुलसी का आस्थावादी मन टूट गया, उनसे अलग हो उठा और उसी क्षण उसे त्याग दिया और वह छूट गया॥ ६॥

बिना सन्तों के सत्त्व तत्त्व हाथ नहीं आया, मैंने तो समस्त संसार को उसके द्वार पर उसकी सम्पन्नता की प्रतीक्षा करके देखा॥ ७॥

तुलसी ने पुनः निहार कर देखा, इस भौतिक जगत के उस पार भी कोई सारवान तत्त्व नहीं दिखा। चित्त के कहने पर मैंने भवसागर को देखा। यहाँ केवल कर्म तथा काल ही निरन्तर गमनशील हैं॥ ८॥

मैंने तो उसे अपने नेत्रों से देखकर कहा है, इनके रहस्य को तुम भी जाकर समझो--मैं तो इस संसार के स्वप्न एवं भंगिमाओं को भी नहीं समझ गया।। ९॥

इससे हे व्यक्तियों तुम मन से समझकर इसे जानो और जाकर अपनी स्वयं की दृष्टि से देखो। तुलसी साहब कहते हैं कि इस शरीर के साथ जुड़े मन दोनों को तोड़कर, फोड़कर, मोड़कर ही इस मूल तत्त्व को प्राप्त कर सकते हो।। १०॥

॥ चौपाई॥

भेष भुलान सबै जग माई। आदि अन्त की खबर न पाई॥
जो कोइ भेद कहै समझाई। भेष कान पर एक न लाई॥

कपरा रँगे भेष भये साधू। बूझै न बस्तु जो आदि अनादू॥
दया जानि कोइ भेद बतावै। तौ वह नगर रहन नहि पावै॥
गृही भेष सब मारि निकारै। कहै हमरा रुजगार बिगारै॥
परमारथ नहि बूझि गँवारा। पढ़ि पढ़ि बूड़े भव जल धारा॥
या ते संत मता नहि पावै। ता ते जिव भव में रहि जावै॥
कर्म बंध जिव भरमै खाना। बिना संत नहिं लगै ठिकाना॥
फूलदास रेवती सुन दासा। संत मिलै तौ होइ सुबासा॥
और जो सुनौ जगत सब बोरा। भेष टेक में बूड़ न थोड़ा॥
संत मता कहुँ देख न आवै। भेष मता सब जगत बुड़ावै॥
ऐसी सोल पोल कहा कीजै। उपजै बिनजै नित नित छीजै॥
ऐसी कहा कहा की कहिये। ता से गुप्त मौन होइ रहिये॥
को जग अजगुत सिर पर लेही। परी भूल सर्ब मत येही॥

अर्थ–हे भाई! इस संसार में सभी वेश रचना के आडम्बर में भूले हुए हैं। उन्हें न आध्यात्मिक आदि की चिन्ता है, न अन्त की। उनको यदि कोई इस विषय पर समझा कर बताता भी है तो साधुओं की वेशभूषा के आडम्बर के विषय में कोई बात उनके मन में नहीं बैठती। साधुजन कपड़ा रंग के वेशधारी बनते हैं किन्तु उन्हें आदि-अनादि की मूल वस्तु समझ में नहीं आती। यदि कोई उन पर दया करके उन्हें इस बात को समझाना चाहे तो वह काशी जैसी नगरी में रहने नहीं पाएगा।

गृहस्थवेष के साधु को देखकर सभी उसे मारकर निकाल देते हैं और कहते हैं कि यह हमारा रोजगार बिगाड़ रहा है। ये गँवार परमार्थ तत्त्व को नहीं जानते और शास्त्रादि पढ़ पढ़कर भवजाल में डूब मरते हैं। इसी कारण ये संतमत को नहीं समझ पाते और इनका जीव इसी भवसार में रह जाता है। जीव कर्मबन्ध के कारण नाना योनियों में भरमता है और बिना सन्तों के उसका कहीं और ठिकाना भी नहीं लगाता।

हे फूलदास, हे रवतीदास आप लोग सुनें, सन्त के मिलने पर ही ठौर ठिकाना मिलता है। यदि अन्य से इस तत्त्व को समझना चाहोगे तो वह इस भवसागर में डुबने देगा–वेष रचना पर अड़ जाने पर व्यक्ति पूरी तरह डूब जाता है, उस व्यक्ति को कहीं भी सहमति नहीं दिखाई पड़ेगी और उस वेश रचना सारे संसार को डूबो देगी॥

इस प्रकार की सोल पोल (आडम्बर) करने से क्या लाभ, वह तो बीज की भाँति प्रतिदिन उपजता तथा नष्ट होता रहेगा। ये कहाँ-कहाँ थी मैं क्या बातें कहूँ। इसलिए इससे मुक्त होकर शान्त की रचना की ठीक है। समस्त मतों के मूल में यही तथ्य निहित है, इसलिए इस संसार की सम्पूर्ण दुर्व्यवस्था को सिर पर लेने से क्या लाभ?

हाल मुसलमान साधू अली मियाँ का

॥ बचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

एक समय इक अचरज भइया। इक फकीर मक्के से अइया।।
नाम अलीं तेहि जाति फकीरा। राति भई रहे हमरे तीरा॥
अल्ला कुह कुह करै निमाजा। हमरे माहिं देखि मन लाजा॥
फारिग भये तब खाना खाया। ले आसन कुटिया में आया॥

हम से खुदा खुदा कर बोले। खुदा नबी बिन कछू न तोले॥
पूछा अल्लानबी केहि ठावाँ। उन पुनि ले असमान बतावा॥
हम पुनि कहा तुम्हारे पासा। मुरसिद मिलै तो होय खुलासा॥
हमरी बानी कान न लावा। तब दादू का सब्द सुनावा॥
अली मियाँ सुन हक्क इमाना। मुरसिद दादू किया बखाना॥
अदर अली भली कर मानौं। अल्ला अलिफ जुबान बखानौं॥

अर्थ–एक समय एक आश्चर्यमयी घटना हुई। एक मक्के से आया था, उसका नाम अली, तथा वह जाति का फकीर था। रात्रि हुई और वह हमारे पास आया। अल्ला-अल्ला कहकर वह नमाज करता था–उसको देख मेरे मन में लज्जा लगती थी। शाम को फारिग होकर उसने भोजन किया तथा अपना आसन लेकर वह मेरी कुटिया में आ गया। वह मुझसे खुदा-खुदा कहते हुए बोले और खुदा के बिना कुछ बी नहीं मूल्यांकित करते थे।

हमने उनसे पूछा कि अल्ला मिया तथा नबी कहाँ हैं, तो उन्होंने मुझे आकाश की ओर इशारा किया। हमने उनसे पूछा कि क्या वह तुम्हारे भी पास हैं, उन्होंने उत्तर दिया–धर्म गुरु मिलें तो यह बात स्पष्ठ हो।

उन्होंने जब मेरी बातों पर ध्यान नहीं दिया, तब मैंने दादू साहब के 'सबद' को सुनाया। अली मियाँ उसे सुनकर स्तम्भित (हक्क इमान) रह गए। मैंने बताया कि मैं धर्मगुरु दादू के वर्णन को बता रहा हूँ। अली साहब ने उसे अच्छा मानकर सुना और कहा कि अपनी जुबान से आप अल्ला मिया का वर्णन करें।

॥ अली मियाँ॥ चौपाई॥

भूल रसूल रमक दरसावौं। पैगम्बर परमान बतावौं।।
पैगम्बर कहि भाखि सुनावौं। मसजिद हक मक्का को गावौं॥

अर्थ–परमात्मा के मूल का रहस्य बताएँ तथा पैगम्बर का प्रभाव भी कहें। पैगम्बर ने यह कहा है, ऐसा कहकर भी बताएँ और ईश्वरीय मस्जिद मक्का का भी वर्णन करें।

संवाद अली मियाँ

॥ तुलसी साहिब॥ चौपाई॥

कितनी कही इमान न लावा। मंजल एक उन भाखि सुनावा॥
खुदा खुदाय सब खलक बखानै। खुदा बिना कही एक न मानै॥

अर्थ–मन लोगों के सामने कितनी बार खुदा की बाते कहीं किन्तु कोई उस पर ईमान नहीं ला सका। खुदा तो खुदाय का है, सभी उसे संसार का कहते हैं–और खुदा के बिना कहे कोई एक भी बात स्वीकार नहीं करते॥

(ग़ज़ल अली मियाँ)

बंदा बेहोश याद हर दम लावै।
तेरे बिन खुदी खूब कैसे भावै॥ १॥
कीन्हे तें आफताब खलक आफरी।
कलमा बिन पढ़ न कहै कुफर काफरी॥ २॥

तुलसी ये अली ग़ज़ल गाइ सुनाई।
दाद दुरवेश एक देश हमहूँ गाई॥ ३॥

अर्थ–हे प्रभु! तुम्हारे बिना यह संसार कैसे अच्छा लगे। प्रभु के प्रति समर्पण को देखकर यह संसार क्षमा करता है। यदि कलमा नहीं पढ़ते तो उन्हें धर्महीन बताते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि हे अलीमियाँ, यह गज़ल हमने गाकर सुना दी। साधु दादू दयाल के एक छन्द को मैंने भी गाकर आपको सुना दिया। १-३॥

(गजल तुलसी साहिब)

दिल का दुरवेश एक दादू फ़कीर।
भीख कही साखि शब्द मुरशिद पीर ॥ १॥
सुनिये म्याँ अली अलिफ़ बानी उनकी।
रोज़ा निमाज़ कही अन्दर धुन की॥ २॥
कलमा पढ़ खुदा खुदा खोज अपने माई।
देखो तन बदन बीच भिश्त बनाई॥ ३॥
तुलसी की कहन मियाँ दिल में लावो।
बदन बीच खोज यार अन्दर पावो॥ ४॥

अर्थ–दिल से साफ एक दादू फकीर, उसने अपने शब्दों में आध्यात्मिक गुरुओं की पीड़ा का वर्णन किया है। मियाँ अली साहब, जरा उसकी कुछ बातें सुनें। रोज तथा नमाज यह अन्दर की आवाज है– और कलमा पढ़-पढ़कर हे भाई उसे अपने में ही खोजो और ध्यान से देखो तो वह इस शरीर के भीतर स्वर्ग बना रखा है। हे अली मियाँ? तुलसी की बातों को कुछ हृदय में लेकर उन्हें स्थान दो। जिस यार के लिए इतने परेशान हो, उसे इशी शरीर के बीच खोजो और उसके अन्दर प्राप्त करो॥ १-४॥

॥ सोरठा॥

अली अजब दीदार, पार परख दादू कही॥
दिल दुरबीन निहार, सो बिचार कह्यौ सब्द॥

अर्थ–दादू ने कहा है कि उसका दृश्य बड़ा ही आश्चर्य जनक है–उसे मन के ही उस पार देखो। उसे दिल की दूरबीन से निहार कर उसी के बिचार के लिए ये सबद मैंने कहे हैं।

॥ दोहा॥

फहम फकीरी अरस की, मुकर देखि दुरबीन।
चीन्ह चलै उस राह कों, रूह रहम लौलीन॥

अर्थ–परम्परा से चली आ रही फकीरी की समझ को मन की दर्पणा में चित्त की दूरबीन से देखो। उस सच्चे मार्ग की पहचान करके चलो और आत्मा तो निरन्तर तुम्हारे कल्याण में लगी हुई है॥

॥ सोरठा॥

दादू दूर दराब, आबताब पट अबर नहिं।
अल्ला अलिफ मकान, अबर फाड़ि पट राह लख॥ १॥

दिल बिच अलिफ दीदार, स्याम सहर पर रूह लखो।
चखौ अरस रस सार, ये बिचार दादू कही॥ २॥

अर्थ–दादू साहब कहते हैं कि वह प्रकाश सूर्य की रोशनी के बीच नहीं छिपा है। ईश्वर का गृह तो शून्य में है और भौतिक वासनाओं को फाड़ करके उस देखो!

हृदय के बीच में ही ईश्वर का दर्शन सम्भव है और वहीं श्याम और श्वेत स्थल पर उस अगम्य को देखो। वह जो सामान्य रूप से रूखा दिखाई पड़ता है उसके रस के सार तत्त्व का आस्वादन करो, यही दादू साहब का विचार है॥

॥ चौपाई॥

दरिया भी दादू बतलाई। अली मियाँ सुनि साखि सुनाई॥
जो सराब दादू भरि पीना। सो सुनि कर कै करौ यकीना॥
आब अलिफ जिनकी चलि आई। सों फकीर दुरबेस कहाई॥
उन कुरान का मझब सुनावा। भिस्त खोज खुद खुदा लखावा॥
अब दादू का सब्द सुनाऊँ। परस पिया रस लखन लखाऊँ॥

अर्थ–दरिया (नदी) के विषय में दादू साहब ने भी बताया है हे अलीमियाँ! आप सुनें, मैं उसकी साखी सुनाता हूँ। जो आध्यात्मिक उत्माद भरी शराब दादू साहब ने पी है, इस साखी को सुनकर आप विश्वास करें। वही ज्ञानी कहा जाता है, जिसका नाम रोशन हो उठता है और उसी को लोग सिद्ध फकीर कहने लगते हैं। वही कुरान का धर्मोपदेश करते हैं और स्वर्ग की खोज करते हुए स्वयं ईश्वर को दिखाते हैं। अब इस प्रसंग में दादू साहब का शब्द सुनाता हूँ और प्रियतम (अगम्य तत्त्व) के स्पर्श के अनुभव को स्पष्ट रूप से दिखाता हूँ।

॥ शब्द (१२)॥ दादू साहिब॥

दादू दूरि दराबी, पिय रस पियत सराबी॥ टेक॥
पियत पियाला मन मतवाला। भोर भई उँजियारी॥ १॥
खूबी खलक खुदी खोइ ख्वाबी। अंदर खिलि गइ ख्वाबी॥ २॥
मक्का भिस्त हज्ज को देखा। अबरा आब और ताबी।। ३॥
अल्ला आदि नबी लख छूटा। रोजा निमाज अजाबी॥ ४॥
मलकुत नासुत जबरुत जा के। लाहुत हाहुत पागी॥ ५॥
लै लगी लामुकात रबि ही से। जगत जहान खराबी॥ ६॥
दादू दृग दीदार हिये के। चूँ बेजूँ बेज्वाबी॥ ७॥
चौधा तबक रियाजत बाजा। आया अरस अराबी ॥ ८॥

अर्थ–दादू साहब कहते हैं कि दूर स्थिति उस उस प्रियतम के आनन्द (आध्यात्मिक) की शराब वह साधक पीता रहता है।

प्याला पीते ही उस मन उन्मत्त हो उठता है और उसकी अन्तश्चेतना में अन्धकार के स्थान पर प्रातः का उजाला दिखाई पड़ने लगता हैं। वह इस संसार में स्थित परमात्मा के गुणों में खो जाता है और उसका आध्यात्मिक स्वप्न उसकी अन्तरात्मा में खुल उठता है। वहीं अपनी अन्तरात्मा में मक्का तथा स्वर्ग दोनों को देखता है और प्रकाश में जलधारा की लहरों का वहीं संगम हो उठता है। उसे देखते ही

अल्लाह और धर्म गुरू छूट जाते हैं तथा नमाज, रोजा और मृत्युलोक के दण्डों का भय भी छूट जाता है। देवलोक (मलकूत), यह मृत्युलोक (नासून), श्रेष्ठता तथा बड़प्पना का अहंकार (जबरूत), आध्यात्मिक दिव्यता (लाहूत) तथा हाहूत सभी एक में मिलकर उसमें तन्मय हो उठते है। साधक की तन्यमता स्वयं प्रकाश में आत्मलीन हो उठती है और यह दृश्य जगत व्यर्थ हो उठता है। दादू साहब कहते हैं कि अन्तर्मन द्वारा उस अगम्य तत्त्व के हृदय में दर्शन होते ही वह लाजबाब परमतत्त्व इस प्रकार अद्वितीय हो उठता है।

॥ सोरठा ॥

अली मियाँ सुन साखि, दिलै फहम बेदिल हुआ।
मुए रूह से बाद, साथ स्वाल काफर कहा॥

अर्थ–हे अलीमियाँ इस साखी को सुनों यह हृदय उसमें तन्मय होकर इन वासनाओं के लगाव से दूर हो उठा। मृत्यु के बाद कुछ प्राप्त होता है, ये बातें बेकार हैं।

॥ चौपाई ॥

अली मियाँ सुन हमरी बानी। गुन गुन मन में बहुत रिसानी॥
कही कुरान अल्ला मुख बानी। हिंदू को काफर कर जानी॥
और रसूल पार करौ यकीना। उन फकीर ताजीमी कीन्हा॥
स्वाल भाखि पुनि आसन लीन्हा। उठकर चलन फिकर मन कीन्हा॥
हाथ पकरि हम गुसा उतारा। आसन जिमीं डारि बैठारा॥
हम पर मेहर करौ तुम साँईं। अपने दिल में बूझौ भाई॥
तुम खदाइ का खोंज न पावा। मट्टी महजित को सिर नावा॥
जो महजित तुम आप बनाई। ता महजित में खोज लगाई॥
कहौ खदा तुम सब के साईं। ऐसे कुरान कितेब सुनाई॥
अपने मुख से सब में भाखौ। मट्टी महजिद को फिर ताकौ॥
समझौ अपने दिल के माहीं। खुदा खोज खोजौ दिल माहीं॥
पाँच यार मुहम्मद जो भाखा। आग खाक जल पौन अकासा॥
ता को खोजो अपने माहीं। बिन मुरसिद कोइ खोज न पाई॥
सब में खुदा कुरान बतावै। करौ हलाल सो दरद न आवै॥
अपना कुफर चीन्ह नहि भाई। हिंदू को काफर बतलाई॥
सुनकर अली मियाँ कछ बूझा। ये तो ज्वाब खूब कर सूझा॥
खुसी भये और गुसा उतारा। है खदाई सब में इक प्यारा॥
फिर हम से वो पूछन लागा। कहौ खुदाइ सब माहिं बिराजा॥
अली कहै कछु देख न आवै। खोजै खुदा खोज नहिं पावै॥

अर्थ–हे अली मियाँ मेरी बातें सुनो, वह मन-ही-मन सोचता हुआ बहुत नाराज हुआ। कुरान के विषय में कहा जाता है कि वह अल्लाह के मुख से निकली हुई वाणी है। यही नहीं, हिन्दू का काफिर

करके जाना जाता है। इस पृथ्वी के उस पार का विश्वास करते हो औ उसको बताने वाले फकीरों को सम्मान दिया जाता है।

अपने उत्तर को कह कर उन्होंने आसन ग्रहण किया और फिर उठकर चलने की इच्छा की। हमने उनका हाथ पकड़कर उनका क्रोध शान्त किया और पृथ्वी पर आसन डालकर उन्हें बैठाया। हे स्वामी! तुम हम पर दया करो–तुम स्वयं अपने दिल में यह समझो कि स्वयं तुमने तो खुदा की खोजकर करके भी उसे प्राप्त नहीं कर सके और मिट्टी की बनी इस मस्जिद को सिर झुकाते हो। जिस मस्जिद को तुमने स्वयं बनाई है, उस मस्जिद में ईश्वर की खोज कर रहे हो।

धर्मग्रन्थ कुरान ने यह बताया है और तुम भी कहते हो कि खुदा सबका मालिक है और अपने मुख से ही कहते हो कि वह सबमें वर्तमान है–और इतना जानते हुए भी मिट्टी और मस्जिद को तुम देख रहे हो। अपने दिल के भीतर समझो और खुदा की खोज उसी दिल के भीतर करो। मुहम्मद साहब के पाँच दोस्तों का वर्णन है:ये है, आग, मिट्टी (राख), जल, वायु एवं आकाश। उसको अपने में ही खोजो किन्तु बिना धर्मगुरु के कोई खोज नहीं पाता। कुरान यह बताता है कि खुदा सबमें है किन्तु पशुओं का हलाल करते हो, और लेशमात्र भी पीड़ा का अनुभव नहीं होता।

हे भाई! तुम अपनी ना समझी पहचान नहीं पाते और दूसरी ओर हिन्दू को काफ़िर (धर्मद्रोही) कहते हो। इसे सुनकर अली मियाँ की समझ में कुछ बात आई–कि इन्होंने तो उत्तर बहुत अच्छा दिया है। अली मियाँ खुश हो उठे और अपना क्रोध उतार दिया और समझ में आया प्यारा खुदा सब में एक तरह से है।

इसके बाद, वे मुझसे पूंछने लगे कि उस खुदा के बारे में बताइये जो हम सब में स्थित है। अली मियाँ कहते हैं कि वह कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, उसे सदैव खोजते रहते है, किन्तु खोज नहीं पाते॥

॥ दोहा ॥

तुलसी कह म्याँ अली सुन, खुदा भिस्त के द्वार।
दो अनार लटकत रहैं, कुंजी मुरसिद हाथ॥ १॥
अली मियाँ अचरज भया, काही बात सब साँच।
तुलसी भेद बताइये, दीन होय मैं जांच॥ २॥

अर्थ–तुलसीदास बोले कि हे मियाँ अली, सुनों, खुदा तो स्वर्ग के दरवाजे पर है, उस दरवाजे पर दो अनार लटक रहे हैं, उसकी कुंजी धर्मगुरुओं के पास है॥ १॥

अली मियाँ को आश्चर्य हुआ कि उन्होंने बातें सच कही हैं और बोले कि मैं अत्यन्त दीन की भाँति आप से याचना (जांच) करता हूँ कि इसका भेद बताएँ॥ २॥

॥ चौपाई ॥

कहि तुलसी हम भेद बतावा। भिस्त के द्वार अनार लखावा॥
येहि अनार पर सुरति लगावौ। खुलै द्वार भिस्त तब पावौ॥
तुम तुलसी के कदम उन लीन्हा। अली मियाँ आधीनी कीन्हा॥
हुआ अधीन भेद बतलाई। तब उठि मियाँ राह को जाई॥
फूलदास बूझौ तुम मूला। हिंदू तुरक भेद दोउ भूला॥
भूला भेष काल भरमाया। काल अपरबल सब को खाया॥
संत मते की राह न जानै। काल चाल बिधि कालहि मानै॥
जम फाँसी में भेद भुलाना। केहि बिधि पावै जीव ठिकाना॥

ये जग माहिं फाँस जम डारा। संत बिना नहिं होइ उबारा॥
बारा मते काल न कीन्हा। आदि अंत फाँसी जिव दीन्हा॥
सतजुग द्वापर त्रेता माई। और कलजुग की कहा बताई॥
अनेक जुगन जुग फाँस फँसानी। भेद न चीन्हा पड़े पुनि खानी॥
जब निरगुन बैराट पसारा। सत्त नाम से माँगि लबारा॥
बारा नते मोहि को दीजै। मोरा मता साध अस कीजै॥

अर्थ–तुलसी साहब ने कहा कि उन्हें हमने भेद बताया और स्वर्ग के द्वार पर स्थित उस अनार को भी दिखाया। इस अनार पर सुरति ध्यान लगाओ–तब स्वर्ग का द्वार खुलेगा और तुम स्वर्ग प्राप्त करोगे॥

तब उन्होंने तुलसी के चरणों को छुआ और उनकी आधीनता स्वीकार कर ली। जब वे मेरे अधीन हुए तब मैंने उन्हें मैंने उनका रहस्य बतलाया और उसके बाद अली मियाँ अपनी राह चल पड़े।

हे फूलदास! तुम इसके मूल रहस्य को समझो। तुम तो हिन्दू एवं मुसलमान के भेद में पड़े हुए हो। तुम वेषसज्जा में भूले तथा काव्य के द्वारा भ्रमित किए हुए हो। यह काल सर्वथा शक्तिशाली है, और यह सभी को खा गया है। सत्य मत की कोई राह नहीं जानता तथा काल की चाल के कारण काल को ही विधाता मान रहा है। यम के फँदे में पड़ा हुआ यह मनुष्य सम्पूर्ण भेदों को भूल गया है और वह यह नहीं जानता कि जीव किस प्रकार अपने आश्रय स्थल को प्राप्त करेगा। इस सम्पूर्ण सृष्टि में काल ने अपनी फाँस डाल रखी है–अत: बिना सन्तों के जीवों का उद्धार असम्भव है। काल ने अपने बारह तरीके बनाये हैं और आदि में या अन्त में वह जीव को फाँसी देता है। सत्युग, त्रेता तता द्वापर तथा कलियुग की कही हुई कथा मैं बतलाता हूँ। इन अनेक युगों में काल ने मनुष्य को फाँसी के फंदे में फँसाता रहा और जिसे (परमार्थ का रहस्य) समझ में नहीं आया वे भवसागर में पाप की खानि में पड़े रहे। निर्गुण ने जबसे विराट सृष्टि का प्रसार किया, उस लबार ने सत् नाम से यह यह बरदान माँगा। मुझे बारह प्रकार के साधनों को दें और हमारे मतों को ऐसा साधन बनायें।

बारा मत की राह चलाऊँ। जा से जीव जगत उरझाऊँ॥
ऐसे निरगुन माँगा माई। काल जाल मति जिनहिं चलाई॥
बारा माहिं भेष सब भूला। सो जग जाल सहै जम सूला॥
निरगुन काल जग कीन्हे भेषा। चारो जुग जग बाँधी टेका॥
भेष किया जग काल कराला। संत बिना नहिं छूटै जाला॥
काल भेष जग भये अनेका। अपनी अपनी बाँधी टेका॥
ता से तुलसी पंथ न कीन्हा। जगत भेष भया काल अधीना॥
जो जो कहे जीव निरबारा। सो सो फाँसी सबने डारा॥
बिन आँखी सूझा नहिं भाई। बिना संत कहौ कौन लखाई॥
चीन्है संत तो होइ उबारा। नहिं तो बूड़ै भौजल धारा॥
जे कोइ बारा मत को चीन्हा। काल रहे पुनि तासु अधीना॥
ता पर काल जाल नहि डारा। जम होइ दीन ताहि की लारा॥
संत मिलें पुनि मारग पावै। ऐसे जीव लोक को आवै॥
ये जग भेष काल बस होइ। इनकी बात न मानौ कोई॥

जो कोइ काल भेष पहिचानै। गति मति भेद संत कर जानै॥
दस औतार निरंजन जाना। ब्रह्म बिष्नु काल उत्पाना॥
बेद कितेब अस फंद पसारा। ये जग काल जाल मत डारा॥
या को जब चीन्है कोह प्रानी। मत बारा की राह पिछानीं॥
पुनि बारा से भये अनेका। कह लग कहौं पार नहिं जे का॥
जो कोइ काल भेष पहिचानै। गति मति भेद संत कर जानै॥

अर्थ–मैं जीवों को इन बारह मार्गों की राह पर चलाऊँ और उससे जीवों को उनके द्वारा फंसा दूँ। हे भाई! उसने यह बरदान निर्गुण ब्रह्म से माँगा और उसने काल जाल की व्यवस्था चलाई। इसी बारह मार्गों में सभी भूल गए और संसार उन जालों को सह रहा है–जो यम के शूल है॥ निर्गुण ब्रह्म द्वारा उत्पन्न काल तत्त्व के अनेक वेष बनाकर उसने संसार के चारों युगों को बाँधने की टेक बाँध ली। संसार को विनष्ट करने के लिए काल ने भयंकर वेष रचना की और बिना संतों के यह उनसे छूट नहीं सकता।

संसार में काल के अनेक वेष बने और उन वेषों ने भी अपनी अपनी टेक बाँध ली। इसीलिए तुलसीदास जी ने कोई धर्मपंथ नहीं चलाया है क्योंकि सम्पूर्ण वेष रचना तो कालाधीन हो गई॥ जिस-जिस ने कहा जीवन मुक्त है:उन उन सभी वक्ताओं ने उन पर फाँसी लगा दी। हे भाई! बिना ज्ञान दृष्ठि (आँख) के यह सूझता नहीं और बिना संतों के उन्हें कौन-दिखा सकता है। जो व्यक्ति संतों को पहचान लेता है तो उसका उद्धार सम्भव है, नहीं तो वह भवसागर की धारा में डूब जाता है। जो कोई इन बारह मतों को पहचानता है, काल स्वयं उसके अधीन रहता है, उस व्यक्ति पर काल अपना जाल नहीं डाल सकता और यमराज स्वयं दीन बनकर उसकी सेवा में लग जाते हैं। सन्तों के मिलने पर वह सत्मार्ग प्राप्त कर लेता है और ऐसे जीव अन्त में सत्तलोक में आते हैं। नाना प्रकार के जो वेश धर्म के अन्तर्गत बताये गये हैं, ये सभी काल के वशीभूत हो उठते हैं–अत: कोई इनकी बात न माने। जो कोई व्यक्ति काल के वेष को पहचानता है–वही ज्ञान से बुद्धि से सन्तों के रहस्यों को जानता है। निरंजन के दस अवतार हैं–ब्रह्मा एवं विष्णु तो काल के द्वारा उत्पन्न किए गए हैं। वेद और धर्मशास्त्र सभी अपने इस प्रकार के फंदे फैलाए हुए हैं–ये सभी संसार काल के रूप हैं और काल के जाल फैलाए हुए हैं। जब कोई प्राणी इन्हें पहचान लेता है, तब वह बारह मतों की राह समझ जाता है। इन बारह से फिर अनेक मत बनते हैं–उनका कहाँ तक वर्णन करूँ–कोई सीमा नहीं है।

॥ फूलदास दोहा ॥

फूलदास बिनती करै, स्वामी कहौ बुझाइ।
ये बिधि मो को लखि परी, पुनि कबीर कहि गाइ॥

अर्थ–फूलदास विनय करते हुए कहते हैं कि हे स्वामी तुलसी साहब! इन्हें समझाकर बताएँ ताकि इस प्रकार मुझे ये दिखाई पड़ जाएँ और फिर बताएँ। इसी प्रकार से इसे कैसे कबीर ने गाकर कहा है।

॥ सोरठा ॥

अनुराग सागर माहिं, कही कबीर धर्मदास सों।
हम पुनि देखा ताहि, स्वामी यह बिधि सत्त है॥

अर्थ–अनुराग सागर कृति में कबीरदास जी ने इसे गाकर धर्मदास को समझाया है। हमने भी उसे देखा है, इसलिए, हे स्वामी!, आपकी बातें सच हैं॥

॥ प्रश्न, तुलसी साहिब ॥ सोरठा ॥

तुलसी पूछै बात, फूलदास कहिये बिधी।
कस कबीर बिख्यात, काल मते बारा कहे॥

अर्थ–तुलसी साहब फूलदास से बात पूछ रहे हैं कि हे फूलदास! इसे स्पष्ट करें कि काल के इन बारह मतों का वर्णन करके कबीरदास किस प्रकार प्रसिद्ध हुए॥

॥ चौपाई ॥

फूलदास यह भाखौ साखी। बारा मते काल कस भाखी॥
कस कबीर ग्रंथन में गावा। सो बारा की बिधी बतावा॥
तुम ग्रंथन में देखा आँखी। सो सब भाखि कहौ बिधि ताकी॥
पहिले तुम भिनि भिनि बतलाई। फिरि तुमको हम बरनि सुनाई॥
बारा भेद नाम गुन कहिये। भिन्न-भिन्न पुनि बरनि सुनैये॥
कस कबीर ने भाखि बताई। सो बिधि तुम हम को समझाई॥

अर्थ–हे फूलदास! इस साखी का वर्णन करो–काल के क्यों बारह मतों का वर्णन किया गया है। उसे कबीर साहित्य में कैसे वर्णित किया गया है और उन बारह की विधियों का वर्णन करें। तुमने उन्हें ग्रन्थों में पढ़ा है और आँखों से भी देखा है, इसलिए उनके सारे भेदों का वर्णन बताओ। पहले तुमने उनके विषय में भिन्न-भिन्न करके बतलाया था, उसके बाद हमने वर्णन करके सुनाया। उनके नामों का गुणवेद के अनुसार बारह रूपों में वर्णन करें और फिर एक-एक का उनका वर्णन करें। कबीर साहब ने किस तरह से उनके विषय में कह कर बताया है, वह विधि तुम हमें समझाकर सुनाओ॥

॥ उत्तर फूलदास ॥ चौपाई ॥

फूलदास अस भाखा लेखा। कही कबीर सो कहूँ बिबेका॥
तुमने बचन जो भाखि सुनावा। सो कबीर मुख अपने गावा॥
तुम भाखा सत नाम से पावा। बारा मते काल लै आवा॥
या में वा में अंतर नाहीं। ता की बिधि मैं बरनि सुनाई॥
ये कबीर मुख अपने कीन्हा। काल निरंजन को मत दीन्हा॥
उन अपना खुद ज्ञानै भाखा। तुमने भक्ति भाव कर राखा॥
दोनों बिधी एक सम जानी। या में कछू भेद नहि मानी॥
बारा मते काल को दीन्हा। मन अपने परमान जो कीन्हा॥
ये तो स्वामी सत्त जनाई। कहि कबीर ग्रंथन में गाई॥
भाखा सोई सुनाऊँ लेखा। जोइ कबीर ग्रंथन में देखा॥
ये कबीर मुख अपने भाखी। बारा मते काल बिधि ताकी॥
धरमराइ नीरंजन होई। बारा मते दीन्ह हम सोई॥
अस कबीर ग्रंथन में गाई। देखी जस बिधि ताहि सुनाई॥
प्रथम दूत मृतअंध कहावा। दास नरायन नाम धरावा॥

काल अंस ये नाम नरायन। जीव फाँस फंदा जिन लायन॥
तिरमिर दूजा नाम बखाना। जाति अहेरी कुफर कहाना॥
दूत तीसरा भाखि सुनाऊँ। अंध अचेत ताहि कर नाऊँ॥
सुरति गुपाल नाम तेहि पावा। कह कबीर ऐसी बिधि गावा॥
चौथा दूत भंगमन होई। झंगा मूल पंथ कहै सोई॥
पँचवाँ दूत ज्ञानभंग नामा। परचा करन मंत्र को थामा॥

अर्थ–फूलदास ने इस प्रकार उसका विवरण दिया और कहा कि कबीर साहब ने जिस प्रकार से उनका विवरण दिया है, मैं कह रहा हूँ। आपने जो बातें कहकर सुनाई हैं, कबीरदास जी ने उन्हें गाकर कहा है। आपने कहा है कि परम तत्त्व को 'सत्तनाम' से प्राप्त किया है और 'काल' ने बारह मतों को स्थापित किया है। इसमें और कबीर मत में कोई अन्तर नहीं है उसकी विधि को मैं वर्णन करके सुना रहा हूँ। यह कबीर साहब ने स्वयं मुख से कहा है और उन्होंने भी काल निरंजन का मत दिया है। उन्होंने स्वयं आत्म ज्ञान का वर्णन किया है और आपने उससे अपना भक्तिभाव रखकर बताया है। दोनों विधियाँ एक ही प्रकार की हैं और इनमें और कबीर मत में कोई भेद नहीं है। काल के, आपने, बारह मतों को बताया है–और स्वयं अपने मन द्वारा उनका प्रमाण दिया है। हे स्वामी! यह तो सत्य प्रतीत हो रहा है क्योंकि कबीर ने अपने ग्रन्थों में ऐसा ही कहकर गाया है। आपने जो कहा है, मैं उसी का वर्णन करूँगा क्योंकि उसी को मैंने कबीर के भी ग्रन्थों में देखा है। इनका वर्णन कबीरदास जी ने अपने मुख से किया है कि काल के बारहों मत इसी प्रकार हैं। धर्मराज ही निरंजन हैं और उन्होंने ही बारह मतों का वर्णन किया है। ऐसा कबीर ने अपने ग्रन्थों में गाया है–और अनुभव से उन्होंने जैसा देखा था, उसी प्रकार सुनाया है।

इन बारहों में, प्रथम दूत का नाम 'मृत अंध' है और उसका नाम नारायण दास रखा गया है। ये नारायण नाम के काल में अंश हैं, जिन्होंने जीवों के गले में मृत्यु के पाश का फंदा (बन्धन) बाँध रखा है।

दूसरे का नाम 'तिरमिर' है। यह जाति का शिकारी है, और इन्हें कुफ्र भी कहा जाता है। तीसरे दूत के विषय में मैं कहकर सुनाता हूँ–उसका नाम 'अंध अचेत' है। कबीरदास ने इस प्रकार भी कहा है कि उसे 'सुरति गोपाल' नाम भी दिया गया है। चौथा दूत 'भंगमन' है–और झंगा मूल पंथ' इसी ने बताया है। पाँचवें दूत का 'ज्ञानभंग' नाम है–और उसने परिचय करने वाले मंत्र को स्वीकार किया है।

मकरंद षष्टम दूत कहावा। नाम कमाली तासु धरावा॥
सप्तम दूत आहि चितभंगा। नामा रूप करै मन रंगा॥
अष्टम दूत का नाम बताऊँ। अकलभंग तासु कर नाऊँ॥
नवाँ दूत कर नाम बताऊँ। दूत बिसंभर बरनि सुनाऊँ॥
अब मैं दसवाँ दूत बताई। नकटा दूत ताहि कर नाँई॥
एकादस दूत नाम बतलाऊँ। दुर्गदानी तेहि बरनि सुनाऊँ॥
द्वादश दूत नाम बतलाऊँ। हंस मुनी तेहि बरनि सुनाऊँ॥
ऐसे बारा दूत बखाना। अनुराग सागर करत बखाना।।
साहिब कबीर ऐसी विधि गावा। सो मैं तुमको भाखि सुनावा॥

अर्थ–छठाँ दूत 'मकरंद' है, उसका नाम कमाली भी रखा गया है। सातवें दूत 'चितभंग' है, वह मन की इच्छा के अनुसार नाना रूपों को धारण करता है। मैं अष्टम दूत का नाम बता रहा हूँ। आपका नाम

'अकल भंग' है। नवें दूत का भी नाम बता रहा हूँ, उसका वर्णन 'विसंभट' के नाम से कर रहा हूँ। अब मैं दसवें दूत के विषय में बता रहा हूँ–उसका नाम 'नकटा' है। ग्यारहवें दूत का भी नाम बता रहा हूँ–'दुर्गदानी' नाम से उसका मैं वर्णन करके बता रहा हूँ। बारहवें दूत का नाम बता रहा हूँ–उसका नाम 'हंसमुनि' है–मैं उसका नाम वर्णित करके सुना रहा हूँ।

इस प्रकार से बारह दूत कहे गए हैं, 'अनुराग सागर' नामक ग्रन्थ इस प्रकार का वर्णन करता है। कबीर साहब ने इनका इसी प्रकार से वर्णन किया है–जिसे मैं कहकर सुना रहा हूँ।

॥ प्रश्न फूलदास ॥ चौपाई ॥

तुलसी स्वामी बिधी सुनाई। कस कस मता काल बिधि पाई॥
याकी बिधि मोहि बरनि सुनैये। सब बिधि नाम दूत कर कहिये॥

अर्थ–हे तुलसी साहब! आपने इनके रहस्य को बताया है। काल ने किस-किस प्रकार का रहस्य प्राप्त किया है। इनकी विधि मुझे वर्णित करके, सुनायें और इन दूतों के नामों को भी सभी प्रकार से कहें।

॥ उत्तर तुलसी साहिब चौपाई ॥

फूलदास सुनियौ चित लाई। अब या कौ हम बरनि सुनाई॥
निरगुन काल निरंजन जानौ। सोई याहि मनै पहिचानौ॥
सत्त सब्द तन माँहि रहाई। वा को छाँड़ि खानि को जाई॥
बारा मत नहिं कहिया भाई। वाही राह की मती बुझाई॥
मन ये राह की मति जो राखा। या को बारा की मति भाखा॥
मन ये द्वैत भाव जग राखा। दूत नाम येहि बिधि भाखा॥
एक नाम बिधि भूला भाई। ता से मन को दूत बताई॥
ये मन की बिधि कहूँ बखाना। फूलदास सुनियौ दै काना॥
बारा मत मन ही के जाना। द्वैत न छाँड़ि एक नहिं माना॥
यों बारा मत मन के भइया। बारा मत मन नाम कहइया॥
द्वैत राह मन छाँड़ न भाई। तहँ लगि यह मन काल कहाई॥
द्वैत काल मन यह बिधि गाया। मन मत द्वैत जगत सब आया॥
मन मत द्वैत वो राह न पाया। ये कबीर न यों बिधि गाया॥
या मन की बिधि बिधि समझाइ। बारा दूत मन काल कहाई॥

अर्थ–हे फूलदास! आप ध्यान लगाकर सुनें, अब मैं इनका वर्णन करके सुनाता हूँ। निर्गुण ब्रह्म को ही 'काल-निरंजन' समझें, और इनको मन-ही-मन पहचानें। 'सत्' शब्द इसी शरीर में ही रहता है–उसका त्याग करने पर व्यक्ति नरक में चला जाता है। हे भाई! इसे बारह मत नहीं कहा जाता–उस मार्ग के ज्ञानी ही उसे बताते हैं। इस मन में अध्यात्म मार्ग का जो ज्ञान रखा है, उसी के विषय में ये बारह मत हैं।

यह संसार मन में द्वैत भाव रखता है–दूतों का नाम इसी द्वैतभाव के कारण रखा गया है। हे फूलदास! तन्मय होकर आप सुनें, मन की इन विधियों का वर्णन मैं कर रहा हूँ। मन के ही बारह (मत) रूप हैं–किसी भी उपदेश को व्यक्ति एक भी नहीं मानता और द्वैतभाव को छोड़ता नहीं। इस प्रकार, मन

बारह मत हैं और इस प्रकार, मन के ही बारह नाम कहे गए हैं। यह मन जब तक द्वैत मार्ग का त्याग नहीं करता—वहाँ तक वह मन ही 'काल' कहा जाता है।

मन के द्वैत को काल रूप स्वीकार करके इस प्रकार से कहा गया है, मन के द्वैत मन से ही सारा संसार जाना गया। मन के इस द्वैत मत से उसने (किसी ने भी नहीं) अध्यात्म मार्ग को प्राप्त नहीं किया, इस प्रकार कबीरदास जी ने बताया है। इस द्वैत मन के रहस्य को इस प्रकार समझाया गया है और इस मन रूपी काल के बारह दूत कहे गए।

ये मत बिधि सब कही बखाना। बारा नाम मनहिं के जाना॥
नरायनदास नर मन है भाई। येहि बिधि दास कबीर बताई॥
मन मृत अंध दूत बतलाई। मन नित मृत करै जग जाई॥
ये मन तिमर जगत को लावा। या ते तिमर नाम मन पावा॥
मन जगअंध अचेत करावा। अंध अचेत दूत ठहरावा॥
सुरति गुपाल नाम तेहि कहिया। मूरति मनगोपाल न करिया॥
मन मत भंग करै जग केरी। मन मत भंग नाम अस फेरी॥
मन मत ज्ञान करै चित भंगा। मन मत दूत नाम रस रंगा॥
मन पतंग माया मन राखा। मन मकरंद दूत यों भाखा॥
मन अरु चित भंग करै अनेका। चितभंग दूत नाम यों लेखा॥
मन अक्कल को भंग लगावा। अकलभंग नाम अस गावा॥
बिषै अमर मन करिकै राखै। सुरति नाम को नेक न ताकै॥
ताकर नाम बिसंभर दूता। बिष रस जीव किया मजबूता॥
मन कहँ नकटा दूत कहाई। ज्ञान सुनै फिर बिष रस खाई॥
या को लज्जा नेक न आवै। नकटा होइ पीछे पुनि धावै॥

अर्थ—इनके विषय में सारे मतों तथा रहस्यों को वर्णित करके कहता हूँ—इस मन के ही बारह नाम हैं, इस प्रकार समझो।

नर मन का नाम नारायण दास है, इस प्रकार कबीर दास ने बताया है। मन का एक दूत 'मृत अंध' कहा गया है, संसार में आकर मन निरन्तर मृत रखता है। तीसरा मन संसार में अंधकार लाता है, अतः मन का नाम अंधकार बतलाया गया है। यही मन संसार को अंधा और अचेत बना देता है। अतः इसे ही अंध अचेत काल दूत कहा गया है। उसी का नाम सुरति गोपाल कहा जाता है, क्योंकि वह मन में स्थित ब्रह्म की मूर्ति नहीं बनाता। जो संसार के मन को भंग करता (तोड़ता रहता) है—इसीलिए उसका नाम बाद में मतिभंग रखा गया। मन अपने ज्ञान से चित्त को बार-बार भंग करता है, इसीलिए मन के उस नाम को 'चितभंग' रखा गया है। मन पतंग, निरन्तर माया में मन रखे रहता है—इसीलिए इस मन के दूत का नाम मत मकरंद है। मन तथा चित्त को जो अनेक रूपों में भंग करता है, उसका नाम इसीलिए चित्त भंग कहा गया है। मन तथा बुद्धि को जो तोड़ता है, उसका नाम 'अक्लभंग' कहा गया है। अगर विषय वासनाओं को जिसने मन में स्थितर करके रखा है औ सुरति ध्यान आदि के विषय में जो कुछ भी नहीं जानता—उसका नाम विसम्भर दूत है और उसने वासना रस (विष रस) द्वारा मन को सुदृढ़ कर रखा है मन का नकटा दूत वह कहलाता है—जो ज्ञान सुनने के बाद भी विषय-रस में लीन रहता है। इसे लेशमात्र भी लज्जा नहीं आती और यह नकटा होकर भी वासनाओं के पीछे दौड़ता रहता है।

नकटा नाम दूत येहि जानौ। या की साखि न कोऊ मानौ ॥
मन दुग गुन के दान चुकावै। गुन तीनों से जग बौरावै ॥
दुर्ग दानी यहि मन को जाना। अस दुर्ग दानी नाम कहाना ॥
या की बात सत्त कर मानी। येहि बिधि मन को दूत बखानी ॥
यह मन निर्मल सुरति कराई। मन होइ हंस सुरति घर जाई ॥
हंस मुनी होइ दूत उड़ाई। सुरति सब्द घर अपने जाई।
सत्य नाम पद पहुँचै भाई। चौथा पद रस पियै अघाई ॥
मुनि होइ हंस ताहि कर नामा। बारा मत मन के पहिचाना ॥
यह कबीर ने भाखा पेखा। औरौ संत यही बिधि लेखा ॥
ये सब मन के मते बताये। मन से पंथ भेष जग आये ॥
मन बाहर कोइ पंथ न होई। ये सब मते काल कर जोई ॥
मन से भिन्न सुरति को पावै। सुरति जाइ पद नाम समावै ॥
सो बारा से न्यारा होई। सो जिव अमर पंथ को जोई ॥
मन से राह सुरति नहिं जाने। सो सब पंथ काल मत साने ॥
यह महंत मन अंधा धुन्धा। येहि माँ काल रखावा फंदा ॥
दास कबीर येहि पुनि भाखा। हमहूँ दीन्ह येही बिधि साखा ॥
वह कबीर यह तुलसी लेखा। मन मानै तौ करौ बिबेका ॥
तुलसी संत चरन की आसा। संत सरन में सुरति निवासा ॥

अर्थ–इसी को नकटा दूत समझो तथा इसका विश्वास कभी न करो। मन दुर्ग है, और रज, सत्त्व एवं तम गुण का दान चुकता करता रहता है। इन्हीं तीनों गुणों में संसार पागल बना रहता है। इसी मन को दानदाता दुर्ग समझो-इसका दानी दुर्ग ऐसा नाम कहा गया है। इसकी बात हमेशा सत्य समझो। इस प्रकार मन को ही दूत कहा गया है। यही मन निर्मल होकर सुरति ध्यान में लगता है–और यह मन हंस बनकर सुरति के घर के लिए गमन करता है–मन हंस बनकर इन बारह दूतों को पास से भगा देता है–और वह अपने घर सुरति के लिए प्रस्थान कर जाता है। 'सत् नाम' के स्थान पर पहुँचकर यही मन चतुर्थ अन्नाला के पद में प्रवेश कर आनन्द रस का पान करता है। जो मुनि हैं, उन्हीं का नाम हंस है, इस प्रकार ये बारह मत मन में ही पहचाने जाते हैं। कबीर दास जी ने इसी को देखा है और कहा है तथा अन्य सन्तों ने भी इसे इसी प्रकार देखा है। ये सभी बारह मन के भेद बताये गए हैं–तथा मन के द्वारा ही ये अनेक पंथ एवं वेष इस संसार में आए हैं। कोई भी पंथ मन के बाहर नहीं है–और यही सब काल के भी मत हैं।

मन से अलग होकर कौन सुरति समाधि प्राप्त कर सकता है। यह महन्त का अंधा धुन्ध है–और इसी में काल ने अपना पाश रख छोड़ा है। कबीरदास जी ने भी यही कहा है–हमने भी इसी प्रकार की ही साक्षी दी है। वह कबीर का मत है, यह तुलसी का मत और तुम्हारा मन स्वीकार करे तो इसे स्वीकार करो। तुलसी को तो निरन्तर सन्त चरणों की आशा रहती है और सन्तों की ही शरण में सुरति की निवास स्थली है ॥

॥ दोहा ॥

फूलदास मत भाखिया, मते काल के नास।
बारा मत मन के बसे, जग्त भेष के पास॥

अर्थ–हे फूलदास! मैंने काल मत का वर्णन किया है और इस मत के जानने से काल का बिनाश हो उठता है। ये बारहों मत मन में निवास करते हैं और इसी से सम्बद्ध वेश रचना संसार के पास है (संसार में है)।

॥ छन्द ॥

बारा मत गाई मनहिं लखाई। बूझ बुझाई राह कही॥ १ ॥
तुम अंतै गावौ भेद न पावौ। मनहिं काल घट घाट मई॥ २ ॥
या को नहिं बूझा अंत न सूझा। ता से तुम को भूल रही॥ ३ ॥
जिन मन को जाना सुर्त पिछाना। नरत न तोल असमान गही॥ ४ ॥
संतन निज जानी करी बखानी। महुँ पुनि उन सम गाइ कही॥ ५ ॥
मन की बिधि जानी सुरति पिछानी। बिन सूरति यह राह नहीं॥ ६ ॥

अर्थ–मैंने इस बारह मतों को कहकर बताया, मन का बोध करा दिया और समझी-बूझी राह (मार्ग) कह दी। तुम इसको अन्त तक गाते रहोगे किन्तु इसका रहस्य नहीं समझोगे क्योंकि मन सदैव काल रूपी घट के रूप में उसके घाट पर (किनारे पर) स्थित रहता है। तुमने इसको समझा नहीं, और यह अन्त तक सुनाई नहीं पड़ा–इसीलिए तुम्हें भूल बनी रही। जिन्होंने मन को जान लिया है, उन्होंने सुरति भी पहचान ली है–अन्यथा उसकी समझ के लिए भटकते रहो। सन्तों ने इसे स्वयं समझा है, उन्होंने इसका वर्णन कर रखा है और पुनः उन्होंने इन सबको गाकर कहा है। उन्होंने मन रहस्य समझा है, सुरति को पहचाना है–क्योंकि बिना सुरति को पहचाने यह राह मिलने वाली नहीं है।

॥ दोहा ॥

तुलसी कहै बुझाइ, फूलदास सूरित लखौ।
ये चौका येहि पान, सुरति जाति पद रस चखौ॥

अर्थ–तुलसी साहब समझा कर कहते हैं कि हे फूलदास सुरति समाधि को देखो, उसी में यह चौका है, यह पान भी है–सुरति में प्रवेश करके उस आत्मतत्त्व का आनन्द चखो।

॥ चौपाई ॥

सुरति चीन्ह रस जानौं भाई। तब वा घर का मारग पाई॥
कमठ ध्यान कछुवा मत ताकौ। ऐसी सुरति नाम से राखौ॥
ज्यों चकोर चंदा को ताकै। येहि बिधि सुरति नाम रस चाखै॥
सूरज-मुख पषान इक होई। रबि सन्मुख तेहि पावक जोई॥
पथरी सूरज सन्मुख लावै। तत खन तामें अगिनि समावै॥
चन्द्रमुखी इक पथरी भाई। सन्मुख चंदा जाय दिखाई॥
तत खन नीर चुवै तेहि माई। देखो पथरी हाल मँगाई॥
ऐसे दृढ़ करि सुरति लगावै। चूवै अभी नाम रस पावै॥

चौका पान झूठ है भाई। सूरति नाम पान से पाई॥
भाखा संत सरन को चीन्हा। सुरति पान लखि होइ यकीना॥
नील सिषर खिरकी के पारा। वहाँ से ताकै अगम दुवारा॥
अलख पलक से न्यारा होई। खलक राह सब छूटै सोई॥
निस दिन सुरति गगन में राखै। झँझरी सुरति नजर से ताकै॥
येहि बिधि निस दिन सुरति लगाई। मन में इष्ट भरम नहिं लाई॥

अर्थ—सुरति को पहचान कर उसके आनन्द को समझो—तब उस पट का तुम मार्ग प्राप्त करोगे। कछुवा जैसा आत्मस्थ होकर ध्यान लगाओ किन्तु उस कमठ ध्यान पर दृष्टि मत रखो—इस सुरति नाम में अपने मन को लगाओ। जैसे चकोर चकुआ को एमकटक ताकता रहता है—उसी प्रकार सुरति नामक इस तत्त्व का रस चखो।

एक सूर्यमुखी पाषाण है—सूर्य के सामने वह उसमें अग्नि प्रकट होती है। उस पत्थर को जब सूरज के सामने लाते हो उस क्षण उसमें अग्नि समाविष्ट हो उठती है। एक पत्थर चन्द्रमुखी नाम का है। जब चन्द्रमा उसके सामने दिखाई पड़ जाए तो उस क्षण उसमें से जल स्रवित होने लगता है—ऐसे पत्थर को मँगा कर उसका हाल समझो।

ठीक इसी सूर्यमुखी एवं चन्द्रमुखी पत्थर की भाँति स्वयं को दृढ़ करके ध्यान लगाओगे—अमृत नाम का रस चूने लगेगा, उस रस का तुम आनन्द लो। हे भाई! चौका पान मिथ्या है—उसमें स्थित पान [illegible] सुरति नाम प्राप्त करो। सन्त के चरणों को पहचान कर यह कहा गया है कि उसी से रसमयी पान को देखकर विश्वास होगा। उस खिड़की के पार नील शिरकर है उसके आगे, उस अगम्य तत्त्व का द्वार है—वह अलक्ष्य, इन पलकों से विमुक्त है और वहाँ पहुँचने पर स्वर्ग के सारे मार्ग पृथक हो जाते है। मन को रात-दिन सुरति के आकाश में रखो—अपने मन की दृष्टि से सुरति की खिडकी देखते रहो। इस प्रकार, रात-दिन मन को सुरति में लगाए रहो फिर आपके मन में अपने इष्ट देवता के लिए कोई भ्रम नहीं रहेगा।

ऐसे सुरति द्वार पर खेला। स्याम सपेदी न्यारी सैला॥
स्याम लोक पुनि सेतहि दीपा। संख चक्रमध पुनि एक सीपा॥
वा के परे बंकगढ़ न्यारा। सुख मुनि सैल मान सर पारा॥
वा के परे त्रिबेनी घाटी। ता से निकरि अगमपुर बाटी॥
करि असनान अगम को धावै। तब साँचे सतगुरु को पावै॥
चारि कँवल द्वै भीतर माई। ता में पैठि द्वादस में जाई॥
ता के परे पुरुष इक देखा। रूप रेख बिन अगम अलेखा॥
अठमेवा पुरुष को जाना। अठवाँ लोक तेहि संत बखाना॥
कोउ कोउ आठ अटारी भाखो। कोउ कोउ आठ महल कहै जाको॥
संत बिना कोउ भेद न पावै। ताते तुलसी यहि बिधि गावै॥
यह बिधि भेष पंथ में नाहीं। संत मिलै तो पावै राही॥
सूरति चढ़ै गगन को धावै। तौ अठमेवा पुरुष को पावै॥
पाँच बासना मन से जावै। तब मन राह पुरुष की पावै॥

नरियर ऐनक मुकर लगाई। मन मोड़ै पुनि बास उड़ाई॥
तीनि गुनन का तिनुका तोड़ै। इंद्री गौ घृत रित को मोड़ै॥
कदली छेत बास चढ़ पारा। सेय के परे निरखि वहि द्वारा॥
सो पारी जाइ पवन सो पावै। सेत सुपारी पुनि दरसावै॥
यहि बिधि चौका जो कोइ जानै। सोई कबीर पंथ हम मानै॥
और अनेक बिधि कस कस कहिये। स्याना होइ समझ लखि लैये॥
थोड़े में लखि लेइ सयाना। बहुत बहुत क्या करूँ बखाना॥
सूच्छम बूझ भेद हम भाखा। थोड़े माहिं भेद कह्यो ता का॥
या से भेद संत कर न्यारा। कोइ बूझै संतन का प्यारा॥
जिन पर संत दयाली कीन्हा। अगम बूझ कोइ बिरले लीन्हा॥
कहा कहा कहूँ अगम की बाता। तुलसी बूझ संत सँग साथा॥
ता से मौन मौन होइ रहिये। जस जग देखि ताहि बिधि कहिये॥

अर्थ–यह आत्मा ऐसी सुरति द्वार पर क्रीड़ा करती है–जहाँ नील एवं श्वेत वर्ण के शिखर हैं। एक श्याम लोक है, उसमें श्वेत द्वीप है, वहाँ मध्य में शंख तथा चक्र है–और उसी में एक सीपी है। उसके आगे विलक्षण बंकगढ़ है, उस शिखर के पार एक सरोवर है। उसके आगे त्रिवेणी का घाट है; उससे निकलने के बाद अगमपुर का मार्ग है। यहाँ त्रिवेणी में स्नान करके अगमपुर के लिए प्रस्थान करें, तब सच्चे सत्गुरु को कोई प्राप्त करता है। यहाँ चार कमल के भीतर दो और कमल हैं। उसमें प्रवेश करके द्वादश कमल में प्रवेश करें–उसके परे एक पुरुष दिखाई पड़ता है,–उसका न कोई रूप था, न कोई लक्षण (रेख) वह इन दोनों से मुक्त अगम्य एवं अलेख्य था। यही पुरुष ही 'अठमेवा' है। संतों ने ही इसे आठवाँ लोक बताया है। किसी-किसी ने इसे आठ अट्टालिका कहा है–किसी अन्य के अनुसार ये आठ महल हैं। संतों के बिना कोई इसका रहस्य नहीं जानता इसलिए तुलसीदास इसे इस प्रकार, कहते हैं।

इस प्रकार, इस मार्ग के आगे भेद नहीं हैं और (भाग्य से) कोई सन्त मिल जाए तो वही राहगीर साथी है। सुरति लोक में चढ़कर जो शून्याकाश में दौड़ता है–वही पुरुष अठमेवा को प्राप्त करता है। मन से पाँचों इन्द्रियों की वासनाएँ जब समाप्त हो उठती है, तभी वह उस पुरुषका मार्ग प्राप्त कर सकता है। नारियल रूपी ऐनक के शीशे लगाकर, मन को तोड़ ले और उसकी सुगन्धि की ओर से उड़ा दे–त्रिगुणात्मक वृत्ति के तिनके को तोड़ दे–सत्य रूपी इन्द्रिय वासनाओं रूपी गौघृत को इकट्ठा कर ले कदली क्षेत्र में बास पर चढ़ने में समर्थ वह उसके आगे उस अगम्य के द्वार को देखे–तब वहाँ जाकर उस शून्य लोकके पवन से साक्षात्कार करेगा और फिर उसे श्वेत सुपारी दिखाई पड़ेगी। इस प्रकार से निर्मित चौका की विधि जो कोई जानेगा–उसी को हम कबीर पंथ का सन्त स्वीकार करेंगे। इस विधि को अनेक रूपों में मैं क्या समझाऊँ–जो चतुर होगा, वह उसे समझा देख-समझ कर पा जाएगा। चतुर व्यक्ति तो थोड़े में ही समझ लेते हैं। मैंने तो चौका का सूक्ष्म तत्त्व विवेचित किया है तथा थोड़े में ही उसका रहस्य बताया है। जिन व्यक्तियों पर सन्तों की दया रहती है, वे ही इस अगम्य को पहचानते हैं, क्योंकि इस तत्त्व को कोई बिरला ही पहचानता है। मैं इस अगम्य की बात का वर्णन कहाँ-कहाँ तक करूँ। तुलसी ने इसे संतों के साथ रहकर समझा था। इसलिए इस संदर्भ में मौन ही होकर रहा जाए तो ठीक है क्योंकि संसार को जैसी स्थिति देखो, उसी प्रकार, उसे कहो।

भेद राम रामायन के रचने का

॥ चौपाई ॥

भेष अबूझ जगत नहिं जानै। कस कस कहूँ कोऊ नहिं मानै॥
जग अपनी बिधि में सब माना। ता से उन से करी बखाना॥
राम रमायन माहीं गाई। सात कांड कहि अस बिधि भाई॥
रावन राम किया सम्बादा। औरौ कही बनाइ जियादा॥
जग सब अंध फंद गति बूड़ा। राम राम गति जानि अगूड़ा॥
उन अँधरन मिलि कै हम गायौ। यहि बिधि राम चरित्र सुनायौ॥
सब जग कहै राम रस भाखो। राम बिना कछु इष्ट न राखी॥
तुलसी तौ भये राम उपासी। येहि बिधि सकल जगत करै हाँसी॥
सब अंधन में महुँ पुनि चोटा। कस कस कहूँ जगत सब खोटा॥

अर्थ–यह अबूझ संसार भेष रचना के मर्म को नहीं समझता। कैसे-कैसे मैं समझाऊँ, उसे कोई नहीं स्वीकार करता। यह संसार तो अपनी तरह से सब समझता है, इसलिए उनसे मैं इसका वर्णन करता हूँ। हे भाई, 'राम' रामायण में गाए गए हैं और इस प्रकार से उसमें सात कांड कहे गए हैं। रावण और राम का संवाद कराया गया है–और उसमें बात बढ़ाकर और कुछ भी कहा गया है। सारा संसार अंधा हो गया है और माया के फंदे की गति में डूब गया है। राम का ज्ञान राम ही कर सकते हैं, अन्य के लिए वह रहस्यमयी है। उन अंधों के बीच (जो रामचरित्र का रहस्य नहीं जानते) मिलकर मैंने राम का गान किया और उनको इस प्रकार रामचरित्र सुनाया। सारे संसार ने कहा, तब मैंने 'राम रस' का वर्णन किया और राम के बिना मैंने अपने लिए कोई अन्य इष्ट देवता नहीं चुना। तब मैं तुलसीदास उस समय (पूर्व जन्म में) राम का उपासक बना–और इस रूप में सारा संसार मेरी हँसी उड़ा रहा है। सारे अंधों के बीच मैं ही चोर बना हुआ था–कैसे-कैसे बताऊँ कि यह सारा संसार खोटा है।

राम काल जग खाइ बढ़ाया। मैं दयाल पद औरै गाया॥
राम काल जग कारन भाखा। सो सूझा नहिं इनकी आँखा॥
राम जगत हम येहि बिधि गावा। नहिं देखा जग मोर निभावा॥
राम राम कछु इष्ट न मानी। जग अँधरे को कहा बखानी॥
रामचरित्र राम बिधि राखी। दसरत राम अजुध्या भाखी॥
ये नहिं अगम राह कर पंथा। अगुन सगुन जहँ नहिं तहँ संता॥
निरगुन सरगुन इष्ट न जाना। चौथा पद सत नाम बखाना॥
अगुन सगुन दोउ काल की फाँसी। जग में कहूँ जगत करै हाँसी॥
वो साहिब पद इन से न्यारा। तीन लोक निरगुन के पारा॥
निरगुन सरगुन दोउ न जाई। तेहि घर संत करै पासाही॥
तुलसी इष्ट संत को जाना। निरगुन सरगुन दोउ न माना॥
जो जो संत अगम गति गाई। निरगुन सरगुन नहिं ठहराई॥
जो कोइ बूझै तुम कस गावा। राम राम कहि ग्रंथ बनावा॥

हम कछु और भेद दरसावा। जब अबूझ अँधरा समझावा॥
जो ग्रंथन में गाइ सुनाई। जियत न मिलै मुए कस पाई॥
मैं मति ठीक ठीक कर गावा। पंडित भेष जगत नहिं पावा॥
राम राम कहि सब जगमरिया। आदि अंत मध कोउ न तरिया॥
राम जो कहै परै भौ खानी। राम मरम मन आप न जानी॥
जो कोइ करै नाम की टेका। सो भौ भरमै खानि अनेका॥
तुलसी सत्त सत्त कहि भाखी। जस जस सूझ जौन जेहि आँखी॥
फूलदास बिधि सुनहु बनाई। येहि बिधि तुलसी ग्रंथन गाई॥
और कबीर दादू रैदासा। दरिया नानक अगम तमासा॥
सूरदास नाभा अरु मीरा। औरौ संत अगम मति धीरा॥
अरु अस बिधि सब साखि बनाई। सो सो सभन अगम गति गाई॥
जस जस मैं पुनि भाखि सुनावा। संत कृपा रज महुँ पुनि गावा॥

अर्थ–राम को काल ने नष्ट करके अपने को आगे बढ़ाया और इस दयालु सन्त ने कुछ और कहा। राम का वर्णन मैंने काल और संसार को देखकर किया था किन्तु उन्हें यह बात समझ में नहीं आई। राम तथा इस संसार का वर्णन मैंने इस प्रकार गाया है–किन्तु इस संसार ने मेरे द्वारा गाए गए वर्णन को नहीं समझा। राम-राम जैसा कोई इष्ट न समझो–और ऐसा मैंने इस अंधे संसार को बताकर कहा था। राम के चरित्र को राम की ही तरह बनाकर मैंने रखा है, और मैंने अयोध्या के राम और दशरथ की कथा कही है। ये राम उस निर्गुण मत के अगम्य राह के लक्ष्य नहीं हैं–जहाँ न अगुण है, न सगुण है, और न वहां सन्त जन हैं। मैं तो निर्गुण एवं सगुण दोनों इष्टों को नहीं मानता–केवल 'सतनाम' के चौथे पद का ही वर्णन करता हूँ। निर्गुण एवं सगुण दोनों काल के फंदे हैं। वह हमारा अनादि स्वामी, इन दोनों से भिन्न है और वह तीनों लोक में स्थित निर्गुण ब्रह्म से विलक्षण है। तुलसी साहब कहते हैं कि मेरे लिए संत अभीष्ट हैं–और मैं निर्गुण-सगुण दोनों को नहीं जानता। जिसने-जिसने अगम्य गति का वर्णन किया है, वे निर्गुण तथा सगुण को नहीं स्वीकार करते। जो कोई मुझसे पूछता है कि आपने यह क्या किया, मैं उनसे कहता हूँ कि केवल राम-राम कहते हुए मैंने 'रामायण ग्रंथ' बना दिया। हमने अन्य और रहस्यों को उसमें समझाया है–और उन ना समझ अंधों को समझा दिया। और जिसको मैंने अपने ग्रन्थ में कहकर सुना दिया है कि वहजीवित रहने पर भी नहीं मिलता, वह मरने पर कैसे मिलेगा॥ मैंने तो अपनी मति के अनुसार उसे ठीक-ठीक रूप में सुनाया है–किन्तु पंडितों ने भेष का रहस्य नहीं समझा। सारा-संसार राम-राम कहकर मृत्यु प्राप्त करता है–किन्तु आदि, मध्य एवं अन्त तक वह कभी भी नहीं उद्धार प्राप्त करता है। जो राम कहता है, वह भवसागर की खानि में पड़ता है और स्वयं राम भी राम का रहस्य नहीं जानते। जो कोई राम के नाम की टेक करता है, वह भवसागर की अनेक खानियों में भटकता है। तुलसी साहब कहते हैं कि मुझे जैसा-जैसा और जो आँख से सूझ पड़ा मैं सब सच्च-सच्च कहकर बतला रहा हूँ।

हे फूलदास! उस बनाई हुई विधि को सुनो जिसे तुलसीदास ने ग्रन्थों में कहा है। वही नहीं, उन्हीं के साथ-कबीरदास, दादू, रैदास, दरिया साहब तथा नानक आदि ने उस अगम्य को तत्त्व का तमाशा बताया है। सूरदास, नाभादास, मीराबाई तथा अन्य अगम्य मति के धीरवान सन्त आदि ने इस प्रकार की सखियाँ बनाई हैं और उन्होंने ब्रह्म की अगम्य गति का गान किया है। मैंने उनके चिन्तन को उसी प्रकार से कहकर सुनाया है–और सन्तों की चरण कृपा धूलि से उसे प्राप्त किया है॥

॥ सोरठा ॥

फूलदास सुनु बैन, आदि सैन अंतै कही।
जो कबीर मत ऐन, संत सार लारै लई॥ १॥
ये संतन मत सार, जो अगार अंदर लखा।
चखा सुरति पद सार, आदि अंत बिधि सब लखी॥ २॥

अर्थ–हे फूलदास, मेरी बात सुनें, मैंने उसे आदि से अन्त तक बताया है। कबीर का मत इस चिन्तन का केन्द्र है, जहाँ पर सन्त के ज्ञानतत्त्व का निचोड़ अत्यन्त आलीयता से प्राप्त किया है॥ १॥

यह निचोड़, सन्त मत का सार तत्त्व है–जिसे आत्मभूत तत्त्व के अन्तर्गत देखा है। यहीं मैंने सुरति समाधि के निचोड़ तत्त्व का आस्वादन किया है और उसके आदि तथा अन्त में तत्त्वों को सभी प्रकार से देखा है॥ १२॥

॥ दोहा ॥

तोल बोल जेहि लखि परै, तुलसी निरखि निहार।
सार पार सूरति करै, तब लख लोक अगार॥

अर्थ–जहाँ किसी महत्त्वपूर्ण तत्त्व का चर्चा दिखाई पड़े, उसे अच्छी तरह से समझकर देखो। सुरति के सार तत्त्व को जब साधक पार करताहै तो उसे अगम्य लोक का यह गृह दिखाई पड़ता है।

॥ राग बिलावल ॥

तुलसी जग तरक तोल, बोल हेर हारा॥ टेक॥
देखौ दुर्ग काल जाल, माँगै स्वर्ग बास हाल॥
लिये मोह भरम जाल, ख्याल खोजि पारा॥
बूझै नहिं साध संत, खोजै नहिं आदि अंत॥
पावै कस पिया पंथ, बूड़ै भौ धारा॥
ऐसा भौ भरम माहिं, काम क्रोध लारा।। १॥
राम प्रिये परन ठान, मन से सुत त्रिये मान॥
माया बस परत खानि, बूझ खोज पारा॥
येहि बिधि अज्ञान बास, बूझौ मृत अंत नास।
प्रीति मुक्ति कह अकास, स्वाँस नास न्यारा॥
ऐसी बुधि हीन चीन्हि, बूझि ले गवारा॥ २॥
चाहत पद राम बास, रामहिं पुनि होत नास।
वोहू पुनि काल फाँस, आस मौत मारा॥
वा से कोउ करौ न हेत, बूझौ नर अंध अचेत।
सूरति छबि नाम लेत, चौथे पद पारा॥
याही ब्रत बान ठान, संत पंथ न्यारा॥ ३॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि इस संसार को खूब समझ विचार कर तौलो और खूब समझ-बूझकर बोलो।

काल के जाल में ग्रस्त इस भयंकर दुर्ग को देखो, और उसको देख करके भी तुम स्वर्ग के निवास का समाचार जानना चाहते हो। तुम मोह का भ्रमजाल लिए हुए उस स्वर्ग के विचार में पड़े हो। इस मायिक तत्त्व को साधु सन्त भी नहीं समझ पा रहे हैं, उस आध्यात्मिक मूल के आदि अन्त को खोजते नहीं, फिर , उस प्रियतम ब्रह्म के मार्ग को कैसे प्राप्त करेंगे, वे तो भवसागर की धारा में डूबे हैं॥ १॥

तुमहारे मन में तो पत्नी और पुत्र का मोह है, किन्तु प्रण प्रिय राम के लिए है। माया के वशीभूत तुम भवसागर की खान में पड़े हो तो उसे खोज और समझ पाने में असमर्थ होगे। इस प्रकार, अज्ञान के निवास से तुम अपने मृत्यु के अन्तिम विनाश क्षण को समझो। तुम यह कहते हो कि हमारी प्रीति शून्याकाश से है किन्तु तुम्हारा विनाश श्वास त्याग में होता है॥ हे बुद्धि से हीन तथा गँवार जन? इस तत्त्व को पहचानो॥ २॥

तुम श्रीराम के चरणों में निवास चाहते हो और इधर-राम का नाश हो रहा है, और वह भी फिर काल के फँदे में पड़े हुए हैं और तुम श्रीराम की आशा की मौत में मारे जा रहे हो। हे अंधे तथा नासमझ व्यक्ति, समझो और उससे कोई आशा न रखो। दूसरी ओर सुरति स्थान का नाम लेते ही चौथे पद पर पहुंच जा रहे हो—और वही मत पूर्णरूपेण तुम्हारा साध्य (बान-ठान) है, वही सन्तों का भी विलक्षण मार्ग है॥ ३॥

देखौ कृत कर्म काग, या से पुनि निकस भाग।
साधौ सत सुरति लाग, लखि अकास पारा॥
ऐसी लख मान सीख, नाहीं भौ खानि नीक।
ऐसी अज अमर लीक, तुलसी तन छारा॥
याही घट खोज रोज, चौज मौज मारा॥ ४॥
भाखा सत मत पसार, ता का भौ भिन अपार।
चाखा पद मूर सार, जाहिर जग सारा॥
पावै सत मत्त सार, देखै अगमन बिचार।
उतरौ भौ सिंध पार, नौका भौ वारा॥
तुलसी घर घोर सोर, निरतौ चित्त चारा॥ ५॥
तुलसी तन माहिं पैठि, छाँड़ौ नर सकल टेक।
आदि और अंत देखि, टेक एक सारा॥
कहनी मन में बिचार, तेरा कोउ ना निहार।
निरखो नैना पसार, वाहि को अधारा॥
तुलसी ये खूब अजूब, पावै मन मारा॥ ६॥

अर्थ—अपने द्वारा किए गए कर्म रूपी कौवे को देखो, उससे तुम पुनः अपने को पृथक् करके हट जाओ-सत् सुरति में लगकर उसे साधो और उस शून्याकाश को देखो। इस प्रकार की मेरी शिक्षा को देखो और समझो अन्यथा तुम्हें यह भवसागर की खानि ही अच्छी रहेगी और तुलसी साहब कहते हैं कि इसी मृत्यु की अजर-अमर लीक पर यह शरीर क्षार हो उठेगा तथा प्रतिदिन लौकिक आनन्द की खोज तथा भोग में ही यह शरीर विनष्ट हो उठेगा॥ ४॥

मैंने सत्य मत के रहस्य को खोलकर वर्णित किया है और उससे लोकमत भिन्न है। सारा संसार को ज्ञात है कि मैंने अपने इस सत्यमत से मूलतत्व के सार का आनन्द चखा है। सत्यमत के सार तत्त्व को प्राप्त कर लिया और मैंने पुनः मृत्यु लोक में न आने वे मर्म को देख लिया और भवसागर रूपी

समुद्र के उस पार उतरा और मेरा सत् तत्त्व ही नौका बना। तुलसी साहब कहते हैं कि इस भौतिक्र जगत के भयंकर शोर तथा उत्पाद से चित्त मुक्त होकर शान्त हो उठा॥ ५॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मनुष्य की माया के सम्पूर्ण हठ को छोड़कर शरीर में प्रवेश करो। मेरे कथन (कहनी) का मन में विचार कर लो–देखो, भलीभांति देखो, यहां तुम्हारा कोई नहीं है और अब जो सबका आधार स्वरूप है–उसी को नेत्रों को पसार कर (फैलाकर) देखो। तुलसी साहब कहते हैं कि यह तत्त्व बड़ा विलक्षण है और इसे लौकिक संसक्ति में फँसे मन को मार कर देखो॥ ६॥

मो को सब जगत कहत, तुलसी के राम टेक।
जाना निज एक अलेख, संतन के लारा॥
जा के नहिं रूप रेख, देखा जो जाइ अदेख॥
ऐसा पद पार पेख, कोटि राम चेरा॥
तुलसी तत करि बिचार, राम खानि घेरा॥ ७॥
तुलसी सतगुरु की दृष्टि, ता से निरखा अदृष्ट।
सत्त लोक पुरुष इष्ट, बे दयाल न्यारा॥
मोरी लौ चरन लार, छिन छिन निरखत निहार।
कीन्हा पद पूर पार, काल जाल मारा।
तुलसी ये जगत भ्रष्ट, देख मैं दिदारा॥ ८॥
तुलसी ये अंड खंड, निरखा सगरा ब्रह्मंड।
मारा मन काल डंड, छाँड़ छूट न्यारा॥
धरती और चंद सूर, निरखा सगरा जहूर।
लीन्हा रन खेत सूर, संतन मत सारा॥
तुलसी दीदा निहार, भागौ बटपारा॥ ९॥

अर्थ–मुझसे तो यह सारा संसार कहता है कि हे तुलसी! तुम्हारे लिए आधार केवल राम ही हैं किन्तु सन्तों की आत्मीयता से मैंने अपने अलक्ष्य तत्त्व को समझा है। उस अलक्ष्य तत्त्व का न रूप है, न लक्षण है और जिसने देखा है, उसके लिए भी वह अलक्ष्य है–ऐसे ब्रह्म को उस पार देखो–अनेकानेक राम उसके दास हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि मेरी बातों पर विचार करो–वह राम तो भवसागर की खानि में घेरा हुआ है॥ १७॥

तुलसी साहब कहते हैं कि यह सत्गुरु की दृष्टिदान है, जिससे मैंने उस दर्शनीय को देखा है। उस सत् लोक के वे ही हमारे अभीष्ट पुरुष या स्वामी हैं, वे दयालु तथा विलक्षण है।उनके चरणों में मेरी संसक्तिलगी है और मैं उन्हें क्षण-क्षण निहार-निहार कर देखता रहता हूँ। मैंने उनकी भरपूर आराधना की। फलस्वरूप मैंने उस काल ज्ञान को विनष्ट कर डाला। तुलसीसाहब कहते हैं कि यह संसार भ्रष्ट है, मैं तो उन्हीं का दर्शन कर रहा हूँ॥

तुलसी साहब कहते हैं कि अंडखण्ड के रूप में मैंने सम्पूर्ण ब्रह्मांड को देखा, मन को वश में करके कालदण्ड को मारा है और यह विलक्षण संसक्ति छूट गई है। पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य और सारे संसार को देखा फिर एक पराक्रमी की भाँति संतों के समस्त मतों के साथ एक योद्धा की भांति रण क्षेत्र के रूप में लिया (सांसारिक मायाजाल से युद्ध किया) और अन्त में कहते है कि उस प्रभु के ध्यान का वास्तविक रूप देखकर समस्त ठग भाग गए।

॥ सोरठा ॥

फूलदास सुन बात, जगत मूल बिधि यों कही।
राम रहे भौ खानि, जा की आसा जग महीं॥

अर्थ–हे फूलदास मेरी बातें सुनो, इस संसार के मूल तत्त्व के विषय में इस प्रकार कहा गया है। जिसकी आशा सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है, वही वही राम, भवसागर की खानि से जा पड़े।

॥ चौपाई ॥

फूलदास सब बिधी बताई। जगत राम हम यहि बिधि गाई॥
हम संतन मत अगम बखाना। हम तो इष्ट संत को जाना॥
संत इष्ट लखि वार अरु पारा। उन चरनन सूझा सत सारा॥
उन सम और इष्ट नहिं भाई। राम करम सब भौ के माई॥
सत अगम घर कीन्ह पयाना। सो घर राम न सुपने जाना॥
राम करम बस भौ के माई। संत अगम घर नित प्रति जाई॥
संत जाइ निरगुन के पारा। राम रहै निरगुन भौ वारा॥
संत जाइ निरगुन जहँ नाहीं। सरगुन की कहौ कौन चलाई॥
सरगुन निरगुन दोउ से न्यारा। वा घर संत करै दरबारा॥
निरगुन राम भौ जग में आई। संत अगम घर अपने जाई॥
राम रहा तिहुँ लोक समाई। कर्म भोग भौ खानि रहाई॥

अर्थ–फूलदास को इस प्रकार, तुलसी साहब के सम्पूर्ण रहस्य बताया कि संसार में राम को हम इस प्रकार कहते हैं। हमने सन्तों की अगम्य गति को बताया है क्योंकि हम सन्त को ही अपना इष्ट समझते हैं। अभीष्ट सन्तों को देखकर ज्ञान का (बार-बार) रहस्य समझ में आ जाता है–और उन्हीं सन्तों के चरणों में सब का सार तत्त्व सूझ पड़ा था। उन सन्तों के अतिरिक्त इस भवसागर में और कोई इष्टदेव नहीं हैं। राम के समस्त कार्य तो इस भवसागर के कार्य हैं। साधक सन्त के जिस अगम्य ज्ञान क्षेत्र में प्रवेश करता है, उस घर को तो राम ने स्वप्न में भी न समझा होगा।

कर्मवश राम इस भवसागर के स्वामी हैं–और हम लोग सन्तों के अगम्य घर में निरन्तर जाते रहते हैं। सन्तजन तो निगुण तत्त्व के उस पार जाते हैं और श्रीराम गुणविहीन भवसागर डूबते रहते हैं। सन्तजन निर्गुण तत्त्व से भी विलक्षण हैं–सगुण की बात कौन कहे? हमारा ब्रह्म सगुण एवं निर्गुण दोनों से विलक्षण है और सन्तजन निरन्तर उस कर में दरबार करते रहते हैं। राम निर्गुण से सगुण बनकर इस संसार में आए और सन्तजन इस संसार को छोड़कर अपने अज्ञेय घर में चले जाते हैं। राम तीनों लोकों में समाकर कर्म योग के भवसागर की खान में रहे।

तीन लोक के चौथे पारा। वा से परे संत घर न्यारा॥
राम काँच सम की मत जाना। सत गती हीरा परमाना॥
वो पैसे में जग ले आवै। राम काँच मन जग को भावै॥
संत अगम हीरागति न्यारी। केहि बिधि पावै जगत भिखारी॥
ये मत बिरले खोज कोउ कीन्हा। संत कृपा से हीरा चीन्हा॥
जो जेहि संत लखावै भाई। जब वह हीरा हाथै आई॥

वों हीरा पत्थर मत जानौं। हीरा नाम अगम घर मानौ॥
वो हीरा चौथे पद पारा। राम जगत जौहरी निहारा॥
राम जगत जौहरी पै नाहीं। हीरा अगम संत पै पाई॥
संत कृपा कोई दास निहारा। संत चरन लागे सोइ लारा॥
राम काँच चूरी जग माहीं। तिरिया पहिरि हाथ में जाई॥
फूटै बिनसै बहुरि बनाई। धक्क लगे फूट जिमि जाई॥
टूक टूक चूरीगर लीन्हा। घरिय कपूर आँच पुनि दीन्हा॥

अर्थ–इन तीनों लोकों के पार चौथे लोक के भी बाद सन्तों का विलक्षण गृह है। राम विषयक मत को शीशे की भाँति समझो और सत् पुरुष का ज्ञान हीरा जैसे अलभ्य प्रमाण है। उस हीरे को पैसे द्वारा लोग खरीदकर ले आते हैं, किन्तु राम रूपी शीशा ऊपर से ही संसार के लोगों के मन को अच्छा लगता है। सन्तों की अगम्य गति हीरे जैसी विलक्षण है, उसे यह भिखारी संसार कैसे प्राप्त कर सकता है।

इस मत की खोज किसी बिरले ने की है और सन्तों से ही उसने उसे हीरा के रूप में पहचाना है। जब कोई सन्त किसी व्यक्ति का मार्ग दर्शन करेगा, तभी वह हीरा हाथ आएगा, अन्यथा नहीं। जब वह हीरा हाथ में आ जाए तो समझ लें कि उसे सन्त ने लक्षित किया है–या दिखाया है। उस हीरा को पत्थर मत समझो–हीरा को ही सतनाम का अगम्य घर समझो। संसार में राम है किन्तु इतना सामान्य है कि उसका कोई जौहरी नहीं है किन्तु अमूल्य हीरा सन्त रूपी जौहरियों के पास हैं। सन्तों की कृपा से कोई उनका सेवक ही उसे पा सकता है। सन्तों की कृपा से कोई सेवक ही उसे देख सकता है, और वह अत्यन्त संसक्तिपूर्वक सन्तों के चरणों में अनुरक्त हो उठता है।

राम रूपी शीशे से संसार में चूड़ियाँ बनती है और नारियाँ उसे हाथ में पहन कर आती जाती रहती हैं। वह टूटती या विनष्ट होती है तो पुनः बनाई जा सकती है और साधारण धक्के से वह पुनः टूट जाती है।

घरिया करम माहिं पुनि डारा। चूरी मनिया बहुहि संवारा॥
ले बजार गलियन के माईं। करि खरीद ले तिरिया जाई॥
पुनि कमनीगर कहत पुकारे। नीच बुद्धि तिरिया के लारे॥
ऐसी नीच जगत मति जानी। राम काँच जेहि अगम बखानी॥
राम राम बिधि ऐसी जाना। चूरी फूट कमनीगर आना॥
तोड़ फोड़ भट्टी औटाई। ये बिधि राम कर्म भौं माहीं॥
तन भट्टी कमनीगर काला। ये जग खान राम बेहाला॥
ता को जाय जगत मन लाई। ता की कहो कौन गति गाई॥
राम आप कर्मन बस परिया। कहौ तासे जग कस कस तरिया॥

अर्थ–फिर, कारीगर उसके-टुकड़े-टुकड़े को खरीद लेता है और वह घरिया में उसे पुनः कपूर की आँच देता है। फिर वह उस घरिया को करम में डालकर चूड़ी को वह बनाने वाला मनिया बहुत संवारता है। वह फिर, उस चूड़ी को बाजार की गलियों में लेकर जाता है और स्त्रियाँ भी जाकर उनका क्रय करती हैं। इसके बाद वह कमनीगर (चूड़ी बनाने और बेचने वाला) पुकार कर कहता है और स्त्रियाँ भी नीच बुद्धि से जुड़ी उसी की कामना करती है।

ठीक इसी प्रकार की कुत्सित गति संसार की भी समझें–जिसने राम रूपी शीशे को अगम्य बता रखा है। राम की गति कुछ ऐसी ही समझो कि वह टूटी हुई चूड़ी है–जिसको (टूटी हुई चूड़ी के)

बराबर वह चूड़ी बनाने वाला ही ले आता है। उस टूटी चूड़ी को तोड़-फोड़कर अपनी भट्ठी में पिघलाता है–ठीक इसी प्रकार राम भी कर्म के कारण ऐसा ही स्थान प्राप्त करते हैं। यह शरीर भट्ठी है और काल चूड़ी बनाने एवं बेचनेवाला कमनीगर है और उस भवसागर की खान में राम बेहाल हैं। इस संसार की संसक्ति ः रखकर उन तक जाता है, हे भाई बताओ, उसकी क्या दशा होगी। स्वयं राम कर्मवशात् उसी में पड़े (फँसे) हैं तो यह बताइये कि उनसे यह संसार किस-किस भाँति उद्धार पाएगा॥

राम राम मन बूझौ भाई। मन को राम संत गोहराई॥
देखौ सब संतन की साखी। बूझि ज्ञान जब खुलिहै आँखी॥
मन जो राम को जपै बनाई। मनहिं राम को गारी लाई॥
मन से कहत बहुत यह खोटा। राम जपे केहि बिधि ह्वै मोटा॥
मुख से मन को खोट लगावै। वही राम मन इष्ट बतावै॥
राम इष्ट मन गारी दइया। तुम्हरा ज्ञान आहि कस भइया॥
राम राम जपिया दिन राती। मन कौ खोट कहौ केहि भाँती॥
मन को खोट देउ तुम गारी। इष्ट राम पर परिहै सारी॥
अपने मन में ज्ञान बिचारा। बूझ करौ सतसंगति लारा॥
जग सब मूल मूल के माहीं। बुद्धि कर्मबस बूझ न आई॥
भेष पंथ सब झारि बिचारा। बहु पुनि परे राम की लारा॥
राम राम पुनि आपुहि गावै। जो कोई बूझि ताहि बतलावै॥
उनसे बूझि राम कहँ होई। कह सब माहीं रहा समोई॥
राम राम सब माहि बताई। चारि खानि चर अचर समाई॥

अर्थ–राम-राम को ही मन समझो और सन्तगण मन को ही राम पुकारते हैं। समस्त सन्तों की साखियों को पढ़ो और उनमें निहित ज्ञान को बूझो, तब तुम्हारी आँखें खुलेंगी। जो व्यक्ति मन को राम बनाकर जपेगा, मन ही राम के प्रति उपेक्षा का भाव पैदा करेगा। मैं मन के ज्ञान से ही कहता हूँ कि राम शब्द बहुत खोट है। राम का जप करने से व्यक्ति किस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि से समृद्ध होगा। मुख द्वारा मन पर खोट लगाते है और वही राम रूपी मन को अपने इष्टदेव बतलाते हो–(कैसे सम्भव है)। हे भाई! तुम्हारा ज्ञान कैसा है, तुम राम मन रूपी इष्ट देव को गाली देते हो। तुम राम-राम रात-दिन जपते रहते हो–फिर मन को किस तरह से खोटा कहते हो। मन को खोट कहकर तुम उसे गाली देते हो–यह सारी तुम्हारी गालियाँ तुम्हारे इष्टदेव राम पर ही पड़ेंगी। तुम अपने मन द्वारा ही इसे समझो और सत् ज्ञान प्राप्ति के लिए सत्संगति में रमो। बुद्धि के अन्तर्गत कर्मवश यह बात समझ में नहीं आ रही है कि सारा संसार भूल है और सभी इसी भ्रम (भूल) में ही फँसे हुए हैं। वेष रचना, धर्ममार्ग इन सब पर विचार करो कि बहुत सारे लोग राम की संसक्ति में पड़े हुए हैं।

स्वयं तो राम राम का गान करते रहते हैं और जो कोई उनसे पूछता है, उसको भी वे यही बतलाते हैं। उनसे पूछा जाता है कि राम कहाँ है, वे कहते हैं कि वह सबमें समाया हुआ है। वे सब में राम हैं–यह बताते रहते है और यह भी बताते हैं कि वह सचराचर के चारों लोकों में समाया हुआ है।

येहि बिधि मुख से बोलै बात। नर पसु पंछी सब के साथा॥
पूछौ नर में राम बतावै। कंठी बाँधि चेला ठहरावै॥
राय राम बिधि सब में गावै। पुनि चेला कस कस ठहरावै॥

मुख से राम कहै सब माहीं। पुनि पूछै सेवक बतलाई॥
सेवक मन से ता को जानै। फिर कस राम को स्वामी मानै॥
स्वामी सब के माहिं समावा। पुनि सेवक कस कस बतलावा॥
राम बसा सब जग के माहीं। ये तो जग स्वामी भया भाई॥
सब घट माहीं राम बिराजा। घट में रामहिं करै अवाजा॥
चेला करि तुम नाम पुकारी। बोलै को लख दृष्टि पसारी॥
को अवाज चेला में दीन्हा। को बोलै केहि चेला कीन्हा॥
बोलनहार राम बतलावौ। सिष्य करौ सेवक ठहरावौ॥
कस कस बुद्धि तुम्हारी भाई। बुद्धि गई मति ज्ञान हिराई॥
राम राम करि मुक्ति तुम्हारी। बोलै चेला राम बिचारी॥

अर्थ–वे इस तरह से अपने मुख से बातें बोलते रहते हैं कि वे मनुष्य, पशु, पक्षी सभी के साथ हैं। पूछने पर वे प्रत्येक मनुष्य में राम बताते हैं और लोगों के गले में कंठी बाँधकर उन्हें चेला बनाते हैं। जब सबमें राम-राम होना कहकर बताते हैं तब मनुष्यों को चेला क्यों बनाते हैं (क्या उनमें राम नहीं है)। वे मुख से कहते हैं कि राम सबमें हैं और फिर शिष्यों के विषय में पूछने पर उन्हें 'सेवकदास' कहते हैं– क्यों? जब वे मन से एक व्यक्ति को सेवक मानते हैं, फिर राम को स्वामी क्यों मानते हैं। यदि स्वामी सभी लोगों के हृदय में समाया हुआ है तो फिर उसे सेवक क्यों बतलाते हैं। जब राम सम्पूर्ण संसार में निवास करते हैं तो हे भाई? सम्पूर्ण संसार तो स्वामी हो गया (सेवक क्यों)।

सभी घटों (मनुष्यों) में जब राम विराजमान हैं और घट के अन्दर राम की ध्वनि उत्पन्न होती है और तुम शिष्य बनाकर उनका नाम रखकर पुकारते हो तो देखो कि वह कौन बोल रहा है–(चेला कि राम)। चेला के हृदय में आवाज कौन दे रहा है, वह कौन बोल रहा है क्या तुमने उसे (राम को जो हृदय में बोल रहा है) चेला बना लिया है।

बोलने वाले को तुम राम कहकर बतलाते हो और व्यवहार में उन्हें शिष्य बनाकर दास सिद्ध करते हो। हे भाई! यह तुम्हारी बुद्धि कैसी है। लगता है, बुद्धि नष्ट हो गई है, ज्ञान खो चुका है। राम-राम कहकर तुम अपनी मुक्ति चाहते हो और राम पर विचार करते हुए तुम मनुष्य राम को चेला कहते हो।

बोल राम तुम चेला कीन्हा। चेला मुक्ति कौन बिधि दीन्हा॥
बोल राम रित चेला थापा। बुद्धि गई तुम बूड़े आपा॥
बूझौ खूब खूब कर देखौ। तुलसी बचन हृदै में पेखौ॥
तुलसी बूझ अबूझ बिचारा। साँच झूठ परखौ निरधारा॥
मन गुन ज्ञान बुद्धि सँग बूझी। तुलसी नहिं कछु कही अबूझी॥
निदा भाव कीन्ह कछु नाहीं। निंदा संत न करिहैं भाई॥
निदा भाव नर्क की खानी। ता को संत न करैं बखानी॥
ये अबूझ अपने से जानौ। ता से निंदा कहि कर मानौ॥
तुम निंदा कर बूझा भाई। संत मता सतसंग न पाई॥
संत मता सतसंगति जानौ। सार असार सबै पहिचानौ॥
बिन सतसंग बूझ नहिं आवै। ता से निंदा करि ठहरावै॥

संत सरन से उतरै पारा। सो तो तुम निंदा कर डारा॥
मुख से कहौ संत मत न्यारा। संत बिना नहिं होय उबारा॥
पंत मता न्यारी तुम भाखौ। न्यारी कहि पुनि ताहि न ताकौ॥
संत का भेद बेद से न्यारा। अस अपने मुख कहौ बिचारा॥
संत साध कहौ सब से न्यारा। पुनि सुनि कै नहि मानौ लबारा॥
न्यारी कहैं सत्त सत जाना। न्यारी सुनै देर नहिं काना॥
न्यारी को न्यारी कर बूझै। न्यारी गुनै सुनै नहिं सूझै॥
कहै न्यारी मुख मीठा लागै। न्यारी सुनै तभी उठि भागै॥
अपने मुख से न्यारी भाखै। न्यारी सुनि उठि कै कस भागै॥
न्यारी सुनि बूझै नहिं भाई। ता से कछू हाथ नहिं आई॥
ये अद्‌भुद सुनियौ अज्ञाना। न्यारी कहै सुनै नहिं काना॥
भेष जगत की ऐसी रीती। ज्यों भेड़ी जग बहै अनीती॥
या बिधि से जग बेद भुलाना। संत मता ता से नहिं जाना॥
फूलदास ये येहि बिधि लेखा। परघट नहीं संत गति पेखा।
जो कोइ परघट कहत बुझाई। तो झगरा करने को धाई॥
गुप्त मता संतन ने भाखी। कागद में मिलि है नहि साखी॥
साखी सब्द ग्रन्थ जो गावै। बिन सतसंग समझ नहिं आवै॥
ये झूठे कागद के माहीं। ढूँढ़ ढूँढ़ सब जनम सिराई॥
ज्यों बाजीगर डंका मारा। ठगन जगत इंद्रजाल पसारा॥
ऐसी सब ग्रंथन की बानी। ता में ढूँढ़ै भेष अजानी॥
या से इनके हाथ न आवै। गुप्त संत बिधि कैसे पावै॥
फूलदास मति बूझौ भाई। अस जग अंध कहा कहौं गाई॥
सब सब बिधि बिधि गाइ बताई। फूलदास बिधि भूल सुनाई॥

अर्थ–बताओ कि क्या तुमने राम को ही चेला बना लिया और इस शिष्य को मुक्ति किस प्रकार से दी। राम बोलकर चेला की स्थापना करते हो, तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो चुकी है–तुम स्वयं नष्ट हो गए हो। समझो और इसे भलीभाँति आचरण में उतार कर देखो और तुलसी साहब के बचनों को हृदय में रखकर देखो। तुलसी के विचार समझने योग्य हैं या नहीं, इसकी सत्यता एवं असत्यता को सही-सही परखो। मन के गुण ज्ञान तथा बुद्धि द्वारा इसे समझो। तुलसी ने कोई न समझ सकी जाने वाली बात नहीं की है। उन्होंने इसे निन्दाभाव से भी कुछ नहीं कहा है। हे भाई! सन्त किसी भी निन्दा नहीं करते हैं। निन्दाभाव नरक की खानि है–इसका सन्तगण उसका वर्णन नहीं करते। यह रहस्यमय तत्त्व है जो व्यक्ति स्वयं से जानता है तो उससे निन्दा कहकर शान्त रहो। तुमने तो निन्दा करके उसे समझा है, किन्तु संत मत को सतसंग से भी कभी-कभी नहीं किया जा सकता। संतों के मत को ही सत्संगति समझो और उसके द्वारा-सार तथा असार मत सभी की पहचान करो। यह परमार्थ तत्त्व बिना सत्संग के समझ में नहीं आता और तुम उससे निन्दा करके बात सिद्ध करते हो। तुमने उसकी निन्दा करके उसे समझा है

लेकिन बिना संत मत के सत्संग नहीं मिलता। संतमत को सत्संगति से ही समझो और उससे क्या सार तत्त्व है–क्या असार तत्त्व है, उसे समझो। बिना सत्संगति के मूल तत्त्व समझ में नहीं आता और उसे निन्दा से अलग रहकर बताया जा सकता है।

सन्तों की शरणागति, ए हो इस संसार से पार उतर सकते हो और उसकी तो तुमने निंदा कर डाली है। मुख से बोलो कि संत मत विलक्षण है क्योंकि संत के बिना उद्धार सम्भव नहीं है। तुम संत मत को विलक्षण बताते हो, और उसे विलक्षण कहकर भी उस ओर नहीं देखते हो। सन्तों का रहस्य वेद से भी विलक्षण है, ऐसा अपने मुख से ही विचार करो। सन्त और साधु सबसे विलक्षण हैं और इसे सुनकर इसे लबारपन नहीं मानते हो। विलक्षण ही कहता है कि सन्त मत को जान लिया है, और ऐसे लोग भी विलक्षण है, जो इसे कान से भी नहीं सुनने देते। विलक्षण को विलक्षण मानकर ही समझता है–विलक्षण के लिए व्यक्ति गुनता है और सुनता है किन्तु वह उसे सूझता नहीं। वह विलक्षण कहता है और उसके मुख को वह भला भी लगता है किन्तु जब वह विलक्षण बातों को सुनता है तो अरूचिवश उठकर भाग चलता है। अपने मुख से तो तुम विलक्षण तत्त्व कहते हो किन्तु अन्य की विलक्षण बातें सुनकर तुरन्त उठकर भागते हो। विलक्षण अध्यात्म तत्त्व सुनकर तुम समझ नहीं पाते–अतः इस प्रकार तुम्हारे हाथ में कुछ नहीं लगेगा। यह अद्‌भुत वर्णन है किन्तु तुम्हारे अज्ञान सुनाई पड़ता है–और जो व्यक्ति विलक्षण बातें कहते हैं, तुम उसे कान से नहीं सुनना चाहते। संसार का यही रहस्य है, यही रीति है–यह भेड़ियाधसान संसार है–जहाँ अनीति ही बहती है। इसलिए यह संसार वेदों में भूला हुआ है इस कारण वह सन्त मत को नहीं जानता।।

फूलदास कहते हैं कि इसका यही स्वरूप है–संतों के ज्ञान को किसी ने प्रगट रूप में नहीं देखा है। जो कोई इस सन्त मत को प्रगट रूप से कहना चाहता है, उससे लोग झगड़ा करने के लिए दौड़ते हैं। सन्तों ने अपने सिद्धान्तों को गुप्त रूप से बताया है और कागजों पर लिखा हुआ उनका साक्ष्य नहीं मिलेगा। जो ग्रन्थ साखी एवं सबद का गान करता है, वह गान बिना सत्संगति के समझ में नहीं आता । ये कागज में लिखे हुए शब्द झूँठे हैं और खोजते-खोजते आदमी का सम्पूर्ण जीवन समाप्त हो उठता है। जैसे कोई बाजीगर सबसे पहले डंका पीटता है, फिर संसार को ठगने के लिए अपने इन्द्रजाल को फैलाता है। सम्पूर्ण ग्रन्थों की वाणियाँ कुछ इसी प्रकार की है और उसमें अज्ञानी जन बेष रचना में खोजा करते है। इसीलिए वह अध्यात्म तत्त्व इनके हाथ नहीं लगता-गुप्त सन्त मत को इन पोथियों में कैसे प्राप्त करें, सम्भव नहीं है। हे फूलदास। इस रहस्य को तुम समझो–सारा संसार इस प्रकार अंधा है, मैं कहाँ तक समझा कर कहूँ। सारी-की-सारी बातें अनेक विधियों से मैंने कहकर बता दी हैं और हे फूलदास! मैंने तुम्हें विधिपूर्वक सबका निचोड़ सुना दिया है।

सम्बाद साथ गुनुवाँ बेटा हिरदे अहीर के

॥ तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

इतने में हिरदे चलि आये। संगहिं सुत दरसन को लाये॥
दोऊ दरस दंडवत कीन्हा। चरन धाइ पुनि हमरे लीन्हा॥
हम पूछी हिरदे से बाता। आज कों लाये अपने साथा॥
हिरदे पुत्र सामने कीन्हा। हम पूछी केहि नाम से चीन्हा॥
हिरदे कहै यह जग्त बिधाना। गुनुवाँ नाम से पुत्र कहाना॥
पूछी तुलसी कौन ठिकाना। कहँ से आये कहौ बिधाना॥
हिरदे कहै सुनो हों स्वामी। मोसे जुदा रहै यह जानी॥
रह लखनऊ मोर यह बेटा। बहुत दिनन पर मो से भेंटा॥

मोरे मिलन काज वह आवा। सो स्वामी के दरसन पावा॥
स्वामी चरचा सुनी बिख्याता। फूलदास साध के साथा॥
इन सब वह चरचा सुनि पावा। या के मन में भर्म समावा॥
ये स्वामी जस ज्ञान बखाना। या की समझ बूझ नहिं माना॥
राम राम तम कछू न गाई। राम से और कोऊ बतलाई॥
राम से और कोऊ नहि दूजा। यह या के मन आई बूझा॥
कह तुलसी गुनुवाँ सुन बाता। रह दो चार रोज यहिं राता॥

अर्थ–इतना सब होने के बाद हिरदै चलकर आये और साथ में अपने पुत्र को उनके दर्शनार्थ लाये। दोनों ने दर्शन करके दण्डवत् किया और दौड़कर पुनः हमारे चरण को पकड़ा। मैंने हिरदै से समाचार पूछा कि आज किसको अपने साथ लाए हो। हिरदै ने बताया कि यह जगत का विधान है, यह 'गुनुवाँ' नाम से मेरे पुत्र के रूप में पुकारा जाता है? तुलसी साहब ने गुनुवाँ से पूछा कि तुम्हारा रहना कहाँ होता है और कहाँ से आए हो और अपना समाचार सुनाओ। हिरदै ने उत्तर दिया, हे स्वामी सुनें, आप यह समझों कि यह मुझसे अलग रहता है। मेरा यह बेटा–लखनऊ रहता है और बहुत दिनों पर इससे हमारी भेंट हो रही है। यह मुझसे मिलने के लिए आया था, इसलिए और इसी संयोग से उसने आपका दर्शन प्राप्त किया। स्वामी तुलसी साहब के विख्यात होने की चर्चा फूलदास साधु के साथ होने की इसने सुनी। इन सब बातों की उसने चर्चा सुनी और तबसे उसके मन में यह भ्रम समा गया है कि इन स्वामी ने जो रूप वर्णित किया है–उसकी समझ बूझ मेरे मन में नहीं समा रही है। इन्होंने ने तो राम-राम के यश का तो कुछ भी गान नहीं किया है, और राम से भिन्न अन्य किसी का दर्शन किया है। राम से बढ़कर अन्य कोई दूसरा नहीं है–इस मेरे पुत्र के मन में यह समझ उत्पन्न हुई है। तुलसी साहब ने (इसे सुनकर बोले) हे गुनुवाँ! मेरी बात सुनो और यहाँ दो-चार दिन लगकर रहो।

प्रश्न गुनुवाँ॥ चौपाई॥

माथ नवाई जोरि जुग पानी। स्वामी से बूझौं इक बानी॥
राम राम जग बिरत बिराजा। जिनने किये अनेकन काजा॥
जक्त भेष सब साध बतावा। तुम ताको कछु नहिं ठहरावा॥
सब मिलि के ये बिधी बखानी। महुँ पुनि सुनीं कहौं यह बानी॥
राम ने सिंध पखान तरावा। जल पर सिला राखि उतरावा॥
और प्रहलाद भक्त को तारा। ता कारन हरनाकुस मारा॥
गुजरी एक बिन्द्राबन माहीं। तिन पुनि कथा सुनी इक ठाहीं॥
कथा माहि इक सुना प्रसंगा। राम राम नौका चित चंगा॥
उन सुनि साँच मान मन धारी। वो उतरी जमुना के पारी॥

अर्थ–मैं सिर झुकाकर और दोनों हाथों को जोड़कर स्वामी जी से एक बात पूछना चाहता हूँ। संसार से विरत राम सम्पूर्णतः व्याप्त हैं–और जिन्होंने अनेकों कार्य किए हैं और इस संसार में भेष धारण की चर्चा तो सारे साधुगण बताते रहते हैं और उसको आप कुछ भी नहीं मानते। सारे साधुओं ने राम का इस प्रकार से वर्णन किया है–और उसे मैंने भी सुनी है और आपसे भी कह रहा हूँ।

राम ने समुद्र में पत्थर तैरा दिया—जल के ऊपर उतरायी हुई शिलाओं को स्थापित किया। उन्होंने प्रह्लाद भक्त का उद्धार किया और उनके लिए हिरण्य कश्यप का बध किया। वृन्दावन में एक अहीरिन थी और उस स्थान पर मैंने एक कथा सुनी। उस कथा में एक प्रसंग सुना कि भक्त जिसका मन निर्मल (चंगा) है, उसके लिए राम शब्द भवसागर से तारने के लिए नौका की भाँति है। उसने इसे सुनकर मन में इसे सही ठहराया और राम का नाम लेती हुई यमुना के पार उतर गई।

अजामील अस पातकि होई। ता सुन नाम नरायन सोई॥
मरत बार सुन नाम पुकारा। सो पहुँचा मुक्ती के द्वारा॥
गनिका सुवा पढ़ावत तारी। राम राम कहि उतरी पारी॥
ध्रू ने अटल तपस्या कीन्हा। पदवी राम अटल तेहि दीन्हा॥
और गज अर्ध नाम गोहरावा। ता को तुरत स्वर्ग पहुँचावा॥
बालीमीक जपि उलटा नामा। राम राम कहि मुक्ति समाना॥
महादेव दुइ अच्छर बासी। राम राम कहि भये अबिनासी॥
अस परचे जो राम के गावै। तुलसी पत्र लिखा इक ठाँवै॥
राम राम इक पत्र लिखाया। या की बिधि सब साखि सुनाया॥
पत्र एक पर राम लिखाना। पलरा माहिं धरा तेहि जाना॥
इक पलरा पर द्रब्य चढ़ावा। दूजा पलरा पत्र धरावा॥
पलरा पत्र उठा नहिं भाई। राम राम की ऐसी बड़ाई॥
महिमा राम राम अस गाई। नाम देव पुनि गाइ जियाई॥

अर्थ—अजामिल नाम का एक निकृष्ट पातकी था और उसके पुत्र का नाम नारायण था। मरते समय उसने अपने पुत्र 'नारायण' का नाम पुकारा और वह मुक्ति के द्वार पर जा पहुँचा। तोते का 'राम-राम' पढ़ाते हुए गणिका का उद्धार हो गया और वह राम राम कहती हुई भवसागर पार हो गई। ध्रुव ने अपनी अटल तपस्या की और राम ने उसके नाम की उपाधि को अटल बना दिया और गज ने राम का आधा ही नाम पुकारा और 'राम-नाम' ने उन्हें तुरन्त ही स्वर्ग पहुंचा दिया। स्वयं वाल्मीकि उनके नाम का उल्टा जप करते हुए—राम-राम कहते हुए मुक्ति में समाविष्ट हो उठे। 'राम' के इन दो अक्षरों में विश्राम करने वाले शिव राम-राम कहते हुए अविनष्ट तत्त्व हो गए। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन राम के विषय में एक पत्र लिखा। राम के लिए उन्होंने एक पत्र भी लिखा है और उन्होंने उसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया कहकर सुनाई है।

एक पत्र पर राम लिखकर उसे दूसरे पलड़े पर रख दिया। पहले पलड़े पर द्रव्यों को रख दिया और दूसरे पलड़े पर पत्र रखा दिया—पत्र वाला पड़ा इतना भारी था कि उस द्रव्य वाले पड़े के क्रम में वह उठा ही नहीं—यह सब शब्द का बड़प्पन है। राम की महिमा का ऐसा गान किया गया है। नामदेवता ने पुन: गाकर संसार को जीवित कर रखा है।

येहि बिधि साखी बेद पुकारै। सास्त्रर कहै राम ही तारै॥
ऐसी बिधि मिलि राम की साखा। सोई राम तुमने नहिं राखा॥
राम राम बिधि तुमहूँ गावा। तुमहूँ राम राम समझावा॥
या का भरम बहुत मोहिं आई। याकी बिधी समझाई॥
पहिले तुमहुँ राम कहि गावा। राम राम कहि भाखि सुनावा॥

अब तो मोड़ तोड़ तुम डारा। राम राम कहो झूठ पसारा॥
याकी बिधी भेद समझावौ। राम छाँड़ि तुम केहि को ध्यावौ॥
सब जग साखि तुम्हारी गावै। तुलसी राम राम समझावै॥
या की स्वामी साखि सुनैये। मेरे मन का भर्म मिटैये॥
सो स्वामी मो को समझावौ। मोरे मन का भर्म छुड़ावौ॥

अर्थ–इसी प्रकार वेद भी नाम के लिए साक्ष्य देकर पुकारता है और शास्त्रगण भी यही कहते हैं कि राम ही सबका तरण-तारण करते हैं। इस प्रकार राम के विषय में अनेक प्रमाण मिलते हैं और उस राम को आपने कोई स्वीकृति नहीं दी है। आपने भी राम-राम के रहस्यों का गान किया है और मैंने भी जो सुना है, उस राम के विषय में बताया है। इस बात का भ्रम मुझे अधिक है, अतः इसका रहस्य मुझे समझाएँ। पहले आपने भी राम कहकर उनका वर्णन किया है और राम राम कहकर उनके विषय में बताया है और राम राम कहकर इनके विषय में विवेचन करके सुनाया है। इस समय को तो आपने तोड़मोड़ कर सारे विचारों को रखा है–और कहा है कि राम-राम का प्रकरण मिथ्या है। इसलिए इसके रहस्य को मुझे स्पष्ट किया जाए। सारा संसार आपकी साखी गा रहा है और तुलसी राम-राम' के ही विषय में समझाते हैं। हे स्वामी? आप इसका रहस्य समझाएं और मेरे मन का उत्पन्न भ्रम दूर करें?

॥ दोहा॥

स्वामी कहौं बुझाइ, भर्म भाव मो को भयो।
मन में संक समाइ, राम राम कछु ना कह्यो॥

अर्थ–हे स्वामी! मैं आपको समझाकर कहता हूँ कि मुझमें भ्रम का भाव आ चुका है। मोटेमन में यह संदेह समा गया है क्योंकि आपने 'राम राम' कुछ भी नहीं कहा है॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥ चौपाई

सुनु गुनुवा तो को समझाऊँ। आदि अंत या की बतलाऊँ॥
सत्तलोक इक पुरुष अपारा। चौथे पद के पार बिचारा॥
तापु अंत जिव पुरुष नियारा। जा का पद चौथे के पारा॥
ता के पुत्र भये पुनि भाई। सोला निरगुन तिन कर नाईं॥
सो निरगुन जो पुरुष से भैया। जा में लघू निरंजन कहिया॥
ता को संत काल गोहरावै। सोई राम रमतीत कहावै॥
सोई निरंजन कहिये काला। आदहि जोति बिछाई जाला।
पुरुष निरंजन जोती नारी। ये दोऊ मिलि सृष्टि रचा री॥
तिन के पुत्र तीनि जो जाना। ब्रह्मा बिष्नु ताहि कर नामा॥
तीजे संभू छोटे भाई। तीन पुत्र या बिधि उपजाईं॥
निरंजन पिता जोति है माता। ये तीनों इन से उतपाता॥
रमतीता सोइ बुझौ काला। जोती काल रचा जंजाला॥
ता के भये दसौ औतारा। काल अंस जग राम पसारा॥
रमता राम कर्म के माहीं। रमतीत राम काल की छाहीं॥

अर्थ–हे गुनुवाँ! तुझे मैं समझाता हूँ और इस रहस्य का आदि-अन्त भी बतलाता हूँ। एकअनन्त पुरुष है–उसका नाम 'सत्तलोक' है और वह चौथे पद के उस पार कहा जाता है। उसके अन्तिम स्वरूप को वहीं 'जीव पुरुष' निर्णीत करता है, जिसका स्थान इस चौथे पद के उस पार हो। हे भाई! फिर उनके भी पुत्र उत्पन्न हुए:वे सोलह थे, और वे उसी की भाँति थे। उस पुण्य से जो निर्गुण हुआ–उसमें से सबसे छोटे पुत्र को निरंजन कहा गया है। संत जन उसी को काल के नाम से पुकारते हैं–वही रमण करने वाला राम कहलाता है। उसी को निरंजन या काल भी कहते हैं और उसने सबसे पहले ज्योति की जाल बिछा दी है। उस निरंजन पुरुष तथा ज्योति नारी–इन दोनों ने मिलकर सृष्टि रचना का विस्तार किया। इनके तीन पुत्र जो इस रूप में जाने हैं–'ब्रह्मा' एवं 'विष्णु' उनका नाम है, तीसरे 'शिव' उनके छोटे भाई हैं–और इस प्रकार उन्होंने तीन पुत्र उत्पन्न किये।

निरंजन इनके पिता हैं, ज्योति इनकी माता हैं–और ये तीनों इनसे उत्पन्न हुए हैं। जो स्मरण कर रहा है, उसे काल समझो, इस ज्योति ने इस काल का जंजाल रचा है। इस काल के दस अवतार हुए हैं। इस काल ने अपने अंश के रूप में राम को फैलाया है। राम के मध्य ही रमण करते हैं। राम तो केवल काल की छाया में रमण करते हैं॥

रमतीत काल ने जाल पसारा। रमता रहा राम भौ जारी॥
राम कहौ सोइ मन है भाई। मनहिं राम जिन जक्त बुड़ाई॥
राम काल सब संत पुकारा। जा को जपै यह जक्त लबारा॥
ब्रह्मा बिष्नु महेसर जाना। बेद कहे सोह झूठ पुराना॥
ये तीनों ने जाल पसारा। राम काल ने सब जग मारा॥
राम काल को जपै बनाई। चर और अचर सभी चरखाई॥
राम काल को जपिहै भाई। जम बंधन भौ खान समाई॥
रमतीत काल जोति है ठगनी। तीन पुत्र उपजाये अपनी॥
सास्त्र बेद और दस औतारा। ये सब जानी काल पसारा॥
या के मत में परिहै प्रानी। काल जाल ये जम की खानी॥
तीनि लोक जम जाल पसारा। वो दयालपद इन से न्यारा॥
वो दयाल समरथ है दाता। सो पद को कोउ संत समाता॥
वा की राह संत से जानै। भेष जक्त दोउ नहि पहिचानै॥

अर्थ–रमण करने वाले काल ने अपना जाल फैला रखा है किन्तु दूसरी ओर सम्पूर्ण संसार राम में रहता रहा। जो मन में आए उसी को राम कहो, मन ही राम है–जिसके सम्पूर्ण संसार को उसी में संसक्त कर दिया। सारे सन्तों ने कहा है कि राम ही काल है, जिसको यह लबार संसार ब्रह्मा के रूप में जपता रहता है। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव ईश्वर हैं, ऐसा वेद तथा पुराणों ने कहा है, यह सब असत्य है। इन तीनों ने अपनी माया पसार रखी है किन्तु किन्तु राम रूपी काल ने सम्पूर्ण जगत को नष्ट कर दिया। जो राम रूपी काल को ईश्वर मानकर जपता है, वह चर तथा अचर सभी को धोखा देता है। हे भाई, यदि राम रूपी काल का जप करेंगे तो यम के बन्धन में बंधकर इस संसार की माया की खानि में पड़ोगे। काल रमण करने वाला है और वह उसकी पत्नी ज्योति ठगिनी है। इन्होंने अपने तीन पुत्रों को उत्पन्न किया है। शास्त्र, वेद और दसों अवतार इन सबको काल के जाल के अन्तर्गत समझो। इनके मतों के अनुसार समस्त प्राणी काल जाल एवं भ्रम के फंदे में पड़ेंगे। यमराज ने तीनों लोकों में अपना जाल फैला रखा है–और वह दयालु ईश्वर इन सबसे भिन्न है। वह दयालु ईश्वर एक समर्थ दाता है–उनके

लोक में कोई ही विरला संत प्रवेश करता है। उस दयालु ईश्वर का मार्ग कोई भक्त ही समझता है–वेष रचना और सांसरिक जन दोनों ही उसे नहीं पहचानते॥

संत मता कोई भेद न जाना। सूरति संत चढ़ै असमाना॥
पहुँचै सूरति अगम ठिकाने। अपना आदि अंत घर जानै॥
सूरति मिलै पुरुष को जाई। तिन को नाम संत है भाई॥
संत राह सूरति को पावै। और सब भेष खानि में आवै॥
आदि पुरुष को देखै नैना। तब अदृष्ट की बूझै सैना॥
पतिबरता सो पुरुष पिछानै। वा को इष्ट संत सब मानै॥
और इष्ट नहिं जानै भाई। राम इष्ट ये काल कहाई॥
जो कोइ राम पतिब्रत कीन्हा। सो सब परे कर्म आधीना॥
जिन दयाल से सुरति लगाई। सो पहुँचे वा पद के माईं॥
येहि बिधि संत कहैं गोहराई। अस अस संत सभी समझाई॥
राम काल जो जपै बनाई। संत बचन निंदा ठहराई॥
संत बचन निंदा कर माना। ता ते परे नर्क की खाना॥
या का कोई भर्म लै आवै। बार बार चौरासी पावै॥

अर्थ–सन्त मत का रहस्य कोई नहीं जानता। सुरति ध्यान से ही सन्त जन शून्याकाश तक चढ़ते हैं। सुरति द्वारा साधक उस अगम्य ब्रह्म के ठिकाने तक पहुँच जाते हैं और फिर वे अपना मूल स्थान (आदि अन्त ठिकाना) या घर जान जाते हैं। सुरति समाधि द्वारा जो सन्त उस परम पुरुष से मिलता है–उसी का नाम, सन्त है। अन्य व्यक्ति सन्तों की राह पर चलकर ही सुरति को जान सकता है, शेष सभी इस भवसागर में आकर समा जाते हैं। जो आदि पुरुष को इन नेत्रों से देख लेता है, सभी अदृष्ट को अपनी आँखों का इशारा समझता है। वही सन्त पतिव्रता है, जो उस पुरुष को पहचानता है, और सभी संतजन उसी को अपना इष्ट मानते हैं। हे भाई! वह अन्य इष्टों को नहीं जानता तथा और राम नाम के ये इष्ट तो काल के नाम से पुकारे जाते हैं। जिसने राम से अपना पातिव्रत सम्बन्ध स्थापित किया है, वे सभी कर्म के अधीन हैं। जिन्होंने उस दयालु में सुरति समाधि लगा रखी है, हे भाई! वही उस स्थान पर पहुँचते हैं। ऐसा-सन्तों ने बुला-बुलाकर बताया है–और ऐसा-ऐसा ही सभी सन्तों ने समझाकर बताया है। जो काल रूपी नाम को ईश्वर बनाकर उपासना करता है, सन्तों द्वारा वही निन्दित ठहराए जाते हैं। सन्त की वाणी की जो निन्दा करते हैं, इसी कारण वे नरक की खानि में पड़ते हैं। यदि इसमें कोई भ्रम उत्पन्न करता है तो वह बार-बार चौरासी लाख योनियों में पड़ता है।

आप अबूझ बूझि नहिं लावै। संतन को नास्तिक ठहरावै॥
यह सब भेष अंध भये भाई। संतन को निन्दक ठहराई॥
संतन की बूझै कोई बानी। तौ छूटै चौरासी खानी॥
राम काल को दूर बहावै। निस दिन संत चरन लौ लावै॥
वो दयाल कहुँ राह बतावैं। तब जिव अपने घर को जावै॥
संत चरन पावै निरबारा। राम काल जरा फाँसी डारा॥
जो कोइ गहै राम की सरना। छूटै न जनम नरन का धरना॥

कहै राम के होइ गये बेटा। ता को परिहै जम को सोंटा॥
जो कोइ भये राम के प्यारे। खानि गये जम लातन मारे॥
तुलसी सत सत यहि मत भाखा। या में पच्छपात नहिं राखा॥
संतबचन जेहि सत्त न भासी। जा की होइ जनम की नासी॥

अर्थ–स्वयं के लिए जो अबूझ है, वे उसे समझते नहीं और संतों को नास्तिक सिद्ध करते हैं। ये सभी साधुओं की वेष रचना में अंधे हो गए हैं और सन्तों को निन्दक सिद्ध करते हैं। जो कोई सन्तों की वाणी बूझ लेता है, उसकी चौरासी कोटि योनियों से मुक्ति हो जाती है। जो राम रूपी काल को दूर बहा देता है और रात-दिन अपना ध्यान सन्तों के चरणों में लगाए रखता है। वह उस दयालु परमेश्वर का मार्ग बतलाता है और उसी का अनुगमन करके जीव अपने गृह के लिए प्रस्थान करता है। वह सन्तों के चरणों में ही अन्तिम फल प्राप्त करता है किन्तु राम रूपी काल उसे वृद्धावस्था जैसी अवस्था की फाँसी लगा देता है। जो कोई व्यक्ति राम की शरण स्वीकार करता है उससे जन्म-मरण का बन्धन छूटता नहीं। जो यह कहता है कि मैं राम का पुत्र हो गया उसके ऊपर यम के सोंटे की मार पड़ती है। जो कोई राम के प्यार बन गए हैं, वे नरक की खानि में जाते हैं और यम के पैरों की मार सहते हैं। तुलसी ने यह मत सही-सही बताया है और इसमें कोई पक्षपात नहीं किया है। जिसे सन्तों की वाणी में सत्य का अनुभव नहीं हुआ, उसकी जन्म की नष्टता अवश्य होगी।

॥ सोरठा ॥

तुलसी कहै बुझाइ, गुनुवाँ बूझौ बात यह।
राम भर्म भौ खानि, सब कहैं संत पुकारि कै॥

अर्थ–तुलसी साहब समझाकर कहते हैं कि हे गुनुवाँ! यह बात समझो, इस संसार में राम भ्रम की खानि है, सारे सन्त इस बात को पुकार कर कहते हैं॥

॥ प्रश्न गुनुवाँ ॥ चौपाई ॥

पुनि स्वामी इक पूछौं बाता। केहि बिधि ये जिव होइ सनाथा॥
ध्रू प्रहलाद जो गनिका भइया। सेसनाग गज नाम देव कहिया॥
बालमीक अरु सबहि बखानी। अजामील सिव गुजरी जानी॥
तुलसी पत्र राम लिखवाई। और पखान जल माहिं तराई॥
ये स्वामी कहौ कैसी भैया। कहैं गुनुवां मो को समझैया॥

अर्थ–हे स्वामी! मैं पुनः एक बात पूछना चाहता हूँ: किस प्रकार से ये जीव आश्रय से भरेपूरे होंगे। ध्रुव, प्रह्लाद और जो गणिका थी तथा शेषनाग, गज आदि अन्य देवों के नाम जो कहे गए हैं, सभी वाल्मीकि का वर्णन करते हैं और जो अजामिल तथा शिव पर बीती उसे सभी जानते हैं? स्वयं तुलसीदास जी ने राम शब्द पत्रों पर लिखवाया उसे पाषाण पर रखकर तैरा दिया। हे स्वामी, बतलाइये, ये कैसे घटित हुए। गुनुवाँ ने कहा–हे गुरुदेव मुझे समझाएँ।

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥ चौपाई।

सुन गुनुवाँ मैं बूझ बताई। मन ठहराइ सुनौ चित लाई॥
राम अनादि चारि जुग भैया। ग्यारह जीव ताहि में तरिया॥
ता में सात जीव की चरचा। और चारि बतलावौ परचा॥
गिरे परे दस पाँच अरु होई। ये सब साखि बतावौ सोई॥

पोढ़ पोढ़ तौ सातै भैया। चारि बिधी परचे की कहिया॥
चारौ जुग जिव भये अनेका। सतजुग द्वापर त्रेता देखा॥
कलजुग सुधाँ चार जुग पेखा। चार जुगन कौ पूछौं लेखा॥

अर्थ--हे गुनुवाँ! तू समझ! मैं इसे बतला रहा हूँ। मन स्थिर करके तथा चित्त लगाकर मेरी बात सुनो। राम चारों युगों में अनादि तत्त्व हैं और उनसे ग्यारह जीवों का उद्धार हुआ है। उन ग्यारह जीवों में केवल सात जीवों की चर्चा है—और शेष चार का परिचय मैं बतला रहा हूँ. उनमें से भूले भटके दस-पाँच और हो सकते हैं—मैं उनका सबका प्रमाण देकर वर्णन कर रहा हूँ। सातों तो बड़े ही प्रौढ़ थे और शेष चार के परिचय की बातें कह रहा हूँ। चारों युगों में अनेक जीव हुए और आपने सतयुग, त्रेता तथा द्वापर को देखा होगा और कलियुग के साथ ही चारों युगों को भी समझा होगा।

ता में सात जीव सब तरिया। और जीव गये कहाँ जो मरिया॥
राम राम चारो जुगआवा। चारो जुग सबहिन मिल गावा॥
निरमल सतजुग जीव अनेका। राम राम जपि बाँधी टेका॥
सो तरे जीव अनेकन होइ। तुम ने सात जीव कहे सोई॥
और जीव का भाखौ लेखा। तरि गये होइहैं जीव अनेका॥
और नहीं थोरे पुनि कहिये। सतजुग क्रोड़ जीव तो चहिये॥
सतजुग उजली बुधि मन होई। राम जपा निस्चय से सोई॥
ता में क्रोड़ जींव तौ चाही। ये तो सात नाम भये भाई॥
और अनेक राम जपि जानी। सात तरे की हम नहि मानी॥
क्रोड़ जीव का नाम बतावै। तब हमरे मन साँची आवै॥
उजला सतजुग सात बखाना। मैला कलि का कौन ठिकाना॥
सतजुग सात निष्ट से गैया। कलजुग एक तरे नहिं भैया॥
सतजुग में तुम सात बतावा। कलजुग कर्म नष्ट लपटावा॥
जो कोइ कहै राम से तरिहै। झूठ समझि मन में नहिं धरिये॥
राम रमा जुग चारो खानी। तरिहै या से कस कस मानी॥

अर्थ—इनमें केवल सात जीव ही तरे और शेष जीव मर कर कहाँ गए? राम चारों युगों में रहे और चारों युगों के सभी व्यक्तियों ने मिलकर राम-राम कहा कहा। सत्युग में जीव निर्मल प्रवृत्ति के थे और राम-राम जपने की निरन्तर प्रतिज्ञा किए रहते थे। इस प्रकार, वे अनेक जीव तरे होंगे और उनमें तुम केवल सात जीवों की बात कही है। मैं अन्य जीवों का समाचार बता रहा हूँ कि वे भी अनेक जीव तर गए होंगे। सत्युगमें भी तो करोड़ों जीव होंगे और उन जीवों में थोड़े तो तरे होंगे। सत्युग में मन तथा बुद्धि पवित्र होती थी और सभी ने निश्चयपूर्वक राम का जप किया होगा। इनमें से तो कम-से-कम करोड़ जीव का उद्धार होना चाहिए—ये तो केवल सात के ही नाम है और अनेक जीवों ने जपकर मुक्ति प्राप्त की होगी। अत: केवल सात के तरने की बात हम नहीं मानते। यदि कोई इन करोड़ जीवों का नाम बताए तभी हमारे मन को सत्यता पर विश्वास होगा। उज्वल (पवित्र) सत्युग में केवल सात की बात कहते हैं, फिर इस मलग्रस्त कलियुग का कौन-सा स्थान होगा? सत्युग में तुमने सात की चर्चा की और तुम कलियुग में सभी को कर्माविष्ट होकर नष्टधर्मी बता रहे हो। जो कोई कहता है कि राम से उद्धार

होगा–तो उसे असत्य समझो और इस बात को मन में न रखो। तुमने बताया कि राम चारों युग में रहे हैं–तो उनसे किस-किस प्रकार तरेंगे।

तुमको कहते सरम न आई। या को मन में बूझो भाई॥
येहि बिधि तुम मन अपने बूझा। करि बिचार तब परिहै सूझा॥
क्रोड़ो ऋषि मुनि जपि पुनि होई। क्रोड़ों तपसी जानौ सोई॥
क्रोड़ों इष्ट नेम पुनि करिया। कइ इक राम पतिब्रत धरिया॥
राम राम कहि सब जग तरते। भौसागर में कोइ न परते।
जो तुम कहौ करै परतीता। सतजुग में थी सत की रीता॥
साँचा जुग परतीत न आई। झूठ कलि की कौन चलाई॥
काल राम मन उतपति माहीं। राम न तारा होइहै भाई॥
सतजुग राम कहे नहिं तरिया। भौसागर में सब जिव परिया॥
तुम तो कहो राम सब माहीं। चार खान में रहा समाई।
राम खान में रहा बिराजा। कस कस भयौ तुम्हारो काजा॥
राम खान बस रहिया भाई। तुमको कस मुक्ती पठवाई॥
ये सब जानौ झूठी बाता। या में खैहौ जम की लाता॥
सत सत लोक राह चढ़ि जाई। तब यह जीव मुक्ति को पाई॥
राम राम की झूठी आसा। गये राम कहे जम की फाँसा॥

अर्थ–तुमको यह कहते शर्म नहीं आई है, इसे अपने ही मन से पूछो! इस प्रकार, इसे तुम अपने ही मन से समझो और भलीभांति विचार करो तभी बात समझ में आएगी। करोड़ो ऋषि-मुनि उन्हें जपते हैं और करोड़ों तपस्वी उन्हें जानते हैं करोड़ों ने उन्हें अपना इष्टदेव बनाया है–एक राम के लिए सभी ने संकल्प धारण किया है किन्तु यदि राम-राम कहकर सारा संसार तरता तो पुन: भवसागर में कोई न पड़ता। जो तुम कहते हो, उस पर मुझे विश्वास है कि सत्युग में सत्य की प्रतिष्ठा थी। जब उस सच्चे युग का विश्वास नहीं कर रहे हो तो कलियुग की झूठी बातें कौन कहे। काल रूप राम की उत्पत्ति मन में है–इस राम (काल) ने किसी को भी नहीं तारा होगा। जब सत्युग में राम कहने पर कोई नहीं उद्धार पा सका तो लगता है–सारे जीव भवसागर में पड़े हैं। तुम तो कहते हो कि राम सभी में हैं और वह चारों युगों में समाविष्ट रहा है। यदि राम इन युगों में विराजमान था तो देखो, तुम्हारा कार्य कैसे-कैसे सम्पन्न हुआ। राम तो युगों की खान में रहा फिर तुम्हारे लिए मुक्ति कैसे भेजी।

इन सारी बातों को तुम असत्य समझो–इसी में तुम यमराज के लातों से मारे जाओगे। जब सत्य के सत्य लोक की राह पर यह जीव चढ़कर जाएगा तो उसे मुक्ति मिलेगी। राम की आशा मिथ्या है और राम की आशा लगने वाले सभी यमराज के रास्ते पर गए हैं।

॥ प्रश्न गुनुवाँ ॥ चौपाई॥

तुम पुनि राम राम कस कहिया। सब ग्रंथन में साखि सुनैया॥

अर्थ–(यदि यह सत्य है तो) आप स्वयं राम राम क्यों कहते रहते हैं और फिर सारे ग्रन्थों का भी प्रमाण देते रहते हैं।

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

जग अबूझ कारन हम गाई। जो करै इष्ट राम से भाई॥
जो हम न्यारा भेद सुनावैं। जो जग माहिं रहन नहिं पावैं॥
ता से न्यारा भेद न भाखा। संत भेद हम गुप्तै राखा॥
भेद ग्रंथ में गुप्त लखावा। पुनि काहू की दृष्टि न आवा॥
हमने भाखा अगम अलेखा। जा कौ मरम न जानै भेषा॥
हम सतपुरुष अलख लखवावा। बेद न भेद भेष नहिं पावा॥

अर्थ–इस अज्ञात सृष्टि के कारणों को मैं बताता हूँ कि जो राम से इष्ट का सम्बन्ध बनाता है–उसका हम विलक्षण भेद बताते हैं, वह इस संसार में रहने नहीं पाएगा। इससे हमने उसके विलक्षण भेद का वर्णन नहीं किया है और हमने सन्तों का भेद गुप्त रखा है। ग्रंथों में उनका भेद गुप्त है और उन पर फिर किसी की दृष्टि नहीं जाती। हमने अगम्य और अलक्ष्य का वर्णन किया है, उसका रहस्य के बेष रचना वाले नहीं समझते। हमने अलक्ष्य सत्पुरुष को दिखाया है किन्तु उसका रहस्य न वेद, न वेष रचनावले जानते हैं, ऐसा धर्मज्ञ समझते हैं।

॥ प्रश्न गुनुवाँ ॥ चौपाई ॥

स्वामी एक मोहिं समझाई। गुजरी सिला को कहौ बुझाई॥
सब भाखैं जल में जो तरिया। या बिधि कहौ मोर मन भरिया॥

अर्थ–हे स्वामी! एक बात मुझे समझाइये-जल में तैरती हुई शिला के विषय में समझाइए। सभी कहते हैं कि वह जल पर तैरती थी। इसे इस प्रकार बताएँ कि मेरे मन को विश्वास हो उठे॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

या की मैं परतच्छ बताई। देखौ जाइ नजर से भाई॥
या की बिधि मैं तुरत बताऊँ। ज्यों बजार सौदा समझाऊँ॥
जस बजार में सौदा लीन्हा। परख तोल दाम तेहिं दीन्हा॥
अपने मन में साँची आई। पैसा दीन्ह गाँठि बँधवाई॥
ऐसा परचा ततत्रर पेखौ। अपने नैन नजर से देखौ॥

अर्थ–हे भाई! मैंने इसकी प्रत्यक्षविधि बताई है और उसे जाकर अपनी दृष्टि से देखो, मैं सभी विधि तुरन्त बताता हूँ–जैसे बाजार में खरीददारी के लिए सौदे की तालिका। जैसे बाजार में कोई सौदा खरीदता है तो तौल को परखकर उसका मूल्य देता है। जब अपने मन में विश्वास हो उठता है तो पैसा देकर खरीदे गए सामान को बाँधवाकर गठरी बँधवा लेता है। ऐसा ही, ठीक परिचय उस परम तत्त्व का प्राप्त करो और अपने नेत्रों से उसे यथार्थ रूप में देखो॥

वोहि पानी वोहि पत्थर होई। वोहि पुनि राम लिखावौ सोई॥
राम लिखौ पत्थर के माई। पानी डारि देखि लो भाई॥
जो पत्थर पानी नहिं बूड़ा। तौ तुम जानौ राम अगूढ़ा॥
पत्थर डूबै राम लिखे से। तौ तुम बुड़िहौ राम कहे से॥
ततवर करौ नजर से पेखौ। ये तो आज आँख से देखौ॥

संसय सोग सब झारि निकारौ। ले पत्थर पानी में डारौ॥
जो जल पत्थर रहि उतरानी। सिल गुजरी की साँची मानी॥
बूड़ै पत्थर राम लिखाना। अपने बूड़न की अस जाना॥
एक बिधी मैं और बताई। ता से देखौ सत्त बनाई॥
राम राम जेहि तुमहिं दृढ़ाओ। ले पत्थर वोहि हाथ लिखाओ॥
सोइ पथ्थर वोहि हाथ डरावै। जो बूड़ै झूठे कर गावै॥
नहिं तो और बिधी इक भांखौं। जैसी बिधी जुगत करि ताकौ॥
राम राम जग कहै अनेका। राम इष्ट जेहि जेहि करि देखा॥
सोइ सोइ हाथ सभन लिखवावौ। पत्थर लिखि पानी सोइ नावौ॥
एक एक बिधि बिधि से डारी। ये परचा सब देखौ झारी॥

अर्थ—वही पानी और वही पत्थर आज भी है और उस पत्थर पर वही राम शब्द आज भी लिखवा दो। पत्थर के ऊपर राम लिखकर उसे पानी में डालकर आज तुम देख लो। आज वह पत्थर यदि पानी में नहीं डूबता तो समझ लो कि राम अज्ञेय ब्रह्म तत्त्व है। यदि पत्थर पर राम लिखने से पत्थर डूब जाता है तो तुम भी राम कहने से भवसागर में डूब मरोगे। उस परमतत्त्व को दृष्टि का विषय बनाकर उसे तुम आँखों से देखो। जो भी तुम्हारे अन्तःकरण में संशययोग है, उसे झाड़ कर निकाल दो और पत्थर को लेकर उसे पानी में डाल दो। यदि पत्थर जल के ऊपर उतराया रहा तो तैरने वाले पत्थर की बात सच समझो। राम लिखा हुआ पत्थर का डूबना तुम अपने को भवसागर में डूबना जैसे समझो।

मैं अब एक दूसरी विधि बतलाता हूँ, उससे तुम सत्य को वैसा करके देखो। जिस राम को तुम स्थिर तत्त्व के रूप में बताते हो उस पत्थर को लेकर आपने ही हाथ से लिखो। उसी पत्थर को उसी हाथ से डालो और यदि डूबता है तो स्वीकार करो कि यह कथन झूँठा है। यदि इस पर भी विश्वास नहीं है तो मैं एक अन्य विधि बतला रहा हूँ। यह जैसी विधि है, उसी प्रकार उसके लिए युक्ति करो। संसार में अनेकानेक व्यक्ति राम राम कहते हैं—और जिस भी व्यक्ति के इष्टदेवता राम हैं उन्हें देखो, उन सभी को हाथों से पत्थर पर 'राम-राम' लिखवा लो और उन्हें पानी में डाल दो। क्रमशः एक एक करके उन्हें पानी में डालो और यह कार्य करके उनके परिणाम को देखो॥

या मै कोई परतीती होई। सब का परचा भिन भिन जोई॥
या मैं रहै भरम इक साथा। ये लिखि देखौ अपने हाथा॥
तुलसी पत्र की बिधी बताई। सोई बृच्छ बहुत जग माई॥
पत्र तोड़िकै परचा पेखौ। लिखि वोहि राम पत्र धरि देखौ॥
पत्र तोल में हलुक उठाना। तौ यहि बिधि झूठी करि जाना॥

अर्थ—सबके जो भिन्न-भिन्न पत्थर हैं, उनमें भी कोई विश्वास उत्पन्न होना चाहिए और इनमें भ्रम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है—चाहे उन्हें अपने ही हाथों से लिखकर ही तुम देख लो। तुलसीदास कहते हैं, वह पत्र की विधि भी बतलाते हैं और पत्रों के लिए तो बहुत-सारी विधियाँ हैं। वृक्ष के पत्रों को तोड़कर देखो और उस पत्र पर राम लिख करके उसे देखो। यदि पत्र पत्थर की तौल में हल्का पड़े तो समझ लो कि राम नाम शब्द में कोई गुरुता नहीं है और इस प्रकार राम नाम के इस रूप को झूँठा समझो।

॥ गुनुवाँ उवाच ॥ चौपाई ॥

तुलसी स्वामी सुनु बिख्याता। ये सब वाहि समय की बाता॥
वाहि समय में यह बिधि होती। आज कलू नहिं होइ यह भोती॥
रामराम जपि सिव अबिनासी। ये भी वाहि समय की बाती॥

अर्थ–हे स्वामी तुलसी साहब! इस विख्यात बातें उस समय की हैं। उस समय में यही विधि थी। आज कलियुग में, यह काम कहाँ सम्भव है। शिव भी राम नाम जप कर अविनाशी हो गए, ये सब उस समय की बातें हैं।

॥ प्रश्न तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

राम राम कौने बिधि कहिया। जा से सिव अबिनासी भैया॥
मुख से जप कीन्हा कछु औरी। ये गुनुवाँ बिधि कहौ बहोरी॥

अर्थ–उन्होंने राम राम किस विधि से कहा था, जिसके कारण शिव अविनाशी हो गए। उन्होंने अपने मुख से अन्य प्रकार का जप किया था, हे गुनवाँ मैं उसका वर्णन पुनः कहता हूँ॥

॥ गुनुवाँ उवाच ॥ चौपाई ॥

गुनुवाँ कहै सुनो हो स्वामी। मुख से जपि जपि राम बखानी॥
महादेव ने मुख जप कीन्हा। ये भया वाहि समय का चीन्हा॥

अर्थ– गुनुवाँ ने पुनः कहा कि हे स्वामी सुनें। मुख से राम-राम का जप करके उनका वर्णन किया। महादेव शिव ने राम का मुख से जप किया–यह तो उस समय के प्रमाण की बात है॥

॥ बचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

या में राम बड़ा नहिं होई। ये तो समय बड़ा भया सोई॥
राम कहे सिव नहिं अबिनासी। वे भये समय भाव बिधि बासी॥
ये तो समय बड़ा बिधि भाखी। राम बड़ा कहो केहि बिधि राखी॥
राम बड़ा जब जानै भाई। जल में पत्थर आज तराई॥
उनको बड़ा जबै हम जानें। आज लिखै पत्थर उतराने॥
समय भाव पत्थर उतराई। कहौ राम की कौन बड़ाई॥
कहौ राम से मुक्ति बताई। पुनि फिरि ले समया ठहराई॥
कभी राम को बड़ा बतावौ। कभी लेइ समया ठहरावौ॥
एकहि बात सत्त ठहरावै। तब सत हमरे मन में आवै॥

अर्थ–इस संदर्भ में राम बड़े नहीं होते और तुम्हारे कहने से यहाँ समय बड़ा है। राम कहने से शिव अविनाशी नहीं हुए, वे उस समय के प्रभाव से उस प्रकार के हुए हैं। मैं तो राम को तभी बड़ा मान सकता हूँ–जब आज की वे जल में पत्थर तैरा दें। उनको आज मैं तभी बड़ा समझूँगा जब पत्थर पर राम लिखने से वह आज भी उतरा चले। यदि समय के कारण पत्थर जल में उतराता है तो बताओ राम का क्या बड़प्पन है (यह तो समय का बड़प्पन है)। अभी तुमने राम से जोड़कर मुक्ति की बात कही है और फिर उसके बाद समय की बात करने लगे। तुम कभी राम को बड़ा कहते हो और कभी समय को बड़ा ठहराते हो। दो में से किसी एक बात में सत्य की स्थापना करो, तब मेरे मन में सत्य के प्रति निष्ठा उत्पन्न होगी।

॥ दोहा ॥

एक कहै दूजी कहै, दो दो कहै बनाय।
ये दो मुख का बोलना, घने तमाचे खाइ॥

अर्थ–पहले एक की बात कहते हो, फिर दूसरी बात बनाकर कहते हो और इस प्रकार एक सत्य के लिए दो-दो बातें करने वाला तमाचों के गहरी चोटें खाता है॥

॥ चौपाई ॥

॥ संवाद साथ गुनुवाँ बेटा हिरदै अहीर के ॥

कहै तुलसी सुन गुनुवाँ भाई। समय बड़ा कै राम बड़ाई॥
या में एक सत्त करि भाखौ। एक बात झूठी करि राखौ॥
जो तुम कहौ राम सब तारा। परचा देखि न कहै लबारा॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे गुनुवाँ भाई! सुनो, समय बड़ा है कि राम बड़े हैं–इन दोनों में एक ही बात को सत्य समझो और दूसरी बात को झूँठी समझो। यह जो तुम कह रहे हो कि राम ने सबका उद्धार किया। परिचित तथ्यों को देखकर लबार भी ऐसी बातें नहीं कहते।

ऐसी बड़ी राम गति जेही। समया झूठ ताहि कर देई॥
राम से समय बड़ा है भाई। कहौ राम की कौन बड़ाई॥
समया झूठ राम करि डारै। ऐसी कहौ तो साँच बिचारै॥
समय राम की कला उड़ाई। तुम जपि मुक्ति कौन बिधि पाई॥
अपनी मुक्ति खोज नहिं पावौ। राम राम कहि जगत दृढ़ावौ॥
जो सच्चा तुम राम सुनावौ। तौ पत्थर पानी में नावौ॥
जब जानैं वोहि सच्चा रामा। पानी पत्थर आज तिराना॥
अपनी देखी कहौ न भाई। मुए गये की बिधी बताई॥
साँचा सोई मिलै जो आजी। मूए मुक्ति बतावै पाजी॥
जीवत मिलै सोई मत पूरा। मूए कहै समझ सोइ धूरा॥
अब सुन आगे बिधी बताऊँ। महादेव की बिधि समझाऊँ॥
महादेव राम नहिं जपिया। ये साखी झूठी तुम कहिया॥

अर्थ–इसका प्रमाण देखो, इसे लबार ही कहा है, यदि ऐसी ही बड़ी गति राम ने की है तो समय को तुम क्यों बड़ा कह रहे हो। हे भाई! यदि राम से समय बड़ा है तो बताओ की राम की श्रेष्ठता कैसी है? समय ने राम को भी झूँठा बना डाला है, यदि ऐसी बात है तो पंच लोग इस पर विचार करेंगे। समय ने राम की सम्पूर्ण आध्यात्मिक कलाओं को गायब कर दिया है फिर राम को जपकर तुम किस प्रकार मुक्ति प्राप्त करोगे। जब तुम अपनी मुक्ति नहीं खोज पा रहे हो फिर क्यों राम-राम कह कर उसमें संसार को फँसा रहे हो। यदि तुम राम को सत्य कहते हो तो उनका नाम पत्थर पर लिखकर उसे पानी में डालो। आज जब पानी के ऊपर पत्थर तैर जाए तो समझो कि उनका नाम सत्य है। उन राम के नाम तो तब सत्य जानो, जब पत्थर आज पानी के ऊपर तैर जाए।

हे भाई! अपनी स्थिति देखकर बातें न कहो, तुम तो बीते हुए समय और मृत्यु कवलित की बात कहते हो। सत्य वह है, जो आज प्राप्त हो और जो दुष्टजन हैं, वे मरने के बाद मुक्ति की बात कहते हैं।

जीवत-मुक्ति यदि मिले तो वही सत्य मत है, और कोई धूर्त ही मृत्यु के बाद उसे बताता है।

अब तुम ध्यान देकर सुनो, मैं उसकी विधि बतलाता हूँ और शिव के रहस्य को भी समझा रहा हूँ। महादेव शिव ने राम का जप नहीं किया था और यह बात तुम असत्य ही कह रहे हो।

महादेव तो जोग कमाया। राम राम जोगी नहिं गाया॥
उन अपनी इंद्री मन जीता। मुद्रा साधी पाँच पुनीता॥
स्वांसा साधि गगन मन धावा। उन साधि कै गगन लगावा॥
चाचरि भूचरि भावक जानी। खेचरि मिलियों पाँच बखानी॥
आगे अगोचरि साखी सुनाऊँ। ऐसे जोगी जोग जनाऊ॥
जोग किया जब भये अबिनासी। राम राम कहे काल की फाँसी॥
करि के जोग उन जोति समाने। जोति दृष्टि मुक्ती पद जाने॥
मुक्त भोग भोग भया भाई। पुनि फिरि फिरि चौरासी पाई॥
संत मते की राह न जानी। या से भरमे चारो खानी॥

अर्थ–महादेव ने योग की साधना की और कोई योगी राम-राम नहीं कहता। वे अपने मन तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करते हैं और अपनी पाँच पवित्र मुद्राओं को साधते हैं। श्वास को साध कर मन को शून्याकाश में दौड़ाते हैं और उसे साधकर मन को आकाश में रमा देते हैं। उनकी मुद्राएँ चाँचरि, भूचरि, भावक, खेचरि तथा सबका समन्वय में पाँच रूपों में समझो। आगे में, उनकी अगोचर मुद्रा का साक्ष्य सुना रहा हूँ–और इनके द्वारा मैं योगियों के योग की चर्चा कर रहा हूँ। शिव ने जब योग साधना की तो वे अविनाशी बन गए। इसलिए राम-राम कहना गले में काल का फंदा डालना है। योग करके वे ज्योति में समाविष्ट हो उठे। इसलिए ज्योति स्वरूप की मुक्ति समझो।

यदि योग से युक्त व्यक्ति पुनः भोग में प्रवृत्त होता है, वह पुनः पुनः चौरासी योनियों को प्राप्त करता है। संत के मत का मार्ग इन्होंने नहीं जाना है, इसलिए ये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की चारों स्थितियों में भकटते रहते हैं।

॥ प्रश्न गुनुवाँ ॥ चौपाई ॥

हे स्वामी तुम सत्त बताई। सब मोरे मन में आई॥
एक बिधी मोहि बरनि सुनावौ। बालमीकि बिधि साखी बतावौ॥
अजामील गति कैसी भैया। सो बिधि मो को बरनि सुनैया॥

अर्थ–हे स्वामी! आपने सच कहा है, यह बात मेरे मन में उतरी है। यह एक विधि उन्हें वर्णित करके सुनाएँ। वाल्मीकि के रहस्य का साक्ष्य बतायें। अजामिल की मुक्ति गति कैसे हुई और यह भी प्रक्रिया मुझे समस्या कर बताएँ॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

कहै तुलसी सुन गुनुवाँ बाता। बालमीक की सुन बिख्याता॥
बालमीक जप उलटा कहिया। उलटा जपत मुक्ति नहिं भैया॥
सूधा जपि जपि जन्म सिराना। मुक्ती को सुपने नहिं जाना॥
उलटा जपत मुक्ति जो होती। सुलटे मिलन जपा जप थोथी॥
जीवत मुए मुक्ति नहिं पाई। ये जग झूठी जाल बिछाई।

अजामील का भाखौं लेखा। सुन गुनुवाँ अपने मन पेखा॥
नारायन जेहि सुत का नामा। ता कौ मोहँ बंध बस जामा॥
अपने सुत से मोह जो कीन्हा। मरते नाम नरायन लीन्हा॥
मुक्ति भी अस कहैं बुझाई। या की बिधि कहूँ समझाई॥
जग में पुत्र सभन के होई। राम कृष्ण नारायन सोई॥
गोबिंद नाम गोपाल मुरारी। येहि बिधि पुत्र नाम जुग चारी॥
मोह बंध बस नाम पुँकारी। नाम पुत्र जग होत उबारी॥
येहि बिधि मुक्ति होत जो भाई। तौ भौ में जिव एक न जाई॥
ये सब जानौ झूठी बाता। राम काल जिव कीन्हा घाता॥
और तुमने ध्रू मुक्ति बतवा। सो तै गगन दृष्टि में आवा॥
ध्रू तारे की मुक्ति बतावौ। सब तारे की विधि समझाओ॥
तारा गगन मुक्ति जो होती। तारा टूट गिरै भुँइ जोती॥
जो तुम ध्रू को अटल बताया। गगन फूटि ध्रू कहाँ समाया॥
पाँच तत्त को होइहै नासा। कहौ ध्रू ने कहँ कीन्हा बासा॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे गुनुवाँ मेरी बातें सुनो। वाल्मीकि की प्रसिद्ध बात मुझसे सुनो। वाल्मीकि ने उलटा जप किया। उस उलटा जप से उन्हें मुक्ति नहीं मिली थी। सीधा जपते-जपते उनका सारा जन्म बीत गया और इस मुक्ति को स्वप्न में भी नहीं समझा। यदि उलटे नाम के जपने से किसी की मुक्ति होती तो सीधे जप से मुक्ति मिलने की बात थोंथी अर्थात् झूँठी है। जीवित रहने पर तो वाल्मीकि को मुक्ति नहीं मिली और उनके विषय में कही गई थे बातें असत्य हैं।

अब मैं अजामिल की बात कहता हूँ और हे गुनुवाँ? तू अपने मन में विचार करके देखो। उसके पुत्र का नाम नारायण था। उसके मोह में उसका समय बँधा था। उसने अपने पुत्र से जो मोह कर रखा था, इसीलिए मृत्यु के अन्तिम क्षण में उसके नारायण का नाम लिया। सभी यही समझ कर बताया गया है।

संसार में सभी के पुत्र होते हैं और उनके नाम भी राम, कृष्ण तथा नारायण रखे जाते हैं। गोविन्द, गोपाल, मुरारी आदि नाम चारों युगों में हमें मिलते हैं। मोह से बँधा हुआ व्यक्ति जब नाम की पुकार करता है तो क्या पुत्र का नाम लेने से संसार से उद्धार हो उठता है और हे भाई! यदि इस प्रकार से मुक्ति होती एक भी जीव भवसागर में न जाता॥

इन सारी बातों को तुम झूँठ ही समझो राम रूपी काल हमेशा जीव की मृत्यु का कारण बनता है। इसके अतिरिक्त तुमने ध्रुव की मुक्ति का वर्णन किया है और उसी से वह आकाश में 'ध्रुवतारा' बनकर लोगों की दृष्टि में आता है। तुमने ध्रुवतारे की मुक्ति बतलाई है, अन्य तारों का भी रहस्य समझाओ। यदि आकाश में तारे के रूप में किसी की मुक्ति होती तो तारा टूटता है और उसका प्रकाश पृथ्वी पर गिर पड़ता है। यदि तु ध्रुव को अटल बताते हो तो आकाश से टूटने पर वह पृथ्वी में कहाँ समा जाता है। जब पाँचों तत्त्वों का विनाश अनिवार्य है तो बताओ, ध्रुव ने स्वामी निवास कहाँ कर रखा है?

॥ दोहा॥

चंद्र मरै सूरज मरै, मरिहैं जमीं अकास॥
ध्रू पहलाद भभीषना, परे काल की फाँस॥

अर्थ–चन्द्रमा मृत्यु को प्राप्त होगा, सूर्य नष्ट होगा, पृथ्वी और आकाश भी मरणधर्मा हैं और इन्हीं की भाँति ध्रुव, प्रह्लाद तथा विभीषण भी मृत्यु के फंदे में फँसें थे॥

॥ चौपाई ॥

सुन गुनुवँ. सब बिधी बताई। ये सब की तोहि भाखि लखाई॥
अब पहलाद का भाखौं लेखा। सो तुम सुनकर करौ बिबेका॥

अर्थ–हे गुनुवाँ! सुनों, मैंने सारी बातें बता दी है–और सारी बातों को कहकर दिखा दिया है। अब मैं प्रह्लाद की बात कह रहा हूँ और उसे सुनकर तुम उस पर विचार करो।

दस औतार काल के भाई। तामे नरसिंघ है दस माहीं॥
हरनाकुस का उदर बिदारा। य जानौ सब काल पसारा॥
वे दयाल एक सब माहीं। वो कहौ केहि का मारन जाई॥
हरनाकुस कौ मारि बिदारा। पुनि पहलाद राज बैठारा॥
राजभोग जिन कीन्हा भाई। सो तेहि पुत्र बिलोचन गई॥
वे लोचन केवलि भयौ सोई। जा को बावन बाँधे जोई॥
जो मुक्ती वा की होइ जाते। बली छुड़ावन केहि विधि आते॥
आवांगवन मुक्ति नहिं भाई। बली छुड़ावन कस कस आई॥
भागवत में देखौ यह साखी। बली काज आये अस भाखी॥
जो प्रहलाद मुक्ति को जाता। आवागवन केहि कारन आता॥
सहाय करी नरसिंघ बतावा। पिता मारि राज जिन पावा॥
राज करै सो नरकै जाई। कस कस ता की मुक्ति बताई॥

अर्थ–काल के दस अवतार हैं और इन दसों में एक नरसिंह हैं इन्होंने हिरणाकश्यप का हृदय विदीर्ण किया था–जिसे समझो कि यह सब काल का प्रसार था। सब में एक भाव से रहने वाले परमात्मा अत्यन्त उदार हैं और बताओ वह किसी को क्यों मारने जाएँगे। हिरणाकश्यप को मार कर विदीर्ण कर दिया और पुनः प्रह्लादको राजगद्दी पर बैठाया। हे भाई जिन प्रह्लाद ने राजभोग किया और उनके पुत्र विलोचन हुए। वह तो बिना आँख (बुद्धि) के हुए और जिसको बावन ने बाँध लिया। यदि उसकी भी मुक्ति हो जाती तो राजा वलि उसे बन्धनमुक्त करने क्यों जाते? उनकी आवागमन (जन्म-मृत्यु) से मुक्ति नहीं हुई और यदि हो जाती तो बलि उन्हें बन्धन मुक्त करने के लिए क्यों जाते। भागवत पुराण में इस साक्ष्य को देखो, वहाँ कहा गया है कि मुक्ति दिलाने के लिए बलि आए थे। यदि प्रह्लाद की मुक्ति हो जाती तो यह आवागमन क्यों बना रहता। कहा गया है कि नरसिंह ने प्रह्लाद की सहायता की और उनके पिता हिरण्यकश्यप मारे गए तथा उन्होंने राज्य प्राप्त किया। जो राजभोग करता है, वह नरक में जाता है– फिर उसकी मुक्ति कैसी! यह गलत है।

जो नरसिंघ जिवत ले जाता। तौ ता की हम मानैं बाता॥
राज थापि तेहि भोग करावा। भोग भोग भौ खानैं आवा॥
ता की मुक्ति साखि बतलावौ। कहि झूठी झूठी समझावौ॥
सुवा पढ़ावत गनिका तारी। सहजै होत ज्क्त सब मुक्ती॥
सुवा सुवा घर घर में होते। तौ मुक्ती का सोच न करते॥

ध्रू तप की तुम साखि बताई। गोपीचंद भरथरी भाई॥
पढ़ पढ़ सुवा मुक्ति जो होते। तौ पुनि राज काहे को तजते॥
ध्रू को तप की बिधी बताया। राजछाँड़ि तन खाक मिलाया॥
गनिका मुक्ति सहज बतलावौ। ध्रू जी राज गये किमि गावौ॥
कभि सुवा पढ़ते सहज बतावा। कभि कभि कष्ट तपस्या गावा॥
ये तौ बिधी मिली नहिं भाई। ये सब झूठ झूठ सी गाई॥

अर्थ–यह नरसिंह उन्हें 'जीते जी ले जाते' तब हम उनकी बातें मान लेते। नरसिंह ने उन्हें राज्य देकर भोग कराया और भोग से तो व्यक्ति भवसागर के खानि में प्रवेश करता है। तुम उनकी मुक्ति की साक्षी दो और अपनी झूठी-झूठी बातें कह कर समझाओ जो अविश्वासनी हैं।

ईश्वर ने यदि तोते को पढ़ाती हुई गणिका का उद्धार किया तब तो संसार के लोगों की सहज की मुक्ति हो जाती। सारे तोते घर-घर में पाले जाते और कोई व्यक्ति मुक्ति की चिन्ता न करता। तुमने ध्रुव के तपस्या की साक्षी दी है, इसी तरह गोपीचन्द और भरथरी भी थे क्या? यदि तोते के रामनाम पढ़ते ही सुनते वालों की मुक्ति होती–तो (भरथरी तथा गोपीचंद आदि) राज्य को क्यों त्यागते (तोता ही पाले रहते)। तुमने ध्रुव की तपस्या विधि का एक ओर वर्णन किया और बताया कि राज्य छोड़कर शरीर को मिट्टी बना डाला। दूसरी ओर, बिना श्रम के सहज ही गणिका की मुक्ति की बात करते हो और दूसरी ओर कहते हो ध्रुव राज्य छोड़कर जंगल में गए। कभी-कहते हो मुक्ति तोता के रामनाम कहने मात्र से सहज हो जाती है और कभी-कभी तपस्या के कष्टों का गान करते हो। ये दोनों विधियाँ मेल नहीं खातीं, लगता है, ये बाते झूठमूठ की ही कही गई हैं।

॥ सोरठा॥

सुन गुनुवाँ ये बात, राम काल जग में फँसा॥
बसा करम के माहिं, लसा खानि चारौ भरी॥

अर्थ–गुनुवाँ मेरी यह बात सुनो, राम काल के रूप में ये संसार में फँसा है, वह कर्मों के मध्य में निवास कर रहा है, और सभी कर्मों के भवसागर की खानि में स्थित है।

॥ गुनुवाँ उवाच॥ चौपाई॥

हे स्वामी सत सत तुम भाखी। समझि परा बूझी सब साखी॥
ये सब काल जाल कर लेखा। अपने मन में किया बिबेका॥
पुनि गुनुवाँ बोला अस बानी। महूँ आप चरनन लपटानी॥
चरन दास जानौ मोहि चेरा। किरपा दृष्टि मोहिं तन हेरा॥
मैं पुनि रहौं चरन के लारा। जीव काज मम करौ सुधारा॥
अब मैं सरन आपु की लीन्हा। राम काल धोखा यह चीन्हा॥

अर्थ–हे स्वामी! आपने सही-सही कहा है, आपके सारे साक्ष्यों को समझ लिया है। ये सब काल के जाल के संदर्भ हैं, ऐसा अपने मन द्वारा मैंने समझ लिया है। फिर, गुनुवाँ इस प्रकार से कहा कि मैं भी के चरणों में पड़ रहा हूँ। मुझे भी आप अपने चरणों का दास और किंकर समझें और मेरी ओर कृपा-दृष्टि करके देखें। मैं अब तो आपके चरणों में ही संसक्त रहूँगा। मेरी जीवात्मा के सुधार के लिए कोई उपाय करें। अब मैंने आपकी शरण ले ली है और यह पहचान लिया है कि राम काल हैं और और संसार के लिए भ्रम उत्पन्न करने वाले भी।

॥ बचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

अब तुलसी अस करी बखानो। हिरदे की संगत पहिचानो॥
निस दिन हिरदे संग निहारौ। हिरदे से होइहै निरबारौ॥
मन को थिर कर बूझौ बाता। मन थिर बिना न आवै हाथा॥

अर्थ–उसे सुनकर तुलसी साहब ने यह कहा कि अपने पिता हिरदे की सत्संगति समझो। प्रतिदिन हिरदै के साथ रहकर उन्हें देखो और पिता हिरदै द्वारा ही आपको हल प्राप्त होगा। मन को स्थिर करके बातें समझो। बिना मन को स्थिर किये, कोई बात समझ में नहीं आएगा।

इन्द्री मन थिर सूरति हेरो। तब भौजल से होइ निबेरो॥
ये हिरदे रहै हमरे पासा। तन मन बिधी रहो येहि दासा॥
ये सत संगत सगरी जानी। या से प्रीति करौ पहिचानी॥
हिरदे का तुम भेद न पाई। सूरति पाइ चरन चित लाई॥
या से पिता भाव नहिं मानौ। सूरति सैल चरन में आनौ॥

अर्थ–इन्द्रिय एवं मन को स्थिर करके सुरति समाधि को खोजो, तभी इस भवसागर से निवृत्ति होगी। यह हिरदे हमारे पास रहेंगे और शरीर, मन से विधिपूर्वक तुम इनके दास बने रहो। इन्होंने सत्संगति द्वारा सब कुछ समझ लिया है, इसलिए इन्हें भलीभाँति पहचान करके इनसे प्रेम करो। अपने पिता हिरदै का रहस्य तुम समझ नहीं पाये, इनसे सुरति समाधि तत्त्व पाकर इनके चरणों में चित्त लगाना। इन्हें अब पिताभाव से न स्वीकार करें और इनके चरणों में ही सुरति समाधि के दुर्गम शिखर को ले आओ।

॥ हिरदे उवाच ॥ चौपाई ॥

तब हिरदे बोला अस बानी। अब चालन घर कहूँ बखानी॥
ये गुनुवाँ परसाद कराऊँ। पुनि सिर नाइ चरन में धाऊँ॥
अस कहि दीन डंडवत कीन्हा। चरन पाइ मारग को लीन्हा॥

अर्थ–तब हिरदै ने ऐसी बात कही कि अब घर चलने के लिए आज्ञा दें। इस गुनुवाँ से प्रसाद आदि करा कर पुनः सिर झुकाकर इसे चरणों में ध्यान करने के लिए कहूँ। ऐसा कहकर उस गरीब ने दण्डवत् किया और चरण स्पर्श करके अपना मार्ग थाम्हा॥

॥ प्रश्न गुनुवाँ ॥ चौपाई ॥

तुलसी स्वामी अरज हमारी। किरपा करौ कहौ निरवारी॥
हिरदे की मोहिं बिधी बताई। हिरदै पार समझ मोहिं आई॥
अस बिस्वास मोर मन आवा। या की गती कहौ परभावा॥
मैं स्वामी निज दास तुम्हारा। ये कहिये बूझौं निज सारा॥

अर्थ–हे स्वामी! तुलसी साहब! मेरी एक प्रार्थना है, आप कृपा करके इसका निराकरण करें। आपने हिरदै की विधि मुझे समझा दी और वह हिरदै के आगे है, ऐसा मेरी समझ में आया है। इस प्रकार का विश्वास भाव मेरे मन में उत्पन्न हुआ है, उसके ज्ञान और प्रभाव का वर्णन करें। हे स्वामी मैं आपका दास हूँ–मुझे उसे बताएँ–जिससे मैं इसके सार तत्त्व को समझूँ॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब चौपाई ॥

तब तुलसी बोले यहि भाँता। हिरदे भेद सुनाऊँ बाता॥
इन सतसंगति बहु बिधि कीन्हा। संत चरन में रहे अधीना॥
दीन बिधी और गुरुमत लीन्हा। संत चरन घट अंतर चीन्हा॥
सूरति लीन अधर रस माती। का पूछौ हिरदे की बाती॥
सतसंगति बिधि सगरी जाना। सूरति सैल फोड़ि असमाना॥
दस दिस पार सार सब जाना। नौलख कँवलपार पहिचाना॥
मानसरोवर बेनी तीरा। जल प्रयाग बहै निरमल नीरा॥
ता में न्हाई चढ़े असमाना। सतगुरु चौथे पार ठिकाना॥
निसि दिन सैल सुरति से लेखा। सुरति नाम करे निस दिन मेला॥
अष्ट कँवल दल गगन समाई। सहस कँवल पर तेहि की राही॥
ता के परे चार दल लीन्हा। द्वै दल जाइ दोइ में कीन्हा॥

अर्थ–इसे सुनकर तुलसीसाहब इस प्रकार बोले कि मैं हिरदे को रहस्य की से सुनाता हूँ। इन्होंने अनेक प्रकार से सत्संगति की है और अनेक सन्तों के चरणों के अधीन रहे हैं। दैन्य विधि से इन्होंने गुरुमंत्र लिया है और सन्त चरणों को अपने हृदय में धारण कर रखा है। ये सदा सुरति ध्यान में लीन और अन्तरात्मा के रस में मस्त रहे हैं–तुम हिरदे की क्या बातें पूछ रहे हो। सत्संगति द्वारा इन्होंने सम्पूर्ण रहस्यों को समझ लिया है सुरति के शिखर को तोड़कर इन्होंने शून्याकाश में समाधि ली है। इन्होंने वहाँ दसों दिशाओं का सार तत्त्व और उसके पार के रहस्य को समझ लिया है और उस पर स्थित नौ लक्ष्य दल वाले कमल को पहचान रखा है। मानसरोवर के पार त्रिवेणी के तट पर प्रयाग भूमि में निर्मल जल बहता है, उसमें स्नान करके शून्याकाश में इन्होंने प्रवेश किया है–जहाँ चौथे पद के पार सत्गुरु का स्थान है? ये रात-दिन सुरति शैल पर क्रीड़ा करते रहते हैं और प्रतिदिन नाम और सुरति के बीच मेल मिलाप करते रहते हैं। ये शून्याकाश के अष्टदल कमल में प्रवेश करते हैं–और सहस्त्रदल कमल का मार्ग उसी पर है। उसके पार चार दलों का कमल है।

यहि बिधि रहै दिवस अरुराती। जानै कोइ न इनकी बाती॥
कोउ न भेद जान घर माईं। यह रहै सूरति अधर लगाई॥
ऐसे कई दिवस गये बीती। ता पाछे भइ ऐसी रीती॥
चलि हिरदे पुनि घर को जाई। घर में तिरिया पुत्र रहाई॥
रात बास घर अपने कीन्हा। भोजन कर पुनि कीन्हा सैना॥
पुनि पुनि निसा गई अधराती। चढ़ि गई सुरति सैल रसमाती॥
ता समय तिरिया कीन्ह उपावा। रोग सोग अपना दुख गावा॥
जब हिरदे मन कीन्ह बिचारा। ये गृह साल जाल है न्यारा॥
अस मन में कुछ भई उदासी। पुनि तब से रहे हमारे पासी॥

अर्थ–और फिर उसमें से दो दलों में प्रवेश का मार्ग है, जहाँ ये जाते हैं। इसी प्रकार ये रात दिन रहते हैं और कोई भी व्यक्ति इनकी बातें नहीं समझ पाता था। इनके घर का कोई भी व्यक्ति इनका रहस्य नहीं समझता था और ये हिरदे अपना मन सुरति समाधि में लगाए रहते थे। इसी प्रकार, कई दिन बीत गए–

उसके बाद कुछ ऐसी घटना घटी। हिरदे यहाँ से चलकर घर में गए जहाँ इनकी पत्नी तथा पुत्र थे। रात्रि में इन्होंने अपने घर में निवास किया और भोजन करके विश्राम किया। धीरे-धीरे अर्धरात्रि बीत गई और उनका मन आनन्द से परिपूर्ण सुरति शैल पर चढ़ गया। उसी समय उनकी पत्नी ने कुछ उपाय करके अपने रोग-शोक का वर्णन किया-तब हिरदे ने यह विचार किया कि यह गृह कष्ट का भारी जाल है। ऐसा सोचकर उनके मन में थोड़ी उदासीनता आई और तबसे ये हमारे पास आकर रहने लगे।

॥ गुनुवाँ उवाच ॥ चौपाई ॥

तुलसी स्वामी बिधी बताई। हिरदे की कछु अगम सुनाई॥
हिरदे पार सार गति पाई। तुलसी स्वामी अगम लखाई॥

अर्थ–हे तुलसी साहब! आपने आध्यात्मिक विधि समझाई और अपने हृदय में स्थित अगम्य ज्ञान के विषय में सुनाया। मैंने आपके उपदेश से हृदय के पार स्थित सार तत्त्व को प्राप्त कर लिया और तुलसी साहब आपने तो अगम्य तत्त्व दिखा दिया।

हाल अभ्यास तीनों पंडितों का

॥ नैनू उवाच ॥ चौपाई ॥

इतने में पंडित चलि आई। करो डंडवत परसे पाँई॥
स्यामा नैनू माना नामा। तीनों मिलि बैठे वोहि ठामा॥
पुनि नैनू ने अरज बिचारी। स्वामी तुम चरनन बलिहारी॥
बाम्हन जाति मान मद भारी। स्वामी तुमने लीन्ह उबारी॥
अब मैं अपनी बिधी बताऊँ। स्वामी सुनिये चित कर भाऊ॥
चमकै बीज अरु गगन दिखाई। अंदर स्वामी फैलत जाई॥
पाँच तत्त रंग भिन भिन देखा। कारा पीरा सुरख सपेंदा॥
और जंगाल रंग तेहि माई। तेहि बिधी पाँचौ तत दरसाई॥
ता से सुरति भिन्न होइ खेली। तेहि के आगे चली अकेली॥
सहस कँवल से न्यारी जाई। सेत दीप द्वारे के माई॥
ता से चली निकर होइ न्यारी। देखा सब ब्रह्मंड पसारी॥
नैनू यह बिधि बिधी बताई। तुलसी सन्मुख जाइ सुनाई॥
तुम्हारी कृपा और कछु पैहौं। पुनि चरनन में आनि सुनैहौं॥
हम जड़ जीव बिद्या के माते। बाम्हन जाति बुद्धि में राते॥
पढ़ि पढ़ि कै हम जनम गँवावा। संतन सन्मुख राखि दुरावा॥
मैली बुद्धि ज्ञान मति छोटा। संतन से मन राखा मोटा॥
ता से बिधी भेद नहिं पाई। अब स्वामी तुम सब दरसाई॥
तुम्हरी कृपा नजरि बिधि सारी। बिधि बिधि देख परी गतिन्यारी॥

अर्थ–इसी बीच पंडितगण आ गए और उन्होंने दण्डवत् करके उनके पाँवों का स्पर्श किया। उनके नाम श्यामा, नैनू तथा माना थे और तीनों मिलकर उस स्थान पर बैठ गए। उसके बाद नैनू ने यह निवेदन किया कि हे स्वामी! मैं आपके चरणों की बलि जाता हूँ। मैं जाति का ब्राह्मण हूँ, इसीलिए मेरे मन में

अत्यधिक मान का मद भरा हुआ है—हे स्वामी! आपने उससे मेरा उद्धार कर लिया। अब मैं अपनी दशा आपको बताता हूँ। हे स्वामी! आप ध्यान देकर मेरी भावनाओं को सुनें।

चित्त के आकाश में बिजली चमकती है और शून्याकाश दिखाई पड़ता है और वह अन्दर-ही-अन्दर फैलता जाता है। मैंने पांच तत्त्वों को भिन्न-भिन्न रंगों में देखा है—काला, पीला, सुर्ख, सफेद और एक का रंग हरा (जंगाल) है और इस प्रकार के पाँचों तत्त्व दिखलाई पड़ते हैं। सुरति समाधि में इनसे भिन्न होकर क्रीड़ा की ओर उसके आगे मेरा आत्मचेतना आगे चल पड़ी। फिर वह, सहस्त्रदल कमल से अलग गई और श्वेत दीप के द्वार पर पहुँच गई। फिर उससे भी अलग होकर वह निकल चली और फिर मैंने देखा कि वह सम्पूर्ण ब्रह्मांड में पसरी हुई है। नैनू पंडित ने मुझे इस प्रकार की विधि बताई थी और कहा था कि इसे जाकर तुलसी साहब को सुनाओ।

आपकी कृपा से मैं और कुछ पाऊँगा और आगे का अनुभव आपके चरणों में आकर सुनाऊँगा। हम लौकिक विद्या के घमण्ड में भूले जड़ जीव हैं और जाति के ब्राह्मण है और बुद्धि से पागल हो उठे हैं।

अध्ययन कर-करके ही इसने अपना सम्पूर्ण जन्म गँवा दिया और सन्तों के सामने अपने को छुपाए रहा। मेरी बुद्धि मैली है, ज्ञान तथा मति छुद्र है क्योंकि सन्तों के साथ मैं मोटे मन (दुर्भावपूर्व) रहा। इसके कारण इस रहस्य का निवारण नहीं हुआ और हे स्वामी! अब तो आपने सब कुछ दिखा दिया। आपकी ही कृपादृष्टि मैंने सारा रहस्य समझ लिया और यह ज्ञान नानाभेदों तथा नाना रूपों में मुझे दिखाई पड़ा है॥

॥ स्यामा उवाच ॥ चौपाई ॥

तब स्यामा बोला अति दीना। मन बुधि चित चरनन में लीन्हा॥
तुलसी स्वामी मैं बलिहारी। तुम्हरे चरनन में सुख भारी॥
जिन जिन तुम्हरे चरन निहारा। सो सो उतरे भौजल पारा॥
जो जो चरन और कोउ धरिहैं। भौ के माहिं कभी नहिं परिहैं॥
ये मोरे मन सत कर भापा। तुम्हरे चरन छूटि जम फाँसा॥
हे दयाल तुम किरपा कीन्हा। मेरी सुरति करी लौ लीना॥
होत उजास जोति हिये माईं। छिनछिन सुरति ताहि में लाई॥
जोति फाड़ सूरति गइ आगे। मानौ सुरति द्वार पर लागे॥
द्वार बैठि देखा हिये माईं। चंद और सुरज गगन सब ठाईं॥
घट में देखा अगम बिलासा। सो सब भाखूँ तुम्हरे पासा॥
अब आगे जो परचा पाऊँ। पुनि चरनन में आनि सुनाऊँ॥

अर्थ—इनके पश्चात् श्याम पंडित अत्यन्त दीन होकर बोले, और मन, बुद्धि तथा चित्तपूर्वक उन्हें उनके चरणों में लगाया—हे स्वामी! जिन-जिन लोगों ने आपके चरणों को देखा वे सब भवसागर के पार उतर गए हैं। यह मेरे मन ने सही-सही निश्चित किया है कि आपके चरणों में रहने पर यह यमफाँस, छूट जाएगा। हे दयालु: आपने कृपा की—मेरी सुरति दशा को समाधि में लीन कर दी। हृदय के मध्य ज्ञान ज्योति से प्रकाश हो उठा है और क्षण-क्षण सुरति में उसी मन को लगाकर रहता हूँ ज्योति सुरति समाधि को फाड़कर आगे चली गई मानों वह सुरति शून्याकाश के द्वार पर लग गई है। उस द्वार पर बैठकर हृदय के मध्य यह देखा है कि चन्द्रमा, सूर्य तथा शून्याकाश सभी के सभी अपने स्थानों पर हैं। इस घटाकाश में मैंने अगम्य तत्त्व (निर्गुण तत्तव) की लीला देखी और अब आपके पास आकर उनका वर्णन कर रहा हूँ।

अब इसके बाद की आध्यात्मिक प्रक्रिया का परिचय आपसे प्राप्त करके उससे सम्बद्ध अनुभव को आपके पास आकर सुनाऊंगा।

स्वामी हमें दया नित कीजै। निस दिन चरन सरन रखि लीजै।।
स्वामी हमने अपत्ति बिचारी। तुम दयाल कछुमन नहिं धारी।।
हमने टहल कछू नहिं कीन्ही। तुमने बस्तु अमोलक दीन्ही।।
सास्तर नाहिं न बेदन माहीं। और पुरान येहि जानत नाहीं।।
ब्रह्मा या को अंक न चीन्हा। येहि बिधि औतारन से भिन्ना।।
आतम ब्रह्म से यह गति न्यारी। चीन्है कोई कोइ संत सँवारी।।
संत चरन जोई जिव जाना। ता का आवागमन नसाना।।
संत चरन जो जो चीन्है नाईं। पुनि पुनि चौरासी भरमाईं।।
अस अस समझि परायह स्वामी। सो दयाल किरपा से जानी।।
संतन की गति अगम अपारा। हम पंडित लघु पावैं न पारा।।

अर्थ–हे स्वामी! आप मेरे ऊपर नित्य दया करें और रात दिन के लिए आप मुझे अपने चरणों में रख लें। हे स्वामी! आप हमारी आपदाओं पर विचार करें–आप दयालु है, मन के अन्तर्गत कोई दुर्भाव नहीं रखते। हमने तो आपकी कोई सेवा भी नहीं की है–किन्तु आपने (अनायास ही) अमूल्य वस्तु का दान किया है। जो कुछ ज्ञान आपने दिया है, वह न शास्त्रों में है और न वेदों में तथा पुराण भी इस ज्ञान को नहीं जानते। ज्ञान के इन अर्थों को ब्रह्मा भी नहीं पहचानते और इस प्रकार यह अवतारों के ज्ञान से भिन्न है। आत्मा एवं ब्रह्म से यह गति विलक्षण है। जिसे कोई-कोई ही संत अच्छी तरह से पहचानता है। सन्तों के चरणों में रहकर जो भी व्यक्ति इसे पहचानते हैं उसके जन्म-मृत्यु का आवागमन समाप्त हो उठता है। संतों के चरणों में रहकर भी जो इस ज्ञान को नहीं पहचानता, वह पुन: पुन: चौरासी योनियों में भटकता रहता है। हे स्वामी जी! यह जिस प्रकार से हमने समझा है, वह आपकी कृपा का ही फल है। सन्तों की गति अगम्य एवं अपार है--और मुझ जैसे तुच्छ पंडित उसका पार नहीं पा सकते।

।। माना उवाच ।। चौपाई ।।

माना कहै जोर दोउ हाथा। चरनन माहिं डारि कै माथा।।
स्वामी हम कीन्ही अजगूती। मारन काज कीन्ह मजबूती।।
तुम दयाल कछु ख्याल न भाखा। मन से द्रोह कछू नहिं राखा।।
हम औगुन कहि कर कर भाखा। तुम स्वामी चित कछू न राखा।।
लड़का कपूत बाप देइ गारी। पितु औगुन तेहि नाहिं बिचारी।।
तेहि समझाइ मिठाई दीन्हा। पुनि पुनि ताहि,बोंधकर लीन्हा।।
येहि बिधि भाँति भई गति मोरी। स्वामी से कीन्ही बरजोरी।।

अर्थ--माना पंडित दोनों हाथों को जोड़कर और उनके चरणों में अपना सिर डालकर कहते हैं। हे स्वामी! हम लोगों ने आपके विरुद्ध षडयंत्र (अजगूती) किया था और आपको मारने के लिए शक्ति बना ली थी। हे स्वामी! आप परम दयालु हैं, इस प्रकार का किसी तरह का प्रश्न नहीं रखा और अपने मन में किसी प्रकार का द्रोह भी नहीं रखा। हमने आपके अवगुणों का कह कहकर वर्णन किया किन्तु हे स्वामी! आपने अपने चित्त में कुछ भी नहीं रखा।

वह पुत्र कपूत है, जो अपने पिता को गाली देता है, किन्तु पिता उसके उस अवगुण के प्रति विचार

नहीं करता। वह उसे गाली के बदले समझाकर मिठाई देता है और पुनः पुन) उसे समझाता रहता है। इस प्रकार की मेरी भी दशा हुई है कि मैंने स्वामी जी से बरजोरी की।

॥ वचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

तुलसी माना मनहि बिचारी। ये बिधि होति आइ जुग चारी ॥
संत जगत दोऊ के माई। येहि बिधि आदि अंत चलि आई ॥
अब या का बरतंत सुनाऊँ। बिधि दृष्टांत बहुरि दरसाऊँ ॥
संत जगत तारन बतलावैं। सब जग पुनि उनको मारन धावै ॥
परमारथ की राह बतावैं। सब जग उनकी निंदा लावै ॥
साधू जीव करैं उपकारा। जिव मत हीन उन्हीं को मारा ॥
जस बालक फुड़िया दुख माई। माता चहै नीक होइ जाई ॥
पकि फुड़िया बालक दुख पावै। माता फोड़न ता को चावै ॥
बालक माता मारन धाई। वो जानै मो को दुखदाई ॥
माता कहै नीक होइ जावै। तब मोर हिरदा माहि जुड़ावै ॥

अर्थ–तुलसी एवं माना दोनों विचार करो कि इस तरह की बातें, तो चारों युगें में होती चली आई हैं। संतों ने दोनों स्थितियों का गान कर रखा है। अब मैं इसका वृत्तान्त सुनाता हूँ और विधिपूर्वक पुनः उनके दृष्टान्तों को भी रखता हूँ।

संतजन संसार से उद्धार की बिधि बतलाते हैं और उसके बाद सारा संसार उन्हें मारने के लिए दौड़ता है। वे परमार्थ की राह बताते हैं और सारा संसार उनकी निंदा करता रहता है। साधुजन जीवों का उपकार करते कहते हैं--और यह मतिहीन जीव उन्हीं को मारता रहता है। जैसे किसी बालक की फुड़िया (फोड़ा) का दुःख-माता तो चाहती है कि वह जल्दी ही ठीक हो जाए। फुड़िया के पकने पर बालक दुःख प्राप्त करने लगता है किन्तु माता उसे फोड़ना चाहती है। दूसरी ओर, बालक माता को मारने दौड़ता है–और वह समझता है, यह माता मेरे लिए दुखदायी है। माता कहती है, फोड़ने से फोड़ा अच्छा हो जाता है और तब मेरे मन को शान्ति मिलेगी।

माता सुख उपकार बतावै। बालक के मन में नाहिं आवै ॥
बालक बुधि जग रीती जाना। माता अस मत संत बखाना ॥
ये दुख का उपकार बतावैं। वे पुनि उनको मारन धावैं ॥
ऐसी संत जगत की रीती। या में तुम का करी अनीती ॥
ता का इक दृष्टांत बताऊँ। हाथी ऊपर नकल दिखाऊँ ॥
हाथी की बिधि बरनि सुनाई। माना सुनियो मन चित लाई ॥
हाथी का इक बन रहै भाई। तहँवा हथिनी अनेक रहाई ॥
ता में गज मकरंद रहाई। ताकी बिधी सुनौ तुम भाई ॥
गज मकरंद की बिधी बताई। सब हथिनी सँग रहै बनाई ॥
दूजा हाथी रहै न लारै। दूजा देखि प्रान से मारै ॥
सब हथिनी सँग आप रहाई। दूजा बन में रहन न पाई ॥

हथिनी ब्याई तेहि को देखै। नर बच्चा होइ मारै जे कै॥
बच्चा नारी जों कोइ होई। ता को नहिं मारै पुनि सोई॥
नर को देखि प्रान हरि लेई। मादी देखि बोल नहिं तेही॥
नर बच्चा जह रहन न पाई। यह बिधि आपु रहै बन माईं॥
सब हथिनी में आप रहाई। दूजा हाथी रहन न पाई॥

अर्थ–माता को पुत्र के सुख के लिए उपकार कर रही है, और उनके पुत्र उन्हें मारने दौड़ते हैं। ठीक यही दशा संत-संसार की है और इस प्रसंग में तुम अनीति क्या करोगे। इसका मैं एक उदाहरण बताता हूँ और उसे हाथी से जोड़कर कहता हूँ।

हाथी की कथा को मैं वर्णित करके सुनाता हूँ हे माना! तुम मन तथा चित्त लगाकर सुनो। हाथियों का एक जंगल था और उसमें अनेक हथिनियाँ रहती थीं। उस वन में मकरंद नामक हाथी रहता था–उसका विवरण, हे भाई! तुम सुनो! मैं मकरंद नामक हाथी की बात बताता हूँ जो सारी हथिनियों के साथ झुंड बनाकर रहता था। दूसरा अन्य हाथी उनके पास नहीं रह सकता था और दूसरे हाथी को देखकर वह उसको प्राण से मार डालता था। सारी हथिनियों के साथ वह अकेले रहता था–और दूसरा उसके साथ रहने नहीं पाता था।

जब हथिनी ब्याती थी तो वह उन्हें देखता था और यदि नर हाथी-पुत्र पैदा होता था तो उसे वह मार डालता था। यदि नारी बच्चा पैदा होता था तो वह उसे नहीं मारता था। नर हाथी बच्चे को देखकर वह उनका प्राण हरण कर लेता था और मादा बच्चे को वह बोलता नहीं था। जिस वन में नर-बच्चे नहीं रह पाते थे, उसमें वह अकेला हाथी रहता था। वह समस्त हथिनियों के साथ अकेला रहता था और अन्य किसी हाथी को साथ नहीं रहने देता था।

सब हथिनी मिल कीन्ह बिचारा। ये तौ बूढ़ भया तन सारा॥
हाथी बच्चा रहन न पावै। जो उपजै तेहि मारि गिरावै॥
बूढ़ा भया येहि छूटै प्राना। पुनि फिर अपना कौन ठिकाना॥
सब हथिनी मिल कीन्ह बिचारा। ये बिधि बच्चा होइ उबारा॥
वा बन में इक साध रहाई। बच्चा ले राखौ तहँ जाई॥
साधू दयाहीन नहिं होई। वो पालै पुनि वा कौ सोई॥
यह कहि हथिनी कीन्ही आसा। बच्चा ढारि कुटी के पासा॥
साधू देखि दया अति आई। बच्चा लीन्ह कुटी के माई॥
दया जानि तेहि पालन कीन्हा। मोटा भया जाति को चीन्हा॥
चल्यौ जहाँ सब हथिनी ठाहीं। गज मकरंद देखितेहि भाई॥
सनमुख जुद्ध भया तेहि जाई। ये जवान वो बूढ़ा भाई॥
गज मकरंद को मारि गिराई। पुनि हथिनी में आप रहाई॥
पुनि बच्चा ये कीन्ह बिचारा। वोहि साधू ने मोहि उबारा॥
साधू मारि मिटाऊँ ख्यालै। सो सरिखा दूजा नहि पालै॥
सो पुनि मोरा बैरी होई। ता से साधू मारौं सोई॥
यह बिचारि साधू को मारा। ये बिधि माना यह संसारा॥

अर्थ–सारी हथिनियों ने एक बार मिलकर विचार विमर्श किया कि यह तो पूरी तरह से बूढ़ा हो चुका है। अन्य हाथी बच्चे रहने नहीं पाते और जो पैदा होते हैं, उन्हें यह मार कर नष्ट कर देता है। यह तो बूढ़ा हो चुका है और इसके प्रान छूटने वाले है और उसके बाद हम लोगों का क्या ठिकाना। सारी हथिनियों ने मिलकर यह विचार किया कि इस प्रकार से बच्चे के प्राण बच सकते हैं। उस वन में एक साधु रहते हैं, बच्चा ले जाकर वहाँ रखो। साधु दयाहीन नहीं होते वही उसको पाल सकते हैं। यह कहकर हथिनी ने आशा की और उस बच्चे को कुटी के पास छोड़ दिया। उस बच्चे को देखकर साधु को अत्यन्त दया आई और उस बच्चे को कुटी के बीच रख लिया। दयापूर्वक साधु ने उसका पालन पोषण किया और जब बड़ा और मोटा हो गया तो उसने अपनी जाति पहचान ली। वह तब उस स्थान की ओर चला जहाँ सारी हथिनियां थीं और वहाँ उसको मकरंद नामक हाथी ने देखा। उस मकरंद हाथी के साथ आमने-सामने युद्ध हुआ–हे भाई। यह जवान हाथी था, वह बूढ़ा हाथी। उसने मकरंद हाथी को मारकर गिरा दिया और वह पुनः स्वयं हथिनियों के बीच रहने लगा।

फिर उस हाथी के बच्चे ने विचार किया कि उस साधू ने मेरी रक्षा की है, अब ऐसा करूँ कि उसे मार डालूँ ताकि मेरे सदृश वह किसी अन्य हाथी के बच्चे का पालन पोषण न करें। फिर आगे वह हाथी मेरा बैरी होगा। इसलिए उस साधु को मैं मार डालूँ। यह सोचकर उसने उस साधु को मार डाला। हे माना! यह संसार इसी प्रकार का है॥

वों साधू बच्चा को पाला। सो पुनि भया ताहि का काला॥
दया जानि उन किया उबारा। वे बच्चा साधू को मारा॥
साधू जग को ये बिधि जाना। येहि बिधि चारौ जुग परमाना॥
काल बुद्धि सब जग के माहीं। संत दया बिधि मानै नाहीं॥
ये दयाल बिधि दया बिचारा। कोइ कोइ जीव होइ उपकारा॥
सब जग जीव काल मुख माईं। कोइ कोइ जीव निकस पुनि जाई॥
सुनु माना जग का ब्यौहारा। आदि अंत अस रचा पसारा॥
या में तुम को दोस न भाई। आदि अंत ऐसै चलि आई॥

अर्थ–जिस साधु ने उसके बच्चे का पालन पोषण किया और हाथी का बच्चा उसी के लिए काल बन गया। उन्होंने उसको असहाय समझकर उसकी रक्षा की किन्तु उस बच्चे ने साधु को मार डाला। साधु जन संसार को इसी प्रकार से समझते हैं। सम्पूर्ण संसार के पास कालबुद्धि है किन्तु इसको जानते हुए भी सन्त जन दयाभाव के कारण इसे नहीं मानते।

वे दयालु होते हैं और अनेक रूपों में दया के विषय में सोचते रहते हैं और सोचते रहते है कि हमारे द्वारा किसी-न-किसीजीव का उपकार होता रहता है। सारे-के-सारे जीव काल के मुख के मध्य हैं–और कोई-कोई जीव कभी कभी उससे निकल जाता है। हे माना पंडित! इस संसार के व्यवहार के विषय में सुनें–उसका फैलाव आदि से अन्त तक अनेक रूपों में हुआ है। अतः इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है–प्रारम्भ से आज तक यह इसी प्रकार चला आ रहा है।

॥ माना उबाच चौपाई॥

तुम दयाल पूरे हौ स्वामी। जीव काल बस तुम्हैं न जानी॥
तुम परमारथ राह बताई। जग कर्मी स्वारथ को धाई॥
अब स्वामी इक अरज बिचारी। मैं तुम चरनन की बलिहारी॥
जो कछु बस्तु आप न दीन्हा। ता बिधि भाखि सुनाऊँ चीन्हा॥

नील सिखर होइ सूरति जाई। स्याम सिखर के पार समाई॥
सातौ दीप सेत के पारा। जहँ होइ पहुँचे गगन अधारा॥
तहँ पुनि सैल सुरति से कीन्हा। आतम निरखि भिन्न लख लीन्हा॥
घट घट देखा सब्द पसारा। सूरति चढ़ी सब्द की लारा॥
सूरति सब्द में जाइ समानी। जस जस भई सो भाखि बखानी॥
अब स्वामी तुम दाया कीन्हा। वस्तु अगम की हाथै दीन्हा॥
अनेक जन्म ये देह सिराती। पुनि मरते कहुँ हाथ न आती॥
मैं पुनि सतगुरु तुमको जाना। तुलसी सत सतगुरु कर माना॥
जस जस सतगुरु की जस रीती। तस तस मोरे भइ परतीती॥

अर्थ–हे स्वामी! आप पूरी तरह से दयालु हैं–किन्तु काल के वशीभूत ये प्राणी आपको नहीं समझते। आपने तो परमार्थ राह बताई है किन्तु यह संसार स्वार्थ कर्मी है और उसी राह पर चलता है। हे स्वामी! अब आप मेरी एक प्रार्थना पर विचार करें, मैं आपके चरणों पर बलि जाता हूँ। जो कुछ वस्तुएँ आपने दी हैं, उनका मैं उसी रूप में वर्णन कर रहा हूँ, जिस प्रकार उन्हें पहचाना है। नील शिखर से होकर सुरति जाकर श्याम शिखर के उस पार समा जाती है।

सातों द्वीप श्वेत दीप के उस पार हैं–जहाँ पहुँचने पर शून्याकाश आधार (आत्मबन) बन जाता है। उसके पश्चात् शैल सुरति से सम्बन्ध होता है और वहाँ इस आत्मा से भिन्न रूप स्थित आत्मा को आपने देख लिया। सम्पूर्ण घटों में मैंने 'शब्द' का प्रसार ही देखा और इस सबद के साथ सुरति भी आगे चढ़ गई। यह सुरति 'सब्द' में जाकर समाविष्ट हो गई और वहाँ जो-जो स्थितियाँ गठित हुई, मैंने उनका कहकर वर्णन किया है। हे स्वामी! आपने दया करके उस अगम्य वस्तु को मेरे हाथों पर दे दिया। यह देह तो अनेक जन्मों में यह देह बीतती और मृत्यु के समय कुछ हाथ न लगता? मैंने तो सत्गुरु आपको ही समझा है। हे तुलसी साहब! आप ही को सत्गुरु स्वीकार किया है। इस प्रकार, सत्गुरु की जो परम्परा-व्यवस्था है, उसे देखकर मुझे विश्वास हो गया है।

॥ श्लोक॥

मूकं करोति बाचालं, पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत् कृपालमहं बंदे, परमानंद माधवः॥ १॥
द्वै द्वै लोचन सर्वानां, विद्या त्रय लोचनं।
सप्त लोचन ज्ञानीनां, भगवान अनंत लोचनं॥ २॥

अर्थ–सत्गुरु मूक को वाचाल बना देता है और उसकी कृपा से पंगु व्यक्ति पर्वतों को लांघ जाता है। वह जो कृपालु सत्गुरु है, मैं उसकी वन्दना करता हूँ। वह साक्षात् परमानन्द माधव रूप है॥

सभी प्राणियों के दो-दो नेत्र हैं, विद्या का संचय त्रितीय नेत्र है, ज्ञानियों के सात नेत्र होते हैं किन्तु ईश्वर तो अनन्त-अनन्त लोचनों से संयुक्त है॥

॥ सोरठा॥

तुलसी परम दयाल, काल कँवल स्त्रुति भिनि भये।
माना मरम निहाल, को कृपा तुलसी बिना॥

अर्थ–हे तुलसी साहब! आप दयालु हैं, काल द्वारा कवलित परम्परा से आप मुक्त (अजर-अमर) हैं। मैं अत्यधिक कृतज्ञ हूँ, माना पंडित कहते हैं कि तुलसी साहब के बिना कौन और कृपालु है॥

॥ चौपाई ॥

माना के मन होस निकारो। तुलसी चरन सरन गति सारी॥
स्वामी तुलसी सतगुरु दाता। अगम निगम का किया बिख्याता॥
सतगुरु सत्त सत्त हम जाना। सतगुरु बिना न मिलै ठिकाना॥
बिन सतगुरु पावै नहिं कोई। बिन सतगुरु सब गये डुबोई॥
तुम सतगुरु मोहिं राह लखाई। आदि गुरु अंत नजर में आई॥

अर्थ–माना के भ्रम को शान्त करें और मेरी सम्पूर्ण शरणागति आपके ही चरणों में है। हे स्वामी तुलसी साहब! आप ही सद्गुरु हैं, आप ही ज्ञानताता हैं, और आपने वैदिक और श्रुत परम्पराओं दोनों को प्रसिद्धि प्रदान की है। मैंने सही-सही समझ लिया है कि आपही सतगुरु हैं–क्योंकि सत्गुरु के बिना आध्यात्मिक ठाँव नहीं मिलता। बिना सत्गुरु के कोई ज्ञान नहीं प्राप्त करता और सत्गुरु के बिना सभी डूब जाते हैं। आप सत्गुरु हैं, हमें आपने मार्ग दिखाया है और हमें अन्त में आपके रूप में आदिगुरू के रूप में ही दृष्टिगत हुए हैं।

॥ सोरठा ॥

तुलसी परम दयाल, तुम स्वामी दाया करी।
छूटा भ्रम दुख जाल, कहि दयाल बिधि सब लखी॥

अर्थ–हे तुलसी साहब! आप परम दयालु हैं, आप स्वामी हैं और हम लोगों पर दया की है। मेरा भ्रम का दुःखमय फंदा टूट गया है हे कृपाल! आपने सम्पूर्णतः विधिपूर्वक बताया है और उसे हमने समझा है॥

॥ चौपाई ॥

अस कहि माना सीख जो मंगी। नैनू स्यामा तीनों संगी।
सीस टेक डंडवत कीन्हा। चरन छुए पुनि मारग लीन्हा॥
तीनों पंडित मारग जाही। कीन्हा गवन भवन की राही॥
पुनि गुनुवाँ आया तहि बारा। किया प्रनाम डंडवत सारा॥

अर्थ–ऐसा कह जब माना पंडित ने अपना सिर चरणों पर रखा तो नैनू एवं स्यामा अर्थात् तीनों साथियों ने सिर टेककर उन्हें दम्डवत् किया और उनका चरण स्पर्श करके घर के लिए मार्ग पकड़ा। इस प्रकार तीनों पंडित मार्ग पर चल पड़े और अपने-अपने घरों की राह पर गमन किया। उसके बाद गुनुवाँ उनके पास आया, दण्डत् करके उनको प्रमाण किया।

॥ गुनुवाँ उबाच ॥ चौपाई ॥

गुनुवाँ पूछै तुलसी स्वामी। एक बिधी मैं कहूँ बखानी॥
जीव राह की जुगत बताही। ता से छूटै जम की राही॥
तुम दयाल सतगुरु हौ स्वामी। जा से होइ जीव कल्याणी॥
ये भौजाल जगत ब्यौहारा। ता में जीव कर्म बस डारा॥

अर्थ–गुनुवाँ पूछता है कि हे तुलसी साहब! मैं एक विधि वर्णित करके कह रहा हूँ। आपके जीव के लिए मुक्ति का कार्य मार्ग बताया है और इससे यम को मार्ग उसका छूट जाता है। हे स्वामी! तुम

सत्गुरु हो, दयालु हो—और जिससे जीवों का कल्याण हो, आप उसी की चर्चा करते हैं। यह सम्पूर्ण संसार का व्यवहार भवजाल है और उसमें अपने कर्मों के कारण जीव डाला गया है।

॥ बचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

सुनु गुनुवाँ यह जम की बाजी। जग संसार यही में राजी॥
पंडित और समझै नहिं फाजी। ये सब झूठ काल से राजी॥
इनकी बात न चित पर दीजे। ये सब पाप पुन्य में भीजे॥
संत चरन की आसा कीजे। संत सरन मुक्ती करि लीजे॥
ये जग में कछु नाहिन भाई। सुप्न जगत जिव भौ भरमाई॥
राम कृष्न दोऊ बटमारा। सिव ब्रह्मा मिलि फाँसी डारा॥
या से संत राह धरि लीजै। उन कि कहनि चित से नहि दीजै॥

अर्थ—हे गुनुवाँ! सुनों, यह संसार यम की बाजीगरी है—और यह जगमय संसार इसी में सहमत है। पंक्ति और काजी इसे समझ नहीं पाते और इनके सारे कार्य झूठे हैं, यम की स्वीकृति हैं। इनकी बातों पर जरा भी विश्वास न करें—ये सभी पाप पुण्य में भीगे हुए हैं। केवल सन्तों के चरणों की आशा करें और सन्तों की सरण में जाकर मुक्ति प्राप्त कर लें। इस संसार में कुछ भी नहीं है—और यह स्वप्न रूपी संसार जीवों का भ्रमित किये हुए है। राम और कृष्ण दोनों बटमार थे। शिव तथा ब्रह्म ने मिलकर तो जीवों की फाँसी लगा दी। इसीलिए इनकी वास्तविकताओं को समझकर सन्तों के मार्ग का अनुगमन कर ले और राम-कृष्णादि के उपदेशों को मन में स्थान भी न दें।

॥ गुनुवाँ उवाच ॥ चौपाई ॥

चरन बंदि तुम्हरी सरनाई। ये सब झूठ समझ में आई॥
मोरे चित्त का भर्म उठावा। जब से चरन सरन में आवा॥
हिरदे मोहि बिधी समझावा। मर्म भाव बिधि सबहि बतावा॥
अब प्रभु कृपा दृष्टि मोहिं कीजै। जीव सरन अपना करि लीजै॥
मैं तौ स्वामी तुम को पाये। तुम्हरे चरन सरन चित लाये॥
अब कोउ बात बिधी नहिं भावै। सूरति तुलसी चरन समावै॥
अब कछु राह मोहिं को दीजै। यह गुनुवाँ अपना करि लीजै॥

अर्थ—हे स्वामी! आपके चरणों की बन्दना करता हूँ, आपकी शरण में हूँ। आपने मेरे चित्त का भ्रम नष्ट कर दिया (और यह सबसे है) जबसे में आपके चरणों में आया हूँ। मेरे पिता; हिरदै ने मुझे यह अध्यात्म विधि सुझा दी है और उसके रहस्य भाव को हर प्रकार से बता दिया है। हे प्रभु आप मुझपर कृपा दृष्टि करें और इस जीव (मुझे) अपनी शरण में ले लें।

हे स्वामी! मैंने तो आपको प्राप्त कर लिया है और आपके चरणों की शरण में अपना चित्त लगा लिया है। अब मुझे अन्य कोई आध्यात्मिक चर्चाएँ और विधियाँ अच्छी नहीं लगतीं—और मेरी सुरति तो आपके चरणों में समा उठी है। हे स्वामी! अब कोई अन्य नई राह मुझे दें, और इस गुनुवाँ को अपना दास स्वीकार कर लें॥

॥ बचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

सुनु गुनुवाँ यह जम की बाजी। जग संसार यही में राजी॥
पंडित और समझै नहिं फाजी। ये सब झूठ काल से राजी॥

इनकी बात न चित पर दीजे। ये सब पाप पुन्य में भीजे॥
संत चरन की आसा कीजे। संत सरन मुक्ती करि लीजे॥
जे जग में कछु नाहिन भाई। सुप्न ज त जिव भौभरमाई॥
राम कृष्न दोऊ बटमारा। सिव ब्रह्मा मिलि फाँसी डारा॥
या से संत राह धरि लीजै। उन कि कहनि चित से नहि दीजै॥

अर्थ–हे गुनुवाँ! इसे भलीभाँति समझो! यह संसार यम की बाजीगरी है और यह सम्पूर्ण संसार इसी में खुश है। पंडित तथा काजी लोग इस बात को नहीं समझते। ये सब झूँठे और काल से ही सन्तुष्ठ हैं। इनकी बातों पर ध्यान न दो, ये सभी पाप तथा पुण्य में डूबे हुए हैं। सदैव, सन्त चरणों ी आशा करें और उनकी शरण में जाकर मुक्ति प्राप्त कर लें। ये भाई! ये संसार में कुछ भी नहीं हैं। अज्ञान के स्वप्न में डूबे हुए संसार के जीवों को ये भरमाते रहते हैं। राम कृष्ण दे दोनों बटमार हैं–शिव ब्रह्मा ने इनसे मिलकर जीवों पर फाँसी लगा दी है। इन कारणों को समझकर सन्तों के द्वारा दिखाए गए मार्गों को स्वीकार कर लें और उन राम, कृष्ण आदि के कथनों पर मन न लगाएँ॥

॥ गुनुवाँ उबाच ॥ चौपाई ॥

चरण बंद तुम्हरी सरनाई। ये सब झूँठ समझ में आई॥
मोरे चित का भर्म उठावा। जब से चरन सरन में आवा॥
हिरदे मोहिं बिधी समझावा। भर्म भाव विधि सबहिं बतावा॥
अब प्रभु कृपा दृष्टि मोहिं कीजै। जीव सरन अपना करि लीजै॥
मै तो स्वामी तुमको पाये। तुम्हरे चरन सरन चित लीजै॥
अब कोउ बात विधो नहि भावै। सुरति तुलसी चरन समावै॥
अब कछु राह मोहिं को दीजै। यह गुनुवाँ अपना करि लीजै॥

अर्थ–मैं आपके चरणों की बन्दना करके आपकी शरण में हूँ–और आज यह सब असत्य समझ में आ गया है। आपने मेरे चित्त का भ्रम जबसे उठा दिया और मैं आपकी शरण में तभी से आया हुआ हूँ। इस बात को हिरदै ने अनेक विधियों से समझ गया है, इसके सभी गर्मों, तथा रहस्यों को भी बतलाया है। हे प्रभु! अब आप मुझे कृपा दृष्टि दें और इस जीव को आप अपनी शरण में कर लें। हे स्वामी मैंने तो तुम्हें प्राप्त कर लिया हैं। आपके चरणों में चित्त को लगा दिया है। आपकी बातों के अतिरिक्त मुझे न कोई बात अच्छी लगती है, न रहस्य। मेरी सुरति समाधि आपके चरणों में समाविष्ट हो चुकी है। अब मुझे कोई अच्छा सा मार्ग बताकर इस गुनुवाँ को अपने वश में कर लें॥

॥ बचन ॥ तुलसी साहब ॥ चौपाई ॥

जब वहि को कछु राह बताई। गुनवाँ सीस चरन तर नाई॥
सुनु गुनुवाँ यह बिधी बताई। मन थिर करौ गुनौ मतभाई॥
सूरति सोध कँवल में राखौ। नित प्रति सुरति दृष्टि होइ ताकौ॥
येहि बिधि रहौ दिवस औ राती। गुनुवाँ गुनन करौ मन भाँती॥

अर्थ–जब उन्होंने किसी मार्ग का उसके लिए निर्देश किया तब गुनुवाँ ने अपने सिर को उनके चरणों में झुकाया। उन्होंने कहा, हे गुनुवाँ! मैंने यह विधि बता दी है। तुम मन को स्थिर करो और अपने मन में कोई अन्त चिन्तन न करो। सुरति समाधि की खोज करके उसे कमल दल में रखो और नित्य प्रति

अपनी अन्तर्दृष्टि से सुरति पथ को ही देखते रहो। इसी प्रकार इसमें रात-दिन मग्न रहो और हे गुनुवा! मन को रमाकर इसका ही चिन्तन करो।

॥ सोरठा ॥

सुनु गुनुवाँ यह बात, बिधि बिचार गुप्तै रहौ।
कहौ ना काहू साथ, येहि बिधि मन बसि रहौ॥

अर्थ–हे गुनवाँ! मेरी यह बात सुनो, इस मत की विधि को विचार करके उसके विषय में चुप ही रहो (और उसे गुप्त रखो)–उसे किसी से भी न कहो और इस प्रकार तुम अपने मन में अपने मन को बसाकर रहो॥

॥ चौपाई ॥

चरन लाग मारग कौ लीन्हा। घर को सुरति गवन जिन कीन्हा॥

अर्थ–गुनुवाँ ने चरणों में लगकर घर का रास्ता पकड़ा और सुरति निष्ठ होकर वह घर चला।

॥ फूलदास उबाच ॥ चौपाई ॥

स्वामी हमको नाहि बिसारी। नेक सुरति हमहूँ पर डारी॥
हम को अपना दास बिचारौ। अस जानि मोरी ओर निहारौ॥

अर्थ–हे स्वामी! आप हमें भूले नहीं और थोड़ा-सा ध्यान मुझ पर भी डाल दें। मुझे भी आप अपना दास ही समझें और ऐसा समझकर मेरी ओर देख लें।

॥ वचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

फूलदास बिधि करौ बिचारा। बिन चौके नाहीं निरबारा॥
चौके की बिधि करौ बनाई। जब सूरति अपना घर पाई॥
सूरति से नरियर को मोड़ौ। हाथै से नरियर नहि फोड़ौं॥
सुरति पान पर बीरा खावौ। बरई बीरा दूरि बहावौ॥
तीनि गुनन का तिनुका तोड़ौ। बासन पाँच इंद्री को मोड़ौ॥
और कहाँ लगि ब्रिधी बताऊँ। ये चौका बिधि औरै गाऊँ॥
जग चौके को दूरि बहावौ। सत चौका हिरदे में लावौ॥
जग चौके झूठी बाता। सत चौका संतन रस माता॥
जो चौका संतन ने जाना। सोइ कबीरदास पहिचाना॥
सो चौका तुमको बतलैहौं। ता से राह अगम की पैहौ॥
जो कबीर ने राह बताई। सो चौके की कहौं बुझाई॥

अर्थ–तुलसी साहब बोले, हे फूलदास! इस विधि पर विचार करो–बिना चौका पूजन के कोई निराकरण नहीं है। सुरति ध्यान करके चित्त में स्थित नारियल को मोड़ दो और हाथ से नारियल मत फोड़ो। सुरति के ध्यान में पान का बीड़ा खालो और बाहर के बरई द्वारा लाए गए पान के बीड़े को फेंक दो। उस ध्यान में यह त्रिगुणात्मक संसक्ति के तिनके को तोड़ दो और पाँचों इन्द्रियों को वर्तन बनाकर मोड़ डालो। इन सारी साधना की विधियों का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ और तुम्हारी चौकाविधि का वर्णन मैं तुम्हारे तरीके से भिन्न प्रकार से करता हूँ।

इस सांसारिक चौंके को दूर बहाकर सत चौंके को मन में ले आओ। इस संसार के चौंके की बात झूँठी है और सत चौंके में ही सन्तों का मन रमा रहता है। जिस चौंके को सन्तों ने समझा है–उसी को कबीर भी चौका के रूप में पहचानते थे। उस चौका का रहस्य मैं तुम्हें बतलाऊँगा और उसके द्वारा उस अगम्य पंथ को प्राप्त करोगे। जिस मार्ग का उल्लेख कबीरदास जी ने किया है उस चौके का सही रूप मैं तुझे बतलाता हूँ।

जो कबीर राह बिधि गाई। साँई राह सत बतलाई॥
संत कबीर ये अंतर नाईं। या बिधि से कोई भर्म न लाई॥
सूरति चढ़ै संघ जो पावै। सो कबीर सम चित में लावै॥
वा में भिन्न भाव कोहू लैहै। कर्म भाव बिधि नरकै जैहै॥
कहै कबीर ने अगम सुनाया। और संत नहि वहँ से आया॥
कहैं कबीर अविगति से आये। और संत वो घर नहि पाये॥
ऐसी बिधि कोइ मन में आनै। तौ पुनि परै नर्क की खानै॥
भेषी पंथ संत ये नाईं। आदि अंत सो संत कहाई॥
आदि संत सब वहि से आये। भेष पंथ में वे नहिं पाये॥
भेष पंथ में ढूँढ़ौ भाई। या से तुमको नजर न आई॥
अंदर की आँखी से देखौ। तब पुनि संत नजर से पेखौ॥
तुमको नजर कहाँ से आई। चौका पंथ माहिं उरझाई॥

अर्थ–कबीरदास जी ने जिस विधि से उस मार्ग का वर्णन किया है, उन स्वामी की राह सन्त ही बतलाते हैं। सन्त तथा कबीरदास में कोई अन्तर नहीं है, इस प्रकार, दोनों के बीच किसी प्रकार का भ्रम न पैदा करो।

सुरति ध्यान में समाविष्ट होने पर जो समुद्र प्राप्त करना है, उसे कबीर की ही भाँति चित्त की साधना का विषय बनाओ। यदि उस चित्त साधना से कोई भिन्न भाव लेगा तो वह सीधे कर्मभाव द्वारा नरक में जाएगा। कबीर ने उस अगम्य का वर्णन कहकर सुनाया है और कोई सन्त उस दशा से वापस नहीं आया है। कबीरदास जी कहते है कि मैं निर्गुण ब्रह्म को जानकर लौटा हूँ और अन्य किसी सन्त ने निर्गुण के उस घर को नही प्राप्त किया है यदि इस प्रकार की भी बात किसी के मन में आती है तो वह भी नर्क की खान में गिरेगा। सन्त का पद बेषभूषा द्वारा नहीं बनता। सन्त वही है, जो आदि से अन्त का पद वेषभूषा द्वारा नहीं बनाता सन्त वहीं है, जो आदि से अन्त तक एक है। आदि सन्त सब इसी समत्व दशा से होकर आए हैं और उन्हें भी वेष रचना वाले मार्ग में नहीं पाया गया। तुम वाह्याडम्बर वाले मार्ग में उन्हें खोज रहे हो, इससे वे तुम्हारी दृष्टि में नहीं आ रहे हैं।

पहले उस परम तत्त्व को चित्त की आँखों से देखो, फिर उन्हें सन्त की दृष्ठि से देखकर पहचानों। तुम्हें यह सब दृष्टि में कहाँ आ सकती है, क्योंकि तुम्हारी दृष्टि तो चौका के आडम्बर में लगी हुई है।

चौका पथ की दूरि बहावै। तब वो राह नजर में आवै॥
चौका पट्टा हाट बजारा। या से परै कर्म की लारा॥
संतन का चौका बिधि न्यारा। ये सब जानौ हाट बजारा॥
संतन का चौका बिधि गाऊँ। संत कृपा से समझ बताऊँ॥
सुरति मोड़ नरियर को फोड़ौ। अगम पान चढ़ि धनुवाँ तोड़ौ॥

राह बिधी कोइ संत बतावै। जीवत अगम बस्तु को पावै॥
तुलसी कहि इक सब्द लखाऊँ। ता में सब चौका बिधि गाऊँ॥
फूलद‌ास तुम सुनियौ काना। बिधि चौका का सब्द बखाना॥

अर्थ–लोक में प्रचलित चौका मार्ग को दूर फेंको, तब वह सही मार्ग तुम्हें दिखाई पड़ेगा। चौका, उससे लगी पट्टी, हाट-बाजार की शरण तो कर्म की गहरी संसक्ति है। मैं सन्तों द्वारा कही हुई चौका विधि का वर्णन कर रहा हूँ–मैं उसे सन्तों की कृपा से समझकर बता रहा हूँ। सुरति में नारियल को मोड़कर उसे फोड़ दो और अगम्य पान कर चढ़कर उस धनुष को तोड़ दो। यह मार्ग कोई सन्त ही बतलायेगा और जीवन में ही उस अगम्य वस्तु को प्राप्त कर लो। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं एक उपाय बताता हूँ–उसी में सभी चौका विधि वर्णित है। हे फूलदास! तुम ध्यान लगाकर सुनो। चौका विधि के लिए इस प्रकार का शब्द रहस्य बताया गया है॥

॥ जैजैवंती ॥

एरी लै आज तो अधर घर आई, तुलसी चढ़ि देखिया॥ टेक॥
सूरति दृग दौड़ अटारी, हिये हर लखा पिउ प्यारी॥
सारी तौ ले हेरि निहारी, प्यारा लै संग पेखिया॥ १॥
नरियर को मोड़ा जाई, प्रिये बास सुगंध उड़ाई।
बीरा पान पाये आई, सुगंधी महकाइया॥ २॥
मेंवा आठ पुरुष लखि जानी, स्त्रुति हेर हिये उड़ानी।
सब्दारस भई रंग रानी, हरखानी पिउ पाइ कै॥ ३॥

अर्थ–हे री सखी! समझ ले! मैं आज अन्तरात्मा के घर में आ गई, ऊपर आकर मैंने इस प्रकार से देख भी लिया है। सुरति ध्यान द्वारा दौड़कर तथा अटारी पर चढ़कर और हृदय में खोजकर, हे प्यारी! मैंने उस प्रिय को देखा है।

जब नारियल को मोड़ा तो हृदय में सुंगधि की महक उड़ी और पान का पीड़ा पाकर सुगंधि और बढ़ गई। मैंने पुरुषों को आठ मेवा की भाँति देखा और उन्हें देखकर सम्पूर्ण परम्परा का ज्ञान उड़-सा गया और मैं उस शब्द के रंगों में ही रंग कर खो गई और अपने प्रिय को पाकर पूरी तरह से हर्षित हो उठी॥ 1-3॥

पलँगा पर जाइ पौढ़ी, धन धन सुख की घड़ी।
अटारी महला चढ़ी, प्यारा पिउ लेखिया॥ ४॥
फूलदास दृग पर चौका, परवाना छाँड़ौ धोखा।
नरियर सुरति से मोड़ौ, तोड़ौ असमाना को॥ ५॥
तुलसी लसि सूरति जाई, चौका परवाना याही।
बसि तिल हिरदे बिच आई, चढ़ी द्वार पाइ के॥ ६॥
रेवतीदास को समझावा, फूलदास दोऊ लख पावा।
कँवला में सुरति लखाई, तुलसी बिधि पाइ के॥ ७॥
इंद्री पाँच बासन मोड़ा, गुन तीनि तिनुका तोड़ा।
पोढ़े तिनुका बासन छूटै, झूठे जग लूटिया॥ ८॥

तुलसी कबीर बखाना, सो चौका बिधि हम जाना।
पूछै कोइ चित ब्रत आई, ता को दरसाइया॥ ९॥
पत्र कदली छेदा जाई, जहँ सेत चदरवा तनाई।
तुलसी बिधि कहि समझाई, संत जनाइया॥ १०॥

अर्थ–मेरे सुख की वह धन्य घड़ी आई जब जाकर अपने पति के साथ पलँग पर जाकर लेट गई और मैं अपने प्रिय पति के लिए महलों तथा अटारियों पर जाकर चढ़ गई॥ ४॥

हे फूलदास! अन्तः दृष्टि में चौका है, इस धोखे से भरे लौकिक चौके का प्रमाण छोड़ो। उस नारियल को सुरति ध्यान से मोड़ो और उसे शून्याकांश में तोड़ो॥ ५॥

तुलसी साहब कहते हैं कि उसे सुरति में जाकर देखो, उसका प्रभाव वहीं है, दिल सदृश हृदय में निवास करके वह आगे के द्वार पर चढ़ गई॥ ६॥

मैंने इसे रेवती दास को समझाया। हे फूलदास! इसे कोई ही समझ पाता है। तुलसी की इस व्यवस्था को पाकर सुरति कमल में समा गई॥ १७॥

पाँचों इन्द्रियों की वासनाओं को मोड़ दिया और उसे देखकर तीन गुणों से उसने तिनका तोड़ दिया–तिनकों के त्याग के बाद वासनाओं से साथ छूट जाता है और संसार में लूटा जाना (ठगा जाना) झूँठा हो जाता है॥ ८॥

कबीर ने इसे कहा है, उनके कहने के कारण, इसे मैंने भी जाना है। जो कोई मुझसे पूछता है तो चित्त में यह व्रत आ जाता है, और उसे मैं बताता हूँ।

उस शून्याकाश में जाकर कदली पत्र में छेद करते हैं, वहाँ श्वेत-चद्दर तनी हुई है–तुलसीदास जी ने इस प्रकार समझाया है–इसे सन्तों ने बताया है।

॥ दोहा॥

फूलदास चौंका बिधी, सुरति नारियर मोड़।
पान अमर बीरा लखौं, चखौ अधर रस और॥
रेवतीदास तु महूँ लखै, नरियर निरत निहार।
निज अकास पर पान है, बीरा है निज सार॥

अर्थ–हे फूलदास! चौका की यह विधि है कि सुरति द्वारा सबसे प्रथम नारियल मोड़े और ध्यान में पान के अमर बीड़े को देखो तथा अन्तरात्मा के मूल रस का आस्वादन करो।

हे रेवतीदास तुम भी देखो और इस नारियल को निरन्तर निहारते रहो–अपने ही शून्याकाश में पान है और उसका बीड़ा अपने चिन्तन का सार तत्त्व है।

॥ चौपाई॥

फूलदास अस सुरति लगाई। नरियर माहिं पंथ सोइ राही॥
येही पंथ की राह जो पावै। पंथ कबीर ताहिकर नावै॥
येही पंथ सुरति से लावै। अगम अगोचर घर को पावै॥
सूरति सैल करै असमाना। निज घर पहुँचै जाइ ठिकाना॥
या बिधि पंथ संत दरसावै। तब सत सुरति समझ घर आवै॥
आदरू अंत पंथ पद जाना। भाखै सतगुरु संत बखाना॥

अर्थ--फूल.दास ने इस प्रकार से सुरति पर ध्यान लगाओ और नारियल में ही वही अध्यात्म मार्ग है, ऐसा समझो। इस गन्तव्य के मार्ग को जो प्राप्त कर लेता है–उसी का नाम कबीरपंथ है। यह पंथ सुरति द्वारा लाया जाता है और इससे अगम्य तथा अगोचर केन्द्र मिल जाता है। वह शून्याकाश के सुरति केन्द्र में आनन्द करता है और अपने घर पहुँच कर अपने मूल निवास प्राप्त कर लेता हैं।

इस प्रकार से मार्ग का निर्देशन संत करते हैं। इसके बाद ही सुरति को सही-सही समझकर पार लौट आता है। इस प्रकार वह आदरपूर्वक सन्त द्वारा निर्दिष्ट अन्तिम पथ को प्राप्त कर लेता है। सत्गुरु उसे बताते हैं और सन्तगण इसका वर्णन करते हैं।

सतसँग करै बूझ जब आवै। सूझै मत सतसंगत पावै॥
जिन जिन चरन बिधी बिधि जानी। सो गुरुमत जानौ परमाना॥
पंथी राह रीत सब छूटै। मन की मान मनी सब टूटै॥
दीन होइ कर सेवै संता। जब लखि परै अगम पद पथा॥
जब कबीर ने भाखा चौका। सो बिधि करौ मिटै जम धोका॥
उन कहि बिधि जो बूझ बिचारै। सो घर पुनि पद पार निहारै॥
संत गूढ़ मत गुप्त पुकारै। बूझै सतगुरु शब्द सुधारै॥
जो कुछ कही उलट बिधि बानी। सो बिन समझ बूझना जारी॥
सब्द साखि सो भाखि सुनावै। बिन सतगुरु कछु हाथ न आवै॥
सतगुरु मिलैं बतावैं भेदा। जब जम जाल मिटै मन खेदा॥

अर्थ–सत्गुरु इस प्रकार का आचरण तब करता है, जब उसे सूझता है और उसकी यह सूझ सत्संगति से प्राप्त होती है। जिनके चरणों में शरणागति है, उन्हें इस विधि का ज्ञान होता है–उसी को गुरु मत का प्रमाण समझो। इसका ज्ञान होने पर निर्गुण मत के साधकों की भौतिक रीतियाँ छूट जाती हैं। मन में आने वाले अहंकार मनही मन छूट जाते हैं। दीन होकर जो सन्तों का सेवन करते हैं, तभी उसे अगम्य मार्ग दिखाई पड़ता है।

जिस प्रकार, कबीर ने चौके का वर्णन किया है, उस विधि से उसे करो, सारे संसार का भ्रम मिट जाएगा। उनके विषय में कहकर जो उन्हें बूझता और विचार करता है, वह व्यक्ति उस घर के पार उस पद को प्राप्त करता है, जो अलभ्य है। सन्तों का मत अत्यधिक गुप्त एवं गूढ़ पुकारा जाता है। केवल उसे सत्गुरु ही बूझता तथा वही सुधारक है। जो कुछ यहाँ उल्टवासी के रूप में वाणी कही गई है:जो बिना समझ के न बूझा जा सकता है और न जाना जा सकता है। सब्द तथा साखी को जो कहकर सुनाता है बिना सत्गुरु के उसका तात्पर्य समझ में नहीं आता। मिलने पर ही बिना सत्गुरु के उसका तात्पर्य समझ में नहीं आता। मिलने पर ही सत्सगुरु उसका रहस्य बतलाते हैं और यह तब होता है, जब इस भौतिक संसार के कर्म से उत्पन्न मन की ग्लानि दूर हो जाती है।

संत बाग बन अंड पुकारा। सोइ ब्रह्मंड बाग बन सारा॥
तन मन बृच्छ देखि दृग अंडा। चढ़कर सुरति निरखि नौखंडा॥
जो अंडे बिच बाग बखाना। देखा सुरति समझि असमाना॥
बाग बृच्छ बेली पर अंडा। सतगुरु सुरति बतावै डडा॥
ये मन खलक खान बिच डारा। पाँच पचीस तीनि तेहि लारा॥
अब या का सुन सब्द लखाऊँ। बृच्छ बेलि अंडा अरथाऊँ॥
उलटाबसी जो कही कबीरा। रमज रेखता में मत धीरा॥

अर्थ–संत जंगलों में (एकान्त) के बाग में अंड का स्मरण करते हैं–यही अंड ही सम्पूर्ण ब्रह्मांड का बाग-बन है। यह शरीर और मन को आँखें उस अंड (पिंड) में देखतीं हैं और उस पर चढ़कर सुरति के नवखंडों (भवन) को देखो। जो इस पिंड के बीच में बाग का वर्णन करता है–उसने सुरति को शून्याकाश में देखा और समझा है। बाग के वृक्षों तथा लताओं पर ही वह अंड दिखाई पड़ता है। सत्गुरु द्वारा निर्दिष्ट सुरति ही इस भेद को बता पाती है इस संसार में यह मन ही विष की शाखा है और वह संसक्तियो–पाँच (इन्द्रियों) पचीस (भौतिक तत्त्व) एवं तीन (गुणों) में बँधा है। हे फूलदास! सुनों–इनके बारे में 'सबद' का मैं वर्णन करता हूँ–वृक्ष क्या है, बेलि क्या है, अंडा क्या है, उसे अर्थापित (स्पष्ट) कर रहा हूँ। जिस उल्टवासी को कबीर ने कहा है–रेखता छन्दगीत में वह धैर्यवान श्रेष्ठ बुद्धिमानों के लिए अध्यात्म तत्त्व (रमज) है।

॥ रेखता ॥

अली इक बाग बन खंडा। लगे बृच्छ बेलि पर अंडा॥ १॥
अजब इक फूल पचरंगा। भँवर बसै बास के संगा॥ २॥
अगर सब लोग फल खावैं। स्वाद बस रैन रहि जावैं॥ ३॥
फले फूल दाख के पेड़ा। रहत जेहि भूमि पर भेड़ा॥ ४॥
भेड़ा रहै बाग में अली जा। काढ़ि नित खात कालेजा॥ ५॥
वोही मन बीच में राजै। गरज सब सूरमा भाजै॥ ६॥
कहूँ कोई रहन नहिं पावै। सकल बन जीव चरि जावै॥ ७॥
कहूँ उनमान बल केरा। बनी बिच जीव सब घेरा॥ ८॥
सुनौ अब तोल तन केरा। नहीं त्रय लोक में हेरा॥ ९॥

अर्थ–हे सखी! यह संसार एक बाग की भाँति है–जहाँ शून्य (वृक्ष-बेलियो) पर अंड (पिंड) दिखाई पड़ते हैं। इस संसार में एक अजीब फूल (शरीर) पाँच रंगों (तत्त्वों) का है और उसकी सुंगधि (वासनाओं) के साथ कामनाओं का एक भ्रमर (मन) निरन्तर निवास करता है। उस पुष्प से निकले फल का यदि सभी सेवन करते हैं तो वे उसी वासनाओं के स्वाद में डूब जाते हैं– उससे उत्पन्न अज्ञान के अंधकार की रात्रि कभी समाप्त नहीं होती। यह फल अंगूर के पेड़ के फूल से उत्पन्न होता है और वह वही रहता है–जहाँ मृत्यु रूपी भेंड़िया का निवास है। काल रूपी यह भेड़िया यहाँ निरन्तर सुखपूर्वक निवास करता है और प्रतिदिन पिंड के कलेजों को खाकर जीवन व्यतीत करता है। वह भेंड़िया (काल) मन के बीच में बैठा है और उसकी गरज से सारे पराक्रमी योद्धा भाग बैठते हैं। इस संसार में उस काल के कारण जीव रहने नहीं पाते और वह सब को चुन चुनकर खाता जाता है। मैं उसके बल का अनुमान कर रहा हूँ–उसने पृथ्वी के समस्त जीवों के बीच घेरा बना रखा है। अब इस शरीर की या वास्तविक मूल्यांकन समझो–उसका सादृश्य इस त्रयलोक में खोजा नहीं जा सकता।

अली एक बात अनतोली। सुनो सब संत की बोली॥ १०॥
कहै दस सीस वोही केरा। पाँउ पचबीस तन डेरा॥ ११॥
अली मुख तीति से खावै। अजब येहि बात में आवै॥ १२॥
तरंग तन बीच में भावै। समझ दस सीस पर लावै॥ १३॥
अरी थिर थोव नहि जाना। रहे भ्रम भाव रस खाना॥ १४॥
अली जिन अंड को फोड़ा। सुरति निज नैन से जोड़ा॥ १५॥

मुवा मन भाव का भेड़ा। चले सत नाम चढ़ि बेड़ा॥ १६॥
तुलसी तब बूझ में आई। अगम सब समझ दरसाई॥ १७॥
लिये सत संत के चरना। बिधी बरतंत सब बरना॥ १८॥

अर्थ–हे सखी! एक अमूल्य बात सुनो, सारे सन्तों की बोलियों को भी सुनो! उसी को दस सिरों का रावण (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ) भी कहते हैं, उसके पच्चीस पाँव हैं। शरीर के विविध पच्चीस तत्त्व) और वह काल उन्हीं के बीच अपना निवास (डेरा) बनाये हुए है। यह एक अजीब बात सुनने में आती है कि वह मुख की तिक्तता से उनका भोजन करता है। उस तिक्त (कसैला स्वाद) से भोजन के बाद उसके शरीर में आनन्द आता है और अपनी समझ इन दसों इन्द्रियों पर प्रकट करता है। यह संसार कामनाओं के ज्ञान रूपी भ्रम में समाया रहता है और उसमें निहित मूल तत्त्व को नहीं समझा।

हे सखी! मैंने जिस पिंड को फोड़कर संचित किया, वहाँ मैंने अपने आत्मा के नेत्रों को सुरति से सम्बद्ध किया– उस मृत भाव का मन रूपी भेड़िया सतनाम की नौका पर चढ़कर उस पार चला गया। तुलसी साहब कहते हैं कि इसके बाद ही बात समझ में आई कि जो कुछ अगम्य था, वह दिखाई पड़ने लगा। मैंने सन्तों के चरणों से यह सब कुछ ज्ञान प्राप्त करके सम्पूर्ण रहस्यों का विधिपूर्वक वर्णन किया है।

॥ चौपाई ॥

फूलदास दिल समझ बिचारो। अस असभेद कबीर पुकारो॥
मन पचबीस पाँच सँग मूला। गुन तन बृच्छ बसै सहि सूला॥
बेली सुरति अंड पर लागी। दिल दुरबीन चीन्ह सोइ भागी॥
मन कर भर्म मूल थिर थावै। थिर कर सुरति निरत तत तावै॥
नित नित ऐनक आँखि दिखावै। लिखि कागद पर अच्छर पावै॥
निःअच्छर निरनै गति न्यारा। निरखि संत सो करै बिचारा॥
रेवतीदास रमज रस बूझा। जिन जिन को संतन मत सूझा॥

अर्थ–हे फूलदास! अपने हृदय में इस समझ कर विचार कर लो कि कबीरदास जी ने ऐसे-ऐसे रहस्यों का वर्णन किया है। मन के पच्चीस तत्त्व हैं और उनके मूल में पाँच ज्ञानेंद्रियां हैं और शरीर में तीन गुण (रज, तम एवं सत्त्व) अनेक संकटों को सहता हुआ निवास करता है। सुरति रूपी लता इस पिंड (शरीर) में लगी हुई है:वह परम सौभाग्यशाली है–जो हृदय रूपी दूरबीन द्वारा इसे पहचान लेता है। उसे जान लेने के बाद मन का भ्रम स्थिर हो उठता है–और सुरति उसे स्थिर करके उस संसक्ति तत्त्व से निरत कर देती है। यह सुरति आँखों में नये-नये ऐनक लगाकर नए नए दृश्यों को दिखाती रहती है और बाद में, कागज के ऊपर लिखकर ही उन अक्षरों (अनुभव प्रतीकों) को समझा जा सकता है।

वह परम तत्त्व अक्षरयुक्त है, और निर्णय शक्ति से विलक्षण भी है और सन्त जन उन्हें देखकर ही उन पर विचार करते हैं। इन रेवती दास ने भी उस आध्यात्मिक (रमज) रस को समझ लिया है–और उन्होंने भी समझा है–जिन्हें सन्त मत सुझाई पड़ा है (उनमें से वे भी एक हैं।)।

ये मन काल बड़ा बल भूता। पाँच पचीस संग मजबूता॥
तीनि गुनन तन मन बिचरागै। चलकर स्त्रुतिमन बिष रससाजै॥
तासे थिर करि सुरति लगावै। कंज कँवल बिधि बिच ठहरावै॥
पल पल सुरति सिखर निहारै। लीलगिरी पर समझि सिधारै॥

रबि रजकिरनि गगन के पारा। सूरति सतगुरु ऐन निहारा॥
सिखर निकर नभ द्वारे माई। सेता सहर अटारी जाई॥
स्याम कंज स्रुति दूरि बहाई। द्वैदल कँवल केल हिये आई॥
सरवर गिरजा गुरुपद माई। कंज कँवल तज पदम सुहाई॥
लघु दीरघ दल चारि बिराजै। सतगुरु सुरति मीन जहँ राजै॥

अर्थ–यह मन काल से भी बड़ा और मजबूत है। पाँच इन्द्रियों और पच्चीस तत्त्वों की संगति पाकर और भी शक्तिशाली हो उठा है। यह मन तीनों गुणों को लेकर शरीर में आनन्दित होता रहता है और यह मन निर्भव भाव से चलता हुआ विष रस (वासनाओं) से अपने को सज्जित कर लेता है। और यही मन, उनसे अपने को पृथक् और स्थिर करके सुरति के ध्यान समाता है और अपने को कमल दलों के बीच विधिपूर्वक स्थिर करता है। यही मन ही, प्रतिपल सुरति के शिखरों को देखा करता है और सारी सारी बातें समझते हुए उस नीलगिरि पर प्रस्थान करता है। सत्गुरु इसी मन के द्वारा सुरति की एनक से सूर्य की रज किरणों (आत्म चैतन्य के तेज को) को शून्याकाश के उस पार देखते रहते हैं। आकाश के द्वार पर शिखर है और उसका सेवन करने वाला उस स्थल पर स्थित अट्टालिका तक पहुँच जाता है। इसके पश्चात् श्याम-कमल को दूर खिसकाकर दो दलवाले कमल पर आकर क्रीड़ा करता है। पर्वत पर उत्पन्न सरोवर ही गुरु पद है। उसके बाद कमल पंखुरियों के बाद वहाँ वह विशिष्ट कमल शोभित होता है। वहाँ लघु तथा दीर्घ चार कमल दल शोभित होते हैं–सत्गुरु की सुरति वहाँ मछली (मत्स्य) की भाँति निवास करती हैं।

फूलदास ये लखि लखि बैना। सूरति द्वार पार की सैना॥
या से परें आदि घर न्यारा। या से अंत संत दरबारा॥
जिन सतगुरु की सैनबिचारी। सो गति बूझै अगम अपारी॥
ये मत पंत पंथ नहि भेषा। खोज–खोज पचि मुए अनेका॥
सुरतवंत गुरु सैन लखावै। सो चेला सतगुरु से पावै॥
पदम मध्य सत सतगुरु धामी। सूरति सिमटि सब्द अलगानी॥
जिमि सागर बागर भया सिंधा। सरिता समुँद मिलै जिमिबुन्दा॥
अस सूरति सिषसतगुरु पासा। सब्द गुरुमिलि किया निवासा॥
गुरु सिष धार धार इक जानी। ज्यों जल मिलि जल धार समानी॥
अस अस खोजकरै कोई भाई। नित हित संत चरन लौ लाई॥
तन मन धन संतन पर वारै। नित नित सतसंगति की लारै॥
दास भाव सतसंगति लीना। दीन हीन मन होइ अधीना॥

अर्थ–हे फूलदास मेरी बातों को आँखों से देख-देखकर और सुरति के उस पार की स्थिति को समझो। उसके बाद, अगम्य ब्रह्म का विलक्षण घट है, यहीं से सन्तों के दरबार का अन्त हो उठता है। जिन सन्तों ने सत्गुरु की इस दृष्टि (देना) पर विचार कर लिया है, उस अगम्य एवं अपार गति को वही समझ सकता है। सुरतिसिद्ध गुरु ही उस सेना दिखाई पड़ता है और उसका शिष्य ही उस सत्गुरु से उसे प्राप्त कर सकता है। इसी पद्म के मध्य में वह सत्-सत्गुरु निवासी है और यही सुरति भ. सिमट कर 'सबद' आगम हो उठता है। जैसे समुद्र जलराशियों (बागर) से मिलकर प्रबल सिन्धु हो उठता है और जिस प्रकार बूँदें नदी से मिलकर समुमय हो उठती हैं–ऐसा ही सुरति सिन्धु सत्गुरु के पास है और बूंद

रूपी सब्द गुरु उसमें मिलकर वहाँ निवास करता है। गुरु की शिक्षा का सार तत्त्व उसकी एक धारा है और 'सबद गुरु' यहाँ मिलकर निवास करता है। हे भाई! यदि इस प्रकार की खोज कोई करता है तो तो वह लोक हित के लिए नित्य सन्तों के चरणों में तल्लीन हो सकता है–अन्य नहीं। सम्पूर्ण अपने तना, मन, धन को वह साधक सन्तों के चरणों पर बिछाकर करता है और नित्य सत्संगति के प्रति संसक्तभाव से रमे।

चित्तभाव दिल मारग चावै। सब साधन की टहल सुहावै॥
ये बिधि भाँति रहै रस लाई। तब सतगुरु सत दया लखाई॥
द्वारा दृग दुरबीन लखावै। कंज स्याम ता समझ सुनावै॥
ता में समुन्दर स्रोत अपारा। ता में लील पील सम द्वारा॥
सूरति समझि बूझि जहँ आवै। गज गिरजा तहँ आसन लावै॥
नित दिन रहै सुरति लौ लाई। पल पल राखै तिल ठहराई॥
या में सुरति नेक नहिं बिसरै। छिन छिन मन से न्यारी पसरै॥
येहि बिधि जतन करै कोई लाई। सूरति रहै द्वार पर छाई॥

अर्थ–दासभाव से वह सत्संगति में लीन हो और अत्यन्त दीन मन (गर्वरहित भाव से) उनके चरणों में लवलीन (समर्पित) हो। इस विधि से तथा इस भाव से सत्संगति में संसक्त रहे, तभी उसे सत्गुरु की सच्ची दया दिखाई पड़ेगी। अपनी अन्तर्दृष्टि की दूरबीन द्वारा वह देखे तब श्याम कमल की समझ उसके चित्त में आएगी। उस श्याम कमल के अन्तर्गत अनेक समुद्रों के जलस्रोत हैं और उसमें नीले-पीले तथा समतल द्वार हैं। सुरति समाधि भी जहां समझ-बूझकर आती है वहाँ गणेश एवं दुर्गा दोनों आसन प्राप्त करते हैं। नित्य-प्रति -नित्य सुरति में लवलीनता लगाए रहो और प्रतिपल तिल सदृश हृदय को स्थिर रखो। इन क्षणों में सुरति लेखमात्र भी विस्मृत न हो और वह क्षण-क्षण इस मन में विलक्षण होकर फैलती रहे। इस प्रकार का प्रयत्न कोई मन लगाकर करे तो सुरति (निरन्तर) उसके चित्त के दरवाजे पर बराबर स्थित मिलेगी।

॥ फूलदास उवाच ॥ चौपाई ॥

फूलदास कहै अन्तरजामीं। अगम बस्तु दीन्ही सहदानी॥
सुनी न भेष पंथ के माईं। अजर पंथ मो को दरसाई॥
मो को कीन्ह सनाथी स्वामी। आदि अलख की दीन्ह निसानी॥
अब तौ रहौं चरन लौ लाई। जो कबीर सो तुलसि गुसांई॥
जो कबीर बिधि भाखि बताई। सो सो सब तलसी पै पाई॥
तुलसि कबीर एक कर जाना। दूजा भाव न मन में आना॥

अर्थ–फूलदास (ये बातें सुनकर) बोले, हे अन्तर्यामी! आपने भेंट के रूप में मुझे यह दुर्लभ वस्तु दी है। पंथ के बीच भेष रचना की बात मैंने नहीं सुनी थी, आपने तो मुझे न नष्ट होने वाला सनातन तत्त्व दिखाया है। हे स्वामी! आपने तो मुझे सनाथ कर दिया है और आदि तथा उन लक्ष्य के तत्त्वों को भेंट के रूप में दिया है। अब तो मैं निरन्तर आपकी ही चरणों में समर्पित रहूँगा–मेरे लिए जैसे कबीरदास जी थे, अब तुलसी साहब हैं। जिस रहस्य को कबीरदास जी ने कहकर बताया है, उन सारे तत्त्वों को मैंने प्रत्यक्षत: तुलसी साहब से प्राप्त किया है। अब मैं कबीर तथा तुलसी साहब को समझ रहा हूँ और उन दोनों के प्रति दो प्रकार के भावों (अन्यथा भाव) को नहीं रखता।

॥ दोहा ॥

तुलसी कबीर ये एक गति, दूजा कहे अचेत।
दोनों स्वामी एक रस, मोर चरन से हेत॥

अर्थ–तुलसीदास तथा कबीरदास दोनों एक ही ज्ञानधारणा के हैं, इन्हें दो कहने वाले मूर्ख हैं। मेरे लिए आधार स्वरूप ये दोनों स्वामी एक ही आनन्द सागर हैं।

॥ वचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई॥

तुलसी बिधि पहिचानि कै, दीन्हा पंथ लखाइ।
सुँरति बाँधि असमान पर, निज घर पहुँचें जाइ॥

अर्थ–तुलसी साहब ने साधनावधि पहचान कर उन्हें अपना पंथ दिखा दिया और फूलदास शून्याकाश में सुरति बाँधकर अपने आश्रम के आवास पर पहुँचे।

॥ छंद ॥

तुलसी बिधि गाई अगम लखाई। फूलदास बिधिराह लई॥ १ ॥
रेवती अतिदासा सुरति निवासा। तिल में बासा जुगति सही॥ २ ॥
राति और दिवसा छिन छिन बासा। सुरति अकासा निरतिरही॥ ३ ॥
मन सूरति लागी नेकन भागी। निस दिन जागी ठहरतहीं॥ ४ ॥
रेवती और फूलास्वामी अनुकूला। सूल बंध सब काटि दई॥ ५ ॥
मनहीं बुधि पाई मूल नसाई। स्वामी सहाई बाँह गही॥ ६ ॥
मन के भ्रम भागे थिर होइ लागे। कुछ अभिलाषा नाहि रही॥ ७ ॥
मन की बृत चेती छाँड़ि अचेती। केतद्वार पर लागिरही॥ ८ ॥
तुलसी कहिकहिया अगम लखैया। चरन पाइ स्तुतिपागि रही॥ ९ ॥

अर्थ–तुलसी साहब ने अपनी साधना विधि का गान करके उस अगम तत्त्व को दिखा दिया और फूलदास ने उस साधना मार्ग का अनुगमन कर लिया। रेवतीदास जैसे समर्पित भक्त ने सुरति समाधि में निवास करके युक्तिपूर्वक सिद्धि प्राप्त कर ली। सुरति रूपी आकाश में रात्रि-दिवस क्षण-क्षण निवास प्रारम्भ किया और (अन्तर्वृति) सुरति (अपने स्थान पर) स्थिर रही। रेवतीदास एवं फूलदास के अनुकूल होकर तुलसी साहब ने कर्मबन्धन की उनकी पीड़ा समाप्त कर दी। उनके सहायक स्वामी तुलसीसाहब ने बाँह पकड़ लिया–दोनों ने उन्हें मन तथा बुद्धि से प्राप्त कर लिया और उनकी मूल कर्म वासनाजनित पीड़ा समाप्त हो उठी॥

सहायता करने वाले स्वामी ने मेरी बाँह पकड़ ली और मन तथा बुद्धि द्वारा उस परम तत्त्व को प्राप्त कर लिया–अविद्या एवं वासनाएँ जो सबके मूल में थीं, नष्ट हो उठीं। मन के समस्त भ्रम दूर हो गए और आध्यात्मिक भावनाएँ स्थिर होने लगी और अब इस लोक के भोग की कोई भी अभिलाषा शेष नहीं बच रही। अर्थात्, वे सब विनष्ट हो उठी। वह जो चित्त को अचेत करने वाली वासनाएँ थीं, उसे छोड़ दी और मन की वृत्ति सुरति योग की ओर लगी सचेष्ट हो उठी। इस प्रकार तुलसी साहब ने अगम के रूप में लक्षित होने वाले उस परमार्थ तत्त्व को कहकर बताया और सन्तों के चरणों को पाकर उनकी मानसवृत्ति परम्परा के साधु सन्तों की ज्ञानवाणी में रमी रही।

॥ सोरठा॥

फूलदास सुनु बात, संत चरन अति अगम गति।
सत मत गति पद सार, ये अगार गति को लखै॥ १॥
कोइ जानै स्त्रुति सार, सब्द लार लै पार रहि।
सिंध बुन्द स्त्रुति धार, मिलि अगार अद्‌बुद भई॥ २॥

अर्थ–हे फूलदास! मेरी बातें सुनों, सन्तों का चरण अर्थात् उनकी शरणागति अत्यन्त विलक्षण है। उसकी शरणागति का ही सार तत्त्व सन्तों का मत और उनकी ज्ञानप्राप्ति है। उनके शरण में आकर भक्तजन आगे आने वाले दुर्लब ज्ञान का साक्षात्कार करते हैं।

शब्द ज्ञान में संसक्त होकर कोई बिरला ही श्रुति के सार तत्त्व को समझता है और उसी के द्वारा ही वह उस विलक्षण तत्त्व को देखता है। सिन्धु में बिन्दु के मिलन ही श्रुति की धारा है और उस धारा से मिलकर यह अद्‌भुत हो उठती है।

सम्बाद प्रियेलाल गुसाँई के साथ

॥ चौपाई॥

नाम जाति इक अग्गरवाला। कहैं नाम तेहिं सुरति गुपाला॥
जिन के गुरु गुसाँई आये। प्रियेलाल अस नाम रहाये॥
उन उनके घर किया निवासा। सुन सोइ बात दरस अभिलासा॥
जिन पुनि सुनी हमारी बाता। दोऊ चले दरस को साथा॥
प्रियेलाल और सुरति गुपाला। आये लिये हाथ में माला॥
आये कीन्ह डंडवत बैठे। प्रीति उठी तुम दरसन भेंटे॥
कहै तुलसी किरपा तुम कीन्हा। दासजानि प्रभुदरसन दीन्हा॥
अपन जानि प्रभु भयउ दयाला। स्वामी बिन किरपा को पाला॥

अर्थ–एक अग्रवाल जाति के व्यक्ति जिनको सब सुरति गोपाल कहते थे–उनके गुरु गोसाई साधु आए– जिनका नाम प्रिये लाल था। उन्होंने सुरति-गोपाल के यहाँ निवास किया–इन बातों को सुनकर उन्होंने सन्त तुलसी साहब को देखने की अभिलाषा प्रगट की। उन लोगों ने जो जो हमारी बातें सुनी थीं, उनसे प्रेरित होकर दर्शन की अभिलाषा से चल पड़े। प्रियेलाल और सुरति गोपाल हाथ में माला लिए हुए आए। उन्होंने आकर तुलसी साहब को दंडवत् किया और कहा कि हमारे मन में आपके प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ कि आपका दर्शन करें।

इसे सुनकर, तुलसी साहब बोले, कि आपने बड़ी कृपा की और मुझे दास समझकर मुझपर कृपा की। अपना समझकर आप मुझपर दयालु हुए बिना स्वामी के अपनी कृपा से कौन शिष्य का पालन कर सकता है।

प्रियेलाल उवाच ॥ चौपाई॥

प्रियेलाल कह भये प्रसन्ना। भीतर प्रेम मगन प्रिये मन्ना॥
स्वामी दुरलभ दरस तुम्हारे। संत दरस बड़ भाग हमारे॥
नगर नारि सब यों बिधि भाखा। सो बिधि तौ हम एक न ताका॥
सब मिलि कहैं गनर के माईं। उन दरसन नहिं जावौ भाई॥

बेद पुरान एक नहिं जानै। राधा कृष्न राम नहिं मानै॥
गंगा जमुना कछू न राखै। कछु नहिं आदि अंत को भाखै॥
सब जग मिलि ये कहत बनाई। सो बिधि सुनि हमहूँ चलि आई॥

अर्थ–इस बात पर अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रियेलाल ने कहा। वे मन से अत्यन्त प्रिय और भीतरी प्रेम से अत्यधिक विह्वल थे। हे स्वामी–आपका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है और हमारे बड़े भाग्य से आप जैसे सन्त का दर्शन हुआ है। नगर के समस्त नर-नारियों ने इस प्रकार (निषेध द्वारा) मना किया किन्तु उनकी ओर देखा तक नहीं। नगर के अन्तर्गत सभी एक साथ मिलकर कहते हैं कि हे भाई! उनके दर्शन के लिए न जाओ। वे एक भी वेद पुराण को नहीं जानते और राधा-कृष्णा तथा राम पर विश्वास नहीं करते। गंगा-यमुना जैसी पवित्रा नदियों को नहीं स्वीकार करते और किसी भी मनुष्य के लिए कर्म और मुक्ति की बात नहीं करते। सारा लोक समुदाय इस प्रकार की बातें बनाकर कहता है, उनकी बातें को सुनकर हम भी यहाँ चले आए।

॥ वचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

कहि तुलसी उन सत सत कहिया। मैं मति-हीन बुद्धि नहि रहिया॥
मैं तौ सब चरनन कौ दासा। मैली बुद्धि नीच मोरी आसा॥
तुम्हरे चरन मोर निरवारा। पकरि हाथ करिहौ निस्तारा॥
मैं औगुन की खानि अपारा। सूरति संत चरन की लारा॥
मोर निबाह तुम्हारे हाथा। अब तौं लगौं चरन के साथा॥

अर्थ–तुलसी साहब यह सुनकर बोले, वे सही-सही कह रहे हैं। मैं तो ज्ञानहीन हूँ, मुझमें बुद्धि नहीं है। वै तो सभी जनों के चरणों का दास हूँ–मेरी बुद्धि मैली है और सारी आकांक्षाएँ निष्कृष्ट कोटि की हैं।

आपके ही चरणों में मेरा उद्धार सम्भव है और मेरे हाथों को थाम्हकर मेरा उद्धार कर दें। मैं अनन्त अवगुणों की खान हूँ और सुरति ध्यान में लगे सन्तों के चरणों में मुझे अपार संसक्ति है। आपके हाथ ही मेरा निर्वाह सम्भव है और अब तो मैं आपके चरणों के साथ लग रहा हूँ।

॥ प्रश्न प्रियेलाल ॥ चौपाई ॥

हे स्वामी अस अस कस भाखौ। हम जग जीव चरन में राखौ॥
काम अरु क्रोध लोभ के माते। विष रसभोग फिरै सँग साथे॥
ये जग जाल काल दिन राती। कर्म भाव भरमै सँग साथी॥
हम चहले के जीव अनीती। छूटे तुम चरनन की प्रीती॥
श्रीभगवान जी कहत पुकारा। मैं तौ सदा संत की लारा॥
गीता मैं अरजुन से भाखा। मो से बड़ा संत को राखा॥
श्रीमुख ऐसे आप बखान्यो। मों से अधिक संत के जानो॥
मो को संत भाव रस नीका। जगत भाव रस लागै फीका॥
श्रीमत में अस कहत बखानी। भागवत में ऊधो से बानी॥
स्वामी तुम सा संत सुजानी। हम निस्तार चरन में पानी॥
संतन की गति बेद पुकारा। नेतहि नेत न पावै पारा॥

महातम सब सब मिलि भाखा। सब से बड़ा संत को राखा॥
मैं स्वामी इक पूछौ बानी। किरपा करि भाखौ सहदानी॥
दास भाव पूछौ मैं स्वामी। या में भेद भाव नहिं जानी॥

अर्थ–हे स्वामी! आप इस प्रकार क्यों कह रहे हैं–हम जैसे सांसारिक जीव आपके चरणों में लगे हुए हैं। हम सभी काम-क्रोध तथा लोभ में रमें हैं और विषय वासनाओं के रसभोग और विष रूपी विषय वासनाओं के भोग विलास में निरन्तर साथ-साथ घूमते रहते हैं॥

यह संसार का जंजाल रात-दिन काल का जन्मा है और हम सब कर्मभाव से निरन्तर-संगी साथियों के साथ इसी में भ्रमित रहते हैं। अनीति करने वाले हम सब जीव कीचड़ में संसक्त हैं और आपके चरणों में प्रीति के बाद ही उससे मुक्ति सम्भव है। मैं श्रीभगवान जी को पुकार कर कहता हूँ कि मैं तो सदा सन्तों के प्रति प्रीतिपूर्वक समर्पित हूँ। गीता में भगवान ने अर्जुन से कहा था–मुझसे बड़ा सन्तों का रक्षक और कौन है? हे तुलसी साहब! आप भी इसी भाव से अपने श्रीमुख द्वारा वर्णन करें। मुझे भी सन्तों का भाव एवं उनकी वाणी का रसास्वादन अच्छा लगता है और उसकी तुलना में सांसारिक रस तथा भाव फीके लगते हैं। श्रीमद्‌भागवत में ऐसा ही (श्री कृष्ण द्वारा) उद्धव से कहा गया है। आपकी भाँति चतुर एवं विलक्षण स्वामी बिरले हैं और हम जैसे भक्त अपना जीवन यापन आपके चरणों में ही समझते हैं। सन्तों के विषय में वेदों ने पुकार कर कहा है, उनकी महिमा की कोई इति नहीं है, वे नेति हैं–उसका कोई पार नहीं पा सकता। सभी ने मिलजुलकर उनके महात्म्य का वर्णन किया है और उन्होंने सन्त को सर्वोपरि स्थापित किया है। हे स्वामी! मैं आपसे एक बात पूँछना चाहता हूँ–कृपा करके आत्मीयतापूर्वक मुझे बताइये। हे स्वामी! मैं इसे दासस्यभाव से पूछ रहा हूँ और मैं इसमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रख रहा हूँ।

पहिले जग के बेद बनावा। यह रचना कौने बिधि आवा॥
जीव कहाँ से आया कहिये। केहि बिधि कर्म माहिं भौ रहियै॥
जीव मुक्ति कैसे करि पावै। अपने घर को केहि बिधि जावै॥
माया मोह जगत अँधियारा। और अज्ञान काम की लारा॥
ऐसे जीव छुटन नहिं पावै। अपने घर को केहि बिधि जावै॥
अपना ज्ञान न सतसंग मानै। गुरु बिन राह कौन बिधि जानै॥
सतगुरु मिलै तो बाट बतावै। जब कोइ जीव मुक्ति को पावै॥
गुरु सम बड़ा और नहिं कोई। ये भगवान कही मुख सोई॥
गुरु द्रोही पातक का मारा। कभी न उतरै भौ के पारा॥
गुरु बिन कर्मनास को करई। भर्म माहिं भौंजल में परई॥
गुरु से बड़ा और नहिं रहिया बेद। पुरान संत अस कहिया॥

अर्थ–संसार में सबसे पहले वेद बनाए गए–यह रचना किस प्रकार से पहले आई। यह जीव कहाँ से आया, आप यह बताएँ–और यह जीव किस प्रकार कर्मभाव में भ्रमित हो उठा। यह जीव किस प्रकार मुक्ति प्राप्त कर सकता है और अपने स्वधम (स्वर्ग आदि) में कैसे पहुँच सकता है। माया के अज्ञान मोह में यह सम्पूर्ण संसार अंधेरा हो उठा है और उसमें मानव का अज्ञान काम की संसक्ति ही है। ऐसे जीव, अज्ञान से मुक्त नहीं हो पाते और फिर से अपने घट (स्वर्ग आदि) में कैसे जाएँ। वे सत्संग को भी आत्ममुक्ति का ज्ञान हीं मानते और बिना गुरु के जिस प्रकार मुक्ति मार्ग को चुनें, यह अस्पष्ट है। कोई सत्गुरु मिलने पर ही मुक्ति का मार्ग बता सकता है और तभी कोई जीव मुक्ति को प्राप्त कर

सकता है। गुरु से बड़ा और कोई नहीं है–ऐसा भगवान कृष्ण ने स्वयं अपने मुख से कहा है। गुरु का द्रोही महापाप (पातक) से ग्रस्त है और वह कभी इस संसार से मुक्त नहीं हो सकता। बिना गुरु के कर्मों का विनाश कौन कर सकता है? और बिना गुरु के व्यक्ति भ्रम से ग्रसित होकर भवजाल में जा पड़ता है। पुराणादि और सन्तजन यही कहते हैं कि गुरु से बड़ा और कोई नहीं है।

॥ उत्तर तुलसी साहिब । चौपाई ॥

तुलसी कहैं ये सत्त बखाना। अस अस बेद पुरान न जाना॥
ये तुम भाखा सत्त प्रभावा। बेद पुरान येही बिधि गावा॥
पुनि संतन कछु और बखाना। सतगुरु मता भिन्न करि जाना॥
जगत गुरू कंठी गहि बाँधा। ता को गुरू कहौं पुनि साधा॥
यह ब्यौंहार गुरू जग सोई। मुक्ति गुरू कोइ औरै होई॥
ये तौ गुरू जगत ब्यौहारी। इनसे मुक्ति न होइ बिचारी॥
कर्म जाति देही गुरु करई। कर्म भोग इनसे नहिं टरई॥
गुरू है आप करम के माईं। चेला को कैसे मुक्ताई॥
गुरु की करनी गुरु सोइ पावै। चेला आप कर्म भुगतावै॥
जगतगुरू जिव पार न पावै। वो गुरु संत और गोहरावै॥
कनफूका गुरु नहीं कहाई। गुरु दयाल की औरै राही॥

अर्थ–तुलसी साहब प्रियेलाल गुसाईं को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुम पर सत्य कह रहे हो। इसका रहस्य भेद और पुराण भी नहीं जानते। यह तुमने गुरु के प्रभाव का सही-सही वर्णन किया है, इसी प्रकार से इनके विषय में वेद पुराणों ने भी कहा है। इसके बाद इसके विषय में सन्तों ने कुछ और कहा है और सत्गुरु के मत को तुम परम्परा के मतों से भिन्न करके समझो। ये जगतगुरु संत गले में कंठी नहीं बाँधते, उन्हीं को साधुजन गुरु कहते हैं। कंठी गुरु का व्यवहार तो सांसारिक रीति है किन्तु मुक्ति दिलाने वाला गुरू कोई अन्य ही होता है। ये कंठी वाले गुरु व्यावहारिक संसार के हैं:इनके द्वारा मुक्ति सम्भव नहीं है। देह के कर्मों में विश्वास रखने वाला यह गुरु उसी के अनुसार कर्म करता है: अतः इनसे कर्मभोग की मुक्ति सम्भव नहीं है। जब गुरु स्वयं कमर तक फँसा है तो वह चेलों के लिए कैसे मुक्तिदायी हो सकता है? गुरु स्वयं अपनी करनी का फल भोगता है और चेला भी अपने कर्मों से ही इस संसार के कष्टों को भोगता है। यह सांसारिक गुरु स्वयं तो इस संसार से मुक्ति नहीं प्राप्त करता-दूसरी ओर वह अन्य शिष्यों को मुक्ति के लिए निरन्तर बुलाता रहता है। कान फूंकने वाले (कान में मंत्र देने वाले) गुरु गुरु नहीं कहलाते। कृपालु सर्व दयालु गुरुओं की राह दूसरी ही है।

वे दयाल गुरु समरथ दाता। जग भौजाल पार के करता॥
गुरु है सब्द सुरति है चेला। चीन्है गुरु चेला सोइ मेला॥
वे गुरु स्वामी अगम अपारा। पिंड ब्रह्मंड दोउ से न्यारा॥
ता के रूप रेख नहिं काया। वे गुरु मिलैं तो मुक्ति लखाया॥
ये तो गुरू कर्प की लारी। आप न तरे और कहा तारी॥
ये जानौ ब्यौहारी नाता। लेन देन पैसे के साथा॥
खान पान चेला से मांगै। गर्भ बास कर देने लागै॥

चेला जानि जाहि सो लेई। पुनि पुनि ताहि भोग करि देई॥
पुत्र बैल घोड़ा होइ ऊँटा। सो बिनु दिये कोऊ नहिं छूटा॥
ये गुरु लेन देन ब्यौहारा। गुरु चेला भौ कर्म पसारा॥
कंठी बाँध गुरू सोइ भइया। जग ब्यौहार नात यहि कहिया॥
जग में कन्या क्वारी ब्याही। करे ब्याह तेहि कहै जमाई॥
ब्याह किये का नाता लागा। येहि बिधि गुरु चेला मत जागा॥
सतगुरु मत पद अगम अपारा। ता को चीन्ह चीव होइ पारा॥
वो गुरु पंथ संतही जानै। जग गुरुवा नाहीं पहिचानै॥

अर्थ–ये गुरु दयावान हैं, समर्थ दाता हैं और इस संसार के भवजाल से ये मुक्ति दिलाते हैं। गुरु शब्द है, चेला सुरति है। जिस गुरु को चेला पहचान लेता है, वह उसी में मिल जाता है। यह गुरु ही स्वामी तथा आगम एवं अपार हैं। ये पिंड तथा ब्रह्मांड दोनों से विलक्षण हैं। उन गुरु के न रूप है, न लक्षण हैं, न शरीर है और वे ही गुरू जब मिलते हैं तो मुक्ति दिखाई पड़ती है। यह तो गुरु कर्म के प्रति संसक्ति है कि जब वह नहीं तरेगा तो दूसरे को क्या तारेगा। गुरु-शिष्य का लोक का सम्बन्ध लोक व्यवहार का है और उनके बीच का सम्बन्ध पैसे के लेन देन का है। वे अपने चेले से खाने-पीने की सामग्रियां माँगते हैं। चेला समझ कर जो चाहते हैं, उससे ले लेते हैं और पुनः उस वस्तु का भोग करते रहते हैं। पुत्र, घोड़ा, ऊँट तथा बैल आदि वे गुरु मागते हैं, और उसे दिए बिना कोई भी नहीं बचा। गुरु के साथ इस लेन-देन के व्यवहार में फँसे गुरु तथा चेला दोनों भवसागर के बन्धन में फँस गए। कंठी बाँधकर कर वह गुरू बना है, संसार में यही व्यवहार और सम्बन्ध गुरु कहा गया है। संसार में क्वारी कन्या व्याही जाती है संसार जिससे कन्या का विवाह करता है, उसे जमाई (जामाता) कहकर पुकारता है। सतगुरु का मत तथा पद अगम्य और अपार है और उसकी पहचान यहाँ नहीं, सुरति समाधि के उस पार के बीच में होती है। वे सन्त के मार्ग को भी गुरु मार्ग जानते हैं और इस भौतिक संसार में उसे गुरु के रूप में नहीं पहचानते।

चेला बने जीव नहि हाना। गुरु सोई बनै कर्म की खाना॥
बिना भक्ति उबरै नहिं भाई। तासे सोई बनै कर्म की खाना॥
बिना भक्ति उबरै नहिं भाई। तासे संतन भक्ति दृढ़ाई॥
भक्ति बिना जिव जम करै होना। बिना भक्ति चौरासी खाना॥
बिना भक्ति कोइ पार न जाई। ता से भक्ति संत ठहराई॥
गुरु सेवा स्वामी को चीन्हो। ता से सदा काल आधीनो॥
स्वामी कठिन खोज करि पैहै। सतगुरु भेद संत समझैहै॥
स्वामी संत बिना नहिं पावै। बिना संत गुरु को दरसावै॥
जग के गुरू न जानै भाई। वे सतगुरु कठिन से पाई॥
दास बनै सतगुरु को पावै। दास बिना गुरु नहिं दरसावै॥

अर्थ–चेला बनने पर जीव की कोई हानि नहीं होती । यहाँ गुरु वही बनता है जो कर्मों की खानि में फंसा हो। चूँकि बिना भक्ति के चेलों का उद्धार सम्भव नहीं है, अतः सन्तों ने भक्ति की दृढ़ता स्थापित की है। गुरु की सेवा करते हुए उन्ही को स्वामी की भाँति पहचान लेता है, इसलिए वह मुक्त नहीं होता और वह सदा काल के अधीन रहता है। कठिन खोज के बाद ही स्वामी की प्राप्ति होती है, इसलिए

सतगुरु ही संत का भेद बतलाते है, अन्य और कोई नहीं। बिना सन्तों के स्वामी की प्राप्ति नहीं होती और बिना सन्त के गुरु को कौन मार्ग दिखा सकता है। जो जग के गुरु को नहीं समझते वे सतगुरु को भी बड़ी कठिनाई से जान पाते हैं। सत्गुरु का दास बनने पर ही, सत्गुरु को प्राप्त कर सकते हैं–बिना दास को सत्गुरु नहीं दिखाई पड़ते।

।। प्रश्न प्रियेलाल ।। चौपाई ।।

तुलसी स्वामी कहौ बुझाई। कौन बिधी सतगुरु को पाई ।।
कौन बिधी स्वामी दरसावा। कौन भक्ति से सतगुरु पावा ।।
वे गुरु कहाँ कहाँ है बासा। स्वामी का कहौ कौन निवासा ।।
कौन बिधी जो नजर में आवै। चेला कीन विधी से पावै ।।
सो बिधि भिन्न भिन्न दरसाई। जा से चित्त की संसय जाई ।।

अर्थ–हे स्वामी! तुलसी साहब ने समझाकर बताया है, कि किस भांति से सत्गुरु की प्राप्ति होती है। किस विधि से वह स्वामी दिखाई पड़ता है और किस भक्ति से सत्गुरु की प्राप्ति होती है। वे गुरु कहाँ है, उनकी निवासस्थली कहाँ है, उस स्वामी की निवासस्थली कौन-सी है। वह किस-किस प्रकार से दिखलाई पड़ सकता है, और शिष्य किस विधि से उन्हें प्राप्त कर सकता है। इस विधि के भिन्न-भिन्न स्वरूपों द्वारा उसे प्रकट करें–जिससे कि चित्त में स्थित इस विषय का संदेह समाप्त हो सके।

।। उत्तर तुलसी साहिब ।। चौपाई ।।

तमने गुरु अपने को जाना। आदि गुरू मत मर्म भुलाना ।।
कंठी बाँधि ज्ञान बतलावै। भक्त भये सतगुरु नहि पावै ।।
उन सतगुरु की राह नियारी। पावै संत चरन की लारी ।।
सतगुरु आप पुरुष हैं स्वामी। गगन कंज मद्ध अस्थानी ।।
पिरथम अष्ट कवल को बूझै। सहसदल कँवल पार होइ सूझै ।।
ता के परे चार दल भाई। ता से भिन्न दोइ दरसाई ।।
ता के आगे सतगुरु धामा। चौका मिलै गुरू परमाना ।।
पारब्रह्म जो कहिये ऐसा। ता के आगे सतगुरु देसा ।।
पारब्रह्म जेहि कहि गोहराई। ता ने सतगुरु भेद न पाई ।।
निरगुन सरगुन दोउ से नयारा। भिन इन से सतगुरु दरबारा ।।
यह चेला वो सतगुरु पावै। वो सतगुरु सोइ कर्म नसावै ।।
जहँ लगिवो सतगुरु नहिं पावै। तहँ लगि चेला निगुर कहावै ।।
वो सतगुरु चौथे पद स्वामी। ता की भक्ति संत सब ठानी ।।
सतगुरु फोड़ै गगन अकासा। तब पहुँचै सतगुरु के पासा ।।

अर्थ–तुमने अपने को गुरु समझकर आदि गुरु के मत के रहस्य को भुला दिया। कंठी बाँधकर ज्ञान की बातें करते हो और भक्त बनकर भी सत्गुरु को नहीं प्राप्त किया। उन सत्गुरु की राह विलक्षण है: कोई भक्त गुरु को सन्तों के आत्मीय प्रेम-से ही उसे प्राप्त कर सकता है। सत्गुरु स्वयं आत्म पुरुष-रूप (निर्गुण ब्रह्म रूप) है और उसका स्थान शून्याकाश में स्थित कमल के मध्य में है। प्रथम अष्ट कमल को समझो और यह सहस्त्रार कमल के उस पार सुझाई पड़ता है। हे भाई! उसके आगे चार दल

कमल है फिर उससे भिन्न दो दलों का कमल दिखाई पड़ता है। उसके आगे, सतगुरु का स्थान है और गुरु के प्रमाण रूप चौका यहीं मिलता है। उस परमब्रह्म के लिए जिसे ऐसा ही कहा जाता है, उसके आगे सतगुरु दिखाई पड़ता है। जिसे परमब्रह्म कहकर बुलाया जाता है, वह भी सतगुरु का रहस्य नहीं प्राप्त कर पाता। वह निर्गुण तथा सगुण दोनों से विलक्षण है—और सतगुरु का दरबार इन दोनों से भी भिन्न है। वह चेला जो उस सतगुरु को प्राप्त करता है। सतगुरु वह है, जो कर्मों के फलों का विनाश कर देता है। जब तक चेला सतगुरु को नहीं प्राप्त करता—वहाँ तक वह निगुण कहलाता है। वे सतगुरु चौथे पद के स्वामी हैं और सारे सन्तगण उन्हीं की भक्ति के लिए कटिबद्ध होते हैं। सतगुरु इस शून्याकाश को तोड़ डालता है, तब वह सतगुरु के पास पहुँचता है।

सो घर मिलि पहुँचै उन पासा। सो चेला सतगुरु का दासा॥
सोई घर से सब जिव आये। निरगुन सरगुन उनहिं बनाये॥
वा के पास जीव चलि जावै। सो जिव जाइ परम पद पावै॥
जहँ लगि वो गुरु नाहीं पावै। जगत गुरू सोइ निगुर कहावै॥
जगत गुरू सब निगुरा भाई। जल लगि गुरु नहिं गगन समाई॥
गुरु ने अपना गुरु नहि पाया। चेला हाथ कहाँ से आया॥
खाना द्रव्य टका के माईं। सो गुरु चेला घर घर जाई॥
ज्यों ब्योपारी हाट लगावा। ऐसे ये गुरु जग रस भावा॥
पेट काज दुकान लगाई। आप तरन की खबरि न पाई॥
कहै चेला को गुरू तरावै। अपनी तरन बिधी नहिं पावै॥
ये ब्योहार तुम्हारा भाई। सतगुरु की तुम सुधि बिसराई॥
जिन ने तन का ठाट सँवारा। जीव अंस का किया पसारा॥
किया पिंड तन रचा बनाई। सात दीप नौखंड रचाई॥
सो स्वामी है घट के माईं। ता से जीव सकल चलि आई॥
सो स्वामी घट माहिं समाना। सबहि संत ये कहत बखाना॥
पिंड ब्रह्मंड दोऊ से दूरा। बसै पास रहै सदा हजूरा॥

अर्थ—उस घर में उनसे मिलन करके ही वह उनके पास पहुँच पाता है, वहीं शिष्य सतगुरु का दास है। उसी घट से ही सारे जीव आए हैं और उन्होंने ही सगुण तथा निर्गुण को बना रखा है। उन सतगुरु के पास जब जीव चला जाता है तो वह जीव वहाँ जाकर परमपद प्राप्त करता है। जहाँ तक वह उन गुरु को नहीं प्राप्त कर पाता—वह निगुर ही जगत गुरु कहलाता है। इस प्रकार सारे जगत गुरु निगुरा हैं और जब तक वे गुरु के आकाश में प्रवेश नहीं करते (तब तक की स्थिति) ऐसी ही है। जब गुरु ने अपना ही गुरु नहीं प्राप्त किया तो (वह गुरु कैसे बना) और उसके हाथ में चेला क्यों और कैसे आ गया? भोजन और पैसे के लिए वह गुरु चेलाओं के घर घर घूमता है। जैसे किसी व्यापारी ने बाजार लगाया हो उसी प्रकार ये भी गुरु बाजार लगाकर सांसारिक रसों का आनन्द ले रहे हैं। इन्होंने उदरपूर्ति के लिए दूकान लगा ली है स्वयं उन्हें अपने तरने की चिन्ता नहीं है। ऐसा ही, व्यवहार तुम लोगों का है और तुमने सतगुरु की सुधि भुला दी है। जिस व्यक्ति ने इस शरीर के ठाट को सँवार रखा है—उसने (अपने पुनर्जन्म द्वारा) जीव के अंश के प्रसार प्रसार कर दिया है। इस शरीर रूपी पिंड का खूब साज-शृंगार कर रखा है—वह सात द्वीपों तथा नव खंडों के लिए अपनी रचना कर ली है। वह स्वामी तो शरीर के ही

अन्दर निवास करता है और उसी में सारे जीव प्रविष्ट होते रहते हैं। वह पिंड तथा ब्रह्मांड दोनों से दूर है, वह पास ही में रहता है और सदा स्वामी भी बना रहता है।''

वा का भेद संत से पावै। चढ़ै सुरति छिन छिन में जावै॥
दास होइ ढूँढ़ै सतसंगा। चरन संत के बाँधै चंगा॥
जाति पाँति मोटा मन त्यागै। संत चरन में संत करि लागै॥
गोसाँई स्वामी पद डारै। बाम्हन जाति पाँति मन मारै॥
नीचा होइ दीन पद धारै। मान और मनी करै सब छारै॥
अस अस समझ संत के चीन्हा। संत चरन में होइ अधीना॥
तब उनसे मारग कछु पावै। सतगुरु संत सोई दरसावै॥
वे कृपाल कहुँ राह बतावैं। पलक माहिं अगमन घर पावै॥
जीवत पावै घर में स्वामी। मुए गये की बात न मानी॥
जीवत मिलै सोई है लेखा। मूए भाखैं अंध अचेता॥
वा को बेद नेत गोहराई। ब्रह्मा बिष्नु राह नहिं पाई॥

अर्थ–उसका भेद सन्तों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और वह उनका सामीप्य पाकर क्षणभर में ही सुरति ध्यान के मध्य स्थित हो उठता है। दास वहीं है, जो सत्संगति खोजे, और सन्तों के चरणों में अपना मन बाँध दे। जाति पाँति के बड़प्पन को संसक्त इस मोटे मन को त्याग दे और सन्त बनकर वह सन्तों की चरणों में अनुरक्त हो। गोसाईं अपने स्वामि का पद त्याग दे और यदि जाति से ब्राह्मण है तो जातिपाँति के बड़प्पन को मन से दूर कर दे। वह अत्यन्त छोटा बनकर अपनी लघुता धारण करे और अपने सम्मान तथा मन में स्थित वासनाओं को नष्ट कर दे। सन्तों की समझ इसी के अनुरूप होती है और वह सन्तों के चरणों के अधीन हो। तभी कोई सन्त उनसे मार्ग प्राप्त कर सकता है। जो सत्गुरु और संत है, वही यह मार्ग दिखा सकता है। वे सन्त-गुरु कृपालु है, वे मार्ग बताते हैं और साधक क्षण भर में ही उस अपने अगम्य घर को प्राप्त कर लेते हैं। जीते-जी -ही वह अपने गृह स्वामी को प्राप्त कर लेते हैं और मृत होकर पाने की बात यह नहीं मानते। वह जीवित स्थिति में ही साधक को प्राप्त हो क्योंकि कि मृतक को तो अंध और अचेत माना जाता है, वह उसे क्या प्राप्त करेगा। जिसको बेद 'नेति' कहकर गुहराते हैं–जिसके मार्ग को ब्रह्मा तथा बिष्णु तक नहीं प्राप्त कर सकते।

ऋषी मुनी पुनि कहैं पुराना। सिव जोगी कोई मरम न जाना॥
दस औतार जगत जिव माया। निरंकार जोती से आया॥
निरंकार हैं सोल्हा भाई। पुरुष निरंजन जोति लगाई॥
निरगुन निराकार निरबानी। चारो नाम काल अभिमानी॥
चारो जुगन काल जिव चारा। सोइ जग जाल निरंजन डारा॥
जोति निरंजन किया बिचारा। ता से उतपन दस औतारा॥
दस औतार काल के जाना। जा में सगरा जगत भुलाना॥
निरंकार काल है भाई। जा ने तीनि पुत्र उपजाई॥
ता ने कीन्हा बेद बिधाना। सास्तर कीन्हे बेद पुराना॥
या में ऋषी मुनी सब बूड़ा। जग अज्ञान जीव भया मूढ़ा॥

देवल देव पषान पुजावै। तीर्थ बर्त सँग जनम गँवावै॥
ऊचें मन की राह बतावै। चारों जुग जिव खानि समावै॥

अर्थ–ऋषि-मुनि तो नाना प्रकार के पुराण बताते रहते हैं और उनके अतिरिक्त शिव और योगीजन भी उनके रहस्य को नहीं जानते। संसार में यह दशावतार जीव तथा माया की कथा है तथा ये निरंकार ज्योति से उत्पन्न हुए हैं। निरंकार सोलह रूपों में हैं। पुरुष ने निरंजन के लिए ज्योति को लगा दिया था। निर्गुण, निराकार, निर्वाणी तथा काल ये चारों नाम उसी (काल) अभिमानी के हैं। चारों युगों में काल ने ही जीव को जलाया था और उसी ने ही निरंजन को भी इस सांसारिक मायाजाल में डाल दिया। उसी निरंजन तथा ज्योति ने (पुत्रोत्पत्ति के लिए) विचार किया और उसी से दसों अवतारों की उत्पत्ति हुई। ये दसों अवतार काल से सम्बद्ध है। इन्हीं दस अवतारों में सारा संसार भूला बैठा है। हे भाई! काल निरंकार है और उसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उसने अनेक प्रकार के वेदविधान किए, उन्होंने शास्त्रों तथा वेद पुराणों की रचना की। सारे ऋषि मुनि इन्हीं शास्त्रों तथा पुराणों में डूबे हुए हैं। फलतः सारा संसार अज्ञानी एवं जीव मूढ़ हो गया। मंदिरों में देवता पाषाण निर्मित पूजे जाते हैं और तीर्थ तथा व्रतों के साथ वे सारा जीवन गँवा बैठते हैं। वे मन के लिए श्रेष्ठतम मार्ग बताते हैं किन्तु स्वयं भी चारों युग तक जीव के रूप में संसार की खानि में समाये रहते हैं।

निरंकार काल अरु जोती। डारै मारि जीव बिन मौती॥
दस औतार काल ठग केरे। ब्रह्मा बिष्नु पुत्र जम चेरे॥
ठग ठग मिलि सब जाल पसारा। अस नहिं होइ जीव निरबारा॥
निरंकार काल अन्याई। जोती ठगनी सब जग खाई॥
इनसे न्यारा पुरुष दयाला। जहँ नहिं पहुँचै जोत अरु काला॥
वो स्वामी संतन का प्यारा। वा घर संत करैं दरबारा॥
निरंकार से पुरुष नियारा। सो साहिब संतन का प्यारा॥
लोक तीन नहिं चौथे माहीं। जा घर संत करैं पाछाई॥
निरगुन सरगुन उहाँ न जावै। जोति न ब्रह्मा बिष्नु समावै॥
दस औतार की कौन चलाई। वा घर सतन सुरति लगाई॥

अर्थ–काल तथा ज्योति निरंकार हैं और वे दोनों जीवों को बिना मौत मार डालते हैं। ठग काल के दस अवतार हैं–ब्रह्मा और विष्णु दोनों काल के दास यम के पुत्र हैं। इस सभी ठगों ने मिलकर इस माया के जाल को फैला रखा है। इस प्रकार जीव का निर्वाह इस संसार में दुर्लभ है। यह निरंकार काल अन्यायी है और ठगिनी ज्योति सारे संसार को खा जाती है। इन दोनों से विलक्षण दयालु पुरुष है–जहाँ ज्योति और काल दोनों नहीं पहुँच सकते। वह स्वामी पुरुष सन्तों के लिए प्यार भरा है और उसके घर में संतजन दरबार लगाए रहते हैं। निरंकार से यह पुरुष विलक्षण है। वह स्वामी है तथा सारे सन्तों को प्रिय है। वह इन तीनों लोकों में नहीं, चौथे लोक में रहता है और उसके घर में सन्तगण बादशाहियत करते हैं।

वहाँ सगुण एवं निर्गुण नहीं जा सकते और वहाँ ब्रह्मा एवं विष्णु भी नहीं समाविष्ट हो सकते। वहाँ दस अवतारों की बात कौन कहे, उस घर में सन्तों ने अपनी सुरति समाधि लगा रखी है।

॥ सोरठा ॥

प्रियेलाल सुनु बात, संत गती न्यारी अगम॥
गुन निरगुन नहिं जोति, तिरदेवा औतार नहिं॥

अर्थ–हे प्रियेलाल! मेरी बातें सुनों, सन्तों की गति विलक्षण तथा अगम्य है। वहाँ (चतुर्थ लोक में) न गुण है, न निर्गुण है, न वहाँ ज्योति है, न उद्धार करने वाले देवता हैं और न कोई अवतार है।

॥ चौपाई ॥

जहाँ संत तहँ निरगुन नाईं। निरंकार जहँ जोति न भाई॥
दस औतार जान नहि पावै। ब्रह्मा बिष्नु महेस न जावै॥
जहँ नहिं बेद जहाँ नहिं बानी। इनसे पारे पुरुष अनामी॥
जहँ संतन की सुरति समानी। वो घर अगम संत से जानी॥
दीन होइ संतन सरनाई। तब कछु राह संत से पाई॥
फोड़ै गगन अगम को जाई। स्वामी सतगुरु भेंटै भाई॥
प्रियेलाल अस बूझि बिचारा। सब बिधि भाखि सोई निरवारा॥

अर्थ–जहाँ सन्त हैं, वहाँ निर्गुण नहीं है। हे भाई! जहाँ निरंकार है, वहाँ ज्योति नहीं है। दसों अवतार उसे जान नहीं पाते और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव वहां पहुंच नहीं पाते। न वहाँ वेद है, न वाणी है और वह अनामी पुरुष इन सबसे परे है। जहाँ सन्तों की सुरति समायी हुई है। सन्तों के होने से ही जान लेना चाहिए कि वह घट अगम्य है। दीन बनकर सन्तों की शरणागति में जाओ, तब कोई राहत सन्तों द्वारा प्राप्त की जा सकती है। वहाँ शून्याकाश को तोड़कर अगम्य में प्रवेश किया जा सकता है और वहीं सत्गुरु स्वामी से भेंट हो सकती है। हे प्रियेलाल! इस प्रकार के मेरे विचारों को समझो। मैंने उस रहस्य का वर्णन हर तरह से बता दिया:जिससे कि इसका निराकरण हो सके।

॥ प्रश्न प्रियेलाल। चौपाई ॥

तुम तो कहा बेद से न्यारा। अरु पुनि भाख अगम अपारा॥
तुम्हरी कहन कोऊ नहिं ठहरा। भाखा तुम ये अगमपुर डेरा॥
राधा कृष्न प्रिय इष्ट हमारा। तुम भाखा प्रभु और पसारा॥
सुनकर भर्म बहुत मोहिं आवा। तुम ने कछु कछु और सुनावा॥
येहि बिधि बेद कहत है नाईं। सो प्रभु मुख से भाखि सुनाई॥
हम करैं संध्या नेम अचारा। पूजा सेवा ठाकुर द्वारा॥
और सनातन धर्म हमारा। ठाकुर भोग अछूता सारा॥
मंदिर में कोई जान न पावै। बरतन कपड़ा छुवा न जावै॥
भोजन ठाकुर करै अछूता। करते बल हाथन के बूता॥
और अनेक अनेक बिचारा। कह लगि कहौं सुचा निरवारा॥

अर्थ–तुमने तो बताया कि यह वेद से विलक्षण है और पुन: कहा कि यह अगम एवं अपार है। आपके कथनों से कोई नहीं ठहर सका और आपने बताया कि उसका स्थान अगमपुर में है। राधा-कृष्ण मेरे प्रिय इष्ट है और आपने बताया है कि (उनके अतिरिक्त) दूसरे ईश्वर चारों ओर व्याप्त हैं। उसे सुनकर मुझे अत्यधिक भ्रम उत्पन्न हुआ है–क्योंकि आपने सारी कथाओं से भिन्न कुछ और सुनाया है। इस प्रकार से उनके विषय में वेद भी नहीं कहते जो कुछ आपने अपने मुख से कहकर सुनाया है। हम नियम एवं आचरणयुक्त होकर संध्या करते हैं और ठाकुर द्वार पर पूजा तथा सेवा करते हैं। यह हमारा सनातन धर्म है कि बिना ठाकुर भोग के यह सारा भोग पदार्थ अस्पर्श है। मंदिर के अन्दर कोई जाने नहीं

पाता तथा वर्तन एवं कपड़ों को छुपा नहीं जा सकता। ठाकुर जी भोजन बिना छुआ करते हैं और यह सब पुजारी के हाथों के बलबूते पर ही करते हैं। इसके अतिरिक्त भी इस विषय में अनेक विचार हैं–और उनकी शुचिता का निराकरण कहाँ तक करें॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब। चौपाई ॥

ये सब बात अनीती भाखी। सुनी कान देखी नहिं आँखी॥
ये तौ बहुत निष्ठ कहि भाई। कहे सुने से मन रिसियाई॥
ब्रह्म विभाव कर्म तुम कीन्हा। ये तौ निष्ठ अनीती लीन्हा॥
जनम अनेकन परिहौ खाना। ब्रह्म बिभाव संत नहिं माना॥
सब में आतम ब्रह्म बतावौ। चेतन ब्रह्म बिभाव लगावौ॥
तुम्हरै बेद पुरान बतावै। गीता भागवत सब मिलि गावै॥
सो तुम अपने मुखसे गाई। आतम ब्रह्म एक बतलाई॥
चर अरु अचर सब माहिं समाना। तुम्हरा सास्तर करै बखाना॥
कोउ-कोउ संतन कही बुझाई। एकै ब्रह्म सबन के माईं॥
कहिकै एक बिभाव बिचारौ। कौन बिधी ये ज्ञान तुम्हारौ॥

अर्थ–तुमने यह सारी बातें अनीति भरी कही है–न इन्हें कानों से सुना है और न आँखों से देखा है। हे भाई! यह तो बहुत निकृष्ट बातें कही हैं–इन्हें कहने सुनने से मन नाराज हो उठता है। यह तो तुमने ब्रह्म के प्रति भावनारहित कर्म किया है और ये तो बहुत अनीति एवं निकष्टता लिए हुए कार्य हैं। अनेक जन्मों में तुम इस भवखानि के चक्कर में पड़ोगे और सन्तजन इसे ब्रह्म के प्रति अच्छा भाव भी नहीं मानेंगे। सभी की आत्मा में ब्रह्म बताते हो और चेतन दशा में ब्रह्म की मूर्ति के लिए विभाव (विपरीत भाव) बतलाते हो। यह तुम्हारे ही वेद-पुराण बताते हैं तथा गीता तथा भागवत आदि सभी मिलकर यह गान करते है। इसे तुमने अपने मुँह से ही कहा है कि अनेक विद्वान हैं जो ब्रह्म और आत्मा को एक ही बतलाते हैं। तुम्हारा शास्त्र यह वर्णन करता है कि चर तथा अचर परस्पर एक दूसरे में समाया हुआ है। कोई-कोई सन्त तो यह समझा कर कहता है कि सबमें एक ही ब्रह्म है। इन बातों के कहने पर एक बात पर ध्यान हो कि यह तुम्हारा ज्ञान किस प्रकार का है।

पाँच तत्त नर आतम देही। एक तत्त पाहन को सेई॥
जड़वत देख दोऊ के संगा। चेतन देख दोऊ में रंगा॥
या में लघु दीरघ को देखा। मन अपने में करौं बिबेका॥
इक चेतन की पूजा थापौ। चेतन एक निष्ट करि राखौ॥
आतम चेतन निष्ट जो भइया। पाहन जड़ सुध केहि बिधि रहिया॥
पाहन को तुम सुद्ध बतावौ। चेतन को धरि दोष लगावौ॥
बिन चेतन सुध कैसे भइया। चेतन को तुम दोष लगइया॥
चेतन देही तुम्हरी कीन्हा। कै पाहन तुम को रचि लीन्हा॥
नादहि बिंद देह को लाजा। पूजौ पाहन को केहि काजा॥
पाहन मूरति येही बनाई। गढ़ी सिलावट छाती पाँई॥

ता कौ मंदिर ठाकुर थापी। चेतन ठाकुर मंदिर आपी॥
चेतन मंदिर बोलै माहीं। तुम्हरी आँखिन सूझै नाहीं॥

अर्थ–मनुष्य के चैतन्य शरीर में पाँच तत्त्व हैं–पत्थर में एक तत्त्व है जो उसकी रक्षा करता है। यहाँ मनुष्य और पत्थर दोनों में जड़ता को देखो और यह भी देखो कि तुम्हारी दृष्टि में चेतन तत्त्व दोनों में समाविष्ट है। जिसमें अधिक है और किसमें कम, यह किसने देखा है–तुम स्वयं इस बात का विवेक अपने मन में करो। एक चेतन (पत्थर के चेतन) की पूजा करके रखते हो और एक चेतन को हीन तथा तुच्छ (आपने को) समझते हो। इस पत्थर को तो तुम शुद्ध बताते हो किन्तु आत्म चेतन को दोषपूर्ण बताते हो। बिना चेतन की सहायता से यह बात कैसे तय हुई–इस पर भी तुम चेतन पर दोष लगा रहे हो। तुम्हारी आत्मा (तथा देह) चैतन्य से सम्बद्ध है, कि तुम्हारी रचना इस पत्थर ने की है। नाद तथा बिन्दु देह को स्थापित करता है कि किस लिए पत्थर की पूजा कर रहे हो। इसी मनुष्य ने ही यह पत्थर की मूर्त्ति बनाई है और उसकी छाती पर चढ़ कर उसे गढ़ा है। उसको मन्दिर में उठाकर ठाकुर के रूप में स्थापित कर दिया और ये ठाकुर चेतन बन कर मन्दिर में आ गए। (स्थापित हो उठे)। यह चेतन मनुष्य जाकर मन्दिर में बोलता (जै जै राम) करता है और क्या यह तुम्हारी आंखें में नहीं सूझ रहा है।

पाहन प्रेम जाइ सिर फोड़ौ। मंदिर बाल आतम तोड़ौ॥
ऊपर न्हाइ अचार जो कीन्हा। अंदरमन मैला नहि चीन्हा॥
न्हाइ जो धोइ रसोई कीन्हा। सुचि भोजन ठाकुर को दीन्हा॥
सुचि ठाकुर को भोग लगाई। माखी ता पर, बैठी आई॥
माखी का कछु कीन्ह बिचार। उठि बैठे भिष्टा की लारा॥
यही अचार करौ तुम भाई। माखी को चौकस नहिं लाई॥
दस औतार भये सब भाई। ता में तीन प्रतच्छ दिखाई॥
मच्छ कच्छ कहि और बराही। ये प्रतच्छ पूजों नहिं भाई॥
मुख से दस को भाखि सुनावौं। छाँड़ि प्रतच्छ तुम जड़ को ध्यावौ॥
यह अपने मन बूझौ ज्ञाना। सत अरु असत करौ पहिचाना॥
या में भाव अभाव न जानी। सत असत लखि पद पहिचानी॥
या में निंदा भाव न भाखी। सब संतन की देखौ साखी॥
निंदा आहि नरक की खाना। मिथ्या संत न करैं बखाना॥

अर्थ–प्रेमपूर्वक जाकर उस पत्थर पर अपने सिर को तोड़ो (प्रणाम करो), मंदिर में जाकर प्रणाम करते हो और अपनी आत्मा को नष्ट करते हो। ऊपर से स्नान करके शुचिता भरी पूजा का आचरण किया किन्तु अपने अन्दर के मैले मन को नहीं देखा। नहा धोकर उसने रसोई बनाई और और पत्थर के ठाकुर को पवित्र भोजन अर्पित किया। तुमने ठाकुर के लिए अपना पवित्र भोग लगाया किन्तु उसके ऊपर आकर एक गंदी मक्खी बैठ गई। हे भाई! तुम इसी प्रकार का आचरण करो किन्तु मक्खी की कोई चिन्ता नहीं है। हे भाई! दस अवतार हुए हैं जिनमें से तीन अवतारों में भगवान प्रत्यक्ष दिखाई पड़े हैं। इन्हें मच्छ, कच्छ तथा बाराही कहा गया है किन्तु हे भाई! तुम इनकी प्रत्यक्ष पूजा नहीं करते हो। तुम मुख से दस अवतारों को कहकर सुनाते हो, प्रत्यक्ष को छोड़कर तुम जड़ (कोरी कल्पना) के लिए दौड़ते हो।

इस ज्ञान को तुम अपने मन में ही समझो और इसी के द्वारा ही सत्य तथा असत्य पहचान करो। इसमें मैंने कोई निन्दा का भाव नहीं प्रगट किया है इसे तो मैंने सन्तों के साक्ष्यों द्वारा देखा है। निन्दा तो नरक की खान है और सन्त जन किसी तथ्य का मिथ्या वर्णन नहीं करते हैं।

प्रियेलाल कछु बूझि बिचारी। ये तुम ने कछु समझ सिहारी॥
पाँच तत्त बैराट बनाई। ता में सब ब्रह्मंड समाई॥
पाँच तत्त सरीर बिधाना। सोइ बैराट कहौ भगवाना॥
पिंड ब्रह्मंड एक करि राखौ। पुनि निंदा करि कस कस भाखौ॥
जो ब्रह्मंड में बिधी बताई। सो सब भाखौ पिंड के माई॥
रज गुन तमगुन सतगुन भाई। ये सब ब्रह्मा बिष्नु कहाई॥
गो इंद्री गोपिन कर नामा। मन को मोहन सभी बखाना॥
राधे रकार नाम समझाऊँ। पिंड पाँच पंडौ बतलाऊँ॥
मन द्वै दृष्टिलीन यहि माई। सोइ दो दृष्टि भाखि सुनाई॥
अरजुन बिधी बात समझाई। इंद्री जड़ी जो बन मन माई॥
भौ में सैन मन करै बुझाऊँ। ता को भीमसेन बतलाऊँ॥

अर्थ–हे प्रियेलाल! तुमने क्या इस विषय में समझा है–यह क्या तुमने कुछ समझ कर अनुभव (सिहारी) किया है। पाँच तत्त्वों ने मिलकर इस बैराट को बनाया है और उसी में सारा ब्रह्मांड समाया हुआ है। इन पांच तत्त्वों ने ही इस शरीर की भी रचना की है और उसी वैराट निर्मित शरीर को ही तुम भगवान कहो। जब पिंड तथा ब्रह्मांड एक हैं, तो एक-एक दूसरे की निन्दा कैसे-कैसे करके कह रहे हो। जो समस्त विधियाँ ब्रह्मांड की बताई गई हैं, वह तो सारी की सारी ब्रह्मांड में भी हैं। हे भाई! रजो गुण, तमो गुण एवं सतो गुण में त त्र हैं–इन्हीं के बीच ब्रह्मा विष्णु भी बताए गए हैं। गो शब्द का नाम इन्द्रियाँ हैं और वही गोपिकाएँ हैं और सभी बताते हैं कि मन तो मोहन कृष्ण है। मैं राधा का रकार नाम समझा रहा हूं–पाँचों पिंडों को पांडव के रूप में समझाता हूँ। इसमें दोनों दृष्टियों से लीन रहता है। उन्हीं के दृष्टियों को मैं कहकर समझाता हूँ। श्री कृष्ण ने अर्जुन को इस विधि से बात समझाई थी–ये जड़ इन्द्रियाँ ही हैं–जो मन बन जाती हैं। इस भवसागर में मन शयन करता है, मैं उसे बता रहा हूँ–उसी को भीमसेन कहा गया है।

भौ में असल नकल होइ गइया। ताकर न म नकुल हम कहिया।।
सादेह दीसै सनमुख भाई। नाद बिंद बिधी देह बनाई॥
बिंद से बना बिंद्राबन होई। जग के माहीं रहा समोई॥
बसै देव इंद्री के माई। मन बस देवन में रहा जाई॥
बिषय भोग रसदेव किये सारी। मन देवकी ये भौ रस डारी॥
जो सोधै मन धर को जाई। मनहिं जसोधा नाम कहाई॥
मन डूबा भय बल के माई। सो बलभद्र नाम है भाई॥
उदै कर्म मन दुख सुख माई। कर्म उदै मन मित्र कहाई॥
जमुना सुरति करै असनाना। सूरति चढ़ै फोड़ि असमाना॥
जहँ जमुना जमना अस्थाना। इंद्री गोरस कालहि जाना॥
गोरस गोकुल जानौ भाई। येहि बिधि पिंड ब्रह्माण्ड समाई॥

अर्थ–इस संसार में जो असत्य (वास्तविक) था, वह नकली हो गया और इसी नकली का नाम

नकुल है, वह देह सहित सामने दिखाई पड़ रहा है और यह देह नाद तथा बिन्दु संयोग से बनाया गया है। इसी बिन्दु से वृन्दावन बना है और वह सम्पूर्ण संसार में समा रहा है।

सारे देवता इनहीं इन्द्रियों के बीच निवास करते हैं और उसका मन तो जाकर देवताओं के वश में हो गया। सम्पूर्ण विषयभोग तो रसदेव कृष्ण ने किया और देवकी रूपी मन लोक रस (वासनाओं) में डाल दिया गया। जो मन रूपी घर का जाकर शोधन करे, वही यशोदा के नाम से पुकारा गया है। जो मन बल के भय में डूब गया, वही हे भाई। बलभद्र है। कर्म के उदय के साथ ही मन में सुख दुख उत्पन्न होते हैं, सुख के काल का उदित कर्म मन का मित्र कहा जाता है। यह मन निरन्तर यमुना रूपी सुरति में स्नान करता है और सुरति को फोड़कर यही शून्याकाश में प्रवेश कर जाता है। जहाँ यम नहीं है। वह यमुना है. अन्यथा काल देवता तो इन्द्रियों को गो रस समझकर खा जाते हैं। इस गोकुल को आध्यात्मिक रस समझो, इसी प्रकार यह पिंड ब्रह्मांड में समाया हुआ है।

ये नर देह मानुष के माई। देव ऋषी मुनि ताहि समाई॥
अरसठ तीरथ सकल पसारा। गद्दी गंडा भारि अठारा॥
सातौ दीप पृथी नौखंडा। तुम कहौ मनुष देह येहि पिंडा॥
कह लगि कहौं अनेक पसारा। यह ब्रह्मंड पिंड माहिं सँवारा॥
संत सुरति फोड़ै असमाना। पिंड में देखा सकल बिधाना॥
निरखा अनुभौ मुख से भाखा। पिंड राम कृष्न की साखा॥
पिंड में रामकृष्न लखवाया। वा अहीर पर नकल दिखाया॥
नकल की नकल सिलावट कीन्हा। ऐसी भूल भटक तुम लीन्हा॥
पाहन को थापौ भगवाना। येहि बिधि बुधि मति ज्ञान हिराना॥
येहि बिधि पिंड ब्रह्मंड समाना। ता को तुम छुतिया करि जाना॥
संतन भाखा दृष्टि हिये आँखी। ताको बिधि भिनि भिनि करिभाखी॥
संतन की तुम साखि मिटाओ। अँधरी आँखि भाखि समझावौ॥

अर्थ–मनुष्य का यह नर देह है जिसमें सभी ऋषि, मुनि तथा देवता समाविष्ट हैं। इसी में समस्त अड़सठ तीर्थ फैले हुए हैं और इसी में नब्बे (अठारह गंडे = एक गंडा बराबर पांच वस्तुओं में) गद्दियाँ भी फैली हुई हैं। सातों द्वीप और पृथ्वी के नवों खंड, इसे इस मनुष्य देह या पिंड के मध्य ही समझो। अन्य अनेक फैलावों में इसमें समाहित होने की बातें मैं क्या कहूँ। यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड ही इस पिंड के अन्तर्गत बनाया हुआ है। सन्तगुण सुरति समाधि द्वारा शून्याकाश को तोड़कर ही इस पिंड में ब्रह्मांड का सम्पूर्ण विधान देखते हैं। जो मैंने अपने अनुभव द्वारा देखा है–उसी का वर्णन अपने मुख से किया है–यही पिंड (शरीर) ही राम तथा कृष्ण का साक्ष्य है। नकल की नकल लेकर इस पिंड की सिलावट की गई है–इसीलिए तुम इस प्रकार की भूलभटक की बातें कह रहे हो। तुम लोग पत्थर को भगवान मानकर पूज रहे हो और इस प्रकार से तुम्हारी, बुद्धि, मति तथा ज्ञान भुला गया है। इस प्रकार, सम्पूर्ण ब्रह्मांड पिंड (शरीर) में समाया हुआ है और उसे तुम छुतहा करके समझ लिया है। सन्तों ने इन सबका वर्णन हृदय की आँखों से देखकर किया है–उसको तुम भिन्न-भिन्न तरीके से समझा रहे हो। तुम सन्तों के साक्ष्य मिटा दो और अपनी अंधी आँखों से कहकर सारी बातें समझाओ।

अपना पिंड न खोओ भाई। तुम पत्थर में ढूँढ़ौ जाई॥
खोज राह तुम दूर बहाई। सूरति पाहन माहिं लगाई॥
सूरति पाहन कीन्ही आसा। आसा अंत ताहि में बासा॥

सब मिलि टेरि टेरि गोहरावै। ढूंढ़ै मिलै पिंड में पावै॥
बेद पुरान माहिं बतलावै। बेद कहै तुहि तुहि समझावै॥
भागवत कहि कहि तहि बतलावै। सास्तर कहै तुहि तुहि गावै॥
संत कहै तुहि तुही सुनावै। सब कहि तुही तुही करि गावै॥
ते बुधि हीन सूझ नहिं पावै। ता से पाहन में मन लावै॥
है परतच्छ ब्रह्म तुहि आगे। जा को छुतिया करि करि भागै॥
भागवत सब्द ब्रह्म तुहि बोलै। सिना संत को पट्टी खोलै॥

अर्थ–हे भाई! तुम अपने पिंड का अस्तित्व मत समाप्त करो और उसे जाकर पत्थर में ढूंढ़ो, (यह गलत है) उस मार्ग की खोज करो जिसे तुमने दूर बहा दिया है–मन को सुरति ध्यान रूपी पत्थर में लगाओ (न कि मंदिर के पत्थर में)। सुरति रूपी पत्थर से आशाएँ करो और अन्त में देखोगे कि तुम्हारी सम्पूर्ण आशाएँ उसी में निवास घर रही हैं। इस सुरति समाधि में आपकी सारी आशाएँ टेर-टेर कर तुम्हें बुला रहीं हैं और सब खोजने के बाद पिंड में ही प्राप्त हैं। इसे बेद-पुराणों में भी समझाकर बताया गया है और शास्त्रादि कहते हैं कि वह ब्रह्म तू ही है, तू ही है ऐसा कहर समझाते हैं। भागवत पुराण भी कहता है कि वह तू ही है, वह तू ही है और सभी वह तू ही है, वह तू ही है–ऐसा कहकर गायन करते रहते हैं। किन्तु तुम सब बुद्धिहीन हो, तुझे वह सुनाई नहीं पड़ता–इसलिए तुम लोग पत्थरों में मन रमाए रहते हो। ब्रह्म तो प्रत्यक्ष रूप में तुम्हारे ही आगे है–जिसे छुतहा छुतहा कहकर तुम भाग रहे हो। भागवत तो तुम्हीं को ब्रह्म कहता है, तुम्हारे आँखों में पट्टी बाँधी हुई है और बिना सन्तों के यह पट्टी कौन खोले॥

॥ दोहा ॥

बिन सतसंग पावै नहीं, पढ़ि पढ़ि भर्म भुलान।
बेद भागवत पढ़न में, नहिं पावै सत सार॥

अर्थ–व्यक्ति शास्त्र पढ़-पढ़कर भ्रम में भूला हुआ है, क्योंकि वह बिना सत्संगति के तत्त्व प्राप्त नहीं कर सकता। वह बेद तथा भागवत आदि के अध्ययन के बाद भी सत्य का सार तत्त्व नहीं समझ पा रहा है।

॥ सोरठा ॥

संस्कृति बेदन माइ, खेद खेद खानै चलै।
संत भेद नहिं पाइ, इन सब से न्यारी कहैं॥

अर्थ–वेद में यह सम्पूर्ण संस्कृति है, उसे बाहर करके तुम भी भवसागर की पीड़ा की खानि में पड़े हो–संत का भेद तुमने नहीं प्राप्त किया है, इसलिए तुम न्यारी बातें कह रहे हो॥

॥ छन्द ॥

तुलसी बिधि भाखी संतन साखी। देखौ आँखी आप तुही॥
तुहि बेद बतावै तुहि तुहि गावै। तुहि पुरान तुहि तुही कही॥
तुहि तुहि सब गाई तुही सुनाई। तुहि तुहि भौ में भर्मि रही॥
तुहि आपा कीन्हा संत न चीन्हा। मान मनी सब दूर नहीं॥

अर्थ–तुलसीदास जी ने सन्तों का साक्ष्य पाकर इसका विधिपूर्वक वर्णन किया है और इसे तुम अपनी आँख से देख सकते हो। बेद भी 'तू ही ब्रह्म है' बताता है। शास्तादि भी तुम्ही ब्रह्म हो, तुम्ही ब्रह्म

हो कहते हैं और तुम्हारे पुराण भी तू ही ब्रह्म है, तू ही ब्रह्म है, कहते रहते हैं। इस प्रकार सभी 'तू ही ब्रह्म' का गम्म करते रहते हैं और तू ही ब्रह्म है, यह सुनाते रहते हैं और संसारमयी भूमि पर तू ही ब्रह्म है, तू ही ब्रह्म है–ऐसी रची हुई है। तुमने आत्मब्रह्म तो पहचान लिया किन्तु सन्त नहीं पहचान पाये और तुम्हारे अन्दर की आत्म सम्मान का अहम् (घमण्ड) दूर नहीं हुआ।

सूरति नृत जानी फोड़ि निसानी। ले ले निसानी अगम लईं॥
ये अगम ठिकानै सतगुरु जानै। चौथे पद गति गवन गई॥
छूटै जम काल भौ जंजाला। लखि दयाल घर गवन भई॥
पाहन अरु पानी झूठ बखानी। जानी जिन जिन मान लई॥
चेतन घट माहीं घट घट वाही। बूझ सुनाई समझ सही॥
सब झूठ अचारा घट घट प्यारा। देखा न्यारा नेक नहीं॥
जिन बूझा लेखा अगम अलेखा। सत ब्रत देखा द्वार महीं॥
कोह बूझे ज्ञाना संत बखाना। अगम ठिकाना ठौर कही॥

अर्थ–सुरति के तत्त्व को समझ करके और उसके चिह्न शून्याकाश को तोड़ करके अपने लक्षणों के तत्त्वों को लेकर वह अगन्य आकाश में पहुँच गई। इस अगम्य के ठिकाने को सत्गुरु ही जानते हैं और वह चौथे लोक की अगम्य गति के स्थान पर पहुँच गई। यम से जुड़ा काव्य तत्त्व छूट गया, भव का जंजाल समाप्त हो उठा। वह चित्त दयावान् संत के उस चतुर्थ पद में प्रवेश कर गई। पत्थर के देवता और उन पर चढ़ाया जाने वाला जल असत्य हो उठा और जिन्होंने इस तत्त्व को समझा उसने स्वीकार कर लिया। वह परम चेतन तत्त्व शरीर में है–और सभी शरीरों में उसका निवास है, यह बात सुनी समझी तथा सत्य रूप में सामने आई। मूर्ति पूजा का यह आचरण ससत्य है, वह दर शरीर के लिए प्रिय है। अन्य तत्त्व को क्षणमात्र भी नहीं दिखाई पड़े किन्तु उस विलक्षण तत्त्व को सभी ने देखा। जिसने भी उस अगम्य और अलक्ष्य का अर्थ समझ लिया वह सत्य तत्त्व ज्ञान के द्वार पर ही दिखाई पड़ा। सन्त रूपी ज्ञानी को कहा जाता है जो ज्ञानतत्त्व को समझता है उसका ठिकाना अगम्य पर है और ठौर कहीं और है।

॥ सोरठा ॥

प्रियेलाल सुन बात, संत सुमति गति का लखी।
रहे बेद के माहिं, बहे खोज अवार में॥

अर्थ–हे प्रियेलाल! मेरी बातें सुनें, सन्तों की मति और गति को कैसे देखा जाए! वे तो वेद में लपटे रहते हैं और आचरण की खोज में मरते रहते हैं।

॥ चौपाई ॥

सतसंगति तुम करौ बनाई। तब तुम्हरी बुधि में लखि आई॥
बेद बिधी बुधि रही समाई। नित पुरान पढ़ि पार न पाई॥
अब तुमको सत बिधि समझावा। अभी तुम्हारी सो दृष्टि न आवा॥
सतसंग करौ दीन मन लाई। इष्ट जो पाहन दूर बहाई॥
कृष्न राम दोउ जम की जारा। करि करि इष्ट जगत सब मारा॥
जा को कहौ नंद कौ लाला। सो तो है सबहिन कर काला॥

छल बल करि कौरौ संघारे। पंडौ भगत हिवारे गारे॥
ता से कहौं कहा तुम पैहौ। खोजत खोजत जनम गँवैहौ॥

अर्थ–खूब सोच समझकर तुम सत्संगति करो, तब ये सारी बातें, तुम्हारी बुद्धि के अन्तर्गत दिखाई पड़ेंगी। तुम्हारी बुद्धि तो वेद विधि में समाई हुई है और नित्य पुराणों को पढ़-पढ़ कर भी उस परम तत्त्व को नहीं प्राप्त कर पाते। मैंने तुमको सत्य विधि समझा दी है किन्तु वह परम तत्त्व आज भी तुम्हारी समझ में नहीं आया है। मन को दीन (याचक) बनाकर तुम सत्संगति करो। पत्थर के बने हुए अपने इस इष्ट देवता को दूर हटा दो। कृष्ण और राम दोनों यम की बहुएँ हैं। इनको इष्ट बना बना कर सारे संसार ने स्वयं को नष्ट कर दिया। जिसे तुम नन्द के पुत्र कृष्ण कहते हो, वह सभी के बाल हैं। उन्होंने छल, बल करके कौरवों का संहार कर डाला और अपने भक्तों पांडवों को हिमालय पर गला दिया। बताओ, तुम उससे क्या-क्या प्राप्त करोगे और उसे खोजते-खोजते सारा जन्म गँवा बैठोगे, फिर भी नहीं मिलेगा।

॥ दोहा ॥

कृष्न समीपी पंडवा, गरे हिवारे जाइ।
लोहे को पारस मिलै, तौ काहे काई खाइ॥ १॥
जो कृष्न पारस हुते, लोहा पंडौ मान।
कृष्न दरस मुक्ती मिलत, गरे हिवार केहि काज॥ २॥
पंडौ चारौ नर्क को, गये युधिष्ठिर धाम।
मित्र प्रीति भगवान की, आई कौने काम॥ ३॥
कृष्न मित्र ऊधो हुते, कही एकादस माहिं।
कृष्न दरस मुक्ती हुती, तप कीन्हा क्यों ताँहि॥ ४॥

अर्थ–कृष्ण के परम नजदीक रहने वाले पांडव हिमालय में जाकर गल गए। लोहे को पारस पत्थर जो उसे स्वर्ण बना देता है, यदि मिल जाए तो उसमें काई ही क्यों लगे॥ १॥

यदि कृष्ण पारस पत्थर हैं और पांडवों को लोहा हम मानते हो तो, तो कृष्ण के दर्शन से उन्हें मुक्ति मिलती-फिर वे क्यों जाकर हिमालय में गलते?

चार पांडव नर्क को गए और युधिष्ठिर स्वर्गधाम। भगवान द्वारा प्रकट किया गया यह प्रेम का बिम्ब उसके किस काम आया।

भागवत के एकादश स्कन्ध में कहा गया है कि उद्धव कृष्ण के मित्र हैं, तब उन्हें कृष्ण के दर्शन से ही मुक्ति मिल जाती–फिर उन्होंने मुक्ति के लिए क्यों जाकर बदरिकाश्रम में तपस्या की।

॥ गजल ॥

बिद्राबन बिंद कीन्ह सोई साँचा।
गुसाँई गोपी के साथ बन बन नाचा॥ १॥
गो में मन बिधा सोई गोबिंद भाई।
मनुवाँ गोपाल मूढ़ इन्द्री माहीं॥ २॥
इन्द्री बसुदेव भेव सेवै मन को।
नाद सोई नंद फंद जानै तन को॥ ३॥

जिन ने तन सोधि लिया सोई जसोधा।
पंडौ तत पाँच और झूठा सौदा॥ ४॥

अर्थ–वृन्दावन के कृष्ण ने वही सत्य करके दिखलाया:वह यह कि गोपियों के साथ वन-वन में नृत्य किया॥ १॥

जिसका मन गौंवों में बिंधा हो, वह गोविन्द है और इन संसक्त इन्द्रियों के बीच उनका मन ही गोपाल है॥ २॥

वासुदेव रूपी मन का सम्बन्ध इन इन्द्रियाँ से ही हैं–और उसमें नाद के रूप में नंद बनकर इस शरीर के फंदों को जानता है या भोगता है॥ ३॥

जिसने अपने शरीर का शोधन कर लिया, वही यशोदा है, शरीर में स्थित क्षिति, जल, पावक आदि पाँचों तत्त्व पांडव हैं, शेष सब कुछ असत्य है॥ ४॥

॥ चौपाई॥

ऊधो कृष्न मुक्ति जो देता। कीन्हौ तप केहि कारन हेता॥
कृष्न मुक्ति नहिं दीन्ही भाई। तब ऊधों तप कीन्ही जाई॥
अपने मित्र जो कष्ट बतावा। तप करि कै मुक्ती धौं पावा॥
ऊधो मुक्ति मिली धौं नाहीं। तप की बिधी पुरान बताई॥

अर्थ–कृष्णा यदि उद्धव को मुक्ति प्रदान करते तो–तो किस कारण कहे किस हेतु से से वे तपस्या करते। जब कृष्न ने उन्हें मुक्ति नही दी, तो हे भाई! उन्होंने जाकर तपस्या की। अपने मित्र कृष्ण को उन्होंने कष्टदायी कहा और उन्होंने तपस्या करके मुक्ति प्राप्त की। तपस्या की विधि का उल्लेख तो पुराण बताई गई है। मालूम नहीं, उद्धव को मुक्ति मिली कि नहीं?

तन छूटै पुनि कहाँ समाने। ये पुरान नहिं साखि बखाने॥
तन छूटै की खबर न पावै। नर्क स्वर्ग धौं कहाँ समावै॥
तन छूटे की खबर बतावै। तौ मन को परतीती आवै॥
मुए गये की खबर न पावा। तप और कष्ट करा सोइ गावा॥
सत्त सत्त पावा की नाहीं। ऐसी बूझ सूझ नहिं पाई॥
जीवत करतब सभी बतावैं। मुए मिलन कोउ ना दरसावै॥
मुए मिलन बिधि भाखै भाई। जीवत मिलन कोऊ न बताई॥
जीवत मिलन बिधि भाखि सुनावै। तब तुलसी के मन में आवै॥
जीवत इत से जाइ न भाई। मुए उत से आवत नाहीं॥
ये पुरान कस कस ठहरावा। मुए गये की खबर न पावा॥
नेक भेद उत का नहिं गावै। इत की करनी बिधि बतलावै॥
बिद देखे जग अँधरा मानै। पूछै पंडित पढ़े पुरानै॥

अर्थ–इस शरीर के छूट जाने, पर वे कहाँ समा गए, इसके साक्ष्य का वर्णन पुराण में नहीं किया है। शरीर छूटने अर्थात् मृत्यु की तो किसी की खबर तक नहीं रहती और इस बात का क्या ज्ञान की मृत्यु के बाद वह नरक या स्वर्ग कहाँ समा गया है। यदि कोई व्यक्ति अपने मृत्यु की सूचना मुझे बता दे तो इन बातों का भी मुझे विश्वास हो उठेगा। किसी तपस्वी को मृत्यु में जाने की तो खबर ही नहीं रहती फिर उसने तपस्या के लिए जो कष्ट किया है, उसी का गान करता रहता है। सही-सही तपस्या से

किसी ने मुक्ति पायी–मैंने ऐसी सूझ (अनुभव) एवं समझ नहीं प्राप्त की है। जीते-जी ही सभी नाना प्रकार के कार्यो एवं कर्मों का गान करते हैं किन्तु मृत्यु के बाद क्या मिला, इसे कोई नहीं दिखाता। जीवन काल की प्राप्ति की उपलब्धियाँ सभी कहते हैं किन्तु मृत्यु के बाद की प्राप्ति प्रक्रिया को कुछ तो बताओ। इस जीवन काल में आध्यात्मिक तत्त्वों की प्राप्ति की कुछ बातें बताओ तभी तुम्हारी तपस्या में मुझे (तुलसी साहब) को विश्वास होगा। जीवन काल में न यहाँ से कोई स्वर्ग जा सकता है और न मृत्यु काल में कोई वहाँ से आ सकता है। ये पुराण कैसे-कैसे इसे बताते हैं किन्तु मृत्यु के बाद जाने की कोई खबर नहीं मिलती। उधर का रहस्य नेक मात्र भी नहीं पाता और उधर की करनी तथा विधि बतलाते हैं। न देखने वाले को संसार अंधा मानता है किन्तु वह इसके लिए पंडितों से पूछता है, पुराणों को पढ़ता है।

ये सब पोल पाल कर लेखा। मिथ्या पढ़ कहै बिन देखा॥
देखे की हम साखी मानैं। बिन देखी कहै झूठ समानै॥
नर्क बधी पंडौ जो गइया। नर्क भोग पुनि कस कस भइया॥
आगे खबर न उनकी पाई। नर्क भोग पुनि कहाँ सिधाई॥
नर्क भोग कहौ मुक्ति सिधावा। ये पुनि खबर कौन बतलावा॥
ऊधो तप पैस्रम बतलावा। तन छूटे की खबर न पावा॥
तन छूटे जोइ होइ सो होई। या को भेद न पावा कोई॥
बिना कष्ट मुक्ति नहिं भाई। यहि बिधि कृष्न ऊधो समझाई॥
कर तप कष्ट इष्ट में नाहीं। बिन तप मित्र मुक्ति नहिं पाई॥
तुम मुक्ती उन से कस पाई। मित्र मुक्ति दीन्ही नहिं भाई॥
उनको साफ कही गोहराई। ये पुरान में देखौ जाई॥
ततवर मित्र कृष्न तेहि आगे। ऊधो रोइ जप तप को लागे॥
पूजा इष्ट तुम्हारा लेखा। कृष्न मिले नहि सन्मुख देखा॥
तुम मुक्ती कस कस करि लयऊ। ऊधो सन्मुख तप को गयऊ॥
सन्मुख कृष्न मुक्ति नहिं पाई। तब ऊधो तप को मन लाई॥
पाहन नकल इष्ट को मानौ। या से मुक्ति कौन बिधि जानौ॥
या की बिधि इक साखि सुनाई। प्रियेलाल चित्त से सुनु भाई॥
जेहि बिधि करज साह से लावै। साह मिलै तबही कुछ पावै॥

अर्थ–यह सब पोलपाल (झूँठा) मामला है–झूँठा पढ़ते हैं और बिना देखी कहते हैं। हम तो देखी गई बात को ही साक्ष्य (सत्य) मानते हैं और बिना देखी बात को झूँठ के समान कहते हैं। बध करने वाले पांडव नर्क गए–उनका नर्क भोग कैसी-कैसा? और भी आगे क्या हुआ–उसकी खबर नहीं मिली कि नर्क भोग के बाद वे कहाँ चले गए। यदि कहो कि नर्क भोग के बाद उन्हें मुक्ति मिली तो इस बात का क्या प्रमाण है–इसकी खबर किसने दी। उद्धव को तपस्या का परिश्रम बतलाया गया किन्तु उनके शरीर छूटने की किसी ने कोई खबर नहीं पाई है। शरीर छूटने के बाद जो हो सो हो, इसका भेद कोई नहीं प्राप्त कर सका। बिना कष्ट के, हे भाई, मुक्ति सम्भव नहीं है, ऐसा कृष्ण ने उद्धव को समझाया है। तप के लिए कष्ट सहो, इष्ट के लिए नहीं, इस प्रकार हे मित्र! तप द्वारा तुम मुक्ति प्राप्थ करोगे। तुमने उनसे मुक्ति कैसे प्राप्त की थी, जब वे अपने मित्र को ही वे मुक्ति नहीं दे सके थे। पत्थर पर नकल के रूप मे जो गढ़े गए वे और इससे तुम किस प्रकार की मुक्ति समझते हो–इसके संदर्भ में तुम्हे

एक साक्ष्य सुना रहा हूँ। हे भाई प्रियेलाल! उसे ध्यान से सुनो जिस प्रकार किसी बनिया से कोई कर्ज के लिए जाता है—यदि बनिया मिलेगा, तभी कर्ज भी मिलेगा।

ता की निधि बताऊँ गाई। सुनियो नकल इष्ट की भाई॥
दिवस एक साह चले गाँई। अरज असामी कीन्ह बनाई॥
तुम तौ चले गाँव को भाई। गरज हमारी कौन चलाई॥
सेठ नकल अपनी लिख दीन्हा। कागद मूरत अपनी चीन्हा॥
मूरत नकल से कारज कीजौ। चाहौ सोई नकल से लीजौ॥
या से माँगि काज सब कीजौ। दाम मागि या से पुनि लीजौ॥
यहि कहि साह गाँव को गइया। तब भाइ गरज नकल से कहिया॥
नकल साह कछु कारज कीजै। दीजै दाम काम मोरा छीजै॥
पुनि वो नकल नहीं कछु दीन्हा। बहु बहु भाँति बिनय उन कीन्हा॥
सेठ नकल मूरत नहिं बोलै। पुनि पुनि माँगै गाँठि न खोलै॥
बहुत बहुत बिनती उन कीन्हा। मूरत गाँठि से कछू न दीन्हा॥
नकल सेठ से हाथ न आइया। माँग माँग उन जनम गवैया॥
असल सेठ बिन दाम न पाया। नकल सेठ से हाथ न आया॥
येहि बिधि असल कृष्न नहिं भाई। तुमने ता की नकल बनाई॥
नकल कृष्न से कछु नहिं पाई। काहे बिरथा जनम गँवाई॥
येहि बिधि बूझि बूझि मन लीजै। समझ बिचार के कारण कीजै॥
नकल भाव तेहि हाथ न आवा। ये बिधि बूझौ नकल प्रभावा॥
सादृष्ट कृष्न ऊधो सँग रहिया। मुक्ति न पाई तप को गइया॥
असल कृष्न कीये बिधि कहिये। मुक्ति नकल से कस कस पइये॥

अर्थ—उसकी निधि का कहकर मैं वर्णन करता हूँ, हे भाई! इष्टदेव की बनाई गई नकल के विषय में सुनें। एक दिन सेठ जी गाँव के लिए चले। उनके असामी ने उनसे बनाकर किया। हे भाई! आप तो गाँव को चल पड़े—आपसे हमारी गरज अब कौन चलाएगा। सेठ ने अपनी लिख दी और कागज पर अपने चित्र की पहचान बना दी। इसी नकल की मूर्ति (चित्र) से अपना काम कर लो:जो चाहो इस नकल से मांग लो। इससे माँग कर अपना सारा काम कर लो। ऐसा कहकर सेठ गाँव के लिए चला गया तब दूसरे व्यक्ति ने अपनी आवश्यकता उसे चित्त से कहा। हे नकल सेठ! ऐसा कुछ कार्य करो—मुझे कुछ रुपये देकर मेरा काम करें। किन्तु उस नकल ने उसे कुछ भी नहीं दिया—जबकि कर्जदार ने उससे अनेक-अनेक भाँति से विनय किया। सेठ की नकल वाला वह चित्र मुँह से बोलता नहीं और वह उससे बार-बार माँग रहा है किन्तु वह अपनी गांठे नहीं खोलता। कर्जदार ने मागते-मांगते अपना जीवन बिता दिया किन्तु उस नकल के सेठ से कोई काम नहीं बना। इन चित्र के रूप में नकल बनाए गए कृष्ण से कुछ भी नहीं मिलना है—यों अपना जीवन व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हो। इसी प्रकार, मन में समझ लो कि और समझ-विचार कर कोई कार्य करें। साक्षात् श्री कृष्ण उद्धव के साथ रहे—उनसे उन्हें मुक्ति नहीं मिली और उन्होंने तब तप का आलम्बन पकड़ा। असत्य की बात इस प्रकार रही तो नकल वाले श्री कृष्ण की क्या बात कही जाए?

एकादस में कही बखाना। देखौ अपना जाइ पुराना।।
असल कृष्न की बिधी बताई। नकल कृष्न की कौन चलाई।।
जिन्ह गोपिन सँग कीन्ह बिलासा। समझ भाव मन बूझौ आसा।।
बिषय उपाय हाथ से कीन्हा। दौड़ दौड़ पाँवन से लीन्हा।।
छूटि देहि जगन्नाथ कहाये। कर्म भोग पाँव हाथ कटाये।।
अपना भोग आपने पाया। तुम ने ब्रह्म कौन बिधि गाया।।
असल कृष्न बिधि ऐसी जोई। नकल कृष्न की कैसी होई।।
असल कृष्न जो मुक्ति न पाई। कर्म भोगि कै पैर कटाई।।
कहै पुरान कृष्न गये धामा। जगन्नाथ भये कहौ प्रमाना।।
कभि कभि गये धाम बतलावौ। भागवत कृष्न धाम समझावौ।।
वोही कृष्न जगन्नाथ बतावौ। वोहि जगन्नाथ कृष्न करि गावौ।।
धाम गये की संध न पाई। यहाँ रहे की झूठ जनाई।।
कौन प्रमान दोऊ में कीजै। सत्त असत्त कौन कौ लीजै।।
या में सत्त कौन को बूझा। कहि समझावौ तुलसि अबूझा।।
नानक संत साखि बतलाई। कृष्न काल तिन भाखि सुनाई।।

अर्थ–भागवत पुराण के एकादश अध्याय में इस प्रकार का वर्णन है: और तुम जाकर अपना पुराण पढ़ो:वहाँ सही कृष्ण की व्यवस्था बताई गई है फिर नकली कृष्ण की बातें कौन कहे। जिन्होंने गोपियों के साथ इतना विलास किया उनका भाव समझकर मन में उनकी आशा समझें। अपने हाथों से विषय के सारे उपाय किये और वे पांवों से दौड़-दौड़ कर वस्तुएँ प्राप्त करते रहे। मृत्यु के बाद वे जगन्नाथ कहे गए। कर्म के भोग में फँस कर उन्होंने अपने हाथ पाँव कटा लिए। अपने किये हुए का फल स्वयं प्राप्त किया और उनको तुम ब्रह्म किस प्रकार कह रहे हो। असली कृष्णा की जब ऐसी स्थिति रही है तो नकली कृष्ण के विषय में क्या कहा जाए। यदि असली कृष्ण ने मुक्ति नहीं प्राप्त की और कर्मभोग करके एक बहेलिया से अपने पैरों को कटवा लिया। पुराण कहते हैं कि मृत्यु के बाद वे अपने धाम में पहुँचे तब बताओ कि कौन-सा ऐसा प्रमाण है कि वे जगन्नाथ हो गए। वे अपने धाम में कैसे गए और तुम हमें उस भागवत धाम को समझाओ। उन्हीं कृष्ण को तुम जगन्नाथ कहते हो और उन्हीं जगन्नाथ को कृष्ण बनाकर गाते हो। उनके धाम जाने का प्रमाण नहीं पा सके–यहाँ रहने की झूँठी बातें कहते हो। दोनों के लिए प्रमाण क्या है, इसे बतायें और किसे तुम सत्य तथा किसे असत्य कहते हो–यह समय में नहीं आता। इन दोनों में तुम सत्य किसे कहते हो न समझ पाने वाले तुलसी को यह कौन समझाए। नानक आदि संतों ने जो साखियाँ बतलाई है–कृष्ण काव्य के विषय की कथा उन्होंने कहकर सुनाया है।

॥ सवइया ॥

कालै खाइ गहौ भगवान, सो जाग्रत या जुग जाकी कला है॥ १ ॥
कालै खाइ गयौ ब्रह्मा सिव, सो कालै खाइ गयौ जुगिया है॥ २ ॥
इन्द्र मुनिन्द्र सुरासुर गंधर्व, जच्छ भुजंग दिसा बेदिसा है॥ ३ ॥
ये तौ भये सबही बस काल के, नानक संत अकाल सदा है॥ ४ ॥

अर्थ–भगवान को भी काल खा गया है–यह सम्पूर्ण जागृत संसार ही जिस काल की कला है, वह काल ब्रह्मा तथा शिव को भी खा गया है और इसी काल ने योगियों को भी खाया है। इन्द्र, मुनीन्द्र, देवता, असुर, गंधर्व और सभी दिशाएँ-दिशाविहीन की स्थिति में वर्तमान ये सभी के सभी काल के वश में हो चुकी हैं किन्तु संत नानक सदैव-सदैव के लिए काल से मुक्त हैं॥

॥ चौपाई ॥

अब कबीर की साखि बताऊँ। कहि कबीर बिधि भाखि सुनाऊँ॥
दस औतार कबीरा गावा। ता की सब्द बिधी समझावा॥
वोहू कही काल बस गइया। दस औतार काल के कहिया॥

अर्थ–अब मैं कबीरदास की साखी बताता हूँ और कबीर की विधि को कहकर सुनाता हूँ। दस अवतारों के विषय में कबीर ने कहा है और उस 'सबद' की विधि को समझाया है। उन्होंने भी कहा है कि सभी काल के वश में हो चुके हैं और दसों अवतार काल के ही कहे जाते हैं।

॥ सबद ॥

आवै जाइ सो माया साधो, आवै जाइ सो माया।
है प्रतिपाल काल नहि वा कों, ना कहुँ गया न आया॥ १ ॥
क्या मकसूद मच्छ कछु होता, संखासुर न सँघारा।
है दयाल द्रोह नहिं वा के, कहौ कौन को मारा॥ २ ॥

अर्थ–जो आती जाती रहती है, हे साधो! वह माया है–और जो आती जाती रहती है, वही माया है। उसका प्रतिपालक काल भी नहीं है, जो न कहीं जाता है और न आता है। क्या कोई स्वामी मत्स्यावतार भी नहीं हैं–जिसने शंखासुर को मारा है। नहीं, वे नहीं हैं। वे स्वामी तो अत्यन्त दयालु हैं, उनमें द्रोह भाव नहीं है। बताओ उन्होंने किसे मारा है–किसी को नहीं।

वे करता न बराह कहाये, धरती धरा न भारा।
ये सब काम साहिब के नाहीं, झूठ कहै संसारा॥ ३ ॥
वे करता नहिं भये कलंकी, नहिं कलिंजै मारा।
है दयाल सबहिन को साहिब, कहौ कौन को मारा॥ ४ ॥
खंभ फाड़ि कै बाहर होई, तेहि पतीजै सब कोई।
हरनाकुस नख उदर बिदारा, सो करता नहिं होई॥ ५ ॥
परसराम छत्री नहिं मारे, ये छल माया कीन्हा।
सतगुरु भक्ति भेद नहिं पाये, जीव अमिथ्या दीन्हा॥ ६ ॥
सिरजनहार न ब्याही सीता, जल पषान नहिं बंधा।
वै रघुनाथ एक करि सुमरै, सो नर कहिये अंधा॥ ७ ॥
गोपी ग्वाल न गोकुल आया, मामा कंस न मारा।
वो दयाल सबहिन को साहिब, ना जीता ना हारा॥ ८ ॥
वै करता नहिं बोध कहाये, नहिं असुरन को मारा।
ज्ञान हीन करता नहिं होई, माया जग भरमाया॥ ९ ॥

दस औतार ईसुरी माया, करता करि जिन्ह पूजा।
कहै कबीर सुनो हो साधो, उपजै खपै सो दूजा॥ १०॥

अर्थ–वे वाराह भी नहीं है, न धरती के, भार को भी उन्होंने धारण किया है कि ये काम हमारे स्वामी प्रभु के नहीं हैं–सारा संसार तो इस तरह से उनके विषय में झूँठ बोलता है। वे संसार के कर्त्ता कलंकी अवतार से भी सम्बद्ध नहीं है और न उन्होंने कलि को मारा ही था। वे दयालु हैं, सभी के स्वामी है, बताओ किसने किसको मारा है। वे खम्भे को तोड़कर बाहर निकले थे–इसलिए सभी उन पर विश्वास करते हैं:जिसने हरिणाकुश के उदर का विदीर्ण किया था–वह कोई ईश्वर नहीं है। परशुराम ने क्षत्रियों का वध नहीं किया था, यह सब छल तथा प्रपंच भरा कार्य है। यह सब माया की छाप है। किसी ने सतगुरु द्वारा दी गई भक्ति के भेद को न समझकर और सभी जीवों के अमिथ्या दान की चर्चा करते हैं। सृजनकर्त्ता भगवान ने न सीता से विवाह किया था और न जल पत्थरों से बाँधा गया था। जो राम को ईश्वर करके स्मरण करता है, उसे सभी अंधा कहते हैं। ग्वाल तथा गोपियाँ न कभी गोकुल में आईं, न कृष्ण ने अपने मामा कंस का वध किया है। वे प्रभु परम दयालु तथा सभी के स्वामी हैं। वे कभी जीते हैं और न हारे हैं। वे कर्त्ता रूप ईश्वर कभी बौद्ध नहीं कहाए गए और न कभी असुरों का वध किया है। कर्त्ता ज्ञान ही नहीं होता यह मायिक भ्रम है। दसों अवतार ईश्वरी माया हैं और हमने उनकी कर्त्ता मानकर पूजा की है। कबीरदास जी कहते हैं कि हे साधो सुनो ।

॥ चौपाई॥

सुर सब्द या बिधि कहि भाखी। उनहुँ कही कर्मन में साखी॥

अर्थ–उन्होंने इस प्रकार के देव शब्दों को बताकर कहा है और उन्होंने ही कर्मों के साक्ष्य का वर्णन किया है।

॥ सबद॥

कर्म गति टारै नाहिं टरै।
कहँ वै राहु कहाँ वे रबि ससि, आनि सँजोग परै॥ टेक॥
गुरु बसिष्ठ पंडित मुनि ज्ञानी, रुचि रुचि लगन धरै।
तात मरन सिया हरन राम बन, बिपति में बिपति परे॥ १॥
पंडो के प्रभु बड़े सारथी, सोऊ बन निकरे।
दुरबासा से स्राप दिवायौ, जदु कुल नास करे॥ २॥
रावन अस तैंतीस कोटि सब, एकछत राज करे।
मिरतक बाँधि कूप में डारे, भाभी सोच मरे॥ ३॥
हरीचंद ऐसे भये राजा, डोम घर पानी भरे।
भारथ में भरुही के अंडा, घंटा टूटि परे॥ ४॥
तीनि लोक करमन के बस में, जो जो जनम धरे।
दस औतार भाभी के बस में, सूर सुरति उबरे॥ ५॥

अर्थ–कर्मों की गति टालने से भी नहीं टलती है। वशिष्ठ जैसे ज्ञानी पंडित मुनि और जिन्होंने राम-सीता के विवाह की लग्न तय की किन्तु (विवाह के बाद) पिता की मृत्यु, राम का बन गमन, सीता का अपहरण अर्थात् विपत्तियों पर विपत्तियाँ पड़ती रहीं।

प्रभु कृष्ण पांडवों के आत्मीय सारथी थे किन्तु उनको भी अरण्यवास हो गया। उन्होंने उन्हें दुर्वासा से शाप दिलाया और सम्पूर्ण युदुकुल का विनाश हो उठा। तैंतीस कोटि परिजनों वाला रावण ने एक क्षत्र राज्य किया किन्तु उसे भी मृतक जैसा बाँधकर कुएँ में डाल दिया और उसके भविष्य के लिए संकट आ पड़ा।

हरिश्चन्द्र जैसे प्रतापी राजा कर्मवश में होकर डोम के घर पानी भरने जैसा कार्य किया। महाभारत में परुही पक्षी का अंडे के कारण युद्ध भूमि में बड़े-बड़े घंटे टूट पड़े।

जो जन्म धारण करते हैं, वे तीनों लोकों के व्यक्ति कर्मों के वश में हैं। इसलिए दसों अवतार भवितव्यता के वश में हैं और उद्धार उसी का सम्भव है, जो सुरति लोक में प्रवेश (ध्यान) करता है।

॥ सोरठा ॥

प्रियेलाल बिख्यात, औतारी कर्मन कहे।
बहे भोग भौ माहिं, सब सब संत पुकारिया॥

अर्थ–हे प्रिये लाल! इस बात को विख्यात समझें, कर्म से प्रभावित व्यक्ति ही अवतारी समझा जाता है। सारे सन्तजन इसे पुकार-पुकार कहे हैं कि वह कर्मभोग से शासित रहता है।

॥ चौपाई ॥

राम कृष्न औतारी आहीं। भोगे कर्म जाइ तन माहीं॥
दस औतार निरंजन धरिया। सोऊ काल बस भौं में परिया॥
सोई निरंजन सोई निरंकारा। सोई काल धरे औतारा॥
कर्म भाव तिन देही पाई। करै भोग भौं में भरमाई॥
सारा जग बेदन भरमैया। औंतारी साँचे गोहरैया॥
दीनदयाल पुरुष है न्यारा। निरकार काल के पारा॥
निरंकार तक काल न जावै। वहं की गम जोती नहिं पावै॥
वो स्वामी है अगम अगाही। जह सतंन ने सुरति समाई॥
सुरति समाइ पुरुष को देखा। मिला पुरुष अगम अलेखा॥
उनका लेखा बेद न पावै। नेति नेति चारों गोहरावै॥

अर्थ–राम तथा कृष्ण अवतारी पुरुष हैं–और शरीर धारण के बाद उन्होंने सारे कर्मों का भोग किया। निरंजन के भी दस अवतार होते हैं और वे भी काल से विवशीभूत भवसागर में पड़ते हैं। वही निरंजन की दशा है, वही निरंकार की भी। वह भी काल के घट अवतार लेता है। उसने अपने देहभाव से ही कर्मभाव को प्राप्त किया है और जो कर्मभोग करता है, वह भवसागर में भ्रमित होता रहता है। सारा संसार इन वेदों में भरमाया हुआ है और लोग अवतारी को सही-सही ईश्वर कहकर पुकार रहे हैं।

वह पुरुष दीनों के लिए दयालु और सबसे विलक्षण हैं (इन सबसे भिन्न) निरंकार काल के उस पार है और ज्योति भी उसके रहस्यों का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकती। वे स्वामी अगम हैं, अगाध हैं और उनका स्थान वही है–जहाँ सन्त जन सुरति में समाधि लेते हैं। वे सुरति में समाविष्ट होकर सुरति को देखते हैं और वह गम्य, अगम्य तथा अलेख्य पुरुष वहीं प्राप्त होता है। उनका रहस्य वेद भी नहीं प्राप्त करते तथा उन्हें वे चारों वेद नेति-नेति कहकर पुकारते रहते हैं॥

पंचम बेद सुषम नहिं जाना। षष्टम प्रसंग बेद कहै नाना॥
चारि बेद पुनि गुप्त रहाई। ता में कागद लगै न स्याही॥

तुम पुनि पुरुष भेद नहिं जाना। दसो भेद कहै नहिं पहिचाना॥
दसो बेद से भेद नियारा। पुरुष भेद नहिं पावै पारा॥
निरंकार जोती नहिं जाना। जहँ पहुँचे कोइ संत सुजाना॥
तुलसी सैल सुरति से कीन्हा। पाया अगम गम्म का चीन्हा॥
पत्थर पानी दूर बहावा। तब घर अगम राह को पावा॥
बेद कितेब पुरान उठाये। तब लखि सुरति अगम को धाये॥
नेम अचार चार नहि माना। बोलै सब घट माहिं दिखाना॥
बोल अबोल दोऊ के पारा। तहँवाँ तुलसी सुरति सवारा॥
छर अच्छर नि:अच्छर पारा। देखा तुलसी निरखि निहारा॥
अगम अगाध पुरुष दरबारा। तुलसी मिलै सुरति की लारा॥

अर्थ–पंचम सूक्ष्मवेद भी उन्हें नहीं जानता और छठां प्रसंग! वेद उसके विषय में नाना प्रकार की बातें कहता रहता है। वह चारों वेद से गुप्त हैं, वे कंठस्थ हैं, उनमें न कागज लगता हैं और न स्याही और तुम भी पुरुष का रहस्य नहीं पहचानते। दस रूपों में उन्हें वेद कहते हैं–किन्तु भी उसे नहीं पहचान पाये। दसों के द्वारा उनके भेद का निवारण नहीं हो सकता है–उस परम पुरुष का भेद कोई नहीं पाता। किसी ने निरंकार एवं ज्योति को भी नहीं पहचाना है: जिसके घर तक कोई चतुर संतजन ही पहुंचते हैं। तुलसीदास तो स्वयं अगम्य सुरति पर्वत पर बिहार करते हैं–अगम से पहचान में आने वाले उस अगम को उन्होंने चीन्ह लिया है। मैंने पत्थर मूर्ति तथा जल (देवताओं को अर्जित होने वाला जल) को दूर बहाकर अगम्य घर की राह प्राप्त की है। वेदशास्त्र, कितेब एवं पुराणों को हटाने के बाद ही उस अगम्य सुरति समाधि की ओर दौड़कर गया। मैंने नियम आचरण एवं किसी भी सदाचरण को नहीं स्वीकार किया और जिसकी जिसने आंकाक्षा की उस तत्त्व को मैंने शरीर के भीतर ही दिखाया। प्रवचनादि तथा समाधि जैसे तत्त्वों के उस पार जाकर तुलसी ने अपनी सुरति समाधि को सजा दिया। क्षरणशील तत्त्व, अक्षरणशील तत्त्व एवं शून्य के पार उस परम तत्त्व को मुझ तुलसीदास ने अपनी आँखों से देखा है। उस परम पुरुषका दरबार अगम्य और अगाध है और तुलसी साहब कहते हैं, वह मुझे सुरति के साथ मिला है।

तन में देखि ब्रह्मंड पसारा। सो हिये हेर सुरति की लारा॥
हिये में हेर फोड़ ब्रह्मंडा। हिये की लार सार नौखंडा॥
अंतर हेर हिये के माईं। अंड फोड़ ब्रह्मंड दिखाई॥
अंतर खोज कीन्ह हिये माईं। अंतर हिये माहि दरसाई॥
तन में तोड़ फोड़ हिये कीन्हा। अंतर सार हिये में चीन्हा॥
अब या का बरतंत बताऊँ। बारहमासा बरनि सुनाऊँ॥
द्वादस सन संबत का चीन्हा। मांस मांस सुनि गहौ यकीना॥
हिये बिच सुरति समझि घर आई। बारहमासा बरनि सुनाई॥

अर्थ–इसी शरीर में उस अखंड तत्त्व का प्रसार देखकर उसे हृदय में सुरति प्रेम द्वारा खोज लिया। हृदय में ही खोजकर ब्रह्मांड को फोड़ डाला। हृदय का तादात्म्य ही नौखंड का सार तत्त्व है। हृदय के अन्तर्गत ही उसे देखो और इस अंड को फोड़ देने के बाद इस हृदय में ही ब्रह्मांड दिखाई पड़ेगा। हृदय में ही उस प.म तत्त्व को अन्दर-ही-अन्दर खोजो और वह परम पुरुष इसी हृदय के अन्तर्गत ही दिखाई

पड़ेगा। हृदय इस शरीर में तोड़ मोड़ करके उसे पहचान लेता है और अन्तर्वर्ती सार तत्त्व को हृदय में पहचान भी लेता है। अब मैं, इसका वृत्तान्त बता रहा हूँ और इस संदर्भ में बारहमासा का वर्णन करके सुना रहा हूँ। बारह महीनों के सन्-संवत् को पहचान लो, और उसके मास-मास का वर्णन सुनकर महीने की प्रतीति करो। इस हृदय के मध्य ही सुरति समझकर घट आएगी। इस प्रकार मैं बारहमास वर्णित करके सुना रहा हूँ।

॥ दोहा॥

हिये हेरा स्त्रुत सैल से, बारह मास बयान।
जानि सूर कोइ सत जन, सुनै सो सज्जन कान॥ १॥
गुइयाँ गोह गुमान गुन, गिरि बानी बिच बास।
फाँस कटी कटि सुरति की, कीन्हा अगम निवास॥ २॥

अर्थ–श्रुति पर्वत में स्थित तत्त्व को हृदय से खोजकर मैं बारह मासों का वर्णन कर रहा हूँ। इसे कोई विद्वान (सूर) संत जन की समझता है–और जो सुनता है–वह कान सज्जनों का ही है॥ १॥।॥

हे साथी! इस अगम्य गुफा के गुण का निवास चित्त रूपी पर्वत में है। सुरति में लोकवासना का फंदा कट गया है और उसने अपना निवास अगम्य में बना लिया॥ २॥

॥ सोरठा॥

बारह मास मिलाप, सुरति आप अपनी कही॥
लही जो तुलसीदास, बारह मास समझाय कै॥

अर्थ–सुरति से बारह मासों के अपने उस मिलन का स्वयं मैंने अपना अनुभव कहा है। जिसे स्वयं गोस्वामी तुलसीदास ने प्राप्त किया था, उसे वे समझा कर कहते हैं।

॥ बारहमासा॥ (सवैया)

गुइयाँ री गुन गोह गिरा बिच मैं न रहौंगी॥ टेक॥
आली असाढ़ के मास बिलास, सो बास पिया बिन मोहि न भावै॥
गरजि अकास की भास रबी, छबि बादर की कही बात न जावै॥
बिजली चमकै घन घोर घटा, घर घाट पिया कोउ नेक न पावै॥
गोह गुना गिरि बीच बसी, सो फँसी तुलसी चित चेत न आवै॥

अर्थ–हे सखी! मैं इस लौकिक गुणों की गुफा जैसी पर्वत कन्दरा में अब नहीं रहूंगी।

हे सखी! आषाढ़ मास के विलास-बिना प्रिय के साथ निवास किए मुझे भा नहीं रहा है। आकाश की चमक गरज रही है इन बादलों की बात कही नहीं जा रही है। घनघोर घटाएँ हैं, बिजली चमक रही है और इसमें कोई अपने प्रिय का घर और वहाँ तक जाने का घाट मार्ग कोई नहीं प्राप्त करता। गुण गिरि की गुफा के बीच मैं निवास कर रही हूँ और तुलसी साहब कहते हैं कि इसी से मैं फँस गई हूँ और मेरे चित्त में कोई ज्ञानभरी चेतना नहीं उठ रही है।

(कड़ी)

अगमन आयौं असाढ़हि मास। गरजत गगन रबी तजि भास॥
भान घटा नभ नैन निहार। सूरति समझि चली नभ पार॥
पिया पद साज गहौंगी॥ १॥

अर्थ--आषाढ़ के महीने का आगमन हो उठा और सूर्य की पखरता का त्याग करके आकाश गरज रहा है। आकाश में स्थित उस बादल की घटाओं को देखो:सुरति को समझकर आकाश के पार चलो। अपने पति के ही चरणों पर सजाव करूँगी॥ १॥

॥ सवैया॥

२..वन सोर करै बन मोर, सो दादुर प्यास पपीहा पुकारी॥
ताल मही हरी भूमि भई, सो नहीं कोइ पंछिन चोंच चुकारी॥
मैं मन में सुनि कै बिगसी, जस ताल रबी बिच कंज सुखारी॥
जो तुलसी गुन माहि रही, सो भई जम साथ के संग दुखारी॥

अर्थ–सावन के महीने में बन में मयूर शोर कर रहा है, दादुर प्यासे हैं, पपीहा पुकार रहा है–ताल के पास की सारी भूमि हरी-भरी हो उठी है फिर भी ताल जल को कोई पंक्षी अपनी चोचों से छू रहा है (क्योंकि) जल तो चारों और हो चुका है। मैं पति का स्मरण करके उस प्रकार प्रसन्न हुई जैसे ताल एवं सूर्य बीच कमल सुखी रहता है। तुलसी साहब कहते हैं कि अब यदि मैं गुणों (भौतिक गुणों) के साथ निवास करूँगी तो यम के साथ रहकर निरन्तर दुखमयी बनी रहूँगी॥

(कड़ी)

सावन सरवर नीर अपार। बरसत गगन अखंडित धार॥
गैल गली सब हरियल भूमि। नील सिखर चढ़ि सूरति घूमि॥
चमक बिजली की सहौंगी॥ २॥

अर्थ–इस श्रावण के महीने में तालाबों में अगाध जल हैं और आकाश में अंखण्डित जलधारा बरस रही है। सारे खाली पड़े स्थानों तथा गलियों की भूमि हरी हो उठी है। उस नील शिखर पर चढ़कर सुरति में भ्रमण करूँगी और उस शून्याकाश की विद्युत चमक को ले लूँगी॥ २॥

(सवैया)

भादों का भेद कहौं जो निखेद, सो खेद करम्म को काढ़ि-निकारी॥
सुरति सुर भई मति पूर, सो नागिनि नारि डसी जस कारी॥
चेत चली जो अकास अली, सो गली गुन गोह से होत नियारी॥
जो तुलसी सुख नारि भई, सो गई ले लार लगन्न के पारी॥

अर्थ–यदि बिना खेद के भादों महीने के रहस्य का वर्णन करूं तो वह कष्ट जो मैं कर्म से भोग रही हूँ, इसे काढ़कर निकालना पड़ेगा। सूरति रूपी सूर जैसे ही हमारी मति को पूर्णता देने को हुआ–उसी समय काली नागिन रूपी यह माया नारी आकर मुझमें बस गई। हे सखी! मैं तो शून्याकाश की ओर चल पड़ी थी किन्तु गुण रूपी गली की गुफा में विलक्षण बन गई। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं जो सुख की खोज करने वाली नारी होती तो वह उसे साथ लेकर इस लोक के पार चली जाती॥

(कड़ी)

भादों भर्म भेद सब छूटि। काया कर्म कलस गये फूटि॥
नागिनि बिरह भूल डसि खाई। येहि बिधि सूरति गगन समाई॥
लगन संग लार लरौंगी॥ ३॥

अर्थ–भादौं के महीने में सम्पूर्ण मर्म रहस्य छूट गया। इस शरीर के कर्म का कलश छूट गया। विरह रूपी नागिन माया के मूल को डस कर खा गई और इस प्रकार सुरति आकाश में समा गई। अब मैं पूरी लगन के साथ ही प्रेम करूँगी॥ ३॥

(सवैया)

कूर कुवार कुमति को जार, सो बारि बनी सब खाक मिलाई॥
कूकर काम भये जो निकाम, सो ठामहिं ठाम जो भूमि भुलाई॥
सुन सूरति भाल सो ताल मई, गई मानसरोवर पैठि अन्हाई॥
तुलसी सोइ संत के संग अड़ो, सो खड़ी सुन सब्द में जाइ समाई॥

अर्थ–यह क्रूर क्वार का महीना ना समझी का जंजाल है–जो भी संचित जलराशि थी, उसे उसने धूलि में मिला दिया। काम वासना रूपी कुत्ते थक उठे और जगह-जगह अपने निवास को भी भुला बैठे। शून्य सुरति अपने मस्तक पर तालमयी हो उठी और जाकर उसने मानसरोवर में स्नान किया। तुलसी साहब ऐसे सन्तों के साथ अड़ गए हैं–जो खड़ी-ही-खड़ी उस 'सब्द' को सुनकर ही उसमें समाधिष्ट हो उठे हैं॥

(कड़ी)

कुमति कुवार जारि जस फूस। कूकर काम रहे सब भूँसि॥
मानसरोवर सरस अन्हाई। सूरति समझ चली रस पाई॥
सब्द सुनि सार भरौंगी॥ ४॥

अर्थ–कुमति रूपी क्वार का महीना है, इसे घास की भांति जला दो और इस महीने में मानव जाति काम ग्रस्त कुत्ते की भाँति भौंक रहे हैं। सरस मानसरोवर में स्नान करके सुरति अपना ज्ञान करती तथा रस का आस्वादन करती हुई चल पड़ी। साधु जनों के 'सबद' को सुनकर उसे आध्यात्मिक सार तत्त्व को संचित करूँगी।। ४।।

(सवैया)

कातिक किरनि भई ससि सूर, सो दूर भये दल बादल सारे।
भूमि थीर भये जल नीर, सो नार नदी स्त्रुत सिंध सम्हारे॥
सिंधहिं बुंद मिले चढ़ चाल, सो काल कला जमदूरि निकारे।
तुलसी जिन चाँप धनू पै धरी, सो करी सम सूरति संत पुकारे॥

अर्थ–कार्तिक में चन्द्रमा की किरणें प्रभावमयी हो उठीं–इसलिए सारे बादल आकाश से दूर हो उठे। जल भूमि पर स्थिर हो उठे और नाले तथा नदियों के जल सुरति समुद्र में समा गए। साधना की चाल चलते हुए बूँद सिन्धु से मिल उठे और उन्होंने काल की कलाओं एवं यम को दूर भगा दिया। जिन साधुओं ने अपनी धनु पर बाण चढ़ा लिए, संतजन कहते हैं कि, उन लोगों ने अपनी सुरति समाधिको सम भाव की बना ली॥

(कड़ी)

कातिक किरनि भास भये सूर। सलितहि समुन्द मिलै जस मूर॥
बुन्द सिंध बिन फिरत बेहाला। मिलि गया सब्द कटे जमजाल॥
सुरति घर चाप चहौंगी॥ ५॥

अर्थ–कार्तिक में सूर्य की किरणें प्रकाशित हो उठीं। सरिता और समुद्र आधार के रूप में मिल गए। बुंद और सिन्धु मिलन का होने के कारण बेहाल घिर रहे हैं। साधुजनों को 'सबद' प्राप्त हो उठा और उनके मायिक संकट (जन्म-मृत्यु) के संकट दूर हो उठे। अब तो सुरति की निवास स्थली में दबाव डाल कर निर्वाह करूँगी॥

(सवैया)

अगहन मास अनंदअली, सोंचली पिया पास पलंग बिछाई॥
पायौ पलक्क के पारपती, सोसती सत सूरति सार लखाई॥
सेज मिलाप भये पति आप, सो जीवत जनम सुफल्ल कहाई॥
तुलसी मन में सुख चैन भई, सो गई बर आदि सो साध समाई॥

अर्थ–अगहन का महीना है, सखी आनन्दित है, प्रिय के पास चली और पलंग बिछा दिया। अपनी पलकों में उसने दिव्य पति को प्राप्त कर लिया और उस सती को सत्य पुरुष की सूरति का निचोड़ दिखाई पड़ गया। पति से स्वयं सेज पर मिलन हुआ और उसने जीवित अवस्था में ही अपना जन्म सुकाल कर लिया। तुलसी साहब कहते हैं कि उसके मन में परम शन्ति मिली और वह अपने अनादि पति की आकांक्षाओं में खो गई॥

(कड़ी)

अगहन अली पिया पलँग बिछावा। जीवत जनम मिलौं अस दाँव॥
पिया की सेज सुख सहस्त्रु ततिसार। नित प्रति केलकरौं पति लार॥
अली बर आदि बरौंगी॥ ६॥

अर्थ–अगहन के महीने में हे सखी! पति के लिए पलँग बिछाओ और इस जीवनकाल में देखते-देखते ऐसा अवसर मिल रहा है। पति की वह शय्या हजारों-हजारों ध्वनि तरंगों के आनन्द से भी विलक्षण है और मैं उस शय्या पर प्रतिदिन संसक्ति पूर्वक केलि क्रीड़ा करूँगी और मैं अपने उस आदि परम तत्त्व को वर के रूप में वरण करूँगी॥ ६॥

(सवैया)

पूस पुरुष क़ी होस भई, सों गई सतलोक में सो ; सिहारी॥
प्यारी सखी गुरु गैल गई, सो कही पद प्यारे की चौ घिन्हारी॥
छाइ रही सुन मंदिर में, घर घाट पिया लखि बा बिचारी॥
पिय रस रीत की जीत भई, सो कही तुलसी जिन न निहारी॥

अर्थ–पूष के महीने में मुझे अपने पुरुषके प्रति याद आई फलतः सत्लोक में जा कर मैंने अपना शोक विनष्ट कर दिया। मैं अपनी प्यारी सखी के बड़ी गली में गई और अपने प्रिय के आनन्द भरी पहचान बताई। उनके विषय में सुनकर उनके मंदिर में छाई रही और उनके घर-घाट और मार्ग के लिए परेशान रही। तुलसी साहब कहते हैं कि अन्त में प्रियतम के मिलन के रस की विजय हुई क्योंकि जिन नेत्रों से उसने मुझे जैसे ही देखा है, उसे बताया।

(कड़ी)

पूस परम परम पद पुरुष निवास। स्त्रुति सतलोक करै नित बास॥
सिष गुरुगवन मिले मत पाइ। प्यारी पुरुष रही घर छाइ॥
सखी सुख जानि कहौंगी॥ ७॥

अर्थ—पूस मास ही उस परम पद के लिए श्रेष्ठ निवास है और (इसी महीनें में) वह पुरुष श्रुति लोक में निरन्तर निवास करता रहता है। गुरु द्वारा उस संत पुरुष तक के गमन के ज्ञान मिलते हैं और इस प्रकार वह प्यारी आत्म चेतना उस अगम्य पुरुष के घर में जाकर निरन्तर वास करती है। हे सखी उस सुख का वर्णन मैं समझ कर बताऊँगी॥ ७॥

(सवैया)

माह मनोहर महल चढ़ी, सो खड़ी खिरकी तक तोल बखानी॥
जानि कही सोइ साध सुजान, सो मानी जिन्ही सोइ पास समानी॥
पानी दूध की छानकरी, सो भरी लखि सूरति सब्द ठिकानी॥
जीवत ही मरि जात सही, सो कही तुलसी जिन जानि निसानी॥

अर्थ—मनोहर माघ के महीने में वह महल में चढ़ी हुई और खिड़की के पास खड़ी होकर उसके रहस्य (तकलीफ) को इंगित कर रही है। उसने समझकर सुजान साधुओं को अनुभव की बातें बताई किन्तु उसे उसी ने माना जो पास आकर अनुभव किया था। दूध तथा पानी को अलग करते हुए उसे उस सुरति समाधि में देखकर आनन्दित हुई तथा सुरति शब्द में स्थिर हो उठी। तुलसी साहब कहते हैं कि जिन्होंने उसके लक्षणों को समझ लिया है, वे जीवित रहते हुए मृत जैसे हो उठते हैं॥

(कड़ी)

माह महल झँझरी चढ़ि ताक। पिया की सेज सुखसत सत भाख॥
कोइ कोइ सज्जन साध बिलास। पहुँचे अगम पिया घर बास॥
कही जिन जिवत मरौंगी॥ ८॥

अर्थ—माघ के महीने में खिड़की पर चढ़कर ताको और अपने प्रिय की सुख देने वाली शैय्या का वर्णन करो। कोई कोई साधुजन ही वहाँ विलास करते हैं और उस प्रियतम के अगम्य घर में पहुँचते हैं और कहते हैं—यहाँ जीवन्मृत रहना ही उचित है॥ ८॥

(सवैया)

फागुन फहम करौरी सखी, लख जात बह्यौ संसार असारा॥
सूरति सार के पार लखै, सो थकै मन मारग मौज अपारा॥
संत सिरोमनि शैल कही, सो गई गुरुमारग साँझ सवारा॥
प्यारे पिया की पकड़ गही, सो जकड़ हिये जंजीर सी डारा॥

अर्थ—इस फागुन के महीने में थोड़ा धीरज रखो-देखो, यह असार संसार (वासन्ती दवाव में) बहा जा रहा है। जो साधु सुरति-सार तत्त्व के उस पार देखते हैं, वे थकित हो उठते हैं—क्योंकि उस मार्ग में अपार आनन्द है। संत शिरोमणियों ने जिसे 'आनन्द-बिहार' कहा है—वह तो गुरु मार्ग पर चलकर साँझ या सबेरे चला गया। वह अब प्रियतम अगम्य पुरुष की पकड़ में है: और उसे जकड़ कर उसमें जंजीर की भांति हृदय में डाल लिया है।

(कड़ी)

फागुन फरक भयौ संसार। जिन जिन सुरति करी तन जार॥
सतगुरु मूल मता मुख बैन। जब लखि लखी संत की सैन॥
समझ सोह पकड़ धरौंगी॥ ९॥

अर्थ–फागुन के महीने में संसार में अंतर आ गया है–जिन्होंने सुरति समाधि लगाई, उनका शरीर जल उठा। सत्गुरु का मूल मंत्र ही मुख की वाणी है- और जब-जब उसने संतों के इशारों को देखा उसने कहा, अब वही मैं पकड़ कर धारण कर लूँगी॥ ९॥

(सवैया)

चैत चली सो सुनौ री अली, गइ गैल गली सुन रीति निहारी॥
सेत सरासर भेद लखी, सो पकी बिधि बेनी के घाट बिचारी॥
सारी सरोवरि ताल तकी, पकि प्यारी अन्हाइ के काज सँवारी॥
जो तुलसी चढ़ि के जो चली, सो अली खिरकी बिधि आनि पकारी॥

अर्थ–चैत का महीना है, हे सखी! सुनो, मैं अपने प्रियतम की उस गली में गई और वहाँ जाकर उसकी रीति नीति देखी। मैंने श्वेत मार्ग का स्पष्ट रहस्य देखा, और वह त्रिवेणी (इडा, पिंगला, सुषमा) के घाट पर विचारी पकी हुई थी। मैंने सारे सरोवरों और तालों को देखा और पूरी तरह से परिपक्व होकर तथा स्नान करके कार्य सम्पन्न किया। तुलसी साहब कहते हैं कि जो वहाँ चढ़ती हुई चलती गई वह खिड़की तक पहुँच कर परिपक्वता प्राप्त कर की॥

(कड़ी)

चैत चली जिन चरन निहार। सो उतरी भौसागर पार॥
आद अरु अंत पंथ घर बाट। सो पद परसि त्रिबेनी घाट॥
चीन्ह खिरकी को चहौंगी॥ १०॥

अर्थ–चैत्र माह में जो उन चरणों के चिह्नों को देखकर सुरति मार्ग पर चली–वह भव सागर के पार उतर गई। आदि से लेकर अन्त तक उसके ही घर एवं घाट हैं उसके ऐसे त्रिवेणी घाट के मार्ग का अनुगमन करो–और प्रियतमा कहती है–कि मैं अपने पति के आवास की खिड़की को पहचान कर ही उसी की आकांक्षा करूंगी और की नहीं॥ १०॥

(सवैया)

बैन बिधी बैसाख बिलास, सो पास पिया नित सैल सँवारे॥
पार के सार बिहार करै, सो बिचार बिधी स्रुत तार निहारे॥
प्रीतम मेल भया रस केल, सों केल किवार के पार पुकारे॥
तुलसी तन में जिन जान लखे, सो भखे पिय पास के भास निकारे॥

अर्थ–वैशाख मास की विलास विधि की वाणी सुनो! मेरे पति मेरे सदा समीप हैं और निरन्तर बिहार को सँवार रहे हैं। उस परम तत्त्व के उस पार वे बिहार कर रहे हैं, और विचार विधि के लिए श्रुति चिन्तन के सम्बन्धों को देखते हैं। प्रियतम मिले, रसक्रीड़ा सम्पन्न हुई:उस केलि के शब्द किवाड़ के उस पार पुकारे जाते हैं–यह आश्चर्य का विषय है। तुलसी साहब कहते हैं कि जिन शरीरों में चेतना दिखाई पड़ती है, वे प्रियतम के पास आत्म निवेदन के शब्द कहते हुए अपने हृदय की पीड़ा निकाल रहे हैं।

(कड़ी)

करि बस बास बैसाख बिलास। छूटि गई तनमन की आस॥
प्रीतम प्यारी मिले मन खोल। रँग रस रीति सुने सब बोल॥
पिया सँग केल करौंगी॥ ११॥

अर्थ–वैशाख विलास में अपने वास स्वामी को नियंत्रित करो और प्रिय के साहचर्य से तन-मन की आशा छूट गई। हे प्यारी! तुम प्रियतम से मन को खोलकर मिलो। रस रीति से रंग उठो और उससे जुड़े सारे बातों को सुनो और मैं तो प्रियतम के साथ रसक्रीड़ा करूँगी॥ ११॥॥

(सवैया)

जेठ की रीत करी मन जीत, सो प्रीत की बात की सैन सुनाई॥
चेत चली तजि काल बली, सोइ जाल जली दुख दूरि नसाई॥
जिमि धाइ जो धीर गँभीर नदी, स्रुत सार सँवारि जो सब्द समाई॥
ये मुख बैन कहै तुलसी, सो लसी सत द्वार जो सब्द को पाई॥

अर्थ–जेठ की रीति यही है कि मन को जीतो तभी प्रिय की प्रेम भरी बातों की भंगिमा सुनाई पड़ेगी। बली काल को जानकर उसका त्याग करके चलो और कर्मकाल के जाल से युक्त हो उठोगी और उसका दुःख दर्द नष्ट हो उठेगा। धीर तथा गम्भीर नदी की भांति दौड़ो और श्रुति सार को सँवार कर उस शब्द में समा जाओ। तुलसी अपने मुख से यह बात कहते हैं कि जिसने 'सबद' का मर्म पा लिया है, वही उस सत्य पुरुष के द्वार पर निवास करता है।

(कड़ी)

जेठ जबर तन मन स्रुत रीत। सुरख सबज चली अगमन जीत॥
सेत जरद रँग स्याम भुलान। पाँचोइ तत्त करी नहिं कानि॥
सुखी सुनि पार फिरौंगी॥ १२॥

अर्थ–जेठ का महीना संकटमय है, तन मन को श्रुति की रीति में लगाकर अगम्य की ज्योति की ओर सँवार-सजकर चलो। वह श्याम (प्रियतम) श्वेत और जर्द रंग में भुला गया है–पांचों तत्त्वों में से किसी की बात न सुनो–तभी शून्य के उस पार तुम सुखी होकर टहलोगी॥ १२॥

केवल ज्ञान निरबान निवास। ता से परे कहै तुलसीदास॥
संत चरन धरि धारौ धूरि। अगम बरन बरनी पद मूर॥
निडर घर सुरति भरौंगी॥ १३॥

अर्थ–वहाँ कैवल्य ज्ञान का निवास है–तुलसी साहब उसके परे हैं आगे सत् के चरणों को पकड़कर उसकी धूलि धारण करो। उसके चरणों का स्थान अगम पद का मूलतत्त्व कहा गया है। मैं इस प्रकार निडर भाव से सुरति के घर को आत्म-संस्थापन से भर दूँगी॥ १३॥

(सोरठा)

बारह मास बयान, हिये हेरि कोइ पद लखै॥
चखै चरन रस रीति, प्रीति पार पुर्षहिं मिलै॥

अर्थ–इस बारह मासे के वर्णन को हृदय से देखकर कोई भी सन्त यदि उस अगम्य तत्त्व के चरणों को देखता है तो इन चरणों की रस की रीति को चखेगा और उस प्रीति को पार करके उस परम पुरुष तत्त्व की प्राप्त करेगा॥

॥ चौपाई॥

जिन जिन हेर हिये बिच पावा। बारह मास समझि चितलावा॥
समझि समझि कोइ बूझै साध। सुरति सहर घर बरन अगाधू॥

अर्थ–जिन-जिन में उस परम पुरुष की खोज करके हृदय में प्राप्त कर लिया है–इस बारह मासे को समझकरके उसी में चित्त लगा दिया। कोई साधुजन ही इसे समझकर बोध करेगा–उस सुरति नगर में धर की पहचान (वर्ण) दुर्लभ है।

चित्त दे गुनै लखै सुनि काना। सत सतसंग करै परमाना॥
बिन सतसंग साँच नहिं आवै। धर धर धोखे जन्म गँवावै॥
जिन सतसंग रंग रस पाई। हिरदे तिमर कपाट खुलाई॥
मन तन सुरति फोड़ असमाना। मद्ध हिये तन तिमर नसाना॥
मोड़ी सुरति पोढ़ा पद लारी। तेज भास लखि सुरति निहारी॥
हिये दृग नैन निरखि जस देखा। संत सैन कोइ करै बिबेका॥
जिन जिन सुख दुख दूरि बहाये। कर्म काल कृत धोय नसाये॥
तन बिच तोड़ा सुरति निसाना। सुन्न सब्द स्त्रुति गगन समाना॥

अर्थ–इसे चित्त से सुने और कानों से सुनकर देखे और सत् पुरुष की सत्संगति करके उसे प्रमाणित कर दे। बिना सत्संग के सत्य नहीं आता और संशय तथा धोखे में पड़कर गँवा देता है। जिन्होंने सत्संग का रंग और रस नहीं प्राप्त कर लिया है, उनके ही हृदय के अंधकार की हो किवाड़े खुलती है। शरीर की कामनाओं एवं मन की केन्द्रीयता से शून्याकाश को तोड़ने से हृदय के मध्य का तिमिर नष्ट हो उठता है। सुरति की ओर मोड़कर उस सत्य के प्रौढ़ पदों में लगो। हृदय रूपी नेत्रों से इसे इस प्रकार देखो जिसका विवेक किसी संत की भंगिमा ही निवारण करती है। जिन-जिन महात्माओं के भौतिक सुख तथा दुःखों को धोकर बहा दिया–उन्होंने कर्म, काल तथा उसके कूलों को विनष्ट कर दिया। इसी शरीर के बीच ही सुरति द्वारा लोक वासनाओं को तोड़ा गया और शून्य शब्द श्रुति के आकाश में समाधिस्थ हो उठा।

॥ दोहा ॥

सुन्न सब्द तन तोड़ि कै, मोड़ि गगन की गैल॥
मूल बिलावल में कहूँ, बूझै सज्जन सैल॥

अर्थ– इन तन को तोड़कर शून्य शब्द ने आकाश की गली मोड़ दी और इस नये तत्त्व को इस बिलावल राग द्वारा समझ लेता है॥

॥ बिलावल ॥

तुलसी तन तोड़ फोड़ मोड़ पोढ़ पाई॥ टेक॥
देखौ नृत नैन सैन बूझौ सतगुरु के बैन।
छाँड़ौ दुख सुक्ख सैन संतन मत चाही॥
अंदर में आदि खोज उतरै भौजाल बोझ।
मारौ जम काल फौज चौल चार माहीं॥
देखौ हिये हेर खोज अंत कहूँ नाहीं॥ १॥
सूरति नृत सैल खेल तोड़ौ असमाना पेल॥
सब्दा रस सुरति मेल मार दे चढ़ाई।
येहि बिधि चित चेत हेत मारौ मन सूर खेत॥

छाँड़ौ सगरी अचेत हेत सेत माईं।
ता से मन चेत बूझि देखि दृष्टि जाईं॥ २॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि इस शरीर को तोड़ देने पर, फोड़ देने पर और उसकी दिशा बदल देने पर ही कोई सन्त उस प्रौढ़ (श्रेष्ठ) स्थान को प्राप्त करता है।

प्रतिदिन सत्गुरु के पवित्र नेत्र और उसकी भंगिमाओं को देखो और उनकी बाणियों को समझो। संसार में स्थित सुख-दुःख को छोड़ दो और संत के मन की इच्छित भंगिकाओं को समझो।

अपने अन्दर स्थित उस आदि तत्त्व की खोजो, इस भवजाल का बोझ जिससे उत्तर सके और चार ही कदम चलकर यमराज और काल की फौज नष्ट कर दे। अपने हृदय को टटोलकर देखो, कहीं कोई अन्तिम बिन्दु नहीं है॥ १॥

सुरति के सत्य (नृत) के पर्वत पर खेलो, इस शून्याकाश की गहनता को तोड़ो, शब्द और सुरति का मेल करा दो फिर शून्याकाश पर चढ़ने का कष्ट भी खत्म कर दो।

इस प्रकार मन में समझ पैदा करने और शूरमा मन को युद्ध क्षेत्र में नष्ट कर दो और चारों ओर मान के अचेत व्याप्त तत्त्वों को, जो स्वार्थ के हेतु बने हैं, छोड़ दो॥ २॥

बाहर सब झूठ लूट ऐसा मन टूट फूट।
तन में मन आतम मोट भूला भल साईं॥
ये तौ सब काल जाल राम कृष्न निरख हाल।
या के सँग चलौ न चाल छाँड़ि भेद भाई॥
या से सतसँग सार खोजु मौज माहीं॥ ३॥
साँची कहै पूर अदूर बूझै कोइ संत सूर।
जानै अगमन अपूर मन तन रत राहीं॥
का से कहौं बात चौज सूरति मन मार मौज।
छूटै दिल दरज दौज खोज आप माहीं॥
रोज पार सार देख अंतर बिच पाहीं॥ ४॥
बूझौ मन सीख लीक चाखौ रस अगम चीख।
छूटै भौ भर्म भीखू पी के पार साईं॥
देखौ अज अमर हेर कीजें ब्रह्मंड सैर।
लीजै पिउ पार हेर फेरि मेहर पाईं॥
जा की गम घोर सोर कँवलन के माईं॥ ५॥

अर्थ–बाहर चारों ओर असत्य की लूट बनी हुई है–और इन सब में फँसकर इस प्रकार मन पूरी तरह से टूट चुका है–इसी तन में ही आत्मतत्त्व वर्तमान है, और यहीं शरीर में स्थित स्वामी को भी मन भूल चुका है॥ ये सब काल के जाल हैं, राम और कृष्ण की स्थिति को तो समझो–इनके साथ कभी कदम बढ़ाकर मत चलो। इस रहस्य (भेद) को समझकर, हे भाई! इन्हें छोड़ दो॥

इसी में ही सत्संगति का सार तत्त्व है और इसको अपनी आत्मा के आनन्द में खोजो॥ ३॥

मैं सत्य कह रहा हूँ, वह पूर्ण तत्त्व पास में ही है। यह समझ में आ रहा है–इसे कोई बलशाली (सूर) संत ही समझता है। जो राही (साधना मार्ग द्वारा-मनुष्य) मन और शरीर में रत है, वह इसे नहीं समझता।

इससे मैं रहस्य की बातें कर रहा हूँ। सूरति समाधि द्वारा मन को आनन्दपूर्वक वश में करने ताकि हृदय में स्थित संदेह एवं रहस्य समाप्त हो उठे–और इसे तुम अपने में ही खोजो॥ प्रतिदिन उस सारतत्त्व (पुरुष) को अपने अन्तर में ही उस पार प्राप्त करो॥ ४॥

मन के द्वारा मेरी शिक्षा समझो, उसी लीक को स्वीकारों तथा अगम रस के स्वाद को चखो ताकि इस भवसागर की भ्रममयी याचना छूट जाते और प्रिय के पार स्थित स्वामी प्राप्त हो सकें। उस अज तथा अमर तत्त्व को खोजकर देखो, इसके द्वारा इस ब्रह्मांड की सैर करो और उस पार प्रियतम को खोज लो और हृदय से उनकी दया (मेहर) प्राप्त करो। उस परतत्त्व की गम्य (पहचान-लक्ष्य) और ध्वनि कमलों के बीच सुनाई पड़ती है॥ ५॥

सुन्न घुन्न सुन्न माहिं सूरति से निरख जाइ।
हिये माहिं हरष पाइ लै से लै पाई॥
बूझै कोइ सब्द बुन्द पहुँचै पार अगम सिंधु।
सूरति से लखौ संध फंद फाड़ जाई॥
सब्दा रस सुरति चीन्ह लीन पार पाई॥ ६॥
पाया सतगुरु दयाल मारा मन डंड काल।
पाया पद पदम हाल साल जाल नाहीं॥
कीन्हा बहु प्यार यार लेखा अगमन अपार।
हर दम हिये लौ की लार कर्म को छुड़ाही॥
ये तौ तत मत्त सार तेरे तिल राही॥ ७॥

जिसकी शून्य की ध्वनि (अनाहत नाद) शून्य के मध्य सुनाई पड़ती है और सुरति समाधि द्वारा जिसे देखा जा सकता है तथा हृदय के बीच लयात्मक गति द्वारा हर्षित होकर उसे प्राप्त करो। उस अगम सिन्धु के पार पहुँचकर उसे 'सब्द' रूपी बिन्दु से समझो और इस मायिक फंदे को फाड़कर सुरति समाधि द्वारा उसे वहाँ जाकर जानो इसी सुरति समाधि द्वारा ही 'सब्द' रूपी रस में लीन उस तत्त्व को उस पार जाकर पहचानो॥ ६॥

दयालु सतगुरु को पाकर मन और काल दोनों को दंड से मार कर उस पुरुष तत्त्व के चरण कमल का अनुभव प्राप्त करो–इसमें किसी भी प्रकार के जाल का संकट या कष्ट नहीं है। उस प्रिय ने मुझे बहुत प्यार किया और मैंने भी उस अगम्य तथा अपार तत्त्व का हृदय में अनुभव किया और कर्म को छुड़ाकर प्रतिक्षण उससे मुक्त ही उठा। यह हृदय तो तुम्हारे लिये स्थान के मार्ग का राही होकर उस सार तत्त्व में मस्त है॥ ७॥

तुलसीदास पास अस सूरति नित चढ़ि अकास।
सोहत अगमन बिलास बुन्द सिंध आई॥
ऐसी दिन दिवस रैन पौंढ़ी पलँगा पै सैन।
चीन्हा घर आदि ऐन प्यारा गुरु पाई॥
न्यारा नित नित निहार प्यारे के आई॥ ८॥
याही बिधि कहत सूर सतगुरु की चरन धर।
जाना सगरा जहूर जल जल ज्यों जाई॥
मो को प्रिये प्रिये लाग छनि छनि उठि निरख भाग।

मन से जग सुरति त्याग खग ज्यों उड़ जाई॥
छिन छिन नित करै सैल धृत ज्यों दधि माईं॥ ९॥
तुलसी तन निरख सार सूरति पेखा बिहार।
देखा पद चटक चार दीदा दरसाई॥
सुखमनि मन मन्न लार आगे सूरति सँवारि।
पाये पिया प्राग पार पूरा मद माईं॥
तुलसी तुलसी निहार बोलै घट माईं॥ १०॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि तुम्हारे पास तो इस प्रकार की सुरति तत्त्व रूपी आकाश है, उस पर नित्य प्रति चढ़ो और वहाँ उस अगम तत्त्व की निरन्तर विलासमयी भावना शोभित हो रही है और बिन्दु सिन्धु के समीप मिलने के लिए आ गई है। सारी रातें और सारे दिन निरन्तर इसी प्रकार (आनन्दमयी) हैं और उस (प्रियतम) के संकेत से उसके पँलग पर लेट गई हूँ–और प्यारे गुरु को पाकर अब अपना आदि निवास स्थान में स्थित घर पहचान लिया है और उस विलक्षण प्रियतम को मैं नित्य-प्रति-नित्य देखती जा रही हूँ॥ ८॥

सत्गुरु के चरणों की धूलि पाकर इसी प्रकार हम सिद्ध संतजन कहते हैं और अगम्य जल में घुस-घुसकर इस समग्र संसार के रहस्यों को समझा। मुझको प्रतिक्षण मेरा प्रिय-प्रिय लगा और क्षण-क्षण। उठकर अपने भाग्यस्वरूप उस प्रियतम को देखा। इस मन से सुरति द्वारा संसार को इस प्रकार त्याग दिया जैसे वृक्ष से उड़-उड़ कर पक्षी भाग जाते हों और उस अपने प्रियतम में मैं क्षण-क्षण इस प्रकार बिहार करती हूँ, जैसे दही के अन्तर्ग स्थित घृत॥

तुलसी साहब कहते हैं कि इस संसार के सार को देखकर सुरति स्थली में अपनी बिहार स्थली देखी और वहाँ पदों की चटक सुनी तथा सुनकर दर्शन दिखाई पड़ा (या उसने सुन्दर दर्शन दिया) सुख भरे चित्त में चित्त आत्मीय हो उठा और फिर अपनी सुरति समाधि को सँवार कर उसके आगे अपने प्रियतम को पूरे आनन्द के साथ प्राप्त किया।

और इस तुलसी को जैसे घट के मध्य स्वयं तुलसी देखकर आत्मीयता से बात कर रहे हैं। इस प्रकार आत्मस्व से दर्शन तक इस समाधि का बहुत बड़ा सुख रहा हो॥ १०॥

॥ सोरठा॥

प्रियेलाल लखि बात, ये अनंत न्यारी कही।
सूझि बूझि हिये सोय, जब अरूप गति को लैखै॥

अर्थ–हे प्रियेलाल, इस बातों को समझो, मैंने विलक्षण बातें कहीं हैं, इस देह के अन्तर्गत साधक उस अरूप गति को देख लेता है, तभी उसके द्वारा वह सूझता है और समझा जाता है॥

॥ चौपाई॥

ये घर अगम भेद है भाई। सतसंग करै लखै तब जाई॥
ये अगाध की बात अनूपा। बूझै संत मिलै कोई भूपा॥
अगम पंथ सतगुरु से पावै। सतगुरु मिलै तो राह बतावै॥

अर्थ–यह काया का घर अगम्य एवं अभेद्य है। सत्संगति करने के बाद ही यह इस समाज में आता है। यह अगाध तत्त्व की विलक्षण बातें हैं–कोई राजलक्षण युक्त संत जब मिलता है, तभी संतों की समझ में बातें आती हैं। सत्गुरु द्वारा साधु उस अगम्य पंथ को प्राप्त कर लेता है। सत्गुरु मिलने पर ही वह इस अगम्य तत्त्व की रातें बताता है–अन्य कोई नहीं॥

॥ प्रश्न प्रियेलाल । चौपाई ॥

स्वामी से बूझौं इक बाता। ता की बिधी कहौ बिख्याता॥
जग निस्तार बेद से होई। कै कोई और राह मति सोई॥
सब मिलि कहै बेद निस्तारा। बेद बिना नहिं उतरै पारा॥
आदि बेद चारौ जुग माहीं। जिव भौ पार उतरि के जाई॥
ऐसे सभी सभी मिल गावे। सतगुरु मिलैं भेद बतलावैं॥

अर्थ–हे स्वामी! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ–उसके मर्म को मुझे समझाने का कष्ट करें। सारे संसार का गुजर-बसर बेद से होता है क्या इसके अतिरिक्त भी कोई अन्य मार्ग या ज्ञान है। सभी मिलकर कहते हैं कि समग्र रहन-सहन की व्यवस्था वेद से है, और बिना बेद के कोई उस पार नहीं उतर सकता। चारों युगों में वेद ही आदि तत्त्व है और उसके द्वारा ही जीव भवसागर के उस पार उतर कर जाता है। इसी प्रकार की बातें सभी मिलकर कहते हैं–भाग्य से, यदि सत्गुरु मिलते हैं तो वही इस रहस्य को बतला सकते हैं॥

॥ उतर तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

सतगुरु मिलैं कहैं दरसाई। बिना संत नहिं बूझ बुझाई॥
बेद भेद बिधि नाहीं जानै। बाम्हन पंडित एक न मानै॥

अर्थ–भाग्य से, जब सत्गुरु मिलते हैं तो वही उसे प्रत्यक्ष दिखकर बताते हैं। यह बिना सन्तों के समझ में नहीं आता। वेद के भेद को हम नहीं जानते–और ब्राह्मणों तथा पंडितों को हम नहीं स्वीकारते हैं॥

॥ प्रश्न प्रियेलाल। चौपाई ॥

स्वामी दया भाव करि दीजै। दास जानि प्रभु किरपा कीजै॥
हे दयाल या की बिधि भाखौ। मोपर दया दृष्टि सोइ राखौ॥
मोहिं प्रभुदास भाव करि जानौ। किरपा करि सोइ करौ बखानौ॥
मैं चेरा तुम चरन बिचारा। भाखौ आदि अंत निरबारा॥

अर्थ–प्रियेलाल कहते हैं कि हे स्वामी! मेरे ऊपर कुछ दयाभाव कर दें और अपना दास समझकर कुछ कृपा कर दें। हे दयालु! इसके विषय में कुछ कहें और मेरे ऊपर आपने जो दया दृष्टि की है, उसी की रक्षा करते चलें। हे स्वामी! मुझ पर आप दास्यभाव की ही कृपा करें और कृपा करते हुए उसी का मुझसे वर्णन करें। मैं बेचारा तो तुम्हारे चरणों का दास हूँ–और आदि-अन्त तक उस परम तत्त्व का निराकरण करते हुए मुझे बताएँ।

सम्वाद प्रियेलाल गुसाई के साथ

॥ उत्तर तुलसी साहिब। चौपाई ॥

अब भाखूँ सुन आदि अपारी। बेद अन्त भाखूँ सब झारी॥
सत्त पुरुष इक रहै अकाया। अंस तासु सोइ निरगुन आया॥
गुन तीनों से सरगुन भइया। सोइ भगवान बैराटी कहिया॥
सोइ बैराट से ब्रह्मा भइया। तुम कहौ ता न बेद बनइया॥

पुनि उन निरगुन बेद बुझाई। सोइ निरगुन ने नेति सुनाई॥
सत्त पुरुष निरगुन से न्यारा। निरगुन काल ने पावै पारा॥
पुरुष अस से सब जिव आये। निरगुन ने सरगुन में नाये॥

अर्थ–अब मैं आदि एवं अपार का वर्णन कर रहा हूँ। साथ ही, वेद के सम्पूर्ण अन्त का भी वर्णन कर रहा हूँ। शून्याकाश में एक सत्य पुरुष बिना शरीर का रहता है–उसी के अंश से निरंजन तत्त्व आया है। तीन गुणों में एकता हुई उसी से सगुण बना। उसी को विराट भगवान कहा जाता है। उसी वैराट से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, उसी के लिए कहते हो कि उसने वेदों की रचना की है। उन्होनें उसके बाद निर्गुण वेद बनाया और उस निर्गुण ने नेति' शब्द कहा। सत्य पुरुष निर्गुण से न्यारा है। इस निर्गुण से काल भी पार नहीं पा सकता। पुरुष अंश से सारे जीव प्रगट हुए हैं–निर्गुण ने अपने थोड़े अंशों को सगुण में डाल दिया।

पाँच तत्त गुन तीनि समाई। भये बैराट कर्म बिधि जाई॥
जा को जगत कहे भगवाना। कर्म भाव चर अचर समाना॥
रजोगुन ब्रह्मा ता से भइया। पहिले नाद बेद पुनि कहिया॥
पाँच तत्त बिन नाद न सोई। सो विन नाद बेद कस होई॥
पुरुष नाम निरगुन से न्यारा। सोइ अंस जिव जुग जुग सारा॥
आदि पुरुष को जीव भुलाना। निरगुन काल माहिं उरझाना॥
निरगुन नेति सरगुन बतलावै। यह बैराट बेद बिधि गावै॥
सत्त पुरुष का मरम न पावै। निरगुन सरगुन को गोहरावै॥
आदि पुरुष को संत बखाना। वो घर पहुँचै सुरति निसाना॥
अब या का दृष्टांत बताऊँ। प्रियेलाल सुनियौ सत भाऊ॥
प्रथमहि जीव पुरुष से आया। निरमल ज्ञान संग सम लाया॥
परथम जुग जिव निरमल होई। तारन उजला होत न सोई॥
जिव उजला जुग उजला भाई। जबहि बेद तारन कस गाई॥

अर्थ–इस शरीर में पाँच तत्त्व एवं तीन गुण समाविष्ट हो उठे और वे कर्मविधि के कारण विराट बन गए। संसार इन्हीं को भगवान कहते हैं और इस सम्पूर्ण चर-अचर युक्त संसार में कर्मभाव समाविष्ट हो उठा। रजोगुण से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई उन्होंने पहले नाद की चर्चा की फिर वेद की। बिना पाँचों तत्त्वों के नाद की भी स्थिति नहीं है और बिना उश नाद तत्त्व के वेद तत्त्व कहाँ से हो सकता है। पुरुष निर्गुण से विलक्षण है–युग-युग के समस्त जीव उसी के अंश हैं जीव उस आदि पुरुष को भूल गया और वह निर्गुण रूप काल तत्त्व के बीच उलझ गया। सगुण को ये निर्गुण तथा नेति कहते हैं और ये वैराट के भेद विधि का वर्णन करते हैं (न कि पुरुष ब्रह्म की)। ये सत्य पुरुष का भेद नहीं जानते और ये निर्गुण को भी सगुण कहते हैं। सन्तों ने इस आदि पुरुष का वर्णन किया है और वही सुरति के चित्त द्वारा उस घर तक पहुँच जाते हैं। हे प्रिये लाल! सत्यभाव से सुनें, अब मैं इस सन्दर्भ में उनका एक दृष्टान्त देता हूँ।

सर्वप्रथम जीव का जन्म पुरुष से हुआ और अपने ज्ञान के साथ सारी निर्मलता लेकर आया था। प्रथा युग में जीवों का हृदय निर्मल होता था–उसके बाद यह उतना उजला नहीं रह गया। यदि युग उजला है तो जीव का हृदय भी उजला है तब वेदों ने जीव का उद्धार किया यह बातें कैसे कही गईं॥

कहै बेद तारन की बाता। तरन कहा कर कीन्ह बिधाता॥
उजला जुग उजला जिव आया। ताजा पुरुष पास अस गावा॥
तब तारन कस बेद बतावा। मैला जिव होइ तरन लखावा।
मैला तौ जब हता न भाई। जब यह कस निस्तार बताई॥
उजला कपड़ा धोवन कहिया। सो धोबी के कस कस दैया॥
मैले को धोबी समझावै। उजले को कस धोइ बतावै॥
या की बिधी बतावौ भाई। कस उजला धोवन बिधि गाई॥
उजला जीव बेद सँग साथा। मैला होत न पकरै हाथा॥
मैला करन बेद समझावा। जब जोइ उजला ज्ञान हिरावा॥
उजला कर निस्तारै बेदा। जीव जो आदि खानि बस खेदा॥
कर्मकाल सँग कीन्ह समाधा। अस अस बेदन करी उपाधा॥
बेद तो लिखा आदि से भाई। निरमल कोमल कर्म लखाई॥
जैसे बनिया करै दुकानै। बेचि खरीदि न टोटा जानै॥

अर्थ–ये वेदों द्वारा उद्धार की बातें कहते हैं और इस स्थिति में जीव का उद्धार विधाता ने कहाँ किया? पवित्र युग में पवित्र जीव पैदा हुआ और यह कहा जाता है कि उस समय के सारे मनुष्य पवित्र थे। इस स्थिति में क्यों कहा जाता है कि वेद ही सब का तारनहार हैं–यदि जीव मैला हो तो तरने की बात कहो–इस युग में तो कोई जीव मैला ही न था। जब उस समय जीव ही मैला नहीं था तब तुम इसके तरन-तारण के निस्तार की बातें, हे भाई! क्यों बता रहे हो। उजले कपड़ों को धोने के लिए कहों तो कैसे! उसे धोबी को कैसे कैसे कहकर दोगे। धोबी को तो धोने के लिए मैले कपड़े के लिए समझाओगे–और उजले के लिए कैसे धोने के लिए बताओगे। हे भाई! इसकी विधि बताओ कि उजले कपड़े के धोने की विधि क्या है? वह उज्ज्वल जीव वेद के संग और साथ था–यदि मैला होता तो उनका हाथ न पकड़ता। उस समय जब वेद का युग था तो क्या वेद ने पापवृत्ति (मैला करना) बताई थी और क्या उस समय समस्त उजला ज्ञान खो चुका था। वेद पापी को पवित्र बनाकर उसका निस्तार करता है–जीव तो, आदि काल से पाप की खानि में पड़ा हुआ है। जीव तो कर्म एवं काल के साथ समाधिस्थ हो उठा है–ऐसा ऐसा वेदों ने जीव के साथ कार्य किया है। वेद तो आदि काल से लिखा गया है और उसमें निर्मल कोमल कर्म की ही व्यवस्था है। जैसे कोई वनिया दूकान करता है और खरीदने-बचेने के बीच अपना घाटा नहीं होने देता

लेन न देन दुकान न जागा। टोटा करज ताहि कस लागा॥
बेद नाद दोउ संगहि आवा। तुम्हरे सास्तर अस अस गावा॥
बेदहि निरमल मैला कीन्हा। निरमल जब जब कछु लेन न देना॥
पुरुष पास जिव निरमल आवा। जुग निरमल जिव निरमल गावा॥
धोवन बेद भाख कस भाई। जब उजला उजले की राही॥
झूठा सौदा बेद लखावा। उजला मैला करन को चावा॥
मैला रहै जगत भौ भावै। उजला रहै तो घर को जावै॥
मैला रहै खानि में आवै। येहि कारन किया बेद उपावै॥

तीरथ ब्रत और चारों धामा। जप तप इष्ट नेम बहु कामा॥
ये सब पाप पुन्य बतलावा। येहि बिधि मैला बेद करावा॥
कर्म धर्म सब जीव फँदाई। उजले घर की राह भुलाई॥

अर्थ–वस्तु को लेते देते समय दूकानदार अन्य कोई बात नहीं जानता और वह वस्तु की कमी और कर्ज लगने के बारे में ही सोचता रहता है। वेद तथा नाद ये दोनों साथ-साथ आए हैं, ऐसा तुम्हारे शास्त्र में गाया गया है। लोगों ने (स्वार्थ वश) निर्मल वेद को मैला बना रखा है, और जब-जब वह निर्मल था:तब उससे किसी का लेना देना नहीं था। पुरुष के पास निर्मल जीव आया–उस निर्मल युग ने निर्मल जीव के बारे में कहा है। हे भाई! फिर धोने के लिए वेदों के पास जाकर क्यों कहते हो–जबकि पवित्र व्यक्ति पवित्रता की ही ओर जा रहा है। यह वेद झूँठी बातें कहा रहा है और पवित्र को अपवित्र करने की जैसी उसकी इच्छा है। आज जो अपवित्र है, वह संसार को अच्छा लग रहा है–और यदि पवित्र है तो केवल उसकी स्थिति घर तक ही सीमित है। यदि मैला है तो वह विपत्ति या माया की खानि में जाएगा और इसी कारण से वेद ने उसके पवित्र होने का उपाय किया है। वेद के उपाय हैं–तीर्थ, व्रत और चारों धामों की धर्मयात्रा, जप, तप, इष्ट के प्रति दौगम, नियम तथा अन्य धार्मिक कार्य। इन्होंने सभी को पाप पाप-पुण्य बतलाया गया है और यह सब बताकर वेदों को मैला करते हैं। धर्म एवं कर्मी सभी जीव के लिए भवसागर के फंदे हैं और सभी पवित्र घर की राहें भूल गए हैं।

घर की राह का धोका दीना। करे कर्म फिरि भयो मलीना॥
आदि अंत घर सुधि नहिं पावै। कर्म कर्म बिधि बेद बतावै॥
या की साखि बतावौ भाई। जग जिव झारि खानि में जाई॥
बेद निस्तार करन को आवा। उजला था तब नहिं समझावा॥
उजले में नहिं समझा भाई। मैले को कस पार लगाई॥
जस सहुकार चोर धर लीन्हा। घेरा ताहि कैद में कीन्हा॥
चोर ज्ञान संग छूटै नाहीं। साह ज्ञान संग घर को जाई॥
साह संग सुध जब ही पाता। तौ अपने घर को चलि जाता॥
यो अपना घर भूल न चीन्हा। ता से बेदन फाँसी दीन्हा॥
साह संत से उतरै पारा। चोरह बेद कैद में डारा॥
चोर संग ने फाँसी डारा। फाँस डारि कर कहै उधारा॥
जुगन जुगन संगहि चलि आवा। देखौं सब जग खानि समावा॥

अर्थ–उस परम पुरुष के पार के मार्ग के प्रति धोखा देते हैं–ये कर्म करके पुनः मलीन हो जाते हैं। अपने घर के आदि अन्त की याद तक उन्हें नहीं है और कहते हैं कि इन कर्म विधियों के लिए कहते हैं, इन्हें वेद बताते हैं। हे भाई! मैं इसका साक्ष्य बताओ क्योंकि सारे संसार के जीव नर्क में जा रहे हैं। वेद तो मुक्ति के लिए हल देने के लिए आया है–जब यह उझला था, तब पंडितों ने नहीं समझाया था। उसकी पवित्रता से तुमने, हे भाई! पवित्रता को नहीं समझा था और इन गन्दे कारणों से कैसे पार लगोगे? जैसे कोई सेठ-साहूकार रात को चोर पकड़ लिया हो और कैद में रखकर घेरा बना दिया हो। चोर अपने अज्ञान के कारण छूटता नहीं। वह अज्ञान को ही ज्ञान समझ रहा है। और सेठ उसी अज्ञान से भरा अपने घर को देखने जाता है–जब उसे सेठ के साथ ज्ञान होता है तो वह भी अपने घर को चला जाता–वह भूलकर भी अपना घर नहीं पहचान पाता और इसीलिए वेदों ने उस अज्ञानी को फाँसी लगा दी है। सेठ संतों का साथ करके भवसागर से पार उतर जाता है और वेद ने चोरों को कैद में डाल दिया

है और फाँसी दे देने के बाद वेद कहते है, मैंने उसका उद्धार कर दिया है। देखो, ये जीव युग युग से वेदों के साथ चले आए हैं, देखो, यह जीवों से भरा सारा संसार पाप (नरक) की खानि में डूबा हुआ है।

कइ उबरन की खबर न लावा। मरि मरि गये खबर नहिं पावा॥
मूए मुक्ति सभी मिलि गावा। जीवत मुक्ति न कोउ बतलावा॥
येहि बिधि बेद रीति है भाई। मुए मुक्ति को बेद बताई॥
जीवत मुक्ति देखिये आँखी। ताका मता कहनि सब भाखी॥
जीवत जीव मुक्ति को पावै। तहु नहिं आदि अंत घर जावै॥
घर की राह मुक्ति से न्यारी। सो सोइ जानै संत बिचारी॥

अर्थ–किसी ने भी किसी के उद्धार की कोई खबर नहीं लाए और सभी मर-मर कर उस भवसागर की खानि में चले गए, किसी की खबर नहीं मिली। सभी मृत व्यक्ति की मुक्ति की बात कहते हैं और जीवित व्यक्ति की मुक्ति की बात कोई नहीं बतलाते हैं। हे भाई! वेद की रीति ऐसी ही है–वेद तो मृत व्यक्ति की मुक्ति की बात बतलाते हैं। तुम सन्तों के साथ रहकर 'जीवित मुक्ति' अपनी आँखों से देखो–और उसके मत, और साक्षी सबका मैंने वर्णन कर भी दिया है। जीव जीवित रहते ही मुक्ति को प्राप्त करता है और उसके लिए कोई आदि-अन्त नहीं है और वह जीवित ही उस अपने परम धाम को पहुँचता है। यह परमधाम की राह मुक्ति से विलक्षण है–इसे वही जानता है–जो संतों के विचारों से जुड़ा है।

॥ प्रियेलाल उवाच। चौपाई॥

प्रियेलाल कहै बूझा स्वामी। वेद बिधी सब झूठी जानी॥
संध्या तरपन नेम अचारा। ये भी जाना झूठ पसारा॥
इनसे मुक्ति बिधी है न्यारी। ऐसी मन में समझ सिहारी॥
मुक्ति बिधी से पुरुष नियारा। सो पावै संतन की लारा॥
ऐसी खूब खूब मन आई। तब पुनि गिरे चरन पर धाइ॥
स्वामी करौ मोर निरबारा। मैं अब लागेउ चरन तुम्हारा॥
जो कछु कही सत्तमन भाई। जेहि बिधि तारा कूँची लाई॥
ऐसी पोढ़ पोढ़ मन मानी। जो जो भाखा मनहि समानी॥
अब अस दया करौं हो स्वामी। मन रहै चरन माहिं लपटानी॥
मोरे मन विधि ऐसी आई। तुम बिन राह कहूँ नहिं पाई॥
अस कहि माल डारि जिन दीन्हा। रात रहन मन में अस कीन्हा॥
सुरत गुपाल सुनौ तुम भाई। तुम अपने घर जाउ बनाई॥
हम तौ रहैं चरन के तीरा। जब मन आवै मौज सरीरा॥
सुरत गुपाल गये घर अपने। ये तौ चरचा सुनी न सुपने॥
येहि बिधि कहि अपने घर आये। प्रीयेलाल रहन मन भाये॥
ज्ञान उठा बैराग समाना। देखा जग झूठा संधाना॥
तिरिया पुत्र और धन धामा। तन छूटे कोइ आवै न कामा॥

तन पानी जस ओस समाना। फूटै बिनसै नित नित जाना।।
येहि बिधि समझि परा मन लेखा। ये जग ज्यों सुपने सम देखा।।

अर्थ–प्रियेलाल ने कहा, हे स्वामी मैंने समझ लिया है–और जान गया कि यह वेदविधि झूँठी है। सन्ध्या, तर्पण, नियम तथा आचरण–इन्हें भी समझ लिया है–ये झूँठ के फैलाव हैं। मुक्ति की विधि इनसे विलक्षण है और ऐसा मन में समझ गया और प्रतीति (सिहारी) हो उठी। वह पुरुष इस मुक्ति विधि से विलक्षण है और यह मुक्ति संतों की प्रेममयी सत्संगति से ही प्राप्त हो सकती है।।

आपकी इस प्रकार की बातें मेरी समझ में भलीभाँति आ चुकी हैं और वे उनके चरणों पर जा गिरे। हे स्वामी! आप मेरा समाधान कर दें और अब मैं आपके चरणों में आ लगा हूँ। आपने जो कुछ बताया, वह मेरे मन को सत्य प्रतीत हुआ और आप वह बताएँ कि जिससे ज्ञान के दरवाजे को खोलने के लिए ताले में चाभी लग जाए। मेरे मन ने आपके प्रौढ़ चिन्तन को स्वीकार कर लिया है और आपने जो-जो कहा है, वह मेरे मन में समाविष्ट हो चुका है। हे स्वामी! अब ऐसी दया करें कि मेरा मन आपके चरणों में लिपटा रहे। मेरे मन में अब यह ज्ञान आ रहा है कि आपके बिना कहीं भी मार्ग नहीं मिलेगा ऐसा कहते हुए उन्होंने स्वामी तुलसीदास जी के गले में माला डाल दी। और मन में यह निश्चय कि यहाँ रात्रि में रहेंगे। इसके बाद सुरति गोपाल को सम्बोधित करते हुए बोले कि हे भाई सुरति-गोपाल! अब तुम जाओ। हम तो तुलसी साहब के चरणों के पास ही तब तक रहेंगे जब तक इस शरीर में आनन्द आता रहेगा। सुरति गोपाल अपने घर गए–उन्होंने तो ये चर्चाएँ स्वप्न में भी नहीं सुनीं थीं। ऐसा कहकर वे इस प्रकार कह कर अपने घर आए और प्रिये लाल ने वहाँ रहने का मन बना लिया। प्रिये लाल का ज्ञान जागृत हो उठा, उनमें वैराग्य समा गया और उन्होंने देखा कि यह संसार झूँठा लक्ष्य है। पत्नी, पुत्र तथा धनधाम, इस शरीर के छूट जाने पर कोई काम नहीं आता।।

शरीर का जल ओस की भाँति शरीर में समा गया और यह समझ लिया कि यह स्थायी तत्त्व नहीं है–यह तो नित्य प्रति उत्पन्न और विनष्ट होने वाला तत्त्व है। मन में सांसारिकता का सारा प्रकरण इस प्रकार समझ पड़ा–जैसी इस संसार को उन्होंने स्वप्न में देखा हो।।

।। बचन तुलसी साहिब।। चौपाई।।

प्रियेलाल मन बिरह समानी। झरि झरि परै नैन से पानी।।
उठा ज्ञान जस सिंध समाना। उठी तरंग पुनि लहर प्रमाना।।
मुख से स्वाल बात नहिं आवै। बिरह लहर जस भुवँग सतावै।।
भुवँग डसे जस मन लहराई। मन में जहर लहर सी आई।।
जग देखा तन कछू न भावै। जला जंत जग बूड़ समावै।।

अर्थ–प्रिये लाल के मन में विरहभावना समा गई। (परम पुरुष के विछोह की भावना) और उनके नेत्रों से क्षण-क्षण अश्रु झड़ पड़ते थे। उनका स्फूर्त ज्ञान जैसे समुद्र में समा गया हो–तरंगे उठने लगीं–जिसके प्रमाण के रूप में वे लहरें थीं। उनके मुख से न प्रश्न उठते थे, न बातें आती थीं–बिरह की लहरें ऐसी उठती थीं–जैसे भुजंग (काला नाग) कष्ट दे रहा हो। सर्प के डस लेने के बाद जैसे मन लहरें लेने लगता है–उनके मन में विषबुझी लहर-सी आ गई। इस संसार को देखा, भौतिक जगत कुछ भी नहीं अच्छा लग रहा था, जैसे इस संसार के जीव जन्तु जलकर संसार में डूबकर समा गए हों।।

।। प्रियेलाल उवाच।। चौपाई।।

अब स्वामी मोहि सरनै लीजै। दया भाव मोहिं पर कीजै।।
कपड़ा नीके फेंकि निकारा। तोड़ जनेऊ कंठी डारा।।

अर्थ–हे स्वामी! अब आप मुझे शरण में ले लें और मुझ पर दया नाव करें। उन्होंने अपने अच्छे-वस्त्रों को शरीर के ऊपर से निकाल कर फेंक दिया और जनेऊ तथा कंठी को तोड़कर भूमि पर डाल दिया॥

॥ वचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

पुनि तेहि ज्ञान भेद समझावा। ताके मन में कछु धीर न आवा॥
पुनि तेहि बोध ज्ञान गति गाई। डारि जनेऊ गले मेलाई॥
कपरा कंठी गहि पहिरावा। बूझ ज्ञान बोध मन आवा॥
कपरा में बिधि सिद्ध न होई। संत की राह और बिधि सोई॥
प्रियेलाल सुन चित दे काना। संत रीति रस करौं बखाना॥
त्यागन संग्रह सन्त न जाना। ये मने कर्म भर्म भरमाना॥
त्यागन करै सोई पुनि पावै। फिरि फिरि भोग भाव जग आवै॥
संग्रह बंधन जगत बँधाना। ये दोऊ भर्म भेद जग माना॥
संत मता दोऊ से न्यारा। संग्रह त्यागन झूठ पसारा॥
संतन सुरति निरति ठहराई। मनथिर करि करि गगन चढ़ाई॥
सूरति सूर बीर भइ द्वारे। नभ भीतर चढ़ि गगन निहारै॥
सुरति सुहागिन सूर सिधारी। नित नित गगन गिरा से न्यारी॥
ता की मैं अब सब्द सुनाऊँ। संत मते की राह लखाऊँ॥

अर्थ–पुनः उनको ज्ञान का रहस्य समझाया किन्तु उनके मन में किसी भी प्रकार का धैर्यभाव न उत्पन्न हुआ। उसके बाद तुलसीसाहब ने उनके लिए प्रज्ञाबोध की गति का कथन किया–और उनकी जनेऊ को गले में डाल दिया। कपड़ा और गंठी को लेकर उन्हें पहनाया–फिर उनके मन को ज्ञानबोध हुआ। कपड़े द्वारा किसी भी विधि की सिद्धि नहीं मिलती–सन्तों की राह कुछ और प्रकार की है। हे प्रियेलाल! चित्त लगाकर कान से सुनोः मैं सन्तों की गति और उनके आनन्द का वर्णन कर रहा हूँ। सन्त न संग्रह जानते हैं और न त्याग–ये सब मन के कर्म हैं–जिनमें संसार भ्रमित हैं। जो जिस वस्तु का त्याग करता है, उसी को वह पुनः पाता है और पुनः पुनः इस भोगभाव से सम्पन्न जग में उत्पन्न होता रहता है। संग्रह और त्याग के बंधन में संसार बंधा हुआ है–ये दोनों संसार के बंधन के रहस्य तथा भेद माने जाते हैं। सन्तों का मन दोनों से पृथक है–और संग्रह त्याग का यह संदर्भ मिथ्या है। संतों ने तो सुरति एवं निरति की दशाएँ स्थिर की हैं--और वे मन को स्थिर कर करके शून्याकाश में पहुँचाते हैं और उस आकाश पर चढ़कर आमश की चारों ओर से देखते रहते हैं। सुरति रूपी सुहागिन अपने पराक्रमी पुरुष के पास जाती है और वह नित प्रति नित्य शून्य गगन की वाणी से विलक्षण होती है। अब मैं उसका शब्द सुनाता हूँ–और सन्त मत का मार्ग भी दिखाता हूँ।

॥ होली १ ॥

सुरति सुहागिन सूर भई री। गगन गिरा नभ गवन गई री॥ टेक॥
अधर हिये चढ़ि चसम चलीरी। पिय को परस घर आई अलीरी॥
अरध उरध बिच सुरति समानी। निरखा सब्द निरत अलगानी॥ १॥
महलन जब जब पिय को निहारी। प्रीत पुरातन प्रेम पियारी॥

अगम अधर घर निरखि निसानी। पिय को परसि दर ही लपटानी॥ २॥
सुख सागर मिलि सिंध समावा। बुन्दा समुन्द साध घर आवा॥
ज्यों पपिहा पिउ प्यास पुकारी। स्वाँति बुन्द पिउ पास मिलारी॥ ३॥
तुलसी तन मन सुरति लगाई। लैकी लगन पिय पलँग बिछाई॥
सेज सम्हारत हिये हुलसानी। ज्यों जल मिलि जल धार समानी॥

अर्थ–सुरति के सहयोग से चित्तात्मा रूपी सौभाग्यवती बलशालिनी हो उठी है और वह शून्याकाश में ध्वनित शब्दों के आधार पर आकाश की ओर चल पड़ी है। उसके नीचे-ऊपर सुरति समायी हुई है। उसने शून्याकाश के शब्द को सुनते ही निरति से अपने को अलग कर लिया। उस शून्याकाश के महल में जब अपने प्रियतम को देखा तो प्रियतम की पुरानी प्रीति में खो गई। उस अगम्य के बीच में घर के चिह्नों को देखकर और प्रिय का स्पर्श करके उसी स्थान पर ही आलिंगनवती हो उठी। सुख के सागर में मिलकर सिन्धु में समा गई और बूँद-समुद्र के मिलन को साधती (सिद्ध करती हुई) अपने घर में आ गई, जैसे पपीहा प्रिय की प्यास में उसे पुकारती रहता है क्योंकि वह जानती है कि स्वाति की बूँदे तो प्रिय के पास ही मिलेंगी। तुलसी साहब कहते हैं कि सुरति में तन-मन लगाकर और लगन के साथ प्रिय की बिछाई हुई पलंग पर वह लहकी। शैया को सम्हालती हुई वह हृदय में उमंगित हो रही है–और वह प्रियतम से इस प्रकार मिल रही है–जैसे जलधारा में जल मिलकर विलीन हो उठा हो॥

॥ होली २॥

अजब अली एक गगन गलीरी। सुरति चमक चढ़ि चटक चलीरी। टेक।
बिधि बिधि पुहुप बाग बन देखा। कहा कहौं अली अगम अलेखा।
ता बिच कंज कंवल मधु राजै। बिटप बरत तरु बिहँग बिराजै॥ १॥
सोभा भूमि अधिक छबि छाई। सुनरी सखी लख सुरति समाई।
तहँ सत सरवर ताल अनूपा। हंस भवन तन आतम भूपा॥ २॥
हिये के नैन दुरबीन लगाई। सिधु बुन्द परमातम पाई।
खिरकी अजर अली चढ़ि देखा। जहँ इक साहिब रूप न रेखा॥ ३॥
तुलसीसत गुरु देष सोक सब छूटा। कलसा कुम्भकरम का फूटा॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! शून्याकाश की एक गली बड़ी विलक्षण है। सुरति के केन्द्र पर वह चमक एवं चटक कर चल पड़ी। उसने वहाँ नाना प्रकार के बागों तथा बनो को देखा–वे इतने अगम्य एवं अलेख थे कि उनका वर्णन क्या कहा जाए। उनके बीच में मधु से मधु से भरा एक कमल-कोश दिखाई पड़ा। वृक्षों की तरु शाखाओं पर अनेक पक्षी शोभित है॥ १॥ हे सखी! सुनो, उस भूमि की शोभा एकायक और बढ़ गई जब इसने सुरति में प्रवेश कर लिया। वहाँ सत्य सरोवर है, अनुपम ताल है–वहाँ आत्मा रूपी में दूरबीन लगाकर उस सिन्धु-विन्दु जैसे परमात्मा को प्राप्त कर लो। उस सखी ने खिड़की से चढ़कर उस अमर तत्त्व को देखा–वहाँ एक स्वामी दिखाई पड़ा–जिसके पास न कोई रूप था–न पहचान का लक्षण। तुलसी साहब कहते हैं कि यहाँ पहुँच कर समस्त शोक विनष्ट हो चुके–और कर्म-कुम्भ तथा कलश यहाँ फूट गया।

॥ दोहा॥

प्रियेलाल मत मूर, सूर सुरति अस बिधि भई।
गई गगन के पार, सार समझि संतन कही॥

अर्थ–हे प्रियेलाल! अन्यथा न मानो, ज्ञानी जनों की सुरतिसमाधि इसी प्रकार की होती है। वह सुरति के सम्पर्क में आकर शून्याकाश के उस पार पहुँच जाती है, ऐसा सन्तों ने कहा है।

॥ चौपाई ॥

असअस सुरतिलोक लखि देखा। संत रीति रस अगम अलेखा॥
दिधि बैराग त्याग तन के री। ये सब खानि जगत भौ बेरी॥
जोगी जोग करत भरमाने। स्वाँसा पवन चढ़ावा जाने॥
इड़ा पिंगला सुखमनि माईं। पवन भवन में जाइ समाई॥
गगन बिनसि सुनि स्वाँस नसाई। मनमत जोगी जुगति न पाई।
ज्ञानी गुनी मन आतम जानी। वा मनको पुनि ब्रह्म बखानी॥
आदि अंत का भेद न जानै। संत मता कैसे पहिचानै॥
संत मता कछु रीति नियारी। बूझै साधू समझ बिचारी॥
अस सुनि इष्ट भाव औतारा। ये सब जानौ काल पसारा॥
गढ़ि मूरति मंदिर मैं धारा। ये सब जानौ झूठ पसारा॥

अर्थ–इस प्रकार से सुरति लोक में प्रवेश कर-करके उसे देखा है। सन्तों की रीति और आनन्द अगम्य तथा अलक्ष्य है। इस शरीर के वैराग्य तथा त्यागादि ये सभी इस संसार रूपी भवसागर में कष्ट की खानि हैं और उनके शत्रु हैं। योगी योग करते हुए भी भ्रमित हैं और वे केवल स्वास द्वारा वायु को ही चढ़ाना जानते हैं–इंडा, पिंगला एवं सुषुम्ना से होते हुए वह वायु आकाश भवन में चढ़ जाती है। आकाश के अव्यस्थित होते ही वह श्वास नष्ट हो उठती है और वह मनमत्त योगी अन्य कोई मार्ग नहीं खोज पाता। गुणी ज्ञानी केवल आत्म तत्त्व को जानता है और उसी मन को पुनः ब्रह्म कहता है। वह आदि अन्त का रहस्य नहीं समझता है फिर, वह सन्त मत को कैसे पहचानेगा। सन्तमत की रीति तो कुछ विलक्षण है–साधु जन खूब समझ विचार कर उसे समझते हैं। इस प्रकार इष्ट भाव से जुड़े सारे अवतार हैं–इन सभी को काल का फैलाव ही समझो। मूर्तियों को गढ़कर मन्दिर में ही रखते हैं–इन सबको झूँठ-मूठ का फैलावा ही समझो॥

पानी पाहन में मन लावै। अगिनि तत्त जल तत्त समावै॥
नकल कृष्न कहौ किनको तारा। अस असुरन जिन आतम मारा॥
नकल कृष्न पाहन की आसा। पाहन मुक्तिकाल की फाँसा॥
या से जिव उबरै नहिं खाना। जुग जुग बंधन माहिं बँधाना॥
कृष्न राम जो संत बताया। ये औतारी कोउ नहिं गाया॥
गो इंद्री गोबिद कहाई। मनहिं कृष्न गोपिन के माई॥
गुन ही तीनों ग्वाल कहावै। बिंद बीच बिंद्रावन आवै॥
गो गोपी बिच कान्ह कहाई। ये मन बस रस इंद्री माई॥
अब या की सुन साखि बताऊँ। संध सब्द बिच भाखि सुनाऊँ॥

अर्थ–पानी तथा पत्थर (मूर्ति) में ये मन लगाते हैं। अग्नि तत्त्व जल तत्त्व में समाविष्ट हो उठती है। कृष्णा की मूर्ति (नकल) बताओ किसको भवसागर से पार कर दिया–उन्होंने तो ऐसे असुरों एवं जीवात्माओं का वध किया है–कृष्ण की मूर्ति में पत्थर से आशा की गई है और पत्थर की मूर्ति लोगों

के लिए काल की फाँस है। इस कार्य से यह जीव कर्म पाप की खान से नहीं उबर पाएगा और राह युगों-युगों तक बन्धन में फँसा रहेगा। कृष्ण-राम वहो हैं--जिन्हें सन्तों ने बताया है--ये अवतारी हैं ऐसा किसी सन्त ने नहीं कहा है। गो का अर्थ इन्द्रिय है और इसीलिए वे गोविन्द कहे गए हैं--गोपियों के मन कृष्ण हैं और वे गोपियों में हैं। तीन गुण तीनों ग्वाले हैं। बिन्दु के बीच में वृन्दावन है। गो तथा गोपियों के बीच में होने के कारण वे गोविन्द कहलाते हैं--ये सभी मनतथा इन्द्रियों के रसानन्द हैं। अब इसकी साखी बता रहा हूँ, उसे सुनें और सिन्धु शब्द के बीच में मैं इसे कहकर सुना रहा हूँ।

॥ धमार ॥

अहो बस कान्हा गो माहीं हो ॥ टेक ॥

गो की गोप करम कहि ऊधौं, गुन सँग गैल गुवाल।
नित नित चालि चले मधुबन की, इंद्री रस खानि बसाई ॥ १ ॥
अच्छर रमत राह भइ राधे, नंद नाद सुत कान्ह।
खेलन खेल मेल फरफंदी, बूँदी तन रुचिर सुहाई ॥ २ ॥
सब बृज बनिताबिन्दाबन कीन्हा, जसुमति सो मति जान।
जो जस बुन्द सिंध से आवे, ता की कर खोज लगाई ॥ ३ ॥
अरी अरजुन भौ खानि भीम बस, नकुल भये जगआई।
साधै देह देख आपन को, दो दृष्ट दों दृष्ट लखाई ॥ ४ ॥
सुरत सुधार पार तुहि कान्हा, सुनि बिधि बात बिचार।
छूटै मान खान चौरासी, सूरति सत द्वार लगाई ॥ ५ ॥
तुलसी तोल बोल मन भूला, भूल परम नहिं जान।
मन गुनग्वाल गोप गोपी सम, नित नित बिधि भवन समाई ॥ ६ ॥

अर्थ--अरे! कृष्ण! तो गायों के बीच बसे हुए हैं।

उद्धव? इन गायों के कर्म गोप नहीं हैं--ग्वाले तो गुणों से समन्वित होकर चल पड़े हैं। वे नित्य-नित्य मधुबन की चालें चलते हैं और इन्द्रियों के आनन्द की खानि यहाँ बसा दिया है॥ १ ॥॥

'कृष्ण' शब्द के अक्षरों में रमती हुई साधिका राधा बन गई है और कान्ह नन्द रूपी नाद के पुत्र हैं। खेलने-खेलने में ही उनके बीच उलझाव भरे मेल हो उठे--और उनके शरीर पर बिन्दी अधिक शोभित हो रही है। सारी ब्रजवनिताएँ वृन्दावन बन गई--यशोधा सुमति बनी--जो बिन्दुएँ जिस रूप में उस सिन्धु (परमात्मा) से आई थीं--उनकी लगकर खोज करो।

भीम के साथ अर्जुन आकर यहाँ भवसागर की खान बने और इस संसार में आकर नकुल भी वैसे ही बने। लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ओर अपनी दोनों दृष्टियों को लगाए स्वयं को देखकर अपने देह के सुखों को साधने में लगे थे। सुरति सुधार रूपी हे कृष्ण तुम्हारे उस पार ही कल्याण की बातें और विचार हैं। सत्य पुरुष के सुरति-द्वार के पार लगने पर ही चौरासी योनियों का गर्व और पाप की खानि छूटेगी॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मनुष्य के मन का भ्रम इस संसार के तोल-बोल (दैनिक आचरण-व्यवहार) में ही भूला रहता है और वह इस संसार के मूल मर्म को नहीं जानता। मन का गुण तो ग्वाल, गो तथा गोपी के समान है और दिन-प्रतिदिन इसी विधि से कृष्ण से जुड़े व अपने भवन (मुक्ति भवन) में सिधारते रहते हैं

॥ होली ३ ॥

अहो आली होरी लख बौरी हो ॥ टेक ॥

सूरति रंग रँगों मन केसरि, ले पच पाँच निकारि।
सखियाँ पचीस पकरि पिचुकारी, मारौ मन को मुख मोरी ॥ १ ॥
भरम अबीर गुलाल गुनन को, करि सतसंग उड़ाई।
ज्ञान की छानछरी भरि सूरति, सनमुख नैना नित जोरी ॥ २ ॥
चोया चित्त अरगजा आसा, कुमकुम कुमति बिसार।
धर धर धर कूर सब काढ़ौ, करमन कर कीचर धो री ॥ ३ ॥
नर तन नँगर बिंद बिन्द्राबन, तन मन चीन्ह बिहार।
होरी अँग भंग कर जानौ, तुलसी सज साज मिलौ री ॥ ४ ॥

अर्थ–अरी सखी! तू होली देखकर पगला गई हो। सुरति रूपी केशर से अपन मन को रँग लो और तुम्हारे शरीर में पाँच इन्द्रियों की पाँच संसक्तियाँ है, उन्हें निकाल दो। पचीस सखियों के साथ पिचकारी पकड़कर मन की वृत्ति को मोड़कर पिचकारी मारो। भ्रम के अबीर और गुणों के गुलाम में सत्संगति करके उड़ा दो। सुरति समाधि ज्ञान के रंग भरकर उसके सामने हृदय नेत्रों को जोड़ दो। चित्त को चोवा बना लो, आशा को चन्दन बना लो। कुमकुम को कुमति समझो–तेजी से सारे कचरों-कूड़ों अर्थात् संसक्ति तथा वासनाओं के कूड़ों को हटा दो तथा कर्मों का कीचड़ भी दो दो। यह शरीर नगर है, बिन्दी वृन्दावन है उस पुरुष को शरीर तथा मन से पहचान कर उसके साथ बिहार करो। होली को भौतिक वासनाओ के रूप का भंजन समझो (उसे भंग करके) उस परमपुरुष से साज-सजाकर मिलन करो ॥

॥ सोरठा ॥

ये मन तनहिं बिचारि, गो गोपिन में रमि रहा ॥
गही न सतगुरु बाँहि, थाह मिलत लखि ब्रह्म सम ॥

अर्थ–इस मन तथा शरीर पर विचार करके जो (इन्द्रियों) तथा गोपिनों (इन्द्रियों के स्वामी) में रमें रहो। जब तक तुम सत्गुरु की बाँह नहीं पकड़ोगे–तुम्हें सदृश परम पुरुष की थाह नहीं मिलेगी ॥

॥ चौपाई ॥

ये मन ज्ञान ब्यान बिधि ठानी। ता से अपनी आदि न जानी ॥
सतगुरु से कछु बूझ न पाई। बिष रस राह फिरौ भौ माई ॥
मन थिरहोइ सुरति घर पावै। तन बिच गगन गैल चढ़ि आवै ॥
गुन गफलत को दूर बहावै। आँख खोल अपना घर पावै ॥
सब में व्यापक ब्रह्म समाना। दरसै गगन फोड़ि असमाना ॥

अर्थ–इस मन का उपयोग ज्ञान चर्चा के बिना करते हो–इसीलिए तुम अपनी आदि नहीं समझ पाते। हे भाई! तुम सत्गुरु से समझकर कुछ जान नहीं पाते–इसलिए तुम विषय रस की राह पर भरकते फिरते हो। जब मन स्थिर होगा तभी सुरति का घर मिलेगा और इसी शरीर के बीच की गली से चढ़कर चित्त ऊपर तक जाता है। गुण के साथ जुड़े भ्रम को दूर भगा दो और तभी आखें खुलने पर अपना घर प्राप्त करोगे। सभी व्यक्तियों में वह व्यापक ब्रह्म समाया हुआ है–वह शरीर के ज्ञान गगन के टूट जाने पर शून्याकाश में चमकेगा ॥

संत कृपा स्त्रुत सैल लखावै। मन चढ़ि गगन ब्रह्म को पावै॥
सुन्न सहर बिच ब्रह्म समाना। चढ़ि चढ़ि देखैं संत सुजाना॥
ज्ञानी ब्रह्म ज़ान से भाखै। ये सब झूठे ब्राह्मन ताकै॥
ब्रह्म ज्ञान मन देखि न पावै। मन सँगगुन गिरिगाँठि बंधावै॥
सतसँग करै ब्रह्म जब जानै। बिन सतगुरुस्त्रु तिनहिं पहिचानै॥
हिये दृग दरपन को नित माँजै। सुरमा सुरति नैन प्रति आँजै॥
निरख परै दरसन की रेखा। निज निज नैन ब्रह्म को देखा॥
गुन गफलत निज दूर निकारा। आँख खोल कर ब्रह्म निहारा॥
बिधि बसंत बिच गाइ सुनाऊँ। प्रियेलाल लख लखन लखाऊँ॥

अर्थ–सन्तों की कृपा से ही वह श्रुति का पर्वत दिखाई पड़ता है और उस पर चढ़कर मन ब्रह्म को प्राप्त करता है। ब्रह्म तो उस शून्याकाश के नगर में समाया हुआ है और वहाँ चढ़ चढ़ कर सन्त–सुजान ही उसे देखा करते हैं। ज्ञानी जन ज्ञान द्वारा ब्रह्म का वर्णन करते हैं–ये सभी झूठे ब्रह्मज्ञानी हैं। ब्रह्म ज्ञान को मन देख नहीं पाता। मन के साथ तो त्रिगुणात्मक तत्त्व गाँठ बाँधे पड़ रहता है। सत्संगति करो और ब्रह्म को जानो:बिना सतगुरु की श्रुति के उसे नहीं पहचाना जा सकता। हृदय रूपी नेत्रों को निरन्तर दर्पण द्वारा सदा मज्जित करो (निर्मल करो) और प्रतिदिन सुरति रूपी सुरमें से नेत्रों को अंजित करो। इसके बाद ही उस ब्रह्म के दर्शन की रेखाएँ दिखाई पड़ने लगेंगी और नित्य-प्रतिनित्य उस ब्रह्म को अपने नेत्रों से देखो। गुणों से उत्पन्न भ्रमों को नित्य अपने मन से दूर निकाल दो और आँख खोलकर उस ब्रह्म को देखो। इस रहस्य को मैं बसंत राग से गाकर सुना रहा हूँ–हे प्रियेलाल! देखो, मैं उसके लक्षणों को तुम्हें दिखा रहा हूँ।

॥ बसंत॥

मत भरमै रे घर में दीदार। टुक आँख खोल गफलत बिसार॥ टेक॥
व्यापक सब में अखंड ब्रह्म। छाँड़ भटक दुनिया के भर्म।
जुगजुग भरमत करि बिचार। सुरति नैन नित सत सुधार॥ १॥
बन भुलान घर बिसरी बाट। ठग सँग कीन्हौ घर न घाट।
दिना चारि तन की चिन्हार। छूटत तन भुगत होनहार॥ २॥
बूझ समझ घर खोज रोज। अंदर में मन मार मौज।
सँग सतगुरु करि ले निरधार। भटक भूल सब दे निकार॥ ३॥
जिन जिन सरन सतगुरु लीन्ह। तिनतिन पायौअगम चीन्ह।
अगम गली इकबिधि बिचार। तुहितुहिं तुलसी वार पार॥ ४॥

अर्थ–तुम्हारा इष्ट (दृश्य) तो तुम्हारे घर (शरीर) में ही है, क्षण भर के लिए आँखें खोलकर भ्रम दूर करो। सभी में वह व्यापक अखण्ड ब्रह्म है और दुनिया के भ्रमों को त्यागकर भटकना दूर करो। सोचते-सोचते युग-युग तक भ्रम में डूबे रहे और अब सुरति के नेत्रों से उस सत्य को समझो। तुम बनों में भूल गए हो, तुम्हें सही-घाट (मार्ग) भूल गया है। तुमने गुण एवं कार्य जैसे ठगों का साथ किया, और तुम न घर के रहे न घाट के। इस संसार की पहचान चार दिनों की है और इस शरीर के छूटते ही तुम भवितव्यता को भोगने लगते हो। तुम बूझकर तथा समझकर उस तत्त्व को प्रतिदिन खोजो और मन को अन्दर अन्दर दबा कर आनन्द लिप्त हो जाओ। हे निराधार व्यक्ति! तू साथ में सतगुरु को ले ले और

उस अगम्य तत्त्व को पहचान कर उन्हें प्राप्त करो। इस विधि द्वारा एक मात्र अगम गली का तुम विचार करो और तुलसी साहब कहते हैं कि इस प्रकार तुम स्थित होगे।

॥ दोहा ॥

वार पार तुलसी लखौ, पकौ चरन के ठाहिं।
चखौ अगम रस ब्रह्म को, थकौ थीर मन माहिं॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि इस पार और उस पार को मैंने देखा और सत्गुरु के चरणों में मैं परिपक्व हुआ। इसके बाद मैंने उसे परम ब्रह्म के रस को चखा और चखकर स्थिर मन से आनन्दित विश्रान्तिमयी (थको) हो उठा॥

॥ चौपाई ॥

ये तन पाइ बीत नहिं चीन्हा। कल्प कल्प रहे काल अधीना॥
जब से सुरति आइ जग माईं। बन्धन काल भई भौ आई॥
आई सुलछ लेन अस जानी। लाभन भयौ बिच बिषम बिकानी॥
इंद्री बस गुन गैरत माईं। फँसी फाँस कछु कही न जाई॥
सबमिलि घेरघार बस कीन्हा। घर चीन्हें बिन भई अधीना॥
अब सुनु गाइ बसंत सुनाऊँ। ता में स्रुत साखी समझाऊँ॥

अर्थ–यह शरीर पाकर अतीत को नहीं पहचाना और कल्प-कल्प तक मैं काल के वश में रहा। जब से यह सुरति इस संसार में आई काल का बन्धन भी तभी से इस भवसागर में आया। ऐसा जानकर वह माया लक्ष्य बनाकर सुरति को लेने के लिए आई किन्तु उसे कोई लाभ नहीं मिला और वह बीच में ही बिक गई। इन्द्रियों के वशीभूत होकर वह गुणों द्वारा नष्ट कर दी गई और वह इस फाँस में कुछ इस प्रकार फँस गई कि कुछ कहते नहीं बनता। सभी ने मिलकर घेर घार करके उसे अपने वश में कर लिया–और बिना अपना घर पहचाने दूसरे के अधीन हो गई। इस विषय को अब मैं 'बसंत' राग द्वारा समझा रहा हूँ और उसी में श्रुति, तथा साखी का समन्वय कर रहा हूँ।

॥ बसंत ॥

आई आई सखीस्रुतितिल छलेन। भौसागर भई अति बेचैन॥ टेक॥
पाँच पचीस मिलि ठाटो है ठाट। रोक रही सब घाट घाट।
पाँच तत्त्व गुन तीन सैन। तन भीतर रुहे दिवस रैन॥ १॥
आदि अंत गइ बिसरि बाद। सतसंग बिखरी संत साध।
ज्ञान गली बिधि भूली बैन। दुख सुख लागे करम देन॥ २॥
है कोई सतगुरु बूझै सार। भौसागर कोइ करत पार।
पिय की पीर तन तलफै नैन। लखि पाऊँ पद सुख से चैन॥ ३॥
आये बहुत भये दिवस काल। फँसि गइ रही मायामोह जाल॥
रबिदुखपावत परत गहन। तुलसी रहनि बिन झूठी कहनि॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! श्री अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आ गई–सम्पूर्ण भौसागर बेचैन दिखाई पड़ने लगा। पाँच इन्द्रियों के तत्त्वों तथा पचीस ने मिलकर ठाठ ठाचा है और सारे घाटों पर यह अवरोध पैदा कर रही है–पाँच तत्त्व एवं तीन गुणों के संदर्भ शरीर के भीतर रात दिन पड़े रहते हैं। इसके

फलस्वरूप मनुष्य को अपनी आदि अन्त की स्थिति भूल जाती है–सन्तों की इच्छा एवं तत्संग दोनों भूल चुके। वाणी ज्ञान की गली को भूल चुके और कर्म के अनुसार सुख-दुःख प्राप्त होने लगे। कोई सत्गुरु है, जो इसके सार तत्त्व को समझे और कोई भवसागर को पार कर दे, इसकी चिन्ता है। इस प्रियतम की याद में शरीर तथा मन, दोनों तड़प रहे हैं–इच्छा है, सुखपूर्वक उनके चरणों को देख लें, मन को चैन प्राप्त हो उठे।

बहुत सारे दिन तथा समय और काल इसके लिए आए किन्तु मैं उस पद को न देख सकी क्योंकि माया के मोह जाल में फँसी रही। मैं ग्रहण में पड़े सूर्य की भाँति कष्ट पा रही हूँ– तुलसीसाहब कहते हैं कि मैं उस अनुभव के साथ तादात्म्य करके रह नहीं सकी हूँ–इसलिए प्रलक्ष अनुभव के बिना यह सारा कथन झूँठा है।

॥ दोहा ॥

बहुत काल भये पिउ तजे, माया मोह भुलान।
नर तन पाइ न पिउ लखा, कस घर परै पिछान॥

अर्थ–प्रियतम को छोड़े बहुत समय हो गया, मन माया मोह में भूल चला है। इस मानव शरीर को पाकर मैंने प्रियतम को नहीं देखा-माया से ग्रस्त मुझको घर की पहचान कैसे जान पड़े॥

॥ चौपाई ॥

ता से अब ये नर तन पाई। अब तुम समझि चलौ घरमाई॥
काया बन ब्रह्मंड समाना। बन बन फूल भास उरझाना॥
ये औसर सूरति समझावा। मन मलीन तजि सुरति समावा॥
ये दुरलभ तन देइ पुकारा। सो तन पाइ करौं निरबारा॥

अर्थ–इसलिए अब इस मानव शरीर को पाकर अब तुम समझ कर अपने घर में चलो (या धर्म का आचरण करो)। इस शरीरमय होकर तुम ब्रह्मांड में प्रवेश करो और वन-वन में स्थित इन फूलों की सुगंध से अपने को फँसा लो। इसी अवसर के लिए मैंने सूरति का ज्ञान दिया है और मन की मलीनता का त्याग करके सुरति में समाविष्ट हो जाओ। इस दुर्लभ शरीर को देह पुकारती रहती है और इस तन को पाकर उसके साध्य तत्त्व (परमात्मा या पुरुष) का निराकरण करो।

॥ दोहा ॥

ये दुरलभ तन पाइ कै, किया न पिउ परसंग?
मगन मिलन मन भीख भौ, ज्यों मुठि मरकट रंग॥

अर्थ–इस दुर्लभ शरीर को पाकर यदि प्रियतम के साथ निर्वाह न किया तो इस माया से मन का मिलन-बन्दर की मुट्ठी में पड़े हुए अन्न की भाँति निर्वांक भिक्षा प्राप्ति के समान है।

॥ सोरठा ॥

सुनि बसंत में सीख, सब सब संतन भाखिया।
लखौं आदि बिख्यात, मन सूरति सम थिर करौ॥

अर्थ–अब बसंत छन्द की शिक्षा सुनें–इसका वर्णन सारे-के-सारे सन्तों ने किया है। मन को समाहित करके दुख आदि विख्यात तत्त्व को सुरति समाधि द्वारा देखो और सुरति समाधि की ही भाँति इस मन को स्थिर करो॥

॥ बसंत ॥

आई आई कंथ बसंत लाग। काया बनफूले भँवरबाग ॥ टेक ॥
तन भीतर नैना निहार। सुरति निरति लेकर गुँजार॥
नौ पल्लव बेली भँवर जाग। ले सुगंध तन बिषय त्याग॥ १ ॥
अमर लोक इक अजर दूब। हद अनहद के पार खूब॥
चढ़िकर देखौ सुरति साग। जो कोइ निरखैं बड़े भाग॥ २ ॥
कोइ लखै संत बसंत बूझ। जिन आदि अंत की राह सूझ॥
ये अदेख अंदर में फाग। जहँ बिबिध तरंग रँग उठत राग॥ ३ ॥
सत्त पुरुष पद पुहुप पास। जहँ भूमि भँवर मन कर निवास॥
तुलसीदास भौ भरम आग। कोइ जरत न जागै बड़ अभाग॥ ४ ॥

अर्थ–कंत से जुड़ी हुई बसंत ऋतु आ गई-आ गई। काम रूपी बन फूल खिल उठे। भँवरे बाग में घूमने लगे। इस शरीर के भीतर नयन को देखो–ये भ्रमर सुरति-निरति दोनों को लेकर गुंजरित हैं। नव पल्लवों की वेलि पर भ्रमर जाग उठा है और सुगंधि के पार उसने वासनाओं का त्याग कर दिया है। उस अमर लोक में एक न नष्ट होने वाली बर्वा है। वह हद एवं अनहद दोनों के बीच फैली है। उस सुरति रूपी हरी पत्तियों पर चढ़कर देखो:और जिसने उन्हें देख लिया है, उनका भाग्य धन्य है। इस बसन्त को भली भांति समझता हुआ कोई सन्त ही उसे देखता है। इस हृदय के अन्तर्गत इस अदृश्य फाग (होली) को देखो-जहाँ पर नाना प्रकार के रंगों की तरंगों का राग उठ रहा था। वह सत्य पुरुष उस कमल चरण के पास स्थित है–वहीं भूमि पर मन रूपी भ्रमर की निवास स्थली है। तुलसी साहब कहते हैं कि सभी भवसागर रूपी भ्रम की आग में पड़े हैं–कोई जगता हुआ उस आग में जलता नहीं–जलने वाले अभागे हैं।

॥ चौपाई ॥

सत्त पुरुष पद पार सुनाऊ। पदम पार घर आदि लखाऊँ॥
मन जेहि बूझ समझ स्रुत संगा। ये तन बिनस जात छिन भंगा॥
निरति सुरति संग कहत बुझाई। भौ सागर बिच रही फसाई॥
मनमत मोट खोट सँग लागी। बन रस फूल भयौ अनुरागी॥
देखि देखि तन अजर तमासा। सूरति मन मिल करै बिलासा॥
आदि अंत घर सुरति बिसारी। मन संग फिरि फिरि फहम बिचारी॥

अर्थ–उस पार स्थित तत्त्व पुरुष का मैं वर्णन करके सुना रहा हूँ। उस सहस्त्रार कमल के पार स्थिति आदि घट का मैं वर्णन करूँगा। श्रुति के साथ ही समझकर मन जिसे समझ पाता है, और उसको जानते ही यह क्षणभंग शरीर नष्ट हो उठता है। सुरति तथा निरति के सम्बन्ध को समझाकर कहता हूँ ये यदि दोनों एक साथ हैं तो ये भवसागर बीच फँसए रहती हैं। यदि मन में थोड़ा भी खोट है तो यह खोट साथ में लगा रहेगा और व्यक्ति नाना प्रकार की संसक्तियों में वाटिका के फूल के प्रति अनुरक्त जैसा दिखेगा। इस शरीर के इस नष्टकारी तमाशे को देखते हुए मेरा विचार तो यह है कि सुरति समाधि के साथ मन मिलाकर आनन्द-विलास करें। आदि तथा अन्त को ध्यान में रखकर व्यक्ति सुरति को विस्तार देता है और मन के साथ घूमता वह भ्रमवश असत्य को सत्य मान बैठता है।

॥ दोहा ॥

सुरति आदि घर छाँड़ि कै। फिरै मन गुन की लार।
जगत जाल बिच फँसि रही। क्यों कर उतरै पार॥

अर्थ–सुरति समाधि के अपने मूल घर का त्याग करके मन गुण की संसक्ति में घूमता है फलस्वरूप वह संसार के जंजाल में फँसा रहता है, इस भवसागर से पार वह क्यों हो॥

॥ बसंत ॥

देखौ देखौ सखी इक अजर खेल। चहुँ दिसि फूलो अमरबेल॥ टेक॥
बन बन फूले बिबिध भाँति। कहँ लग बरनौं पुहुप जाति॥
भिनि भिनि भौंरा करत केल। बिधि अपने घर छाँड़ि मेल॥ १॥
आदि अंत सूरति बिसार। चार लाख चौरासी धार॥
कहँ लगि बरनौं ब्रह्मांड सैल। पिंड ब्रह्मंड रच्यौ भूमि भेल॥ २॥
बेद पुकारत नेति नेति। बेदांत बरनि ताहि ब्रह्म कहेत।
संत ताहि कहै काल गैल। वे दयाल गति भिनि अपेल॥ ३॥
पिंड ब्रह्मंड रचना के पार। वे साहिब दोऊ से न्यार।
रूम रूम ब्रह्मंड खेल। इन सब से वे भिनि अकेल॥ ४॥
संत सदा वहँ आवैं जाई। वै जानैं सब भेद पाइ।
तन तिल्ली तुलसी जो तेल। मथि काढ़े तब भया फुलेल॥ ५॥

अर्थ–हे सखी! एक अविनष्ट होने वाला खेल देख लो–फिर-फिर देख लो, चारों दिशाओं में अमर की लता खिली हुई है। वन-वन में नाना प्रकार के पुष्प खिले हैं, मैं पुष्प की जातियों का कहाँ तक वर्णन करूँ। नाना प्रकार के भौंरे केलिक्रीडा कर रहे हैं और उनकी क्रीड़ा विधि ऐसी है कि वे अपने मूल घर के मेल-मिलाप छोड़े हुए हैं। इस खेल के बीच आदि और अन्त दोनों के अन्तिम सत्य सुरति को भूल चुके हैं तथा चार लाख चौरासी हजार योनियों की धारा में बह रहे हैं। इस ब्रह्मांड की बाटिका का कहाँ तक वर्णन करूँ, भूमि तो पिंड एवं ब्रह्मांडमयी रची नही गई है। वेद नेति-नेति पुकारते रहते हैं। वेदान्त ने उसका ब्रह्म रूप में वर्णन किया है। संत गण उसे काल का गलियारा कहते हैं। उन परम पुरुष दयालु की गति कुछ भिन्न है। वे साहब, पिंड तथा ब्रह्मांड की रचना के उस पार हैं और वे इन दोनों से विलक्षण हैं। उनके रोयें-रोयें में ब्रह्मांड का खेल है–और इसके होते हुए भी वे इन सबसे भिन्न हैं। संत सदा वहाँ से आता जाता रहता है–और वे ही उनके सारे सदस्यों को समझते रहते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि शरीर तिल है, और उसी का तेल और मथकर जब निचोड़ा गया तो फुलेल बन गया।

॥ सोरठा ॥

जस तिल्ली तन तेल, भा फुलेल फूलै मिलै।
तन भीतर अस खेल, खिलै कँवल मिलि पुरुष में॥

अर्थ–जैस तिल से तेल हैं–उसी प्रकार इस शरीर में वह परम तत्त्व है। फूलों को मिलाकर तिल का तेल मथने पर फूलेल बन जाता है, इस शरीर के भीतर इसी प्रकार का खेल है। पुरुष के अन्तःकरण से मिलकर वह सहस्त्रार कमल खिल उठता है।

!! चौपाई !!

ज्यों तिल्ली बिच तेल निकारा। मिलि गया फूल फुलेल पुकारा॥
ऐसे संग पुरुष मन भाई। सतगुरु जानि भेद बतलाई॥
प्रियेलाल अस बूझ बिचारा। संग्रह तयागन झूठ पसारा॥
सतगुरु सूरति संघ लखावै। तजि सब बंध जीव घर आवै॥
अस मुनि ज्ञान समझ बिच बैठा। दिल बिच प्रियेलाल के पैठा॥

अर्थ–जैसे तिल्ली से तेल निकाला जाता है–वह फूल में मिलाकर मथने के बाद फुलेल बना जाता है। ऐसा ही साथ पुरुष में शरीर के मिल जाने से होता है। इस तत्त्व को सतगुरु से समझकर उसको बतलाया है। हे प्रियेलाल! इस रहस्य को इसी प्रकार समझो तथा विचार करो:संग्रह त्याग की फैलाव भी इसके संपर्क में असत्य है। सतगुरु ही सुरति का सिन्धु दिखलाता है–और सारे बचपनों का त्यागकर ही जीव इस सुरति के निवास घर आगमन करता है। ऐसा ज्ञान सुनकर प्रियेलाल की समझ के साथ उनके हृदय में बैठ गया॥

!! चौपाई !!

तुलसी कहै बुझाइ, प्रियेलाल लखि बूझि बिधि।
सूरति सिंध समाई, जब लखि पावै भेद यह॥

अर्थ–तुलसी साहब समझाकर कहते हैं, हे प्रियेलाल! इसके रहस्य को समझो तथा देखो। इस भेद को जब मनुष्य समझ लेता है, तो वह सुरति सिंधु में समाविष्ट हो उठता है।

प्रियेलाल यह बूझ बिचारी। राति रहे तुलसी के लारी॥
प्रात होत अस्थानै जाऊँ। अब तौ तुलसी सरन समाऊ॥
रहे राति पुनि सतसंग कीन्हा। भाव भेद ता को हम दीन्हा॥
कालिन्द्री मग सुरति लखाई। जमुना धार को धमक चढ़ाई॥
नौलख कँवल द्वार में लाई। गोकुल फाड़ि गगन को जाई॥
स्याम सेत खिरकी बतलाई। छिन छिन सूरति सिखर लगाई॥
तिल के आगे पहाड़ छिपाना। मुकर बीच खिरकी में जाना॥
भौंर होत डंडवत कीन्हा। चरनन सीस प्रीत से दीन्हा॥
पुनि अस्थान जान हम कहिया। सीस टेकि मारग को गहिया॥
पहुँचे कासी नगर मँझारा। सुरत गुपाल चले तेहि द्वारा॥

अर्थ–प्रियेलाल ने हृदय में समझकर ऐसा विचार किया कि आज रात्रि तुलसी साहब के पास रहें। प्रात:काल होने के प्रात:काल होने के बाद में अपने निवास स्थान के लिए जाऊँगा और अब तो तुलसी साहब की शरणागति में ही समाविष्ठ हो उठूँ। वहाँ निवास किया तथा उनकी सत्संगति की और मुझे सुरति सिद्धान्त का रूप एवं रहस्य बताया। यमुना मार्ग द्वारा उन्होंने उन्हें सुरति दिखा दी और यमुना की धारा की धमक उनकी चेतना समाधि पर चढ़ा दी। वे उन्हें नौलाख पंखुरियों वाले कमल के द्वार पर ले आए और वे फिर पर्वत को तोड़कर आकाश में जा पड़े। उन्हें श्याम–श्वेत खिड़की बता दी और क्षण–क्षण उन्होंने सुरति को उस शून्याकाश के पर्वत पर स्थित शिखर पर लगा दिया। हृदय रूपी तिल के आगे वह पहाड़ छिप गया और उन्होंने खिड़की के बीच दर्पण को समझ लिया।

प्रातः होते ही प्रियेलाल ने तुलसी साहब को दंडवत किया और अत्यन्त प्रेम के साथ उनके चरणों पर अपना सिर टेका दिया। उन्होंने फिर अपने घर जाने के लिए कहा है और सिर टेक कर मार्ग पर चल पड़े। वे काशीनगर में पहुंचे (उनका आना सुनकर) सुरति गोपाल उनके द्वार पर पहुँचे।

॥ चौपाई ॥

फूलदास रेवती पुनि आये। अरज भाव बिनती सोइ लाये॥
हिरदे गुनुवाँ चरन को लीन्हा। दास भाव बिनती जो कीन्हा॥
फूलदास अस अरज बिचारी। स्वामी दृष्टि दास पर डारी॥
दयासिंध इक अरज बखाना। सो साहिब सुनियौ दै काना॥
सूरति से नरियर को मोड़ा। कदली पत्र भाव लख फोड़ा॥
चौका पार चँदरवा ताना। सूरति से फोड़ा असमाना॥
अष्ट कँवल बिच पवन सुपारी। पहुँचे जाइ सूरति की लारी॥
उदित मुदित दोउ दीप मँझारा। चिढ़े जाइ खिरकी के पारा॥
चौथा हाथ पान पर जाई। पान परवाना अगम चढ़ाई॥
अठमेवा पुरुष को देखा। भाखौं कस कस अगम अलेखा॥
ता के रूप देख नहिं काया। अगम अगाध जनाम अमाया॥
देखा कँवल नैन नभ न्यारा। धरती गगन और सकल पसारा॥
चर और अचर दीप नौखंडा। बिधि बिधि से देखा ब्रह्ंडा॥
सूरति सैल नित करै अकासा। फूलदास बिधि अगम तमासा॥
फूलदास पार को जाई। पुरुष सुरति से भेंटि समाई॥
फूलदास मति सब बिधि गाई। सो तुलसी को आनि सुनाई॥
तुलसी ग्रंथ बिधि सकल बखाना। संत सुजन जन सुनिहैं काना॥

अर्थ–फूलदास ने इस प्रकार विचार किया कि स्वामी तुलसी साहब ने मुझ दास पर ऐसी ऐसी दृष्टि डाली है। दयासिन्धु तुलसी से हमने एक अर्ज की थी और उन्होंने इसे ध्यानपूर्वक सुना था। सुरति द्वारा मैंने नारियल को मोड़ दिया और केले के पत्ते का रहस्य समझकर उसे फोड़ डाला। अष्ट कमलों के बीच वायु की सुपारी थी और उसके सहयोग से सुरति के पास पहुँच गया। उदित-मुदित नामक दो द्वीपों के मध्य में खिड़की थी। उस पर जाकर चढ़े। चौथा हाथ पात पर पहुँचा और उस पान रूप परवाने ने मुझे अगम पर चढ़ा दिया। उस अठमेवा जैसे परम पुरुष में वहाँ मैंने देख लिया और उसके अगम्य एवं अलेख का वर्णन मैं कैसे-कैसे करूँ। उसके न रूप है, न लक्षण है, न शरीर है–वह अगम्य है, अगाध है, अनाम है, संसक्ति रहित है। मैंने उसके विलक्षण कमल नेत्रों को उस आकाश में देखा और वह समस्त पृथ्वी तथा आकाश तक फैला हुआ था। चर, अचर तथा नौखंडों में स्थित द्वीप तथा नेक अनेक रूपों के ब्रह्मांडों को मैंने देखा था। सुरति नित्य उस वाटिका में बिहार करती है–फूलदास कहते हैं कि यह अगम्य तत्त्व की रहस्यमयी क्रीड़ा थी।

फूलदास सुरति के माध्यम से उस पर पहुँचे और और सुरति तथा पुरुष के परस्पर भेंट में वे समा गए। फूलदास कहते हैं कि मैंने अपनी बुद्धि से सबका वर्णन कर दिया और जाकर मैंने सारी बातें तुलसीसाहब को सुना दी। तुलसी साहब ने अपने ग्रंथों में इन समस्त स्थितियों का वर्णन किया है। सन्त और सज्जन इसे अपने कानों से सुनेंगे॥

॥ रेवती दास ॥ चौपाई ॥

पुनि रेवतीदास चलि आये। सीस टेक चरनन पर धाये॥
तिन पुनि भेद सकल दरसावा। बिधि बिधि भाखा दरस प्रभावा॥
स्वामी तुलसी अरज हमारी। कहूँ बिधि चित दीजै सारी॥
स्वामी चौका दीन्ह बताई। सो बिधी चौका कीन्ह बनाई॥
पुरइनि पात नभ समुँदर माई। सुरति सैल ठहरी तेहि ठाई॥
बैठी जाइ कँवल के माहीं। ज्यों दुरबीन मुकर नभ राही॥
कदली पत्र फोड़ि चलि आई। सेत चदरवा फोड़ेउ जाई॥
नरियर तोड़ चली असमाना। सेत दीप पुरइनि नियराना॥

अर्त–इसके बाद रेवतीदास चलकर आ पहुँचे और शीश टेक कर चरणों में सीस झुकाया। उन्होंने उनसे सारा रहस्य प्रकट किया और दिव्य तत्त्वों के दर्शन का भिन्न रूपों में चित्रण भी किया। जिस प्रकार स्वामी ने चौका बता दिया है, उसी प्रकार मैंने चौका-पूजा की। समुद्र के मध्य कमलिनी का पत्ता है और उसी स्थान पर सुरति रूपी वाटिका स्थिर हुई। वह कँवल के मध्य जाकर इसके बाद बैठ गई: जैसे दूरबीन शीशे की चमक आकाश के रास्ते पर दिखाई पड़े। कदली पत्र को फोड़कर मैं चला आया और इसके बाद श्वेत चादर को भी फोड़ डाला। नारियल को तोड़कर मेरी चित्तवृत्ति आसमान पर जा चढ़ी और श्वेतद्वीप की उस कमलिनी के समीप जा पहुँची॥

पँखी अष्ट कँवल के माईं। चार कँवल अंदर दरसाई॥
ता में देखा सकल पसारा। बिधि ब्रह्मंड जो जगत सँवारा॥
ता से परे सुरति भइ न्यारी। द्वै दल कँवल पैठि भई सारी॥
जहँवाँ पुरुष रहै इक न्यारा। तहँवाँ सूरति सजी अपारा॥
सुरति निरति दिन वह खेला। नित नित करै अगम की सैला॥
मन और सुरति किरति नित धावै। मन थिर होइ सुरति पर आवै॥
येहि बिधि देखा सकल पसारा। स्वामी सो बिधि आन सँवारा॥
फूलदास और रेवती दासा। भाखा दोउ मिलि अगम तमासा॥
निरख निरख दोउ लख लख जोई। तुलसी जस जस रसतस होई॥
येहि बिधि दोऊ करै बिलासा। और सकल छूटी जग आसा॥
चेला गुरू जगत बिधि नाता। छूटा बिधि रस एकै साथा॥

अर्थ–उसकी पंखुरी अष्ट कमल के मध्य थी और उसके अन्दर चार कमल दिखाई पड़े। उसी के अन्तर्गत मैंने सृष्टि के सम्पूर्ण फैलाव का दर्शन किया:इस ब्रह्मांड का रहस्य जिसने संसार को सँवार रखा है, वह भी देखा। सुरति वहाँ उससे भी दूर हो उठी और दो दल वाले कमलों में प्रवेश करके उसने सम्पूर्णता प्राप्त की। उस कमल के अन्तर्गत एक विलक्षण पुरुष देखा और वहीं ही यह सुरति अनन्त रूपों में सजी थी। सुरति निरति वहाँ रात-दिन क्रीड़ा करते हैं और नित्य प्रति-नित्य वह उस अगन्य की सैर करती रहती है। यहाँ मन, सुरति तथा निरति निरन्तर दौड़ती रहती थी–जब सबका मन स्थिर होता था तो वे सुरति के पास आते थे। इस प्रकार मैंने समस्त प्रसार को देखा और स्वामी जी ने इसको विलक्षण ढंग से समा दिया था। फूलदास एवं रेवतीदास दोनों ने उस अगम्य के कृत्य में खुलकर तन्मय होते रहे।

इस प्रकार उस समाधि दशा में दोनों आत्म विलास कर रहे थे और इन्हें समस्त संसार के प्रपंचों की आशा समाप्त हो चुकी थी। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध तो लोक सम्बन्ध है– इस साधना के कारण यह लोक सम्बन्ध समाप्त हो उठा।

चेला गुरू बिधि नहिं मनै। दोनों मिलि रस एकै जानै॥
छूटा पान सुपारी चौका। छूटा गगन सुन्न भया सूखा॥
छूटा पिंड छूट ब्रह्मंडा। तीनि लोक छूटा सब अंडा॥
सात दीप पृथ्वी नौखंडा। चौथा पद जहं पुरुष अखंडा॥
ता के परे सैल हम कीन्हा। ता को जानै संत यकीना॥
यह चौका बिधि संतन के री। तुलसी दृष्टि सुरति से फेरी॥
और चौका सब झूठ पसारा। तुलसी चौका सत्त सँवारा॥
नित तुलसी तुलसी गोहरावा। दीन बिधी बिधि सुरति लगावा॥
फूलदास रेवती रत दासा। बस्तु पाइ नित अगम निवासा॥

अर्थ–यही नहीं, समस्त लोकाडम्बर का पान, सुपाड़ी तथा चौका छूट गया। आकाश एवं शून्य दोनों इस प्रकार सूख गए। पिंड एवं ब्रह्मांड छूट गया और तीनों लोकों से सम्बन्ध भी छूट गया। सातो द्वीप, नव खंड, चौथा लोक जहाँ अखंड, पुरुष निवास करता है। उसके आगे हम सैर करते हैं और उसको संत जन ही जानते और विश्वास करते हैं। यही सन्तों की चौका विधि है और इसने सुरति से भी हमारा ध्यान फेर दिया। अन्य चौके को तुलसी साहब ने झूँठ सिद्ध कर दिया और आध्यात्मिक चौके को सत्य के साथ जोड़ दिया। मैं तो नित्य तुलसीदास-तुलसीदास कहता रहता हूँ और उन्होंने ऐसी विधि मुझे प्रदान की और उस विधि से मैं बराबर सुरति समाधि लगाता रहता हूँ। फूलदास एवं रेवतीदास निरन्तर साधना में रत रहते हैं और उस दुर्लभ वस्तु को आकर अगम्य में निवास करते रहते है।

॥ गुनुवाँ ॥ चौपाई ॥

गुनुवाँ सुत हिरदे का आवा। सीस टेक चरनन लौ लावा॥
अंतर भाव अरु चाव बखानी। सब बिधि अपनी कही कहानी॥
जस जस स्वामी बिधी बताई। तस तस सूरति गगन लगाई॥
चक फोड़ि सूरति भई पारा। चाँद सूरज तजिगई अगारा॥
सुखमनि छेकी सरवर आई। मान सरोवर पैठि अन्हाई॥
अगमद्वार खिरकी पहिचानी। गंगा जमुना सरसुती जानी॥
सूरति चली अगम रस पाती। जहाँ प्रयाग कंज रस राती॥
जह सतगुरु बैठे संत बासा। अगम पुरुष घर कीन्ह निवासा॥
सूरति ठहरि द्वार के माईं। रस रस धीर धीर चढ़ि जाई॥
चढ़ै उतरै पुनि पुनि चढ़ि जावै। मकरी धागा तार लगावै॥
येहि बिधि रहै दिवस और राती। सूरति लगन और नहिं भाती॥
येहि बिधि लोक नाम किया बासा। चौथा पद सतनाम निवासा॥
जहँ से आई तहाँ समानी। यहि बिधि आदि अंत हम जानी॥

जन्म मरन दुख सुख सब छूटा। कर्म बंध बिधि सगरी टूटा॥
स्वामी तुम चरनन बलिहारी। अगम वस्तु तुम दया बिचारी॥
हिरदे प्रीति दृष्टि दरसाई। नैन चरन बिधि भाव बताई॥

अर्थ–हृदय का पुत्र गुनुवाँ वहाँ आया और सिर टेक कर उनके चरणों में लगा। उसने उनके अपना अन्तर्भाव तथा प्रेम व्यक्त किया और प्रत्येक प्रकार से अपनी कहानी बताई। स्वामी तुलसी साहब ने जिस जिस प्रकार स अपने विधि बताई थी–वैसे-वैसे मैंने सुरति में अपना मन लगाया था। चेतना चक्र तोड़कर सूरति के उस पार पहुँची। चन्द्रमा और सूर्य का त्याग करके वह और आगे जा पहुँची। सुषमा को छेंककर वह सरोवर तट पर आई और मानसरोवर के बैठकर उसने स्नान कर लिया। उसने अगम्य तत्त्व के द्वार की खिड़की पहचान ली और गंगा, यमुना तथा सरस्वती को भी पहचान लिया। उस अगम्य तत्त्व के रस में उन्मत्त वह सुरति वहाँ चल पड़ी जहाँ कनत्त रस में मत्त प्रयाग था। वहाँ सतगुरु संतों के साथ बैठे थे, उस अगम पुरुष के घर में मैंने निवास किया। द्वार के मध्य स्थित सुरति में थोड़ा ठहर कर मैं धीरे-धीरे आगे चढ़कर गया। मेरी चेतना वृत्ति चढ़ती थी–उतरती थी, और पुनः चढ़ जाती थी जैसे मकड़ी अपने धागे का तार उतरती-चढ़ती हुई लगती है। इस प्रकार मैं रात-दिन वही रहा और सुरति में संलग्नता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं अच्छा लगता था। इस प्रकार मैंने नाम लोक में निवास किया और चौथे पद में सतनाम का निवास था। मैं जहाँ से वहीं समाविष्ट हो उठी और इस प्रकार हमने आदि-अन्त को समझा। जन्म मृत्यु दुःख सुख सब छूट गया और समस्त कर्म बंधन भी पूरी तरह से टूट गया। हे स्वामी! मैं आपके चरणों की बलि जाता हूँ–मेरे प्रति दया करके वह अगम्य वस्तु दी। मेरे प्रति हृदयभाव से प्रीति रीति दिखा करके संकेत भाव से सारा रहस्य समझाया।

मैं कहा जानूँ जीव अबूझा। हिरदे तत मत से सब सूझा।।
लखनऊ मन अब नेक न भावै। अब तौ तुलसी तुलसी चावै॥
हिरदे की जाऊँ बलिहारी। इन बिधि सगरीं मोर सँवारी॥
पिता दरस बिधि ऐसी कहिया। चरन लाई बिधि अगम लखइया॥
हिरदे प्रीति हम तुमको पावा। हिरदे रीति अगम दरसावा॥
तब स्वामी के चरन सँवारे। स्वामी कृपा से उतरे पारे॥
सीस टेकि पुनि अज्ञा लीन्हा। सीस डारि चरनन पर दीन्हा॥
स्वामी मो को अज्ञा दीजै। अस कहि नीर नैन से छीजै॥
अज्ञा स्वामी दीन्हा बनाई। तब गुनुवाँ मारग को जाई॥
हिरदे हरष हिये में लावा। गुनुवाँ काज भयौ बिधि भावा॥

अर्थ–मैं तो अज्ञान से भरा हुआ ना समझ जीव था किन्तु आपके मार्ग दर्शन करने पर सभी कुछ हृदय से सूझ गया। लकनऊ के लिए मन में अब थोड़ा भी अच्छा नहीं लगता और अब तो मन तुलसी-तुलसी में रंगा रहता है। मेरे पिता ने आपके दर्शन द्वारा इस प्रकार मुझे बताया था और आपके चरणों में ले आकर उन्होंने उस अगम तत्त्व को दिखा दिया। हृदय की प्रीति से आपको प्राप्त कर लिया है और इस हृदय प्रेम ने मुझे अगम्य का दर्शन कराया। उसके बाद मैंने अपने स्वामी तुलसी साहब के चरणों की पूजा की और उन स्वामी की कृपा से ही उस पार उतर गया। हे स्वामी! अब आप मुझे आज्ञा दें और ऐसा कहते हुए उसके नेत्रों से अश्रु बहने लगे। स्वामी ने समझाकर उसे आज्ञा दी और तब गुनुवाँ मार्ग की ओर चल पड़ा। इस स्थिति को देखकर उसके पिता हिरदे ने हृदय से हर्ष प्रगट किया और गुनुवाँ का कार्य पूर्ण ढंग से हो गया॥

॥ वचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

(बैरागी)

तुलसी हिरदे कहै बखानी। ये सत रीति संत कोउ जानी ॥
भेस भेस बिधि देखि निहारी। ये गति मति बिधि सबसे न्यारी ॥
बैरागी बिधि इष्ट भुलाने। काल जाल में जाइ समाने ॥

अर्थ–तुलसी ने हृदय से वर्णित करके कहा–इस सत्य प्रणाली को कोई नहीं जानता है। नाना प्रकार के भेषों और प्रणालियों में से भिन्न प्रकार की यह साधना की विधि है। वैरागी जन अपनी विधि और अपने इष्ट में भूले हुए हैं और वे काल के जाल में समाविष्ट हैं।

(जोगी)

जोगी जोग ध्यान रस भूला। स्वाँसा संघ कीन्ह अनुकूला ॥
मुद्रा पाँच तरी मत झूला। ये पुनि ज्ञान जोग मत फूला ॥
इंद्री बस रस कीन्हौ धूला। वोऊ न पायौ सार रस मूला ॥

अर्थ–योगी योग के ध्यान रस में भूला हुआ है–और अपने श्वास से अपने चित्त को जोड़कर उसके अनुकूल बना लिखा है। पाँच मुद्राओं के बीच में मन तन्मय है और ये ज्ञान योग के गत में गर्व से फूले हुए हैं। इन्द्रियों को वश में करके उनके आनन्द को धूल बना रखा है और उन्होंने भी आनन्द के मूल सारतत्त्व को नहीं प्राप्त किया है।

(परमहंस)

परमहंस पुनि ब्रह्म बखानै। ब्रह्म बिधी बिधि वोहू जानै ॥
जड़ तन मन में गाँठि बँधाना। ता को ब्रह्म कहै हैवाना ॥
कहै सब में सब हमीं समाना। आदि अंत नहिं चीन्ह ठिकाना ॥
बेद बिधी बेदांत बतावै। वा के आगे भेद न पावै ॥
मुख से कहै नाद को गावै। भूला बेद ताहि ठहरावै ॥
बेदउ नेत नेत कर गावै। पुनि ता की वह साखि बतावै ॥
संत मता उनहूँ नहिं पाया। ब्रह्म ब्रह्म बन जनम नसाया ॥

अर्थ–इनके बाद परमहंस अपने ढंग से ब्रह्म का वर्णन करता है और वह कहते हैं कि वे भी ब्रह्म की विधि जानते हैं। उनके जड़ मन तथा तन में गाँठें बाँधी हुई हैं और उसे तो हैवान का ब्रह्म कह सकते हैं। वे कहते हैं कि ब्रह्म रूप में सभी में समाविष्ट हैं किन्तु उसके आदि तथा अन्त तक उसके ठिकाने को नहीं पहचाना। वे वेद विधि द्वारा वेदान्त का वर्णन करते हैं किन्तु उसके आगे उस परमतत्त्व का रहस्य नहीं प्राप्त कर पाते। वे मुख से ब्रह्म के विषय में बताते हैं और नादस्वर से उसके विषय में गायन करते हैं। यही नहीं, वेद जिसे भूल चुका है–उसे ब्रह्म के रूप में स्थापित भी करते हैं। वे वेद के लिए नेति-नेति कह के गान किया करते हैं और फिर उसे साक्षी द्वारा सिद्ध करते हैं। संत मन का रहस्य उन्होंने भी नहीं पाया और स्वयं ब्रह्म-ब्रह्म रूप बनकर अपने जन्मों को नष्ट कर डाला ॥

(सन्यासी)

सन्यासी कहै हम भगवाना। आदि अंत उनहूँ नहिं जाना ॥
कहै भगवान आप को जानै। आतम कहि कहि सुद्ध बखानै ॥

चेतन जड़ सँग गाँठि न जानी। सास्तर राह बिधी रस ठानी।।
बेदउ सास्तर नेत •पुकारा। इतनीं बूझ न पाय गँवारा।।
सास्तर बेद नाद से भुइया। नाद अगम घर कहं से अइया।।
नाद की आदि सुन्न से न्यारी। सुन्नी सुन्न सुन्न के पारी।।
वोही घर से नाद पुनि आया। ता पीछे ब्रह्मंड बनाया।।

अर्थ–सन्यासी कहते हैं, हमी भगवान हैं और उन्होंने भी अपना आदि अन्त नहीं समझा। स्वयं अपने को ब्रह्म कहकर जानते हैं और स्वयं का आत्म रूप कहकर शुद्ध बताते हैं। वे जड़-चेतन के बन्धन की गाँठ का रहस्य नहीं जानते और शास्त्र के मार्ग द्वारा इस विधि के मूल तत्त्व की बात कहते हैं। बेद और शास्त्रों ने उसे नेति के नाम से पुकारा है–इन मूर्खों की इतनी भी समझ नहीं है। नाद तत्त्व से वेद एवं शास्त्रों की उत्पत्ति हुई–नाद का घर अगम्य है, वह कहाँ से आया (ये इसके विषय में चुप हैं) नाद का आदि प्रकरण शून्य से विलक्षण है और शून्य की उपासना करने वाला साधक भी शून्य के उस पार है अर्थात् उससे अलग है। पुन: उसी घर से नाद की भी उत्पत्ति हुई है और उसके बाद ब्रह्मांड की रचना हुई है।

पाँच तत्त मन माया भाई। ता से रचि बैराट बनाई।।
जड़ चेतन की गाँठि बंधानी। ता को नाम आतमा जानी।।
गाँठि बंधे पर भूल समानी। आतम बुध मन बेद बखानी।।
आतम बँधा गाँठि के माईं। पुनि ता ने यह बेद बनाई।।
सोई बेद आतम बिधि गाई। बेद की आदि सुनौ तुम भाई।।
आतम कर्म भाव गठियाना। बंधन आतम बेद बखाना।।
ता की साखि बतावौ भाई। बदउ नेति नेति करि गाई।।
जब नहिं बेद बेद का करता। जब नहिं रूप रेख कछु धरता।।
तत्त पाँच नहिं थे बैराटा। नहिं जो जब ब्रह्मांड न ठाटा।।
निरंकार जोती नहिं भाई। परमातम आतम जब नाहीं।।
सोहंग नहिं जब ओंअंकारा। तब की कहूं बिधी बिधि सारा।।
नहिं काया नहिं बोलनहारा। तब की कहूँ बिधि भाखि सँवारा।।
बेद नाद दोउ पीछे भइया। को पहिले जो बरनि सुनइया।।
पहिले नाद कहाँ से आया। पुन्न न गगन हती नहि माया।।
वा घर की कोउ आदि बतावै। जब जोइ संत मत को पावै।।
हिरदे की बिधि कोइ नहिं जाना। संत मिलै तौ करै बखाना।।
सन्यासी भूले अस भाई। पंडित बाम्हन कहा बताई।।

अर्थ–माया के अन्तर्गत पाँच तत्त्व हैं और उन्हीं से रचकर इस वैराट तत्त्व की रचना हुई है। जड़ और चैतन्य की ग्रंथि परस्पर बंधी है उसी का नाम आत्मा है। इस ग्रन्थि के बँधने पर मूल समाविष्ट हो उठी और वेद कहने लगा कि आत्म, मन, बुद्धि तीनों भिन्न हैं। आत्मा तो उस ग्रंथि में बँधा है और पुन: उसी ने वेद भी बनाया है–यह असत्य है क्योंकि जो बाद में बना है, वह उसके पूर्व बने आत्मा का प्रत्यक्ष की भाँति वर्णन कर रहा है, जो असत्य है। हे भाई! तुम वेद की आदि सनातनता को सुनों? जो

वेद ब्रह्म के विषय में नेति नेति कहकर गान करते हैं, अब मैं उसका साक्ष्य बता रहा हूँ। जब न वेद था और न वेद का रचनाकार था और तब कोई रूप एवं लक्षण का धारण करने वाला भी नहीं था। ये पाँच वैराट (विराट सृष्टि) के पाँच तत्त्व भी नहीं थे और उस समय न ब्रह्मांड था और न उसकी बनावट एवं साज सज्जा ही थी। उस समय न निरंकार थी, न ज्योति थी और उस समय न आत्मा और न परमात्मा। उस समय न 'सोऽहम्' था और न ऊँकार था और मैं उस समय की समस्त विधियों का वर्णन कर रहा हूँ। उस समय न कोई काया था और न कोई वक्ता था और मैं उस समय की विस्तारपूर्वक व्यवस्था कह रहा हूँ। वेद तथा नाद ये तो पीछे उत्पन्न हुए–इसे कौन वर्णित करके सुनाएगा कि इन दोनों में कौन पहले था। नाद पहले आया (यह कहा जाता है) किन्तु कहाँ से आया। न पुण्य था, न आकाश था और न माया थी। वह जिस घर से आया है, उसकी आदि स्थिति का कोई वर्णन करे तभी संत मत की बात समझी जा सकती है। हृदय की विधि को किसी ने नहीं समझा और यह कहा गया कि इसे पंडितों एवं ब्राह्मणों ने बताया है–यह पूर्णतया असत्य है।

(पंडित)

पडित कहै हमीं पुनि स्याना। सास्तर पढ़ि पढ़ि बेद पुराना॥
पढ़ि पढ़ि पढ़ने माहिं भुलाने। जा को पढ़े सोई नहि जाने॥
जा की ये सब साखि बतावैं। वोऊ नेत नेत गोहरावै॥
निरंकार को नेत बखाना। निरंकार के परै न जाना॥
तीरथ बरत नेम के माईं। करम धरम पुनि जज्ञ बताई॥
धरि धरि देहीं भोग करावा। भूले आप अरु जगहि भुलावा॥
बाम्हन को बिद्या मन माना। ऐसे संत मता नहिं जाना॥

अर्थ–शास्त्र वेद पुराण आदि को पढ़-पढ़कर पंडित कहते हैं कि सबसे अधिक ज्ञानी हम हैं। वे पढ़ते-पढ़ते (परमतत्त्व को) भूल गए वे जिसका अध्ययन कर रहे हैं, उसी को नहीं जानते) जिसकी ये साक्षी बता रहे हैं–उसे वेद नेति-नेति कर रहे हैं। वे निरंकार तत्त्व को नेति-नेति कह रहे हैं और निरंकार के परे स्थित उस तत्त्व को नहीं जानते हैं। तीर्थ-व्रतादि तो नियम के साथ हैं और वे कर्मधर्म को पुनः यक्ष बतलाते हैं। देहधारी कह कहकर सगुण ब्रह्म से नाना प्रकार का भोग कराते हैं–वे तो स्वयं विस्मृत ही है, संसार को भी विस्मृत किए हुए हैं। ब्राह्मण के मन ने तो विद्या ही समा गई है:सा सन्तों के मतों में नहीं जाना जाता।

(ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारी ब्रह्मवार बखानै। ब्रह्म पार का भेद न जानै॥
वार पार का भेद बिधाना। यह बिधि वोहू राह भुलाना॥

अर्थ–ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य का वर्णन करता है, किन्तु वह ब्रह्म के उस पार का रहस्य नहीं जानता। उस पार रहस्य और विधान भिन्न हैं और इस प्रकार उसको न जानने से वे मार्ग भूले हुए हैं।

(डंडी)

डंडी डंड कमंडल लीन्हा। लकरी बाँधि जनेऊ कीन्हा॥
बाम्हन प्रसादी पावै। और जाति का छुआ व खावै॥
द्वैत बुद्धि बसी हिये माहीं। मुख से आतम एक बताई॥

ऐसी बुद्धि द्वैत मन राती। पूजें ब्राम्हन की पुनि जाती॥
अंध अंध दोऊ संग मिलाना। सत मते की राह न जाना॥

अर्थ–दण्डी धारी साधु दण्ड-कमण्डल लेकर लकड़ी में जनऊ बाँधकर ले लिया। वह ब्राह्मणों के हाथ से प्रसादी ग्रहण करता है, अन्य किसी जाति का छुआ हुआ पदार्थ खाता नहीं।

उसके हृदय में तो द्वैतबुद्धि बस गई है और मुख के द्वारा एक आत्मा की बात कहता है। ऐसे द्वैत बुद्धि वालों के प्रति लोगों के मन में आसक्ति हो उठी है और वे (जन समुदाय) ब्राह्मण की जाति का पूजन करते हैं। दो अंधे आपस में एक साथ मिल गए हैं और इनमें से कोई भी सत्यमत का मार्ग नहीं जानते।

(वैष्णव)

वैष्नव विस्नु धर्म को पालै। पूजा इष्ट भाव बिधि वालै॥
बिष्नू तीन गुनन के माई। रजगुन तमगुन सतगुन भाई॥
रज ब्रह्मा तम संकर भाई। सतगुन बिष्नू तिन के माई॥
तन बैराट से उपजे भाई। सो पुनि ब्रह्मा बिष्नु कहाई॥
सतोगुन बिष्नू तिन के माई। तेहि को छाँड़ि पाहन मन लाई॥
चार धाम तीरथ को धावै। बिष्नू पाय खोज नहिं पावै॥
पूजै जग खैराती खावै। करम भोगि फिर सब में आवै॥
संत मते की राह न जानै। बिष्नू पूजि जगत सब मानै॥

अर्थ–वैष्णव विष्णु धर्म का पालन करता है और अपनी पूजा इष्टदेव के बाल्य रूप में करता है। विष्णु तीनों गुणों के मध्य में हैं–ये रजोगुण, तमोगुण एवं सतोगुण हैं। रज ब्रह्मा हैं, हे भाई, तम शंकर हैं, उनके बीच विष्णु सतोगुण हैं। ये तीनों बैराट के शरीर से उत्पन्न होते हैं और वे पुनः ब्रह्मा, विष्णु एवं महादेव कहे जाते हैं। उनके मध्य विष्णु सतोगुण से सम्बद्ध हैं। उनको छोड़कर मन पत्थर में लगा हुआ है। वे उनके लिए चारों धाम एवं विभिन्न तीर्थों के लिए दौड़ते हैं किन्तु विष्णु की कही वे खोज नहीं पाते। संसार उनकी पूजा करता हैं, शेष उस पूजा के भोग को मुफ्त खाते हैं। फलतः कर्मभोग के अनुसार वे बारबार संसार में आते रहते हैं। ये सभी संतों के मार्ग का रहस्य नहीं–समझते और सारा संसार पूजा करता हुआ विष्णु को देवता स्वीकार करता है।

(मुसलमान)

मुसलमान खुद खुदा बतावै। सब में खुदा खुदा करि गावै॥
खुदा एक कहै सब में भाई। बकरी मुरगी मारै खाई॥
येहि बिधि भूल हैं उनके माई। खुद खुदाई की राह न पाई॥
मुसलमान है हक्क इमाना। जिन कोई भिस्त राह पहिचाना॥

अर्थ–मुसलमान स्वयं को खुदा कहता है और सबमें खुदा है, सबमें खुदा है, ऐसे गाता रहता है। हे भाई! जब सबमें खुदा है, ऐ गाता रहता है। हे भाई! जब सबमें खुदा एक है तो बकरी एवं मुर्गी को क्यों मार कर खाता है। इस प्रकार उनकी भूल है और व स्वयं खुदा की राह नहीं पाते॥ मुसलमान का अधिकार है, ईमान घर और उसी के साथ रहकर कोई एक स्वर्ग की राह का पहचानता है।

(स्रावग)

स्रावग आदि धर्म बतलावा। आदि राह का मरम न पावा॥
ऋषब देव चौबीसौ भइया। ता को कहै मुक्ति को गइया॥
मुक्ति मुक्ति सब भाखि सुनावै। वोहू मुए मुक्ति गोहरावै॥
जीवत देखी कहै न बाता। चौथा काल कहै विख्याता॥

अर्थ—यह स्रावक स्वयं आदि धर्म की चर्चा करता है किन्तु उसे उस आदि मार्ग के रहस्य का ज्ञान नहीं है। चौबीस ऋषभदव हुए और उन्हें मुक्ति प्राप्त कहा जाता है। सभी जैन साधु मुक्ति-मुक्ति की बात कहकर सुनाते हैं और उन्होंने भी मरने के बाद ही मुक्ति देखी हैं, ऐसी बातें वे नहीं करते और मृत्यु के बाद चतुर्थ काल को मुक्ति कहते हैं, ऐसा विख्यात है।

(कबीर पंथी)

पथ कबीर का भाखि सुनाई। पंथ राह उनहूँ नहिं पाई॥
संत कबीर मुख भाखेऊ बैना। उन सब कही अगम की सैना॥
पंथी सैन लखी नहि भाई। पंथ राह की जाति चलाई॥

अर्थ—कबीर वर्णन मैं कहकर सुनाता हूँ—उस मार्ग का रहस्य उन्होंने भी नहीं। संत कबीरदास जी ने अपने मुख से वाणी कही है, और उन्होंने सर्वत्र अगम्य तत्त्व का संकेत किया है। पन्थी (राहगीर) ने उस संकेत (इशारे) को नहीं समझा है और सबने कबीर पंथ का सिद्धान्त चला रखा है।

(नानक पंथी)

नानक संत जो भये अगाधू। चौथा पद पाये उन आदू॥
उन भाखा कढ़िया परसादी। इन कढ़ाव हलुवे की बाँधी॥
पंथ कहा सो मरम न जाना। पंथ राह उन अगम बखाना॥
ता की बूझ राह नहिं पाई। पंथी जाति जाति भइ भाई॥

अर्थ—नानक जो अगाध तत्त्व के ज्ञाता संत हुए हैं और आदि में ही जिन्होंने चतुर्थपद प्राप्त कर लिया था। उन्होंने काढ़ी हुई प्रसादी की बात कही और उसके शिष्यों ने हलुवे के चढ़ाव की बात कही है। उन्होंने जिस पंथ की चर्चा की है, वे उसके मर्म को नहीं जानते और उनके मार्ग (पंथ) को अगम्य कह दिया है। उनके द्वारा बूझी हुई राह उन्हें नहीं मिली और उनके पंथ हर जाति के लोग हुए।

(दादू पंथी)

दादू संत जो भये अनामी। वे कहि गये अगम की बानी॥
उन भाखा कोइ पंथ नियारा। अगम निगम का कुंजी तारा॥
ऐसे संत जो भये अनामी। उनकी बिधि पंथी नहि जानी॥
पंथ चलाइ बढ़ाई साखा। सास्तर बेद मते में राखा॥

अर्थ—दादू संत अपनी साधना के कारण जो अनामी सन्त हो गए हैं, वे इस अगम्य तत्त्व ही बात कह गए हैं। उन्होंने कोई एक न्यारे पंथ का वर्णन किया है और उनके पास अगम्य ज्ञान तक पहुँचने के लिए कुंजी एवं ताला दोनों हैं। इस प्रकार के जो भी अनामी संत हो उठे हैं, उनके रहस्य को उनके अनुयायी भी नहीं जानते। पंथ चला कर उन्होंने अपना विश्वास चलाया और शास्त्र तथा वेद दोनों को अपने मत में रखा।

पंथी मत उनका नहिं जानी। राम रमा सब कहत बखानी॥
ऐसी कहाँ कहाँ की कहिया। सब बिधि पथ धरम में रहिया॥
कोइ पंथी कोई धर्म चलावा। संत मते को कोइ नहिं पावा॥
सुन हिरदे यह ऐसी रीती। धर्म पंथ ने करी अनीती॥
सतन पंथ सुरति का पाया। पंथ सुरति की राह बताया॥
सूरति मिलै सब्द में जाई। ये सब संतन पंथ बताई॥
सुरति पंथ नहि खोजा भाई। जाति पंथ का बोझ उठाई॥
जो कोइ कहै सत्त की बाता। ता से करै बहुत उतपाता॥
निदंक ता को करि ठहरावैं। नास्तिक मता ताहि बतलावैं॥
संत मते को रीति न जानैं। कहै जा को पुनि एक न मानैं॥
कैसे होय जीव निरवारा। या में बढ़ि गया जाल पसारा॥
पथी पंथी टेक बँधानी। अपने अपने मत की ठानी॥
संत पंथ जो राह बखानी। सो पंथी कोइ खबर न जानी॥
सुन हिरदे यह ऐसी रीती। सत भाखै तेहि कहैं अनीती॥

अर्थ–उनके पंथियों में उनके मत को नहीं समझा और सभी राम तथा रमा कहते हुए उनके मत का वर्णन करते हैं। उन्होंने अपने पंथ में ऐसी बातें कहाँ-कहाँ से ले आकर कही है और धर्म के अन्तर्गत ही उनके सारे रहस्य वर्तमान हैं। कोई राहगीर है, कोई धर्म चलाता है किन्तु उनके संतमत को कोई समझ नहीं पाया है। उन्होंने तो सुरति पंथ की ही राह बतलाई है। सुरति स्वयं शब्द में आकर मिलती है–और ये सन्तों के लिए यही मार्ग बताते हैं। अपने मार्ग में सुरति उन्हें खोज भी चाहिए लेकिन इसके विरुद्ध उन्होंने जाति तथा पंथ का बोझा उठा रखा है। जो कोई उनसे सत्य की बात कहता है वे उससे बहुत अधिक उत्पात करते हैं। उसे निंदक ठहराते हैं और उसके मत को नास्तिक कहते हैं। वे स्वयं संतमत की रीति नहीं जानते और उनके सामने जो कुछ भी कहा जाता है, उसे एक भी नहीं सुनते। जीवों के लिए कैसे इसका निराकरण हो इसमें तो माया के जाल का फैलाव अधिक बढ़ गया। पंथी ने पंथी होने की टेक बाँध ली है और सभी ने अपने अपने मतों की बातें कही है। इसमें दादू द्वारा जो संत पंथ की राह बताई गई है–कोई भी पंथी उसकी खबर नहीं जानता। हे हिरदे! तुम सुनो, यह ऐसी रीति है–संत का वर्णन किया जा रहा है और उन्हीं के पंथ के लोग अनीति करते हैं।

तब संतन ने बस्तु छिपाई। कही जिव राह कहाँ से पाई॥
साखी सब्दी ग्रन्थ बनाई। गुप्तै बस्तु नकल में गाई॥
नकल बस्तु ग्रंथन में जानौ। साखी सब्द नकल करि मानौ॥
या में खोज खोज नहिं पावैं। सतगुरु मिलै तो भेद बतावैं॥
नकल माहि से असल दिखावै। सो चेला सतगुरु से पावै॥
जा की खुली अगम की आँखी। साँचे सतगुरुता को भाखी॥
सुन हिरदे सतगुरु सहदानी। सतगुरु सत्त पुरुष को जानी॥
चौथे पद में करैं निवासा। मिलै जाइ सतगुरु का दासा॥

सतगुरु भेद अगम दरसावैं। तब चढ़ि जाइ अगमपर पावैं॥
हिरदे या को कोइ न जानै। जा से कहूँ सोई नहि मानै॥

अर्थ–उन्होंने साखी तथा सबद ग्रन्थों की रचना की। उस गुप्त तत्त्व की नकल गाई जा रही है। उस नकल वस्तु को ग्रंथों में भी उनके अनुसार कहा गया है–साखी शब्द को उन्होंने नकल मानकर स्वीकारा है। मूल तत्त्व की खोज करते हुए भी पंथी इन्हें नहीं पा रहे हैं–कभी यदि कोई सतगुरु मिलेगा तो वही इसका रहस्य बतला सकेगा। ये नानक पंथी नकल में से असल दिखा रहे हैं। जिस पंथी के अगम्य की आखें खुल चुकी हैं–वही सच्ची सतगुरुता का वर्णन कर सकता है। हे हिरदे! उस तत्त्व को सतगुरु के सम्पर्क में उनके द्वारा दिए गए स्मृति चिह्न के रूप में सुनो क्योंकि सतगुरु ही सत्त पुरुष को जानता है। वह सत्पुरुष चौथे पद में निवास करता है और सतगुरु का दास जाकर वहाँ उससे मिलन करता है। यह सतगुरु के अगम्य भेद का दर्शन कराता है और उसके द्वारा वह सुरति समाधि पर चढ़कर अगम्य पद को प्राप्त करता है। हे हिरदे! इसे कोई नहीं जानता–जिससे-जिससे मैं कहता हूँ, वही उसे नहीं स्वीकार करता।

॥ हाल प्रियेलाल के अभ्यास का॥ चौपाई॥

इतने में प्रियेलाल जो आये। करि परनाम छुए तिन पाँये॥
प्रियेलाल अस बचन उचारा। स्वामी से कहिहौं कछु सारा॥
जो कछु कृपा सिंध अनुकूला। सो बिधि निरखि बताऊँ मूला॥
प्रियेलाल भाखे रस माते। कालिंद्री नित सुरति समाते॥
कालिंद्री पर नित नित जाई। पुनि तेहि पार पार होइ राही॥
नौलख कँवल निरखि पुनि भागे। सहस कँवल के चलि गये आगे॥
सागर खिरकी समुँदर माईं। द्वार पैठि के सुरति चलाई॥
देखा जाइ वह अजब तमासा। सुरति लीन कोह पहुँचै दासा॥
अरध उरध मध माहीं बाटा। अंड फोड़ तहँ चढ़ि गये घाटा॥
सूरति नित नित बढ़ै बढ़ाई। ठहरै नहीं बहुत ठहराई॥

अर्थ–इसी बीच में प्रियेलाल आ गए और उन्हें प्रणाम करके उनके पावों को छुवा। प्रियेलाल तुलसी साहब से ऐसी वाणी बोले कि मैं अपने स्वामी से अपनी साधना का कुछ सार तत्त्व कहूँगा। आपका कृपा सिन्धु जो मेरे अनुकूल रहा उस विधि को देखकर उसका सही समाचार मैं आपको बता रहा हूँ। समाधि के ध्यान रस में प्रियेलाल बोले, कि यमुना (पिंगला) थी। सुरति में नित्य प्रति समाये रहते हैं : प्रतिदिन अपनी समाधि के क्षणों में मैं कालिन्दी (पिंगला) में समाहित होता रहता हूँ और उसके बाद उसके पार चला जाता हूँ। उसके आगे नौलाख कमलों को निरखते हुए सहस्त्रार कमल के आगे निकल गए। वहाँ समुद्र के किनारे सागर खिड़की थी और उसके द्वार पर बैठकर मैंने सुरति समाधि को आगे बढ़ा दिया। इसके बाद, आगे जाकर मैंने वह अजब तमाशा देखा और वहाँ सुरति में लीन कोई ही दास पहुँच सकता है। उसमें तीन मार्ग है–ऊर्ध्वमार्ग, अध: मार्ग एवं माध्यम मार्ग और अंडे को फोड़कर वहाँ उस घाट पर पहुँच गए। सुरति वहाँ नित्य प्रति बढ़ती है और मैंने उसे बढ़ाया है।

छिन छिन पद में पदम निहारी। कंज बास छूटै नहिं तारी॥
येहि बिधि दिवस रातलौ लागा। निरखा सुरति उठै अनुरागा॥
स्याम सेत निभि न्यारी सैला। निकसा दूर अजर अस खेला॥

हमको स्वामी कीन्ह सनाथा। काल जाल से छूटेउ हाथा॥
मुख से कस कस वरनि सुनावा। तुम्हारी कृपा अगम दरसावा॥
मैं मतिमद बस्तु कह पाऊँ। मन मोटा जग गुरू कहाऊँ॥
मान मई बाम्हन की जाती। ऊँचा चारि बरन मैं पाँती॥
अंध घोर जग का जंजाला। नित नित मच करै जमी काला॥
तुम दयाल बिधि ऐसी कीन्हा। काख जाल तजि सारहिं लीन्हा॥
तुम नहिं कृपा करत येहि भाँता। तौ करमन भौ माहिं समाता॥
यह बंधन बिधि भाव छुटावा। जहँ का जीव तहाँ पहुँचावा॥

अर्थ–वहाँ प्रतिक्षण चरणों के बीच स्थित कमल को देखा। उस कमल से निकलने वाली सुगंधि एक क्षण के लिए भी नहीं छूटती। इस प्रकार, उस समाधि में मेरी ललक रात-दिन लगी रही। मैंने यहाँ सुरति को देखा जिसमें अनुराग का निरन्तर आवेश का। श्याम-श्वेत संयुक्त वह बिलक्षण पर्वत शिखा थी। उससे दूर निकल कर उस अमर तत्त्व में मैंने क्रीड़ा की। हे स्वामी जी! आपने हमें सनाथ कर दिया और मेरा हाथ मृत्यु के जाल से मुक्त हो उठा। मैंने अपने मुख से उस अनुभव का कैसा-कैसा वर्णन किया है–तुम्हारी ही कृपा ने यह समस्त अगम्य तत्त्व को दिखाया है। मैं मतिमन्द व्यक्ति आपकी दी हुई वस्तु प्राप्त कर ली–अथवा वह कहाँ पाता–मेरा मन अज्ञानी है, मैं गुरु कैसे कहा सकता हूँ। ब्राह्मण की जाति तो सबसे सम्मानपूर्ण है, वह चारों वर्णों और सारी पंक्तियों में आगे है। इस संसार में जंजाल घोर अंधकार है–और प्रतिदिन इससंसार के मंच पर स्थित अभिनेता को काल पृथ्वी पर ले आकर डाल देता है। हे दयालु! आपने मुझे इस प्रकार कर दिया कि काल जाल को छोड़कर सार तत्त्व को ग्रहण कर लिया। यदि आप इस प्रकार से कृपा नहीं करते तो मैं कर्मों के भवसागर में समा जाता। इस माया के बन्धन तथा भाव से मुझे मुक्त किया और यह जीव जहाँ का था, आपने उसी के पास उसे भेज दिया।

यह जग मूल अंध जिव खाना। मन अपने का ज्ञान बखाना॥
दीन होय संतन की लारा। तब पावै सत मत का द्वारा॥
भेद बेद में नाही स्वामी। समझि परी यह अकथ कहानी॥
ये नहिं बूझ दृष्टि में आवै। पूरा सतगुरु मिलै लखावै॥
बिन सतगुरु जिव भरमै खाना। मुए पढ़ि पढ़ि ग्रंथ पुराना॥
पढ़े सुने कोइ भेद न पावै। सतगुरु मिलै तो भेद बतावै॥
बेद पुरान की झूठी राही। या में जीव काल उरझाही॥
प्रीयेलाल हाथ दै मारा। झूठी बिधी अचार बिचारा॥
स्वामी समझ माहिं अब आई। नित नित घोर कँवल के माई॥
देखा तब मोर मन पतियाई। बिन देखे परतीत न लाई॥
निसा पूर मन साँची भाई। सुन्नी सुरति माहिं रहि छाई॥

अर्थ–यह संसार ज्ञानान्ध जीवों का भंडार है और मैं अपने मन के ज्ञान का वर्णन कर रहा हूँ। यहाँ दीन बनकर संतों से संसक्ति करो और भी संतमत का द्वार पा सकते हो। हे स्वामी! वह वेद के रहस्य में नहीं है क्योंकि यह अकथनीय कथा के रूप में मुझे समझ पड़ी है। यह रहस्य सामान्य रूप से दृष्टि में नहीं आता। जब पूर्णज्ञानी कोई सतगुरु मिलता है, तो वही ही उसे दिखा सकता है। बिना सतगुरु के जीव

नाना प्रकार के चक्रों में भटकता है और वह पुराने ग्रंथों को पढ़-पढ़कर मर जाता है। पढ़ने-सुनने पर कोई इसका रहस्य नहीं प्राप्त कर सकता वेद तथा पुराणों के राही झूंठे हैं और इसी में जीव को काल उलझाए हुए है। प्रियेलाल हाथ मार कर कहते हुए बोले–सम्पूर्ण आचार-विचार एवं विधियाँ मिथ्या है। हे स्वामी! यह बात अब मेरी समझ में आ गई है क्योंकि मेरी साधना बुद्धि अब नित्य प्रति नित्य कमल से लग गई है। उसके देखने के बाद ही अब मेरा मन विश्वास करने लगा है क्योंकि बिना देखे प्रतीति (विश्वास) नहीं होती। हे भाई! पूरी रात भर यह मन शून्य सुरति के मध्य ही रहता रहा है।

बिजुली कड़क कड़क उँजियारा। बरसे पानी नैन निहारा॥
सुरति निरति के मंझ मझारा। धसि भीतर लखि अगम पसारा॥
धरती गगन चंद और सूरा। देखा सब में सब बसि पूरा॥
सूरति रहै अगम रस पागी। नित नित रहै रंग अनुरागी॥
अस स्वामी कोइ दृष्टि न आवै। अब कछु और और बिधि भावै॥
जग पुरान बंधन के माहीं। सास्तर जाल काल सब राही॥
संत राह कोइ चीन्हि न पावै। भरमै भर्म जीव भरमावै॥
अस स्वामी ये कहूँ बिचारा। देखिन परै जीव निरवारा॥
तुम चरनन बिन कछू न कोई। तुम्हरी कृपा होइ सो होई॥
तुमने प्रभु दया अस कीन्हा। औघट बड़े घाट लखि दीन्हा॥
अब स्वामी किरपा अस कीजै। अज्ञा भाव दरस मोहि दीजै॥
चरन छुये पुनि अरज बिचारी। अब चलने की बिधी निहारी॥
उठे चरन गहि अज्ञा लीन्हा। कासी राह गवन तब कीन्हा॥
सुरत गुपाल द्वार तब आये। भीतर आसन बैठे नाये॥

अर्थ–कड़क-कड़क कर चमक रही बिजली ने उजाला बना दिया और आँखों से देख रहे है, पानी बरस रहा है। सुरति तथा निरति के बीच में प्रवेश करके उस अगम्य तत्त्व को देखा। पृथ्वी, आकाश, चन्द्रमा तथा सूर्य सबमें निवास करके देखा, सभी पूर्ण थे। सुरति अगम रस में पगी दिखाई दी और प्रतिदिन वह उस अगम्य तत्त्व के अनुराग में खोई हुई मिली। उसके बाद, हे स्वामी! कुछ भी नहीं दृष्टि में आता और लगता है कोई और विधि हो तथा वही अच्छी लगती है। संसार, पुराण एवं शास्त्र ये सभी बन्धनमय हैं और सभी के सभी काल के राही हैं। सन्त का मार्ग कोई पहचान नहीं पाया उस भ्रम में व्यक्ति तो भ्रमता ही है, स्वयं जीवात्मा को भी भ्रमित किये रहता है। स्वामी ने इसका कहीं विचार होना चाहिए कि इस जीव का निराकरण कैसे हो–जो दिखाई नहीं पड़ता। आपके चरणों की कृपा के बिना कुछ नहीं होगा केवल आपकी ही कृपा से सकता है, होगा। हे प्रभु! आपने ऐसी दया की है–इस औघट के लिए एक बड़ा घाट देखकर दे दिया। हे स्वामी! अब आप इस प्रकार कृपा करें, आज्ञाभाव में मुझे दर्शन कराएँ। उन्होंने उनके चरणों को छुआ और चलने के विषय में सोचने लगे। वे उठे, उनके चरणों का स्पर्श किया और आज्ञा ली तथा काशी के मार्ग का गमन किया। उसके बाद द्वार पर सुरति गोपाल आए और उनके चरणों में सिर झुका कर भीतर बैठ गए।

॥ सोरठा ॥

कहै तुलसी सन बात, हिरदे हरष सत मत कहूं।
प्रियेलाल मुसक्यात, राह अगम गति पाइ कै॥

अर्थ–हृदय से हर्षित होकर सुरति गोपाल तुलसी से बात करते हैं कि प्रियेलाल अगम्य की गति पाकर अब मुस्करा रहे हैं अर्थात् प्रसन्न हैं।

॥ वचन तुलसी साहिब। चौपाई॥

काशी नगर भरा सब झारी। तेरह उतरे भौजल पारी॥
तेरह गये अगमपुर धामा। तिनकी काल न करिहै हाना॥
काल जाल जम पास न आवै। जनम मरन बिधि एक न पावै॥
अमर अजर घर जाइ समाना। जहाँ रहै सतनाम अनामा॥
ये तेरह पर काल न आई। नित नित रहैं अजर घर छाई॥
तेरह नाम बिधी बतलाऊँ। भाखि बिधी भिनि भिन दरसाऊँ॥
करिया नाम रहै इक नारी। सैनी दूजी नाम बिचारी॥
कर्मा धर्मा स्त्रावग जैनी। ये उतरे भौजल की सैनी॥
अगम द्वार चलि गये अगाधा। सुरति गई अगमपुर साधा॥
सेख तकी तकि भये नियारे। खुद खुदाइ रब लाह के द्वारे॥

अर्थ–काशी नगर नाना प्रकार के मनुष्यों से भरा पड़ा है–जिनमें से तेरह इस भवसागर से पार उतर सके हैं। तेरह व्यक्ति उस अगम्यपुर धाम में गए हैं जिनकी हानि काल देवता भी नहीं कर सकते। काल जाल एवं मन भी उसके पास नहीं आ सकते और उनको जन्म-मरण की विधियाँ भी नहीं प्राप्त कर सकतीं। अमर तथा अजर दोनों उस घर में जाकर वहाँ सनविष्ट हो गए जहाँ सत्य नाम के अनाम पुरुष रहते हैं। इन तेरह व्यक्ति के ऊपर काल का भी प्रभाव नहीं है क्योंकि नित्य प्रति उस अजय एवं अजर घर में निवास करते हैं। मैं इन तेरह नामों की विधि पूर्वक चर्चा कर रहा हूँ और इनका वर्णन करके इनका भिन्न भिन्न नाम बताता हूँ। करिया नाम की एक नारी थी–दूसरी का नाम सैनी है। कर्मा तथा धर्मा ये दो जैन धर्म के स्त्रावग है ये सब भवजाल की पंक्ति (सैनी-श्रेणी) से बाहर हो गए हैं। ये सभी उस अगम्य तत्त्व के द्वार पर चले गए हैं। इनकी सुरति तो अगम्य तत्त्व के घर जाकर बैठ गई है। शेख तकी तो उस विलक्षण तत्त्व तक पहुँच गए हैं। जो परम तत्त्व स्वयं खुदा है।

चूँ बेचूँ बेज्वाबी साई। ता घर रूह राह तिन पाई॥
पंडित तीनों नाम बखानौं। दो तौ नैनू स्यामा जानौं॥
तीजा माना पंडित होई। अगम राह घर पावै सोई॥
गुनवाँ हिरदे दोउ निज जाना। ये तौं गये अगमपुर धामा॥
फूलदास और रेवतीदासा। इनका भया अगमपुर बासा॥
प्रियेलाल इक जाति गुसाँई। सुरति सैल अगम घर जाई॥
ये तेरह उतरे भौ पारा। काल जाल से होइ नियारा॥
काल रहै उन से सिर नाई। मिलि गई सुरति अगमपुर धाई॥

अर्थ–साधना में लाजवाब बेचूँ स्वामी भी उस घर की आत्मा बन गए और उन्होंने भी मार्ग पा लिया। मैं तीन पंडितों का नाम कह रहा हूँ–इनमें दो तो नैना और स्वामी को समझो। तीसरे वे माना पंडित हैं जिन्होंने उस अगम्य के घर की राह प्राप्त कर ली हैं। गुनवाँ और हिरदै ये तो साधु है–ये भी उस अगमपुर धाम में पहुँचे हैं। मूलदास और रेवती दास इन दोनों का भी अगमपुर निवास हुआ।

प्रियेलाल जो जाति के एक गुसाईं हैं, सुरति के पर्वत से होतेहुए ये अगम्य के नगर में पहुँच गए हैं। ये तेरह भौसागर के उस पार काल जाल से मुक्त होकर अब ये उस पार उतर चुके हैं। इनके सामने स्वयं काव्य सिर झुकाकर खड़ा है और इनकी सुरति दौड़कर अगम्यपुर तक पहुँच चुकी है।

॥ सोरठा ॥

तेरह तोल अपार, लखा सार सतगुरु मिले।
तुलसी कहै निहार, उत्तरि पार पद को मिलै॥

अर्थ–इन तेरहों की तौल (सामर्थ्य सीमा) अपार हो चुकी है, इन्होंने सार तत्त्व को देख लिया है, इन्हें सतगुरु मिल चुके हैं। इन्हें देखकर ही तुलसीदास कह रहे हैं–ये भवसागर को पार करके परम पद में मिल चुके हैं।

॥ छन्द ॥

तेरह भये पारा अगम निहारा। सत मत सारा लार लये॥ १॥
पहुँचे वोहि धामा अगम अनामा। पार सार रस जाइ पिये॥ २॥
सतगुरु मत भावा अगम लखावा। पावा पदम निवास किये॥ ३॥
चौथे पद माईं सतगुरु पाईं। कंज माहि रत भाव भये॥ ४॥
बेनी परियागा घट अनुरागा। पाइन्हाइ अज अमर भये॥ ५॥
सूरतिसत सानी अगम समानी। जाइ निराली राह लये॥ ६॥
छूटा जंजाला जम और काला। माला हाला दूर बहै॥ ७॥
अपना घर पाई मन समाई। सत्तलोक गई सब्द मई॥ ८॥
नहिं अपना जाना कर्म नसाना। तुलसी सतगुरु राह दई॥ ९॥
यह बिधि अस पाई सों सब पाई। अगम सुनाई गाइ कही॥ १०॥
सतगुरु रस माते नित नित राते। सोवे सतगुरु सुरति लई॥ ११॥
सत सत मत भाखी देखी आँखी। राखन भाखी सत्त गही॥ १२॥
तुलसी, तस गाई जस जस पाई। सुरति समाई राह लई॥ १३॥

अर्थ–ये तेरह भवसागर से पार हो उठे और अगम्य तत्त्व को देख लिया है तथा सत सिद्धान्त का सारतत्त्व ग्रहण कर लिया है। उस अगमय तथा अनाम के द्वार तक पहुँच गए हैं और उस पार जाकर अध्यात्म के सारतत्त्व का पान कर लिया। सतुरु का मत पसन्द आ गया और उसी के कारण अगम्य तत्त्व दिखाई पड़ा–ततश्च स्वामी चरण कमल प्राप्त करके उसके नीचे निवास किया। चौथे पद में सतुरु की प्राप्ति की और उस कमल का रस आनन्दित कर गया। इसी घट के अन्तर्गत त्रिवेणी से संसक्ति हो उठी और उसे पाकर तथा उसमें स्नान करके अजर-अमर बन गए। सुरति भाव सतभाव से सन गई और वह अगम्य में समा उठी और जाकर निराली राह प्राप्त कर ली। यम और काल के झूंठे जंजाल छूट गए तथा माला आदि भौतिक सामग्रियाँ दूर बह गईं। अपना घर मिल गया मन उसी में समा गया और आत्मचेतना 'शब्दमयी' होकर सत्लोक जा पहुँची। कर्मभाव नष्ट हो उठा–गमानागमन भी समाप्त हुआ और तुलसीदास कहते हैं कि सतुरु ने विलक्षण राह दी। इस प्रकार और इस विधि से ऐसा प्राप्त किया और जो अगम्य तत्त्व प्राप्त किया उसे सुना दिया। आँखों से देखा हुआ सत्यमत का मैंने भाषण किया और सच-सच सब कुछ बताया जैसा मैंने जैसा प्राप्त किया था, तुलसी साहब कहते है, वैसा गाया है–सुरति अगम्य में समा गई और अपना मार्ग प्राप्त कर लिया।

।। राग विलावल।।

तुलसी अंदर अलेख, देख लेख आई ।। टेक।।
तुलसी सतसंग जाइ, कामी प्रति छोड़ छाई।।
बासी रस वार पाइ, बूझै संत साई।।
पारी पद अगम बास, हिरये हित चरन खास।
निरखा सगरा अकास, चेता तन माई।।
फूलदास आस पास, देखा हित लाई।। १ ।।
पंडित बाम्हन तरत्र, नैनू स्यामा अमन्त्र।
कीन्हा सतसंग आनि, दीन्हा ब्रत वाही।।
कर्मा और धर्मा आई, सैनी और करिया जाइ।
पाया रस अगम खाइ, हरख हिये माहीं।।
देखा रस अगम पाइ, दीदा रस राही।। २ ।।

अर्थ–तुलसी साहब कहते कि पिंड के अन्तर्गत ही वह अलक्ष्य तत्त्व वर्तमान है, हे भाई! उसे समझकर देखो। तुलसी साहब कहते हैं कि जाकर सत्संगति ग्रहण करो–कामी के प्रति त्याग करो–इस लोक के उच्छिष्टतत्त्वों का परित्याग करो–उसे सन्तों के बीच समझो। अगम्य के निवास के लिए पहल करो–अपने हृदय एवं श्वास में उनके चरणों को रखो–मैंने सम्पूर्ण अकाश में उसे देख हारा किन्तु वह हृदय में ही मिला। हे फूलदास! उस अगम्य तत्त्व को अपने ही आस-पास हितैषी की भाँति देखा है।। १ ।।

उससे पंडित और ब्राह्मण तर गए, नैनू तथा श्यामा दोनों आनन्दित हैं–इन दोनों ने सत्संग किया और उनको मैंने वही व्रत साधना दी। कर्मा तथा धर्मा आए, सैनी और करिया भी गए-वहां जाकर तथा अगम रस का आस्वादन करके हृदय से हर्षित हुए। वहाँ उन्होंने अगम्य तत्त्व को पाकर वे उस रस तथा राह के दीदार हुए।। ५ ।।

गुनुवाँ और रेवतीदास, सतगुरु रस पूर प्यास।
सूरति अगमन निवास, फोड़ पार जाई।।
मियाँ एक तकी सेख, मन का बड़ पोढ़ देख।
सूरति सत सूर लेख, पेखा अपनाई।।
पाया पद मूर सर, खुदा की खुदाई।। ३ ।।
आया इक प्रियेलाल, देखा मत बर्त चाल।
कीन्हा सतसंग हाल, जाति के गुसाईं।।
देखा सब बेद असार, संतन मत बूझ सार।
सूझा मन हिये हार, तरके तक चाही।।
दरदी दरदीन ताहि, सूरति लखवाई।। ४ ।।
तुलसी तेरह की लार, सब्दा रस पिया सार।
सूरति निरखा निहार, चौथा पद पाई।।
सतगुरु पूरा दयाल, छूटा जम डंड काल।

तुलसी कीन्हा निहाल, आपदा मिटाई॥
सिध बुन्द मिला मेल, जल में जल जाई॥ ५॥

अर्थ–गुनुवाँ तथा रेवतीदास पूरी प्यास के साथ सतगुरु से रस प्राप्त किया–अब इनका निवास सुरति के मध्य है और पिंड को फोड़कर ये उस पार पहुँच गए हैं। एक तकी शेख नाम के मियाँ थे, उन्हें मन का अत्यधिक परिपक्वता देखकर, सुरति समाधि द्वारा सौ सूर्यों को देखकर वे मेरे पास समर्पित हुए और मैनें अपना लिया। उन्होंने अपनी साधना के फलस्वरूप सरोवर के मूल में स्नान प्राप्त किया–यही खुदा का अपना बड़प्पन है॥ ३॥

एक प्रियेलाल आए थे–उन्होंने इस मत को समझा और ब्रतादि को देखा। उन्होंने सत्संगति की वे जाति के गुसाईं हैं। उन्होंने समस्त वेदों की असारता देखी। सन्तों के मतों का सार तत्त्व समझा उन्हें सन्त का मूल तत्त्व सूझा और उस तत्त्व की कामना की। और उन पर अत्यधिक कृपा करते हुए सुरति से साक्षात्कार कराया। तुलसी साहब कहते हैं कि तेरह तत्त्वों की आंकाक्षा थी अत: 'शब्द' के रस का पान किया। यही नहीं, उन्होंने स्वयं निहार कर सुरति रस की परख की और चतुर्थ पद को प्राप्त कर लिया। सत्सगुरु पूरी तरह से उनके प्रति दयालु हो रहे–और उनके यम के दण्ड का काल छूट गया–तुलसी साहब ने उनकी आपदा मिटाकर उन्हें निहाल कर दिया। उनके बिन्दु से सिन्धु का मिलाप हुआ और अन्त में जल–जल में मिल गया अर्थात् आत्मा परमात्मा में मिल उठी॥

कासी में भया सोर, तेरह को लिया चोर।
तुलसी अस ज्ञान जोर, घोर नगर माहीं॥
तुलसी हक साथ रहत, तेरह कीन्हा अचेत।
वा से कोउ करो न हेत, पासी नहिं आई॥ ६॥
संतन पर धरै दोस, पाप पुन्न खाइ खोस।
याही बिधि कुटुम पोस, कर्म रेख माहीं॥
संतन को नीच जानि, अपनी बिधि ऊँच ठानि।
मूला अभिमान माहि, चारि खानि जाई॥
देखौ नर अंध अचेत, संत भाव नाहीं॥ ७॥

अर्थ–काशी भर में यह शोर हो गया कि किसी ने तेरह की सिद्धि दे दी। तुलसी के ज्ञान का ऐसा माहात्म्य फैला कि नगर में उसकी चर्चा शुरू हो उठी। तुलसी साहब ने एक साथ रहते हुए तेरह लोगों को अचेत कर रखा है, उनसे अब कोई सम्बन्ध न रखो और न उनके पास आओ।। ६॥

पाप तथा पुण्य दोनों को सोखकर खा जाने वाला सन्तों पर दोष मढ़ता है। अब कर्म भावना के ही अन्तर्गत लोग अपनी कुटुम्ब का पोषण करें। सन्तों को छोटा मानकर अपने कार्यों को अच्छा ठहराकर–अभिन्न में भूला हुआ व्यक्ति पाप के चारों खानों में पड़ेगा। इस समय के इन गृहस्थों को देखें जो अंधे और अचेत हो उठे हैं, इनमें कोई संत भाव नहीं है॥ ७॥

॥ राग जैजैवंती॥

एरी सुधि आदि तौ निरत दरसाई, तुलसी समझाइ कै॥ टेक॥
फूलदास सुनियौ बानी। बिधि ग्रंथन भाखि बखानी।
कहि हिरदे नाम अहीरा। ता की बिधि गाइ कै॥ १॥
तीन पंडित नाम बताये। ता की बिधि भिनि भिनि गाये।
नैनू स्यामा माना नामा। कहिये सत भाव के॥ २॥

कर्मा धर्मा कारिया नारी। सेख तकी और सैनी बिचारी।
ुनुवाँ फूलदास बतलाऊँ। पाये सँग लाइ कै॥ ३॥
रेवतीदास कबीरा पंथी। तिन बूझा सत मत सती।
तुलसी तत सत लखवाई। सूरति नित पाइ कै॥ ४॥
ये भये बारह रस माते। ये अगम पंथ नित जाते।
इनकी सुधि बुधि पिउपारा। रचे बारह धाइ कै॥ ५॥
तुलसी बसी कासी सारी। निकरे बारह नर नारी।
तिनकी गति सत मत पाई। भये न्यारे जाइ कै॥ ६॥
कहैं कासी जग में धामा। तेहि मद हम नहिं पहिचाना।
स्याना सुख सम्पत माहीं। तुलसी आबूझ कै॥ ७॥
प्रियेलाल जाति गुसाई। यह किधि तेरह भये भाई॥
बिंद्राबन के रहे बासी। कासी संग पाइ के॥ ८॥
तुलसी विधि भाखि सुनाई। संतन रस राह बताई।
पाई सतसंग से राही। सुरति सत पाइ के॥ ९॥
तुलसी पद राह लखाई। करिहै नर नारी जाई।
सुरति संग राह बखाना। तुलसी गोहराइ के॥ १०॥

अर्थ–हे री : तुलसी साहब दिखा रहे हैं, आदि तत्त्व से निरत होने का स्मरण करो। हे फूलदास मेरी वाणी सुनों, मैंने विधि ग्रंथों में यह बतला कर कहा है। उसे नाग द्वारा हिरदै अहीर कहा गया है, उसकी विधि मैं कहकर सुना रहा हूँ॥ १॥

पंडितों के तीन नामों को मैंने बताया है; भिन्न-भिन्न रूपों में मैंने उनके नामों का वर्णन किया है– नैनू, स्याम और माना उनके नाम हैं–ये सत्भाव से जुड़कर उनके हो उठे है। कर्मा, धर्मा एवं कारिया नारी शेखतकी और विचारों सैनी गुनुवाँ तथा फूलदास के बारे में बताऊँ–ये सत्व एक साथ आकर फल प्राप्त किये। रेवतीदास कबीर पंथी जिन्होंने सन्त गत को सही-सही जानना चाहा–उन्हें उनकी सुरति प्राप्त कराकर इन तुलसीदास ने उश परम सत्य को दिखलाया॥ ये बारहों अध्यात्म रस से यत्र हैं:ये प्रतिदिन अगम सेवा में प्रवेश करके हैं–इनकी स्मृति तथा चेतना प्रियतम के उस पार है और बारहों ने उसे साधना की त्वरा द्वारा बनाया है॥ २-६॥

तुलसीदास कहते हैं कि समस्त काशी बसी हुई है और उसमें से ये बारह नरनारी अलग हो उठे है। उनकी बुद्धि में सत मत को प्राप्त कर लिया और ये जाकर सबसे विलक्षण हो उठे।

काशी के विषय में कहा जाता है कि यह संसार का एक धाम है–और उस पद में रहने के कारण तुलसी को नहीं पहचाना और स्थानीय सुख सम्पत्ति के मध्य में हम लोग तुलसी के प्रति अबूझ रहे। इन बारहों के बाद जाति के गुसाई प्रियेलाल ये सभी मिलकर तेरह हुए हम तेरह भाई हो गए हैं।

काशी में साथ पाकर हम लोग वृन्दावन के निवासी बन गए॥ ७-८॥

तुलसीदास ने उनका समस्त वर्णन कहकर सुना दिया और इन्हें सन्तों के रसानन्द की राह बता दी। सत्संगति द्वारा इन राहियों ने सुरति सत्संगति प्राप्त कर ली॥ ९॥

तुलसी साहब कहते हैं कि उन्होंने यह मार्ग दिखाया है और नर-नारी दोनों जाकर इसका आचरण करेंगे। तुलसी ने बुलाकर सुरति के साथ साधना का मार्ग सबको दिखाया है॥ १०॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी कहै पुकार, नर नारी सबही सुनौ।
सूरति सँग सँवार, यह बिचार तुलसी कहा॥ १ ॥
सतसँग अगम अपार, जेहि दृग से सब लखि परै।
सरै जीव कौ काज, साजि सुरति सब लखि रही॥ २ ॥
बूझै सतसँग सार, बिना सार पारै नहीं।
कृपा निधि संत अपार, लखि अगार आगे कही॥ ३ ॥

अर्थ–तुलसी साहब पुकार कर कहते हैं कि हे नर नारी! सब लोग सुनें सुरति के साथ अपने को सँवारों, यह मैंने बताया है॥ १ ॥

सत्संगति अगम्य और अपार है–उसी के ज्ञान द्वारा सभी-दिखाई पड़ते हैं। इसी से जीव का कार्य सम्पन्न होता है, और साधक अपनी सुरति को सजाकर सब देखते रहते हैं॥ २ ॥

सत्संगति का सार तत्त्व बूझना चाहिए, क्योंकि बिना इस सार तत्त्व की प्राप्ति के कल्याण नहीं है। गुरु कृपा से भी सन्त अनन्त है, इन्होंने ही वास्तविकता को समझकर आगे की बातें बताई हैं॥ ३ ॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी सतसंगति बलिहारी। बरनौं सत सत बारम्बारी॥
सतसँग सरन चरण गति पावै। अगम निगम गम निरखि लखावै॥
बिन सतसँग चीन्हि नहिं पावै। सतसँग सत्त सूरति दरसावै॥
सतसँग सतसँग अंतर भाई। कही सतसँग अनेकन राही॥
सतसँग संतसगँ सब गोहराया। सतसँग का कोई अंत न पाया॥
सतसँग कहि कहि सभी बताया। सतसँग आदि खोज नहिं पाया॥
सतसँग महिमा अस असगावा। करै घड़ी इक मुक्ति को पावा॥
घड़ि इक में मुक्ती हो जावै। सतसँग महिमा अस अस गावै॥
बेद पुरान भागवत गीता। साखी सब्द जनम गयो बीता॥
रात दिवस तेहि पढ़ि पढ़ि हारै। सुनत सुनत नहिं मुक्ति निहारै॥
कथा पुरान अनेकन कीन्हा। सुपने में मुक्ति नहिं चीन्हा॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि सतसंगति की मैं बलि जाता हूँ–और मैं बारम्बर इस सत्संगति का वर्णन करता हूँ। सन्तों के साथ प्रत्येक पद पर उनकी शरण में ज्ञान प्राप्त करते हैं। अगम्य तरु निगम तत्त्व तो देखकर दिखाते हैं। बिना सत्संग के पहचान भी नहीं पाते हैं और सत्संगति ही सम्पूर्ण सुरति दिखाती है। सत्संगति और संत के साथ रहने में थोड़ा-सा अन्तर है और अनेक साधुओं ने इसका वर्णन किया है। सभी सतसंग-सतसंग पुकारते रहते हैं। सत्य सत्संगति वह है, जो सुरति दिखाती है। सभी सत्संग-सत्संग करके बुलाते रहते हैं, किन्तु किसी ने भी सत्संगति का अन्त नहीं पाया है। सभी ने सत्संगति का वर्णन किया है किन्तु वे उसे खोज नहीं पाए हैं। सत्संगति की महिमा का इस प्रकार वर्णन किया गया है–यदि एक घड़ी भी उसे साधु साथकर लेता है तो उसे मुक्ति मिल जाती है। सत्संगति की महिमा का इस-इस प्रकार से वर्णन किया गया है कि उसके साथ एक घड़ी में ही मुक्ति हो जाती है।

वेद, पुराण, भागवत, गीता, साखी, सब्द आदि के साथ पूरा जीवन समाप्त हो उठा है। रात दिन वह पढ़-पढ़ कर घर गया–और उसके सुनते रहने पर उसे मुक्ति नहीं दिखती॥ कथा तथा पुराण की बातें अनेकों लोगों ने कही हैं किन्तु इन सब ग्रन्थों ने स्वप्न में भी मुक्ति नहीं दी॥

किरत्रिम मदिर नित नित जावै। सतसंग महिमा तान सुनावै॥
नृत करि करि कै तान अलापै। करम धरम मन चितवै पापै॥
कोई पुरान मान मद मानै। कोई कोई ज्ञान स्थान रसराते॥
कोई कोइ पढ़ि बिद्यामद माहीं। कोइ काइ सुनै गुनै रित राही॥
कोइ कोइ ब्रह्म ज्ञान बतलावे। कोइ कोइ तुच्छ जीव कहि गावै॥
कोइ कोइ ब्रह्म ज्ञान को मानै। कोइ कोइ कर्मी जीव बखानै॥
अंधा धुन्धु जगत ब्यौहारा। कोऊ न मुक्ति की राह बिचारा॥
महिमा पलक माहि गति गावै। खोजत मुक्ती जनम गँवावै॥
पलक माहि मुक्ती को पावे। सतसंग मुख महिमा अस गावै॥
करते करते जनम सिराना। सतसंग सुपने मुक्ती न जाना॥
तीरथ बरत नेम जग लागा। काहू न धोखा नहिं भागा॥
नीमखार बद्री परधाना। तीरथ सब प्रयाग असनाना॥
चारौ धाम काम करि आवा। भरमि भरमि कहुँ मुक्ति न पावा॥
जुग जुग रहै चहै सोइ कासी। बिन चीन्हे भये जमपुर बासी॥

अर्थ–ये कृत्रिम मंदिर का निर्माण करते हैं और उसमें सतसंग की महिमा के तराने सुनाते हैं। मानवीय कर्म कर करके तान अलापते रहते हैं तथा मन द्वारा मर्म एवं धर्म में निहित पाप में लगाए रहते हैं। कोई पुराण के मान के मद में माता रहता है और कोई-कोई ज्ञान के स्थान में आनन्द लेता रहता है। कोई कोई अध्ययन करके विद्या में रसभक्त है और कोई राही ज्ञान के प्रकरणों को सुनता रहता है। कोई कोई ब्रह्म ज्ञान बतलाता रहता है और कोई-कोई मनुष्य को तुच्छ जीव कहकर बुलाता रहता है। कोई व्यक्ति ब्रह्म ज्ञान को स्वीकार करता है और कोई किसी कर्मी जीव का ही महात्म्य ज्ञान करता रहता है। इस संसार का व्यवहार अंधाधुन्ध है। कोई जीव की महिमा पलक में मानकर गाते हैं और कोई है सोते हुए मुक्ति और जल को निरर्थक कहते हैं। साधना करते-करते सारा जन्म खत्म हो उठा किन्तु स्वप्न में भी उन्होंने सत्संगति और मुक्ति का अर्थ न समझा। तीर्थ, ब्रत, नियम संसार में फैला हुआ है–न किसी ने धोखा खाया न उनसे भगा है। नैमिषारण्य में बद्रीनाथ जी प्रधान हैं और तीर्थों में प्रयाग है–जहाँ सभी स्नान करते रहते हैं। चारों धाम जाकर लोग धार्मिक कुल कर आते हैं–भ्रमण करते हुए उन्हें कहीं-मुक्ति नहीं मिली। वही व्यक्ति जीवन भर काशी रहना चाहता है किन्तु बिना उस अगम तत्त्व की पहचान किए हुए यमपुर के निवासी बन गए।

ये सब कर्म भाव भौखानी। ये सब काल राह रित मानी॥
सतसंग काल जाल की कीन्हा। भौ बस भाव बहै जस मीना॥
पूजा पाती करै अचारा। मैली बुधि सुध नाहिं बिचारा॥
पूजा मन मल नाहिं छुड़ावा। फूल तोड़ जल पाहन नावा॥
मैला मल पाहन की आसा। तीजे कर्म भाव कृत बासा॥

किरत्रिम नास बास को पूजै। अबिनासी कौने बिधि सूझै॥
नास भाव में सुरत्ति लगाई। ये सतसंग जग महिमा गाई॥
ये धोखा सबहिन हित लावा। ता से सम सग खोज न पावा॥

अर्थ–ये समस्त कर्म भाव भवसागर की खानि है और बिना उस अगम्य तत्त्व को पहचाने सभी-के-सभी काल के मार्ग है–ऐसा स्वीकार गया है। काल के जाल (अर्थात्–मन्दिर पूजा कर्मादि) की सत्संगति करने पर व्यक्ति भवसागर में मछली की भाँति बहता रहता है। पूजा-पाती एवं अन्य आचरण जो करते हैं, उनकी बुद्धि मैली हो उठी है, इसका स्मरण एवं विचार उन्हें नहीं है। पूजा मन की मलों को नहीं छुड़ाती–और वे पूजाकर्मी फूल तोड़कर जल तथा पत्थर पर डालते हैं। उनका मैला मन पत्थर की आशा लगाये रहता है–और इसके भी वे कर्म तथा भाव से वासित कर्म करते रहते हैं। यह कृत्रिमता वास की पूजा करने से उसका विनाश कर देती है–और फिर उनको अविनाशी तत्त्व किस प्रकार से सूझ पड़ेगा। भावना का नाश करके सुरति में ध्यान लगाओं, सत्संगति की महिमा संसार में इसी प्रकार गाई गई है। इस प्रकार का धोखा सभी के लिए है क्योंकि सत्संगति (साधु संगति) खोजकर भी प्राप्त नहीं हो सकती॥

॥ दोहा॥

धोखे सब जग पचि मुआ, पूजा नेम अचार।
तीरथ ब्रत बिधि भर्म से, भुगतत खानि मँझार॥ १॥
बीत जनम सतसँग करत, और सरौ न एकौ काज।
पलक माहिं सतसंग मिलै, सरै जीवन कौ काज॥ २॥
पल महिमा सुनि कहत हैं, मुख से बारम्बार।
पल सतसंगति मुक्ति जो, खोजत नाहि गँवार॥ ३॥
सात स्वर्ग अपबर्ग की, महिमा तुलै न ताहि।
अस सतसग बखानिया, पल में मुक्ति सहाई॥ ४॥
करत करत जनमैं गयौ, नित नित सतसंग साथ।
वो सतसंगति कौन है, मुक्ति जो आवै हाथ॥ ५॥
वो सतसंगति और है, तुलसी अगम निहार॥
संत सुरति सतलोक में, मुक्ति तहाँ पनिहार॥ ६॥
वो सत संगति संत पै, जगत भेष नहिं भेद।
ये अभेद सतसंग को, मुक्ति चरन पद लेत॥ ७॥

अर्थ–पूजा, नियम एवं आचरण के धोखे में सारा संसार उसी में प्रवेश करके तथा विलीन होकर विनष्ट हो उठा है। तीर्थ, व्रत, कर्म, विधि आदि के भ्रमवश संसार इस पाप की खानि भवसागर में भुगतता रहता है॥ १॥

सारा जीवन सत्संगति करते व्यतीत हो उठा और उससे एक भी कार्य नहीं पूजा हुआ। पलक जिससे मात्र में सत्संगति मिलती है और उससे जीवों का सत्कार्य पूर्ण हो उठता है॥ २॥

सत्संगति की पल भर की महिमा सुनते ही मुख से बार-बार प्रशंसा करते हैं–इससे प्रतिपल की मुक्ति देने वाली जो सत्संगति है–उस समझदार लोक इसीलिए खोजते फिरते हैं॥ ३॥

उस सात एवं अवर्ग लोकों की महिमा भी इस सत्संगति ने नहीं तुलती–पल भर में मुक्ति की सह. अका इस सत्संगति का सभी बखान (गुणगान) करते रहते हैं॥ ४॥

नित्य प्रति सत्संगति का साथ करते-करते यह जन्म बीत गया–वह सत्संगति कौन-सी है, जिसके करने से मुक्ति हाथ में आ जाती है॥ ५॥

तुलसी साहब कहते वह सत्संगति भिन्न है–जरा-सा देख लो–सन्तों की सुरति तो सत्लोक में है और मुक्ति वहाँ पनिहारिनी का कार्य करती है॥ ६॥

वे सत्संगति सन्तों की करते हैं–वे जगत में वेष-भूषा आदि में अन्तर नहीं करते। सत्संगति से अभिन्न होकर सन्तों के चरणों में मुक्ति पाते रहते हैं॥ ७॥

मुक्ति मुक्ति ढूँढ़त फिरै, भेष जगत सब झार।
संभासन चित संत कर, संत चरन की लार॥ ८॥
संत मुक्ति नहिं आदरै, और फिरै संत की लार।
संत अगम रस लेत हैं, जहँ पहुँचै न मुक्ति बिचार॥ ९॥
ज्यों जौहरि हीरा गहै, पाहन गहै गँवार।
हरि हीरा संतन लखा, पाहन मुक्ति असार॥ १०॥
ज्यों दधि भीतर घिर्त को, मथि काढ़ै कोइ संत।
छाछ मठा जग को दयो, पावै न घृत मत अंत॥ ११॥
मुक्ति मुक्ति माँगत फिरै, जगत भिखारी भेष।
जिन माखन मथि क़ाढ़िया, मठा रंक को देत॥ १२॥
संत मुक्ति मानैं नहीं, माँगैं जगत अजान।
संत दरस मुक्ती तरै, फिरै संत की लार॥ १३॥
गहै सतसंगति संत कर, मुक्ति लखावैं हाल।
नजर दृष्टि जीवन लखै, छूटै भौ भ्रम जाल॥ १४॥
बेद मता भौ जाल है, सास्तर सिम्रित पुरान।
ये अंध फंद है काल कौ, संत चरन चित आन॥ १५॥

अर्थ–सारे संसार में अनेक वेष धारण किए हुए मुक्ति की खोज करते रहते हैं। यदि मुक्ति लेनी है तो संत के चित्र से सम्भाषण करें और उन्हीं संतों के चरणों में संसक्ति करों॥ ८॥

सन्त जन मुक्ति का आदर नहीं करते और बराबर सन्तों की संसक्ति में फिरते रहते हैं। सन्त जन उस आध्यात्मिक आनन्द का अगम्य रस लेते रहते हैं, वहाँ तक मुक्ति का कोई विचार नहीं पहुँच पाता॥ ९॥

जिस प्रकार जौहरी हीरा ग्रहण करता है, और मूर्खगण हीरा ग्रहण करते हैं। श्री हरि का हीरा सन्त जन देखते हैं और पत्थर की मूर्ति से मुक्ति की बात निराधार हैं॥ १०॥

छाछ और मट्ठा तो संसार को दे दिया है और उसमें घृत मत का अन्त नहीं मिलता क्योंकि कोई संतों ने दही के भीतर से ही मुक्ति रूपी घृत को मथकर मुक्ति रूपी घृत निकाल लिया है, वे भिखारी को मट्ठा दे देते हैं॥ १२॥

संत जन मुक्ति नहीं माँगते-उसे कोई असानी ही भोगते हैं। सन्तों का दर्शन करके मुक्ति तर जाती है और उनके साथ वह घूमती रहती है॥ १३॥

सन्तों की सत्संगति ग्रहण करो जो सीधे-सीधे मुक्ति दिखलाते हैं। सार जीवन को वे एक दृष्टि मात्र से देख लेते हैं और इस भवसागर के भ्रम जाल से छूट जाते हैं॥ १५॥

यह संसार का भवजाल वेदमत के कारण है—और शास्त्र, स्मृतियाँ एवं पुराण (भी इसी से सम्बद्ध हैं)। यह सब काल देवता का अंधा फंदा है—इसलिए अब चरणों में चित्त को लगा दो॥ १५॥

॥ सोरठा॥

सतसँग जाने संत, आदि अंत स्त्रुति से लखै।
महल सातवाँ पंथ, वोहि मारग सतसँग कह्यौ॥ १॥
महल सात स्त्रुति राह, चढ़ि अकास सतसँग लखै।
सत मत पंथ निहार, सो अगार अद्‌बुद चखै॥ २॥

अर्थ—संत ही सत्संगति जानता है और वह श्रुति में ही आदि अन्त देखता है, सातवाँ महल जिस मार्ग में है, उसी का वर्णन सत्संगति करती है॥ १॥

श्रुति के मार्ग पर सात महल हैं, और संत जन निष्काम भाव से सत्संगति के द्वारा वहाँ चढ़ जाते हैं। संतमत के पंथ को देखो। वह अद्‌भुत मार्ग की ओर निरन्तर चलता रहता है॥ २॥

॥ दोहा॥

तुलसी सतसँग जग नहीं, नहिं ब्रत नेम अचार।
नहिं पुरान नहिं बेद में, संत चरन की लार॥ १॥
जग अँधरा पंडित मिले, अँधरा भेष भुलान।
ये तीनों अँधरा मिले, कौन बतावै राह॥ २॥
पंडित लोभी भेष सब, ठग ठग जगत लबार।
पाप पुन्य बतलाइ कै, मुए मिलन गोहरान॥ ३॥
मुए मिलन आवै नहीं, चिट्ठी पत्री नाहिं।
बिन बिधि देखी जो कहै, परै नर्क के माहिं॥ ४॥
कहै देखी निज आपनी, जीवत मिलन बिचार।
ये गति मति सत संत को, निरखि परै स्त्रुत सार॥ ५॥
सतसंगति सत द्वार में, जानत संत सुजान।
मुकर मनौ दुरबीन में, निरखि चढ़े असमान॥ ६॥
मुकर सत्त द्वारे बिना, सतसंग करौ हजार।
बेद हाल भ्रम जाल से, कधी न उतरौ पार॥ ७॥
और सतसंगति झूठ सब, पचि पचि मरे लबार।
संत मुकर स्त्रुति राह बिन, भरमत फिरै गंवार॥ ८॥

अर्थ—इस संसार का अस्तित्व सत्संगति में नहीं है और वह व्रत, नियम तथा सदाचार में है, वह न वेदों में है और न पुराणों में —वह तो संतों के चरणों की सत्संगति है॥ १॥

इस संसार में अंधे विद्वान मिलते हैं, और वे अपने अंधे वेष में भुलाये रखते हैं–ये तीनों (गुरु, शिष्य एवं शास्त्र) अंधे हैं और अब सही मार्ग कौन हो सकता है ॥ २ ॥

सारे पंडितों का वेष लोभी का है, और ये लबारी द्वारा संसार को ठगते-रहते हैं–पाप पुण्य की ये झूँठी बाते करके मुए व्यक्ति से मिलने की बातें कहते रहते हैं ॥ ३ ॥

मृत होने के बाद कोई आता नहीं हैं, और उसकी कोई चिट्ठी पत्री भी नहीं आती–बिना देखे जो मुक्ति का मार्ग बतलाता है वह नर्क के मार्ग पर पड़ता है ॥ ४ ॥

मैं अपनी देखी बात कह रहा हूँ कि जीवित रहते ही परमात्मा का मिलन हो जाए। यह ज्ञान और विचार सन्त जन का है और श्रुति के सार तत्त्व के रूप में दिखाई पड़ता है ॥ ५ ॥

संतों के द्वारा पर सत्संगति है यह बात चतुर संत जन जानते हैं। मन रूपी दर्पण में दूरबीन की सहायता से मूल तत्त्व को देखते हुए आसमान तक चढ़ जाते हैं ॥ ६ ॥

सत्य रूपी दर्पण के सामने न होने पर हजारों बार सत्संगति करो, वेद आदि की भ्रममयी वार्ता से कभी पार नहीं उतर सकते। ७ ॥

सत्संगति के अतिरिक्त और सब बातें झूँठी हैं तथा लबार साधु जन उसमें रह-रह कर मते जाते हैं श्रुति के सार स्वरूप संतों के निर्मल दर्पण के बिना-मूर्ख जन भरमते रहते हैं।। ८।

॥ चौपाई ॥

सतसंग भेद और है भाई। सतसंग बिधी संत से पाई ॥
सतसंग बिधी जगत में नाहीं। वो सतसंगति संतन माहीं ॥
बेद पुरान न जानै बाटा। पंथी भेष न पावै घाटा ॥
पंडित बुद्धिहीन नहिं जानै। भूला जगत मूल पहिचानै ॥
वो सतसंग सतगुरु से पावै। मूल तोड़ सत द्वार लखावै ॥
जो कोई द्वार कृपा से पावै। ता को सतसंग सन्त बतावै ॥
वो सतसंग जीव निज पावै। सत सत ता को नाम कहावै ॥
वो सतसंग मिलै पल माहीं। पल में मिलै जीव को राही ॥

अर्थ–हे भाई! सत्संग का भेद कुछ और है। सत्संग की विधि संतजनों से पाई जा सकती है। सत्संगति की विधि भी संसार में नहीं है और वह सत्संगति संतों में ही है। वेद पुराण सत्संगति के मार्ग को नहीं जानते–और भेष बनाकर सत्संगति को खोजने रहे हैं। उसका घाट नहीं पाते। ब्राह्मण तो बुद्धिहीन है, वह कुछ भी नहीं प्राप्त करता। वह जगत का मूल तत्त्व भूल गया है। उसे व्यर्थ ही पहचानना चाहता है। वे जो सत्संगति प्राप्त करते हैं, गुरुओं से ही और इस मूलको तोड़कर ज्ञान के सत् द्वार को दिखाते हैं जो भी व्यक्ति उनकी कृपा से उस द्वार को प्राप्त कर लेता है–उस सत्संग को सन्त ही बता पाता है। उस सत्संग को जीव अपनी निजता के रूप में पाता है–और उसका नाम सन्तों का सत्य कहा जाता है। वह सत्संग पल मात्र में मिल जाता है और उसी क्षण पलभर मान में जीव को उसका साथी (राही) मिल जाता है ॥

या की साखि ग्रंथ गोहरावै। सुरति संग सतसंगति पावै ॥
भौजल नौका सतसंग भाई। सूरति चढ़ भौ पारे जाई ॥
मन मल्लाह नाव नहिं बूड़ै। सूरति बल्ली मन बल तोड़ै ॥
मन को पकरि नाव पर डारै। सूरति बल्ली पार उतारै ॥

उतरै पार परम घर चीन्हा। पहुँचै जाइ अगम लखि लीन्हा॥
सतगुरु पद बरसै उर नैना। लख लख परै संत की सैना॥
सतसंग या कौ नाम कहाई। पल में चढ़ै अगम घर जाई॥
तुलसी जे जे संत कहाई। अगमै पंथ राह जिन पाई॥
ऐसी अगम रति गति राही। जगत अंध जड़ राह न पाई॥
माया मद मन मस्त सरीरा। खान पान सुख तरुनी तीरा॥

अर्थ–इसकी साक्षी ग्रंथ बुलाकर बताते हैं और सुरति समाधि के साथ ये सत्संगति प्राप्त करते हैं। इस भौंसागर के लिए सत्संगति प्राप्त की हुई नौका है और सुरति पर चढ़कर वह भवसागर के पार जाता है। अपने मन को पकड़कर नौका पर डालो और सुरति रूपी बल्ली (नौका) उस पार उतार देता है। मन ही मल्लाह है, यदि वह दृढ़ है तो यह नौका जल में डूबेगी नहीं और सुरति रूपी बल्ली मन के अहंकार को तोड़ती है। वह मन को पकड़कर नाव पर चढ़ा देती है और उस पार उतर जाने पर उस परम पद को पहचान लेती है और वहाँ पहुंच कर वह उस अगम तत्त्व को बी साथ ले लेती है। सद्गुरु के चरणों पर हृदय और नेत्र दोनों की शहरी संसक्ति है और वे दोनों जल वर्षा करने लगते हैं और अगम्य तत्त्व की सारी सेना यहाँ दिखाई पड़ती है। तुलसी साहब कहते हैं कि जो जो संत कहलाते हैं उन्होंने इसे अगम पंथ को मार्ग प्राप्त कर लिया है। इस पंथ के राहियों को ऐसी ही अगम्य रीति है और दूसरे वे संसार में जड़ तथा अंधों की भाँति हैं जो यह मार्ग नहीं प्राप्त कर सके हैं। माया के मद से शरीर मस्त है और उसका सम्पर्क श्वान, पान, सुख सभी उनकी पत्नियों के साथ है।

भाई बंद कुटुम बिधि नाना। सुख सम्पति सुपने बिधि माना॥
तेल फुलेल चमक चटकाई। टेढ़ी पाग छोर उरमाई॥
मन में मस्त कछु नहिं सूझै। काल कराल नेक नहिं बूझै॥
ऐसा गाफिल फिरै सयाना। छूटै तन पल माहि पयाना॥
ये तन पानी ओरा सुपना। तन धुलि जाइ छूटि नहिं अपना॥
तन सराइ दिन दोइ बसेरा। तन छूटा पुनि बाहर डेरा॥
ये सराइ दिन चारि मुकामा। रहना नहिं मंजल को जाना॥
सुत प्रिये तन धन सुपन सनेही। तन छूटे सुपने की देंही॥
मिथ्या तन से प्रीति लगावै। जीव भूलि धोखे में आवै॥

अर्थ–नाना प्रकार के कुटुम्बी, भाई तथा बन्धु हैं और स्वाक्ष की भाँति उनके पास सुख सम्पत्ति है। तेल फुलेल की चमक में, उन्होंने अपने को चमका दिया है–उनके पागें टेढ़ी हैं और आगे की ओर झुकी हैं। वे मन-ही-मन मस्त हैं, उन्हें कुछ सुनाई नहीं पड़ता और वे भयंकर काल को कुछ समझते ही नहीं। ऐसा गाफ़िल होकर यह चतुर व्यक्ति बनकर घूमता रहता है। और शरीर छूटते ही वह क्षण मात्र में मृत्यु प्राप्त कर यहाँ से प्रस्थान कर लेता। यह शरीर पानी के ओले की भाँति स्वप्न जैसा है। ओले की भाँति शरीर छूट जाता है क्योंकि वह अपना नहीं है। यह शरीर सराय की भाँति दो दिनों का बसेरा है, इस शरीर के छूटने के बाद इस स्थान बाहर बना दिया जाता है। इस सराय रूपी शरीर का मुकाम चार दिनों के लिए है:उसका मुख्य लक्ष्य मंजिल की ओर जाना है, न कि रहना। पुत्र, पत्नी, तन, धन से सभी स्वप्न जैसे क्षणिक स्नेही हैं–और स्वप्न का आश्रय लेते-लेते ही यह देह छूट जाती है। मनुष्य इस मिथ्या शरीर से प्रीति लगाए हुए है–और उसके जीव स्वयं को भूलकर धोखे में जाकर समाप्त हो उठता है।

त्रेता रामचन्द्र भये राजा। भूले वोहू देह सुख काजा॥
तिरिया काज कीन्ह संग्रामा। बन बन फिरे लखन अरु रामा॥
कुल आतम रावन को मारा। आतम हति लीन्हा सिर भारा॥
आतम पाप अनीति कीन्ही। बालिहि मारि काल गति लीन्ही॥
ये अधर्म कीन्हा अन्याई। आतम मारि दया नहिं आई॥
दयाहीन जोइ दुष्ट कहावैं। आतम हतै दया नहिं आवै॥
जग में कोइ जीव मारै भाई। ता को सब जग दोष लगाई॥
तुलसी अनीति कीन्ह अधमाई। ता को जग भगवान बताई॥
ता को करता कहै भगवाना। रावन नारि चीन्ह नहिं जाना॥
करता राम भया मतिहीना। कपट मिरग उनहू नहिं चीन्हा॥
तिरिया काज कीन्ह सब कामा। लीन्हा भोग कीन्ह सोइ रामा॥
कर्म भाव भौ में भरमाये। कीन्हा कर्म भोग सोइ पाये॥
जिन जिन की पुनि नास कराई। तिन तिन हाथ नास पुनि पाई॥

अर्थ–त्रेतायुग में राजा रामचन्द्र हुए और वे भी देह-सुख के काज में भूल गए। उन्होंने पत्नी के लिए संग्राम किया और राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ बन-बन में टहले। कुल सहित उन्होंने रावण को वध किया। उन्होंने उसके सिरों को काटकर आत्महत्या की। आत्म हत्या जैसा पाप उन्होंने बालि को मार कर किया और बालि का वध करके उसे काल की गति को अपने हाथ में ले लिया। इन अन्यायी ने अधर्म किया और आत्माओं का वध करके उन्हें दया भी नहीं आई। वही दयाहीन दुष्ट व्यक्ति कहलाते हैं–जो आत्माओं का वध करते है और उन्हें दया भी नहीं आती। हे भाई। यदि संसार में कोई जीव हत्या करता है, तो सभी संसार उसे दोषी कहते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि जिसने अनीतिपूर्वक अधमता की है, उसी को संसार भगवान बताता है। उसी को सभी कर्त्ता रूपी भगवान कहते हैं–जिसकी पत्नी को रावण न पहचान सका और न जान सका। आश्चर्य है, यही कर्त्ता राम भगवान बना और कपटी हिरण को पहचान नहीं सकका। अपनी पत्नी के लिए उन्होंने सारा कार्य किया और उन्हीं राम ने पत्नी का भोग भी किया। वे कर्मभावना से संसार में भ्रमित रहे और उन्होंने जो-जो कर्म किये, उन्हीं का फल उन्होंने प्राप्त किया। जिन-जिन लोगों का उन्होंने नाश कराया था, उन्हीं उन्हीं के हाथों से उन्होंने भी अपना विनाश प्राप्त किया।

इस भवसागर में व्यक्ति अपना बैर और अपना विनाश स्वयं भोगता है। तुलसी ने इसे सत्य कथन के रूप में कहा है. बिना अहंकार के कोई वध नहीं करता और अहंकार ही शस्त्र बँधवा देता है। अहंकार ही आत्माओं का विनाश करता है और पुनः अहंकार भवसागर में निवास करा देता है। राम ने जो कुछ भी किया वह अहंकार से वशीभूत होकर और उसी में कुल सहित रावण की आत्माओं का वध कर डाला।

नास बैर भोगै पुनि खाना। बैर दिये पुनि गर्भ समाना॥
देंह भाव दुख भरमै खाना। तुलसी भाखी सत्त प्रमाना॥
बिन हंकार हतै नहिं भाई। अहंकार सस्तर बँधवाई॥
अहंकार आतम किया नासा। पुनि अहंकार खानि में बासा॥

जो कछु किया राम हंकारा। रावन कुल आतम सब मारा॥
जस जस किया राम कृत काला। बाँधै जम डारै भौ जाला॥
जग अंधा तेहि साखि बतावै। वो पुनि कर्म आपने पावै॥
राम कर्म बस भरमै खाना। ता से मुक्ति कौन बिधि जाना॥
तुलसी राम मुक्ति नहिं पाई। अंधा जग तेहि जपै बनाई॥
येहि बिधि कृष्न दसौ औतारा। बाँधे काल कर्म की लारा॥

अर्थ–इस वैर भाव के कारण अपना विनाश वह जजन्म-जन्मांतर तक भवसागर में रहकर भोगता है। वैर भाव करने का परिणाम गर्भ में जाने के समान है। देह भाव करने का परिणाम गर्भ में जाने के समान है। देहभाव के रूप में व्यक्ति भवसागर में निरन्तर भ्रमण करता रहता है–तुलसी साहब इसका सत्य बता रहे हैं। हे भाई! बिना अहंकार के विनाश के मुक्ति सम्भव नहीं है–अहंकार ही शस्त्र बँधता लेता है। अहंकार आत्म चेतना का विनाश कर देता है और उसके पश्चात् अहंकार नरक में वास करा देता हैं। राम ने जो कुछ किया, वह अहंकार के और उन्होंने इसी अहंकार से अनेक आम रूप प्राणियों का संहार किया और फिर वे अहंकार के कारण भवसागर में प्रविष्ट हुए। राम ने जो कुछ किया, वह अहंकारवश ही किया और रावण कुळ के सम्पूर्ण प्राणियों का विनाश कर डाला। राम ने जैसा-जैसा किया, उनके साथ काल ने भी वैसा ही दुहराया और यम ने उन्हें बाँधकर भवसागर में डाल दिया। अंधा संसार राम को साक्ष्य के रूप में बतलाता है–और बाद में वही मनुष्य उसे अपने कर्मों में प्राप्त करता है। स्वयं राम भी अपने कर्म के फलों का भोग करते हुए भवसागर में भरमते रहते हैं इसलिए उनकी मुक्ति किस प्रकार होगी, कौन बताए। तुलसी साहब कहते हैं कि राम को मुक्ति नहीं मिली थी फिर भी, यह अंधा संसार उन्हें भगवान बनाकर जपता रहता है। इसी प्रकार, उनके कृष्णा-सहित दसों अवतार हुए जिनमें कर्म काल के साथ उन्हें निरन्तर बाँधे रहा।

ये जग अंध मंद मति माई। कीन्हें कर्म कृष्न भगताई॥
जगन्नाथ सब जगत पुकारा। हाथ और पाँव कटे केहि कारा॥
गोपी कर्म कीन्ह सँग माई। ता से कटे हाथ और पाँई॥
ये देखौ सादृष्ट बिचारा। वो हू परे कर्म की धारा॥
अस अज्ञान बूझ नहिं लावै। लीन्हा सरन सोई दुख पावै॥
सरनि लीन्ह सोई बेहाला। उनको गहि बाँधेउ जमकाला॥
अपने मन में करौ बिचारा। बड़े बड़े बूड़े भौ धारा॥
बड़े बड़े हाथी बहि जाई। कहौ मसा केहि लेखे माई॥
राम कृष्न जग हाथी जाना। सोऊ बहे कर्म लपटाना॥
तुम पसु जीव मसा जम जाला। तुम तुम्हार कहौं कौन हवाला॥
ये जग झूठ छूट तन नासा। तिरिया पुत्र भर्म भौ फाँसा॥
जन्मै बार बार भव माई। तिरिया पुत्र अनेकन ठाँई॥
तन छूटा झूठा भया नाता। जहँ से मुए टूट तेहि साथा॥
अनेक दाव तन छूटि सिराना। सुख सम्पत्ति सुपने सम जाना॥

अर्थ–ये मन्द बुद्धि वाले संसार के व्यक्ति अंधे हैं और वह कर्म में फँसे कृष्ण की भक्त में लीन रहते हैं। सारा संसार जगन्नाथ (संसार का स्वामी) कहकर उन्हें पुकारता है और उनका नामस्मरण करने से मनुष्य के हाथ पाँव का बन्धन कैसे कटेगा। गोपियों के साथ उन्होंने नाना प्रकार के कर्म किये–इससे उनके हाथ और पाँव दोनों कट गए। इस प्रकार इस साक्ष्य के साथ उनके विचारों को देखो– वे सभी अवतार कर्म की धारा में फँस गए। ऐसे अज्ञान को वे समझ कर पालन नहीं करते और जो इनकी शरण में जाते हैं, वही दुःख प्राप्त करते रहते हैं। सभी बेहाल होकर मृत्यु प्राप्त करते हैं और उनकी गति उनके कर्म तथा काल द्वारा बाँधे जाते हैं। हे मनुष्यों! तुम अपने मन में विचार करो, इस भवसागर में बड़े-बड़े डूब गए। इस भवसागर में बड़े-बड़े विशाल हाथी बह जाते हैं–फिर, मच्छरों की बात कौन कहे? राम और कृष्ण को इस संसार में हाथी ही समझें–वे भी इस कर्म में लिपटकर इस भवसागर में बह गए। तुम जैसे जीव तो यम जाल में फँसे मच्छरों की भाँति हो–तुम सबको मैं क्या कहूँ। यह संसार झूँठा है, सभी का शरीर छूट कर विनष्ट हो उठेगा–नारी एवं पुत्र सभी भ्रम एवं नाश के कारण हैं। इस भवसागर में वे सभी बार-बार जन्म लेते हैं और नारी एवं पुत्र अनेकानेक स्थानों पर मिलते हैं। इस शरीर के छूटते ही सम्पूर्ण रिश्ते झूँठें हो उठते हैं। और जहाँ ये उनकी मृत्यु होती है, सारे सम्बन्ध खत्म हो उठते हैं।

जिन ने तन का घाट सँवारा। ताहि न बूझि अबूझ गँवारा॥
स्वाद करै इंद्री सुख नाना। सुपने का सुख देखि भुलाना॥
जिमि सुख बाम गरल सोई माना। जग का सुख है ताहि समाना॥
जग रस भोग विषय रस माया। भोगै भोग छूट तन काया॥
नर तन भौ बारिद कर बेरा। सत सत संगति कीन्ह निबेरा॥
नर तन दुरलभ सब गोहरावै। बार बार यह तन नहिं पावै॥
या में भूला अंध अचेता। कीन्हा तन ता से नहिं हेता॥
नखसिख साज कीन्ह सब काया। ताका मन में सोच न आया॥
ये घर बार छूटि है धामा। तन बिनसै वाही से कामा॥
बूझे लेखा लेत हिसाबा। मुसकिल परै न होत जवाबा॥
वा साहिब की राह बिसारी। छूटै सुत बित गृह नर नारी॥

अर्थः मृत्यु के बाद अनेक दावे विनष्ट हो जाते हैं अतः इस संसार की सुख सम्पत्ति स्वप्न की भाँति समझो। जिन व्यक्तियों को स्मशान घाट पर दाह संस्कार के लिए घाट पर सँवारा गया–हे मूर्ख गँवारा गया–हे मूर्ख गँवार ना समझ व्यक्तियो इन्हें क्या सूझेगा। नाना प्रकार का स्वाद लेकर इन्द्रियोंका अनेक प्रकार क सुख भोग करता है और स्वप्न जैसे सुख में वह निरन्तर भूला रहता है। जो सुख के विपरीत है, वह उसे विष की भाँति मानता है और इस संसार का इस उसके लिए उसी (विष के सदृश) है। जैसे इस संसार का भोग विषय रस के भोग के सदृश है और इस भोग के भोग द्वारा यह संसार में यह शरीर छूट जाता है। यह मनुष्य का शरीर भवसागर के लिए नौका थी भांति हैं और सन्तों की सत्संगति से इसका निराकरण हो उठता है। सभी यह कहते हैं कि मनुष्य का शरीर नितान्त दुर्लभ है और बार-बार यह यह शरीर नहीं प्राप्त होता। इसी में सभी अंधे और अचेत होकर भूले बैठे हैं और इसीलिए उन्होंने शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं किया है। इस शरीर को नख से शिख तक सज्जित कर दिया गया है किन्तु उस परम तत्व की चिन्ता मन में नहीं आई। यह धाम, घट, द्वार सभी छूट जाएँगे और शरीर के लिए ही यह शरीर विनष्ट हो उठेगा। हिसाब-किताब के लिए सभी लेखा जानना चाहते हैं– किन्तु यह सब हिसाब मुश्किल पड़ जाता है, क्योंकि कोई इससे उत्तर नहीं मिलता। उस स्वामी का राह

तो सभी भूल जाते हैं:फलतः इस संसार में बनाए गए पुत्र, धन, गृह, नर तथा नारी सभी कुछ यहीं छूट जाते हैं।

दस दरवाजे पवन समाई। छिन छिन स्वाँस जाइ रे भाई॥
कीन्हा ठाट अनेकन साजा। छिन छिन बजै कूच कर बाजा॥
ज्यों सेमर सूवा साखि भुलाना। टोंट देत पुनि धुवा उड़ाना॥
अस जगबंधन लेखा जानौ। टोंट मारि सुवना पछतानौ॥
सेमर सेवत जनम गँवावा। जनम बीति रस एक न पावा॥
ज्यों बिल्ली सूवा सँग धाई। येहि बिधि काल रह्यो मँड़राई॥
तू अचेत निद्रा नित सोवा। चोटी काल धरी जब रोंवा॥
गाढ़े बंधन भया समाना। बाँधा काल कष्ट जब जाना॥
जम राजा बिधि बढ़ा कसाई। देत मार पुनि कौन छुड़ाई॥
ता ते बूझौ अंध अचेता। ये तन जात भजन बिन बीता॥
आजकाज है काल अकाजा। छिन छिन लेखा ले जमराजा॥
तुलसी जिन सतसंगत कीन्हा। सत मत राह संत को चीन्हा॥

अर्थ–शरीर के दसों इन्द्रिय द्वारों में वायु समाविष्ट हो उठती है और यह श्वास क्षण-क्षण विनष्ट हो उठता है। मनुष्य जीवित रहने पर नाना प्रकार के ठाट-बाट करता है किन्तु उसके लिए महाप्रस्थान (मृत्यु) के बाजे क्षण-क्षण बजते रहते हैं। जैसे तोता सेमल वृक्ष की डालों को देखकर उसी में भूला रहता है किन्तु सेमल के फल पर चंचु प्रहार करते ही उसमें धुँवा उठने लगता है। इसी प्रकार, संसार के बन्धन का सिहाब समझो और उस पर टोंट मारकर तोता अब पछता रहा है। सेमल की सेवा करते हुए सारा जन्म बीत गया किन्तु एक प्रकार का भी रस नहीं मिला। जैसे चूहे के पीछे बिल्ली निरन्तर भागती रहती है, इसी प्रकार, काल भी मनुष्य के चारों ओर मडराता रहता है। तू अचेत निद्रा में निरन्तर सो रहा है काल जब तुम्हारी चोटी पकड़ता है, तभी तू रोना शुरू करता है। माया तथा कर्म के प्रगाढ़ बन्धन में तू समाविष्ट हो उठता है–जब काल देवता अपने पाश में बाँधते हैं, तब कष्ट समझ में आता है। जब कसाई की भाँति वध के निमित्त यमराज आगे बढ़ते हैं तो वह मार ही डालता है, उससे तुझे कौन छुड़ा सकता है। हे अन्धे! तथा नासमझ मनुष्यों इसे समझों कि यह शरीर ईश्वर के भजन के बिना नष्ट होता चला जा रहा है। आज कार्य है, कल कोई काम नहीं है, इसी प्रकार के क्षण-क्षण का हिसाब यमराज लेते रहते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि जिसने सत्संगति की है, संतमत तथा सत्संगति को पहचाना है।

ता को जम पूछै नहि काला। कीन्ही किरपा संत दयाला॥
सतगुरु मारग तुरत लखावा। सतगुरु कृपा अगम घर पावा॥
सतगुरु सोई सत्त दरसावै। भूला आदि संत घर पावै॥
जो सतसंग सतगुरु ने दीन्हा। संत कृपा से मारग चीन्हा॥
सतगुरु पदम माहि पद माईं। सतसँग सुरति गगन पर धाई॥
सतगुरु सत्त सत्त सतनामा। सूरति मिली या निज कामा॥
के सतगुरु सत्त सत्त बतावा। सतगुरु पदम ग्रंथ में गावा॥

तीनि लोक में भिन्न निवासा। चौथा पद कहैं तुलसीदासा॥
चौथे पद में सतगुरु बासा। तीनि लोक में काल निवासा॥
पंथी गुरू भेद नहिं जानै। कान फँकि फिर भौ में आनै।।
जगत गुरू सतगुरु नहिं चीन्हा। तन छूटै पुनि काल अधीना॥
वे सतगुरु गति गाइ सुनाऊँ। पदम पार पर अगम लखाऊँ॥
सतगुरु सुरति सैल दरसावै। सो सतगुरु सत दया लखावै॥
सूरति संधि सिंध की पावै। ज्यों सलिता जल धार समावै॥
सूरति सार सब्द भई चेली। येहि विधि आदि अगम खुलि खेली॥

अर्थ–उसे काल देवता का दूत यमराज भी नहीं पूछ सकता है–जिसके ऊपर कृपालु तथा दयालु संत कृपा कर देते हैं। सत्गुरु मुक्ति मार्ग उसे तुरन्त दिखा देते है, और उन्हीं सतगुरु की कृपा से वह अगम तत्त्व को प्राप्त कर लेता है। सतगुरु व्यक्ति को वही सत्य दिखलाता है, जिससे कि भूला व्यक्ति अन्त में अपना घर प्राप्त कर ले। सत्गुरु ने जो सत्संगति की उसी के द्वारा संत की कृपा से व्यक्ति उस घर का मार्ग पहचान लेता है। सत्गुरु के पद पद्म में स्नान करके सत्संगति से सुरति के द्वारा उस आकाश के घर में साधक जाता है। सत्गुरु सत्य हैं, सत्य नाम सत्य है, सुरति मिल गई अपना कार्य सिद्ध हो उठा। सत्गुरु द्वारा दर्शित सत्य को जिसने बताया है–सत्गुरु के चरण-कमलों का कथन ग्रंथों में किया गया है। सत्गुरु तीनों लोकों में भिन्न-2 रूपों में निवास करते हैं–अब तुलसीदास चौथे पद का वर्णन कर रहे हैं।

इस चौथे पद में सत्गुरु का निवास है और अन्य तीनों लोक में काल देवता का निवास है (अतः सद्गुरु का निवास सबसे भिन्न काल रहित है)। सामान्य धर्मपंथापलम्बी इस रहस्य को नहीं समझते और शिष्यों के कान में मंत्र देकर उन्हें पुनः भवसागर में ले जाते हैं। लोक के गुरुजन सत्गुरु को नहीं पहचानते और उपदेश से मनुष्य का शरीर जब छूटता है तो वह कल देवता के अधीन हो उठते हैं।

उन सत्गुरु के स्वरूप का मैं गाकर वर्णन कर रहा हूँ और उस कमल के पार स्थिति अगम्य तत्त्व का दर्शन करा देता हूँ। सत्गुरु ही सुरति के शैल का वर्णन करता है और वही सत्गुरु संतों के ऊपर अपनी दया दिखाता है। उनकी कृपा से संत सिन्धु की सुरति संधि प्राप्त करता है–जैसे नदी की धारा में समाविष्ट हो उठती है, ठीक उसी प्रकार। सुरति सार तत्त्व है, 'सब्द' उसकी शिष्या है और इस वह अगम्य आदि तत्त्व से खुलकर निर्बाध क्रीड़ा करती है।

॥ धमार १ ॥

अहो सत सुरति सहेली, खुलि खेली हो॥ टेक॥
गरजि घुमरि घन घोर सखि, घट पट चटक चढ़ाई।
पल पल पलक पार दल अन्दर, चितवत नैना पट पेली॥ १॥
घर घर से सब गवन सुहागिन, भेंट भवन सब आईं।
जिन मोहिं गेल सैल समुँदर की, कीन्ही दृढ़ भान सभेली॥ २॥
गगन गिरा गुरु गाँठि छड़ाई, भिनि भिनि बाट बताई।
सूरति सब्द समझ सुन माहीं, भइ गुरु मारग चेली॥ ३॥
मैं मति मंद फंद फँसि खाना, जाना न भेद भुलाई।
बिष रस बिषम बिषम मन माहीं, धोई तुलसी बुधि मैली॥ ४॥

अर्थ–अहा! सुरति की सहेली ने निर्बाध रूप से खुलकर क्रीड़ा की है। गरज करके, घुमड़कर के इन भयंकर मेघों ने शरीर में स्थित उस परम ज्ञान तत्त्व पर चढ़ाई कर दी है। क्षण-क्षण पलकों जैसी धारा नेत्रपटों को उपेक्षित करके हठात् उस परम तत्त्व को देख रही है। घर की सारी सुहागिनें जो चली गई थीं, सभी उससे भेंट करने के लिए भवन के अन्दर आ उठीं। हममें से जो सूर्य रूपी समुद्र के मार्ग में चलीं उन्होंने अपने सूर्य रूपी समुद्र के मार्ग में चलीं–उन्होंने अपने सूर्य को सम्भाल कर दृढ़ कर लिया। उस शून्याकाश के गुरु ने उनकी संसक्ति की गाँठ छुड़ा ली और सबको भिन्न-भिन्न मार्ग दिखा दिया। शून्य के अन्दर सुरति के संदर्भ में सबद को समझकर सभी गुरु के मार्ग की अनुगामिनी बन गईं। मैं नासमझ इस भवसागर की खानि में फँसकर उनका रहस्य समझ नहीं पाया और उसे भुला दिया। विषय विष रस के मध्य इस विषय मन की मैल को तुलसी ने धो डाली और वह अब वह निर्मल हो उठी है।

॥ धमार २ ॥

अहो रँग राती रंगीली, रस माती हो॥ टेक॥
सजत सिंगार सार सुख सागर, दुख सुख दूर बहाई।
चढ़िकर महल टहल सतगुरु की, निरखा भिनि भिनि पिय भाँती॥ १॥
पिय पद परसि पलंग पिउ प्यारी, सब बिंधि सेज सँवारि।
रस कस समझ सुरति पिय पद को, मोसे कछु कहत न जाती॥ २॥
रैन चैन रस रीत जीत कर, नित नित सैल सुनाई।
जोइ जोइ सखियाँ समझ घर आई, कीन्हा पिय के सुख साथी॥ ३॥
तुलसी पोढ़ जोढ़ सम सूरति, सोइ सोइ भेद लखाई।
जे वे सुखी दुखी दुनियाँ में, जुग जुग जम मारत लाती॥ ४॥

अर्थ–अहो, मैं रंगीली, रस मत्त हो उठी हूँ। सुख सागर के सार तत्त्व के मध्य शृंगार करके मैं सजी रहती हूँ और भौतिक सुख-सागर के सत्त्वों को बहा देती हूँ। महल में जाकर गुरु की सेवा करती हुई मैं नित्य भिन्न-भिन्न भाँति से प्रियतम को देखती हूँ। प्रियतम को अति प्रिय मैं उनकी पलंग पर स्थित उनके प्रिय पद का स्पर्श करके, शैया पर भली-भाँति सिमट करके, प्रिय पद के रस स्वरूप को समझ कर सुरति में निमग्न मेरी दशा मुझसे कही नहीं जाती। रात्रि का आनन्द, रस रीति आदि को जीत करके नित्य-नित्य उस तत्त्व को उस सैल पर सुनती हूँ। हमारी जो-जो सखियाँ इस बात को समझकर इस घर में आ गई हैं–उन्होंने अपने को प्रिय के सुख-दुःख का साथी बना लिया। तुलसी साहब कहते हैं कि उस सुरति में प्रवेश करके तथा जुड़कर उन्हें वह सब सारा भेद दिखाई पड़ा किन्तु दूसरी ओर, इस पृथ्वी पर उनके अन्य जो सुखी-दुखी दिखे यमराज उनको युग-युग से पैरों से मार रहा है।

॥ धमार ३ ॥

अहो नभ निरखि निहारी, पिउ प्यारी हो ॥ टेक॥
सेत बरन सम सुरति समानी, कारे कँवल निकार।
पारे पवन भवन स्रुत लागी, भागी भिनि सब्द बिचारी॥ १॥
दल पर नल निज नैन नगर में, चली चढ़ि सुन्न मँझार।
लौ को लगन जाइ जिन साजी, भागी लखि लोक नियारी॥ २॥

नल की नाल चाल चींटी सम, भँवर गुफा सम धाम।
ता के पार पदम पद देखा, लेखा निज जनम सुखारी ॥ ३ ॥
मिलन मिलाप माफ स्नुत घर में, सर सम सब्द सुधार।
सार समझ सुन मारग आई, तुलसी चढ़ि सुरति हमारी ॥ ४ ॥

अर्थ–हे प्रियतम की प्यारी (आत्मा)। तुम इस सुन्दर आकाश को भलीभाँति देखो तो। श्वेतवर्ण जैसी सुरति इसमें समायी हुई है और उसके मध्य में काला कमल है। वायु के उस पर श्रुति भवन है और सब्द में तन्मय होकर मैं आगे गयी। कमल दल में स्थित नल के द्वारा मैं अपने ज्योति नगर में पहुँची और फिर वहाँ से चलकर शून्य के आई। वहाँ पर पूरी ततपरता के साथ अपनी साधना के उस विलक्षण लोक को देखकर यहाँ से भी चल पड़ी। नल की नाल में चींटी की सी चाल चलती हुई भ्रमर गुफा जैसे गृह में जा पहुँची। उस भ्रमर गुफा के उस पार कमल-पदों को देखा और अपने जन्म को अत्यधिक सुखमय माना। उस श्रुति के घर में मिलन तथा मिलाप क्षमा हो उठी (उस पुरुष में परम संसक्ति हो उठी) और अपने घर में बाणों के लक्ष्य भेद के सुधार जैसा सबद सुधार लिया। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं सार तत्त्व को ही सुनकर और समझकर इस मार्ग पर चली थी–और उसके बाद ही लक्ष्य तक हमारी सुरति साधना चढ़ी।

॥ धमार ४ ॥

अहो अज आदि अतूला, पद भूला हो।। टेक ॥
भवन चतुरदस से पद न्यारा, निरगुन जोति न जाइ।
सुन्न न गगन धरनि नहिं तारा, न्यारा कँवल कहूँ फूला ॥ १ ॥
रबि नहिं चंद फटिक उँजियारी, खुली गया अजर किबाटा।
महल महा सुन धुनि धधकारी, या से न्यारी चढ़ि झूला ॥ २ ॥
सब्द न सार लार नहिं सूरति, मूरति मन नहि जाई।
जहँ रहैं संत अंत कछु नाहीं, औघट घाट खिरकी खोला ॥ ३ ॥
अगम अपार पार कहा गाऊ, जाऊँ नित नित धाइ।
कंथ कौ पंथ बे अंत बिचारौ, जिमि फाटक पर गज हूला ॥ ४ ॥
तुलसी तोल बोल नहिं आवै, जावै जोइ देत जनाई।
गूढ़ गुप्त परघट नहिं खोली, गावत सब्दन सँग भूला ॥ ५ ॥

अर्थ–अहो, वह आदि तत्त्व अज है, अतुलनीय है, तुम उस तत्त्व (स्थान) को भूल बैठे? चौदहों भुवनों से भी वह पद विलक्षण है और उसकी निर्गुणमयी ज्योति कभी विनष्ट नहीं हो सकती। न शून्य में, न आकाश में, न पृथ्वी पर और न तारा मण्डल में वह न्यारा कमल खिला है–कहाँ खिला है, स्थान का निर्देश सम्भव नहीं है. उसकी अजर कपाटें जब खुलती हैं तो वैसा उजाला न सूर्य में दिखाई पड़ता है, न चन्द्रमा में और न स्फटिक मणि में, उस महाशून्य के महल में जब ध्वनियों की धधकार उठती है तो कितने विलक्षण लोक उसमें समाहित हो उठते हैं। वहाँ न शब्द है, न संसक्ति का कोई तत्त्व है, न कोई आकृति है किन्तु तत्त्व जो मन में बस जाता है, मन से निकलता नहीं। वहाँ सन्तों का निवास है, उस स्थल कोई अन्त नहीं है और उस अव्यवस्थित धार की खिड़की कोई खोल देता है। खिड़की खुलने के बाद वह स्थल अगम्य तथा अपार दिखने लगता है, उसका वर्णन कैसे करूँ–मन करता है,

नित्य प्रति नित्य वहाँ दौड़कर वहाँ जाया करूँ। इस कथा का अन्त अन्तहीन समझो–जैसे सुरक्षा के फाट को तोड़ने के लिए हाथियों की हूल होती है, तुलसी साहब कहते हैं कि उस परमतत्त्व की कोई तोल बोल (मूल्य-माप) नहीं होता–जो वहाँ जाता है, उसे उसका वह ज्ञान करा देता है सन्तजन उस गूढ़ तत्त्व का रहस्य नहीं खोलते, वे शब्दों के साथ भूलकर उसका गान करते रहते हैं।

॥ धमार 5 ॥

अहो सतसंग अमोला, जिन तोला हो॥ टेक॥
करि करि संगरंग नहिं जाना, कित बदरी कित काला।
हाल के हेत हरष सब भले, या के परिहै झकझोला॥ १॥
कह कह अंत संत सब हारे, बूझै न सब्द सुधार।
पार की खबर सुनत उठि भागे, लागे जिमि माँगत मोला॥ २॥
नहिं कछु दाम धाम धन माँगै, करि परहेत सुनावै।
लेत न देत हेत साँई के, परमारथ की गँठ खोला॥ ३॥
सुनत सुनाइ गाइ बहु भाँती, साधी न समझ बिचार।
कस कस जार लार भव छूटै, लूटै जम जानत पोला॥ ४॥
तुलसी समझ कूर कूकर सम, छाड़ै न सूकर चाल।
ता से बेहाल काल नित भारै, पारै पद चीन्ह न चोला॥ ५॥

अर्थ–जिन्होंने मूल्यांकन कर रखा है, उनकी दृष्टि में सतसंगति अमूल्य है। साथ-कर करके उसके स्वरूप को नहीं समझा कि कहाँ बादल हैं, कहाँ कालिमा है। अपने स्वार्थ के सभी अच्छी तरह से हर्षित हैं, इससे उन्हें बड़े-बड़े संकट पड़ेंगे। यह कहते हुए सारे के सारे सन्त घर बैठे हैं–और उन्हें शब्दों में सुधार नही समझ में आया। उस पार का समाचार सुनकर सभी भाग बैठे और उन्हें ऐसा लगता है, जैसे कोई उनका मूल्य मांग रहा हो। कोई भी सन्त उस परम रहस्य को सुनाने के लिए न कोई द्रव्य मागता है, न धन और गृह धाम माँगता है, वह अनासक्ति भाव से उसे सुनाता है। वह उस स्वामी में ज्ञान के बदले में न कुछ लेता है, न देता और वरन् निःस्वार्थ भाव से परमार्थ की गाँठ खोल देता है। यद्यपि श्रोता-साथी के पास न समझ है, न विचार ही–फिर भी, वह सन्त उस परम तत्त्व को अनेक रूपों में सुनाकर बताता है। वह जानता है कि इस भवसागर की संगति कैसे छूट सकती है क्योंकि उसके रहस्य को जानता हुआ यमराज लूटपाट किया करता है। तुलसी साहब कहते हैं कि ये मनुष्य क्रूर कुत्ते तथा शूकर के सदृश हैं–जो अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकते। इसीलिए नित्यप्रति विवश काल नित्य प्रति उनका वध करता रहता है–क्योंकि वह परमार्थ तत्त्व को नहीं जानता, केवल शरीर ही जानता है।

॥ धमार ६ ॥

अहो सतसंग समाना, जिन जाना हो॥ टेक॥
सतगुरु मर्म धर्म गढ़ तोड़ै, मोड़ भये मन दीन।
लीन्हे चरन मरन सतगुरु के, भीने रस रीति सिराना॥ १॥
जिन के इस्क इष्ट संतन कौ, प्रति प्रति दरसन लार।
पार का सार धार दरसावै, दुख छूटत भौ भ्रम खाना॥ २॥
दरस परस मन मंजन पाना, सूरति रुचिर निकार।

देत निहार ताल कर कूँची, ऊगै निरखत घट भाना॥ ३॥
उमगी लहर सहर सूरति की, लखि लखि अंड अकार।
चढ़ि चढ़ि चटक फटिक उँजियारी, तुलसी निज निरखि ठिकाना॥ ४॥

अर्थ–जो जान गया, वह उस सत्गुरु में समाविष्ट हो उठा। सत्गुरु ही धर्म के रहस्य का गढ़ तोड़ता है और संसक्ति से मोड़ने के लिए अपना मन लगा देता है। सत्गुरु के चरणों के प्रति आत्मीयता ग्रहण इस संसार की रस-रीति नष्ट हो उठती है। जिन-जिनमें अपने अभीष्ट सन्तों के प्रति संसक्ति है, और उनके दर्शन की आसक्ति भी प्रतिक्षण है–उनको उस परम तत्त्व की धार दिखाता है और उनका इस भवसागर का संसक्ति भरा दु:ख छूट जाता है। सन्तों का दर्शन, स्पर्श, मन की शुचिता, परम तत्त्व का आस्वादन और निरन्तर सुरति के प्रति आत्मीयता एक क्षण के परमतत्त्व को दिखा देती है जैसे ताले में लगी हुई चाभी-खोल देने पर सब कुछ उदित होकर प्रकाशित हो उठता है। इस पिंड के भीतर नाना प्रकार के रूपों को देखकर सुरति का लहरें उठ पड़ती है और व्यक्ति स्फटिक मणि के उजाले में आकर अपनी विश्राम स्थली देख लेता है।

॥ धमार ७ ॥

अहो मन भर्म भुलाना, बिष खाना हो॥ टेक॥
पाँच पचीस तीस तैंतीसा, तीन की तरंग तुलाई।
जाइ जो जवन भवन चौरासी, बासी बस बास निदाना॥ १॥
ज्ञान न ध्यान जान नहिं मानै, मन मत की दिस जाई।
ता से कर्म ईस सिर ऊपर, बाँधत जम जग फिर ताना॥ २॥
तपत सिला जिव तपन जरावै, तड़प तड़प दुख पाई।
वा बिधि वक्त सख्त कर गाऊँ, जानै जोड़ भोग समाना॥ ३॥
तुलसी आज काज नर देंही, फिरि नहिं नर तन हाथ।
सोवत खात सैन सुख माहीं, बिनसै घट बीति सिराना॥ ४॥

अर्थ–हे यम! विष की खानि में रहकर क्यों भ्रम में भूले हुए हो? पाँच तत्त्वों की पचीस तीस तैंतीस एवं तीन गुणों की तरंगों में भूले हुए हो। चौरासी योनियों में जो जाँ चला जाएगा वहीं का निवासी होकर वह वहाँ निवास करता है। वह न ज्ञान, न ध्यान नहीं मानता और वह मत्र मन की दिशा में ही चलता रहता है। फलस्वरूप उसका कर्म स्वामी बनकर उसके सिर पर यम की डोर फिर से बाँधता रहता है। तपते हुए जीव को वह तपती हुई शिला का स्पर्श कराकर जलाता रहता है और वह जीव तड़प-तड़पकर निरन्तर दु:ख प्राप्त करता रहता है। भोग में लिप्त जीव की पीड़ा का मैं यथार्थ वर्णन करता हूँ और जो भोग में समाया हुआ है, वह इसका तात्पर्य भली भाँति समझता है।

तुलसी साहब कहते हैं कि आज सत्कर्म के लिए मनुष्य की देह धारण किये हुए हो–यह मानव शरीर फिर से तुम्हारे हाथ नहीं आएगा। सोते, खाते, रात्रि में सुख प्राप्त करते हुए यह शरीर विनष्ट हो उठेगा और सारा-का-सारा समय भी बीतकर नष्ट हो जाएगा।

॥ सोरठा ॥

ये मन बिषम बिकार, सार सब्द चीन्है नहीं॥
कर्म भर्म भौ लार, हाथ हरख आवै नहीं॥

अर्थ—यह मन तो विकार ग्रस्तता के कारण विषम हो उठा है और 'सार शबद' पहचानता तक नहीं। कर्म का भ्रम ही भवसागर की संसक्ति है—और इसके कारण परमार्थ तत्त्व उन्मुक्त भावपूर्वक कभी आ नहीं पाता॥

॥ चौपाई ॥

जब सत संगत को मन चावै। तब कहूँ पकरि हाथ में आवै॥
संत समीप चरन चित वारों। तब कछु सूझै पद के पारो॥
सूरति निरति निकर कर बूझै। लख सत नाद सुरति जब जूझै॥
अगम निगम नित निरखि निहारा। भाखा आदि अंतपद सारा॥
अब दृष्टांत कहूँ इक गाई। रहे सेठ सुन पच्छिम माहीं॥
ता का बिधि बरतंत बताऊँ। सब्द साखि बिच भाखि सुनाऊँ॥
जो बिधि भई बिधी बरतंता। सब्दन में गाई सब सन्ता॥

अर्थ—अब मन सत्संगति के लिए चाव (प्रेम) उत्पन्न करे, तभी वह पकड़ा हुआ हाथ में आता है। संत के पास जाकर उनके चरणों में चित्त को लगा दो तभी उस पद के उस पार स्थित तत्त्व के विषय में सुझाई पड़ताई है। सुरति तथा निरति दोनों से अपने को पृथक् करके समझे और उस नाद को समझे जब सुरति उसकी ओर तत्पर हो। तुलसी साहब कहते हैं कि श्रुतिशास्त्र एवं वैदिक दोनों परम्पराओं की भलीभाँति समझकर तथा देखकर मैंने आदि से अन्त तक उसके स्वरूप (पद) का वर्णन किया है। आज मैं एक उदाहरण समझाकर बताता हूँ वह यह कि एक सेठ पश्चिम में रहते थे। मैं इनके वृत्तान्त एवं व्यवहार को सुनाकर बताता हूँ और शब्दों, साखियों द्वारा उनका वर्णन करता हूँ। जिस प्रकार की घटना घटी थी, सारे सन्तों ने उसको उसी रूप में गाया था।

॥ रेखता ॥

अली इक बात सुन आई। कहूँ बरतंत समझाई।
अजब इक बात ताजुब की। सखी सुन कान दे अबकी॥ १॥
समझ लख भेद की बाती। कहत में फटत है छाती।
चले सजि सेठ पच्छिम सों। किया दिल देस दक्खिन को॥ २॥
सँग सामान बतलाई। चढ़न घोड़ी और नाहीं।
सिपाही तीन तुरकानी। करन परदेस दूकानी॥ ३॥
बाट बिच सहर एक आया। लखा रुजगार चित चाया।
सखी सुन सहर का नामा। सहतपुर नग्र नौ ठामा॥ ४॥
पैठ सुन स्याम नित लावै। मठी बिच माल सब आवै।
लोभ मन माल से लागा। समझकर कीन्ह बहु जागा॥ ५॥
खरीदी माल की लीन्हा। बहुत भरती भरत कीन्हा।
लौंग काली मिरच राई। भरत भरि माल लदवाई॥ ६॥
चली रस राह को गाड़ी। रही नौ कोस पर ठाढ़ी।
जहाँ भट भील मवासी। रहत बन बीच के बासी॥ ७॥

अर्थ–हे सखी! एक बात सुनने में आई है, मैं उसका वृत्तान्त समझा कर कहता हूँ। हे सखी! अब कान देकर सु े–यह वृत्तान्त अत्यन्त आश्चर्य से परिपूर्ण है। इस बात में छिपे हुए तथ्य का वर्णन करते हुए छाती फट जाती है। एक सेठ सजकर पश्चिम से चले और अपनी इच्छा दक्षिण देश के लिए की। साथ में सामान था, चढ़ने के लिए केवल घोड़ी थी। साथ में, तीन तुर्की सिपाही थे और उनकी इच्छा परदेश में दूकान करने की थी। रास्ते के बीच एक नगर आया और वहाँ उन्होंने मनपसंद रोजगार देखा। हे सखी! उस शहर का नाम सुनो–उसका नाम महतपुर है और उस नगर में नौ व्यपारिक स्थान थे। उस बाजार को सुनकर श्याम रोज अपना सामान लाते थे और इस मठी के बीच उनका सारा माल आया करता था। उनका लोभी मन माल में लगा था। और उन्होंने अपने व्यापार में अनेक सामानों की भरती कर ली थी। लौंग, काली मिर्च, राई इन सबसे उस बाजार से बहुत माल लदवाया। उनकी आनन्दमयी गाड़ी चल पड़ी और नौ कोस आने पर वह रुक गई। वहाँ अनेक प्रकार के भट, भील और मवासी जातियाँ बन के बीच रहा करती थीं।

सुना लद माल मग ठाढ़ा। परा सखि रात की धाड़ा।
बैंद मिच सेठ गये आली। पकरि जंजीर में डाली॥ ८॥
सखी सँग तीन उन के री। भये सब ताहि के बैरी॥
करे बस पाँच ने जेरा। रहै पचबीस का पहरा॥ ९॥
बिपत्ति कहुँ क्या सुनौ उसकी। भये दुख रोग और खुसकी।
निकरि कहुँ गैल न पावै। कहौं घर कौन बिधि जावै॥ १०॥
बिसरि घर आदि और अंता। खबर कहै को बिना संता।
करम बस राह रस खाना। बिना सतसंग भरमाना॥ ११॥
मिलै सतसंग मन टूटै। अरी तब बंद से छूटै।
अली भौ भील ने पकरा। जबर जंजीर में जकरा॥ १२॥
अली बिधि बेद से बाँधा। करम की साधना साधा।
तिरथ और बर्त आचारा। करत नित नेम बिधिसारा॥ १३॥
लिये फूल भोग करमन के। फिरे भौ भाव भरमन के।
भया भौ काल का चारा। निकर नहिं होत निरवारा॥ १४॥
याद गइ भूमि सब घर की। मिली नर देह सुन अबकी।
करो मन दीनता लावो। संत से राह तब पावो॥ १५॥
मिटै कर्म काल चौरासी। होई तब लोक का बासी।
अली यहि बात से आवै। और विधि राह नहिं पावैं॥ १६॥
तुलसी जब बूझ में आवै। अधर घर आदि अपनावै।
फटै जब करम कागद के। लखै दुरबीन मन मँज के॥ १७॥

अर्थ–उन्होंने सुना कि गाड़ी में लादा हुआ माल रास्ते में खड़ा है, फिर हे सखी! रात को वहाँ इन जातियों का हमला हुआ। सेठ इसमें बीच में बंद हो गए और उनको पकड़कर जंजीर में डाल दिया गया। हे सखी! उनके साथ जो तीन सिपाही थे, वे सब भी उनके बैरी बन बैठे। वे पाँच लोगों के बस में

रहे तथा उन पर पच्चीस लोगों का पहरा पड़ा था। उनकी विपत्ति का वर्णन मैं क्या करूँ, आप उन‍ विषय में सुनें। उन्हें रोगों का बड़ा कष्ट बढ़ गया और वे कहीं भी किसी गली से निकल नहीं पाते थे बताओ भला! अब वे अपने घर कैसे जाएँ। वे अपने घर का आदि अंत भूल गए–बिना संतों के कौ उनके घर का समाचार दें। कर्म के अनुसार ही उन्हें मार्ग, रस तथा भोजन मिलता है और वे बिन सतसंग के भटकरते रहते हैं। जब सत्संग मिलेगा, तभी इस भवसागर से साथ छूटेगा, अन्यथा नहीं। सखी! सारे मनुष्यों को भवसागर रूपी भीलों ने पकड़ रखा है और मजबूत जंजीर में जकड़ रखा है। सखी! मनुष्यों को वेद विधि ने बाँध रखा है और कर्म की साधना ने उन बन्धनों को खूब साध रखा है तीर्थ, व्रत तथा आचरण और प्रतिदिन किए गए सारे नियम विधान, इन्हीं के साथ कर्म के भोग व सुगंधित फूल लिए हुए मनुष्य उन्हीं के भाव में निरन्तर भाव विह्वल दिखाई पड़ता है। इसी के वशीभू यह मानव समुदाय भवसागर के काल की खुराक बना हुआ है–उससे निकलकर उसकी निवृत्ति न हो पाती ॥

उस मूल घर की सम्पूर्ण भूमि भूल जाती है और अब की बार तो उसे मनुष्य की देह प्राप्त हुई है गृह की स्मृति का भाव पैदा करते हुए दीनता (विनम्रता) लाओ और तभी सन्तों की राह प्राप्त होगी कर्म किए जाने के बाद चौरासी काल मिट जाएँगे और तब इस सुरति लोक के निवासी बनोगे। सखी! मार्ग इसी रूप में से मिलता है–अन्य दूसरे तरीके से राह नहीं मिलती है। तुलसी साहब कहते कि अब बातें समझ में आने लगी हैं–हे बिना घट वाले तू अपने आदि घट को देखो। अब कागज प लिखे हुए तुम्हारे सारे कर्म फट जाएँगे तभी मन की माँगी हुई दूरबीन से उस परम तत्त्व को देखोगे।

॥ सोरठा ॥

सुनौ सेठ सँबाद, साध समझ कोइ बूझि है।
सूझै समझ बिचार, ये अपार मन अगम है॥

अर्थ–सेठ के संबाद को सुनो, इसके रहस्य को कोई साधु ही समझेगा:वह मन अगम्य एवं अपा है, इसमें समझ तथा विचार आते रहते हैं।

॥ चौपाई ॥

मन की अगम चौज गति गाऊ। गुरु गोबिंद बरनि येहि नाऊँ॥
बिन सतगुरु येहि धीर न आवै। बिना सन्त को पीर बुझावै॥
गुन की गैल गवन नित भागै। सोवत नित सतगुरु सँग जागै॥
सतगुरु पदम पार बलिहारी। सूरति लखाइ दीन दिल न्यारी॥
नित नित सैल सुरति चढ़ि चीन्हा। तब मन सूरति भया यकीना॥
लख लख परा पदम पद न्यारा। तब भाखी भिनि सूरति पारा॥
जग बैराट बना बिधि सारा। अंस सिंध से आनि सँवारा॥
उठै बैराट बैराट बिधाना। मन तन साथ बँधा सोइ जाना॥
पच्छिम दिसा धाम मन के री। सो नहिं सुपनेहुँ मन हेरी॥
जगत देक दूषन में आया। मन बनियाँ सुन सेठ कहाया॥
कर्मबंध बिच कीन्ह दुकाना। भर सुभ असुभ माल सोइ जाना॥
बंधन बेद जाल जग माहीं। भौ भ्रम भील जँजीर चढ़ाई॥

नित नित परै काल का डाका। जग जघ घेरि कर्म के नाका॥
चौकी पाँच पचीस बसाई। तीन गुनन बिच नाम गुसाई॥

अर्थ–मैं मन के उस अगम आनन्द की गति का कथन करता हूँ, गुरु रूपी गोविन्द ही इनके नाम का वर्णन करेगा और कोई नहीं बिना सतगुरु के यहाँ धैर्य नहीं उत्पन्न होता–बिना सन्तों के कौन पीड़ा बुझा सकता है। सन्त व्यक्ति गुण की गली में निरन्त भगता जाता है और सोता हुआ व्यक्ति सदैव सतगुरु के साथ ही जानता है।

सतगुरु के चरण कमलों के उस पर जाना ही, उनके प्रति बलि जाना है और दीनों के दिल में विलक्षण सुरति दिखा (उन्हें) उपकृत किया करते हैं। प्रतिदिन सुरति शिखर पर चढ़कर उस परमार्थ तत्त्व को पहचानते हैं और बार-बार सुरति के अन्तर्गत उस परम तत्त्व को देखकर पहचान करते हैं। उस विलक्षण परम पद को देख-देखकर सुरति के पार स्थित उनकी सत्ता का भिन्न-भिन्न रूपों में वर्णन करते हैं। यह सारा संसार इसी तत्त्व के कारण वैराट बना हुआ है और यह अगम सिन्धु के अंश से सँवारा हुआ है। इस वैराट सृष्टि में वैराट की विधान-रचना के तत्त्व उठा करते हैं और मनुष्य के तन मन के साथ वही वैराट तत्त्व बना हुआ है।

इस वैराट की पश्चिमी दिशा में मन का धाम है–और उसको किसी ने स्वप्न में भी नहीं खोजा है। संसार को कर्मादि के दोषों में आया देखकर मन रूपी बनिया ने अपने को सेठ कहना शुरू कर दिया। उसने कर्म बन्धन के बीच अपनी दूकान स्थापित की और उसमें जो शुभ-अशुभ कर्मों को भरा वही उसका माल है। इस संसार में उस अशुभ कर्म के साथ वेदादि के बन्धनों को जोड़कर इस संसार के भ्रम रूपी तत्त्वों की जंजीर पर चढ़ा दिया। काल का डाका नित्य प्रतिशः पड़ रहा है और संसार के पापों ने संसार के कर्म मार्गों की नाकाबन्दी कर दी। पाँच तथा पचीस (तीस) चौकियाँ बसा दीं और तीनों गुणों के बीच ही गुसाईं का नाम स्थिर हुआ।

जो कुछ माल कर्म का लादा। डाका परा सेठ पर जादा॥
भये कैद बस सेठ बिचारै। बिना संत कहौ कौन उबारै॥
भले सेठ सार घर अपने। बिन सतगुरु छूटैं नहिं सपने॥
संत कृपा कोउ राह बतावै। बूझै बाट समझि घर आवै॥
बिन बूझे नहिं लगै ठिकाना। जुग जुग भरम खानि भरमाना॥
जब सतगुरु ने सब्द सुनाया। पच्छिम से दक्खिन को आया॥
कर दुकान दुनियाँ न लूटा। माल लुटे पर फिर नहिं छूटा॥
चर और अचर खानि जुग चारा। मन सोइ सेठ बंद बिच डारा॥
सज्जन साध करै निरबारा। उतरै भौसागर के पारा॥
सुरति चढ़ै सब्द निरबारा। नहि तो रहै काल की जारा॥
कर्म काल ने माल डरावा। जग मग जाल खरीदन आवा॥

अर्थ–कर्म का जो कुछ भी सामान रखा हुआ था, सेठ के यहाँ उन सब पर डाका पड़ा। बेचारा सेठ कैद के अन्तर्गत हो गए–बताओं बिना सज्जन के अब उनका कौन उद्धार करे। सेठ अपने घर के अन्तर्गत समस्त सार तत्त्व भूल गए और बिना सतगुरु के उनके सपने छूट नहीं सकते। संत की कृपा के फलस्वरूप सेठ को कोई मार्ग बता सकता है तब उन्हें राह बूझेगी और उसे समझकर घर को लौटेंगे। बिना मार्ग की समझ के उन्हें कोई अपना ठिकाना नहीं मिलना है। वे युगों-युगों तक यहीं इन भ्रम की खानियों में पड़े रहेंगे।

तत्पश्चात् सद्गुरु ने उन्हें ज्ञान की समझ दी–वे पश्चिम से दक्षिण दिशा की ओर चले। दूकान करके उन्होंने संसार को लूटा, यद्यपि उनका सारा माल लुट गया फिर भी, वे नहीं छूटे। चारों युगों में समस्त चराचर कष्ट की खानि हैं और उसी ने मन रूपी सेठ को बंद करके बन्धन में डाल दिया है। सज्जन और साधु जन ही इन बन्धनों से मुक्त करते हैं, नहीं तो सभी, काल के बंधन में बंधे रहते हैं। 'सबद' के निराकरण के बाद ही व्यक्ति सुरति समाधि तक चलता है और वही इसका निराकरण करता है। नही तो व्यक्ति काल का बंधन बना रहता है। कर्म रूपी काल ने सारा माल रखवा दिया और सारा संसार उस माल को खरीदने के लिए रास्ते पर चल पड़ा।

जा की रमज रेखता गाई। बूझैं साध समझ जिन पाई॥
बेहोसी जग फाँस फँसाना। निजघर अपना आदि न जाना॥
संत दयाल सब्द दरसावै। ये मन बिच सुपने नहिं पावै॥
निसदिन फिरै अचेत अयाना। जुग जुग भरमै चारों खाना॥
अब चित कछु चेत कराई। दुरलभ तन नर देही पाई॥
दृग से देख चेत चित माहीं। ये जग जाल बहा भौ माहीं॥
मन घरबार बाट बिच रोका। व्यापै नित नित संसय सोका॥
अब या का इक सब्द सुनाऊँ। संत साध की साखि बताऊँ॥

अर्थ–लोगों की समझ के लिए ही मैंने रेखता का गान किया है–जो साधु समझ पाता है, वही उसके रहस्य को जानता है। सारा संसार तो बेहोशी के फाँस में फँसा हुआ है और वह अपने ही घर का आदि रहस्य नहीं जानता है। दयालु सन्तजन तो अपना 'सब्द' बताते हैं किन्तु यह मन उसके रहस्य को स्वप्न में भी नहीं समझ पाता। वह रात-दिन अचेत और अज्ञानी बनकर घूमता रहता है, और युग-युग नरक की चारों खानों में वह भरमता रहता है। मैंने इसके (रेखता के द्वारा तुम्हारे मन के अन्तर्गत कुछ ज्ञान कराया है, और इतना तुम समझ लो कि तुमने दुर्लभ मनुष्य देह को प्राप्त किया है। आँखों से देखो और, और चित्त द्वारा समझो–कि इस संसार रूपी भवसागर में यह जाल (बन्धन) बह रहा है। मन ने मनुष्य को घट, द्वार मार्ग आदि में रोक रखा है, और प्रतिदिन उसमें संशय और शोक व्यापता रहता है। अब मैं इसके सन्दर्भ में एक सब्द सुनाता हूँ और सन्तों तथा साधुओं का साक्ष्य भी बदला रहा हूँ।

॥ शब्द १ ॥

दृग देखौ रे चित चेतौ रे, ये जग जात बह्यौ॥ टेक॥
ये घटवार घाट घट रोकैं, धोखे धार बहावै॥
नौका नाव धाइ धसि पैठै, बैठे मन थिर लावै॥
बाट बटाऊ लेतो रे॥ १ ॥

अर्थ–आँखों से देखो, चित्त से समझो, यह सारा संसार बहा जा रहा है। यह शरीर एवं घर के दरवाजे मनुष्य को स्थल-स्थल पर रोकते रहते हैं और अपनी धोखे भरी धाराएँ बहाते रहते हैं। ये नाम की नौका पर दौड़ कर उसमें घुस कर जाते है, और वहाँ बैठकर मन को अस्थिर करते रहते हैं॥ १॥

सुर नर मुनि गंधर्ब अरु देवा, ब्रह्मा बिष्नु करत मन सेवा॥
बिन घट भेद न जानै भेवा, नारद ब्यास न पावै छेवा॥
बेद पुकारत नेतो रे॥ २ ॥

देवता, मुनि, गंधर्व और देवता, ब्रह्म तथा विष्णु सभी जिसकी मन से सेवा करते रहते हैं किन्तु बिना घट में प्रवेश लिए उस परमतत्त्व के रहस्य को नहीं जानते। नारद एवं व्यास तक उसके रहस्य को नहीं जानते और वेद उसे नेति नेति पुकारता रहता है॥ २॥

ये तन तोर तलैया सूखै, काँच महल कूकर कृत भूसै॥
आसा आस पास पद चूकै, बार बार विष धर धर टूकै॥
भटक भटक भ्रम लेखो रे॥ ३॥

यह तुम्हारा शरीर तलैया की भाँति सूख रहा है और तुम्हारा प्रवचन आदि ऐसा है, जैसे शीशे के महल में कुत्ते का भूँकना। आशा और विश्वास के पास जाकर भटकते रहते हो तथा माया का सर्प तुम्हें निरन्तर डसते रहता है और भटक भटक कर भ्रम में ग्रस्त रहते हो॥ ३॥

तुलसी मगर मीन मुख माई, चर और अचर चराचर खाई॥
साई सब्द सुरति के माई, ये बिधि लार लार लौ लाई॥
मन ब्रत तत सत सेतो रे॥ ४॥

तुलसी साहब कहते हैं कि यह संसार मछली और मगर के मुख में रहता है–वे चर, अचर एवं समग्र चराचर का ग्रास करते रहते हैं। 'सब्द' स्वामी है, सुरति तक उसके द्वारा जाओ, इस प्रकार, उनके प्रति संलग्नता और प्रतिबद्धता (लगन) दोनों उत्पन्न करो। मन के संयम (व्रत) द्वारा उस परम तत्त्व का साक्षात्कार करो॥ ४॥

॥ शब्द २॥

अरी पिया परखौरी हिया हरखौरी, एरी आली आदि अटा॥ टेक॥
अलख अकेली चली अलबेली, पेली परख निहारी।
सेली सुरति निरखि नभ न्यारी, सो धन पिया को लागै प्यारी॥
चलौ सखि पिया संग घर को री॥ १॥

हे सखी! उस दिव्य पति को देखो और हृदय से हर्षित होओ:हे सखी! उस पार उसकी अट्टालिका है। वह अलक्ष्य है, मैं अकेली हूँ फिर भी मस्त चाल से उसके लिए निकल पड़ी हूँ और उसकी परख मात्र देखकर मैं हठात् आगे बढ़ जाती हूँ। आकाश के विहार के विलक्षण उच्च शिखरों पर प्रियतम को हठात् देखा है। उसका इस प्रकार देखने वाली प्रियतमा ही प्रिय को भली लगती है। हे सखी! प्रियतम के साथ उसके घर तक चलो॥ १॥

चतुर सहेली सुन पर खेली, मेली मूर बहाई॥
धाइ धार पार भट भेली, घट चढ़ चटक चढ़ाई॥
घुमरि घुमरि घन करकी री॥ २॥

अर्थ–वह चतुर सहेली शून्य के बीच खेलती रही और कर्म के तत्त्व को बहाकर अपने प्रियतम से मिली। वह धारा के बीच दौड़कर अपने आराध्य से मिलाप कर लिया और पिंड में चढ़कर अपनी चमक बढ़ा दी और वह घुमड़-घुमड़कर बादल की भाँति कड़क भरे स्वर कर रही है॥ २॥

बदरी स्याम सुन्दर स्रुत न्यारी, ये मत मूर न जानै अनारी॥
संत अधर रस अंत बिचारी, जग बिष रस भौ खानि भिखारी॥
संध सुरति सत सरकौ री॥ ३॥

अर्थ–वह श्याम एवं सुन्दर बादलों जैसी विलक्षण श्रुति है। ये अना... साधु जन उस मत के मूल तत्त्व को नहीं जानते। वह संतों के होठोंपर रस को भाँतित सि... और संसार के विष रस से वे भिखारी हैं–अर्थात् बहुत दूर हैं तथा वे सन्तों द्वारा प्राप्त सुरति रस का आनन्द ले रहे हैं॥ ३॥

ये लै लार पार पट माहीं, ताई तत्त नियारी।
तुलसी मरम सरम सतगुरु को, पूर परम गुरु आई॥
कोइ सतगुरु सिष तरको री॥ ४॥

अर्थ–ये सन्तजन क्षण मात्र में ही गुरु की संसक्ति के कारण अन्तर्वृत्त में उस घर जाकर उस तत्त्व के समीप पहुँच जाते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि वह सत्गुरु का मर्म है–जिसे पूर्ण और परम गुरु ही प्रदान करता है और उस तत्त्व को प्राप्त करने के लिए कोई विरला शिष्य ही गुरु तक पहुँच पाता है॥ ४॥

॥ दोहा॥

जिन सतगुरु सरना तका, पका सुरति के माहिं।
जाइ पदमपुर कँवल में, हरख जो हिये समाइ॥

अर्थ–जिन व्यक्तियों ने सत्गुरु की शरण को लक्ष्य बना लिया है, वही सुरति के मध्य परिपक्व होता है। वही पद्मपुर में स्थित कमल के अन्तर्गत जाकर आनन्द प्राप्त करता है–जो उसके हृदय में समाकर उसे आनन्दित कर देता है।

॥ चौपाई॥

सुनि सखि प्यार पुरुष का गाऊँ, ता में आदि अंत दरसाऊँ॥
जो जस भया भाव बिधि लेखा, तस तस भाखौं अगम अलेखा॥

अर्थ–हे सखी! सुनों, मैं अपने प्रियतम पुरुष के प्यार का वर्णन कर रहा हूँ। उसी में मैं उसका आदि-मध्य तथा अन्त भी बताऊँगा। जो जैसा है या हो चुका है, उसी भाव से वह उस तत्त्व को देखता है, मैं ठीक उन्ही के ही अनुसार उस अगम तथा अलेख्य पुरुष का वर्णन कर रहा हूँ॥

बहु बिधि भाव बिपति से पाये। दुख सुख बिरह भाव दरसाये॥
खोजत खोजत खोज लगावा। गुरु ने समझ बूझ समझावा॥
भेष पंथ सब झारि निहारी। कोई न भाखा भेद बिचारी॥
ढूँढ़त ढूँढ़त भई बेहाला। सब जग जीव परे जम काला॥
कोऊ न कहै बात तप केरी। सब जग पचे भेष पर हेरी॥
ब्याकुल तन मन बिरह समानीं। कोई न कहै पिया पद जानी॥
सतमत पत की पीर समानी। बिकल बिपत चित कहा बखानी॥
ये जग भीतर काल कराला। बाँधा सब जग जम बिच जाला॥
तन हबूब बुल्ला जस फूटा। स्वाँस स्वाँस छिन छिन दम छूटा॥
पवन भवन बिच स्वाँस समानी। जीव निकरि जस हवा उड़ानी॥
ज्यों सुपना जग जग जसमाना। सोवत जुग जुग पिया न जाना॥

दुर्लभ देह दावा अब आया। धग जीवन जिन पिया न पाया॥
सुन या की बिधि सब्द लखाऊँ। बिधि बिहाग बिच बरन सुनाऊँ॥

अर्थ–विपत्ति के कारण इन लोगों ने अनेक भावों को प्राप्त किया और अनेक सुख-दुख के भावों को बताया। उन्होंने खोजते खोजते खोज लगाया और उनके गुरु ने उन्हें स्वयं समझ बूझकर सब समझाया। उन्होंने अपने वेष, पन्थ को पूरी तरह देखा–किन्तु किसी ने भी उनके भेद का विचार करके कोई निर्णय नहीं लिया। वे खोजते-खोजते बेहाल हो उठे–किन्तु सारे संसार भर के लोग उन्हें काल कवलित ही दिखे। किसी ने भी उन जैसी बातें नहीं कीं। सारा संसार उनके भेष से ही उनको समझ कर रहा था। उनके व्याकुल शरीर एवं मन में बिरह समायी हुई थी–कोई यह नहीं बताता था कि इन्होंने अपने प्रियतम के पद को समझ लिया है। इस संसार के भीतर कर्त्ता समाया हुआ है और उसने सारे संसार को यम के जाल से बाँध रखा है। यह संसार जल है और क्षरण बुलबुले की भाँति हो रहा है–और प्रति व्यक्ति की साँस-साँस से क्षणभर में ही शरीर छूट जाता है। इस शरीर में स्थित वायु के अन्तर्गत स्वास समाई हुई है–जैसे हवा उड़ पड़ती है–ठीक इसी प्रकार जीव भी निकल जाता है। जिस तरह से संसार में लोगों के द्वारा स्वप्न की स्थिति मानी गई है, व्यक्ति रात-दिन लगा है, किन्तु अपने प्रियतम को नहीं जानता। इस दुर्लभ देह में अब बात समझ में आई कि उसका जीवन धिक्कार है, जिन्होंने अपने पति को नहीं प्राप्त किया है, मैं अब इसकी स्थिति सुनाता हूँ। यह वर्णन विहाग राग द्वारा करूँगा॥

॥ विहाग १ ॥

बिपति कासे गाऊं री माई। जगत जाल दुखदाई॥ टेक॥
रात दिवस मोहिं नींद न आवै। जम दारुन जग खाई॥ १॥
पिय के ऐन बिन चैन न आवै। हर दम बिरह सताई॥ २॥
जा दिन से पिय सुधि बिसराई। भटक भटक दुख पाई॥ ३॥
तुलसीदास स्वाँस सुख नाहीं। पिय बिन पीर सताई॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! मैं अपनी विपत्ति किससे कहूँ, संसार का यह जाल कष्टदाई है मुझे रात-दिन नींद नहीं आती। कष्टदायी यम इस संसार को खा रहा है। प्रिय के घर के बिना चैन नहीं पड़ रही है–प्रतिक्षण उसे विरह सताता रहता है। जिस दिन से पतिदेव ने सुधि भुला दी है, मैं भटक-भटक कर दुःख पा रही हूँ। तुलसी साहब कहते हैं कि अब इस श्वास में सुख नहीं मिलता–बिना प्रियतम के पीड़ा से कष्ट मिल रहा है।

॥ बिहाग २ ॥

आली री हिये हरष न आवै। कारे की लहर ज्यों सतावै॥ टेक॥
तनमन सुधि बुधि सब बिसराई। अन्न पानी नहिं भावै॥ १॥
कहा करौं किह जावँ सखारी। पिय बिन नींद न आवै॥ २॥
है कोइ सतगुरु पिय को लखावै। पत पिय पीर बुझावै॥ ३॥
तुलसी तलफ तलफ तन सूखै। मन बिच थिर नहिं लावै॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! हृदय में लेशमात्र भी हर्ष नहीं उत्पन्न हो रहा है। मैं तो काले भुंजग की लहरों से मानों सताई जा रही हूँ। शरीर, मन, की सारी सुधियाँ भूल चुकी हूँ और जल तथा अन्न दोनों नहीं भले लग रहे हैं। हे सखी! क्या करूँ, कहाँ जाऊँ (समझ में नहीं आता) और बिना प्रियतम के नींद भी नहीं

आ रही है। क्या कोई सत्गुरु यहाँ है जो मुझे मेरे प्रियतम का दर्शन करा दे–मेरी प्रिय के पास पहुँचने पर मेरी पीड़ा बुझा सकती है। तुलसी साहब कहते हैं कि तड़प-तड़प कर मेरा शरीर सूखता जा रहा है और इस मन में जरा भी स्थिरता अब नहीं आ रही है।

॥ बिहाग ३ ॥

अरी कहँ खोजौं री माई। गुरु बिन भेद न पाई॥ टेक॥
खोजत खोजत जनम सिराना। काहू न खोज लखाई॥ १॥
भेष पथ सब खोजि निहारी। जोग बैराग गुसाई॥ २॥
अब मन मोर गुहार पुकारा। त्राह त्राह सन माई।। ३॥
तुलसी तलब सुलभ जब पाई। सतगुरु अलख लखाई॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! मैं उसे कहाँ खोजूँ। बिना गुरु के उसका रहस्य नहीं मिलता। उसे खोजते-खोजते यह मानव-जन्म खत्म हो गया। खोज द्वारा वह किसी को भी नहीं दिखाई पड़ा। समस्त वेषों को, पंथों को, योग को, वैराग्य को, गुसाई मंत को तथा खोज-खोज कर सभी को देखा। अब मेरा मन गुहार करके उसे पुकार रहा है और इस समय उस मन में 'रक्षा करो, रक्षा करो, जैसी पुकार लगी हुई है। तुलसी साहब कहते है कि उस प्रियतम के नशे में ही उसे सहज रूप में प्राप्त किया और सद्‌गुरु ने उस अलक्ष्य को मुझे दिखा दिया॥

॥ बिहाग ४॥

आली री गुरु गैल लखाई। अलख पलक पर पाई॥ टेक॥
दृग दुरबीन चीन्ह जब पावा। हर दम सुरति लगाई ।। १॥
लीला सिषर निकर नभन्यारी। छिन छिन सुरति समाई॥ २॥
पच्छिम द्वार पार पट खोले। अगम निगम गम पाई॥ ३॥
तुलसी तत्त तरक तन माहीं। अस आतम दरसाई॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! गुरु ने वह गली दिखा दी फिर तो मैंने अपनी पलकों के बीच उस अलक्ष्य को प्राप्त कर लिया। हृदय ने नेत्रों की दूरबीन द्वारा जब मैंने उसे पहचान लिया तो क्षण-क्षण मेरा मन सुरति में समाने लगा। उस पर, पश्चिम की ओर का दरवाजा खुला फिर तो मैंने-उस अगम्य तत्त्व को साक्षात् ही प्राप्त कर लिया। मेरी आत्मा को कुछ ऐसा दिखाई पड़ा कि वह परम तत्त्व शरीर के बीच ही स्थित है।

॥ बिहाग ५॥

आली री आगे खोज लगाई। चढ़ि स्रुति गगन समाई॥ टेक॥
मकर तार मारग लखि पावा। ता बिच धधक चढ़ाई॥ १॥
मानसरोवर निरखि निहारी। नेनी में पैठि अन्हाई॥ २॥
भीतर भिन्न चिन्ह भइ न्यारी। कोटि भान छबि छाई॥ ३॥
ता मध बीच द्वार इक दरसा। साहिब सिंध कहाई॥ ४॥
तुलसी सुरति सब्द सुन माहीं। गुरु पद सुरति मिलाई॥ ५॥

अर्थ–सखी ने आगे खोज की और श्रुति गगन में चढ़कर वह उसमें समा गई। उसे उस मार्ग पर सूर्य के मकर के तार उसे दिखाई पड़े, उसके बीच जाकर उसने अपनी आत्मा की दीप्ति धधका दी। मान

सरोवर को उसने भलीभाँति देखा और त्रिवेनी में प्रवेश करके स्नान किया। उस हृदय में भिन्न प्रकार के लक्षण दिखाई पड़ने लगे और ऐसा लगा जैसे करोड़ो सूर्य की हानि छा गई हो। उसके मध्य में एक द्वार दिखाई पड़ा– उसी को स्वामी का सिन्धु कहा जाता है। तुलसी साहब कहते हैं कि सुरति के शब्दों को सुनकर उस सुरति के द्वारा गुरु के चरणों के साथ उसे एक कर दिया।

॥ बिहाग ६ ॥

आली री इक अजरज बानी। गुरुमुख आप बखानी॥ टेक॥
चौथे चार पार इक स्वामी। लखि भिन्न नाम अनामी॥ १॥
सूरति सैल महल पिय पाया। रूप न रेख निसानी॥ २॥
मैं मिलि जाइ पाइ पिय अपना। जल जल धार समानी॥ ३॥
प्यारी प्रीत जीति पिय पाये। तुलसी तलब बुझानी॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! एक आश्चर्य की बात है– जिसे गुरु ने स्वयं अपने मुख से बताया है। चौथे स्थल में एक स्वामी हैं, वे बिना नाम के हैं और उनके अनेक नाम भी बताये गए हैं। सुरति रूपी पर्वत पर मेरे प्रियतम स्वामी ने एक महल प्राप्त किया है–उसका न कोई रूप है, न रेखा है, न लक्षण है। मैं वहाँ जाकर उनसे मिली और अपना प्रिय प्राप्त किया और जैसे जल जलधार में विलीन हो उठता है–वही स्थिति मेरी हुई। प्रिय पर विजय प्राप्त करके मैंने विलक्षण प्रिय प्रीति को प्राप्त किया और तुलसी साहब कहते हैं कि इसके बाद मेरे समस्त प्यार का उन्माद शान्त हो उठा॥

॥ बिहाग ७ ॥

आली री आज अनंद बधाई। पिय पद परसि पठाई॥ टेक॥
ये सुख चैन सैन कहा गाऊँ। कहि कहि संत सुनाई॥ १॥
आदि अनादि अमरपद पावा। दुख सुख बिपति नसाई॥ २॥
अब सब मरन जिवन भ्रम भागा। पिय प्यारी पद पाई॥ ३॥
तुलसीदास बास घर अपने। अली सुख कहत न जाई॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! आज आनन्दमयी बधाई आ रही है क्योंकि प्रिय ने अपने चरणों का स्पर्श करा कर भेजा है। इस सुख-चैन का कथन कहाँ और किससे करूँ–और मैंने उसे कह-कहकर सन्तों को सुनाया है। मैंने अनादि तथा अमर पद प्राप्त कर लिया है, तथा सम्पूर्ण सुख-दुःख एवं विपत्ति नष्ट कर दीं। अब मेरा समस्त मृत्यु एवं जन्म का भ्रम नष्ट हो उठा और इस प्रियतमा ने प्रिय का प्रेम प्राप्त कर लिया। तुलसी साहब कहते हैं कि मेरा निवास अब अपने घर में है और हे सखी! यह सुख कहते नहीं बनता॥

॥ चौपाई ॥

ये सुख का का कहौं बिचारा। जानै जोई कीन्ह निरवारा॥
सतगुरु से लेखा जिन पावा। बिन गुरु हाथ न काहू आवा॥
गुरु गुरु अंतर जानौ भाई। गुरु चिकटा गुरु चोख जनाई॥
अस अस गुरुमत पूझि बिचारा। सत सतगुरु मत इनसे न्यारा॥
सत गुरु सत मत अगम लखावै। जा से जीव परम पद पावै॥

अर्थ–इस सुख के विषय में मैं अपना विचार क्या कहूँ–इसे वही समझ सकता है–जिसने इसके विषय में निराकरण किया है। जिन्होंने सतगुरु से सारा रहस्य (हिसाब-किताब) समझ कर प्राप्त कर

लिया है क्योंकि बिना गुरु के कोई हाथ नहीं आया है। हे भाई-गुरु-गुरु के बीच का अन्तर समझो–गुरु ही चिकना और गुरु ही धारदार दिखाई पड़ता है। इस प्रकार से गुरुमत को समझो तथा विचारो सत सत का सत्‌गुरु मत इनसे भी प्रिय है। सत्गुरु का सन्त मत द्वारा साधक अलख जगाता है और उनके द्वारा जीव उस परमात्मा के परमपद को प्राप्त करता है।

जग के गुरूभेद नहि जानैं। ज्यों बनियाँ कर हाट दुकानैं॥
आप आदि अपनी नहिं जानी। सिष कहौ कस पावै सहदानी॥
जो संतन स्त्रुत राह पुकारी। सो सब खोजि खोजि पचिहारी॥
जगत जीव संसार बिचारा। ये कहा जानै सार असारा॥
जस जस कीन दीन समझाई। तस तस बाँधी गाँठि लगाई॥
इन सब आस मास फँस हारा। केहि बिधि उतरै भौजल पारा॥
जगत गुरू बिस्वास न माना। उनहूँ सतगुरु राह न जाना॥
तुलसी सतगुरु सत्त लखावा। पुनि चढ़ि गये आदि घर पावा॥
मैं संतन कर दास निकामा। किरपा कीन्ह दीन्ह वोहि धामा॥
मैं पुनि कल्प कल्प कर भूला। नीच जानि मेटेउ दुख सूला॥
बुधि मतिहीन जानि कियो छोहा। संत कृपाल काटि मदमोहा॥
सतसँग सतगुरु पंथ लखावा। सतगुरु सत पंथ सत पावा॥
चौथे पद सतगुरु जिन जाना। ता का आवागवन नसाना॥
जग गुरुवा से काज न होई। सत्त कही राखी नहि गोई॥

अर्थ–संसार के जन गुरुभेद नहीं समझते–वे उसे बनिया की हाट-दुकानें समझते हैं। वे स्वयं अपनी आदि नहीं जानते–और बताएँ वे अपने शिष्य की पहचान वस्तु कैसे प्राप्त करेंगे। सन्तों ने श्रुति के जिस मार्ग को पुकार कर बताया है–सारे लोग उसको खोज-खोज कर थक गए। संसार का जागतिक जीव बेचारा इसके विषय में क्या जाने? जैसे-जैसे उसने किया, उसी के अनुसार उसे समझा दिया गया और उसने भी उस कथन को गाँठ बाँधकर रख लिया अर्थात् अन्तिम सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया। इन सम्पूर्ण आशाओं के विश्वास में फँस कर वह मारा गया और अब किस प्रकार वह भवसागर के उस पार उतरें। उसने जगत गुरु (सत्संग) का विश्वास नहीं किया और उनके गुरुओं को भी सत्गुरु का मार्ग नहीं ज्ञात था।

तुलसी साहब कहते हैं कि सत्गुरु तो सत्य ही दिखलाते हैं और पुनः आदि तत्त्व का बरदान मिलने पर वे उनके लोक चले गए। मैं तो सन्तों का निष्काम दास हूँ, उन्होंने कृपा की और मुझे वह (दुर्लभ) स्थान दिया। इसके बाद मैं अपना कल्प-प्रतिकल्प (जन्म जन्मान्तर) भूल गया। उन्होंने मुझे छोटा-दास समझकर मेरे दुख को समाप्त कर दिया। बुद्धि तथा ज्ञान से हीन जानकर उन्होंने मुझपर अतिशय प्रेम किया और उन कृपाशील सन्त ने मेरे मद तथा मोह को नष्ट कर डाला॥

सद्‌गुरु ने मुझे सत्संगति के मार्ग पर लगा दिया और मैंने उन सत्गुरु से सन्तों के सत्य मार्ग को प्राप्त कर लिया। चौथे स्थान के सत्यगुरु को जिसने जान लिया है–उसका पुर्नजन्म नष्ट हो गया। सांसारिक गुरुओं से यह कार्य नहीं सिद्ध होता। मैंने ये सारी बातें सच कहीं हैं, किसी तरह का छुपाव एवं दुराव नहीं किया है।

॥ सोरठा ॥

तुलसी सतसँग सार, जग असार जानै नहीं।
सूरति सत मत द्वार, लखि अगार संतन कही॥ १॥
जग अबूझ अज्ञान, सना करम बस कस लखै।
पूजै जल पाषान, यों भुलान भौ में परा॥ २॥

अर्थ—तुलसी साहब कहते हैं कि सत्संगति ही परमार्थ ज्ञान का सारतत्त्व है किन्तु उसे यह ना समझ संसार नहीं समझता। सुरति के साधक सन्तों का मत ही ज्ञान का द्वार है। इस घर को देखकर ही सन्तों ने इस सत्य का वर्णन किया है।

संसार के जन नासमझ, अज्ञानी एवं कर्म में संसक्त उसी के वश में हैं, उन्हें संसार कैसे दिखाई पड़ सकता है। ये जल द्वारा पत्थर पूजते हैं—इस प्रकार वह भूला हुआ—इस भवसागर में पड़ा हुआ है।

॥ छन्द ॥

सतसंगति गाई जिन जिन पाई। करम नसाई पार मई॥ १॥
जिन कही बखानी देखि निसानी। जिन जिन घर की राह लई॥ २॥
बूझै मत दूरा कोई सूरा। अगम अपूरा सार सही॥ ३॥
उनकी गतिन्यारी संत बिचारी। भेद अपारी पार भई॥ ४॥
उन उन गोहराई ग्रंथन गाई। भेद सुनाई बूझि दई॥ ५॥
मन में नद माते बिष रस खाते। सहैं जम लातें मार सही॥ ६॥
कोइ कहै बुझाई मन नहिं लाई। महा मद माहीं ज्ञान गई॥ ७॥
मति अपनी ऊँची और की नीची। बुधि बिष सींची मान मई॥ ८॥
संतन गति पावै भूल छुड़ावै। सत लखावैं भेद कही॥ ९॥

अर्थ—सत्संगति कहती है कि जिन्होंने उसका साथ पकड़ा, उसे परम सत्य को प्राप्त किया और कर्म को नष्ट करके वे उस पार चले गए। जिन्होंने इस सत्संगति की प्रशंसा की, उन्होंने उस परमतत्त्व के लक्षण देखे, ये वे थे, जिन्होंने उस परम तत्त्व के निवास का मार्ग पकड़ा था।

कोई ज्ञानी (सूरा जन) उसे दूर अगम्य नहीं बताता—वह तो अगम्य है—और वस्तुतः सार तत्त्व है। संत विचार करते हैं कि उस परम तत्त्व की गति विलक्षण है—उसका भेद अनन्त है किन्तु साधक पार हो जाते हैं। उन मुक्त साधकों ने हमेशा उसके विषय में कहा है, ग्रंथों में यह गाया भी गया है और सन्तों ने उनके भेद बताए हैं और उनको समझा समझाया है। मन के मद में उन्मत्त, विषय वासना का रस लेते हुए ये सांसारिक यमराज के लातों की मार सहते रहते हैं। यदि कोई उन्हें समझाकर बतावे तो उसमें उनका मन नहीं लगता और उनका ज्ञान महामद में विलीन है। वे समझते हैं कि उनका ज्ञान ऊँचा है, और सब का नीचा है—उनकी गुमान से भरी हुई बुद्धि तथा मत विषय सिंचित है। इस विषय में तो यही कहा गया है कि संतों की सत्संगति प्राप्त करके इस भूल तथा भ्रम को छुड़ाया जा सकता है और सतं जन ही उस रहस्य का दर्शन कराते हैं।

॥ सोरठा ॥

तुलसी तत्त बिचार, जो अगार आगे कही।
सही संत बिधि बात, संत साथ पावै सही॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि तत्त्व विचार जिनका वर्णन मैं आगे करता हूँ, वही सार तत्त्व है– सन्तों ने भी यही कहा है, उनकी बातें पूरी तरह से ठीक हैं–व्यक्ति सन्तों का जब साथ पाता है तो वही सही है॥

॥ बिलावल ॥

तुलसी जग हाल साल, काल जाल माहीं॥ टेक॥
पडित और भर्म भेष, देख सब अँध अचेत।
भुला ब्रत इष्ट टेक, पाहन लौ लाई॥
तीरथ असनान ध्यान, खोजन नर चारि धाम।
ढूँढ़त पोथी पुरान, मूरत मन माहीं॥
देखा सब जगत भेष, नेक खोज नाहीं॥ १॥
कोइ कोइ जपै इष्ट जाप, आपा चीन्है न आप।
बाँधे सिर मोट पाप, साफ नरक जाई॥
बूझै सतसंग सार, पावै सतन को लार।
मन का मद मूर मार, सार पार पाई॥
जाना मन भूल तोड़, पोढ़ सुरति साईं॥ २॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि संसार का हाल सुनें, सभी काल जाल में फँसकर पीड़ित हो रहे हैं। पंडितों तथा साधुओं दोनों को भ्रम के वेष से ग्रस्त अंधे और अचेत रूप में देखा। अपने इष्ट, व्रत तथा संयम को पत्थर में निष्ठा करके तोड़ दिया। तीर्थ, स्नान, ध्यान तथा चारों धामों की खोज आदि में सबको रमें देखा, पोथी तथा पुराणों में परम तत्त्व को खोजते देखा–जो उनके मन में ही रमा है। मैंने संसार को इस प्रकार ईश्वर को बाहर खोजने में देखा किन्तु किसी ने भी लेशमात्र अपने अन्तःकरण में नहीं खोजा॥ १॥

स्वयं अपने आत्म तत्त्व की पहचान नहीं है–कोई-कोई इष्ट के लिए जप में लगे हैं। सिर पर पाप की मोटरी बाँधे हैं–ये स्पष्ट रूप से नरक में जा रहे हैं। यदि ये सत्संग के सार तत्त्व का अन्वेषण करें तो इन्हें सन्तों में संसक्ति होगी। मन के मद के मूल तत्त्व का इससे विनाश होगा–फिर वह सार तत्त्व के पास उस पार जाएगा। इससे मन अपनी भूल समझेगा और वह सुरति में समाविष्ट होकर स्वामी के पास पहुँचेगा॥ २॥

छिन-छिन तन छीन जात, बूझै नहिं एक बात।
तेरे कोउ कोउ न साथ, जाति पाँति नाहीं॥
सम्पत सुख लार छार, निरखौ सुत नाहिं नार।
कुटुम बंध लोक चार, भूला भल भाई॥
ये कोउ तेरे न लार, जग असार जाई॥ ३॥
तुलसी तन होत छार, या से अगमन बिचार।
कीजै भव उतर पार, नौका नसि जाई॥
बूझ कोइ संत साध, सूझै कछु अंत आदि।

जूझै चढ़ि सुरति नाद, लखि अनादि पाई॥
पावै पद पुरुष दाद, साध सुरति माई॥ ४॥
मानौ सज्ञान सीख, मँगिहौ भौ खानि भीख।
भाखौ अज अमर लोक, देख द्वार माई॥
जनमन और मरन छूट, करमन की फाँसि टूट।
सूझा मत साँच भूठ, लूटा जग जाई॥
तुलसी मुख के वैन, नैन नजर आई॥ ५॥

अर्थ–क्षण-क्षण शरीर क्षीण होता जा रहा है, वह एक बात भी नहीं समझ पा रहा है–रे मन! तुम्हारे साथ तो कोई नहीं है और तुम्हारी न कोई जाति पांति भी नहीं है। सम्पत्ति के सुख को संसक्ति की राख समझो, पत्नी और पुत्रों को न देखो–बन्धु तथा कुटुम्ब के लोकाचार में भला हे भाई! क्यों भूले हुए हो। ये कोई तुम्हारी आत्मीयता से सम्बद्ध नहीं हैं और यह सारा निःसार संसार ही नष्ट हो उठेगा॥ ३॥

तुलसी साहब कहते हैं कि शरीर जलकर राख होता जा रहा है, इसी से पुनर्जन्म की फिर आशा करो। भवसागर से पार जाकर ऐसा उपाय करो कि यह देह रूपी नौका विनष्ट हो उठे। इस मर्म को सन्त या साधु ही समझ सकता है–फलतः उसे कोई आदि अन्त सूझ पड़ेगा। फलस्वरूप वह सुरति के नाद पर चढ़कर अनादि को प्राप्त कर लेगा। फलस्वरूप वह पुरुष पद की मर्यादा ही नहीं सुरति की साधना भी प्राप्त करेगा॥ ४॥

मेरे सत्ज्ञान की इस शिक्षा को अन्यथा न मानों इस भवसागर में भीख ही मागते रहोगे। मैं उस अजन्मा अमर लोक के बारे में कह रहा हूँ, उसके द्वार पर जाकर तुम देखो। जन्म-मरण का बन्धन छूट जाएगा और जन्म के बन्धन छूट जाएँगे तथा कर्म के बन्धन नष्ट हो उठेंगे। इस अध्यात्म मत में निहित झूँठ सच को समझो और जाकर अध्यात्म के ज्ञान तत्त्व को समझो। तुलसी साहब जिस अध्यात्म तत्त्व को कहते हैं, ध्यानपूर्वक उसे समझो। वह तुम्हारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष दिखाई देगा॥१॥

॥ सोरठा॥

तुलसी जगत भुलान, ज्ञान स्यान मद आप में।
बूझै सत मत नाहि, आप अपनपौं ना लखै॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि यह सारा संसार अपने ज्ञान, अपनी चतुरता तब अपने मद में स्वयं भूला हुआ है। यह संसार संत मत को नहीं समझता:इसलिए वह अपने आप में निहित ब्रह्मतत्त्व को नहीं देखता॥

॥ चौपाई॥

भूला सब जग आपा माहीं। आप अपनपौ खोजत नाहीं॥
मनमत मान बूझ नहिं आवै। अपना ज्ञान ऊँच ठहरावै॥
अपनी बुध सुध मनमत माहीं। तासे ज्ञान स्याम गति गाई॥
अपनी मनमत रच गत सानी। मान बड़ाई ज्ञान अज्ञानी॥
तुलसी जग अपने मन माई। ज्ञान स्यान और मान बड़ाई॥
जा से कहूँ ज्ञान बिधि गाई। सो पुनि आन मोहि समझाई॥
मैं कहुँ एक ज्ञान बिधि भाई। वो पुनि चार मोहिं समझाई॥

अर्थ–सम्पूर्ण संसार आत्मासक्ति में भूला हुआ है। वह अपने को अपने में खोजता नहीं है। आत्म-सम्मान में वह मूल तत्व समझ में नहीं आता और स्वयं के ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ ठहराता है। वह अपनी सूझ बुध में मन्मत्त है–इससे वह ज्ञान की श्याम गति (अज्ञान) का वर्णन करता है। अपने बड़प्पन में वह अपनी पुरानी यादें गढ़ता है–वह अज्ञानी अपने मान, अज्ञान एवं बड़प्पन में डूबा हुआ है। तुलसी साहब कहते हैं कि वह अज्ञानी अपने मन में ही अपना संसार बनाकर वह ज्ञान, सयानेपन एवं सम्मान को बनाए हुए है। जिससे वह थोड़ा कुछ ज्ञान प्राप्त कर रहा है–वह आकर यहाँ मुझे समझाता हैं। मैं उसे ज्ञान की एक ही विधि समझाता हूँ किन्तु वह उसके स्थान पर चार प्रकार की ज्ञानविधियाँ समझाता है।

संवाद साथ पलकराम नानक पंथी के साथ

॥ चौपाई ॥

पलकराम इक नानक पंथी। रहै कासी में बड़ी महंती॥
कहते वाह गुरु मुख आये। मन अति लीन दीन गति गाये॥
पैर परन हमहुँ पुनि कीन्हा। उठकर पकर चरन को लीन्हा॥
चाल बिधी जस साधन राही। जस जस देखी उनके माहीं॥
अंतर दया भाव दिल दीन्हा। महिमा संत अंत नहीं चीन्हा॥
संत प्रीत मन पूरा भावै। सुनै कोइ संत आप उठि धावै॥
तन मन रहत संत सरनाई। मन उमगै मुख संत बड़ाई॥
सील सुझाव बीच मन माहीं। मिलै संत चरनन लपटाई॥
निरमल बुद्धि ज्ञान रस राता। मन सब चरन प्रीत हित बाता॥

अर्थ–पलकराम नाम के नानक पंथावलम्बी काशी में एक बड़े महन्त रहते थे, वह मुँह से वाह गुरू, कहते हुए आए। उनका मन नानक साधना में लीन था और आकर दैन्य भाव से मिले। मैंने उनका पैर पकड़ कर नमस्कार किया और उठकर उनका चरण पकड़ लिया। उनकी गति, साधना विधि जैसे साधक की थी–और जैसे-जैसे उनमें देखा, वह कह रहा हूँ। उनके अन्त: करण में दया का भाव था, हृदय में आत्मीयता थी, संत की महिमा को लोग अन्त तक नहीं पहचानते। सन्तों के मन में प्रीति पूरी भरी होती है और वह जब किसी अन्य सन्त के विषय में सुनता है तो स्वयं उठकर भागा आता है। तन मन से वह साधक सन्तों की शरण में रहता है मुख से सन्तों का बड़प्पन करने में मन उमंगित होता रहता है। सन्तों के मन के बीच शील स्वभाव रहता है और सन्तों के मिलते ही वे उनके चरणों में लिपट जाते हैं। वह सन्त निर्मल बुद्धि का है और ज्ञान रस में माता रहता है। उसका मन सभी के चरणों में लगा रहता है तथा वह दूसरे की प्रीति और हित में सदैव बातें करता है।

हमैं देखि हिये हरष समानी। चरन परे ढुरै नैनन पानी॥
जस कछु रीत साध मत माहीं। तस तस तुलसी उनमें पाई॥
करता पुरुष नाम सत मानै। निरंकार जोती सोइ जानै॥
पौड़ी सोदर पढ़ै अनेका। जपजी का परमारथ देखा॥
आदि पुरान पचग्रंथी जानै। सुषमनि आसावार बखानै॥
गुरु गोबिंद मुख भाखै बानी। बादसाह दस में सहदानी॥
ग्रंथ बिहंगम कछु कछु जाना। पढ़ें और कुल झारि बिधाना॥

संत चरन मन में रत जानै। हम से पूछ दीन मत आनै॥
बावे निरंकार कहि गावा। और निरंजन जोति बतावा॥
इनके परे और नहिं कोई। अस बावे मुख भाखा सोई॥
वाह गुरू वाह गुरू बतावा। बावे मुख ग्रन्थन में गावा॥
लछमींचंद पुत्र बतलावा। दूसर सिरीचंद कर गावा॥

अर्थ–हमें देखकर उनके हृदय में हर्ष समा उठा–वे मेरे चरणों पर ढुलक गए तथा उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाह होने लगा। साधुमत के अन्तर्गत जिस प्रकार से सन्तों के मिलन की रीतियाँ बताई गई हैं, तुलसीदास ने वैसी-वैसी उनमें प्राप्त की। एक वर्ग कर्त्ता पुरुष तत्त्व को सत्य मानता है और निरंकारी मत के साधु उसी से ज्योति के रूप में जानते हैं। आश्रम में बैठे हुए उसे अनेक रूपों में पढ़ते हैं और जाप करने वाले उसे परमार्थ तत्त्व के रूप में देखते हैं। उसे सुषमा बतलाते हैं। गुरु गोविन्द सिंह के नाम से यह वाणी कही जाती है कि दस बादशाहों में आपस में एकता और साथ है। बिहंग मत के साधुओं ने उसे कुछ-कुछ समझा है, वह यह कि योग के समस्त विधानों का पढ़कर ज्ञान करना चाहिए। सन्त चरणों में निरन्तर मन को लीन समझो और हमसे अन्य किसी के मत को न पूछ लेना। बाबा साहब ने इसे निरंकार कहकर गाया है और इस तत्त्व को निरंकार ज्योति कहा है। इनके ऊपर और अन्य कुछ भी नहीं है। ऐसा बाबा साहब के मुख से कहा गया है। वहाँ वाह गुरु, वाह गुरु, ऐसा बताया गया है और बाबा साहब की बातें अन्य ग्रंथों में कही गई हैं। एक का नाम पुत्र लक्ष्मीचंद कहा गया और दूसरे का श्रीचंद कहकर बताया गया है।

तुलसी साहिब ॥ चौपाई॥

साहिब नानक संत निदाना। जो कछु कहनि कही परमाना॥
खुद साहिब नानक मुखबानी। कही अगम कोइ बिरला जानी॥
वै पहुँचें चढ़ि सुरति निसाने। सब्द फोड़ गये अगम ठिकाने॥
वै स्वामी गति अगम अपारा। तुलसी बन्दै बारम्बारा॥
बार बार बन्दौं सरनाई। तुलसी चरन धूर मैं पाई॥
साहिब नानक बड़े दयाला। गये अधर मारे जम काला॥
और कबीर संत रस पाये। काल जीति सत सब्द समाये॥
औरन की गति कहँ लग गाई। जो जो गये अगम पर ठाईं॥
तुलसी निज निजदास तुम्हारा। सरनि जानि मोहि कृपा निहारा॥
नानक नैन नजर भर हेरा। तुलसी नीच चरन का चेरा॥
सतसंगति गति अगम अपारा। तुलसी बन्दै बारम्बारा॥

अर्थ–नानक साहब एक श्रेष्ठ सन्त थे, उन्होंने जो कुछ कहा है, मैं उसका प्रमाण कह रहा हूँ। स्वयं नानक साहब ने अपने मुख से जो वाणी कही है:वह अगम्य है और उसे कोई बिरला ही जानता है। वे साधना द्वारा सुरति स्थली पर पहुँचे और 'सब्द' को फोड़कर वे अगम की स्थली पर गए थे। उन स्वामी नानक देव की गति अगम्य और अपार है तथा यह तुलसीदास उनकी बारम्बार वन्दना करता है। मैं उनकी शरणगति का बार-बार वर्णन करता हूँ और उनके चरणों की धूलि को मुझ तुलसीदास ने प्राप्त किया है। नानक साहब बड़े ही दयालु हैं:स्वर्ग में जाकर सम्पूर्ण काल को उन्होंने नष्ट कर डाला।

उनके अतिरिक्त, कबीरदास जी ने भी सन्तों का आनन्द प्राप्त किया और काल को जीत कर 'सत सबंद' में समा गए। जो-जो सन्त अगम के स्थान पर स्थित हुए–उनकी अन्य सन्तों की गति का कहाँ तक वर्णन करूँ। तुलसी तो स्वयं आपका सेवक है और मुझे शरण में जानकर मुझपर कृपा दृष्टि से देखें। गुरुनामक साहब ने तो मुझे नजर भर देखा है। यद्यपि मैं निकृष्ट जनों के चरणों का दास हूँ। सत्संगति की गति अगम्य तथा अपार है और तुलसीदास उनकी बारम्बार बन्दना करता है।

तुलसी हरष न हिये समाई। जब से परसे तुम्हरे पाँई॥
सत रीति गति सब बिधि देखा। जस जस कहो रीति रस लेखा॥
जस नानक मत कहा अपारा। तस तस मुख भाखा सब सारा॥
एक समय बावे गति लेखा। गोरख गुष्टी भई अनेका॥
नवौ नाथ चौरासी सिद्धी। बावे कीन्ह गुष्टि की ऋद्धी॥
ऐसे ग्रन्थ साखि बतलावा। बावे ग्रंथ आप मुख गावा॥
जपजी के परमारथ माहीं। बावे गुष्टि भिन्न करि गाई॥
सब सिद्धन से चरचा कीन्ही। पुनि बावे गति काहू न चीन्ही॥
या की बिधी ग्रंथ के माही। मैं सुच्छम बिधि भाखि सुनाई॥
जस जस भई गुष्टि बिधि भाई। भाखी जप परमारथ माहीं॥
चौरासी सिध और नौ नाथा। दीन होइ जोड़े सब हाथा॥
हारि चरन बावे के लीन्हा। बावे साथ जो भये अधीना॥
तुलसी दीन भाव कर बोले। पलकराम से पूछन खोले॥

अर्थ–जबसे तुम्हारे इन चरणों का स्पर्श किया है, इस तुलसी का हर्ष आज हृदय में नहीं समा पा रहा है। मैंने सत्य की रीति को प्रत्येक प्रकार से देख लिया है–जैसी जैसी रीति एवं रस की बातें आप कहें, स्वीकार्य हैं। जैसे नामकदेव के मत को अपार कहा गया है, वैसे-वैसे आपने अपने मुख से सब कुछ बता दिया। एक बार बाबा साहब की गति को देखें, उस समय गोरखनाथ जी के साथ उनकी अनेक गोष्ठियाँ हुई थीं। नौ नाथ, चौरासी सिद्धगण के साथ गोष्ठी में बाबा साहब ने ऋद्धि की। ऐसा साक्षी ग्रंथों ने बतलाया है और स्वयं बाबा साहब ने इसे अपने ग्रंथ में कहा है। बाबा साहब ने उस गोष्ठी में भिन्न रूप से समझाया कि जप ही परमार्थ है। सारे सिद्धों से उन्होंने इस बात की चर्चा की फिर भी बाबा साहब के ज्ञान में किसी को विश्वास नहीं हुआ। उसकी विधि उनके ग्रंथ में है मैं सूक्ष्म विधि से उसे गाकर सुनाता हूँ। हे भाई! जिस-जिस प्रकार से गोष्ठी की विधि हुई–उससे परमार्थ की जो विधियाँ कहीं गई। उन्होंने बताया है। चौरासी सिद्धों एवं नवों नाथों सभी हाथ जोड़ हुए दीन की भाँति दिख रहे थे। उन्होंने हार मान कर बाबा साहब के चरणों की शरण ली और बाबा साहब के साथ उनके अधीन जैसे हो गए। तुलसी साहब ने दीन भाव जब बोले तब पलकराम ने प्रश्न पूछने के लिए मुँह खोला।

स्वामी अरज एक चित आई। कृपा दृष्टि कर भाखि सुनाई॥
बावे बरस बिधी कस भइया। सम्बत बरस की बिधी सुनइया॥
बावे को कितने दिन भयऊ। गोरख कौन समय में रहेऊ॥
गोरख सम्बत एकसै ग्यारा। हुए गोरख सोइ सम्बत सारा॥
एकसै ग्यारा सम्बत माहीं। गोरख कुँडली में बिधि गाई॥

नवौ नाथ चौरासी सिद्धा। उपजे सुकदेव तब को बिद्धा॥
माया खैंचि पलकभर राते। उपजे सुकदेव तब की बातें॥
पांच हजार बरस तेहि भइया। सिध चौरासी समय तेहि रहिया॥
बावे कितने बरस प्रमाने। सम्बत कौन कौन से जाने॥

अर्थ–हे स्वामी जी! एक प्रार्थना मेरे मन में आई है। कृपा दृष्टिपूर्वक आप उसे कह कर सुनायें। बाबा साहब का जीवनकाल कितने दिन का हुआ उनके जन्म संवत् और जीवनकाल का समय बतायें। बाबा साहब को दिवंगत हुए कितना समय हुआ और गोरखनाथ जी किस समय में जीवित थे।

गोरखनाथ जी का जन्म संवत् एक सौ ग्यारह है–गोरखनाथ उसी संवत् में हुए और बर्तमान रहे। गोरखनाथ एक सौ ग्यारह संवत् में हुए, ऐसा गोरख कुंडली में कहा गया है। नवनाथ और चौरासी सिद्ध तब उत्पन्न हुए–जब शुकदेव जी संसार छोड़कर गए। माया को पल भर में खींच कर अध्यात्म में लीन होकर शुकदेव जी उत्पन्न हुए–यह उस समय (उनके जन्मकाल की) बात है। उस समय के बीते हुए पाँच हजार वर्ष हो गए। जब चौरासी सिद्ध उत्पन्न हुए थे। बाबा साहब के जन्म का क्या प्रमाण है– उसे किस-संवत् के रूप में समझें, यह कठिन है।

॥ पलकराम॥

तुलसी स्वामी कहूँ बुझाई। पंद्रहसै अस्सी के माहीं॥

अर्थ–हे तुलसी साहब मैं समझाकर कहता हूँ–यह समय पन्द्रह सौ अस्सी के मध्य था।

॥ तुलसी साहिब॥

अब सोलह सै सोलह जाना। बावे बिधी कहूँ परमाना॥
जेते दिन बावे को बीता। सो बिधी बरनि कहूँ सत रोता॥
पंद्रहसै अस्सी के माहीं। अब सोलह सै सोलह भाई॥
छत्तिस बरस बावे विधि जाना। पंद्रह सै पाँच गोरख परमाना॥
पंद्रह सैबरस गोरख भये आगे। बावे बिधी गुष्टि नहिं लागे॥
छत्तिस बरस बावे बिधि साँचा। गोरख भये पंद्रह सै पांचा॥
ये तो बिधी मिली नहिं स्वामी। ग्रंथ माहिं कस गुष्टि बखानी॥
गोरख पंद्रह सै भये आगे। छतिस बरस बावे को लागे॥
इनकी गुष्टि कौन बिधि भइया। तुलसी के मन संसय रहिया॥
भर्म एक मोहिं और समाना। पलकराम कहूँ भाखि बखाना॥
चौरासी सिध और नौ नाथा। ये तो भये सुकदेव के साथा॥
पाँच हजार बरस तेहि भइया। बावे कुल छत्तीस कहइया॥
इन उन गुष्टि कौन बिधि कीन्हा। ये बिधि मिलि नहिं आवै यकीना॥
कस कस पलकराम पहिचानै। ये साँची कहौ कैसे मानै॥
पलकराम साधू सकुचाना। भर्म बहुत मन अपने आना॥

अर्थ–इस समय तो सोलह सौ सोलह समझो –बाबा साहब की ज्ञानविधि का प्रमाण बताता हूँ–

जितना समय बाबा साहब का बीत गया, उतने समय में स्थित बाबा साहब की साधना का सही रूप में वर्णन करता हूँ। पन्द्रह सौ अस्सी के मध्य की बात कुछ और थी–इस समय हे भाई! सोलह सौ सोलह वर्ष चल रहा है। छत्तीस वर्षों तक बाबा साहब की विधि समझा और पन्द्रह सौ पाँच गोरखनाथ का प्रमाण है। गोरखनाथ पन्द्रह सौ वर्ष आगे थे और तब बाबा साहब की विधि से गोष्ठियाँ नहीं लगती थीं। बाबा साहब की विधि छत्तीस वर्ष की है और गोरखनाथ पन्द्रह सौ पाँच में हुए थे। हे स्वामी! ये दोनों विधियाँ सत्य नहीं रही हैं–फिर उनके ग्रंथों में गोष्ठियों का कैसा वर्णन है। गोरखनाथ आज से पन्द्रह सौ वर्ष आगे थे और बाबा साहब को हुए छत्तीस वर्ष हो गए। इनकी गोष्ठी किस प्रकार हुई थी– वह तुलसीदास के मन में अभी तक संशय बना हुआ है। हे पलकराम! एक भ्रम यह में और भी समाया हुआ है–मैं उस भ्रम का वर्णन कर रहा हूँ। चौरासी सिद्ध तथा नौ नाथ ये तो शुकदेव के साथ हुए थे उन्हें हुए पाँच हजार वर्ष हो चुके हैं–बाबा साहब का समय तो छत्तीस वर्ष कहा जाता है। उन्होंने उनसे किसी प्रकार से गोष्ठी की होगी, यह समझ में नहीं आता। हे पलकराम! तुम इसे कैसे सच समझते हो– इसे सच कहो कैसे माना जाए। इसे सुनकर, पलकराम साधु सकुचा गए और अपने मन में बड़ा भ्रम उत्पन्न किया अर्थात् वस्तु तथ्य की वास्तविकता उन्हें समझ में आई।

पूछा ज्वाब भेद नहिं पाई। पलकराम मन बूझ समाई॥
पलकराम साधू बड़े भोले। कहौं तुलसी अस कहि कर बोले॥
कहै तुलसी मैं दास तुम्हारा। तुम्हरे चरन माहिं निरवारा॥

अर्थ–उनसे तुलसी साहब ने जो प्रश्न पूछा था, वे उसका उत्तर नहीं पा सके और पलकराम के मन में वास्तविक बात समझ में आ गई। पलकराम साधु बड़े ही भोले थे और तुलसी साहब ने उनके यह कहकर कहा। तुलसी साहब ने कहा हे पलकराम! मैं आपका दास हूँ और आपके चरणों में ही मेरा निस्तार है।

॥ पलकराम ॥

तुलसी स्वामी करौ बखाना। या का मन में भर्म समाना॥

अर्थ–हे तुलसी स्वामी इस तथ्य का वर्णन करें क्योंकि मेरे मन में भ्रम समा गया है? (जिसका निराकरण आवश्यक है)।

॥ तुलसी साहिब ॥

पलकराम सुनियौ बिधि बानी। बावे की बिधि कहौं बखानी॥
वे गोरख बिधि नहीं बताई। ये गोरख है तन के माहीं॥
पिंड माहिं ब्रह्मंड समाना। गोरख तन में संत बखाना॥
मन बस गोइंद्री के माहीं। गोरख गोरख नाम कहाई॥
मन गोरख को गुष्ठ सुनाई। ये बावे अपने मुख गाई॥
नौ में नाथ द्वार मन जाई। नौ नथ मन नौनाथ कहाई॥
चौरासी चौरासी खाना। करि करि गुष्ट फेरि मन आना॥
गोरख मन गोइंद्री साथा। नभ नौद्वार सोई नौ नाथा॥
नित नित परै चौरासी खाना। मन चौरासी सिद्ध बखाना॥

॥ तुलसी साहब ॥

अर्थ–हे पलकराम! विधिपूर्वक कही हुई इस वाणी को सुनें। मैं बाबा साहब की विधि का वर्णन करता हूँ। उन्होंने गोरखविधि का वर्णन नहीं किया है–ये गोरखनाथ तो शरीर के भीतर हैं। इस पिंड में ही सारा ब्रह्मांड समाया हुआ है और सन्त ने वर्णन किया है कि गोरखनाथ इसी शरीर में ही हैं यह मन शरीर की इन्द्रियों के भीतर बसा है–इसी को गोरख गोरख (शरीर द्वारा रक्षित, शरीर द्वारा रक्षित) कहा जाता है। इन्द्रियों के नव द्वारों पर नौ नाथ स्थित हैं–इसी से नौ इन्द्रियों में नथे हुए नौ नाथ कहाए जाते हैं। ये सिद्ध नित्य-नित्य चौरासी भवसागर की योनियों में भटकते रहते हैं–इसीलिए उन्हें चौरासी सिद्ध कहा जाता है क्योंकि ये बार-बार मन से गोष्ठी (साथ रहकर) करके पुन: आते रहते हैं।

कही बावे नानक मुख बानी। तन भीतर अंतर पहिचानी॥
जो संतन मुख भाखि सुनाई। सो सब तन अंदर में गाई॥
दसवाँ महल गगन के माही। सूरति चढ़ि द्वारा दस जाई॥
ता को दसवाँ महल बताइई। सूरति चढ़ि कीन्ही पतसाही॥
सूरति इत उत चढ़ि दस द्वारा। तेहि दसवाँ पतसाह बिचारा॥
गुरु गोबिंद जो बावे कहिया। पातसाह दसवाँ बतलइया॥
नौ को तजि दसवें घर गइया। दसवाँ सातसाह येहि कहिया॥
नानक सूरति चढ़ी अकासा। नौ को तजि दसवें में बासा॥
दसवाँ महल दस द्वार कहाई। सूरति साथ नाम पतसाही॥
पातसाह दस महल बताई। नानक येहि बिधि मुख से गाई॥
पलकराम मन में हुलसाना। तुलसी सब घट माहिं बखाना॥

अर्थ–बाबा नानक साहब ने अपने मुख से यह बात बताई है और कहा है कि इस शरीर के भीतर जो अन्तर्तत्त्व हैं, उन्हें पहचानों। सन्तों ने इसी बात को अपने मुख द्वारा कहकर बताया है और ये सारे तत्त्व शरीर के अन्तर्गत कहे जाते हैं। गगन के अन्तर्गत दसवाँ महल है–सूरति समाधि द्वारा चढ़कर उस द्वार तक जाया जा सकता है। उसी को दसवाँ महल कहा जाता है और सूरति द्वारा चढ़कर वहीं बादशाही की जाती है। सुरति समाधि द्वारा इधर-उधर फैले दसों द्वार पर स्थित होने के उन्हीं को दसवाँ बादशाह कहा जाता है। बाबा साहब नानक जी ने जो कहा है, उसी को गुरु गोविन्द सिंह ने दसवाँ बादशाह कहा है। उसको छोड़कर दसवें घर को पकड़ा है–इसीलिए उसे दसवाँ बादशाह बतलाया है। बाबा साहब नानक जी की सुरति समाधि नौ को छोड़कर दसवें द्वार चढ़ती है और यह दसवाँ महल दसवाँ द्वार कहा जाता है इसीलिए सुरति के साथ इसके नाम में बादशाहियत लग गई। इस बादशाह के दस महल बताये गये हैं इसीलिए नानक साहब ने अपने मुख से स्वयं इसका वर्णन किया है। पलकराम मन-ही-न आनन्दित हो उठे कि तुलसी साहब ने तो सारी बातें घट के ही अन्तर्गत बता दी।

॥ प्रश्न पलकराम ॥ चौपाई ॥

तुलसी स्वामी पूछौं बानी। बूझ मता की करौ बखानी॥
मन स्रुति कहौ कहाँ से आई। कस कस दसवें महल समाई॥
आदि अंत बिधि बिधि समझावौ। तब को हता सोई बतलावौ॥
मूल भेद मोहि कहिये स्वामी। तब को हता सही पहिचानी॥
मूल को भेद भिन्न कहौ गाई। है बाहर कै तन के माहीं॥

अर्थ–हे स्वामी तुलसी साहब! मैं आपसे एक बात पूछता हूँ। आप समझ कर उस मत का वर्णन करें। यह मन की श्रुति कहाँ से आई है, यह बतायें और यह ओंकार कैसे दसवे महल में समा गई? विधिपूर्वक इसका आदि-अन्त समझाएँ–तब कौन था, यह सही-सही बतलाएँ। हे स्वामी! मुझसे इसका मूलभेद कहें–तब कौन था', इसका सही पहचान बतलायें? हे स्वामी! इसके मूल का रहस्य भिन्न रूप से मुझे बताएँ और यह भी बताएँ कि यह शरीर के भीतर है, यह शरीर के बाहर॥

॥ उत्तर तुलसी साहब। चौपाई॥

पलकराम मैं तुम्हरौ दासा। सुन बिधि कहौ बचन परकासा॥
पलकराम भाखूँ बिधि बानी। जब नहिं आदि अंत नीसानी॥
नहिं तब बेद बिधि का चीन्हा। नहिं तब हता बेद जिन कीन्हा॥
नहिं तब आदि निरंजन देवा। ब्रह्मा बिष्नु महेस न सेवा॥
नहिं तब आदि सक्ति निरमाया। नाम बिदेह धरी नहिं काया॥
नहिं तब पाँच तत्त ब्रहंडा। नहिं चर अचर खानि भया अंडा॥
नहिं बिस्तर सरीर बनाया। सूर चंद आकास न माया॥
नहि तब नादि आदि कछु अंता। जगत न रहे भेष और पंथा॥
नहिं तब रूप रेख नहिं काया। मन बुधि सुरति एक नहिं आया॥
जब निरगुन हुआ हता न भाई। सरगुन की कहौ कौन चलाई॥
जोति निरंजन नहिं निरंकारा। सास्त्र पुरानन बेद बिचारा॥

अर्थ–हे पलक राम! मैं तुम्हारा दास हूँ। जिस प्रकार मैं इसको साथ करूँगा, आप सुनें। यह उस समय की बात है–जब बेदविधि की कोई पहचान नहीं थी और उस समय वेद का कर्त्ता भी नहीं था। उस समय कोई आदिम निरंजन देवता भी नहीं थे–न ब्रह्मा थे, न विष्णु थे और न शिव तथा न उनके प्रति सेवाभाव की सृष्टि की निर्मातृ आदि शक्ति भी नहीं थी और इस शरीर का नाम भी विदेह नहीं रखा गया था। ब्रह्मांड में तब पाँच तत्त्व भी नहीं थे–न तब सम्पूर्ण चराचर ब्रह्मांड का अंग ही था। उस समय न तो शरीर और आकाश थे, न सूर्य तथा चन्द्रमा थे और न माया थी।

न तब अनादि तत्त्व था, न आदि तत्त्व तथा संसार में न साधु वेष थे और न धर्म पंथ। तब किसी का न कोई रूप था, न लक्षण था, न शरीर था तथा मन, बुद्धि एवं सुरति किसी एक की भी स्थिति नहीं थी। उस समय न निगुर्ण था और हे भाई! सगुण की बात तो चलाई ही नहीं जा सकती। न निरंजन था, न ज्योति थी, न निरंकार था, न शास्त्र, न पुराण थे और न वेदांग॥

॥ प्रश्न पलकराम। चौपाई॥

पलकराम पूछै अस बाता। कस कस हता कहौ बिख्याता॥
कहौ बिध भाखि अगम की बानी। तब को हता कहौ सहदानी॥

अर्थ–पलकराम ने इस संसार की बात पूछी उस समय कैसा-कैसा था, सारी तथ्य तथ्य बातें कहें। विधिपूर्वक कहकर उन अगम की बात कहें–उस परम तत्त्व के लक्षण के रूप में कौन था, बताएँ।

॥ उत्तर तुलसी साहिब। चौपाई॥

पलकराम सुनियौ दै कानी। आदि अंत भाखौ सहदानी॥
चौथे पद सत मत नामा। पातसाह दस याहि बखाना॥

नानक सुरति महल पर कीन्हा। पक्के पात साह सोइ चीन्हा॥
नानक सूरति चढ़ी अटारी। वाहगुरू पद निरखि निहारी॥
वाह गुरू चौथे पद बासा। गये नानक सतनाम निवासा॥
नानक बिधि सब अपनी भाखी। जो जो लखा अगम की आँखी॥
वा की नकल ग्रंथ में गाई। जगत अबूझ बूझ समझाई॥
नि:अच्छर अच्छर में नाईं। तेहि की नकल ग्रंथ बिधिगाई॥

अर्थ–हे पलकराम! मेरी बातें कान देकर सुनें, आदि-अन्त की पहचान मैं बता रहा हूँ। चौथे पद पर स्थित 'सत्य पद' के नाम था, वही दसवें बादशाह के रूप में कहा जाता है। चूँकि नानक देव ने सुरति महल में निवास किया था, इसीलिए उन्होंने उस सच्चे बादशाह को पहचाना। नानक की सुरति इस दसवीं अटारी पर चढ़ी थी–इसीलिए उन्होंने 'वाह गुरु' के स्थान को भलीभाँति देख लिया था। वह वाह गुरु का चौथे स्थान पर निवास है–और नानक देव जी उन सत्य नाम की निवास स्थली तक पहुँचे थे।

नानक देव ने सम्पूर्ण विधियाँ अपनी कही हैं और उन्होंने पक्के बादशाह को पहचाना है और वही कहा है– जिसे अपनी प्रज्ञाचक्षु से देखा है। उसी की नकल नानक पंथ में गाई गई है–और अबूझ जगत को समझाकर सभझाया गया है। नि:अक्षर तत्त्व को अक्षर में समाविष्ट और फिर उसकी नकल ग्रंथों में की गई॥

॥ प्रश्न पलकराम॥ चौपाई॥

तुलसी स्वामी करौं बखाना। नि:अच्छर का कौन ठिकाना॥
नि:अच्छर बासा केहि ठाईं। ताकी बिधि मोहि बरनि सुनाईं॥
को है सब का सिरजनहारा। कस कस किया आदि बिस्तारा॥

अर्थ–हे तुलसी साहब! नि:अक्षर की निवास स्थली क्या है, इसका वर्णन आप करें। नि: अक्षर का निवास किस स्थान पर है? उसके रहस्य का वर्णन करके मुझे सुनाएं। समस्त सृष्टि का सर्जक कौन है? और उस आदि तत्त्व ने कैसे-कैसे सभी तत्त्वों का विस्तार किया?

॥ उत्तर तुलसी साहिब॥ चौपाई॥

सत्त नाम सुत निरगुन राई। तास अंस जोती उपजाई॥
जोती निरगुन हते न तेही। रह सतनाम पुरुष बैदेही॥
जब ओंकार आदि नहि भाई। पूरन ब्रह्म हते नहिं जाई॥
ररंकार अच्छर नहिं काला। तब नहिं मन मन कीन्हीं जाला॥
ओअँग सोहंग हते न भाई। आदि अंस मद्ध कछु नाहीं॥
सत कर आदि सुरति घटमाहीं। नि:अच्छर में आनि समाई॥
सूरति नि:अच्छर से आई। सूरति सोहँग को उपजाई॥

अर्थ–निर्गुणनाम का पुत्र सत्तनाम है, उसी के अंश से ज्योति उत्पन्न हुई। और उस समय निर्गुण न ज्योति और न निर्गुण थे और उस समय सत्यनाम अनासक्त पुरुष था। जब न आदि तत्त्व ओंकार था और न पूरन ब्रह्म ही था। न उस समय रंकार तत्त्व था और तक न मन ने मन का जाल बिदा रखा था। उस

समय न ॐकार एवं अहम् थे न सोहं था तथा आदि मध्य एवं अन्त कुछ भी नहीं थे। उस अनादि सत्य तत्त्व का अंश सुरति घट में आकर निः अक्षर में समाविष्ट हो उठा। सुरति निः अक्षर में आकर सोहम् की उत्पत्ति की।

ता को बास अगमपुर ठामा। सोहँग कीन्ह सकल बिधाना॥
आगे भेद कोऊ नहिं पावै। स्वाँसा सोहँग कहि गोहरावै॥
सोहँग का कोइ भेद न पाई। सोहँग स्वाँगा हैं नहि भाई॥
तत्त पाँच गुन तीनि की स्वाँसा। सोहँग सुरति कीन्ह परकासा॥
सोहँग है ब्रह्मंड के पारा। सोहँग सब में कीन्ह पधारा॥
नाम भेद वाहू से न्यारा। नानक सत्त नाम पद सारा॥
चौथा पद सतनाम अकाया। ता न परे अनाम अमाया॥
नाम सुरति बिधि सबके माहीं। अगम भेद कोऊ नहिं पाई॥
चहूँ लोक में ब्यापक नामा। न्यारा चहूँ लोक में जाना॥
वा की संध सुरति नहिं पाई। सुरति संघ राह नहिं जाई॥
मूल नाम जानै नहिं कोई। ता तें सूरति रही बिगोई॥
निरगुन सरगुन सत्र ठहरावै। ता के आगे भेद न पावै॥
पलकराम सुनियौ दै काना। निरगुन अच्छर ब्रह्म बखाना॥

अर्थ—उसका निवास अगमपुर में है और इसी सोऽभू ने अपना सम्पूर्ण विधान किया है। इसका आगे का रहस्य कोई नहीं समझ पाया है। व्यक्ति अपनी श्वास को ही 'सोऽभू' कहकर पुकारते हैं। इस सोऽहं का रहस्य कोई नहीं पाते। हे भाई, खास, सोऽम् नहीं है। श्वास में पाँछ तत्त्व हैं, तीन गुण हैं और यही सोऽहं सुरति को प्रकाशित (व्यक्त) करता है। सोऽहं ब्रह्मांड का प्रकाश (अभिव्यक्ति) है और इस सोऽहं का ही समग्र सृष्टि में प्रसार है। नाम तथा भेद उससे भी विलक्षण हैं—और नायक का नाम ही सत्य पद है। चौथा पद सत् नाम है, वह अशरीरी है, उससे परे अनाम और अमाया तत्त्व है। सुरति से सम्बद्ध नाम एवं विधि सभी को ज्ञात हो जाता है किन्तु उस अगम्य का रहस्य कोई नहीं समझ पाता। चारों लोकों से व्यापक उसका नाम है और वह चारों लोकों में विलक्षण तत्त्व के रूप में जाना जाता है। सतनाम की लोक से सन्धि को सुरति भी नहीं जानती क्योंकि सुरति इस सन्धि की राह पर ही नहीं जाती। उसका मूल नाम कोई नहीं जानता—इस कारण सुरति उससे पृथक् ही रहती है। सभी-निर्गुण एवं सगुण जैसा उसका विभाजन करके निर्गुण को प्रायः अक्षर ब्रह्म कहा जाता है।

निरगुन ररसाःकर है सोई। निरंकार काल है जोई॥
निरगुन नाम निरंजन होई। संत काल भाखै तेहिं सोई॥
सत्तनाम इनहूँ से न्यारा। ये बावे मुख कही बिचारा॥
निरगुन कहियत है ओंकारा। सत्तनाम बिधि अगम अपारा॥
घट में सुरति आदि से आई। नाम निअच्छर अच्छर नाहीं॥
निः अच्छर अच्छर बिस्तारा। नाम भेद वोहू से न्यारा॥
नाम डोरि है सब के माहीं। नाम भेद कोउ चीन्है नाहीं॥

निरगुन सरगुन नाम बतावै। सत्त नाम के मरम न पावै॥
बिन सतसंग समझ नहिं आवै। सतगुरु बिना राह नहिं पावै॥
चौथा पद सतनाम बसेरा। वाह गुरू का वाँही डेरा॥
वाह गुरू सतनाम कहाये। ये बावे मुख अपने गाये॥

अर्थ–यह निर्गुण वही 'निरंकार' है और निरंकार को ही काल कहते हैं। निर्गुण नाम से निरंजन ब्रह्म है और सन्तगण उसे काल ही मानते है। 'सत्तनाम' इस दोनों से विलक्षण है–और बाबा नानक साहब ने इस विषय पर विचार किया है। निर्गुण को ओंकार भी कहा जाता है और यह सत्यनाम से अगम तथा अपार है। इस शरीर में सुरति तत्त्व का प्रवेश आदि से ही हुआ है। अतः उसका नाम निःअक्षर है, अक्षर नहीं। निः अक्षर तत्त्व ने ही अक्षर तत्त्व का विस्तार किया है और नाम भेद उससे भी विलक्षण है। सभी के बीच नाम तो स्वयं एक डोरी है किन्तु नाम भेद की कोई पहचान नहीं। नाम ही निर्गुण तथा सगुण को बताता है किन्तु सत्यनाम का रहस्य नहीं ज्ञात होता। बिना सत्संगति के यह समझ में नहीं आता और बिना सत्गुरु के मार्ग नहीं मिलता। इस चौथे स्थान पर राजा सलाम का बसेरा है और 'वाह गुरु' का वहीं स्थान है। वाह गुरु ही सत्नाम कहे जाते हैं, इस बात को बाबा साहब ने अपने मुख से कहा है। सुरति पर चढ़कर जो आकाश को दौड़ता है, वही 'वाह गुरु' पद में जाकर समाविष्ट हो उठता है। सतनाम के पद पद्य में है, इसे बाबा साहब ने स्वयं अपने मुख से बताया है।

सूरति चढ़ै गगन को धावै। वाह गुरू पद जाइ समावै॥
वाह गुरू पद पदम मँझारा। ये बावे मुख भाखा सारा॥
वाह गुरू मुख भाखि बखानै। वाह गुरू का मरम न जानै॥
वाह गुरू चौथे पद पारा। सूरति चढ़ि देखै सत सारा॥
वे बावे मुख भाखि बखानी। वाह गुरू चौथे पद जानी॥
बावे वाह गुरू बतलावा। तुमने याही गुरू मन लावा॥
याहि गुरू जगत के कीन्हा। वाहिगुरू का मरम न चीन्हा॥
याहि गुरू जग सभी भुलावा। चेला पंत दुकान लगावा॥
वाह गुरू पद इनसे न्यारा। निरगुन सरगुन दोउ के पारा॥
ये नानक बिधि भाखि बखाना। पलकराम सुनियौ दै काना॥
परे साध कढ़ियाव बतावा। तुम दुकान बनिये बिधि लावा॥
कढ़ियावै स्तुति परे को साधा। यों बावे भाखि बिख्यादा॥
सुरति काढ़ि पर साधै कोई। तुम विख्यात कढ़ाव हलुवे बिधि जोई॥

अर्थ–जो सुरति पर चढ़कर शून्याकाश में दौड़ता है, वह वाह गुरु के स्थान में जाकर समाविष्ट हो उठता है। मुक्ति तो गुरू के पद-पद्म के मध्य ही है, सब कुछ इसे बाबा साहब बता चुके हैं। लोक 'वाह गुरु' कहकर बराबर वर्णन करते है, किन्तु वाह गुरू का रहस्य नहीं जानते? वाह गुरू चौथे पद से भी ऊपर हैं और सुरति पर चढ़कर उसका सार तत्त्व सभी देखते हैं। स्वयं बाबा साहब इसे अपने मुख से बता चुके हैं कि वाह गुरु को चौथा पद समझो? बाबा साहब ने ही वाहगुरू शब्द बतलाया है और आपने भी उसी गुरु में ही मन लाया है॥ इसी 'वाह गुरु' ने संसार को बनाया है, किन्तु हमने 'वह गुरु' का रहस्य नहीं समझा है। इस वाह गुरु ने ही सारे संसार को भुलावे में रख छोड़ा है–और उनके शिष्य

धर्म पंथ की दूकान चलाते हैं। 'वाह गुरु' का पद सबसे विलक्षण है और वह निर्गुण तथा सगुण दोनों के परे है। नानक जी ने इनकी यही विधि बना रखी है, हे पलकराम! कान देकर सुनो। तुमने तो जैसे-बनिये की दूकान लगा ली है क्योंकि साधु के यहाँ घी में निकाली हुई वस्तु को आवश्यक बताया गया है। बाबा साहब ने ऐसा बताया है-यह विख्यात है कि श्रुति के परे कढ़ियाव का महत्त्व है। सुरति काढ़कर कोई उसकी साधना करे, उसके स्थान पद तुमने उसे हलवे के काढ़ने की विधि जैसी बात कहते हो॥

हलुवा कढ़ाव न बावे गाई। सुरति काढ़ जिव घर को जाई॥
पंथी पंथ दुकान लगाई। लालच हलुवे लोभ बड़ाई॥
बावे कहा और बिधि लेखा। धर दुकान नहि किया बिबेका॥
बावे अगम निगम बिधि गाई। सुरति काढ़ जिव घर को जाई॥
भौजल छूटि जीव मुक्तावै। सूरति मिलै सब्द जब पावै॥
सूरति सब्द पंथ बतलावा। तुम हलुवे का पंथ चलावा॥
सूरति चढ़ै पंथ को जाई। तुम पंथी इक जाति बनाई॥
पंथी राह भेद नहिं पावा। येहि बिधि बावे पंथ न गावा॥
ये कढ़ाव मत परघट जाना। गुप्त संत मत और बखाना॥
संत मता सब दूरि बतावै। बावे संत दूरि गति गावै॥
में तौ कढ़ाव दरब संग होई। गुप्त संत औरै गति जाई॥
दरब कढ़ाव हलुवे में होता। जगत खरीद मुक्ति करि लेता॥
जा से समझि परा सब लेखा। संत गुप्त कछु औरै देखा॥

अर्थ-हलुवे के कढ़ाव की बात बाबा नानक साहब ने नहीं की है, वरन उन्होंने 'सुरति को काढ़ कर जीव अपने घर को जाता है, कहा है। नानक पंथियों ने इस पर पंथ की दूकान चला दी और लालच वश हलुवे का लोभ बढ़ा दिया। बाबा साहब ने एक दूसरी विधि का उल्लेख किया था और दूकान रखकर इसका विवेचन नहीं किया था। बाबा साहब ने आगम एवं निगम (शास्त्र और वेद) की विधि का गान किया था। उनका तो कथन यह था कि सुरति में जीव स्वयं को काढ़कर (परिपक्व बना कर) अपने मूल स्थान के लिए गमन करता है। भवजाल से छूटकर जीव मुक्ति प्राप्त करता है, यह तब होता है, जब सुरति से मिलाप कर जब वह संतों का 'सबद' तत्त्व प्राप्त करता है। यह सुरति सबद पंत कहा गया है और तुमने हलवे का पंथ चला दिया। सुरति पर चढ़कर जब संत उस पंथ तक जाता है, इसमें तुमने पंथी को एक जाति बना दिया। कोई अन्य पंथी इसका मार्ग तथा इसका भेद इस प्रकार नहीं प्राप्त करता और न नानक साहब ने ऐसा कोई मार्ग ही बताया है। यह कढ़ाव का मत दूसरे के घट में समझो और सन्तों का गुप्त मत कुछ और कहा गया है। सन्तों के मत से यह सब लोक संसक्ति के बहुत दूर है और बाबा साहब भी सन्तों की गति को इस लोक संसक्ति से बहुत भिन्न बताते हैं।

कढ़ाव तो लोक में द्रव्यों के साथ होता है जबकि गुप्त संत गति कुछ और है। अनेक ग्रव्यों को मिलाकर हलुवे का कढ़ाव होता है और संसार उसे खरीद कर अपनी मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इस बात से इसका सारा मतलब समझ में आ जाता है किन्तु सन्तों का गुप्त मत कुछ और ही देखा है।

पलकुराम उवाच ॥ चौपाई॥

तुलसी स्वामी सत्त सँवारा। संत मता सब गुप्त पुकारा॥
स्वामी तुलसी जो तुम भाखी। बावे कही मिली सब साखी॥

सूरति सब्द पंथ बिधि गाई। येहि बिधि बावे ग्रंथ सुनाई॥
बावे बचन और तुलसी बानी। गुप्त कही सो भइ निसानी॥
निरंकार बेद बतलावै। आदि जोति बिधि भेद लखावै॥
इनका भेद जगत सब कहिया। संत का मता बेद नहिं पइया॥
संत कर मता बेद नहिं जानै। निरंकार और जोति बखानै॥
निरंकार बेद ने भाखी। जानै न संत मते की साखी॥

अर्थ–हे तुलसी स्वामी! आपने सही कहा है। सन्त मतों में तो सारी बातें गुप्त तरीके से बताई गई हैं। हे स्वामी तुलसी साहब! आपने जो कुछ कहा है, ऐसा साक्ष्य मिलता है कि सब कुछ बनाना नानक साहब ने कहा है। 'सबद पंथ' के अन्तर्गत सुरति सबद का गान किया गया है और उसी विधि से बाबा साहब ने अपने ग्रंथ में भी यह सुनाया है। बाबा साहब के शबद और तुलसी की वाणी में दोनों ही सत्य हो उठे हैं–उन्होंने जो गुप्त कहा है, तुलसी के 'सबद' उसके प्रमाण हैं। उस परम तत्त्व को वेद निरंकार बतलाते हैं और आदि तथा ज्योति के द्वारा उसके रहस्य को समझाया जाता है। इनका सारा रहस्य समझाया जाता है। इनका रहस्य सारा संसार कहता है और संत मत के रहस्य को वेदों में जी नहीं पाया संसार बताता है। संत मत को वेद भी नहीं जानता है और वह उसे निरंकार और ज्योति कहता है। वेद ने उसे निरंकार बतलाया है–यह इसलिए कि वह सत्यगत की साक्षी नहीं जानता।

संत मदे को दूर पुकारा। निरंकार से होइहै यारा॥
निरंकार तौ बेद बतावा। संत मते का अंत न पावा॥
गुप्त संत मत न्यारा होई। जहँ निरंकार ज्योति नहिं दोई॥
निरकार को बेद बखाना। संत गुप्तमत और ठिकाना॥
सत्त पुरुष सतनाम कहाई। निरंकार जहँ जोति न जाई॥
तीनि लोक निरंकार समाना। बेद नेति विधि करते बखाना॥
सत्त नाम चौथे के माहीं। निरंकार नहिं बेदन पाई॥
इनके परे संत मत जाना। यों मत बावे गुप्त बखाना॥
तुलसी स्वामी ये मत सूझा। तुम्हरी कृपा गुप्त अस बूझा॥
संत मता कछु इनमें नाहीं। संत मता बिधि औरै राही॥
ये कढ़ाव बिधि कर्म पसारा। वाह गुरूइन बिधि से न्यारा॥
ये तौ याह गुरू जग नाता। वाह गुरू बिधि औरहि बाता॥
याहि गुरू ने कढ़ाव बखाना। वाह गुरू मत संतन जाना॥
याहि गुरू चेला बिधि राही। पौड़ी चेला दीन्ह सुनाई॥

अर्थ–निरंकार से भिन्न होकर संत मत को पृथक् रूप से बताया गया है। वेद तो उसे निरंकार कहता है, वह संतमत का अन्त नहीं पाता। गुप्त संत मत सबसे विलक्षण है:और वहाँ उस मत में निरंकार तथा ज्योति नहीं है। निरंकार तत्त्व को तो वेद ने बताया है–सन्तों के गुप्त मत का अगम्य दूसरा स्थान है। सन्त पुरुष सतनाम कहे जाते हैं–जहाँ निरंकार की ज्योति का प्रकाश भी नहीं पहुँच पाता। तीनों लोकों में निरंकार समाये हुए हैं और वेद 'नेति नेति' विधि से उसका वर्णन करता है। सत्तनाम तो

चौथे का निवासी है–इस मत को बाबा साहब ने गुप्त रूप में कहा है। तुलसी स्वामी को भी यही मत समझ में आया है और आपकी कृपा से ही मुझे भी यह गुप्त मत समझ में आ चुका है। इनमें (जो कहा जा रहा हू) संतमत नहीं है और सन्त मत कुछ भिन्न है और उसके पंथी भी भिन्न हैं। यह कड़ाव की बिधि तो कर्म जंजाल है और 'वाह गुरु' का मत इन सबसे भिन्न है। यह मत तो वाह गुरु नहीं–याह गुरु है, और इसका सम्बन्ध यमराज से है–वाह गुरु की विधि कुछ और प्रकार की है। याहि गुरु ने कड़ाव का वर्णन किया है, वाह गुरु के मत को सन्तों के मत से जाना गया है। इस प्रकार गुरु और चेला दोनों अपने ढंग के राही हैं और चेला ने पोथी पढ़ने वाले को गुरु बता दिया॥

पौड़ी पढ़ पढ़ जन्म गँवाया। पौड़ी कछु भेद न पाया॥
पौड़ी का कछु अरथ बिचारै। पौड़ी चढ़ि तब अगम निहारै॥
पौड़ी नाम सीढ़ी सहदानी। सुरत चढ़ी अगम घर जानी॥
पौड़ी पढ़ि पढ़ि जन्म गँवाया। बावे पौड़ी सुरति चढ़ावा॥
येहि बिधि स्वामी बूझ में आई। तुम ने कही सो सत्त समाई॥
बावे गूढ़ गुप्त मत भाखी। तुमने कही सूझि तब आँखी॥
हम पौड़ी पढ़ने बिधि जाना। तुमने पौड़ी चढ़न बखाना॥
तुम्हारा बचन सत्त कर माना। पलकराम के हृदे समाना॥

अर्थ–पौढ़ी ने पढ़-पढ़कर जन्म नष्ट कर दिया किन्तु उस पौढ़ी ने परमार्थ का कोई रहस्य नहीं समझा। पोथी पढ़ने वाले का कुछ अर्थ तो विचार करो और पौढ़ी आगे चढ़कर उस अगम्य तत्त्व को देखता रहता है। पौढ़ी (पोथी पढ़कर ज्ञान बताने वाला) नाम की पहचान की एक सीढ़ी है और सुरति पर चढ़कर वह अगम के घर जाती है। इस पौढ़ी को पढ़ पढ़ कर व्यक्ति ने अपना सारा जन्म नष्ट कर दिया–बाबा साहब पौढ़ी को सुरति तक जाने का एक साधन मानते हैं। हे स्वामी! इस प्रकार सारे तथ्य सुनाई पड़ गए तुमने जो कुछ कहा, वह मेरे सत्य में समाविष्ट होकर सत्य बन गया। बाबा साहब ने अत्यन्त गूढ़ तथा गुप्त मत बताया है, और अब आपने समझाया तो वह सब ज्ञान चक्षु के समान प्रत्यक्ष हो उठा। हमने तो पौढ़ी को बढ़ने की विधि समझा था और अपने पौढ़ी को सुरति पर चढ़ने की विधि बताया है। मैंने आपके वचनों को सत्य समझकर स्वीकार कर लिया है और इस प्रकार ये सारी बातें पलक राम के हृदय में समाविष्ट हो उठी।

॥ बचन तुलसी साहिब। चौपाई॥

पलकराम पुनि हौ तुम साधा। बूझी बावे बचन समाधा॥
अस कोइ साध बिबेकी होई। संत मतें को बूझै सोई॥
संतन की जो बानी बिबेका। सोई साध को मिटि है धोका॥
संत मते की राह नियारी। पलकराम तुम खूब बिचारी॥
जो कोइ संत सरन में आवै। दीन होइ संतन सिर नावै॥
आपा पंथ भेष नहिं राखै। दृढ़कर सत्त सत्त मत भाखै॥
संत बिना और टेक न मानै। पंथ टेक सब झूठी जानै॥
पंथा पंथी भेष भुलाना। ता से संत मता नहिं जाना॥
संत सरन पापी तरि जाई। जो निंदक आवै सरनाई॥

बिना संत नहिं लगै ठिकाना। यह बिधि बावे कही बखाना॥
निंदक संत पातकी भारा। बावे कही न उतरै पारा॥
जो कोइ सत्त संत को जाना। ता की सूरति मिलै ठिकाना॥
बिना संत सूरति कहँ जाई। बिना संत संघ कौन लखाई॥

अर्थ–हे पलकराम! आप तो साधु हैं और आपने बाबा साहब की समाधि से निकलने वाली बातों को समझ लिया। इसी प्रकार का कोई विवेकी साधु हो सकता है और वह सन्त मत को समझ सकता है। सन्तों की बाणी का जो विवेक है:उसी से साधु जनों का अविवेक (संदेह) दूर हो सकता है। हे पलकराम! आपने खूब समझ लिया है, कि सन्त मत की राहें अलग होती हैं। जो कोई सन्तों की शरण में आता है और दीन होकर सन्तों को शीश झुकाकर जानना चाहता है–उसे अपने पंथ और भेष का त्याग करना पड़ता है और सत्य रूप से मन को दृढ़ करके उसे सन्त मत में रखना पड़ता है। संत मत के अतिरिक्त और किसी अन्य मत में समर्पित न हो और अन्य पंथों के प्रति समर्पण को यह मिथ्या समझे और अन्य मार्गों के प्रति समर्पण को यह मिथ्या समझे। अन्य मार्गों के पंथी पंथ और भेष रचना में भुला जाते हैं, इसीलिए उन्हें संत मत का ज्ञान नहीं होता। यदि संतों का निंदक भी उनकी शरण में आता है तो उनकी शरण में जाकर वह पापी भी तर जाता है?

बिना सन्तों के कोई ठौर ठिकाना नहीं लगता, इस प्रकार, बाबा साहब ने इसका वर्णन किया है। संतों की निन्दा करने वाला व्यक्ति बड़ा भारी पातकी होता है, बाबा साहब ने बताया है कि वह किसी भी प्रकार से भवसागर से पार नहीं होता। जो कोई व्यक्ति काल संत को जानता है--उसको सुरति में ही स्थान मिलता है। बिना सन्तों के सुरति तक कैसे जाया जा सकता है–और बिना संतों का साथ लिए किसको परमार्थ तत्त्व दिखाई पड़ा है।

॥ पलकराम उवाच। दोहा॥

पलकराम तुलसी कही, समझि लखी बिधि खूब।
रोम रोम में रमि रहा, नानक साह महबूब॥ १॥
सब में नानक रमि रहा, कही बावे मुख आप।
चर और अचर बताइया, दूजा लखै सो पाप॥ २॥

अर्थ–पलकराम ने तुलसी साहब से कहा कि आपने सभी बातों से समझकर अच्छी तरह देखा है। नानक स्वामी का प्रिय आपके रोएँ-रोएँ में रम रहा है। स्वयं नानक बाबा साहब ने अपने मुख से कहा है कि मैं सभी के मन में रम रहा हूँ। मैंने सभी को सचराचर में व्याप्त तत्त्व को समझा दिया है और यदि कोई दूसरे को देखता है तो वह पाप कर्म है।

॥ बचन तुलसी साहिब। सोरठा॥

नानक कही पुकार, पलकराम बिधि ग्रन्थ में।
मैं बसूँ सब के माहि, नानक ये मुख से कही॥

अर्थ–हे पलकराम! नानक साहब ने अपने धर्मग्रंथ में पुकार कर कहा है कि मैं सबके हृदय में निवास करता हूँ और नानक साहब ने इसे अपने मुख से भी बताया है।।

॥ चौपाई॥

पलकराम सुनियौ बिधि रीती। पंथ भेष सब करैं अनीती॥
कहि नानक मैं सब के माहीं। ये चेला करै कौने राही॥

नानक बिना कोई जिव नाहीं। ये चेला कस करै बनाई॥
जहँ नानक खुद आप बिराजा। सेवक कहै कौन बिधि साजा॥
सब में नानक आप समाना। तौ पुनि सभी गुरु सम जाना॥
ये बिधि या को बूझि बिचारा। जब होइ है जग से निरवारा॥
नानक सब में आप बखाना। तुमने जेहि सेवक करि ठाना॥
ये तौ बड़ी अनीती जानौ। नानक को सेवक करि मानौ॥
पंथ भेष याही में भूला। ये तौ कर्म भेद बिधि मूला॥
सब में स्वामी संत बतावा। तुम स्वामी के स्वामि कहावा॥
तुम निस्तार राह नहि पाई। स्वामी को सेवक ठहराई॥
सेवक होइ नन्हाँ रहै भाई। स्वामी पद को दूर बहाई॥
मोटे भये बहे जग माहीं। नन्हें नौका पार लगाई॥
चीनी बारू माहिं गिराई। हाथी मोटे हाथ न आई॥

अर्थ–हे पलकराम जी! इस विधि की रीति सुनें, यह पंथ तथा भेष रचना अनीति उत्पन्न कर देती है। नानक साहब ने कहा कि मैं सबमें सर्वव्याप्त हूँ किन्तु उनके ये शिष्य किस मार्ग का अनुगमन करते हैं, मालूम नहीं॥ बिना नानक देव के किसी जीव का अस्तित्व नहीं है किन्तु ये चेले क्या करते हैं, इसे देखें। जहाँ नानक स्वयं आप ही विराजमान हैं, किन्तु उनके सेवक पूछते हैं, उन्हें किस विधि से सजाया जाए। सभी में नानक स्वयं समाविष्ट हैं–इसलिए सभी को गुरु समान समझो। इस विधि से ही जब ये समझ-विचार रखेंगे तभी इस संसार में जीवों का निराकरण हो सकेगा। नानक साहब ने सभी में स्वयं को बताया था और उसमें तुम सबकों का स्थान बना दिया। इसकी बहुत बड़ी अनीति समझो–और नानक को गुरु नहीं, सेवक करके समझते हो। पंथी एवं भेष रचना वाला व्यक्ति इन्हीं सब में भूला हुआ है। संत कहते हैं कि स्वामी सबमें हैं–और तुम स्वामी के स्वामी कहलाते हो? तुमने साधना यापन का मार्ग नहीं प्राप्त किया है–स्वामी के स्वामी कहलाते हो? तुमने साधना यापन का मार्ग नहीं प्राप्त किया है–स्वामी को सेवक बताते हो। वह सेवक है, ऐसा कहकर उन्हें नन्हा (छोरा) बताते हैं और स्वामी जी श्रेष्ठता के स्थान को दूर भगा दिया। संसार में जो मोटे हो जाते हैं, वे भवसागर में बह जाते हैं और जो छोटे हैं, वही नौका पार लगाते हैं। चीनी को बालू में मिला दो किन्तु वह चीनी हाथी के हाथ नहीं लगेगी–लगेगी तो चींटी के ही हाथ।

नन्हीं चींटी चुनि चुनि खाई। नन्हाँ रहै हाथ कछु आई॥
अब बावे मुख साखि बताऊँ। एक साखि मुख भाख सुनाऊँ॥

अर्थ–नन्हीं चींटी उस चीनी को चुन-चुन कर खाती है–यदि व्यक्ति नन्हा (शरणागत) होकर रहता है, तभी कुछ उसके हाथ लगेगा? अब मैं बाबा-साहब के मुख से उसकी साक्षी सुनाता हूँ। अपने मुख द्वारा एक साक्षी कहकर (सुनाऊँगा)।

॥ साखी॥

नानक नन्हाँ होइ रहै, जैसे नन्हीं दूब।
बड़ी घास जरि जायगी, दूब खूब की खूब॥

अर्थ–नानक साहब कहते हैं कि नन्हीं दूब की भाँति नन्हा होकर रहो-बड़ी घासें तो ऊष्मा से जल जाएँगी किन्तु दूब तो उसी प्रकार भली है–जैसे-भली वह जमी थी।

॥ चौपाई ॥

गुरू बने नहिं होइ गुजारा। चेला बनें मिलै कछु सारा॥
अब दादू की साखि बताऊँ। दादू कही सोई बिधि गाऊ॥

अर्थ–गुरु बनने से गुजर-बसर नहीं होगा–चेला बनने से बहुत कुछ सार तत्त्व प्राप्त हो जाएगा। अब मैं दादू की सात्री सुनाता हूँ। जैसा दादू साहब ने कहा है, उसी प्रकार कह रहा हूँ।

॥ साखी ॥

दादू मैं सब गुरु किया, पसु पंछी बनराय।
सूछम थूला खाली नहीं, सबही माहि खुदाय॥ १॥
तुलसी तू मैं जो तजै, भजै दीन गति जोइ।
गुरु नवै जो सिष्य को, साध कहावै सोइ॥ २॥

अर्थ–दादू साहब कहते हैं कि जैसा मैं सब कुछ हूँ, उसे गुरु ने किया है–पशु, पक्षी, बनराज सभी कुछ। इस संसार में सूक्ष्म तथा स्थूल उस परम तत्त्व से खाली नहीं हैं, सभी के हृदय में ईश्वर वर्तमान हैं॥ १॥ तुलसी साहब कहते हैं कि अहम् का जो परित्याग कर देते हैं, और शरणागत दीनों की गति से उसका भजन करते हैं, उस शिष्य के प्रति सभी नमन करते हैं और वही साधु कहलाता है॥ २॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी तत मत सब के माहीं। गुरू बने कछु हाथ न आई॥
येहि बिधि सब सब संत पुकारा। चेला बनै होइ निरवारा॥
तुलसी मैं अति नीच निकामा। मैं गुरु बिन कुछ नाहि बखाना॥
मैं किंकर संतन कर दासा। सतसगति में सुना बिलासा॥
अस अस संत सबन मिलि गाई। दास बने जिन जिन कछु पाई॥
तुलसी ता से पंथ न कीन्हा। भेष जगत भया पंथ अधीना॥
जो कछु संत पंथ बिधि गाँवा। सो बिधि पंथ कोऊ नहिं पावा॥
तुलसी मैं कछु जानौं नाहीं। पलकराम तुम्हरी सरनाई॥
मैं हौं संत चरन की लारा। बन्दौ चरनन बारम्बारा॥
संत बिना कोउ देखि न आना। सत सत सुरति संत को माना॥
मोरे ईष्ट भाव नहिं दूजा। संत समान और नहिं पूजा॥
तुलसी और इष्ट नहिं सूझै। सूरति सन्त चरन पर जूझै॥
जो कोइ कहै कह्यौ कस गाई। मैं तो संत चरन सरनाई॥
नानक कही येही बिधि बानी। संतचरन बिन और न मानी॥
सुखमनि संत चरन बिधि गाई। देखौ नानक ग्रन्थ मँझाई॥
और और जो संत अनेका। जिन सब राखि संत पद टेका।

जो महातमा भये अगारा। संत सरन सब सभी पुकारा॥
संत से अधिक कोऊ नहिं राखा। देखौ सब संतन की साखा॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि वह परमततत्व सबके हृदय में हैं, अतः गुरु बनने से कुछ हाथ नहीं आएगा। इसीलिए सारे सन्तों ने यही स्पष्ट रूप से कहकर बताया है कि चेला बनने से ही मुक्ति होगी। तुलसी साहब संत के लिए कहते हैं कि मैं अत्यन्त नीच तथा बिना किसी काम का और बिना गुरु के मैंने कोई तत्त्व निरूपण नहीं किया। मैं सन्तों का दास हूँ और मैंने उन्हीं संतों से सत्संगति का आनन्द सुनकर प्राप्त किया। ऐसा-ऐसा सभी सन्तों ने मिलकर बताया है कि जो-जो सन्तों के दास बने, उन्होंने कुछ प्राप्त किया है। इसीलिए मैंने कोई धर्मपंथ नहीं ग्रहण किया क्योंकि सारा संसार तो इस समय साधु भेष के अधीन है। संतों की पंथ विधि में जो गाया गया है (कहा गया है), उस पंथ विधि को इस संसार में किसी ने भी नहीं प्राप्त किया है। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं कुछ भी नहीं जानता, हे पलकराम! मैं तो तुम्हारी शरणागति में हूँ। मैं तो सन्तों की चरणों की संसक्ति हूँ और मैं उनके चरणों की वन्दना बारम्बार करता हूँ। बिना सन्त के उस परमतत्त्व को देख नहीं सका है—और संत ही को शत् शत् सुरति माना गया है। न मेरा कोई इष्ट है, न भाव-चरन् सन्त के सदृश अन्य कोई पूज्य नहीं है। तुलसी साहब कहते हैं कि मुझे कोई अन्य इष्टदेव सूझता नहीं—मेरी सुरति तो सन्त चरणों पर ही द्वन्द्व करती है। यदि कोई पूछता है कि आप बिना समझे यह कैसे समझाते हैं, मैं तो उसे केवल सन्तों की शरणागति मानता हूँ। नानकदेव ने भी इसी प्रकार बात कही है और उन्होंने भी सन्तों के चरणों के अतिरिक्त कुछ नहीं स्वीकार किया है। नानक देव के ग्रंथों को देखो, मैंने तो आनन्दित मन से सन्त चरणों क विधि का गान किया है।

और जो अनेक सन्त हुए हैं, जिन्होंने सन्तों के चरणों पर अपने मस्तक की टेक लगाई है—वे अगली श्रेणी के महात्मा बने हैं और सभी ने मिलकर सन्त के चरणों की पुकार की है। सभी सन्तों की साक्षी मानकर इसे देखो—इन संतों से बढ़कर कोई किसी का रक्षक नहीं बना है।

॥ दोहा ॥

संत सरन सब सब तरे, बिना संत नहिं अंत।
जा को संत लखाइया, पुनि तिन पायौ पंथ॥ १ ॥
देखौ आदि अनादि से, बेद न पावै पार।
तरदेवा जोगी जती, सब कहै संत अगार॥ २ ॥
सन्त लखी कोउ ना लखै, अगम रीति रस सार।
सन्त कृपा जेहि जेहि करैं, सो जन उतरे पार॥ ३ ॥

अर्थ–सन्त में चरणों में सभी के सभी तर जाते हैं, और बिना सन्तों के किसी को अन्तति सुलभ नहीं है। जिनको सन्तों में लक्षित कर दिया, उन्होंने ही सन्मार्ग प्राप्त किया है॥ १ ॥

हे पलकराम! देखो, उस आदि और अनादि तत्त्व से बेद भी पार नहीं पा सकता। तिरदेव, योगी, यती सभी कहते हैं कि सत्य तत्त्व सबसे प्रमुख है॥ २ ॥

उस तत्त्व को सन्त ने देखा है, और किसी ने भी नहीं, वह तत्त्व अगम्य रीति का और आनन्द (रस) का सार तत्त्व है, सन्तजन जिस-जिस पर कृपा कर दें, वही मनुष्य उस पार उतर सकता है॥ ३ ॥

॥ छन्द ॥

संतन गुन गाई अगम सुनाई। जिन जिन पाई पार भई॥ १ ॥
सब सब मिलिगावा महूँ सुनावा। अगम अथाहा आदि कही॥ २ ॥

देखौ निज बानी संत बखानी। जिन जिन जानी जानि लई॥ ३॥
सतसंगति गाई भर्म छुटाई। संत सहाई राह दई॥ ४॥
जगजीवन जानी अकथ कहानी। कोइ न मानी मार सही॥ ५॥
कर्मन के मैले बहु रस पेले। कर कर चेले भार लई॥ ६॥
मद मान पुजावै राह न पावै। चहूँ दिस धावै मर्म बही॥ ७॥
सत रीत न जानी संत बखानी। सुन सुन ज्ञानी कर्म रही॥ ८॥
को भाखै लेखा सुनै न एका। बाँधे टेका भाख बहे॥ ९॥
जड़ पाहन पूजै और न सूझै। बूझन चेतन चित्त गहे॥ १०॥
सतसंग न जाना सुनै पुराना। मन बुधि बानी बाद बहे॥ ११॥
तुलसी कहि गाई सत मत राही। जिन जिन पाई गाइ गहे॥ १२॥

अर्थ–जो जो सन्त उस अगम्य की गति को पाकर इस भवसागर से पार हो चुके है–उन्होंने उस परम तत्त्व का वर्णन करके सुनाया है। सभी ने मिलकर उसका वर्णन किया है और मैंने भी उसे सुनाया है:उसे अगम्य, अथाह तथा आदि ही कहा गया है॥ १-२॥

अपनी इस वाणी को समझो, इसका वर्णन सन्तों ने किया है और जिन-जिन लोगों ने उसे जाना है, समझकर बता दिया है। सत्संगति में इसे गया जाता है, इससे भ्रम छूटता है और ये सहायक सन्त सबके लिए आदि तत्त्व का वर्णन करते हैं।। ३-४॥

ये संसार के जीवन हैं, इन्हें जानो, इनकी कथा अकथनीय है और जो इन्हें नहीं स्वीकार करता, इस भवसागर में झेलते झेलता है। कर्मों के कारण आचरण एवं मन के मैले, नाना प्रकार के भोगों में संसक्त और शिष्यों को बन बनाकर और अधिक पाप का भार धारण करते है॥ ५-६॥

वे सच्चा मार्ग नहीं प्राप्त करते मद एवं मान से आक्रान्त अपनी पूजा कराते हैं, चारों दिशाओं में यश धन के लिए दौड़ते हैं–मान, सम्मान की भावनाएँ वही हैं। जिन सत्य की रीतियों का सन्तों ने वर्णन किया है, वे उसे नहीं जानते और ज्ञानियों की बातें सुन-सुनकर कर्म में ही प्रवृत्र रहते हैं॥ ७-८॥

उनका वर्णन कौन करे, वे किसी की भी बात नहीं सुनते-अपनी ही टेक बाँधे हुए–भेष रचना में बहे रहते हैं। जड़ पत्थर की पूजा करते रहते है, उन्हें अन्य कुछ सुझाई नहीं पड़ता और वे चैतन्य चेतनधारी होकर समझ नहीं पाते। पुराणादि निरन्तर सुनते रहते हैं, वे सत्संगति को नहीं समझते तथा मन, बुद्धि एवं वाणी के माध्यम से निरर्थक बहते रहते हैं। संत मत का राही यह तुलसी साहब इसी परमतत्त्व रूप सत्य का वर्णन करता रहता है–और जिन-जिन लोगों ने इसे प्राप्त किया, इसको आनन्दपूर्वक गाकर हृदय द्वारा ग्रहण भी किया है॥ ९-१२॥

॥ सोरठा॥

ये गति अगम अपार, संत सार गति कस लखै।
सकै संत के साथ, पकै चरन चित में चखै॥ १॥
सतगुरु दीन दयाल, करि निहाल अगमन दिये।
रहै चरन बिधि चाल, गहि अकाल तुलसी किये॥ २॥

अर्थ–इनकी गति अगम्य तथा अपार है, संतों की सारगति को ये साधारण जन कैसे देख सकते हैं, यदि हो सके तो सन्तों का साथ ग्रहण करो और जब उसका फल उनके चरणों में पके तो उसका

आनन्द लें॥ १॥ सत्गुरु दीनों के प्रति अत्यधिक दयालु हैं और हम सिष्यों को पूरी तरह से उपकृत करके अपना आगमन किया है? तुलसीदास तो निरन्तर उनके चरणों का साथ किया॥

॥ चौपाई॥

पलकराम अस कही बिचारी। दरसन किये भये सुख भारी॥
संत गती सुनि ग्रन्थ बखानी। तसतस तुलसी महिमा जानी॥
अब कहि पलक नैन भरि आये। हिरद उमगि दीन गति गाये॥

अर्थ–पलक राम इस प्रकार विचार करते हुए बोले कि आपका दर्शन किया जिससे अत्यधिक आनन्द मिला। ग्रंथों में जैसा कुछ सन्तों की गति के विषय में सुन रखा है, वैसी-ही मैंने तुलसी की भी महिमा समझी। ऐसा कहते हुए उनके नेत्रों की पलकें भर आईं, उनका हृदय उमंगित हो उठा और दीनता भरी गति से बोले।

॥ सोरठा॥

पलकराम कहै बात, नैन उमगि ढुरि ढुरि बहै।
लहै स्वाँस पर स्वाँस, बहै नीर धारा सही॥

अर्थ–पलक राम अपनी बातें कहते हैं किन्तु उनके नेत्रों से अश्रु उमंग उठा कर ढुरकते हुए बह रहे हैं। श्वासों पर श्वास उठ रही है और उनकी आँखों से प्रेमाश्रु की जलधारा बह रही है।

॥ चौपाई॥

पलकराम बिधि ऐसी देखी। जैसे साधू बिरह बिबेकी॥
सतसँग कीन्ह लीन मत माहीं। जस जस साध रीति सत चाही॥

अर्थ–पलकराम की ऐसी अवस्था देखी गई और विरह एवं विवेक की दशा में पड़ा हुआ साधु। विचारधारा में लीन होकर उन्होंने सत्संग किया और जैसे सत्य को प्राप्त करने की रीति है, ठीक उसी प्रकार से उन्होंने सत्संगति की॥

॥ दोहा॥

पलकराम मत दीन गति, तुलसी कही बिचार।
साथ लच्छ बिधि जस कहै, तस तस इन के लार॥

अर्थ–पलकराम के ज्ञान को मार्ग दिखाकर तुलसी साहब ने अपना विचार रखा था। साधुओं के लक्ष्य की प्राप्ति थी जो विधियाँ पढ़ गई हैं, वैसे वैसे इनके (तुलसी साहब में) संसक्ति भी रही॥

॥ प्रश्न पलकराम । चौपाई॥

जो कढ़ाव बिधि भेद बतावा। सौ तौ सब सादृष्ट दिखावा॥
वाह गुरू बिधि कही बनाई। सो भी बूझ समझ में आई॥
गोरख की तुम कही बखाना। सो भी सत सत्त बिधि जाना॥
चौरासी सिध नौ नाथ बतावा। बाबे साथ और बिधि गावा॥
पौड़ी सीढ़ी बावे कहिया। या बिधि खूब खूब समझइया॥
गुरु गोबिंद बिधि कही बखाना। सो भी साँच साँचकर माना॥

सदवाँ महल कहा समझाई। सो भी बिधी सत्त दरसाई॥
तुलसी स्वामी बूझाँ बाता। ग्रन्थ बिधी भाखौ बिख्याता॥
बावे आदि ग्रन्थ कस भाखा। पौड़ी की बिधि कस कस राखा॥
पच ग्रन्थी सुखमनी बनाई। आसावार जपजी को गाई॥
या कौ भेद कछु कहौ बुझाई। ग्रन्थ बिधी बावे कस गाई॥
तुलसी स्वामी कहौ बिचारी। कहौ बखानि बावे बिधि सारी॥
या कौ मो को भेद बतावौ। ग्रन्थ भाव बिधि बिधि दरसावौ॥

अर्थ–आपने कड़ाव की विधि और उसका जो रहस्य समझाया, वह मेरी समझ में आ चुका है क्योंकि आपने तो अपने से उसे प्रत्यक्ष दिखा दिया है। आपने 'वाह गुरु' के भी रहस्य को अच्छी तरह समझा दिया–मैं वह भी जानवर समझ गया। आपने गोरखमत का बखान किया, उसे भी मैंने अच्छी तरीके से समझ गया। आपने चारासी सिद्धों तथा नवों नाथों के विषय में बताया और बाबा साहब के साथ और यहाँ का भी वर्णन किया है। बाबा साहब ने चढ़ने वाली स्थित सीढ़ी का वर्णन किया है और उसको बताते हुए आपने सारी बातें अच्छी तरह से समझाई हैं।

गुरु गोविन्द सिंह जी के मत का भी आपने वर्णन किया है, उसे भी मैंने सही-सही स्वीकार कर लिया है। दसवें महल ने विषय में भी आपने समझाया है–उसे भी आपने विधानपूर्वक स्पष्ट किया है। हे तुलसी साहब अब मैं एक बात पूछ रहा हूँ–उस पौढ़ी की विधि कैसी-कैसी हैं। पाँच ग्रंथियों ने सुषमा की चर्चा की है, उससे जो आसावार जड़ चेतन की पाँच ग्रंथियों से मिलाप उत्पन्न हुई हैं, उसका वर्णन किसने किया है। इनके भेदों के विषय में कुछ समझकर कहें और ग्रन्थ के अन्तर्गत बाबा साहब ने कैसा वर्णन किया है। हे तुलसी साहब! आप बाबा साहब की समस्त विधियों का विचारपूर्वक वर्णन करें। मुझे इन बातों का सारा रहस्य समझा कर बताएँ और ग्रन्थों में इनको जिस-2 तरह से समझाया गया है, उसे बताएँ॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

तुलसी कहै सुनौ हो स्वामी। निज मोहिं जानौ दास समानी॥
जो कछु बूझा बिधी बिधाना। सो ग्रन्थन बिधि कहूँ बखाना॥
पिरथम आदि ग्रन्थ गति गाऊँ। ता का मता भेद दरसाऊँ॥
आदि ग्रन्थ बावे अस भाखी। ता में कही कहूँ सब साखी॥
आदि ग्रन्थ कह्यौ या कौ नामा। आदि से बँधी ग्रन्थ जिव जाना॥
जड़ चेतन जिव ग्रन्थ बँधानी। जब रचना बैराट बखानी॥
आदि से जीव ग्रन्थ जड़ संगा। सो कहै आदि ग्रन्थरस रंगा॥
आदि ग्रन्थ जड़ चेतन माहीं। ता कौ आदि ग्रन्थ बतलाई॥
अस बावे मुख भाखी बानी। जड़ चेतन की गाँठि बँधानी॥
अब पुनि पाँच ग्रन्थ बिधि भाखा। सब बिस्तार कहूँ बिधि ताका॥
यह बैराट पाँच तत्त माहीं। पाँच तत्त तन बिधि बनाई॥

धरती पवन गगन और नीरा। अगिनि पाँच मिलि रच्यौ सरीरा॥
पाँच तत्त मिलि ग्रन्थि बँधानी। पच ग्रन्थी जेहि नाम बखानी॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे स्वामी सुनें, मुझे तो आप अपने दास के समान ही समझें। मैंने इस प्रकरण को विधि एवं विधान से समझा है, उन्हें ग्रन्थों में लिखित विधि प्रणाली के अनुसार वर्णित कर रहा हूँ।

सर्वप्रथम मैं आदि ग्रंथ की गति का वर्णन करता हूँ । ससे सम्बन्धी मतों तथा भेदों को मैं समझा रहा हूँ। बाबा साहब ने आदि ग्रन्थ में इसका वर्णन किया है, मैं उन बातों को उसी रूप में कह रहा हूँ–जैसा कि उन सबको उनकी साखियों में कहा गया है। इसका नाम आदि ग्रन्थ कहा गया है। आदि ग्रन्थ से जीव का उससे बँधा होना समझे। जड़तथा चेतन दोनों उस ग्रन्थ से बंधे हैं क्योंकि उसी रचना से वैराट भी बंधा हुआ है। उस आदि ग्रन्थ के साथ जड़ एवं जीव दोनों साथ-साथ हैं और कहा जा सकता है कि वे सभी आदि ग्रन्थ के रस में रँगे हुए हैं। आदि ग्रन्थ जड़ चेतन के मध्य है और उसी को आदि ग्रन्थ बतलाया जाता है। ऐसा बाबा साहब ने अपने मुख से ही बताया है और ये दोनों जड़ चेतन की ग्रंथि एक हैं और उसी ग्रंथि में ये बँधे हैं। अब मैं पुनः पाँच ग्रंथिविधियों का वर्णन कर रहा हूँ और सबका पूरे विस्तार के साथ वर्णन है। यह वैराट पाँच तत्त्वों से संयुक्त है–विधाता ने इन्हीं पाँच तत्त्वों से यह शरीर भी बनाया है। पृथ्वी, वायु, आकाश और जल तथा अग्नि इन पाँचों ने मिलकर शरीर की रचना की है। यहीं पाँचों तत्त्व मिलकर एक ग्रंथि में बँध गए हैं–जिसका नाम पंच ग्रंथी कहा गया है।

पाँच तत्त जड़ चेतन संगा। पंच ग्रन्थी में ये रस रंगा॥
ये बिधि बावे करी बखाना। बूझैंगे कोइ संत सुजाना॥
पिंड ब्रह्मंड दोऊ से न्यारा। संत मता पुनि ता के पारा॥
पिंड ब्रह्मंड हता नहिं भाई। जब की भाखौं साखि सुनाई॥
जीवत निरखि नैन से देखा। मता संत आ अगम अलेखा॥
अब आसा के पार बताऊँ। ता की बिधी भेद समझाऊँ॥
पाँच ग्रन्थि जड़ चेतन आवा। ता को आसा वार बतावा॥
आसा वार बँधा जग माहीं। आसा पार की सुधि बिसराई॥
आसा पार की राह भुलाना। आसा वार कर्म लिपटाना॥
ता से आसा बार बतावा। आसा पार का मरम न पावा॥
तब से जीव भयौ संसारी। आसा पार सुधि नाहिं सम्हारी॥
यह बिधि तत्त ग्रन्थ जेहि माहीं। आसा वार बिधी यों गाई॥
यह बिधि सतसंगति से पावै। मिलै संत बिधि सब दरसावै॥
बिना संत किरपा नहिं पावै। मिलै संत बिधि सबै लखावै॥
यह सुखमनी बिधी बिधि गाया। जो जो बावे ग्रन्थ बुझाया॥
इड़ा पिंगला सुखमन माही। स्वाँसा पवन चढ़ै तेहि राही॥

अर्थ–जड़ चेतन के साथ यही पाँच तत्त्व हैं, उन्हीं पंच ग्रंथियों में सभी लोग रंगे हैं। इस प्रकार से नानक साहब (बाबा साहब) ने इनका वर्णन किया है और इसे कोई चतुर संत ही समझेंगे। यह ग्रंथि पिंड तथा ब्रह्मांड दोनों से विलक्षण है किन्तु सन्त मत उसके उस पार है। जब पिण्ड में ब्रह्मांड नहीं है–हे

भाई! मैं उस समय की साखी सुना रहा हूँ। जीवित व्यक्ति को नेत्रों से देखकर जाना जाता है किन्तु सन्त का मत तो पूरी तरह से अगम तथा अलेख्य है। अब इस जगत के पार की बातें सुना रहा हूँ और उसकी विधि तथा रहस्य समझा रहा हूँ।

पाँच ग्रंथियाँ जड़ तथा चेतन में आई, उसी को आसावार कहा गया है। यह आसावार संसार में बँधा हुआ है–और लोगों ने इस आसावार के उस पार की सुधि भुला दी है। उस आसावार की लोग राह भूल गए हैं और यह आसावार मनुष्यों के कर्म में लिपट गया है। इसी से इसे आसावार बताया गया है, किन्तु आसावार का कोई कर्म नहीं पा रहा है। इस आसावार में आकर जीव जीव संसारी हो गया है और उसने आसावार की सुधि नहीं सम्हाली है। इस प्रकार के तत्त्वों का वर्णन जिस ग्रंथ में है–उनमें इस आसावार की विधियों का वर्णन है। उस पार जाने का ज्ञान सत्संगति से मिलता है–और सन्तों के मिल के बाद वे सब कुछ दिखाते हैं। सन्तों के बिना कोई कृपा नहीं प्राप्त करते और सन्तों के मिलन के बाद वे सब कुछ दिखाते हैं। यह सुषुमा विधिपूर्वक गायी गयी है–जिसे बाबा ने अपने ग्रंथ में बताया है। इड़ा, पिंगला एवं सुषमा में उनकी राहों से ही श्वास आकाश में चढ़ता है।

पाँचौं मुद्रा साधै जोगी। इंद्री जीत छाँड़ै रस भोगी॥
मुद्रा पाँच बिधी बिधि साधै। सुखमनि मुद्रा धरै समाधै।
न्यारा न्यारा नाम बताऊँ। पाँचौ मुद्रा पुनि दरसाऊँ॥
खेचरि भूचरि साधै सोई। और अगोचरि उनमुनि जोई॥
उन मुनि बसै अकास के माहीं। जोगी बास करै तेहि ठाहीं॥
ये जोगी मत कहा पसारा। संत मता पुनि इनसे न्यारा॥
जोगी पाँचौ मुद्रा साधै। इड़ा पिंगला सुखमनि बाँधै॥
सुखमनि घाट सुखमनी बताई। मानसरोवर आगे पाई॥
जोगी मानसरोवर राखा। बावे अम्मर सर तेहि भाखा॥
जो पंजाब अमरसर गाया। सो बावे ने नहीं बताया॥
अम्मरसर है अगम के माहीं। न्हात अमर होइ संत बताई॥
करि असनान अमरसर माहीं। अमर होइ बावे अस गाई॥
तुम तलाब में निस दिन न्हावा। अमर भया कोउ नजर न आवा॥
नित नित जीव अनेक न्हावै। गृस्थ फकीर जगत सब जावै॥
देखौ अमर एक नहिं भइया। न्हाइ न्हाइ सब जनम गँवइया॥

अर्थ–योगी पाँचों मुद्राओं को साधता है, वह इन्द्रियों को जीत कर रस का भोग छोड़ देता है। पाँचों मुद्राओं को वह अनेक विधियों द्वारा साधता है और सुषुम्न मुद्रा के द्वारा समाधि धारण करता है। मैं उनका अलग-अलग नाम बतलाता हूँ और पुन: पाँचों मुद्राओं को दिखाता हूँ। वही खेचरि मुद्रा एवं भूचरि मुद्रा को साधता है और जो अगोचर एवं उन्मनी मुद्राएँ हैं। उनमें उन्मनी आकाश में निवास करती है और उस स्थान पर योगी निवास करते है। योगियों के मतों में इनका विवरण किया गया है–किन्तु सन्तों का मत इनसे भिन्न है। योगी पांचों मुद्राओं को साधता है, इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना को बाँध देता है। सुषुम्ना के घाट को सुखमणि घाट बताया गया है, मानसरोवर तो उसके आगे है। योगी अपने चित्त को मानसरोवर पर रखता है–बाबा साहब ने उसी को अमर सरोवर कहा है। पंजाब में जिसे अमर सरोवर कहा गया है, बाबा साहब ने उसके बारे में नहीं बताया है। अमर सरोवर तो अगम के मध्य में

है–वहाँ पहुँचकर व्यक्ति अमर हो उठता है, ऐसा बाबा ने कहा है। यह अमर सरोवर अगम के मध्य में है–सन्तगण भी बताते हैं कि उसमें स्नान करते ही अमर हो उठते हैं। अमर सरोवर में स्नान करके–बाबा साहब ने भी कहा है, लोग अमर हो जाते हैं! तुम तालाब में रात दिन नहाते हो–अमर होता हुआ यहाँ कोई नजर नहीं आता। जीव यहाँ नित्य प्रति अनेकों की संख्या में नहाते हैं, गृहस्थ और फकीर यहाँ सभी जाते हैं। इनमें देखो एक भी अमर नहीं हुआ और इसमें स्नान करके ये सब अपना जीवन नष्ट कर देते हैं।

अम्मरमर असनान को पावै। चढ़ि असमान अमर होइ जावै॥
बावे गगन अमरसर गावै। करि असनान अमर पद पावै॥
जो जो गये अमरसर माहीं। ता का आवागवन नसाई॥
ये अम्मरसर पिरथी माहीं। पानी पैठि पैठि सब न्हाई॥
जीव साध कोइ अमर न पाई। न्हाइ न्हाइ सब बैस बिताई॥
जीवत अमर न मूए जावै। नित नित पैठि अमरसर न्हावै॥
ये तो अमरसर पानी भाई। वो अम्मरसर गगन समाई॥
सूरति चढ़ै गगन में न्हाई। वो अम्मसर बावे गांई॥
और संत बरनन जो कीन्हा। कहि तेहि मानसरोवर चीन्हा॥
अम्मरसर करि कहेउ बखानी। मानसरोवर तेहि को जानी॥
करि असनान हंस होइ जाई। हंस होइ पुनि घर को पाई॥
चौथा पद हंसा सोइ पावै। जीवत वाह गुरू मिलि जावै॥
वाह गुरू चौथे पद पारा। सो चेला वाह गुरू निहारा॥

अर्थ–अमर सरोवर में स्नान करने का अवसर प्राप्त करे, वहाँ तक चढ़कर वह अमर हो उठे। बाबा साहब ने अमर सरोवर (अमृत सरोवर) का ज्ञान किया है और उसमें स्नान करके अमरपुर की प्राप्ति करो। जो-जो व्यक्ति अमर सरोवर तक पहुँचे हैं, उनका जन्म तथा उनकी मृत्यु (आवागमन) नष्ट हो उठी है। यह अमर सरोवर तो पृथ्वी पर है। पानी में प्रवेश कर करके सभी स्नान करते हैं। जीव की साधना करके कोई अमर नहीं होता और उसमें स्नान कर-करके सभी अपनी उम्र बिताते हैं। जो नित्य-नित्य प्रवेश करके अमर सरोवर में स्नान करता है, वह जीते जी अमर होता है, तथा अमृत और पुर्नजन्म प्राप्त करता है। यह अमर सरोवर में पानी पानी है–हे भाई! वह अमर सरोवर तो शून्यकाश में समाया रहता है। सुरति समाधि पर चढ़कर आकाश में स्नान करो उसी अमर सरोवर का वर्णन बाबा ने भी किया है। अन्य स्थितियों का सन्तों ने जो वर्णन किया है–उसको मानसरोवर कह कर पहचाना है। आर्यों ने उसे अमर सरोवर कह कर वर्णित किया है–उसी को तुम मानसरोवर समझो। यहाँ स्नान करके साधक हंस रूप बन जाता है और हंस होने के बाद वह अपने संसार को पा जाता है। उस चौथे पद को वही हंस प्राप्त करता है:और जीते-जीते ही वह 'वाह गुरु' से तादात्म्य कर लेता है। वह गुरु तो चौथे पद के पार हैं, वही उनका शिष्य है:जो उन जैसे गुरु को आँखों से देख ले।

जब लगि वाँह गुरू नहिं पावै। तब लगि निगुरा जीव कहावै॥
मानसरोवर संत बखाना। बावे अम्मरसर कहि माना॥
सुखमनि घाट अमरसर पाई। ये बावे बिधि ग्रन्थन गाई॥
ये जिव जप परमारथ पावै। अम्मरसर को सुरति चढ़ावै॥

जप परमारथ बावे गावा। जब जिव चढ़ै गगन पर धावा॥
जपजी को परमारथ याही। सूरति सुखमनि घाट अन्हाई॥
सूरति जपै परे रित माहीं। जपजी को परमारथ याही॥
सुखमनि बावे सुरति चढ़ाई। सो जपजी परमारथ गाई॥
पढ़े गुने कछु हाथ न आवा। पढ़ पढ़ बादै जनम गँवावा॥
सुखमनि मारग संगत के पासा। सुरति संत लख चढ़ै अकासा॥
या कौ भेद संत से पावै। जो वे मिलैं घाट बतलावैं॥
सुखमनि राह संत नित जावैं। परमारथ जप राह लखावैं॥
ये बिधि भेष पंथ में नाही। भाखैं जाति पंथ बिधि राही॥
जैसे जगत जाति को माना। तैसे पंथी जाति बखाना॥

अर्थ--जब तक साधु बाह गुरु को नहीं पाता–तब तक वह जीव निगुरा कहलाता है। सन्तों ने मानसरोवर का वर्णन किया है और उसे बाबा ने अमृत सरोवर कहकर स्वीकार किया है। सुषुम्ना की धार तो अमृत सरोवर में ही पाई जाती है–इस बात तथा बिधि को बाबा साहब ने अपने ग्रंथों में गाया है। यह जीव जप करके परमार्थ तत्त्व को प्राप्त करता है और अमर सरोवर तक उसे सुरति ले जाती है। जप तथा परमार्थ का वर्णन बाबा साहब ने किया है–यह तभी सम्भव है, जब जीव चढ़कर आकाश में दौड़ता है। जीव का परमार्थ यही है कि वह सुरति साधना से सुषुम्ना के घाट पर स्नान करे। ऋत (सत्य) को साथ लेकर सुरति दशा में जाप करना ही–जप जीव का परमार्थ है, यही कहा गया है। पढ़ने-गुनने से कुछ हाथ नहीं आता और मनुष्यों ने पढ़-पढ़कर बेकार जन्म नष्ट किया है। सुषुम्ना का मार्ग सन्तों के पास है। सुरति के सन्त आकाश तक चढ़ जाता है। इसका रहस्य सन्तों से प्राप्त किया जा सकता है। यदि उनसे भेंट होती है तो वे घाट के विषय में बतलाएँगे। सन्तगण नित्य सुषुम्ना की राह पर जाते हैं और परमार्थ का जप करके मार्ग दिखाते हैं। यह विधि तथा भेष पंथों में नहीं है। और अनेक साधक राही अनेक पंथों की मिथ्या विधियाँ कहते रहते हैं। जैसे संसार में जातियों को स्वीकृति मिली है, उसी प्रकार पंथी भी जाति का वर्णन करते हैं।

पलकराम सुनियौ चित लाई। ये बिधि बावे सत्त लखाई॥
तुम तौ पड़े पंथ के माहीं। जाति पाँति लेखे की राही॥
पथ राह कछु अगम कहाई। पंथ अगम बिधि बावे गाई॥
सूरति बावे पंथ लखावा। सूरति चढ़ी गगन पर धावा॥
गगन पंथ मारग को पावै। ता कौ संत पंथ मत गावै॥
जाति पंथ में ये बिधि नाहीं। संत अजाति जाति नहिं जाही॥
संत अजाति जाति नहिं मानैं। पंथ जाति बिधि एक न जानैं॥
भेष जाति पंथी के माहीं। संत अजाते अगम घर जाई॥
अगमपंथ चढ़ि अगम बतावा। अनुभौ भई संत गति गावा॥
पलकराम बिधि समझ बिचारा। भेष पंथ से भेद नियारा॥
पंथी जात जगत ब्यौहारा। या से कधी न उतरै पारा॥

कर कढ़ाव हलुवा बनवावा। ता में से छै भाग कढ़ावा॥
एक भाग गुरु पानी राखा। गुरु दरियाव ताहि को भाखा॥

अर्थ–हे पलकराम! ध्यान लगाकर सुनें, इस विधि द्वारा बाबा साहब ने सत्य का दर्शन कराया है। तुमने तो पंथ के बीच यह पढ़ा है–यह तो केवल कहने भर के लिए है–उस बाबा साहब के पंथ को कुछ अगम्य कही जाती है–मेरा पंथ अगम्य है, ऐसा बाबा ने भी कहा है। बाबा साहब ने अपने पंथ में सुरति को बताया है और यह सुरति चढ़कर आकाश पर दौड़ती है। आकाश के रास्ते में वह अपने मार्ग को प्राप्त कर लेती है, उसी मत का वर्णन संत परम्परा में किया गया है। जाति पंथ में ये विधियाँ नहीं हैं–सन्त बिना जाति का है। उसके पास कोई जाति नहीं है। जाति-विहीन सन्त जातियों को नहीं मानता–वह न पंथ को जानता है–न जाति को–उसे दोनों अस्वीकार्य हैं। अन्य धर्म पंथियों के पास भेष तथा जाति है और बिना जाति का सन्त उस अगम्य तत्त्व के घर पहुँच जाता है। वह अगम पंथ पर चढ़कर अगम्य तत्त्व का ही वर्णन करता है। अनुभव प्राप्त करने के बाद वह सन्त गति का गान करने लगता है। हे पलकराम! इस विधि को समझो और विचारो–भेष तथा पंथ के रहस्य भिन्न हैं। पंथी जाति तथा जगत के व्यवहार इससे कभी कोई पार नहीं उतर सकता। कढ़ाव करके तुम हलुवा बनवाते हो और उसमें भी कड़ाहे में उसके छः भाग कर लेते हो। एक भाग गुरु के पानी के लिए रखा जाता है–उसका नाम 'गुरु दरियाव' कहा जाता है।

ऐसे अंध अचेत अबूझा। गुरु दरिया पानी में सूझा॥
गुरु दरियाव राह नहि जाना। हलुवा पानी डार बखाना॥
ये बावे नहिं कही बिधाना। गुरु दरिया पानी में जाना॥
गुरु का दर दरवाजा भाई। ता को गुरु दरियाव बताई॥
गुरु दर दरवाजा जो पावै। सुखमनि घाट अमरसर न्हावै॥
गुरु के दर दरवाजे माहीं। चढ़ै सो गगन अगम घर जाई॥
जग गुरु दर दरयाव न चीन्हा। हलुवा पानी डार जो दीन्हा॥
वाह गुरू पानी में जाना। जाको हलुवा चढ़न बखाना॥
ऐसे बुद्धि हुई जम काला। हलुवा ले पानी में डाला॥
वाह गुरू दरियाब न पावै। बिना संत कहौ को दरसावै॥
बावे पानी गुरू न भाखी। देखौ दृष्टि ग्रन्थ में साखी॥
बावे कही राह सोइ छूटी। पोल पोल सगरा जग लूटी॥
इक बट डंड बाँस को पूजा। देखौ जड़ सँग लगे अबूझा॥

अर्थ–ऐसे सचेत अँधों की बात अबूझ है, उन्हें पानी में गुरु दरिया दिखाई पड़ती है। गुरु ने तो नदी का मार्ग नहीं देखा था और दूसरी ओर हलुवा में पानी डालकर इस रूप में उसे बताया जा रहा है। इस प्रकार का विधान बाबा साहब ने भी नहीं कहा है। गुरु की दरिया को पानी में समझो। गुरु का स्थान तथा उस स्थान का दरवाजा–उसी को गुरु ने दरिया बताया है। गुरु के स्थान के दरवाजे पर जो चढ़ता है, वह अगम्य के घट आकाश में चढ़कर चला जाता है। जो गुरु का दरवाजा प्राप्त करता है, वह सुषुम्ना के घाट पर जाकर अमर सरोवर में स्नान करता है। संसार गुरु का स्थान और उनका दरवाजा नहीं पहचानता। हलुवा और पानी जहाँ चाहा डाल दिया। 'वाह गुरु' को लोग पानी में समझते हैं–और उसको हलुवा चढ़ाकर कहा, बताया गया है। यम और काल ने मनुष्यों को ऐसी ही बुद्धि दी है कि

हलुवा लेकर पानी में डाल दो। वाह गुरु की ये नदी नहीं प्राप्त करते और ठीक ही है–बिना सन्तों के उसे कौन दिखाए। बाबा साहब ने न पानी का वर्णन किया है और न गुरु का–अपनी दृष्टि से इसे उनके ग्रंथ की साखियों में देखो। बाबा ने जिस मार्ग की बात कही है, वह हमसे छूट गई है–और सम्पूर्ण संसार असत्य आडम्बर में ही फँसा है लूट रहा है। एक वट वृक्ष के दण्ड पूजा करता है तो दूसरा बाँस का, देखो, इन जड़ व्यक्तियों के साथ ना समझ लगे हुए हैं।

चेतन ब्रह्म कहै सब माहीं। झंडा जड़ हलुवा कहु खाई॥
अस अस भूल भर्म बस बूड़ा। संत मता कस मिलै अगूढ़ा॥
नानक की जो बानी बूझै। तौ तुलसी सगरा मत सूझै॥
आप डूब और जगत डुबावा। आदि अंत का मरम न पावा॥
अस अस अंध धुन्ध का लेखा। बावे बचन नहीं कोइ पेखा॥
तुलसी कहै नीच गति मोरी। सरनै पलकराम मैं तेरी॥
मोरी कहनि अबूझ न मानौ। मैं तुम्हरे चरनन लपटानौ॥
मैं किंकर संतन कर दासा। संत चरन बिन मोर न आसा॥

अर्थ–सभी कहते हैं कि चेतन ब्रह्म सभी व्यक्तियों में है–झंडा लगाकर उस जड़ के साक्ष्य में सभी हलुवा खा रहे हैं। संसार इस प्रकार के विचारों से भरा भ्रम के वश में डूबा हुआ है अत: गूढ़ सन्त मत उसे किस प्रकार प्राप्त हो। नानक देव जी की वाणी को जो समझाता है, तो तुलसी साहब कहते हैं कि उसे सारे मत सूझ जाते हैं। ये धर्मपंथी स्वयं डूब रहे हैं और सारे संसार को डुबाते रहे हैं और इन्हें आदि अन्त के रहस्य का ज्ञान नहीं है। इस प्रकार मार्ग दिखाने वाले और मार्ग देखने वालों के बीच 'अंध-धुन्ध' का सम्बन्ध है–किसी ने भी इस संदर्भ में बाबा साहब के वचनों को नहीं देखा है। तुलसी साहब कहते हैं कि मेरी गति तो बड़ी ही निकृष्ट है–हे पलकराम! मैं तो तुम्हारी शरण में हूँ। मेरा कहना, अबूझ, मत समझो, मैं तो तुम्हारे चरणों में लिपटा हुआ हूँ। मैं तो सन्तों के चरणों का दास हूँ–सन्त चरणों के बिना मेरे अपनी कोई समझ नहीं है।

॥ सोरठा॥

पलकराम सुन ज्ञान, कहूँ ब्यान समझाइ कै।
संतन करी बखान, सो बिधि बिधि तुम से कहूँ॥

अर्थ–हे पलकराम! मेरे ज्ञान को सुनें मैं सारा प्रकरण (बयान) समझाकर कह रहा हूँ। जिन्हें सन्तों ने वर्णित करके बताया है, उसे उसी विधि को विधिपूर्वक सुनाता हूँ॥

॥ चौपाई॥

सब्द ग्रन्थ सुन भाखि सुनाऊ। संतन मुख बानी समझाऊँ॥
मन की लहर कहर को बूझै। जा को संत मता मत सूझै॥
सब्द साखि में कीन्ह बखाना। बूझै सज्जन समझ समाना॥

अर्थ–सबद ग्रंथों का मैं वर्णन करके सुनाता हूँ। सन्तों के मुख से निकली वाणी को समझाता हूँ। जिसको सन्त मत सूझ जाता है, वह मन की लहर और उस पर पड़ा हुआ कहा कहा है, उसी को समझ लेता है।

सब्द और साखियों में मैंने उनका वर्णन किया है–उसे समान समझ वाले सज्जन ही समझते हैं।

॥ सोरठा ॥

तुलसी संत सुजान, जानि समझि सुलटी कही।
ये जग जान अयान, बिन समझे उलटी लगै॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि संतजन सज्जन हैं–चतुर हैं, वे तत्त्वों को जानकर-समझकर उसे सुलझा कर बताते हैं। यह संसार जो स्वयं को ज्ञानवान् समझता है–बिना समझे, सारी बातें उसे उलटी लगती हैं॥

॥ चौपाई ॥

पलकराम इक सब्द सुनाऊँ। ता में सब बरतंत बुझाऊ॥
रमक रेखते में बिधि गाई। पलकराम सुनियौ चित लाई॥

अर्थ–हे पलकराम! मैं आपको एक 'सब्द' सुनाता हूँ। उसी के अन्तर्गत इस प्रसंग का समस्त वृत्तान्त समझाता हूँ। यह विधि रमक रेखता में कही गई है। हे पलकराम! चित्त लगाकर सुनें।

॥ रेखता ॥

अली इक बात सुन सुलटी। बिना समझे लगै उलटी॥ १ ॥
कही सब संत ने बोली। गूढ़ मत गुप्त नहिं खोली॥ २ ॥
सुरत मन बुद्धि नहिं जावै। लखन में कौन बिधि आवै॥ ३ ॥
अरी नहिं बेद ने जानी। कहत कर नेत गोहराना॥ ४ ॥
जुगत जोगी नहीं जानी। ज्ञान नहिं ध्यान बिज्ञानी॥ ५ ॥
जगत और भेष नहिं जानै। पढ़े पंडित भरमाने॥ ६ ॥

अर्थ–हे सखी! एक बात सुलझ गई है और बिना समझे वह बात उल्टी लग रही है। इस बात को सन्तों न कही हैं, यद्यपि इसमें निहित गुप्त मत को उन्होंने स्पष्ट नहीं किया है। सुरति में मन तथा बुद्धि नहीं जा सकती–फिर उसको देखने की कौन-सी विधि हो सकती है। अरे, उसे वेद भी नहीं जानते, और वे उसे नेति कहकर बुलाते हैं। उसकी युक्ति योगीगण भी नहीं जानते। विज्ञानी जनों को भी न उसका ध्यान है, न ज्ञान। संसार और बेष भी उसे नहीं जानते। पण्डितगण उसे पढ़कर भ्रम में पड़ जाते हैं॥

सकल तिरलोक लौं गावै। निरंजन जोति ठहरावै॥ ७ ॥
अगम रस रास नहिं सूझै। संत मत कौन बिधि बूझै॥ ८ ॥
अस्त रबि होत अँधियारा। हिये मत रूप में सारा॥ ९ ॥
मिलै गुरु गैल बतलावै। तिमर मन बीच से जावै॥ १० ॥
लखै तब संत के बैना। सुरति सुरमा खुलै नैना॥ ११ ॥
तरक ताली खुलै ताला। निरखि तहँ होत उजियाला॥ १२ ॥
अधर धर सुरति चढ़ धावै। अगम गति गूढ़ तब पावै॥ १३ ॥
सुरति जब उलट कर बूझा। उलट सब सुलट कर सूझा॥ १४ ॥
तुलसी तन बीच में हेरा। सुरति मन बुद्धि को फेरा॥ १५ ॥
कहनि कछु और बिधि गावै। उलट की सुलटकर भावै॥ १६ ॥

अर्थ–किन्तु सारा त्रिलोक यह गाता रहता है और उस निरंजन ज्योति की बात कहते रहते हैं। उस अगम्य तत्त्व की रस राशि समझ में नहीं आती फिर सन्तों के मत को किस प्रकार कौन समझे? सूर्य डूबते ही अँधेरा हो उठता है किन्तु हृदय में स्थित उस रूप में ऐसा नहीं है। गुरु मिलने पर ही रास्ता बतलाया है और साधक इस शरीर के अंधकार के बीच से जाता है। साधक जब सन्तों की वाणी से देखने लगता है तब सुरति रूपी सुर में से नेत्र की ज्योति खुल जाती है। तर्क के तालों से ताले खुल जाते हैं और देखने पर वहाँ पूर्णतः उजाला दिखाई पड़ने लगता है। नीचे के घट में सुरति चढ़कर दौड़ पड़ती है तब उस अगम्य तत्त्व की गूढ़ गति प्राप्त होती है। सुरति को जब उलट कर जब साधक समझता है तब सम्पूर्ण उल्टा हुआ तत्त्व सुलझ कर दिखाई पड़ने लगता है। तुलसी साहब कहते हैं कि उस अगम्य तत्त्व को तब शरीर के बीच में ढूढ़ लेता हूँ–यही सुरति से प्रभावित बुद्धि और मन का फेर है। उसे बताने के लिए बातें और ढंग से कही जाती हैं कि तथ्य उलट जाने पर ही वह सुलझ जाता है।

॥ चौपाई ॥

तुलसी समझ बूझ मन लावै। तब उलटी सूलटी कर भावै॥
बिन सतसंग बिबेक न होई। संत बिना सूझै नहिं सोई॥
झंडा तन बिच बीच बिचारा। गुरु दरियाव गगन के पारा॥
अम्मरसर में पैठि अन्हाई। सो जिव सहज अमर होइ जाई॥
सो संतन ने नभ पर जोवा। तुम तलाब पानी तन धोवा॥
बा का सतगुरु से लछ पावै। दीन दया सोइ भेद बतावै॥
बेद मता संतन सम जानै। ऐसी मूरख बुद्धि बखानै॥
संत अंत बेदन नहिं जाना। देखौ सुखमनि बावे बखाना॥
बेद मता जो मूढ़ ठहरावै। संत का मता गूढ़ नहिं पावै॥
या का सब्द साखि बतलाऊँ। पलकराम तोह भाखि सुनाऊँ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि उस अगम्य तत्त्व में समझ बूझकर मन लगाओ, तभी उलटी-सी दिखने वाली वह अगम्य दशा सुलझ जाएगी॥ बिना सतसंग के विवेक नहीं होता और सन्तों के बिना वह भी नहीं सूझता। शरीर के बीच स्थित इस झंडे को शरीर के बीच में स्थित तत्त्व को समझो। किन्तु गुरु रूपी नदी उसे गगन के उस पार स्थापित कर देती है। अमृत सरोवर में बैठकर स्नान करने पर वह जीव सहज ही अमर हो उठता है। सन्तों ने उसे आकाश के ऊपर स्वीकार किया है–और तुम तालाब के पानी से उसे धोते हो। उसका लक्ष्य तो सत्गुरु ने प्राप्त किया है और वह दीनता एवं दयाभाव का रहस्य बताता है। वेद के मतों को सन्तों के समान समझो और वे ऐसी मूर्ख बुद्धि से परमार्थ तत्त्व का वर्णन करते है। ये लोग अन्त तक सन्तों की पीड़ा नहीं समझते। बाबा साहब कहते है कि इसको सुषुम्ना के द्वारा सहज ही समझ सकते हैं। जो वेदमत को गूढ़ कहता है और सन्त मत को साधारण, उसको मैं एक-एक शब्द-साक्षी के रूप में बतला रहा हूँ, हे पलकराम मैं जो कहकर सुना रहा हूँ, उसे सुनें॥

॥ सोरठा ॥

संत मता भौ पार, बेद बिधी जानै नहीं।
सतगुरु सब्द अपार, भेष भेद जग भर्म में॥

अर्थ–सन्त मत से भवसागर से मुक्ति होती है, इसे वेद नहीं समझता। भेष रचना के भेद तथा सांसरिक भ्रम के बीच सतगुरु शब्द अनन्त है, उसे समझेगा॥

॥ रेखता ॥

बेद मत मूढ ठहरावै। संत मत गूढ़ नहिं पावै॥ १॥
पड़े भ्रम जाल के मूला। बेद बस कर्म के सूला॥ २॥
करे अली इष्ट गन रचि कै। मुए भ्रम भाव सब पचि कै॥ ३॥
जिवन कोइ दरस ना पावै। मुए पर मुक्ति गोहरावै॥ ४॥
अली ये जगत सब अंधा। पड़ा बस काल के फंदा॥ ५॥
कहिन नहि संत की भावै। बाट कहौ कौन बिधि पावै॥ ६॥
मूल जुग चारि से आई। खानि बस मैल मन माहीं॥ ७॥
भटक नर देह अब आया। ज्ञान चित चीन्ह घर पाया॥ ८॥
गहे सत संत के चरना। निकरि भौसिंध से तरना॥ ९॥
समझि लखि जीव कौ काजा। मरे सब जगत की लाजा॥ १०॥
तुलसी तन छूटि जब जावै। बहुरि नर देह नहिं पावै॥ ११॥
पाहन और इष्ट पानी का। झूठ भ्रम खानि जाने का॥ १२॥
निकरि निरवार नहिं पावै। समझ सतसंग से आवै॥ १३॥
जगत दिन चारि का सँग है। भीख भौखानि में मँगिहै॥ १४॥

अर्थ–वेद के मतों को जटिल ठहराने वाले, सन्तों के मत में स्थित गूढ़ तत्त्व को नहीं प्राप्त कर पाते। वेद के वशीभूत जन समूह कर्म के कष्टों में पड़े रहते हैं तथा भ्रमजाल के मूल उलझ जाते हैं। हे सखी! इष्ट जन रच-रचकर कर्म भाव को करते रहते हैं और इसी भ्रम के भाव में सब पक-पककर मरते जाते हैं। जीवित रहते हुए उस अगम्य तत्त्व का कोई रहस्य नहीं पाता और मरने के बाद मुक्ति-मुक्ति कहकर बुलाता रहता है। हे सखी! यह सारा संसार अंधा है और सभी-के-सभी काल के फंदे में फँस पड़े हैं। उन्हें सन्तों की कही हुई बातें, अच्छी नहीं लगती बताओ, वे किस प्रकार मार्ग प्राप्त करें। ये बातें तो चारो युगों से आ रही हैं और सबके मन में मल की रसनि जमी हुई है। यहाँ नर देह भटकर कर आया है और उसने संत कृपा से ज्ञान था चित्त द्वारा अपना घर पहचान कर प्राप्त कर लिया है। सत संतों के चरणों को पकड़कर भवसागर से अब निकलकर तुम तर जाना। इस जीव के कार्य को समझकर सभी के सभी जगत की लज्जा से विचलित कर गए। तुलसी साहब कहते हैं कि जब उनका नर शरीर छूट जाएगा तो पुनः यह शरीर नहीं प्राप्त करेंगे। इनके इष्टदेवता पानी और पत्थर के हैं–ये झूंठे भ्रम की खानि को क्या समझें। ये भवसागर से निकलकर मुक्ति नहीं पाते हैं, यह तो समझ सत्संगति से आती है। यह संसार दो-चार दिनों का साथी है अन्यथा इस भवसागर के पाप की खानि में मनुष्य भिक्षा मानता फिरेगा॥

॥ सोरठा ॥

ये तन रतन समान, बार बार पावै नहीं।
सतगुरु करत बखान, सुपन जानि जग पेखना॥

अर्थ–यह शरीर रत्न के समान है, इसे बार-बार नहीं पावोगे। सत्गुरु इसका वर्णन करता है–यह संसार तो स्वप्नवत् है, इसको इसी प्रकार देखता है।

॥ चौपाई ॥

जग दिन चार लार के संगी। फिर भौखानि भीख भौ मंगी॥
ऐसा या जग का ब्यौहारा। जनम जात जूवा जस हारा॥
संत सब्द उलटा करि गाई। समझ बूझ मन काहू न पाई॥
पलकराम सुन सुलटी बानी। कोऊ सुलटि समझ नहिं जानी॥
कह संबाद सेठ परसंगा। ये बूझौ सब अपने अंगा॥
जेहि बिधि राह रेखता कीन्हा। या को आनौ समझ यकीना॥
उलटी चाल संत की बोली। बिन परचे को परदा खोली॥
उस उलटी उन कही अगूढ़ा। पंडित भेष न जानै मूढ़ा॥
पलकराम नहिं ग्रन्थन माहीं। पचि पचि मरे खोज नहिं पाई॥
सुनौ सेठ की कथा सुनाऊँ। ता की बिधि बरतंत लखाऊँ॥
सेठ रीति से बीती न्यारी। जगत भाव बरतंत बिचारी॥
पलकराम सुन सेठ सँबादा। वा पर भई जगत से ज्यादा॥
अब रस रीति रेखता गाऊँ। पलकराम तोहि बरन सुनाऊँ॥

अर्थ–संसार में दिन-चार प्रेम के साथी हैं, उसके बाद सभी इस भवसागर में भीख मांगने वाले भिखारी हैं। इस संसार का व्यवहार कुछ इसी प्रकार है–सारा जन्म जुए में जैसे हारता हुआ व्यतीत हो रहा है। किसी की समझ में कोई बात नहीं आती और सभी सन्त शब्द को उल्टे अर्थ में गाते है। हे पलकराम! आप सुलझी हुए वाणी सुनें:उसे किसी ने सुलझाकर जानने का प्रयास नहीं किया था। मैं एक सेठ के प्रसंग को आधार बनाकर अपनी बातें कह रहा हूँ–इसे अपने ढंग से समझो। जिस प्रकार रेखता द्वारा बात कही गई हैं–इसको अपने बुद्धि में समझ के लिए आधार बनाओ। सन्तों की बातें तथा चालें उलटी होती है और बिना परिचय के इसका रहस्य कौन खोल सकता है? उन्होंने ऐसी उल्टी अगूढ़ बातें कही हैं, कि भेषधारी पंक्ति उनके गूढ़ रहस्य को नहीं जान सकते हैं।

हे पलकराम! यह ग्रंथों में नहीं लिखा है, प्रयत्न कर करके देख लें, कोई इसे वहाँ नहीं पाएगा। सुनों, मैं एक सेठ की कथा सुना रहा हूँ। मैं उसके वृत्तान्त का सारा संदर्भ रख रहा हूँ। सेठ की दृष्टि से यह कथा विलक्षण है और सांसरिक भाव से इस वृत्तान्त पर विचार करें। हे पलकराम! आप सेठ के संवाद को सुनें, उनके साथ तो सांसारिकता से अधिक प्रभाव पड़ा। इस प्रकरण को रेखता कहकर, हे पलकराम! अब मैं तुमको सुनाता हूँ।

॥ रेखता ॥

सखी सुन सेठ संबादा। भई जग रीति से ज्यादा॥ १॥
गुइयाँ सुन बात परसंगा। भये जग मान से भगा॥ २॥
अली सुन साह पर बीती। कहूँ क्या बात अनरीती॥ ३॥
कँवलपुर नगर के बासी। पुत्र गये तीर्थ को कासी॥ ४॥
सेठ घर नारि और पुत्री। रहै मन चित्त से उतरी॥ ५॥
चले दोउ जहाज समुँदर में। बहुत धन माल सुन घर में॥ ६॥

सुनौ एक दिवस की बाता। कहूँ बरतंत बिख्याता॥ ७॥
नारि ने यार इक कीन्हा। पुत्री नर इस्क में लीन्हा॥ ८॥
कहूँ क्या बात इक दिन की। कम भौ भाग में जिन की॥ ९॥

अर्थ–हे सखी! सेठ का संवाद सुनें जो सांसारिक रीति के विपरीत घटित हुई। हे साथी! इस बात का प्रसंग तुनें यह संसार इस प्रकरण में मान से भंग हुआ अर्थात् अपमानित हुआ। हे सखी! जो सेठ पर गुजरी–उस परम्पराच्युत बात को क्या कहूँ?

कँवलपुर नगर के निवासी सेठ के पुत्र काशी तीर्थ के लिए गए। सेठ के घर उनकी पत्नी और पुत्री रह गए। और वे सांसारिक भोग में अनुरक्त थे। दोनों जहाज समुद्र में चले और उनके घर में भी बहुत धन एवं सामान थे। एक दिन की बात सुनें, यह वृत्तान्त अधिक प्रचलित है। सेठ की पत्नी ने एक प्रेमी से सम्बन्ध बना लिया और पुत्री किसी दूसरे पुरुष के प्रेम में फँस गई। एक दिन की बात मैं क्या कहूँ–इस भवसागर में जिसका जो कर्म होता है, ठीक उसी के अनुरूप घटना घटती है।

दिवस इक सेठ ने चीन्हा। पकर वोहि यार को लीन्हा॥ १०॥
भया इन तीन में झगड़ा। लड़की लगवार सो पकड़ा॥ ११॥
सखी भये सेठ उदासी। कही दोउ जाउ तीर्थ कासी॥ १२॥
सेठ कहै बात सेठानी। मरम मारग मनै जानी॥ १३॥
बेटी बिधि और तुम संगा। करौ जग जाइ रस रंगा॥ १४॥
नहीं घर में रहन पावौ। निकरि कासी नगर जावौ॥ १५॥
गुसा सुन नारि उठि बैठी। चली संग माय और बेटी॥ १६॥
गुसा बिच निकरि कर घर से। मिलै कहै नारि नहिं बरसे॥ १७॥
बीच इक नगर मुलताना। रही बस राति को जाना॥ १८॥
फजर उठि रैन की जागी। जलन दर मँजल को लगी॥ १९॥
बाट बिच सहर अनूपा। रइ बलवान सुन भूपा॥ २०॥
सुवर सीकर को निकरे। कुँवर मद मान में जकरे॥ २१॥
दोऊ संग डगर के माहीं। नारि दोउ नजर में आई॥ २२॥
रहै बरसात का महिना। लखे पग पाँच के चीन्हा॥ २३॥

अर्थ–एक दिन सेठ ने उस प्रेमी को पकड़ लिया। उन तीनों में झगड़ा हुआ और लड़की का वह लगवार (प्रेमी)। हे सखी! इस प्रकरण से सेठ उदास हो गए और कहा कि तुम दोनों अब काशी तीर्थ के लिए जाओ। सेठ ने सेठानी से कहा कि मैंने तुम्हारा सारा रहस्य जान लिया है। बेटी और तुम साथ-साथ घर से निकल जाओ और संसार में आनन्द करो। तुम दोनों अब इस घर में नहीं रहने पावोगी और घर से निकल कर काशी नगरी चली जाओ।

उसे सुनकर सेठानी गुस्से में उठ बैठी और माँ तथा बेटी दोनों साथ-साथ चल पड़े। उस गुस्से के बीच वे नारियाँ घर से निकल पड़ीं किन्तु वे नारियाँ कहीं भी पुरुष से नहीं मिलीं। उसी बीच में एक मुलतान नामक नगर था। रात भर वहाँ विश्राम किया तथा प्रातः उन्होंने वहां से जाने का विचार किया था। दोनों प्रातः की रात्रि जगीं और अपने मंजिल के लिए चल पड़ी। रास्ते में वह विलक्षण शहर था और वहां का राजा भी बड़ा ही बलशाली था। वे सुअर का शिकार खेलने के लिए निकले और उनके

पुत्र अपने मद और सम्मान से जकड़े हुए थे। उन दोनों को रास्ते में कोई नारियाँ नजर में आईं। बरसात का महीना था और पृथ्वी पर पड़े हुए पद चिह्नों को उन्होंने पहचान लिया (कि ये नारियों के पैर हैं।)।

सुनौ उस भूप की बाता। बिधी बिधि बात बिख्याता॥ २४॥
कहे नृप राइ ने बैना। पुत्र सुन बात की सैना॥ २५॥
पाँच के चिन्ह चित आवो। ताहि पर दृष्टि ठहरावौ॥ २६॥
बड़े बिधि पाँव की नारी। मिलै सोइ नारि हम्मारी॥ २७॥
चलै सोइ चाल पग छोटी। हिये मन पुत्र के चोटी॥ २८॥
सुनौ इक बात अजरज की। कहूँ बरतंत सुन इसकी॥ २९॥
बड़ी रही डील में बेटी। माय तन डील में हेठी॥ ३०॥
भूप ने लीन्ह बेटी को। कुँवर लई माय हेठी को॥ ३१॥
गये घर सहर महलों में। करैं रस केल फेलों में॥ ३२॥
भूप घर पुत्र नारी का। कहूँ बिधि भेद सारी का॥ ३३॥
नानी खुस खेल बालक को। सुखी होइ कहत मालिक को॥ ३४॥
मौज में ख्याल इक आई। चहुँ बरतंत मन भाई॥ ३५॥
बेटी सुत पुत्र है नाती। लगे दिल देवर इक भाँती॥ ३६॥
कुँवर भइया भाव भाखा। नारी कहै नात नाती का॥ ३७॥
दोऊ में झटक झटकारा। करै कोइ संत निरवारा॥ ३८॥
तुलसी ये भेद को जानी। सोई है साध परमानी॥ ३९॥
बात बिधि अगम को बूझै। हिये की दृष्टि से सूझै॥ ४०॥

अर्थ–उस राजा की भी बातें सुनें-विधि वश उनकी विख्यात् बातें इस प्रकार हुईं। राजा ने बात (अपने पुत्र से) ये बातें कहीं–हे पुत्र! तुम मेरी बात का तात्पर्य। सैना-इशारा) समझो। ये पाँच पदों के चिह्न तुम्हें दिखाई पड़ रहे हैं–इन पदों के चिह्नों पर दृष्टि स्थिर करो। बड़े पाँव के चिह्नों की नारी यदि मिलती है तो वह मेरी पत्नी होगी। साथ ही, जो छोटे पाँव वाली स्त्री चली दिख रही है–वह हमारे पुत्र (तुम्हारे लिए) स्वीकार होगी। एक आश्चर्य की बात सुनो इसके वृत्तान्त को कह रहा हूँ, इसे सुनें।

बेटी डीलडौल में बड़ी थी और माँ शरीर की छोटी थी। राजा ने उस बेटी को अपना लिया और राजपुत्र ने उसकी माँ जो शरीर से छोटी थी, उसे अपनाया। वे दोनों उस शहर के अपने महलों में चले गए और उनसे रस के लिए संसक्त हो गए।

राजा के घर उससे पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका रहस्य समझाता हूँ। उसकी नानी उस बालक की क्रीड़ा से खुश होकर मालिक को कहती रही। मेरे मन में एक मौज की बात उठी है–और मैं अपने मन का वृत्तान्त कहती हूँ। बेटी का पुत्र मेरा नाती है। कुँवर साहब ने इस भाव से कहा कि यह नारी नाती का नाता बता रही है। दोनों के बीच इस रिश्ते को लेकर वाद-विवाद शुरु हो उठा, इसका निराकरण कोई सन्त ही कर सकता है। जो प्रमाण साधक साधु है, वही इसका निराकरण कर सकता। हृदय की दृष्टि से जो बात सही सूझती है, उस अगम तत्त्व को कोई संत ही बतला सकता है।

॥ दोहा ॥

पलकराम यह सेठ की, बूझौ बिधि बरतंत॥
सेठ सेठानी पुत्र को, समझेंगे कोई संत॥

अर्थ–हे पलकराम! इस सेठ के वृत्तान्त के रहस्य के समझें, सेठ, सेठानी एवं उनके पुत्रों के सम्बन्ध रहस्य को कोई सन्त ही समझेगा।

॥ चौपाई ॥

अस अस मता संत सब गाया। भेष गुरू कोइ भेद न पाया॥
वाह गुरू बावे समझाऊ। सोई सतगुरु संध दरसाऊँ॥
जस जस संत अगम गति गाई। लखि लखि पिया रूप दरसाई॥
निरखा घाट बाट मध माहीं। सो बसंत में समझि सुनाई॥
हद अनहद के पार ठिकाना। लखि अरूप पुनि रूप बखाना॥

अर्थ–ऐसा-ऐसा मत सारे सन्तों ने गाया है और कोई भी भेष रचना का गुरु इस रहस्य को न पा सका। अब बाबा नानक साहब का 'वाह गुरु' शब्द को समझाता हूँ और उससे सत्गुरु के सम्बन्ध को स्पष्ट करता हूँ। मध्य में स्थित घाट-बाट को देख लिया है, बसंत काल के संदर्भ में मैं उसे वर्णित करके सुनाता हूँ। हद तथा अनाद्ध के उस पार वह ठिकाना है और उस अरूप को देखकर वह रूप में समा गया॥

॥ बसंत ॥

लखि लखि लखिया पिया को रूप। जहँ अनहद बाजा बजै अनूप॥ टेक।
बिजली चमकै अति अपार। गगन गोर नहिं वार पार।
मन मतंग जहँ सुनत थूप। इंद्री सँग तजि रहै चूप॥ १॥
मानसरोवर हंस घाटे। ले चढ़ि लागो अगम बाट।
अरध उरध मुख औंध कूप। चाँद सुरज नहिं छाँह धूप॥ २॥
सूरति सुनि सतगुरु के बैन। निरखत हरखै हिये के नैन।
अरध पंथ इक गली है गूप। जहँ इक साहिब अति अनूप॥ ३॥
कोंठ भान छबि रोम तेज। तीन लोक कोइ पड़े न पैज।
तुलसी निरखिनित अज अरूप। चढ़ि सूरति गइ पछिम पुमुप॥ ४।

अर्थ–हे सखी! प्रियतम का रूप देख ले, देख ले, जहाँ अनुपम अनाहद बाजा बज रहा है। अत्यन्त व्यापक रूप से बिजली चमक रही है:गगन के ओर छोर (गोर) का कहीं-बार-पार नहीं है। मन रूपी हाथी जिसे सुनते ही स्तम्भित है और इन्द्रियों का साथ छोड़कर चुप है। हंस के घाट के मानसरोवर मन को लेकर अगम के घाट पर चल चलो। जहाँ नीचे-ऊपर एक औंधा कुवाँ है। चाँद और सूर्य भी वहाँ हैं किन्तु छाँह तथा धूप नहीं है। सुरति स्थली पर वहाँ सत्गुरु की बातें सुनो-जिसे देखते ही हृदय के नेत्र द्रवित हो उठते हैं। आधे मार्ग पर एक अज्ञेय (गुप) गली है, जहाँ एक अति विलक्षण स्वामी निवास करते हैं। प्रकोष्ठ पर एक सूर्य हैं–जिनके रोएँ की छवि अत्यन्त तेज है। और तीनों लोकों में से कोई उनके सामने नहीं पड़ता। तुलसी साहब कहते हैं कि उस अजन्मा एवं अरूप को समझो:यहाँ सुरति पर चढ़कर पश्चिम दिशा की ओर जाओ।

॥ सोरठा ॥

रूप रेखु नहिं भेष, सो अरूप अन्दर लखा।
संत चरन पद पेख, देखा हिये दृग नैन से॥

अर्थ—रूप नहीं है, लक्षण नहीं, भेष रचना नहीं फिर भी उस अरूप को मैंने हृदय के अन्दर देखा है। संत के चरणों को देखो, उनकी कृपा से इसे हृदय के नेत्रों के बीच देखा है॥

॥ चौपाई ॥

लख लख लख पिया जानि बखाना। हद अनहद के पार ठिकाना॥
अलख खलक दोऊ से न्यारा। पलकराम अस अगम अपारा॥
जिन सतसंग कीन्ह तिन जाना। बिना संग नहिं समझ समाना॥
पलकराम मैं पल पल वारी। तुलसी तुम्हारी दास बिचारी॥
बार बार चरनन सिर नाऊँ। सरन जानि कीजै निरबाहू॥
मैं अजान कछु जानौं न भेवा। तन मन चरन संत की सेवा॥
भाखा ज्ञान अबूझन मानौ। मैं तुम्हरे चरनन कौ जानौं॥
जो जो बावे करी बखाना। ताकी बिधिमत कहेऊँ बिधाना॥

अर्थ—देख-देखकर उसे अपना प्रियतम समझा और उसका वर्णन किया है—उसका ठौर ठिकाना अनाहत नाद के उस पार है। वह संसार एवं अलक्ष्य संसार दोनों से विलक्षण है, हे पलकराम! वह उसी प्रकार अगम्य तथा अपार है। जिन्होंने सत्संगति की है, उसे वही जानता है और बिना साथ के कोई उसे समझता नहीं। हे पलकराम! मैं प्रतिक्षण निछावर हूँ और यह तुलसी तो तुम्हारा दास है मैं बार-बार तुम्हारे चरणों में शिर झुकाता हूँ और अपने शरण में समझकर इसका निर्वाह करें। मैं अज्ञानी हूँ, किसी भेद तथा रहस्य को नहीं जानता। मेरे जीवन का लक्ष्य तो शरीर तथा मन से सन्तों की सेवा करना है। मैंने जो ज्ञान वर्णित किया है, इसको अज्ञेय (अबूझ) मत समझें। मैंने तो आपके चरणों की कृपा से ही इसे जाना समझा है। बाबा साहब ने जो-जो बातें वर्णित करके कही है—मैं उनकी विधि तथा मत का वर्णन विधानपूर्वक करता हूँ।

जो विधि बावे कही बनाई। सो बिधि मैं तुम कान सुनाई॥
पलकराम यह भूल बताओ। मन में निंदा समझ न लाओ॥
निंदा संत करै कोई नाहीं। निंदा चौरासी ले जाई॥
तत नानक कही भाखि बखाना। सो तुलसी ने कही बिधाना॥
बावे पाहन नाहिं पुजावा। तुम सिष को पाहन बतलावा॥
पाहन पूजा साध न गावैं। और जीव को नाहिं बतावैं॥
साधू चेतन आतम भाखा। चेतन की पूजा बिधि राखा॥
तुम सिंध जड़ पूजा बतलावा। पाहन आसा बास लखावा॥
छूटै तन पाहन मन जावै। आसा जहँ जेहि तहाँ समावै॥
पुनि पाहन में होइहै बासा। अस अस सिष्य बँधाई आसा॥

गुरु गोबिंद ग्रंथ गति गावा। ता में बिधी सब्द बतलावा॥
सुनी सब्द मैं भाखि सुनाऊँ। गुरु गोबिंद बानी मुख गाऊ॥
पूजा पाहन नहीं बताई। देखा गोबिंद ग्रन्थ मँझाई॥
देखौ ग्रंथ में या की साखी। एक सब्द तुलसी कहि भाखी॥

अर्थ–बाबा साहब ने जो विधि बताकर कही है, उस विधि को मैंने तुम्हें प्रत्यक्षत: कान में सुनाकर बताया है। हे पलक राम! आप मेरी भूल को सुनायें–और इसे मन में निन्दा का भाव न समझना। कोई संत निन्दा नहीं करता क्योंकि निन्दा चौरासी योनियों तक मनुष्य को लेकर जाती है। अत: नानक साहब ने जो कह कर बताया है, तुलसी ने उसी का विधान किया है। बाबा साहब ने पत्थर नहीं पुजवाया, तुम शिष्द को पाहन पूजने के लिए बतलाते हो। पाहन की पूजा साधु नहीं कहता और न अन्य जीवों के लिए यह बात बताता है। साधुओं ने चैतन्य आत्मतत्त्व का वर्णन किया है और चेतन तत्त्व की पूजा की भी चर्चा की है। तुम जल और पत्थर पूजा की बात करते हो। पाहन का आशा का निवास बताता है। शरीर छूटने पर मनुष्य का मन पाहन तक जाता है। उसकी आशा जहाँ है, वह मन वहाँ समाविष्ट हो उठता है। पुन: उसकी आत्मा का निवास पत्थर में हो जाता है–शिष्यों को गुरुओं ने इस इस प्रकार की आशा बँधवाई है। गुरुगोविन्द सिंह के ग्रंथ में इस स्थिति का वर्णन किया गया है और वहाँ विधान से सम्बन्धित शब्द भी कहे गए हैं। जो शब्दों को वहाँ मैंने सुना है, वह कहकर बतला रहा हूँ और अपने मुख से गुरु गोविन्द सिंह की वाणी का वर्णन कर रहा हूँ। मैंने गुरु गोविन्द सिंह के ग्रंथ को पढ़ा है–उसके मध्य पत्थर की पूजा नहीं बताई गई है। उनके ग्रंथ में इसका साक्ष्य देखें–तुलसी साहब यही एक शब्द निष्कर्ष के रूप में कहते हैं।

॥ सवैया ॥

काहू ने पूजि धरौ सिर पाहन, काहू ने लिंग गरे लटकायौ॥ १॥
काहू बुतान को पूजत है पसु, काहू मृतान को पूजनधायौ॥ २॥
कूर क्रिया उरझौ सबही जग, वाहगुरू को भेद न पायौ॥ ३॥
आदि गिरंथ को भूल गये सब, नानक बानी चित्त न लायौ॥ ४॥

अर्थ–किसी पूजा करके पत्थर को अपने सिर पर धारण किया और किसी ने शिवलिंग को गले में लटकाया है। पशुवत् कोई मनुष्य, मूर्तियों की पूजा करता है तो कोई मुर्दों को पूजने दौड़ता है। सारा संसार इस क्रूर क्रिया में उलझ गया है और कोई 'वाह गुरु' का रहस्य नहीं पा सका। सभी, ऐसा लगता है कि आदि ग्रंथ को भूल गए हैं और किसी ने भी नानकवाणी को चित्त से नहीं लगाया।

॥ चौपाई ॥

येहि बिधि गोबिद ग्रंथ लखाई। देखौ सब्द ग्रंथ के माहीं॥
औरौ सुनौ भूल इक गाऊँ। गुरु गोबिंद की साखि बताऊँ॥
गुरु गोबिंद मुख अपने गावा। ग्रंथ बिधी मैं देखि बुझावा॥
कृष्न राम भगवान जो भाखा। नहीं काल ने उनको राखा॥
गुरु गोबिंद ग्रन्थ में गावा। भये भगवान काल ने खावा॥

अर्थ–इस प्रकार गुरु गोविन्द साहब ने अपने ग्रंथ में बताया है और 'सबद' को उनके ग्रंथ में ध्यान से देखो। और भी एक भूल मैं कब से रहा हूँ, उसे तुम सुनो और इसके प्रकरण में गुरु गोविन्द सिंह जी

की साखी बता रहा हूँ। गुरु गोविन्द सिंह ने इसे अपने मुख से गया है और ग्रंथ के रहस्य को देखकर मैंने उसे समझाया है। कृष्ण और राम को जिन्हें भगवान कहा गया है:काल ने उनकी भी रक्षा नहीं की 'गुरु गोविन्द सिंह ने अपने ग्रंथ में कहा है कि वे भगवान तो हुए किन्तु काल उन्हें खा गया॥

॥ सवैया ॥

कालै खाइ गयौ भगवान, से जाग्रत या जुग जाकी कला है॥ १ ॥
कालै खाइ गयौ ब्रह्मा सिव, कालै खाइ गयौ जोगिया है॥ २ ॥
कालै खाइ सुरासुर गंधर्ब, जच्छ भुजंग दिसा बेदिसा है॥ ३ ॥
इंद्र मुनिद्र सबै बस काल, इक नानक संत अकाल सदा है॥ ४ ॥

अर्थ–उस भगवान को खा गया जिससे इस युग की जीवन कला जागृत है। काल ही ब्रह्म तथा शिव को खा गया और वही काल योगियों को भी खा गया है। वही काल देवता, असुर, गंधर्व तथा दिशाओं और गैर दिशाओं में पाले यक्ष तथा सर्पों को खा गया। इन्द्र तथा मुनीन्द्र सभी काल के वश में हैं–किन्तु नानक साहब कहते हैं कि एक सन्त ही सदा काल से मुक्त रहा है॥

॥ चौपाई ॥

सब्द साखि इक ग्रंथ बतावा। नानक राम रहीम न गावा॥
राम रहीम बेद नहिं माना। गुरु गोबिंद मत और बखाना॥
ता की सब्द साखि सुनि लीजै। गुरु गोबिंद कही सो कीजै॥

अर्थ–एक ग्रंथ के अन्तर्गत सबद तथा साखी ने यह बतलाया है इसे नानक, राम तथा रहीम ने नहीं गाया है। राम तथा रहीम को वेद भी नहीं मानता तथा गुरु गोविन्द सिंह का मत कुछ और वर्णन करता है। उसकी साखी तथा 'सबद' सुन लें और गुरु गोविन्द सिंह ने जो कही है, वही करें।

॥ सवैया ॥

पाँच गहे जब तें तुम्हरे, तबतें कोउ आँखि तरेनहिं आन्यौ॥ १ ॥
राम रहीम कुरान, पुरान, अनेक कहे मत एक न मान्यौ॥ २ ॥
सिमृति सास्तर बेद कह्यौ, बहु भेद कह्यौ हम एक न जान्यौ॥ ३ ॥
कहै नानक किरपा तुम्हरी कर, मैं न कह्यौ सब तोहि बखान्यौ॥ ४ ॥

अर्थ–जब से पांच ज्ञानेन्द्रियों को सन्तों ने अपने वश में कर लिया तबसे आंखों तले अन्य कोई पारमार्थिक तत्त्व नहीं दिखाई पड़ा। अनेक लोगों ने राम, रहीम, कुरान, पुराण की अनेक बातें समझाई किन्तु उनके एक भी कहने को नहीं स्वीकार किया। स्मृति, शास्त्र, वेद ने अनेक बातें कहीं, तथा इन बातों के अनेक, भेद बतलाए किन्तु हमने एक भी नहीं समझा। गुरु नानक देव ने तुम्हारे ऊपर कृपा करके सारी बातें कहीं किन्तु मैंने तुम्हारे लिए उसका नहीं किया है, सब कुछ गुरु नानक देव का ही है।

॥ चौपाई ॥

नानक ग्रंथ मता अस गावा। तुम्हारा ग्रंथ साखि बतलावा॥
तुम्हरे भेष पंथ के माहीं। ग्रंथ बिधी कोउ बूझै नाहीं॥
बावे कही सो नहिं तुम मानी। तुमने अपना मन मत ठानी॥
कही भगवान काल ने खाया। बावे ग्रंथ में येहि बिधि गाया॥

तुम भगवान सत्त बतलावा। बावे सब्द असत्त लखावा॥
राम राम सब सिष्य सिखावा। बावे सब्द काल सब गावा॥
राम रहीम सब्द सब तोड़े। बावे पानी में सब मोड़ें॥
अपने घर बावे की बानी। सब्द कही तुम एक न मानी॥
बावे राम रहीम उठाये। तुम कहौ इष्ट कौन बिधि लाये॥
नानक सब्द में दिये उठाई। और कहै निंदक बतलाई॥
पिरथम नामक सब्द बिचारौ। निंदक भाव और पर डारौ॥
नानक राम रहीम उठावा। ता को निंदक नहिं ठहरावा॥
और जो कहै सत्त की बानी। ता को निंदक कर कर मानी॥
ये तौ नानक सब्द पुकारे। राम रहीम काल बस डारे॥
नानक पंथी जाकर नामा। नानक कही चले परमाना॥
नानक कही बिधी नहिं मानै। सब्द ग्रंथ की साखि न जानै॥

अर्थ–गुरु नानकदेव ने जिस प्रकार अपने मतों का गायन किया है–मैंने उसी तुम्हारे ही ग्रंथ की साक्षी बतलाई है। तुम्हारे भेष और पंथ के बीच इस ग्रंथ की बिधि कोई समझेगा नहीं। यह बात बाबा साहब ने कही हैं, किन्तु तुमने उसे माना नहीं है, तुमने अपने मन से अपने मन से अपने मत को बनाकर उसी को स्वीकार करने का निश्चय कर लिया है। जिसे भगवान कहा गया है, उसे काल ने लक्ष्य किया है, बाबा साहब ने अपने ग्रंथ में इस प्रकार का कथन किया है। तुम भगवान को सत्य बतलाते हो, बाबा साहब अपने 'सबद' में उसे असत्य बताया है। राम राम कहो, ऐसा सारे शिष्यों को सिखा दिया है, बाबा साहब का कहना हैं कि यह सब काल का गायन है। राम तथा रहीम जैसे 'सबद' को बाबा साहब ने स्वीकार नहीं किया है और इन सबको पानी में बहा-सा दिया है। अपने ही घर के बाबा साहब की यह वाणी है किन्तु उन्होंने ऐसे शब्दों को कहा है, जिसे तुम एक बार भी स्वीकार नहीं करते। बाबा ने राम-रहीम से ऊपर उठा दिया–तुम कहते है ये हमारे इष्ट है, और तुमने किस विधि से उन्हें स्थापित किया है, यह नहीं बताते। नानक ने अपने 'सब्द' में उन्हें हटा दिया और तुमने उन्हें निंदक कहते हो। सर्वप्रथम नानक साहब ने ही इन शब्दों पर विचार किया था और निंदक का भाव दूसरे पर डाला था। नानकदेव ने राम तथा रहीम दोनों को हटा दिया किन्तु उन्हें किसी ने निंदक कहकर स्वीकार करते हो। इन शब्दों को तो नानक देव ने पुकार कर कहा है कि राम तथा रहीम दोनों काल के वश में डाले हुए हैं। नानक पंथी वही है जो नानक को प्रमाण मानकर चले। जिसे नानकदेव ने कहा है, उसको नहीं स्वीकार करते और उनके 'सबद' ग्रंथ की साखी भी नहीं समझते।

राम साखि बावे नहि माना। राम रहीम बेद नहिं जाना॥
ये तुम्हरे मति बावे गाई। ता को छाड़ि और मति धाई॥
अपने गुरु मति राह बिचारौ। बावे कही सोई मति धारौ॥
अब कहूँ एक बिधी बिधि गाई। पलकराम सुनियोचित लाई॥
साधु दया आतमबिधि जानै। आतम कष्ट बहुत दुख मानै॥
साध दयाल दया अस गावैं। आतम दया बहुत बिधि लावैं॥
ऐसे ग्रंथ संत सब गावैं। बावे को दयाहीन न भावै॥

दयाहीन बहुतै अधमाई। आतम हतै सो काल कसाई॥
देखौ संत मते में रीतौ। आतम हत सब कहाँ अनीती॥
पलकराम ये कैसी रीती। साहिब जादे करैं अनीती॥
लड़की मारि करैं अजगूता। यह हत्या आतम होइ भूता॥
यह तो आप आतमा नासा। छूटै नहीं भोग बिन बासा॥
जो चेतन बसै लड़की माहीं। सो चेतन है अपने ठाहीं॥
लड़की देंह दृष्टि करि देखी। ता में अदृष्टि ताहि नहिं पेखी॥

अर्थ--राम की साक्षी को बाबा साहब ने स्वीकार नहीं किया है और इन राम तथा रहीम को वेद भी नहीं जानता है। तुम्हारे ही मत से बाबा साहब ने यह सब गाया है किन्तु यह जानते हुए भी दूसरों के मतों का अनुसरण करते हो। अपने गुरु के मति की राह को सोचो और जो बाबा ने कहा है, उसी मत को धारण करो। हे पलकराम! मन लगाकर सुनना, और अब मैं एक दूसरी विधि गाकर कहता हूँ। साधुजन की दया से कोई ही भाग्यविधि को जानता है और आत्मा के कष्ठ को बहुत बड़ा दुःख मानता है। साधु जन दयालु होते हैं और दूसरों पर कृपा करते हुए ऐसा कहते हैं। ऐसे ग्रंथों में सारे सन्त जन भी कहा करते हैं कि दयाहीन व्यक्ति बाबा साहब को भला नहीं लगता। दयाहीन व्यक्ति अत्यधिक अधम होता है और जो आत्मा का वध करता है, वह व्यक्ति काल की भाँति कसाई है। सन्तमत की इस नीति को देखे। आत्मा के विनाश को सभी अनीति कहते हैं। कन्याओं का वध करके कितना घृणित कार्य करते हैं--हत्या से आत्मा होकर भी भूत जैसी वह बन जाती है? यह तो स्वयं अपनी ही आत्मा का विनाश करना है--और बिना भोग के यह वासना छूटती नहीं। जो चैतन्य उस कन्या में निवास करता है, वह तो अपने में भी है। लड़की की देह को दृष्टि में रखकर उसे लड़की समझा है किन्तु उसमें अदृष्ट आत्मा निवास करती है, इसे नहीं देखा है।

साधू देह दृष्टि नहिं मानै। बोलै अदृष्टि ताहि पहिचानै॥
देंही दृष्टि जगत की रीती। साधू देखै चेतन सेती॥
ता को नास करौ तुम भाई। बावे यह बिधि कही अधमाई॥
यह तुम पाप कीन्ह केहि काजा। साध दया मति आवै न लाजा॥
ग्रंथ माहिं देखौ तुम जाई। आतम हत्या साध न गाई॥
या बिधि भूल करौ अजगूता। जम राजा बँधि है मजबूता॥
साखी बावे मति की जाना। पर आतमहत नरक निदाना॥
आज गृहस्थ लड़की जो मारै। ताको जगत अधम करि डारै॥
साध बने यह कर्म बिचारी। हिरदे दया नेक नहिं धारौं॥
साधू चलै अनीती लारा। गृहस्थी डरै पाप के मारा॥
औरो सुनौ एक अधमाई। बिन बकरा मेरे मास न आई॥
बकरा मरै जीव दुख पावै। तब पुनि मास कसाई लावै॥
आतम मरै कष्ट के माही। कसकै साधू देंह धुजाई॥
ऐसे निष्ट साध जो खावैं। तिन को साधू कहि कहि गावैं॥

अर्थ–साधुजन देह दृष्टि को नहीं मानते-जो उसमें अदृश्य आत्मा निवास करती है, उसे पहचानते हैं। संसार में देह दृष्टि अदृश्य है। साधुजन तो (नर-नारी न देखकर) चेतन भाव को ही सर्वत्र देखते हैं। उसको हे भाई! तुम विनष्ट करते हो, बाबा साहब ने इस विधि को अधमता की संज्ञा दी है। इस पाप को तुमने किसलिए किया है। साधु जन की दयामति की अवहेलना पर तुम्हें लज्जा भी नहीं आती। ग्रंथों में तुम जाकर देखो, कहीं भी आत्मा की हत्या के लिए साधुजन ने कोई बात नहीं कही है। इस प्रकार तुम घृणित कार्य कर रहे हो और मृत्यु के समय यमराज तुम्हें और जकड़कर बाँधेंगे। बाबा साहब ने विचारों को साखी तुम सुनो कि आत्म हत्या करने वाले को साक्षात् नरक होता है। आज गृहरूप लड़कियों का बध कर रहा है–सारा जगत उसे अधम कह रहा है। साधु बनकर इस कर्म पर विचार करो कि तुम हृदय में रंच मात्र की दयाभाव नहीं रखते। साधु बनकर अनीति से संसक्ति करते हो और इस कारण गृहस्थी से डरते हो। अपनी एक अधमता और भी सुनो, वह यह कि बिना बकरा मरे माँस कहाँ से आएगा। बकरा मारने से जीव दुःख प्राप्त करता है और उसी के बाद ही कसाई मांस लाता है। कष्टों के बीच आत्मा भरती है और उनके भक्षण से कुछ साधुजन अपनी देह को सन्तुष्ट करते हैं। ऐसे मांस का जो भक्षण करते हैं, वे साधु निकृष्ट है और दूसरी ओर लोग उन्हें साधु कहकर उनका यशगान करते हैं॥

दयाहीन इंद्री सुख भावै। जिभ्या रस मट्टी बतलावै॥
जो कोई पूछै कस कसखाई। तुम ता को मट्टी बतलाई॥
जिव हत्या कछु नाहिं बिचारा। ऐसे साथ अनीति अधारा॥
करै स्वाद मिट्टी बतलावै। इंद्री स्वाद बिधी नहिं गावै॥
मट्टी तौ तब जाने भाई। ढेला खेत उठावै खाई॥
जब जिभ्यासुख चीन्ह न आवै। तब मट्टी कहि सच करि गावै॥
नोन मिरिच पुनि छौंकै जाई। पुनि तेहि करै स्वाद से खाई॥
कोइ कोइ गृस्थ बिष्नु तेहि थू कै। धूजै देंह प्रान तेहि सूखै॥
गृहस्थ अनीति मानै नीके। मास खाइ तेहि संगति छेके॥
ये साधन के कर्म निकामा। नरक परै छूटै जब जामा॥
ऐसी कहाँ कहाँ की कहिया। गृस्थ डरै तेहि साधन लइया॥
दरस साध के कहैं पुनीता। करै साध ये कर्म अनीता॥
बड़े साध येहि बिधि से गाये। यह अनीति सब संत बताये॥
पलकराम बिधि समझौ भाई। कहिये साध कि कहिये कसाई॥
ये बावे मुख नहीं बखाना। मन अपने सुख इन्द्री खाना॥
तुलसी मैं तो सब का दासा। देखि देखि जिव भयौ उदासा॥
ऐसी कहि कहि कहँ लगि गाई। मता साध का कहूँ न पाई॥

अर्थ–ऐसे दयाहीन इन्द्रिय सुख प्राप्त करते हैं और जीभ के आनन्द के आगे धर्म को मिट्टी जैसा मानते हैं। जीव हत्या पर वे जरा भी विचार नहीं करते, वे ऐसी अीति को आधार के रूप में अपने साथ लिए रहते हैं। अपने स्वाद के लिए इस संसार को मिट्टी जैसा बतलाते हैं और ईन्द्रियों के स्वाद के विविध रूपों का वर्णन करते हैं। हे भाई! मिट्टी को सब जानते हैं--खेत के मिट्टी के टुकड़ों से जोड़-जोड़कर लोग खाई बनाते हैं। वे जीभ के सुख के आगे और कुछ भी पहचान नहीं पाते और इस शरीर

को भी मिट्टी कहकर पुकारते हैं। नमक-मिर्च और तेलादि की छौंक लगाकर पुनः उस वस्तु को बड़े स्वाद से खाते हैं। कही-कोई गृहस्थ उन पर कृष्ण से पूछता है–उस कार्य को देखकर देह जल उठती है, प्राण सूख जाते हैं। गृहस्थ उसे भलीपाँति अनीति मानता है और वे साधु माँस खाकर उस गृहस्थ की संगति के लिए लालाइत रहते है। साधन में प्रयुक्त में कर्म निकृष्ठ हैं:जब तक यमराज है, वह तब तक नर्क में पड़ा रहता है। ऐसी बातें मैं कहाँ-कहाँ की कितनी सुनाऊँ:वे साधु ऐसे साधनों का उपयोग करते हैं: जिनको देखकर एक गृहस्थ डरता रहता है। वे कहते हैं, हम साधुओं के दर्शन पवित्र हैं–आप बताएँ, ये साधु जो कर्म करते हैं, क्या पुनीत हैं। बड़े-बड़े साधु इसी प्रकार से गाते रहते हैं और सारे सन्तों ने बताया है कि यह अनीति है। हे पलकराम! इस रहस्य को समझो, इन्हें साधु कहा जाए कि कसाई। इसे बाबा साहब ने अपने मुख से नहीं बताया है–अपने एवं अपनी इन्द्रियों के सुख के लिए वे ही निकृष्ट करते है।

यह तुलसी साहब तो सबका दास है–और संसार में इस आचरण को देख-देखकर उदास है। ऐसा कह कहकर कहाँ तक इसका गायन करूँ–इन सभी ने साधु मतों को कहीं भी नहीं प्राप्त किया है।

।। प्रश्न पलकराम ।। चौपाई ।।

तुलसी स्वामी भाखौ भेवा। साहिबजादे कर्म के लेवा ।।
यह बिधि संत मते में नाहीं। सत सत ये तौ कही गुसाँई ।।
कहौ तुलसी इनका निरवारा। ये भी कबहूँ लगिहैं पारा ।।

अर्थ–हे तुलसी स्वामी! इस रहस्य के विषय में बतलाएँ कि ये सभी साहब जाते कर्म के अधीन हैं। यह विधि तो संत मत में नहीं है–हे गोस्वामी जी! आपने यह तो सारी बातें सही-सही कही है। हे तुलसी साहब इनका निराकरण करें कि क्या ये भी कभी भवसागर के पार लगेंगे ।।

।। उत्तर तुलसी साहिब ।। चौपाई ।।

पलकराम तुम सुनियौ स्वामी। ये तौ परिहैं नर्क की खानी ।।
आतम नास मास जिन खाया। बकरा मारि करम में आया ।।
आतम नास कीन्ह तेहि खाया। अपनी इंद्री सुख में लाया ।।
इंद्री सुख भयौ आतम बैरा। जिन के भये नरक में डेरा ।।
ये तौ कभी न छूटैं भाई। ये बैराट लौटि जो जाई ।।
साध फकीर गृस्थ पुनि कोई। जिन जिन कीन्ह नर्क गये सोई ।।
बैर भाव छूटे नहिं भाई। गला काटि सोइ बंधन पाई ।।
या का सुन बरतंत सुनाऊँ। जा की चाल हाल दरसाऊँ ।।
रामायन में देखौ जाई। साखि समझ बिधि देउँ दिखाई ।।
और पुरान जान जिन बूझा। हत्या पाप सबन कहँ सूझा ।।

अर्थ–हे स्वामी पलक राम! आप सुने, ये सभी नर्क की खानि में पड़ेंगे। आतमनाश करके जिन्होंने माँस खाया है, वह बकरे को मारकर के कर्म जगत में आया हुआ है। आत्मा का नाश करके उसे खा लिया–यह अपनी इन्द्रियों के सुख के लिए किया गया है। इन्द्रिय सुख चेतना का बैरी है और यह सब उनके लिए नरक का डेरा बना जाता है। हे भाई! ये तो कभी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकते और यदि ये इस सृष्टि लौट कर जाते हैं तो पुनः यहीं अएँगे। साधु, फकीर या कोई गृहस्थ–या जो भी हो–जिन्होंने

यह कार्य किया है, उन्हें नर्कगामी होना पड़ता है। हे भाई! जिनसे बैर भाव नहीं छूटता–वे दूसरों का गला काट कर पुनः लोक बंधन में आते हैं। मैं इसका वृत्तान्त आपको सुना रहा हूँ और इसकी चाल ढाल भी बतला रहा हूँ। हे भाई! इसे जाकर रामायण में देखो, और साखी को समझाने की दशा को मैं समझा देता हूँ और जिसने भी पुराण के ज्ञान को समझा, सभी ने इसे हत्या का पाप समझाया है।

॥ दोहा ॥

राम बान बाली हता, मारे सब जग जानि।
पुनि पूरबले बैर से, भील भाल तन हानि॥

अर्थ–राम ने बाण से बाली का वध किया, यह सब संसार जानता है पुनः पूर्व जन्म के बैर से भील के भाले द्वारा (उनकी कृष्ण रूप) की हानि हो उठी॥

॥ चौपाई ॥

राम कृष्न औतारी भाई। बाल भील होइ मारौ ताही॥
पाँव पदम बिच मारेउ बना। कृष्न बैर पुनि मरे दिदाना॥
ऐसे बैर न जैहै भाई। गला कटे बिन छूटि न पाई॥
अब बावैं मुख सब्द सुनाऊँ। नानक कही सोई समझाऊँ॥

अर्थ–हे भाई! राम-कृष्ण अवतारी पुरुष हैं और बालि ने भील होकर अगले जन्म में उनका वध किया। उनके पांव में स्थित कमल के बीच उसने बाण मारा: उसके बैर से कृष्ण इस प्रकार मरे। इस प्रकार के वैर भाव कभी समाप्त नहीं होते: और पुन: गला काटने वाले के गला कट जाने बिना यह बैर नहीं छूटता। अब मैं इस प्रकरण में बाबा साहब के मुख से निकले शब्दों को सुनाता हूँ। नानक साहब ने जो कुछ कहा है, उसे मैं समझा रहा हूँ॥

॥ शब्द ॥

दरदमंद दरवेस है, बेदरद कसाई।
गल बिच छुरी चलाइया, तुझे दरद न आई॥ टेक॥
क्या बकरी क्या भेड़िया, क्या अपना जाया।
सब का लोहू एक है, तुझै किन फुरमाया॥ १॥
नानक लखि परचै भई, सब घट बिच प्यारा।
सब जहान जिव एक है, घट माहिं निहारा॥ २॥

अर्थ–यह जो दर्द की अनुभूति वाला दर्दमन्द कहा जाता है, वह बे दर्द कसाई जैसा है। पशुओं के गले के बीच छुरी चलाते हुए तुझे दर्द नहीं आया। क्या बकरी, क्या भेड़िया, क्या अपनी पुत्री ये भिन्न नहीं हैं और सभी के खून एक से हैं–तुझे फिर किसने इन्हें एक अलग मारने तथा गला काटने का आदेश दिया है। नानकसाहब कहते हैं कि इन्हें देखकर मेरा इनसे परिचय हुआ और इस शरीर के भीतर स्थित सभी प्राणी प्रिय हैं। इस संसार के सारे जीव एक हैं–इनके शरीर को देखकर (मैं बताता हूँ)॥ १-२॥

॥ चौपाई ॥

यह नानक बिधि भाखि सुनाई। अपने घरको समझ न आई॥
नानक साहिब बड़े दयाला। जीव हतन ग्रन्थ नहिं ढाला॥

ये सब रीत स्वाद की लारी। स्वारथ जिभ्या पेट सँवारी॥
कहिये दया संत की रीती। यह कस करी मुक्ती परतीती॥
नित प्रति जीव कसाई मारै। हत्या कहि कहि संत पुकारै॥
संत कसाई एकहि लेखा। या में ठहरा कौन बिबेका॥
यह अन्धे अन्धे कर लेखा। आतम मारि न करै बिबेका॥
अंध धुन्ध सब भेष भुलावा। सब्दन बिच नानक नहिं गावा॥
कोइ बावें मुख साखि सुनावै। तौ तुलसी के मन में आवै॥
हत्या भई मुक्ति की दाता। नानक पंथ भेष सब खाता॥

अर्थ—मैंने यह नानक देव का विचार कह कर सुनाया है—तुम्हें अपने घर की बातें समझ में नहीं आती हैं। नानक साहब बड़े दयालु थे और अपने ग्रंथों में जीव हत्या की बातें नहीं की है। ये सारी हत्याएँ स्वाद की संसक्ति से हैं। स्वार्थवश ये आज के साधु जीभ तथा पेट सँवार रहे हैं। दयावान सन्तों की रीति को देखते हुए यह प्रश्न उठता है कि इन लोगों ने इस प्रकार की मुक्ति में कैसे विश्वास किया। कसाई नित्य प्रति जीवों का वध करता रहता है और उसे सन्त जन हत्या कह कर पुकारते हैं। इस प्रकार, सन्त तथा कसाइयों का एक ही लेखा है और इन दोनों में कौन अधिक विवेकवान है? अन्धधुन्ध (ना समझी) में सभी भेष रचना में भूले पड़े हैं इसे नानक देव अपने सब्द में बराबर कहकर गाते रहे हैं। कोई हमारे सिद्ध बाबा साहब के मुख से हत्या का समर्थन कह कर सुना दे, तब तुलसी को भी विश्वास हो सकता है, जो सम्भव नहीं है। यहाँ तो हत्या मुक्तिदात्री बन गई हैं और नानक के मार्ग के भेषधारी लोग सब खाने पीने को ही धर्म मानते हैं।

सबही बेष भेड़ की रीती। अध अंध कर्म मन चीती॥
अब या का परसंग सुनाऊँ। घूघर जुत्थ बैठ इक ठाऊँ॥
जग अँधरा जस घूघर लेखा। जो बिरले कोइ ज्ञान बिबेका॥
ज्ञानवंत कोइ बूझि बिचारै। लख अनीति आतम नहिं मारै॥
घूघर अंध काग भये भेषा। नीची बुद्धि कुबुद्धि कर लेखा॥
घूघर दर दृष्टान्त बताऊँ। नंगल माहिं भेद दरसाऊँ॥

अर्थ—सभी के भेष भेड़िया धसान की रीति जैसे एक-से ही हैं और अंधे का अन्ध कर्म मन के लिए आनन्द दायक हो उठा है। अब मैं इसका दूसरा प्रसंग सुनाता हूँ। यह प्रसंग इन उल्लुओं के समूह के रूप में बैठे सन्तों से सम्बद्ध है। उल्लुओं के अनुसार देखा जाए तो दिन में भी सारा संसार अंधा है और उनमें से ज्ञान विवेक वाले तो दुर्लभ ही हैं। वही ज्ञानवान इस तत्त्व पर विचार कर सकता है पूर्व कार्य समझ कर वह किसी जीव की हत्या न करे। इन सन्तों का वेष कौवे का है, आँखे उल्लू की हैं—बुद्धि नीची है, और इनका कार्य कुबुद्धिपूर्ण है। मैं उल्लू का एक दृष्टान्त बता रहा हूँ और मंगल गीति द्वारा उनका रहस्य समझाऊँगा।

॥ मंगल ॥

घूघर अंधे टेक अभिमान में।
सूझै न सब में ब्रह्म धुन्ध अज्ञान में॥ १॥

घूघर नेतर खुलै सुनौ सोइ साध है।
देखा तन बिच भान सो ब्रह्म अगाध है॥ २॥
जाने भाखा भेद अंध वा को कहै।
सब घूघर जिमि भेष टेक अपनी लहै॥ ३॥
हंस सिरोमनि साध गगन गंगा बसै।
काग कुबुद्धी भेष भर्म भौ में फँसे॥ ४॥

अर्थ--अंधे उल्लू की टेक अंधेपन के अभिमान में ही है। गम्भीर अज्ञान के कारण उसे सब जीवों में निहित ब्रह्म सुनाई नहीं पड़ रहा है। साधु वही है, जिसके प्रयास से उल्लू के भी नेत्र खुल जाएँ और इस शरीर के बीच उस ब्रह्म को देखे, जिसे अगाध माना गया है। अंधा उसको कहते हैं, जो कोई बात समझता नहीं और उल्लुओं के सदृश भेष धारण किए हुए अपनी ही बातें कहते रहते हैं। हंसों के शिरोमणि साधु गंगा स्थली में रहते हैं--दुर्बुद्ध कौवे का वेषधारण करने वाले इस भवसागर के भ्रम में फँसे रहते हैं।

वे का जानैं मर्म हंस केहि का कही।
जस घूघर रबि अंध दिवस दीसै नहीं॥ ५॥
सो सब अंधे भेष ब्रह्म बूझै नहीं।
तन बिच आतम जीव परख सूझै नहीं॥ ६॥
मारत निकरै स्वाँस माँस सोइ खात हैं।
सोइ साधू निज भेष नर्क में जात हैं॥ ७॥
गृस्थ हैं जग माहिं मास मछरी भखैं।
जुग जुग नरक निवास तासु पुरखा चखैं॥ ८॥
ये कोई भेदी भेद संत बतलावहीं।
गगन गंग कर बास सो हंस सुनावहीं॥ ९॥
काग कुबुद्धी जीव न मन उनके बसै।
छूटै नर्क निदान जान जम ना फँसै॥ १०॥
तुलसी बूझि बिचार चारि जुग से कही।
जो कोइ मानै अन्त संत सरना सोई॥ ११॥

अर्थ--वे इस रहस्य को क्या समझें कि हंस किसे कहा जाता है--यह उसी प्रकार है, जैसे उल्लू दिन में अंधा रहता है और उसे सूर्य नहीं दिखाई पड़ता। उसी प्रकार, जो भेष रचना में अंधे हैं, उन्हें ब्रह्म दिखाई नहीं पड़ता। इस शरीर के बीच आत्मरूपी जीव है--उसकी परख उन्हें नहीं समझ में आती। पशु पक्षी आदि को मारते ही ही उसकी साँस निकल जाती है और उसी का मांस वे खाते हैं और वही साधुगण हो अपने भेष रचना के साथ नर्क में जाते रहते हैं। जो गृहस्थ इस संसार में माँस तथा मछली खाते हैं--वे तो युग-युग तक नर्क में निवास करते ही हैं, उनके पूर्वज भी नर्क का स्वाद चखते हैं। इस रहस्य का उद्घाटन कोई संत ही करेगा और करेगा और वह आकाश गंगा में निवास करता हुआ जीवन व्यतीत करेगा। कौए, दुर्बुद्धि वाले जीव हैं, उनके मन में यह ज्ञान नहीं आ सकता। किन्तु जो

ऐसा नहीं करते, वे नर्क से छूट जाते हैं और उनकी जीवन यम के हाथों में नहीं फँसता है। तुलसी साहब कहते हैं कि इसे बूझो तथा विचारो। यह बात चार युगों से कही जा रही है। अन्त में, जो इसे स्वीकार कर लेता है, वही सन्तों की शरण में स्वीकार किया जाएगा।

॥ चौपाई ॥

संत सार सरना सोइ पावै। नीति अनीति नजर में आवै॥
संत सरन बिन पंथ न सूझै। जीव हतन तन दया न बूझै॥
जस घूघर दिन दिखै न भाई। अस जग भेस नैन अंधराई॥
दृग दिवस तेहि सूझि न आवै। राति परे चरने को जावै॥
घूघर का परसंग सुनाऊँ। नीत अनीत भेद दरसाऊँ॥
गूलर बृन्छ रहै कहुँ एका। ता पर घूघर बसै अनेका॥
आपस में चर्चा भइ भाई। अपनी अपनी सबन सुनाई॥
बोले चक सुरज जहँ रहिया। ता को कछु बिख्यान सुनइया॥
ता में एक घूघर उठि बोला। दिन को सूरज उगै अतोला॥
सब सुनि बात अचंभा कीन्हा। सुनकर कोउन हुँकारी दीन्हा॥
ये तो आज सुनी हम भाई। हम सब के यह मन नहिं आई॥
वा को झूठा करि ठहराया। पूछा कहाँ कहाँ सुनि आया॥
उनसे कहा सुनौ परसंगा। समुन्दर बीच मिलि जहँ गंगा॥
ता बिच धाम मोर अस्थाना। कई दिवस जह बीति सिराना॥
एकै दिवस भया अस लेखा। हंस सरवर आवत देखा॥
समुन्दर वार काग कहुँ आये। उन हंसन पर चोंच चलाये॥

अर्थ—सन्तों की शरण का सार तत्त्व वही पाता है—जिसे नीति अनीति दृष्टिगत होती है। बिना सन्तों की शरण के मार्ग नहीं सूझता। जीव की हत्या करते हुए उनके ऊपर उन्हें दया नहीं समझ में आती। जैसे उल्लू दिन में नहीं देखता ऐसा ही, संसार में भेष रचना करने वाले हैं, वे नेत्रों से अंधे हैं। दिन में ही उन्हें नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ता और रात्रि पड़ने पर (अज्ञानता वश) वे चरने के लिए निकलते हैं। मैं उल्लू का प्रसंग सुना रहा हूँ और उससे नीति-अनीति का भेद दिखाऊँगा। कही एक गूलर का वृक्ष था जिस पर अनेक उल्लू निवास करते थे। यह उनकी आपस में चर्चा चल रही थी और वे अपनी-अपनी सब सुना रहे थे। उनमें से एक उल्लू बोला, जहाँ सूरज रहता है, उसका कुछ वृत्तान्त सुनाइये। उसमें से एक उल्लू उठ कर बोला–दिन में सूरज अतुलनीय बनकर निकलता है। वह बात सुनकर सबने बहुत आश्चर्य किया और उसे सुनकर किसी ने हुँकारी नहीं भरी॥ यह बात जो आज सुनी है, यह सब हम लोगों के मन तक नहीं आ सकी है। उसको उन सबके झूँठा ठहरा दिया और यह पूछा कि यह कहाँ से सुनकर आया है। उन्होंने कहा, इस प्रसंग को सुनो। समुद्र के बीच जहाँ गंगा मिलती हैं, वहीं मेरा निवास स्थान है–कई दिन वहाँ रहते-रहते बीत गए। एक दिन वहाँ ऐसी स्थिति घटी–मानसरोवर से आते हुए हंस को वहाँ मैंने देखा। समुद्र के उस पार से कुछ कौवे आए थे और उन्होंने हंसों पर चंचु प्रहार किया।

हंसी कही सुनौ रे कागा। मैला मन बुधि ज्ञान न जागा॥
जग बिच सूरज उगै जहाना। आँखि न सूझ अबूझ बखाना॥
जस घूघर दर दिवस न सूझा। अस अँधरा हम तोहि को बूझा॥
अस अस बातैं भईं बनाइ। सो मैं सुनी कान के माहीं॥
डर कागा के रहूँ छिपाई। अस विधि सुनी सुनौ रे भाई॥
यह सब के मन भया अचंभा। दिवस अंध मानौ जस खंभा॥
दिवस दृगन से सूझै न सोई। बूझै कहा दिर्ग बिन जोई॥
ऐसे अंध भया सब भेषा। सूझै न संत मते का लेखा।
गूढ़बचन बाना उन केरी। वे का जानैं अंध निवेरी॥
ग्रंथ सब बिन बूझ न आवै। मन जस चलै तेही दिस धावै॥
खान पान बस भेष दुकाने। मन जग लूटत नाहिं डराने॥
अस अस ज्ञान भया सब माहीं। यों त्यस बड़े भेष भुलाई॥
जीव हतन ऐसी विधि कीन्हा। कर कर पाप आप सिर लीन्हा॥

अर्थ–हंसिनी ने कहा, हे कौओं! सुनो, मन बराबर मैला रहता है और तुम्हारी बुद्धि में ज्ञान नहीं जगता है। संसार के बीच सूर्य निकलता है–जिन्हें सूझता नहीं वे उसे अज्ञेय बतलाते हैं। जैसे उल्लू को दिन में प्रकाश नहीं सूझता, ऐसा ही अंधा हम तुम्हें भी मानते हैं। इस प्रकार की वहाँ बातें हुई–हे भाई! जिन्हें मैंने अपने कान से सुना है। ये उल्लू भी कौओं के डर से छिपे रहते हैं ऐसा मैंने सुना है, हे भाइयो सुनें। यह सुनकर सभी को आश्चर्य हुआ ये दिन में खंभे की भाँति अन्धे रहते हैं, दिन में इन आँखों से कुछ भी नहीं सूझता–क्योंकि आँख बिहान हैं, वे क्या समझ सकते हैं।

इसी प्रकार, भेष रचना वाले सभी अंधे बने रहते हैं और उन्हें संत मत का उपदेश सुझाई नहीं पड़ता है। उनके वचन और बयान दोनों गूढ़ हैं और वे अंधकार का निवारण कैसे समझें। ग्रंथ सन्तों के बिना समझ में नहीं आते:मन जिस दिशा में चलता है, वही समझ में आता है। उनके पास तो केवल खान-पान भेष रचना की दूकानें ही हैं और उनका मन संसार को लूटते हुए भयभीत नहीं होता। आज के साधुओं में इसी प्रकार का ही ज्ञान है और सभी बेष रचना में भूलकर डूब चुके हैं। जीव हत्या की इन्होंने ऐसी विधियाँ अपना ली है कि वे पाप कर-करके स्वयं अपने सिर पर लेते हैं॥

जीव हतन को दया न आई। ये सांधू कोउ कहे न भाई॥
ये सब नीच बुधि जग रीती। कोइ कोइ जाति न करै अनीति॥
जीव को मारि मास जो खाई। पुरखा तासु नरक में जाई॥
अस अस जग में डरै बनाई। सो अस मास साध होइ खाई॥
नानक ग्रन्थ में नहीं बखाना। सब्द मास नहिं कीन्ह बिधाना॥
सब साखीं में देखौ लेखा। ये कस खाई पंथ बिच भेषा॥
आप खाइ और सबे सिखावै। कायथ या से सिष्य कहावै॥
और खत्री सुन सिष्य सुनाई। मास खानि कीन्ही गुरुवाई॥

ये गुरु सिष्य भाव अस लेखा। परैं नरक दोउ घोर अलेखा॥
सुनि साहिबजादों की रीती। लड़की मारिजो करैं अनीती॥
कन्या पाप जगत में भारी। सो वे साधू करैं बिचारी॥
अस अस पाप करम की जुगती। सो साधू नहिं पावै मुक्ती॥
अस अस अधम काम जिन कीन्हा। जमने बाँधा भये अधीना॥

अर्थ–जीव की हत्या करते हुए उन्हें दया नहीं आई, हे भाई, ये साधु इनके लिए ऐसा कोई नहीं कहेगा। ये सभी नीच हैं और इनकी बुद्धि कभी खाली नहीं रहती–कोई कोई जातियाँ इतनी अनीति नहीं करती हैं। जो व्यक्ति जीव का वध करके मांस खाते हैं, उनके पुरखे नरक में जाते हैं। इस प्रकार, संसार में भय बनाकर डरते हैं, वे साधु होकर भी इस प्रकार मांस भक्षण करते हैं। नानक देव ने अपने ग्रंथ में इसका वर्णन ही नहीं किया है। उन्होंने मांस शब्द का प्रयोग ही नहीं किया है। उनकी सभी साखियों के साक्ष्य देख लें–ये लोग कैसे पंथ एवं वेष बनाकर मांस सेवन करते हैं। स्वयं खाते हैं और दूसरों को खिलाने की शिक्षा देते हैं– इसी के कारण कायस्थ इनके शिष्य हैं। इनके दूसरे शिल्प खत्री हैं–जिनकी, गुरुआई मांस खाने से की गई है। इन गुरु शिष्यों का लेखा-जोखा इस प्रकार का हैं, कि दोनों आलस्य खोर नर्क में जाकर पड़ते हैं। इन साहबजादों की रीति सुनें–ये पुत्री को मार डालकर अनीति का कार्य करते हैं। संसार में कन्या का पाप सबसे अधिक है–जिसे ये साधु जन विचार कर सकते हैं। अपने कर्मों की युक्ति से इसप्रकार का पाप करने वाले साधुजन कभी मुक्ति नहीं प्राप्त करते। जिन्होंने ऐसा-ऐसा अधम कर्म किया है–इन सबको यम के बाँधकर अपने नियंत्रण में कर रखा है।

अस अस करम काम जो करिहै। धरि धरि काल जाल में डरिहै॥
परे पारधी पंछिन माहीं। पकरि पकरि झोलिन में काई॥
पंछी पकरि पारधी लेखा। अस जम करै पकरि सब भेषा॥
जे जे मास मीन जिन खाई। सोइ सोइ बाँधै काल कसाई॥
या में नेक एक नहिं जानौ। बूझौ संत साखि सुन मानौ॥
नानक और कबीर सुनाई। दादू दरिया सब ने गाई॥
सब्द साखि बिव लेउ बिचारी। हत्या पाप नरक होइ भारी॥
अस अस साधू रूबहि पुकारै। ये मत नीच कोच की लारै॥
ये पुरान में देखौ जाई। सास्तर सबै अनीति बताई॥
जग में रीति अनीती जानै। सो साधन बिच साखि बखानै॥
यहि बिधिसंत मुक्ति गोहराई। मास खाह भो पार न जाई॥
ये सब भेष टेक मन जानी। साखि सब्द बिच नाहिं बखानी॥
सुन कर बूझै ज्ञान बिबेका। ये सब खान मान मद लेखा॥

अर्थ–इस-इस प्रकार के दुष्कर्म भरे जो कर्म करेंगे–उनको पकड़-पकड़ कर काल जाल में डाल देगा। जैसे कोई पारधी (बहेलिया) पंक्षियों को पकड़ पकड़ झोली में डाल लेता है–ऐसा ही इनके साथ काल करता है। जैसे पंक्षी को पकड़कर बहेलिया करता है, इनके साथ ठीक उसी प्रकार इन सारे आडम्बरपूर्ण भेष रचना करने वाले मांसभक्षियों से व्यवहार यमराज करता है। जो-जो लोग मछली का मांस-मांस हैं–उन उन कसाइयों को काल बांध देता है। इनमें से किसी को नेक आचरण

का मत समझो और सन्तों की साखी सुनकर इस बात को बूझो और समझो। इनके विषय में नानकदेव और कबीरदास ने काफी सुना रखा है। इनकी बातों को शब्द सखियों के बीच विचार कर सुन लो। हत्या के पास भारी नर्क होता है। साधुजन इस प्रकार की बातों को पुकार-पुकार कहते हैं कि ये निकृष्ट आचरण नीच जनों की संसक्ति से होती है। इसे जाकर पुराणों में देखो और सभी शास्त्रों में इसे अनीति कहा गया है। संसार की इस नीति को अनीति समझो—जिनका वर्णन साखियों के रूप में किया गया है। संत यदि इसी विधि को मुक्ति कहकर, पुकारते हैं तो आज तक मांस खाकर कोई भवसागर के पार नहीं जा सका। ये सारे भेष मन की टेक हैं—और इनका वर्णन न साखियों के बीच किया गया है और न 'सब्द' के बीच। इन्हें सुनकर अपने ज्ञान और विवेक से समझो कि ये सारे खान-पान मद से जुड़े हैं।

अपनी देखी करौ न भाई। नहि कोई आगे साखि लखाई॥
ये सब अंध धुन्ध कर लेखा। बूझै न ज्ञान पंथ कोइ भेषा॥
संत दयाल दया निधि गावै। दयाहीन नहिं साध कहावै॥
जीव मारि जो करै बेहाला। वा को वोहि भया जम काला॥
ये जिव हानि करै जो कोई। जिन ये कीन्ह नरक गये सोई॥
या में कोई लाख बुझवावै। नरक बास आसा तन पावै॥
देखौ मता संत कर बावे। ये तौं नरक करम में जावे॥
संत मते की राह नियारी। ये तौ भरम भाव जग सारी॥
ये कहुँ संत मते में नाहीं। संतन का मति औरै भाई॥
पलकराम बूझौ मन माहीं। संत मते की औरै राही॥
संत मते का औरै लेखा। कोई भेष न किया बिबेका॥
संतन सत सत कही बाखाना। बिना बूझ निंदा कर जाना॥
या से भाव भेद नहि पावै। बिना भेद निंदक ठहरावै॥
जो बावे मुख कड़ी लखाई। जैजैवती में बिधि गाई॥
जो कछु सुरति पंथ गति रीती। बावे बचन भाखि परतीती॥
जैजैवंती में सब गाई। पलकराम सुनियौ चित लाई॥

अर्थ—हे भाई! अपना देखो और दूसरे का अन्धानुकरण न करो और इसके लिए आगे भी कोई साखी नहीं दिखाई पड़ेगी। ये सारी बातें अंध-धुंध के लेखे की भाँति हैं—समझने से किसी का ज्ञान, पंथ आदि की बात समझ में नहीं आती। दयानिधि संत दयालु इस प्रकार गाते हैं कि कोई साधु दयाहीन नहीं दिखाई पड़ता। जीवों का बध करके जो उन्हें बेहाल कर देते हैं—उसके लिए वही मारा जाने वाला व्यक्ति ही यम का काल हो उठता है। इन, जीवों का वध जो कोई करता है—जिन्होंने यह किया है, वे सीधे नर्क जाते हैं। इनमें से कोई लाख समझाए कि वह नर्क वास की आशा से ही शरीर को प्राप्त करता है। इस विषय में बाबा साहब के सन्त मत को देखें। ये अपने इस कर्म के कारण नर्क में गमन करते हैं। सन्तों के मत की राह तो विलक्षण है—इनके विषय में समस्त संसार भ्रम भाव में पड़ा रहता है। ऐसा कुछ सन्त मत में नहीं कहा गया है, हे भाई सन्तों की मति और कुछ भिन्न है।

हे पलकराम! मन के अन्दर इसे समझो, सन्तों के मत के राही कोई दूसरे ही हैं। सन्त के मत की बातें और हैं—उन्होंने न कोई बेष रचा है, न पंथ रचना की समझ। सन्तों ने तो सही-सही वर्णन किया है और ये बिना समझे केवल निन्दा को ही जानते हैं।

इसके कारण सन्तों में कोई भेदभाव नहीं पाता और निंदक को भी बिना भेदभाव को अपने पास ठहराता है। बाबा साहब ने जो भी अपने मुख से दिखाकर कहा है–आगे ''जैजैवन्ती' राग में मैंने विधिपूर्वक गान किया है। सुरति मार्ग में जो कुछ भी रीतियाँ वर्णित हैं–बाबा साहब के वचनों को इस विषय में प्रमाण समझें। हे पलकराम! चित्त लगाकर सुनें, मैं 'जैजैवन्ती' के अन्तर्गत इन सबका सबका वर्णन कर रहा हूँ॥

॥ जैजैवंती ॥

एरी दृग माहिं तौ निरखि दिये, माही सूझा नहिं नैन से॥ टेक॥
तुलसी कहि निरखि बिचारी, नानक ग्रन्थन मति झारी।
सारी बानी सब्द बताई, जाइ देखौ ग्रन्थ में॥ १॥
पलकराम सतसँग पावा, बानी, सतगुरु सब्द लखावा।
पाया संत चरन सरनाई, नित से बिधि जाइ कै॥ २॥

अर्थ–जो चित्त के दृगों में है, उसे हृदय में देखो, वह वहीं सूझता है वह भौतिक नेत्रों से नहीं दिखाई पड़ता–(चित्त के दृगों में ही दिखाई) पड़ता है। नानक साहब के ग्रंथों में इस प्रकार के विचार दिए गए हैं, तुलसी साहब कहते हैं कि उन्हें भलीभांति निरीक्षण करके देख लो। सम्पूर्ण बाणियों को तो सब्द बताता है, इसे जाकर ग्रंथों में देखो॥ १॥

पलकराम ने सत्संगति प्राप्त की तथा बाणी द्वारा सतगुरु के शब्दों को मैंने दिखाया है। यह प्राप्ति नित्य प्रति जैसे जाकर वस्तु पाई जाती है, इस प्रकार से उन्होंने सन्त के चरणों की शरणागति प्राप्त करके पाई है॥ २॥

पंथी भेद बिधी नहि जानै, मति पंथी जाति बखानै।
बावे पंथ सुरति गति गाई, पाये चढ़ि धाइ कै॥ ३॥
सूरति कढ़ियाव बताई, परे साधन संध चढ़ाई।
वाह गुरू चौथे पद पाया, सब गाया संत ने॥ ४॥
गोरख जो गुष्ट बताई, मन गोरख इंद्री माहीं।
चौरासी सिध नौ नाथा, नाथे नौ द्वार में॥ ५॥
नाथे नौ द्वारे माहीं, चौरासी नित नित जाई।
दृग से साँईं नहिं देखा, लेखा येहि गुष्टि में॥ ६॥
पौड़ी बिधि बावे गाई, सिढ़ी पाड़ी चढ़न बताई।
तुम तौ बिधि पढ़ पढ़ हारे, पारे नहिं देखिया॥ ७॥

अर्थ–इसके भेद एवं रहस्य को पंथी नहीं जानते, पंथी की बुद्धि तो जाति का वर्णन करती रहती है। बाबा साहब ने तो अपने मत के अन्तर्गत सुरति का गान किया है और बुद्धि ने उसे दौड़कर प्राप्त कर लिया॥ ३॥

सुरति के कढ़ियाव मार्ग का उन्होंने वर्णन किया और साधनों से विमुक्त होकर मन को समुद्र पर चढ़ा दिया और वाह गुरु जैसा चौथा पद उन्होंने प्राप्त कर लिया, ऐसा उनके विषय में सन्तों ने गाया है॥ ४॥

गोरखनाथ ने जो गुष्ठि बताई है, उनका मन इन्द्रियों में रहा है। चौरासी सिद्ध तथा नौ नाथ ये सभी

शरीर के नव द्वारों पर लगे हुए मिले हैं। अपनी हृदय की आँखों से स्वामी को नहीं देखा, और इसी गुरू का लेखा-जोखा करते रहे॥ ५-६॥

पौड़ी की विधि का वर्णन बाबा साहब ने किया और लगी हुई सीढ़ियों पर चलकर चढ़ना सिखाया तथा तुम नाना प्रकार की विधियों को पढ़ पढ़कर हार बैठे उसके उस पार नहीं देखा॥ ७॥

पचग्रन्थी तत्त लखाये, पृथ्वी पवन अकास समाय।
अगिनि जल पाँच बँधाया, पचग्रन्थी गाइ कै॥ ८॥
आदि ग्रन्थ परथम्म बखाना, जब बना ब्रह्मंड समाना।
आदि ग्रन्थी रचना बाँभौ, बावे कही जाय कै॥ ९॥
सुखमनी ये घाट कहाई, इड़ा पिंगला सुखमनि माहीं।
चढ़ी सूरति-गगन समावा, पावा वोहि धाइ कै॥ १०॥
आसा से वार बताई, आसा भौ वार बँधाई।
आसा परे जब लखिपावै, सूरति सत पाइ कै॥ ११॥
जप का परमारथ जाना, जब जीव सुरति पहिचाना।
जब सुखमनि सुरति लगावा, चीन्हा पहिचानि कै॥ १२॥
सतुगुरु दरियाव बखाना, सो बिधि तुलसी सब जाना।
लखि अलख अरूप अकाया, द्वारा निरला पाइ कै॥ १३॥

अर्थ–पंच ग्रंथी तत्त्वों को दिखाया, पृथ्वी, वायु, आकाश सब उसमें समाये हुए थे–अग्नि जल इनको मिलाकर पाँचों तत्त्वों से बाँधकर पच ग्रंथी गाई॥ ८॥

आदि ग्रंथ ने उस प्रथम तत्त्व का वर्णन किया–यह उस समय का वर्णन था, जब ब्रह्मांड बना था तब बाबा साहब ने जाकर आदि ग्रंथी रचना में इसकी चर्चा की॥ ९॥

इस घाट को सुषुम्ना कहते हैं, इड़ा तथा पिंगला इसी सुषुम्ना में ही है, सुरति में चढ़ने के बाद चित्त आकाश में समा गया और दोहकर उस परमतत्त्व को प्राप्त किया॥ १०॥

आसा के उस पार बताकर, आशा के द्वारा भवसागर के पार रखकर–सुरति का सत्य पाकर जब जब आसा के उस पार देख सके तो–

तभी जपादि का परमार्थ समझ में आता है और तभी जीव सुरति की पहचान करता है–और तभी सुषम्ना को सुरति से जड़ते हैं और उस परम तत्त्व को भलीभाँति समझ कर पहचान लेते हैं। ११-१२॥

सत्गुरु ने दरिया का वर्णन किया है। उसी के द्वारा तुलसी साहब ने भी उसे समझा है–तथा उसी के द्वारा निराला द्वार पाकर अरूप, अलक्ष्य एवं असरीरी परमतत्त्व को समझा है॥ १३॥

अम्मसर गुरू लखाई, जहँ जीव अमर होइ जाई।
अस माना चढ़ि असमाना, जाना जिन जाइ कै॥ १४॥
हलवा बट छाकर लीन्हा, इक बट पानी में कीन्हा।
इक झंडा जाइ धरावा, चीन्हा नहिं भूला से॥ १५॥
जा को भगवान-बतावां, बावे कही काँल चबावा।
गोबिंद जो निज मुख भाखा, बावे कही साखि में॥ १६॥

बावे राम रहीम न माना, गुरुगोबिंद ग्रन्थ बखाना।
मत संतन और बतावा, साहिब कोइ और है॥ १७॥
पूजा पाहन बावे न गाई, गुरु गोबिंद नहिं ठहराई॥
तुम पूजौ अंध अचेता, चीन्हा नहिं भेद को॥ १८॥
आरति भौ खंड न भाखा, चाँद सूरज दीपक राखा।
गगना में थाल बताई, थाह मिलै स्रुति लाइ कै॥ १९॥

अर्थ–अमृत सरोवर को गुरु ने दिखाया, जहाँ जाकर जीव अमर हो उठता है—आसमान पर चढ़कर ऐसा स्वीकार किया कि वहाँ जो गया, उसी ने उसे जाना है॥ १४॥

हलुआ को बरगद के पत्ते पर लिया और एक पत्ते को पानी में डाल दिया, एक झंडा लेकर मैंने पानी में रख दिया और अपनी भूल के कारण मूल तत्त्व को नहीं पहचान सका॥ १५॥

जिसको भगवान ने बताया है, बाबा साहब कहते हैं कि उसे काल चबा गया है। गुरु गोविन्द साहब ने जो कुछ भी मुख से कहा है, उसे बाबा साहब ने अपनी साखी में बताया है॥ १६॥

बाबा साहब राम तथा रहीम को नहीं मानते, यही गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने ग्रंथ में बताया है। सन्तों के मत में इसे और कुछ बताया गया है और ईश्वर रामकृष्णादि के अतिरिक्त कोई और दूसरा है॥ १७॥

पत्थर की पूजा के विषय में बाबा साहब ने नहीं कहा है। गुरु गोविन्द सिंह ने भी इसे स्वीकृति नहीं दी है। रहस्य को तुम समझते नहीं, तुम अंधे और अचेत जैसे (पत्थर) की पूजा करते हो॥ १८॥

इस भवखंड में आरती की बात नहीं कही गई है–यहाँ चन्द्रमा एवं सूरज दीपक हैं। आकाश को थाली बनाई गई है–इसकी बात की जानकारी की थाह श्रुतियों में मिलती है॥ १९॥

ये गति नानक बिधि गाई, सतसंग करै जब पाई।
संतन कोइ संधि लखावा, पावा स्रुत धाइ कै॥ २०॥
नानक स्रुत चढ़ी अकासा, कीन्हा सैल ब्रह्मंड निवासा।
ब्रह्मंड से परे सिधारे, निराकार नहिं जाइ है॥ २१॥
चौथा पद वाहगुरु माहीं, जहँ नानक सुरति चढ़ाई।
निराकार वहाँ नहिं जावै, चढ़े नानक धाइ कै॥ २२॥
तुलसी संतन गति न्यारी, जहँ जोति नहीं निराकारी।
इन को सब काल बतावै, तुलसी पीव दयाल है॥ २३॥

अर्थ–इस विषय का वर्णन नानक साहब ने किया है, यह ज्ञान तभी मिलता है, जब सत्संगति मिलती है। इस ज्ञान सन्धि को कोई संत ही दिखाता है और श्रुति ज्ञान द्वारा वह शीघ्र ही प्राप्त हो उठता है॥ २०॥ नानक देव कहते हैं कि श्रुति आकाश चढ़ गई है, ब्रह्मांड के पर्वत पर निवासस्थली बनाई और इस आकाश से निराकार हटता नहीं॥ २१॥

चौथा पद वाह गुरु के बीच है, जहाँ नानक साहब ने सुरति चढ़ाई थी, जहाँ निराकार की भी पहुँच नहीं है, वहाँ नानक दौड़ कर चढ़ गए॥ २२॥ तुलसी साहब कहते हैं कि सन्तों की गति बड़ी ही विलक्षण है, वह न ज्योति है और न निरंकार है। इन सबको सभी काल तत्त्व बताते हैं, तुलसी साहब कहते हैं कि हमारे स्वामी अत्यन्त दयावान् हैं॥ २३॥

॥ बिलावल ॥

नानक नजरा निहाल, पलक में निहाला ॥ टेक ॥
सूरति चली अगम चाल, छूटी ग्रन्थी निहाल।
सतगुरु वाहगुरु दयाल, नाल नौ के पारा ॥
दया के कपास पान, संतों का सून जान।
ग्रन्थी जित बाट मान, ये जनेऊ सार ॥

अर्थ–नानक देव अपनी नजरों से उस परम तत्त्व को देखकर निहाल हो उठे–पलकों में स्थित उस तत्त्व ने निहाल कर दिया। सुरति अगम की ओर बढ़ती हुई चली और सारी ग्रंथियों की संसक्ति छूट गई। सत्गुरु एवं वाहे गुरु दोनों दयालु हैं–और उनकी कृपा से नौ द्वार पार हो गए। दया के कपास, और सन्तों की सनई के द्वारा ग्रंथियों (गाँठों) का जो व्यवस्था बनी-वह उनसे यह यज्ञोपवीत सार तत्त्व बन गया।

फीकी जग गाँठि खोल, तोल मोल न्यारा ॥ १ ॥
त्रै पन नहिं तमक होइ, मन का जो मैलै धोइ।
ऐसी सत रीति जोइ, खोइ खूब डारा ॥
तेरा तोही में यार, सूरति नैना सँवार।
निरखा संतन निहार, माहिं मौज मारा ॥
सूरति ले निरत बूझि, सूझि सब्द सारा ॥ २ ॥
पाँडे के गले घात, टूटै ना जरै जात।
मैली न होवै हाथ, धन वे सेवक न्यारा ॥
संतों ने ग्रन्थ खोल, सूझा अगमन अमोल।
पाया सत नाम संत, हाथ लाग हीरा ॥ ३ ॥
पौड़ी का अरथ जान, सीढ़ी चढ़ना पिछान।
सूरति सुखमना सान, मान लै की लारा ॥
अबर असमान देख, अबरसर अधर पेख।
पावै अद्‌बुद अलेख, आदि अंत सारा ॥

अर्थ–सांसारिक माया की गाँठे खोल दो–उसका (अगम्य तत्त्व) सम्बन्ध विलक्षण हैं–उसके तीनों पन (रज, सत्त्व, तम या जनेऊ के तीन तागे) में जरा भी आवेग नहीं है और मन में जो कुछ भी मैल है, उसे धो डालो। इस प्रकार की सत्य रीति जोड़कर जो कुछ भी भौतिक संसक्तियाँ थीं, उन्हें पूरी तरह से विनष्ट कर दिया? हे साधक! तुम्हारी याद तुम्हीं में है, सुरति समाधि में चित्त के नेत्रों से परखो। मैंने संतों के निर्देश पर उसे देखा और आनन्द से विह्वल हो उठा. इस सुरति समाधि में निरति को समझो और तभी ये सारे सब्द के मन्तव्य तुझे सूझ पड़ेगी। पाण्डेय के गले में तो चोट लग गई है अर्थात् साधक भौतिकता से प्रभावित तो होता है किन्तु वह जल जाता हुआ भी उस चोट से टूटता नहीं, उसका मन कभी मैला नहीं होता–ये विलक्षण सेवक धन्य है।

सन्तों ने जब ग्रंथों का खोला तो उन्हें वह अगम्य एवं अविनष्ट तत्त्व समझ पड़ा। सन्तों ने इसी क्रम में सतनाम प्राप्त किया:उनके हाथ जैसे हीरा लग गया। सीढ़ी शब्द के अर्थ को समझो, सीढ़ी के अर्थ को पहचानों, सुरति द्वारा सुषम्ना को एक साथ मिला दो, उनमें संसक्ति की भावना प्रकट करो। उस सुरति के अन्दर शून्याकाश को देखो, और उस अधर में स्थित अमृत सरोवर को देखो तब आदि से अन्त तक उस अद्‌भुत तथा अलेख को देखो।

दसवाँ महलन के पार, तार चार द्वारा ॥ ४ ॥
सूरति कढ़ियाव सार, साधो परे साध पार।
गुरु गुरु दरियाव लार, कार कँवल मारा ॥
आदि ग्रन्थ गाँठि तोड़, पाँच ग्रन्थ बाट मोड़।
आसा के वार छोड़, जपजी के पारा ॥
तुलसी नानक कृपाल, मारि काल डारा ॥ ५ ॥

अर्थ–दसवें महल के उस पार चार दरवाजे लगे हुए हैं सुरति के कढ़ियाव तत्त्व, द्वारा सन्त जनों के उस पार साधना द्वारा पहुँचों। वहाँ गुरु की गहरी नदी है, उससे संसक्ति करो। आदि ग्रंथ की गाँठों को तोड़कर पाँचों इन्द्रियों के मार्ग को बदलकर (आगे पहुँचों)।

आशा के द्वार का परित्याग करो–संसार की यह जो भी संसक्ति है, उसके पार चलो। तुलसी साहब कहते हैं कि नानकदेव परम कृपालु हैं–उन्होंने काल को मार कर समाप्त कर डाला है।

॥ सोरठा ॥

पलकराम सुन बात, बावे ये बिधि यों कही।
गोबिंद मुख बिख्यात, लाग चरन संतन मिलै ॥

अर्थ–हे पलक राम मेरी बातें सुनें, बाबा साहब ने इसे इसी प्रकार कहाँ है। गुरु गोविन्द सिंह का भी यही मत विख्यात है, सन्तों के चरणों में लग जाओ, वह अगम्य तत्त्व प्राप्त हो जाएगा।

॥ प्रश्न पलकराम। सोरठा ॥

सतसंग तुलसी सार, जो कछु अगम लखाइया।
बावे बिधि बिधि पार, सार सार संगरा कहा ॥

अर्थ–हे तुलसी साहब! आपने मुझे जितना भी [illegible] अगम्य तत्त्व दिखाया है, मैंने इस विषय में केवल इतना ही समझा है कि सत्संग साधना के लिए सार तत्त्व है। बाबा नानक साहब की साधना विधि तो रहस्यों के उस पार है, और उन्होंने सम्पूर्ण तत्त्व का सब कुछ निचोड़ कर बताया है।

॥ चौपाई ॥

तुलसी स्वामी सत्त बताई। संत भेद हम तुम से पाई ॥
संत मता है अगम अलेखा। सो कोइ भेष न किया बिबेका ॥
पलकराम चरनन को दासा। सत सत संत चरन बिस्वासा ॥
जो जो भेद तुम भाखि सुनाया। सो तः हम सपने नहिं पाया ॥
पूछौं बिधी भेद सब कहिया। वाह-गुरू बावे कस पइया ॥

निरकार की आदि बतावौं। जोती आदि सबै दरसावौ॥
इन के परे कौन है स्वामी। ता की महिमा बिधी बखानी॥
तुम दयाल पूरे हो स्वामी। बावे बिधी कही सोइ जानी॥
संतन अगम आदि कस गाई। सो स्वामी मोहिं भाखि सुनाई॥

अर्थ–तुलसी स्वामी जी! आपने सब कुछ सत्य बताया है और मैंने सन्तों के भेद का लक्षण भी आपसे ही समझा है। सन्तमत अगम्य तथा अलेख है और किसी ने भी भेष रचना द्वारा उसका रहस्य नहीं बतलाया है। यह पलकराम तो आपके चरणों का सेवक है और अब उसे सही विवेकशील सन्तों पर विश्वास हो चला है। जिन-जिन भेदों को आपने बताकर सुनाया है, उसको तो हमने स्वप्न में भी नहीं प्राप्त किया था। मैं सबसे साधना विधि का भेद पूछता था और सब उसके भेद की बात कहते थे–और अब मालूम हुआ कि विधि के विषय में बाबा साहब ने किस प्रकार कहा है। हे स्वामी! निरंकार की आदि स्थिति का वर्णन करें और उस आदि ज्योति के सभी तत्त्वों को बताएँ। उनके ऊपर कौन स्वामी हैं, उनकी महिमा तथा उपासना विधि का भी आप वर्णन करें। और उस आदि 'ज्योति' के सभी तत्त्वों को बताएँ। उनके ऊपर कौन स्वामी हैं, उनकी महिमा तथा उपासना विधि का भी आप वर्णन करें। हे स्वामी! आप पूर्ण दयामय हैं। बाबा साहब ने जो विधि कही है, मैं उसको समझता हूँ। उस अगम तत्त्व के विषय में संतों ने किस तरह का वर्णन किया है, हे स्वामी! आप मुझे उसके विषय में कहकर सुनायें॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब। चौपाई॥

तीनि लोक से चौथा न्यारा। चौथे के परे अगम अपारा॥
पुरुष तहाँ इक अगम अनामी। चौथा पद तेहि पार ठिकानी॥
चौथा पद सतनाम कहाई। तेहि नानक वाहगुरू बताई॥
सत्त नाम वाह गुरू बतावा। तेहि कबीर सत सब्द लखावा॥
तीनों नाम एक हैं भाई। वे बासी चौथे पद माहीं॥
वाहगुरू का अंस कहइया। जा से सोलह निरगुन भइया॥
ता में एक निरंजन राई। गुरू अंस से जोती आई॥
जोति निरंजन की है नारी। दोनों मिलि कीन्हा बिस्तारी॥
वाहगुरू पद इनसे न्यारा। निराकार नहिं जोति पसारा॥
तीनि लोक निराकार समाना। वाहगुरू चौथे में जाना॥
वाहगुरू का भेद नियारा। निराकार नहिं पावै पारा॥
जोति निरंजन किया बिधाना। उपजे तीन पुत्र परमाना॥
ब्रह्मा बिष्नु महेसुर जाना। काल निरंजन से उतपाना॥
निरंजन जोति काल अन्याई। दस औतार याहि के भाई॥
काल ने लिये दसौ औतारा। तीनि पुत्र पुनि साज सँवारा॥

अर्थ–तीनों लोकों से विलक्षण चौथा लोक है और इस चौथे के परे अगम्य एवं अपार तत्त्व है। वहाँ एक अगम्य तथा अनामी पुरुष रहता है, उसका स्थान उस चौथे पद के पार है। इस चौथे पद का

नाम सतनाम है और उसी को नानक देव ने वाहे गुरु, कहकर बताया है। सन्त तत्त्व का नाम ही 'वाहे गुरु' है और उसी के लिए कबीर साहब ने 'सत सबद' का प्रयोग किया है। हे भाई तीनों नाम एक हैं–वे चौथे पद के निवासी हैं। वह 'वाह गुरू' का अंश है–जिससे सोलह 'निर्गुण' उत्पन्न हुए हैं। उनमें से एक निरंजन है और गुरु के अंश द्वारा 'ज्योति' उत्पन्न हुई है। ज्योति निरंजन की पत्नी है और इन दोनों ने मिलकर सृष्टि का समस्त विस्तार किया है। 'वाह गुरु' का पद इनसे विलक्षण है–उसने निराकार और ज्योति का प्रसार नहीं किया है। तीनों लोकों में निराकार समाया हुआ है, 'वाह गुरु' को चौथे पद (स्थान) पर समझो। वाह गुरु का रहस्य विलक्षण है–निराकार उसे समझ पाने में असमर्थ है। ज्योति और निरंजन ने मिलकर जो विधान किया–उनसे प्रमाण के रूप में तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उन्हें ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव जानते हैं–ये तीनों काल निरंजन से उत्पन्न हुए थे। निरंजन ज्योति एवं काल तीनों अन्यायी हैं और इन्हीं के द्वारा दस अवतार हुए। काल ने दस अवतार लिए और उनके तीन पुत्रों–ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ने सृष्टि में विशेष साज-सँवार की।

ब्रह्मा बेद पुरान बनावा। ता में सकल जीव उरझावा॥
देवल देव पखान पुजावा। ता स सकल जीव भरमावा॥
निरंकाल काल अन्याई। जोती ठगिनी जाल बिछाई॥
ब्रह्मा बिष्नु काल के बेटे। दस औतार काल के पेटे॥
ये ठग ठग मिलि जाल पसारा। जीव बाँधि चौरासी डारा॥
वाहगुरू का परम पाया। चेला जीव जहाँ से आया॥
निरंकाल जोती ने भाई। वाहगुरू की राह छिपाई॥
वहाँ जीव जाने नहिं पाई। ठगठग मिलि सब जाल बिछाई॥
कोई कोइ संत अगमपुर वासी। मारा काल भये अबिनासी॥
सूरति चढ़ी गगन के माहीं। चौथा पद वाह गुरू दरसाई॥
पदम कंज में गुरु का बासा। गुरू मिलैं तब चढ़ै अकासा॥
संत मिलै कोइ वा घर बासी। दरसावै काटै वो फाँसी॥
संत दयाल मिलै कोइ पावै। पलक एक में राह लखावै॥

अर्थ–मंदिरों में देवता तथा पत्थर पूजे जाने लगे और इस कार्य ने समस्त जीवों को भ्रममय बना दिया। निरंकार अन्यायी काल है, और ठगिनी ज्योति ने चारों ओर अपना जाल बिछा दिया। ब्रह्मा, विष्णु आदि काल के पुत्र हैं और दसों अवतार काल के पेट में हैं। इन ठगों ने मिलकर यह सारा जाल फैला रखा है और सारे जीवों को इन्होंने चौरासी डालों में बाँध रखा है। किसी ने वाह गुरु का रहस्य नहीं समझा और किसी को नहीं मालूम कि इस चेला का जीव कहाँ से आया है। वहाँ तो यह जीव जाने नहीं पाता क्योंकि सारे ठगों ने मिलकर यह सारा जाल बिछा रखा है। इनमें से तो कोई-कोई संत उस अगम पुर के निवासी हैं और ये तो स्वयं का काल का वध करके अविनाशी हो उठे हैं।

जब सुरति शून्याकाश में चढ़ती है तो 'वाह गुरु' वह चौथा स्थल दिखाते हैं। गुरु का निवास तो पद्म कमल के बीच है और उनसे जब गुरू मध्य से मिलते हैं, तब वह शून्याकाश में पहुँचता है। उस पार का निवासी कोई सन्त जब मिलता है तो वह परम तत्त्व दिखाता है और मृत्यु की फाँसी जैसे फंदे को काटता है। दयालु सन्त सबको नहीं मिलते, उन्हें तो कोई-कोई ही प्राप्त करता है और एक पल में वह सही मार्ग दिखा देता है।

है पुनि अगम सुगम होइ जावै। वाहगुरू जीवत मिलि जावै॥
नानक येही रीति से पावा। औरौ संत यही बिधि गावा॥
तब तिन वाह गुरू पद भाखी। जीवत मिलै कही पद साखी॥
तुम तौ वाहगुरू को मानौ। वाहगुरू का मरम न जानौ॥
वाहगुरू मुख भाखि बखानौ। वाहगुरू की महिमा ठानौ॥
बावे वाह गुरू बतलाया। तुम तौ याह गुरू मन लाया॥
कस कस राह मिलै पुनि भाई। भेष पंथ ने राह भुलाई॥
संत चीन्हि जावै सरनाई। वाह गुरू सहजै में पाई॥
बिना संत कछु मिलै न भेदा। ऐसे काल करै जिव खेदा॥

अर्थ–इन सन्तों के मिलने पर अगम्य तत्त्व सुगम हो जाते हैं और जीवित रहते ही उसे 'वाह गुरु' तत्त्व मिल जाते हैं। नानक जी ने भी इसी रीति से इस तत्त्व को प्राप्त किया था तथा अन्य सन्तों ने भी इसी विधि से पाया जाता था। इसके बाद ही, उन्होंने वाह गुरु पद का कथन लिया था और वह अगम्य तत्त्व जीते जीवन में ही मिल जाता है, इसी के लिए उन्होंने साखी कही है। तुम वाह गुरु को मानते हो, किन्तु वाह गुरु का महत्त्व नहीं जानते। अब मैं वाह गुरु की की महिमा का अपने मुख से वर्णन करता हूँ और 'वाह गुरु' का महत्त्व बताता हूँ। बाबा साहब ने 'वाह गुरु' के विषय में बतलाया है और आपने भी अपने मन में वाह गुरू को मन में उतारा। हो भाई! कैसे-कैसे यह मार्ग मिलता है, इसे भेष रचना एवं पंथ विधान ने पूरी तरह से विस्मृत करा दिया है। संत सन्तों को पहचान कर उनकी सरणागति में जाता है और वह सदन ही 'वाह गुरू' को प्राप्त कर लेता है। बिना सन्तों के कोई रहस्य नहीं मिलता और इसीलिए यह काल तत्त्व जीवों के लिए संकट उत्पन्न करता है।

॥ पलकराम। उवाच चौपाई॥

हे स्वामी तुम अगम सुनाई। ये कहुँ भेद जगत में नाहीं॥
साध संत बहु खोजि सिराना। भेंद पंथ में सुना न काना॥
सुना भेद मन चकित भइया। ये तौ स्वामी अकथ सुनइया॥
मैं तो सरन तुम्हारी लीन्हा। संत चरन जल मन जसमीना॥
मो को चरन सरन मैं राखौ। सरन संत मन सतकर भाखौ॥
मोर निबाह संत के हाथा। करिहैं मों कों संत सनाथा॥
मैं किंकर हौं सरन अनाथा। निबहौ संत चरन के साथा॥
मो को संत चरन की आसा। दूजा और नहीं बिस्वासा॥
अस कहि बहै नैन से पानी। स्वाँसा भरै चरन लपटानी॥
साधू रीति प्रीति गति भाखी। सुरख भये नैना निज आँखी॥
बोले बचन दीन गति गाई। अब अज्ञा अस्थाने जाई॥
चरन परसि पुनि अज्ञा लीन्हा। तुलसी सीस चरन पर दीन्हा॥

अर्थ–हे स्वामी! आपने अगम तत्त्व का वर्णन किया है, और ये सम्पूर्ण रहस्य इस संसार में वर्णित नहीं हैं। अनेक साधु-संत इसे खोजते हुए नष्ट हो उठे हैं और इस पंथ का रहस्य मैंने कान से नहीं सुना था।

इन भेदों को सुनकर मेरा मन चकित हो उठा है–हे स्वामी आपने तो अकथनीय तत्त्व को कहकर सुनाया है। मैंने तो अब आपकी शरण ले ली है। सन्तों का चरण जल की भाँति है और हम लोग मछली की भाँति उस 'चरण-सरोवर जल' में निवास करते हैं। मुझे आप अपने चरणों की शरण में रखें। सन्तों की शरण मन के लिए सत्य देने वाला कहा गया है। मेरा निर्वाह तो सन्तों के ही साथ है और सन्त जन ही मुझे सनाथ करेंगे। मैं तो आपका दास हूँ, अनाथ हूं तथा आपकी शरण में हूँ और सन्त चरणों के साथ ही सदा निर्वाह करता रहूँगा। मुझे सन्तों के चरणों की ही आशा है और मुझे अन्य पर कोई विश्वास नहीं है। ऐसा कहने के बाद, उनकी आँखों से अश्रु प्रवाह हो उठा और ऊँची सासें लेते हुए उनके चरणों में लपट पड़े। साधुओं की जैसी रीति, प्रीति एवं गति बताई गई है, (वे उसी प्रकार थे) और उनकी आँखें अश्रु प्रवाह एवं आत्मीय प्रेम में लाल हो उठीं। दीनता भरी स्थिति को कहते हुए वे बोले, अब आप आज्ञा दें और मैं अपने निवास स्थली पर चलूँ। तुलसी साहब के चरणों को पकड़ कर उन्होंने पुनः आज्ञा प्राप्त की और चलते समय तुलसी साहब के चरणों पर अपना सिर रख दिया।

॥ वचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

तुलसी कहै सरनि मैं स्वामी। दया कीन्ह मोहिं अंतरजामी॥
अस भाखि चल कीन्ह पयाना। पलकराम पहुँचें अस्थाना॥
मन में मगन प्रीति भई गाढ़ी। सूरति लगी फिरै नहि आड़ी॥

अर्थ– तुलसी साहब बोले, हे स्वामी मैं आपकी शरण में हूँ हे अर्न्तयामिन्! आपने मुझ पर बड़ी से दया की। ऐसा कहकर उन्होंने अपने निवास के लिए प्रस्थान किया और पलकराम अपने स्थान पर पहुँचे। वे मन से अत्यन्त प्रसन्न थे, गाढ़ी प्रीति उनमें उत्पन्न थी और उनकी सुरति समाधि लग चुकी थी जो किसी विघ्न द्वारा उतर नहीं सकती थी।

॥ दोहा ॥

पलकराम बिधि कहा कहूँ, सत मत साधू भाय।
मन प्रति दीन प्रभाव अति, सब साधन के माँय॥ १॥
साध संत हिये प्रीति ज्यों, उमगत बारोइ बार।
नैन निरखि आँखी भरे, करै संत से भाव॥ २॥

अर्थ–पलकराम के विषय में मैं कहाँ तक वर्णन करूँ संत का मत तो साधु के लिए प्रियकर होता है। सारे साधन-भोगों के होते हुए भी, सन्तों के मन पर दीनता का प्रभाव परिलक्षित होता रहता है।

साधुओं के मन में सन्तों के प्रति अत्यधिक प्रीति होती है और वह बार-बार उमंगित होती रहती है। सन्तों को देखकर उनकी आँखें भर उठती हैं और सन्तों से निरन्तर प्रीतिभाव बनाए रहते हैं॥

॥ बिलावल ॥

पलकराम प्रेम मगन, संतन सरनाई।
अति अजान जान कछू, किंकर की नाँई॥ टेक॥

चरन चिन्ह भाव सुमन, संतन स्त्रुति परन बंध।
नैना झर झरत नीर, बरनै लघुताई॥
जोइ जोइ मुख कहत बैन, बानी मृदु पुलक गात।
गुनन गिनत संत साथ, मन तन हित लाई॥ १ ॥
हिरदे हित हरन बैन, किंचित मन भरम भैन।
निर निर निरभै समीर, थिरता अधिकाई॥
भावन मन भाव लाइ, चावत चित चेंत साथ।
तुलसी ये भक्ति भाँत, चाहत चरनाई॥ २ ॥

अर्थ–प्रेम में मग्न पलकराम सन्तों की शरणागति में हैं और एक दास की भांति अत्यन्त अज्ञानी बनकर जैसे कुछ न जानते हों रह रहे हैं॥

सन्तों के चरण चिह्न भावना के पुष्प हैं, संतों की श्रुतियाँ पुण्य के पर्ण बन्ध हैं, नेत्रों से निरन्तर जल करता बहता है और अपनी लघुता का निरन्तर वर्णन करते रहते हैं। जो-जो मुख से वाणी कहते हैं, वाणी मृदु होती जाती है, शरीर पुलकित हो उठता है और सन्तों के साथ उनके गुणों की गणना करते रहते हैं–और शरीर तथा मन के द्वारा उनके हितों के प्रति कृतज्ञ हैं। हृदय में निरन्तर हितैषिता है, उनकी वाणी सन्तों के कष्टों को हरने वाली है, मन में किसी भी प्रकार का भ्रम नहीं रहता, उनकी प्राण वायु निरन्तर विमुक्त रहती है और स्थिरता का आधिक्य देखा जाता है। मन में मन के लिए निरन्तर प्रिय लगने वाले भावों को ले आकर चित्त निरन्तर प्रेमभरी चेतना के साथ स्थिर है। तुलसी साहब कहते हैं कि यह भी एक भक्ति का रूप है, जहाँ भक्त निरन्तर सन्तों की चरणासक्ति की कामना करता रहता है।

॥ दोहा ॥

पलकराम के प्रेम की, तुलसी करत बखान।
बैन बचन मुख चैन की, सो कहूँ कौन बयान॥

अर्थ–तुलसी साहब निरन्तर पलक राम के प्रेम की प्रशंसा करते रहते हैं। उनकी वाणी, वचन, मुख पर स्थित शान्ति को वर्णित कर रहा हूँ। उसका वर्णन अकथनीय है।

॥ सोरठा ॥

हिरदे हरष समाय, पलकराम साधू समझ।
मंजन तन परभाय, लाह लहर कस कस कहूँ॥

अर्थ–पलकराम साधु की समझकर हिरदैराम के मन में आनन्द समाया हुआ था, आनन्द निमग्नता के कारण मन कभी-कभी भ्रमित हो उठता था, उनके आनन्द की लहरों का वर्णन मैं कैसे-कैसे करूँ॥

हिरदे उबाच॥ चौपाई॥

पुनि हिरदे बोला अस बानी। कासी मैं साधू अस जानी॥
स्वामी साधू बड़े प्रमानी। संत चरन बिन और न जानी॥
कासी में देखे यह साधू। कासी और कींच पुनि काँदू॥
स्वामी सत मत कोउ न चीन्हा। यह पुनि साध बड़े मति लीन्हा॥

अर्थ–इसके पश्चात् हिरदैराम इस प्रकार की वाणी बोले, कि काशी के अन्तर्गत मैं ऐसे ही साधु को जानता हूँ। मेरे स्वामी साधुओं के बीच बहुत बड़े प्रमाण हैं–जो सन्तों के चरणों की संसक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानते। स्वामी के सत्य मार्ग की पहचान कोई नहीं करता किन्तु यह साधु बड़ी ही ज्ञानदृष्टि से सम्पन्न हैं।

॥ तुलसी साहिब। चौपाई ॥

कहै तुलसी सुन हिरदे बाता। कासी नगर काल मति राता॥
कासी करम जीव अज्ञाना। जुग चारौ जुग जीव भुलाना॥
कासी जगत धाम बतलावै। मरै जीव पनि भूत कहावै॥
सिव की पुरी धाम जग भाखा। उनके भूत प्रेत की साखा॥
सिव भये भूत प्रेत के राजा। मरै जीव होइ भूत समाजा॥
ये कासी मिलि भूत बड़ाई। सिव कैलास भूत में भाई॥
ता से जड़ मत जीवन लीन्हा। जड़ संग जीव जो भया अधीना॥
घट रामायन सुनि सोरा। कासी नगर भया घनघोरा॥
पंथ भेष जग लड़न खखारा। घट रामायन परी पुकारा॥
अस सुन सोर भयों जग माहीं। सहर मुलक सब गँवई गाँई॥
भेष पंथ में अचरज भइया। दरसन भेष लखन को अइया॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे हिरदै! मेरी बातें सुनो। यह काशी नगरी में काल देवता की मति में रमा हुआ है। काशी कर्म की नगरी है जिसमें जीव अज्ञानी बना हुआ है। चारों युगों में यहाँ जीवन भ्रमित रहा है। काशी को लोग (शिव का) धाम बतलाते हैं। यहाँ जीव मरने पर भूत कहलाता है। संसार ने बताया है कि काशी शिव की नगरी एवं उनका धाम है। उनके साथ भूत-प्रेम की अनेक शाखाएँ हैं। शिव भूत प्रेतों के राजा बन गए और वहाँ जो जीव मरता है, वह भूत समाज में सम्मिलित हो उठता है। काशी में भूतगण शिव से मिलकर उनका बड़प्पन गाया करते हैं–इस प्रकार कैलास के शिव भूतों के भाई हैं। उन्हीं से जड़ मति के लोगों ने यह जीवन ग्रहण किया है–जीव जड़ का साथ पकड़ कर उसके अधीन बन जाता है। घट रामायण का भी चर्चा सुनकर काशी नगरी में घनघोर शोर मचा॥

पंथ एवं भेष रचना वाले संसार ने लड़ने के लिए खखार भरी (गले की ओज भरी आवाज) और घट रामायण की पुकार शुरू हो उठी। इस प्रकार, काशी नगरी में ऐसा शोर, शहर, जनपद, बड़े तथा छोटे गाँवों में हुआ। भेष तथा पंथ वाले लोगों को यह सुनकर आश्चर्य हुआ और ये लोग यहाँ इसे देखने के लिए आए।

॥ दोहा ॥

जगत सोर सब भेष में, नगर गाँव सब ठौर।
भेष फकीरी पंथ के, लख जाँचत सत मोर॥

अर्थ–संसार के सम्पूर्ण पंथियों, नगर तथा गाँवों में चारों तरफ यह शोर मच गया। मेरे इस फकीरी भेष एवं धर्म मार्ग को देखकर मेरे सत्य की जाँच सारे लोग करने लगे।

संबाद साथ गुपाल गुसाईं कबीर पंथी के

॥ चौपाई ॥

दरसन करन आये इक संती। मन मत नाम कबीरा पंथी।
हम पुनि धाइ चरन को लीन्हा। उन पुनि दया गुसाईं कीन्हा॥
आसन दे कीन्हा सनमाना। पूछा रहौ कौन अस्थाना॥
कहँ से दया गवन कियो स्वामी। किरपा कीन्ह दीन मोहिजानी॥

अर्थ–एक सन्त दर्शन के लिए आए–उनके मत का नाम कबीर पंथ अर्थात् वे कबीर पंथी थे। हमने दौड़कर उनके चरणों को पकड़ लिया और उन्होंने पुनः मुझपर दयादृष्टि की। आसन देकर उनका सम्मान किया और पूछा कि आप कहाँ रहते हैं। हे स्वामी! आप दया करते हुए किस स्थान से आए हैं और आपने मुझे दीन समझ कर तथा यहाँ आकर मुझपर कृपा की है।

॥ उत्तर गुपाल गुसाईं ॥ चौपाई।

तिरहुत देस धनौती गाँईं। भगत नाम गोपाल गुसाईं॥
भाव भक्ति हा साध कहावैं। संत चरन पर सीस नवावैं॥
साध जान हमहूँ चलि आये। दरसन करि मन आनँद पाये॥

अर्थ–तिरहुति का देश है, धनौती गाँव है। नाम गोसाईं भगत गोपाल है। मैं भावभक्ति का साधु कहा जाता हूँ और सन्तों के चरणों पर हमेशा शीश झुकाए रहता हूँ। आपको साधु समझकर हम चले आए हैं और आपके दर्शन से मन को आनन्द मिला है।

॥ प्रश्न तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

धरमदास के बंसन माही। कै कोइ साध और मति राहीं॥
कबीरदास पुनि हैं धर्मदासा। उन से भिन्न रहौ केहि पासा॥
यह बरतंत सुनावौ स्वामी। भाव भक्ति हा केहि बिधि जानी॥
हम कबीर मति एक बिचारा। तुम कही और भेद बिस्तारा॥
भाव भक्ति हा केहि बिधि भइया। सोस्वामी मोहि बरनि सुनइया॥

अर्थ–धर्मदास के वंश के अन्तर्गत क्या कोई अन्य साधु ज्ञानमार्ग से जुड़ा हुआ है। कबीरदास हैं, उनके बाद पुनः धर्मदास हुए हैं। उनसे हटकर आप किसके पास रहे हैं। यह वृत्तान्त, हे स्वामी, आप सुनाएँ और बताएँ कि आपने भावभक्ति को किस प्रकार समझा है।

॥ गुपाल गुसाईं उवाच ॥ चौपाई ॥

तुलसीदास सुनौ चित लाई। तुम अपना कहौ भेद जनाई॥
कौन मते के साध कहावौ। अपना गुरु मति भेद बतावौ॥
हम हमरा जब सत मत भाखैं। गुरु मत कहैं भेंद नहिं राखैं॥

अर्थ–गुपाल गुसाईं बोले, हे तुलसी साहब चित्त लगाकर सुनें–आप अपनी साधना का भेद बताने का कष्ट करें। आप किस मत के लिए हैं और अपने गुरु तथा मत का रहस्य बताएँ। हम हमारे साथी जब सत मत कहते हैं तो पहले गुरु मत कहते हैं और इसमें किसी भी प्रकार का रहस्य नहीं रखते।

॥ उत्तर तुलसी साहिब। चौपाई॥

हमरे गुरु हैं संत सुजाना। हम तौ गुरू संत को माना॥
संत गुरू और पंथ न जानी। निसदिन संत चरन स्तुत आनी॥
संत चरन कर दास दिवाना। साधू सरन चरन लटपाना॥
और इष्ट नहिं दूजा भाऊ। निस दिन साधू चरन उमाऊ॥
मैं निकाम कछु जानों न भेदा। नीच बुद्धि मन छलबल खेदा॥
तुम्हरे चरन सरन कछु पाई। मैं पति हीन साध सरनाई॥
दरसन तुम्हरे भये सनाथा। न्यारा करि पकरौ मोर हाथा॥

अर्थ–हमारे गुरु तो सुजान सन्तजन हैं और हमने सन्त को ही गुरु माना है। सन्त गुरु के अतिरिक्त मैं कोई अन्य धर्ममार्ग नहीं जानता। मैं तो सन्तों के चरणों का दास और उनके लिए दीवाना बना रहता हूँ और प्रतिदिन मैं साधु के चरणों पर पड़ा रहता हूँ। मैं निष्काम हूँ,किसी प्रकार का भेदभाव नहीं जानता। मैं निम्न बुद्धि का व्यक्ति हूँ,न मुझमें, छल है, न बल है और न किसी कामना के लिए पीड़ा है। मैं बुद्धि से हीन हूँ, साधुओं की शरण में हूँ और आपके चरणों की शरण से ही कुछ प्राप्त कर सकता हूँ। आपके दर्शनों से मैं सनाथ हो उठा और कृपा करके भाव मेरा हाथ ग्रहण कैसें करें।

॥ गुपाल गुसाईं उवाच। चौपाई॥

तुलसी साधू तुम परमानी। बचन सुधा रस अमृत बानी॥
तुम्हरा तोल बोल प्रिय मीठा। कासी में साधू तुम दीठा॥
अब मैं गुरु मति भेद बताऊँ। भये जस भाव भक्ति हा नाऊँ॥
भाख भेस भगवान गुसाईं। गद्दी रहै धनौती माहीं॥
उनके मति के साथ कहावैं। बीजक मति परमान बतावैं॥
रामैनी चौरासी गाई। ये कबीर मति कहा गुसाईं॥
धर्मदास मति मूल न मानी। बंस मता हम सत्त न जानी॥
मूल मरम बीजक के माहीं। बंस भेद यह जानत नाहीं॥
मुख कबीर मति आप बखानी। तत्त बस्तु बीजक में आनी॥
और ग्रन्थ सब बंस बनाये। ये सब छुच्छम मर्म भुलाये॥
इनमें कछू नहीं है भाई। ये सब गये गवन गफलाई॥
जो जो बस राह मति माहीं। उन बीजक का भरम न पाई॥
जो जो बंस राह मति चाली। जम सोंटे से भये बेहाली॥

अर्थ–हे तुलसी साहब! तुम साधु जनों के लिए प्रमाण हो–आपकी वाणी अमृत रस से युक्त एवं अमृत से सानी हुई है। आपके मूल्यांकन एवं वचन दोनों बड़े मीठे हैं और इस काशी नगरी में मुझे अकेले तुम्ही एक साधु दिखाई पड़े। अब मैं गुरु के सिद्धान्त का रहस्य बता रहा हूँ और जिस प्रकार के भाव से भक्ति का नाम पुकारा गया, उसे कह रहा हूँ। भाषा एवं भेष में वे गुसाईं भगवान की भाँति थे और उनकी गद्दी धनौती नामक स्थान में थी। जो उनके विचारों के साधु जन थे, वे बीजक के

सिद्धान्त को प्रमाण बताते रहे। वे चौरासी रमैनियों का गान करते रहे क्योंकि यही कबीर के सिद्धान्त में कहा गया है। धर्मदास के सिद्धान्त को हम लोग मूल नहीं मानते और उनके वंश मत से भी उसे सत्य नहीं मानते। मूल धर्म तो बीजक के अन्तर्गत है और उनका वंश भेद यह नहीं जानता। कबीर ने अपने मुख से अपने मत का स्वयं वर्णन किया है और अपने सिद्धान्त की तत्त्व वस्तुओं को वे बीजक के अन्तर्गत ले आए हैं। धर्मदास के वंशजों ने अन्य ग्रंथों को चलाया है। और वे सब उस सूक्ष्म गर्भ को भूल गए हैं। उनकी बातें कबीर के ग्रंथों में कहीं नहीं हैं—और ये सभी के गफलत (भ्रम) में नष्ट हो गए। जो जो कबीर के सिद्धान्तों तथा उनके मांर्गों से जुड़े रहे, उन्हें बीजक का रहस्य नहीं ज्ञात हो सका। जो जो अक्ति वंश के मार्ग पर चला, वे सब यमराज के सोंटे से बेहाल रहे॥

बंस राह चौके में भूला। कहा जानै मति बीजक अतूला॥
एक बिधि तुलसी सुन लीजै। बंस मता चित नेक न दीजै॥
बरनौं बस राह की रीती। बीरा परबानै परतीती॥
पान परवाना-लिखि लिखि जोई। जाकी कहूँ बरतंत बिलोई॥
असत अजावन वीरा कीन्हा। बिंद बिरज से लिख कर दीन्हा॥
सो सिष भिष्ट खवावै भाई। अस अस बीरा बँस चलाई॥

अर्थ—उनका वंश चौके के मार्ग में भूल गया और वे जब अतुलनीय बीजक के मत को क्या समझें। हे तुलसी साहब! मेरा एक मत सुन लें। और उनके वंश में प्रचलित मत पर जरा भी ध्यान न दें। मैं उनके अंश के मार्ग की रीति का वर्णन कर रहा हूँ, वे सब 'पान के बीड़े' के प्रमाण पर विश्वास करते हैं। वे पान पर परवाना लिख-लिखकर देते हैं—जिसका कहीं भी धर्म वृत्तान्त नहीं है. असत्य के तत्त्व से बीरा बनाकर विरुज के बिन्दुओं से उसे लिख लिख कर दिया है—उसी को उनका कोई भ्रष्ट शिष्य खिलाता है और ऐसे-ऐसे पान से उनके वंश में आध्यात्मिक साधना चलती है।

॥ दोहा ॥

बीज बिंद बीरा करै, सो सिष पान खवाइ।
बंस राह रस रीति की, अस अस बूझ लखाई॥

अर्थ—बीज और बिन्दु का बीड़ा बनता है और उससे युक्त पान को कोई शिष्य खिलाता है। इस वंश के मार्ग और रस की रीति की ऐसी समझ देखी जाती है॥

॥ तुलसी साहिब उवाच ॥ चौपाई ॥

एक बिधी हमहुँ सुनि पाई। ता की स्वामी भाखि सुनाई॥
बसै साध इक मँडले माहीं। गोबिंद दास नाम रहै भाई॥
वे हमरे अस्थाने आये। उन सब बिधि बरतंत सुनाये॥
इक दिन चरचा कही बुझाई। सो बिधि तुमको भाखि सुनाई॥
बीजक बरनन बात निकारी। उन बरतत कहा सब झारी॥
सो बरतंत कहि कै समझाऊँ। जस उन कही कहन दरसाऊँ॥
धर्मदास सुत जुगल कहाई। एक नाम चूरामनि भाई॥
बचन कबीर भाव से भइया। अस चुरामनि नाम कहइया॥

दूजा नाम नरायन होई। ऐसे जुगल बधु कहै सोई॥
धर्मदास के दरब न थोरा। माया रहै सोइ चारि किरोरा॥
गुन गुमास्ते दो रहे पासा। जागू भागू नाम प्रकासा॥
दास कबीर एक दिन आये। धर्मदास पूजा मन लाये॥
सालिगराम न्हवावै भाई। पूजा करिके ध्यान लगाई॥
सो कबीर देखत मुसक्यानी। पत्थर कस धोवत नित पानी॥
अस कबीर मुखबचन बखाना। धर्मदास मन में रिसियाना॥
कस निंदक ने बचन सुनाया। ठाकुर को पत्थर ठहराया॥
धर्मदास दिल गुसा समाई। पूजा साज उठायौ जाई॥
है कोइ यह नास्तिक मत माहीं। चरचा इन से करौं बनाई॥

अर्थ–तुलसी साहब ने उनको बताया कि उनकी एक विधि हम भी सुन चुके हैं, हे स्वामी, उसको मैं कहकर सुनाता हूँ। एक साधु मँडले नामक स्थान पर रहता था। हे भाई! उसका नाम गोविन्ददास था। वे हमारे स्थान पर आए थे और उन्होंने ही यह सारी विधि एवं वृत्तान्त सुनाया था। एक दिन चर्चा के बीच उन्होंने समझाते हुए बताया था–उसे मैं आपसे कहकर बता रहा हूँ।

उस वृत्तान्त को मैं कहकर समझा रहा हूँ, जैसा उन्होंने कहा है, उनके कथन को स्पष्ट कर रहा हूँ। धर्मदास के दो पुत्र कहे जाते हैं। हे भाई! एक का नाम चूड़ामणि है। वे कबीर के बचनों के भाव से सम्बद्ध थे, इसलिए वे चूड़ामणि कहे जाते थे। दूसरे का नारायण का और इस प्रकार के युगल बन्धु कहे जाते थे। धर्मदास के पास द्रव्य कम नहीं था–उनके पास चार करोड़ की माया थी। उनके पास दो गुणवाले (गुणी) गुमास्ते थे वे नाम से जागू-भागू जाने जाते थे। एक दिन उनके यहाँ कबीरदास आए और धर्मदास उस समय पूजा में मन लगाए हुए थे। हे भाई! उन्होंने सालिग्राम का स्नान कराया और उनकी पूजा करके उनका ध्यान लगाया। उसको देखते हुए कबीर मुस्करा पड़े और कहा कि पत्थर को रोज पानी से क्यों धोते रहते हो? कबीर के इस प्रकार के वचनों को सुनकर धर्मदास मन में नाराज हो उठे। इस निंदक ने इस प्रकार की बात क्यों सुनाई और हमारे ठाकुर जी को पत्थर बता रहे हैं। धर्मदास के दिल में क्रोध समा गया और जाकर अपनी पूजाका साज-सामान उठा दिया। यह कोई नास्तिक मत का व्यक्ति है, अतः इससे सोच-समझकर चर्चा की जाए।

संवाद साथ गुपाल गुसाईं कबीर पंथी के

धर्मदास पूछी इक बाता। पूजा सो सब करत सनाथा॥
तुम पत्थर कैसी बिधि गावा। इष्ट हमारे दोष लगावा॥
बेद पुरान सास्तर गावा। तिनको तुम पत्थर ठहरावा॥
तुम्हरा मता कौन है भाई। सो तुम हमको भाखि सुनाई॥

अर्थ–धर्मदास ने उनसे एक बात पूछी कि पूजा के द्वारा सभी देवता मनुष्य को सनाथ (मंगलमय) करते हैं। इन इष्टदेव को आपने पत्थर कैसे कहा और हमारे इष्ट देवता पर यह कैसा दोष लगा दिया। वेद, पुराण एवं शास्त्रों में जिनका गुण गाया गया है उनको आपने पत्थर ठहरा दिया। हे भाई! आपका सिद्धान्त क्या है, और उसे तुम हमें कहकर बताओ॥

॥ कबीरदास चौपाई ॥

सुनियौ धर्मदास इक बाता। ब्रह्मा से भये बेद सनाथा॥
ब्रह्मा भये बैराट की नाभी। सो बैराट में किसकी स्वाबी॥
पाँच तत्त कहौ कहँ से आये। सो रचि कै बैराट बनाये॥
सो बैराट पिंड सब गावै। ये सब बिधी बेद बतलावै॥
बिधि बेदान्त ब्रह्म कहि गावा। आतम भीतर सुद्ध बतावा॥
और पुरान तुम्हरा गोहरावा। पत्थर पूजन कौन बतावा॥
ये बैराट पिंड तन माहीं। गगन माहि नौ खंड समाई॥
पांच तत्त तन बदन बनाया। ता में चेतन ब्रह्म समाया॥
चेतन आतम सब के माहीं। तुम पत्थर पूजौ केहि राही॥

अर्थ–हे धर्मदास मेरी एक बात सुनें, ब्रह्मा के कारण सारे वेद सनाथ हुए। ब्रह्मा उस बैराट की नाभि से हुए थे तो बताओं कि उस बैराट का स्वामी कौन है? ये पाँचों तत्त्व कहो कहाँ से आए हैं जिन तत्त्व ने रच कर बैराट की रचना की। उसी वैराट को सभी पिंड कहकर गाते हैं–यह सारी विधियाँ वेद बतलाते हैं। वेदान्त विधि के अनुसार उसे (रचयिता को) ब्रह्म कहा जाता है और वह शरीर के भीतर आत्मा के रूप शुद्ध रूप में है। यही बात तुम्हारे पुराण कहते हैं फिर बताइये कि पत्थर की पूजा की बात किसने बताई है। यह वैराट पिंड के रूप में शरीर बनकर आया है और आकाश में नौ खंडों के रूप में स्वभाव हुआ है। पांच तत्त्वों से इस शरीर की रचना की है और उसमें चेतन ब्रह्म समाया हुआ है। यह चेतन आत्मतत्त्व सभी के बीच है फिर तुम वह पत्थर किस धर्म मार्ग से जुड़कर पूज रहे हो।

धरमदास मन बूझि बिचारा। या से ज्ञान कहूँ निरवारा॥
तब पंडित दो चारि बुलावा। ये फकीर कहा कहत बुझावा॥
जहँ इक पंडित कंजा नाभा। कहा फकीर कस करत बखाना॥
जो कछु बेद सनातन गाई। सो मति को हम मानैं भाई॥
तुम फकीर कहौ कैसे साधू। धर्म भृष्ट करौ बाद बिबादू॥
जोइ जोइ आदि राह चलि आई। मेटेउ सब यहँ से उठि जाई॥
पंडित कहै कंजा अस बाता। येहि को काढ़ि देउ दै लाता॥
इन सब धर्म नास्ती कीन्हा। मुख देखन नहिं जोग अलीना॥
कंजा कहर लहरि कहि सारी। तब कबीर ने मौन बिचारी॥

अर्थ–हे धर्मदास! मन में इस विचार को बूझो कि इससे (मूर्ति पूजा से) किसी प्रकार के ज्ञान का क्या निराकरण सम्भव है। धर्मदास ने इसके बाद दो-चार पंडितों को बुलवा लिया और कहा कि आप लोग भी सुनें, यह फकीर क्या कहकर समझा रहा है। उन्हीं में से एक पंडित कंजा नाम के थे, उन्होंने कहा कि यह फकीर कैसा विवेचन कर रहा है। सनातन काल में जो कुछ वेदों ने गान किया है उस ज्ञान को, हे भाई! हम स्वीकार करते हैं। हे फकीर! तुम कैसे साधु हो कि हमें धर्मभ्रष्ट करने के लिए वाद-विवाद कर हो। जो जो धर्म के आदि मार्ग चले आ रहे हैं, तुमने सब मिटा दिया, अब यहाँ से चले जाओ। कंजा पंडित इस प्रकार की बातें कहने लगे। इसको लात मार कर यहाँ से भगा दो। इसने

हमारे सम्पूर्ण धर्मों को अस्तित्वहीन बता दिया है—यह मूर्ख मुख देखने योग्य नहीं है। कंजा ने आवेग की लहर में अपनी सारी उत्तेजना व्यक्त कर थी और कबीर साहब ने उस समय मौन रहना ही ठीक समझा।

कबीरदास चौपाई

पुनि बोले बिन रहा न जाई। तुम पंडित हौ कर्म कसाई॥
जग सब अंध धुंध करि डारा। पूजत पाहन जीव बिगारा॥
पानी जीव बँधाई आसा। अस अस जगत कर्म बसफाँसा॥
देबी बकरा गला कटावौ। टक मूढ़ बस पाप करावौ॥
माला टोपी काँध जनेऊ। करि असनान अचारी बनेऊ॥
हाँड़ी हाड़ मास घर सीझा। तलफत गला कटत जिवछीजा॥
पत्थर पानी जगत पुजाई। देखी पंडित को पंडिताई॥
बेद पुरान ज्ञान समझावौ। दया हीन हति आतम खावौ॥
मछरी मांस घास पसु खाई। अस तुम पसू नरक के माहीं॥
सुनपंडित तन अगिनि समानी। गरम तवा जस ढारौं पानी॥
जग बिच रहत कसाई जाता। तुम बिन करै कौन यह बाता॥
अब या का इक सब्द सुनाऊँ। सब्द साखि में लखन लखाऊँ॥

अर्थ—पुनः बिना बोले रहा नहीं गयी और कहा कि तुम सारे पंडित कसाई हो। सारे संसार का अपने प्रपंचों द्वारा तुमने अंधा बना डाला है और जल अर्पण की आशा में बंधा कर सारे संसार को कर्म के फाँस में बांध डाला। देवी के लिए बकरे का गला कटाते हो और सबको मूढ़ता के वंशीभूत करके पाप कराते हो।

माला टोपी पर कंधे पर जनेऊ धारण किए स्नान करके धर्माचरण युक्त बनते हैं। उनके घर में हंड़िया में भरकर माँस सीझता है और उनके सामने गला कटते हुए जीव का शरीर नष्ट होता है। संसार में पत्थर और पानी से पूजा करते हैं—पंडितों की यह पंडिताई देखो। वे एक ओर वेद, पुराण एवं आत्मा के विषय में समझाते हैं और इतने दयाहीन हैं कि आत्मधारी जीवों का वध करके उनका, भक्षण करते हैं। मछली, माँस एवं घास खाने वाले पशुओं को खाकर पशु की भांति नरक गामी बनते हो। हे पंडितों! सुनों, यह शरीर अग्नि के समान है, तुम्हारी वासनाएँ (तवा) जैसी गर्म होगी जैसे उन पर पानी की छौंक पड़े। तुम संसार में कसाई-पुत्र की भाँति रहते हो और तुम्हारे बिना कौन ऐसी बातें करे। अब मैं इस सन्दर्भ में एक 'सबद' सुनाता हूँ और इस सबद की साक्षी द्वारा दर्शनीय तत्त्व को दिखा रहा हूँ।

॥ शब्द ॥

साधो भाई पाँड़े निपुन कसाई।
बकरी मारि भेंड़ि को धावै। दिल में दरद न आंई॥ टेक॥
करि असनाना तिलक दै बैठे। बिधि से देबी पुजाई।
आतम मारि पलक में बिनसै। रुधिर की नदी बहाई॥ १॥
अति पुनीत ऊँचे कुल कहिये। सभा माहिं अधिकाई।

इनसे गुरु-दिच्छ सब माँगै। हँसी आवै मोहि भाई॥ २॥
पाप कटन को कथा सुनावै। करम करावैं नीचा।
हम तो दोऊ परसपर डीठा। बाँधें जम जग बीचा॥ ३॥
गाइ बधै सो तुरुक कहावै। ये क्या इन से छोटे।
कह कबीर सुनौ हो साधो। कलि में बाम्हन खोटे॥ ४॥

अर्थ–हे भाई साधो! पाण्डेय तो बहुत चतुर कसाई है। बकरी का वध करके भेंडी के लिए दौड़ते हैं और उनके हृदय में लेश मात्र भी दया नहीं आती॥

स्नान करके तिलक लगा लिया और विधि पूर्वक देवी की पूजा की। पलक भर में (देवी के चढ़ौए के रूप में) आत्मयुक्त जीव का वध करके खून की नदी बहा डाली॥ १॥

भरी हुई सभा के मध्य में सर्वाधिक पुनीत और ऊँचे कुछ से सम्बद्ध अपने को बताते हैं। हे भाई! मुझे इस बात की हँसी आती है कि इन सारे तथ्यों के बावजूद सभी इनसे गुरू दक्षिणा मांगते हैं, और उसे कहते मुझे हँसी आती है॥ २॥

ये पाप की विनष्टि के लिए कथाएँ सुनाते हैं और नीच किस्म का कर्म कराते हैं। हमने तो इनको और पशुबध को साथ-साथ देखा है, इन्हें यमराज संसार के बीच बाँधे हुए हैं। जो गाय का वध करते हैं, उन्हें तुर्क कहते हैं–क्या ये उन तुर्कों से किसी भी प्रकार से घट कर हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि हे साधु जन! सुनें कलियुग में ब्राह्मण अत्यन्त खोटे होते हैं।

॥ साखी॥

जला जीव तुम बिन बिन खाये। काहे को छाँड़ी गाई॥ १॥
बेद पुरान भागवत गीता। पढ़ि पढ़ि भये कसाई॥ २॥

अर्थ–जीव जलाया गया और तुमने उसे बीन-बीन कर खा डाला–क्यों तुमने गायों को खाने से छोड़ दिया। वेद 'पुराण', भागवत तथा गीता को पढ़-पढ़कर ये (ब्राह्मण) कसाई बन गए॥ १-२॥

॥ धर्मदास। चौपाई॥

जब कबीर इक बिधी बिचारी। धरमदास सुन बात हमारी॥
अंतर सालिगराम दिखाऊँ। हिरदे ठाकुर काढ़ि बताऊँ॥
गगन भूमि चढ़ि नैन पसारौ। ऐसे सालिगराम निहारौ॥
कहि कबीर इक हुचकी लीन्हा। कोढ़ ठाकुर भया यकीना॥
पुनि ठाकुर कब्बीर बुलाये। सो चलि चले हाथ में आये॥
देखत सब को भया अचंभा। मन बिस्वास बास बिच थंभा॥
धरमदास मन साँच समाना। ये साधू कोइ परम निधाना॥
जीव भाव मुक्ती अस जाना। तब पुनि गये चरन लपटाना॥
मंदिर आसन कीन्ह बनाई। संत कबीर आसन पर आई॥
तिरिया चरन आन करि लीन्हा। बचन बाक चूरामनि दीन्हा॥

दास नरायन दूजे भाई। अस कबीर बिधि बरनि सुनाई॥
सब घर के नर नारि बुलाये। चरन परसि के भवन सिधाये॥
दास नरायन बोले बानी। गई मति बापू की हम जानी॥
ये फकीर ठग कहँ से आया। सब घर जादू भर्म भुलाया॥
दास नारायन दीन्हा ज्वाबै। ठग फकीर पै हम नहिं जावैं।।
जब कबीर बोले मुख बानी। दास नरायन काल निसानी॥

अर्थ–इस विधि से विचार किया तब धर्मदास से कबीर बोले मेरी बात सुनें। अपने अभ्यन्तर में स्थित शालिग्राम भगवान को दिखाऊ कि हृदय में स्थित ठाकुर (भगवान) को निकाल कर साक्ष्य दूँ।

आकाश तथा भूमि पर चढ़कर हृदय के नेत्रों से जैसे सब कुछ देखता हूँ, ठीक उसी प्रकार शालिग्राम को भी देखें। ऐसा कहकर कबीर ने एक हिचकी ली और उनकी गोदी में (क्रोड-कोढ़) ठाकुर को देखकर विश्वास हुआ। उसके बाद ठाकुर ने कबीर साहब को बुलाया–वे अपने पैरों पर चल पड़े और उनके हाथ में आ गए। इसे देखते ही सबको आश्चर्य हुआ और सभी का मन विश्वास के बीच केन्द्रित हो उठा। धर्मदास के मन में उनका सच्चा होना समा गया कि ये कोई परम श्रेष्ठ साधु हैं। जीव भाव की मुक्ति इसी प्रकार सम्भव है और ऐसा सोचकर तब उनके चरणों में लिपट गए। मंदिर के अन्तर्गत उनको आसन दिया और फिर सन्त कबीरदास आसन पर बैठे। उनकी पत्नी ने आकर उनको चरण प्रणाम किया और उनके पुत्र चुड़ामणि को शब्दों का ज्ञान दिया। उनके दूसरे भाई नारायणदास थे–जिनको वर्णन विधि द्वारा सब कुछ ज्ञान तत्त्व) सुनाया। उन्होंने घर के सम्पूर्ण नर-नारियों को बुलाया और चरण का स्पर्श करके वे सब घर के अन्दर चले गए। नारायण दास ने कहा कि हमें समझ में आ गया कि पिताजी की पुरानी धार्मिक भावनाएँ समाप्त हो उठी। यह ढोंगी फकीर कहाँ से आया है और सभी परिवारजन को जादू द्वारा भ्रम में विस्मृत कर दिया है। नारायण दास ने उत्तर दिया–उस ठग फकीर के पास हम नहीं जाएँगे। कबीर ने अपने मुख से बातें कहीं कि नारायण दास तो काल का लक्ष्य हो चुका है।

॥ दोहा ॥

कह कबीर धर्मदास से, चौका करौ बनाइ।
साज सकल बिधि आनि कै, बीरा सत्त समाइ॥

अर्थ–कबीर साहब में धर्मदास से कहा कि चौके को बनाकर तैयार करो–सम्पूर्ण साज-सामान को विधिपूर्वक ले आकर तैयार करो ताकि सत्य का बीड़ा उसमें समाविष्ट हो उठे।

॥ चौपाई ॥

तब चौके का साज मँगाया। धर्मदास चित चौका वाया॥
चौका करि परवाना पावा। मुक्ति भाव सब बिधि दरसावा॥
अस बरतंत कहा सब लेखा। कहूँ आगे का सुनौ बिबेका॥
गोबिंद दास समझ समझाई। गुपल गुसाईं कहौ बुझाई॥
अब आगे बरतंत सुनाई। गुपल गुसाईं सुन मन लाई॥
अस कबीर धर्मदास चितावा। सो बरनन हम बरनि सुनावा॥

कहत कबीर सुनौ धर्मदासा। माया मोह जगत जिव फाँसा॥
सब माया को देउ लुटाई। साधू संग रहौ लौ लाई॥
सुनकरि धर्मदास सोइ कीन्हा। माया द्रव्य लुटाई दीन्हा॥
पुनि कबीर दिल भये दयाला। सब्द साखि सब ग्रंथ निकाला॥
बीजक और और कही बानी। दीन्ही धर्मदास को आनी॥

अर्थ–तब उन्होंने चौके का सारा सामान मँगवाया और धर्मदास के चित्त में यह चौका भला प्रतीत हुआ। चौका को करके, परवाना प्राप्त किया और प्रत्येक भाव से मुक्ति को प्रदर्शित किया। ऐसा वृतान्त उस प्रकरण में बताया–जिसे मैं आगे कह रहा हूँ, आप बिवेकपूर्वक सुनें। हे गोविन्द दास इसे समझो मैं समझा रहा हूँ और हे गोपालदास मैं तुम्हें भी समझा रहा हूँ। अब मैं आगे का वृत्तान्त सुना रहा हूँ– हे गोस्वामी गोपाल जी मन लगाकर सुनें। ऐसा कहकर, कबीर साहब ने धर्मदास को ज्ञान दिया, उस सन्दर्भ को हम वर्णन करके सुना रहे हैं। कबीरदास कहते हैं कि हे धर्मदास-सुनों, कि यह माया मोह संसार के जीवों के लिए बन्धन है। सारी माया को लुटा दो और साधुओं के साथ आत्यन्तिक प्रेमपूर्व रहो। इसे सुनकर धर्मदास ने वैसा ही किया और माया में फँसाने वाली सम्पत्ति को लुटा दिया। उसके बाद कबीरका हृदय दयालु हो उठा-सब्दी-साखी आदि सारे ग्रंथों को निकाल लिया। बीजक के अतिरिक्त भी उन्हें नई वाणियां सुनाई और धर्मदास को लेकर दिया॥

गुन गुमास्ते जागू भागू। चेला भये धरमनि सँग लागू॥
धरमदास चित चेला होई। जागू भागू नाम बिलोई॥
सब्द साखि बीजक और बानी। जागू भागू पास बखानी॥
सिपुरस धमरदास ने कीन्हा। सोइ भागू सिर ऊपर लीन्हा॥
देंही धरमदास तन त्यागा। तब चुरामनि ग्रन्थ जो माँगा॥
और ग्रन्थ सब दीन्हेउ भाई। बीजक भागू लीन्ह चुराई॥
रहे भगवान गुसाईं भाई। बीजक दै उन दीन्ह भगाई॥
तब तिरहुत में गद्दी कीन्हा। जाइ घनौति महंती लीन्हा॥
येहि बिधि भाव भक्ति हा भइया। गोबिंददास बरन अस कहिया॥
और जागू कछु कही बखाना। गुपाल गुसाईं सुन दै काना॥
भये भगवान गुसाईं साधू। तिनकी भाखूँ जड़ बुनियादू॥
बाम्हन बालक जाति बखानी। मात पिता केहि जाति निदानी॥
जगबँधनी माता कर नाऊँ। पितु कालू बिधि बरनि सुनाऊँ॥
उनके पुत्र रहे वै भाई। नाम कहा भगवान गुसाईं॥

अर्थ–उनके गुणी गुमास्ते जागू तथा भागू धर्मदास के साथ लगकर उनके शिष्य बन गए। हृदय से धर्मदास के वे चेला बन गए और उनका जामू-भागू नाम बदल गया। सबदी, साखी और बीजक तथा वाणी ग्रंथों को जागू एवं भागू के पास रखा इन ग्रंथों को धर्मदास ने भागू को सौंप (सिपुरसः सुपुर्द) दिया और भागू ने उसे अपनी जिम्मेदारी पर रख लिया। इसके बाद धर्मदास ने अपने शरीर का त्याग किया–तब उनके पुत्र चूड़ामणि ने उन ग्रंथों की भागू से माँग की। हे भाई! भागू ने चुड़ामणि को सारे

ग्रंथों को दे दिया। उसके बीजक ग्रंथ को चुरा लिया। उसके भाई गुसाई भगवानदास वहाँ थे, उन्हें बीजक देकर वहाँ से भगा दिया। उसके बाद तिरहुत में जाकर उसने गद्दी बनाई:इसे गुसाईं गुपालदास ने सुनाया था, ध्यान से सुनो–उसने भनौती में जाकर महन्थी ग्रहण की। इस विधि द्वारा उनकी भावभक्ति उपजी–ऐसा गोविन्ददास ने कहकर सुनाया था। जागू ने और कुछ बातें की थीं, हे गोपाल गोस्वामी कान देकर उन बातों को सुनें। भगवानदास साधु हुए हैं–उनकी जो बुनियादी जड़ें हैं, उनका वर्णन करता हूँ। वे जाति के ब्राह्मण पुत्र थे माता-पिता के द्वारा ही जाति का निराकरण किया जाता है। उनकी माता का नाम जगबँधनी था और काल विधि के साथ उनके पिता का भी वर्णन करता हूँ। हे भाई, उनके वही पुत्र थे–जिनका नाम भगवानदास गोस्वामी था।

पुनि पुरान में रह प्रबीना। गुरूमत करनी भाव न कीन्हा॥
पुनि कोई दिन मत में रहेऊ। तजि सतसंग गुसाईं भयऊ॥
जुगल गुरू मति छाँड़ि पराई। बीजक मिले भक्ति हा भाई॥
बीजक मति की चाल चलाई। जा से नाम भक्ति हा पाई॥
अब कालू की आदि बताई। जा से भये भगवान गुसाईं॥
कालू चलन बिषय रस राऊ। रहे तेलिन मँगली वोहि गाऊँ॥
ता संग इस्क मुहब्बत कीन्हा। लेकर पकरि राज सोइ लीन्हा॥
मँगली तेलिन कालू दोई। बाँधे पकरि राज ने सोई॥
कालू पितु सुन सबद सुनाई। डंड दीन्ह पुनि लीन्ह छुड़ाई॥
पुनि तेलिन ने सब्द बिचारा। मैं संग रहौं रहौ येहि लारा॥
सब बाम्हन मिलि बहुत बुझाई। कहिया बहुत न मानै भाई॥
तब पितु माता दीन्ह निकारी। न्यारे रहे भये घरबारी॥
मँगली नाम फेरि तब दीन्हा। जगबँधनी धर नाम नबीना॥
मँगली से जगबधनी कहिया। तेलिन नाम फेरि अस भइया॥
जा से भये भगवान गुसाईं। येहि विधि उनकी आदि सुनाई॥

अर्थ–वे भगवानदास पुराण बाचन में प्रवीण थे और गुरु मत के अनुसार आपनी करनी में परिवर्तन नहीं किया। पुनः कुछ दिनों तक गुरु मत के अन्तर्गत रहे फिर सतसंग छोड़कर गुसाईं बन गये। जुगल गुरु के मति को छोड़कर उन्होंने बीजक की संगति की और भक्ति प्राप्त की। उन्होंने बीजक की ज्ञान-भक्ति परम्परा का प्रचलन शुरू किया। जिससे उन्होंने भक्ति क्षेत्र में यश की प्राप्ति हुई॥ अब उन कालू की आदि कथा कहता हूँ–जिसके रूप में वे गोस्वामी भगवानदास हुए। कालू विषय-रस के भोक्ता थे और उस गाँव में मंगली नाम की एक तेलिन थी। उससे उन्होंने प्रेम किया: मंगली तेलिन और कालू उन दोनों को राजा ने बँधवा कर पकड़ा। कालू के पिता ने जाकर राजा से प्रार्थना की और राजा ने उनको दंडित किया फिर कालू के पिता उन्हें छुड़ा लाए। पुनः तेलिन ने इस पर विचार किया है मैं इसके साथ-साथ प्रेमपूर्वक रहूँगी। सारे ब्राह्मणों ने मिलकर बहुत समझावा किन्तु किसी की बात को उसने नहीं स्वीकारा। तब उसके माता-पिता ने घर से निकाल दिया और वे गृहस्थ बनकर सबसे अलग रहने लगे। उस मंगली को घर का नाम जगबँधनी दिया गया। अब मंगली से उसे जगबँधनी कहा जाता था और उस तेलिन का नाम इस रूप में रखा गया? उससे भगवान गुसाईं का जन्म हुआ और इस प्रकार उनसे जुड़ी शुरू की कथा मैंने सुनाई॥

बैठाकर उन्हें ज्यौनार कराया और वे भोजन समाप्त करके अपने आसन पर आ गए। सारे साधुओं ने मिलकर न्याय किया और बीजक उनके हाथ में आ गया, तब उस प्रकार वे संयमित हुए।

॥ तुलसी साहिब। चौपाई॥

सुन कर बिधी भर्म मन आवा। तुम कछु औरहि और सुनावा॥
उन सब कही और बिधि भाखी। तुम रस रमज और बिधि राखी॥
यह तौ बिधी मिलीनहिं भाई। तुम उन औरै और सुनाई॥
अब आगे का करौ बयाना। बीजक कहौ बिधान बिधाना॥
कस कस बीजक बरन सुनाया। जब कबीर मुख अपने गाया॥
सबद साखि सोइ भाखि सुनावौ। बीजक का बरतंत बतावौ॥
जीव काल से बचै न भाई। भौ के पार कौन बिधि जाई॥
सब्द अरथ साखा समझावौ। भिनभिन वा कौ अर्थ बतावौ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे गुपाल गुसाईं जी! आपकी बातें सुनकर भ्रम हो रहा है–तुमने तो कुछ और था और सुना दिया। उन सब ने अन्य दूसरे रूप में इसका वर्णन किया था और तुमने सारा वृत्तान्त (रस रमज) अन्य प्रकार से बताया है। इस प्रकार से इस कथा की कोई संगति नहीं मिलती–क्योंकि तुमने और उसने भिन्न-भिन्न रूपों में इसे सुनाया है। मैं अब आगे का वर्णन करता हूँ और संतों के विधि-विधान के अनुरूप मैं बीजक का वर्णन कर रहा हूँ। कबीर ने जिस प्रकार से अपने मुख द्वारा बीजक का वर्णन किया है और अपने मुख से गा-गाकर सुनाया है। इन्हीं साखी शब्दों को मैं कहकर सुना रहा हूँ और बीजक का वृत्तान्त बता रहा हूँ।

हे भाई! जीव काल द्वारा बचने नहीं पाता तो वह भवसागरके पार किस विधि द्वारा जाएगा। सब्द, अर्थ तथा उसकी शाखाओं को समझाएँ और उसका भिन्न-भिन्न अर्थ भी बताएँ।

॥ गुपाल गुसाईं। चौपाई॥

सुनियौ तुलसीदास गुसाईं। अब बीजक का सब्द सुनाई॥

अर्थ–हे गोस्वामी तुलसी साहब, सुनें, अब मैं बीजक के शब्दों को सुना रहा हूँ।

॥ शब्द॥

साधौ भक्ती सतगुरु आनी ॥ टेक॥
नारी एक पुरुष दो जोय, बूझौ पंडित ज्ञानी॥ १॥
पाहन फोड़ि गंग इक निकसी, चहुँ दिस पानी पानी॥ २॥
तेहि पानी दइ परवत बूड़े, दरिया लहर समानी॥ ३॥
उड़ि माखी तरवर के लागी, बोलै एकै बानी॥ ४॥
वा माखी के माखा नाहीं, गरभ रहा बिनु पानी॥ ५॥
नारी सकल पुरुष वोहिं खाया, ता से रह्यो अकेला॥ ६॥
कहै कबीर जो अब की समझै, सोई गुरू मैं चेला॥ ७॥

अर्थ–हे सन्तजन! सतुगुरु ही भक्ति ले आए:एक नारी के साथ ये जो दो पुरुष हैं, वे कौन हैं, हे ज्ञानी! पण्डित जन! बताएँ। पत्थर को तोड़कर निकलने वाली गंगा एक ही है–किन्तु चारों ओर उनका जल-ही-जल है। उस पानी के अन्तर्गत दो पर्वत डूब गए और नदियों में लहर बनकर वह पानी समा गया। सारी मधुमक्खियाँ उड़कर (छत्ते के रूप में) वृक्ष से जा लगीं और वे एक ही बात निरन्तर बोलती रहती हैं। उन मक्खियों के साथ नर मक्खी नहीं हैं और बिना जल बिन्दु के उन्हें गर्भ रह जाता है। उस नारी ने सारे पुरुषों को खा लिया और वह अब अकेला ही बचा है। कबीरदास जी कहते हैं कि मेरी बातों को जब अब समझ ले, वही गुरु है, मैं उसका शिष्य हूँ।

॥ तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

कहै तुलसी सुन गुपाल गुसाईं। सब्द अरथ मोसि कहौ बुझाई॥
को सतगुरु को भक्ती लाये। ये कबीर कस बरनि सुनाये॥
जुगल पुरुष केहि नारि ने जाई। पाहन फोड़ि गंग कस आई॥
फैली गंगा चहुँ दिस पानी। यह कबीर कहा कही बखानी॥
को दोउ परबत बूड़े पानी। कहौया की भिनि भिनि छानी॥
लो दरिया कित लहर समाई। को तरवर को माखी भाई॥
बिन माखा माखी गरभानी। सो कबीर कस कही बखानी॥
परसे नर बिन गर्भ न होई। कस माखी गरभिन भई सोई॥
कहौ को नारि पुरुष सब खाई। कही कबीर मैं नारि बचाई॥
कौन नारि लखि बचे बतावा। नारि बचे सोइ गुरू कहावा॥
यही कबीर अपने मुख बानी। या का भाखौ भेद बखानी॥
गुपल गुसाईं सुन मन माहीं। एक ज्वाब उन भाखि सुनाई॥

अर्थ–तुलसी साहब ने गोपाल गोसाई से कहा कि हे गुसाईं जी इस 'सबद' का अर्थ मुझे समझा कर बताएँ। किसने सतुगुरु की भक्ति लाई है और उसका वर्णन कबीर साहब ने कैसे की कह कर किया है। किस नारि ने दो पुरुष पैदा किये। पत्थर को तोड़कर गंगा कैसे अवतरित हुई हैं। गंगा का पानी चारों दिशाओं में फैला, यह कबीर साहब ने क्यों कर कहा है। वे दोनों पर्वत कौन हैं, जो जल में डूब गए। इसको मूल के साथ समझाकर बताओ। दरिया की लहर कहाँ समा गई और वृक्ष की मक्खियाँ कौन ही हैं। बिना नर मक्खी के मादा मक्खी कैसे गर्भयुक्त हो इसे कबीर दास जी ने क्यों कहा है? नर के स्पर्श के बिना गर्भ नहीं होता किन्तु बिना उनके मादा मक्खियाँ कैसे गर्भित हो उठीं। बताओ, वह कौन-सी नारी है जो समस्त पुरुषों को खा गई है–कबीरदास जी ने कहते समय उस नारी को क्यों बचा दिया? वह कौन-सी नारी है, जो देखती हुई भी बच जाती है–जो नारि बची, उसी को गुरु कहा गया है। कबीरदास जी ने अपने मुख से ही बात बताई है और आप उसका मतलब समझाएँ। गोपालदास ने उसे सुना किन्तु उनके मन में एक ही जबाब आया, जिसे उन्होंने बताकर तुलसी साहब को सुनाया।

॥ गुपाल गुसाईं। चौपाई ॥

सुन स्वामी तुलसी समझाईं। यह कबीर ने अगम सुनाई॥
यामैं मन बुधि चित नहिं चाली। उपजी एक सुनाऊँ हाली॥
सतगुरु नाम कबीर कहाये। वे जग में मुक्ती ले आये॥

अर्थ–हे गोस्वामी तुलसी साहब कबीरदास जी ने जो कुछ भी कहा है, उसमें उस अगम्य तत्त्व को समझाया है। इसमें मेरा मन-मेरा चित्त तथा मेरी बुद्धि नहीं चल पाती। कबीरदास जी द्वारा कही हुई वाणी को मैं सुनाता हूँ। कबीर स्वयं सतगुरु के नाम से पुकारे गए हैं, और वे संसार में मुक्ति होकर आए हैं।

॥ तुलसी साहिब। चौपाई ॥

धर्मदास मुख होती बानी। तौ कबीर सतगुरू बखानी॥
खुद कबीर मुख बचन बतावा। उन सतगुरु कहौ केहि कों गावा॥
यह तौ अर्थ न आवा भाई। कही कबीर सो गुरू बताई॥

अर्थ–धर्मदास के मुख से यदि यह बाणी कही होती तो ठीक थी क्योंकि उन्होंने कबीरदास जी को सतगुरु बताया है। स्वयं कबीर के मुख से यह बात कही गई है–बताएँ, उनको सतगुरु किसने कहा है। यह अर्थ उनके ऊपर के शब्द से नहीं निकलता है–कबीर साहब ने किसको गुरू कहा है, उसे बताएँ।

॥ गुपाल गुसाई। चौपाई ॥

सुन स्वामी तुलसी इक बाता। मैं नहिं जानौं अर्थ बिख्याता॥
हम तौ सब्द पढ़न पढ़ि लीन्हा। गाइगाइ खँजरीसँग कीन्हा॥
बोले हाथ जोरि मुख बानी। स्वामी तुलसी कहौ बखानी॥

अर्थ–हे स्वामी तुलसी साहब! मेरी एक बात सुनें–मैं इसमें निहित विवेक सम्पन्न अर्थ को नहीं जानता। वह शब्द था, मैंने, उसे उसी रूप में पढ़ लिया और गा-गाकर उसे खँजड़ी के राग में मिला दिया। के हाथ जोड़कर मुख से बाकी दोगे। हे स्वामी! तुलसी साहब, इसका अर्थ आप वर्णित करें।

॥ तुलसी साहिब। चौपाई ॥

तुलसी मन मुसकाने भाई। मैं कहा जानौं गुपल गुसाईं॥
सतसंगति संतन में पाई। सो मैं भाखौं समझि सुनाई॥
सतगुरु तो सतपुरुष बताया। सत्तलोक रहे पुरुष अकाया॥
वहँ से सुरति कबीरा आई। तीनि लोक ब्रह्मंड समाई॥
आतम जीव कबीर कहाई। धर्मदास मन को बतलाई॥
काया ब ीर कबीर कहाई। धर्मदास मन को समझाई॥
मन इंद्री बिच बास कराये। गुन प्रकृती बिच जग उपजाये॥
काया बिच बस बँधे कबीरा। भूले सिधु अमोलक हीरा॥
सिंध बुन्द तजि सूरति आई। वा कर नाम कबीर कहाई॥
बुन्द सिंध की सुधि बिसराया। काया बन्द कबीर कहाया॥

अर्थ–हे भाई! इसे सुनकर तुलसी साहब मन ही मन मुस्करा पड़े और कहा कि हे गुपाल जी स्वामी, मैं भला इसका अर्थ क्या समझूं। मैंने इसका अर्थ संतों की सत्संगति से प्राप्त किया है, मैं इसे सुनाकर तथा समझकर बताता हूँ। सद्गुरु ने तो सत्पुरुष के विषय में बताया था और वह सत्पुरुष सत्यलोग में बिना शरीर के रहता है। कबीरदास कहते हैं कि वहीं से सुरति आई है और ब्रह्मांड तथा

तीनों लोकों में समा गई। कबीर ने कहा है, जीव ही चैतन्य तत्त्व (आत्मभूत तत्त्व) है। धर्मदास इसको मन बतलाते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि काया (शरीर) ही बीर तत्त्व है और धर्मदास को उन्होंने उसे मन द्वारा नियंत्रित समझाया है। मन का निवास इन्द्रियों के बीच में है और सारा संसार त्रिगुणात्मक प्रकृति के अन्तर्गत उत्पन्न हुआ है। कबीरदास जी कहते हैं कि जीव काया के वश में बंधा हुआ है और वह इस महासमुद्र के अमूल्य हीरे को भूल गया है। सिन्धु के बिन्दु का त्याग कर आई हुई शक्ति का नाम कबीर ने सुरति रखा। बुन्द एवं सिन्धु की याद भूलकर जो तत्त्व आया उसे कबीरदास ने कायाबन्द कहा है।

सत्तपुरुष पद कीन्हा मेला। सो कबीर सतगुरु का चेला॥
और कबीर काया के माहीं। जड़ तन बस भौ में भरमाई॥
जिन बीजक रचि बरन सुनाया। तिन कबीर वह सतगुरु पाया॥
वो सतगुरु का भेद बतावै। लोक अलोक राह समझावै॥
जो कबीर का पंथ पिछानै। नहिं पंथी सब जाति कहाने॥
अब जागू भागू समझाऊँ। चूरामनि के चिन्ह चिन्हाऊँ॥
जो जागे सों भागे भाई। मन चूरा सोइ ब्रब्र कहाई॥
नर तन नाम नरायन जाना। गो संग मन भगवान कहाना॥
मन इंद्री गो संग गुसाईं। भग भौ भगवान कहाई॥
अस कबीर बीजक बिधि भाखा। तुम बेसमझ समझ नहिं राखा॥
बीजक नाम बीज बिंद केरा। नाम बिंद जग किया व बसेरा॥
बिंद बीज बीजक अस गाया। यह बिधि बीजक बरनि सुनाया॥

अर्थ–जिसने सत्यपुरुष के चरणों से मिलाप कर लिया है, कबीर के अनुसार, वही सत्गुरु का चेला है। कबीरदास ने यह भी कहा है कि शरीर के बीच जो जड़ चेतन के वश में है, यह भवसागर में भ्रमित है। बीजक के अन्तर्गत जिनकी रचना करके वर्णन किया है, उस सत्गुरु को कबीर ने प्राप्त भी किया है। कबीरदास जी सत्गुरु का भेद बतलाते हुए लोक एवं अलोक तत्त्व दोनों का मार्ग बतलाते हैं। जो कबीरदास जी के पंथ को पहचानता है, वह पंथी जातिविहीन सारी जातियों का है। अब मैं जागू तथा भागू के बारे में समझाता हूँ और चूड़ामणि को उसके लक्षणों द्वारा पहचान कराता हूँ। हे भाई! जो जगता है, सो भाग जाता है (संसक्ति से बाहर चला जाता है)। जिसका मन चूर्ण (जिसकी संसक्तियाँ विनष्ट हो जाती है) है, वही चूड़ामणि कहलाता है। नर के तन के नाम को नारायण समझो और जिसका मन जब इन्द्रिय निग्रह कर लेता है, उसे नारायण कहा जाता है। हे गुसाईं गुपालदास! मन, इन्द्रियाँ जब इन इन्द्रियों के साथ हो जाते हैं तो भवसागर से भगने वाला भगवान कहा जाता है। कबीरदास जी ने अपने बीजक के अन्तर्गत इसी विधि का वर्णन किया है और तुम ना समझ हो, इनके विषय में कोई समझ नहीं रखी। बीजक नाम तो वीर्य के बिन्दु का है–इसी बिन्दु ने संसार को अपनी विश्रामस्थली बना ली है। वीर्य के बिन्दु को बीजक इसलिए गाया गया है कि इसी के द्वारा उत्पन्न सम्पूर्ण सृष्टि का वर्णन किया जाए।

अब सुन सब्द अर्थ समझाऊं। कही कबीर बीजक सोइ गाऊँ॥
बिंद बीज स्त्रिष्टी उपजाई। तन बैराट बनाया भाई॥
बीजक एक बीज सब कीन्हा। नाद बिंद अस बीजक चीन्हा॥

सत्त पुरुष सतगुरु से आई। सोई सुरति गइ भक्ति कहाई॥
भौ रस बन्ध रही जगमाहीं। सो सूरति मन इच्छा भाई॥
इच्छा नारि पुरुष मन मानी। पुरुष नारि अस द्वै उतपाती॥
सब्द फोड़ि सुरति सोइ गंगा। मन बस फैल जगत रस रंगा॥
सो चहुँ दिस फैली जग माहीं। पानी परबत दोइ बुड़ाई॥
सूरति नाम कबीर कहाई। धर्मदास यह मन है भाई॥
द्वै परबत के अस बिधि बूड़ा। यह बीजक मत कहा अगूढ़ा॥
सब्द सिध से सूरति आई। भौ दरियाव लहर जग माहीं॥
तरवर तन इच्छा मन राखी। कर्म थमें इच्छा भई भाखी॥
बिना पुरुष की इच्छा नारी। बिन सहयोग गर्भ भया भारी॥
गर्भ कर्म इच्छा गरभानी। यहि बिधि गर्भ रहा बिन पानी॥
इच्छा नारि जगत को खाया। या का चीन्ह कबीर बताया॥
अब की बार नारि सोइ चीन्हा। सो गुरु कहूँ जगत परबीना॥

अर्थ–अब उनके शब्दार्थ को सुनें, मैं उन्हें समझा रहा हूँ और कबीरदास जी ने जिसे बीजक कहा है, उसे समझा रहा हूँ। बीज के बिन्दु से सृष्टि उत्पन्न हुई है और उसी ने वैराट के शरीर की भी रचना की है। बीजकके अन्तर्गत उन्होंने सम्पूर्ण सृष्टि के रहस्य को एक बीजभूत कर दिया और 'नांद-बिन्दु' के संयोग को नाम ही बीजक कहा। सत्य पुरुष सतगुरु द्वारा समझा गया और उसी में सुरति में प्रवेश किया–जिससे वह भक्ति बन गई। संसार में तो भवसागर के बन्धन की ही एकमात्र सत्ता है और इसलिए वह सुरति तत्त्व साधक के मन की इच्छा से सम्बद्ध है। पुरुष मन है और इच्छा नारी है–ये दोनों पुरुष एवं नारि (मन तथा इच्छा) संसार के अन्तर्गत बड़े उत्पाती हैं। 'सब्द तत्त्व' जिसमें फोड़कर समाविष्ट होता है, वही सुरति है और तब (इच्छाबिहीन) मन के वश में फैलकर आध्यात्मिक संसार के रंग में वह रंग उठता है। वह इस संसार में अनेक दिशाओं के अन्तर्गत फैल उठती है और उसमें जल तथा पर्वत दोनों डूब उठते हैं। कबीर ने इसका नाम सुरति रखा है–जिसे धर्मदास कहते हैं, हे भाई! वह मन है। यह मन दो पर्वतों के बीच सुरति समाधि के अन्तर्गत इस प्रकार डूब जाता है, और बीजक का अत्यन्त गूढ़ तत्त्व है। 'सबद' सिन्धु है, जिसमें सुरति का प्रवेश होता है, भवसागर सरोवर है, लहरें सांसारिक संसक्तियाँ हैं।

वृक्ष तो मन के द्वारा रक्षित कामनाएँ हैं और यही इच्छा कर्म के लिए प्रेरणा है। यहाँ बिना पुरुष के इच्छा नारी है और बिना मन के सहयोग के इच्छा प्रबल गर्भवती हो उठती है। कर्म रूपी गर्भ में इच्छा गर्भवी हो उठी, इस प्रकार यह गर्भ बिना वीर्य के ही रहा है। इच्छा रूपी नारी ने सारे जगत को खा डाला है, इसी की पहचान कबीर साहब ने बतलाई है। साधना के बाद वह नारी पहचान में आ गई है और जिसने यह बताया है, उसी गुरु को मैं संसार में सबसे प्रवीण गुरु कहूंगा।

॥ गुपाल गुसाईं। चौपाई ॥

स्वामी अगम अरथ समझाये। ये तौ हम सुपने नहिं पाये॥
हम ठोली सायर रस जाना। यामें तुमने अगम बखाना॥
सतगुरु पद सतलोक लखावा। सूरति चेला मिलन बतावा॥

सूरति मिलै सब्द के माहीं। सब्द जो मिले अगम घर जाई।।
अगम सिंध से सब्द जो आया। सब्द ने सुरति को पठवाया।।
सो सूरति गुन इंद्री माहीं। मन बनिया बैराट बनाई।।
तन मन गुन गोज्ञान समाना। कल्प कल्प भै भौ भरमाना।।
अस अस समझि परा यह लेखा। तुलसी स्वामी बचन बिबेका।।
तुमने कहन गहन सोइ गाई। हेरि दिये दिल माहिं समाई।।
हमने पढ़ि पढ़ि जनम गँवाया। सब्द साखि खजरी सँग गाया।।
या का भेद भाव नहिं चीन्हा। बूझा तुलसी कहन यकीना।।

अर्थ–इसे सुनकर गुपाल स्वामी बोले, हे तुलसी साहब! आपने मुझे अगम अर्थ समझाया है–उन्हें तो मैंने स्वप्न में भी नहीं प्राप्त किया था। हमने तो केवल इसमें प्रमुख रस समझा था किन्तु इसमें आपने अगम्य तत्त्व का वर्णन किया है। सतगुरु के पद से आपने सत्य लोक दिखा दिया है और सुरति रूपी चेला को उससे मिलने की विधि बतला दी। सुरति तो 'सबद' में मिलती है–यदि किसी को 'सबद' मिल जाते है तो वह अगम तत्त्व के घर पर पहुँच जाता है। इस अगम समुद्र से जो 'सबद' आया हुआ है–उससे सब्द में उसमें स्थित तत्त्व को 'सुरति' तक पहुँचाता है–वह सुरति तो इन्द्रियों और तीनों 'गुणों' में है और मन बैराट बनाकर उसी के अनुरूप बन गया। मन, शरीर, तीनों गुण एवं इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान एक भाँति के हैं और ये कल्पों से इस भवसागर में भ्रमित हैं।

संसार का क्रम इसी इसी प्रकार से समझ पड़ा है–हे तुलसी साहब! आपकी वाणी द्वारा, मुझमें यह विवेक उत्पन्न हुआ है। आपने अपने कथन द्वारा इस गहन तत्त्व को समझाया है। आपने उस तत्त्व को खोजकर मुझे दिया है और वह हृदय में समाविष्ट हो चुका है। हमने तो सब कुछ पढ़ पढ़ कर सारा जीवन नष्ट कर दिया और साखी एवं सबद को खजड़ी के रागों के साथ मैं गाता रहा। इसका रहस्य मैं आज तक नहीं पहचान सका और आपके समझाने पर विश्वास करके उसे आज समझा।

।। दोहा ।।

अगम निगम गम पाइया, तुलसी चरन प्रताप।
मैं महंत मन मान हौं, बीजक के बिस्वास।।

अर्थ–हे तुलसी साहब! आपके चरणों के प्रताप से मैंने निगम, अगम्य एवं गम्य तीनों तत्त्वों को प्राप्त कर लिया है और अब बीजक के विश्वास द्वारा अपने मन को ही महन्त मान रहा हूँ।

।। चौपाई ।।

स्वामी तुलसी अगम लखाई। बीजक भेद भर्म माहीं।।
अब स्वामी इक सब्द सुनाऊँ। या का अर्थ अंत समझाऊँ।।
या मैं कस कस कही बिचारा। बीजक में बरने निरधारा।।

अर्थ–तुलसी स्वामी ने मुझे उस अगम्य तत्त्व को दिखा दिया और गुम में अब 'बीजक' तत्त्व के विषय में भ्रम नही है। हे स्वामी ! अब मैं एक 'सबद' सुना रहा हूँ और इसका अर्थ तथा रहस्य भी आप समझा। इसमें कैसे कैसे विचार कहे गए हैं और क्या बीजक के अन्तर्गत ये बातें निराधार कही गई हैं।

॥ शब्द ॥

एकै पुरुष एक है नारी, ता का करी बिचारा ॥ टेक ॥
एकै अंड सकल चौरासी, भर्म भूलि संसारा ॥ १ ॥
एक नारि जम जाल पसारा, जग में भया अँदेशा ॥ २ ॥
खोजित खोजि काहू अंत न पाया, ब्रह्मा बिस्नु महेसा ॥ ३ ॥
नाग फाँस लीन्हे घट भीतर, मूसनि सब जग झारी ॥ ४ ॥
ज्ञान खड्ग बिन सब कोइ जूझै, पकरि कहूँ नहिं पाई ॥ ५ ॥
आपहि मूल फूल फुलवारी, आपहि चुनि चुनि खाई ॥ ६ ॥
कहै कबीर सोइ जन उबरे, जिन गुरु लीन्ह जगाई ॥ ७ ॥

अर्थ–एक ही पुरुष है और एक ही नारी है, इनका विचार करें। सम्पूर्ण चौरासी हजार योनियों में एक ही अंड तत्त्व (मूल तत्त्व) है किन्तु यह संसार तो भ्रम में भूला पड़ा है। एक ही नारी ने संसार में अपना जाल फैला रखा है किन्तु सारा संसार भ्रम में पड़ा हुआ है। ब्रह्मा, विष्णु, तथा महेश तक उसे खोजते रहे किनतु उसका अन्त (निष्कर्ष) नहीं मिला। उन दोनों ने शरीर के अन्तर्व्यात तत्वों को नागपाश में बाँध रखा ह और वे सम्पूर्ण संसार को चुरा-चुरा कर छिपाते जा रहे हैं। ज्ञान रूपी तलवार के बिना उनसे सारा संसार जूझ रहा है किन्तु उसको कहीं भी पकड़ नहीं पाते। वही जड़ है, वही फूल है, वही फुलवारी है और स्वयं ही उन्हें वह चुन-चुन खा रही है। कबीरदास जी कहते हैं कि उससे कोई ही भक्त ऊबर पाते हैं, जिनको गुरु ने तत्त्वों द्वारा जागृत कर (जगा दिया) दिया है।

॥ दोहा ॥

नर नारी दोउ कौन है, कहौ प्रभु अर्थ बिचार।
गुपल गुसाईं सरन में, तुलसी चरन निहार॥

अर्थ–ये नर नारी (स्त्री-पुरुष) दोनों कौन हैं, हे प्रभु! इनके अर्थ पर विचार करें–हे तुलसी साहब! यह गुपाल गोसाईं तो आपके चरणों को ही देखता हुआ, उनकी शरणगति में है॥

॥ तुलसी साहिब ॥ दोहा ॥

पुरुष निरंजन मन भया, इच्छा नारि बिचार।
ये दोऊ मिलि जग ठगा, कही कबीर निरधार॥

अर्थ–पुरुष निरंजन तत्त्व है–और यह मन है, और इच्छा को नारी समझो। इन दोनों ने मिलकर यह संसार ठग लिया है, कबीरदास जी इसका निर्धारण करते हुए बता रहे हैं।

॥ चौपाई ॥

मनहिं निरंजन पुरुष बखानी। इच्छा जोती नारि कहानी॥
पाँच तत्त ब्रह्मंड पसारा। अहँलगि अंड कीन्ह बिस्तारा॥
ठगनी ठग मिलि सब ठगि लीन्हा। इच्छा मन सँग जगत अधीना॥
अस अस भूले भौ को खाना। चौरासी जम हाथ बिकाना॥
एक नारि जम जाल पसारा। इच्छा मन किये काल अहारा॥

ब्रह्मा बिस्नु महेस न बाचे। रजगुन तमगुन सतगुन राचे॥
वोहि मन इच्छा नागिनि भाई। ठगि ठगि मूल सबन को खाई॥
वोहि नारी का सब्द सुनाऊँ। बिधि बरनन ताका दरसाऊँ॥

अर्थ–मन को निरंजन पुरुष कहा गया है और इच्छा तो ज्योति नाम की नारी की कला। ब्रह्मांड में पाँच तत्त्वों का प्रसार है और अपने अहम् के प्रकाश में अंड का विस्तार किया गया है। इस ठगिनी और ठग (मन तथा इच्छा) ने मिलकर सारा संसार ठग लिया है। इस मन तथा इच्छा के अधीन सारा संसार है। इसके फलस्वरूप सभी इस भवसागर की खानि में डूबे हुए हैं और यह संसार इस प्रकार चौरासी योनियों में चौरासी मनों के हाथ बिक गया है मात्र एक इच्छा नारी ने सम्पूर्ण यम का जाल फैला रखा है। यह इच्छा और मन मनुष्य को काल का आहार बनाये हुए है। इससे ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश भी नहीं बच पाये हैं और ये रजोगुण, तमोगुण तथा सत्त्वगुण में संसक्त हैं। हे भाई! ये दोनों मन तथा इच्छा नागिन हैं और यह मूल में प्रविष्ट होते हुए संसार को खाये जा रहे हैं। मैं इस इच्छा नारी के विषय में कथित 'सबद' सुना रहा हूँ और विधि के अनुरूप उनका वर्णन करता हुआ उसे दिखा रहा हूँ।

॥ होली ॥

नर से निकसी इक नारी, कोइ बूझै साध बिचारी॥ टेक॥
हाथ न पाँव सीस नहि काया, खाया सब जग झारी॥
माई न बाप आप से उपजी, करी खसम की ख्वारी॥ १॥
बारी न बूढ़ि तरुन तन नाहीं, सोवत सब जग मारी।
आवै न जाय मरै ना जीवै, जगु जुग रहत करारी॥ २॥
ऋषी मुनी सव झारि बिमारी, सब जग त्राह पुकारी।
रबि ससि सूर चंद्रतारा गन, ये सब खाइ बिडारी॥ ३॥
चर और अचर सकल चर लीन्हा, कीन्हा ब्रह्मंड पसारी।
चेतन जाग भाग सोइ बाचे, जिन सतगुरु सरनि सुधारी॥ ४॥
चीन्है नारि सार सोइ पावै, तब उतरै भौ पारी।
तुलसीदास फाँस तजि भागै, संतन साथ उबारी॥ ५॥

अर्थ–नर से ही एक नारी निकली हुई है, उस पर कोई साधु विचार करे। उस नारी के न हाथ है, न शीश है, न पाँव है, न शरीर है किन्तु फिर भी वह समस्त संसार को खा रही है। उसके न माँ है, न बाप है, वह अपने से पैदा हुई है और उसने अपने पति से भी ठगी कर रखी है। वह न बालिका है, न तरुण है और न बूढ़ी है, सारे संसार को सोते हुए वह मार डालती है। वह न आती है, न जाती है, न मरती है, न जीती है, वह युग-युग तक ज्यों-की त्यों रहती है। १-२॥

ऋषि मुनि तथा अन्य सभी उसके दबाव से बीमार हैं। सारा संसार त्राहि-त्राहि कर रहा है। उसने सूर्य, चन्द्रमा तथा समस्त तारागणों को खाकर विनष्ट कर दिया। सम्पूर्ण सचराचर को खाकर वह सम्पूर्ण ब्रह्मांड तक फैल गई। जो होश में आ गया है, वही उससे भाग कर बच पाया है या सतगुरु ने अपनी शरण देकर जिसे सुधार दिया है (वह भी बचा है)। इस नारी को जो पहचानता है, वही सार सत्त्व को प्राप्त करता है और तभी वह भवसागर के पार उत्तर सकता है। तुलसी साहब उसके बन्धन को छोड़कर भाग चले और सन्तों ने अपने साथ उन्हें रखकर उबार दिया।

॥ चौपाई ॥

ऐसी नारि जबर जग माहीं। ज्ञान गिरा सब लीन्ह हिराई॥
ज्ञान खड़ग बिन सब कोइ जूझा। बिन सतगुरु कोइ भेद न बूझा॥
इच्छा मन कीन्ही फुलवारी। तन मन जीव ब्रह्मंड संवारी॥
इच्छा से जग उपजा भाई। सोइ इच्छा जग खाइ बुड़ाई॥
या से उबरे जोइ जन भाई। सतगुरु सत्त पुरुष दरसाई॥
सूरति सत्त लोक में बासा। सो बाचै सतगुरु का दासा॥
गुरु मति पंथ भेष में नाहीं। या से मुए टेक करि माहीं॥
जगत गुरू जम जाल पसारा। ज्यों धीमर मछरी गहि मारा॥
पंथी गुरू भेद नहिं जानै। कान फूकि फिर भौ में आनै॥
जगत गुरू सतगुरु नहिं चीन्हा। तन छूटे फिर काल अधीना॥
जगत गुरू बिस्वास न माना। उनहूँ सतगुरु मरम न जाना॥
अस परपंच गुरूजग माहीं। भौजल में जिव गोता खाई॥
ये सब हाट बजार दुकानी। बूड़े गुरू चेला बिन पानी॥
सब्द साखि सब भाखि बतावै। अर्थ भेद ता को नहिं पावै॥
बिन सतसंग नजर नहिं आई। बिना संत बूड़े भौ माहीं॥

अर्थ–संसार में एक ऐसी भी जबरजस्त नारी है, जिसके सामने मनुष्यों का सारा ज्ञान और प्रवचन खो जाता है। ज्ञान रूपी तलवार के बिना सभी उससे युद्ध करके मरते जा रहे हैं–बिना सतुरु के कोई उसका रहस्य नहीं समझ पाया है। इच्छा और मन ने मिलकर एक बाटिका बनाई है-उसने शरीर, मन तथा जीव के साथ मिलकर सारे ब्रह्मांड को सँवार दिया है। हे भाई! इसी इच्छा के द्वारा यह संसार उपजा है और उसी इच्छा ने ही उसे खाकर बिनष्ट कर दिया है। हे भाई! इससे जो व्यक्ति उबरा है, उसी को सत्य पुरुष और सतुरु दिखलाई पड़ते हैं। सुरति का बास सत्यलोक में है और जो इच्छा और मन से बच जाता है, उसका भी निवास सत्यलोक में होता है। गुरु ज्ञान का मार्ग भेष धारण में नहीं सम्बद्ध है और इससे दृढ़ प्रतिज्ञ होकर सभी आडम्बरधारी साधु मर गए? यम ने इस सम्पूर्ण संसार भर में धीवर की भाँति अपना जाल फैला रखा है और मछली की भाँति जीवों को पकड़-पकड़कर वह उन्हें मार डालता है। इस रहस्य को ये पंथीगुरु नहीं जानते–वे तो मनुष्यों का कान फूँककर उन्हें पुनः भवसागर में हो आते हैं। ये जगत के आडम्बरपूर्ण गुरु सतुरु को नहीं पहचानते और शरीर छूट जाने पर वे पुनः काल के अधीन हो उठते हैं। यह जगतगुरु किसी के समझाने का विश्वास नहीं मानते और स्वतः भी सतुरु का रहस्य भी नहीं जानते।

प्रपंचों से युक्त ऐसे गुरु संसार में हैं और जिनके कारण जीव भवसागर में सदैव गोता खाते रहते हैं। यह धर्मज्ञान नहीं, उसकी सब दुकाने तथा बाजार हैं और वहाँ गुरु तथा शिष्य दोनों बिना पानी के डूब कर मरते हैं। बिना सत्संगति के विवेक दृष्टि नहीं बनती, अतः सन्तों के बिना ये सब भवसागर में डूबकर मर जाते हैं।

॥ सोरठा ॥

तुलसी कही पुकारि, गुपल गुसाई भेद यह।
तुम बीजक मति माहि, मरम भेद गति ना लखी॥

अर्थ–तुलसी साहब ने पुकार कर कहा, हे गुपाल गोसाईं! यह इसका रहस्य है–और तुमने बीजक ग्रंथ के अन्तर्गत इसके ज्ञान रहस्य एवं मर्म को नहीं देखा॥

॥ गुपाल गुसाईं। चौपाई॥

सब्द भेद मोहिं समझ सुनाई। तुलसी दरपन सी दरसाई॥
चौरासी रामायनि गाई। या की तुलसी कहौ अरथाई॥
साखी एक समझ समझाई। ता में तब रामायनि गाई॥

अर्थ–आपने मुझे 'सब्द' का रहस्य मुझे बताया, मैंने उसे समझा और यह वैसे ही समझा, जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखता है। आपने चारों रामायनों का कथन किया, हे तुलसी साहब! उसका रहस्य बताने का कष्ट करें। आपने एक 'साखी' को समझाया, जिसे समझा और अब इन सबके बाद आप रामायन समझाएँ।

॥ रमैनी॥

जीव रूप इक अंतर बासा। अंतर जोति कीन्ह परकासा॥ १॥
इच्छा रूपी नारि औतरी। तासु नाम गायत्री धरी॥ २॥

अर्थ–जीव तथा रूप (शरीर) के बीच एक अर्न्ततत्त्व वर्तमान है, उसके अन्तवर्ती तत्त्व को ज्योति प्रकाशित करती है। यही इच्छा रूपी अवतरित नारी है, उसका नाम गायत्री रखा है।

॥ चौपाई॥

ये साखी स्वामी कस बूझा। हम बीजक मति रहे अबूझा॥
भेद भाव नहिं जानैं भाई। ये संतन कहि अगम अगाही॥

अर्थ–इस साखी को आपने कैसे समझा है, हम बीजक के ज्ञान रखने वाले इस ज्ञान से अनभिज्ञ रहे हैं। हे भाई! हम लोग भेदभाव नहीं जानते, सन्तों ने तो इसे अगम्य एवं अग्राह्य बताया है।

॥ तुलसी साहिब। चौपाई॥

अब रामायनि अरथ बताऊँ। कहि कबीर सोइ लखन लखाऊँ॥
रूप सरीर जीव मध बासा। अन्तर जीव जोति परकासा॥
जिव आतम सोइ सुरति कहाई। या का तेज जोति ठहराई॥
जोती तेज ऐन पर आया। मनमाया गुन भवन समाया॥
गयउ जीव निरगुन के माहीं। इच्छा नारि गायत्री गाई॥

अर्थ–अब रामायण का मैं अर्थ बता रहा हूँ। जो कुछ इस विषय में कबीर साहब ने कहा है, मैं उन लक्षणों को दिखा रहा हूँ। रूप रूप शरीर एवं जीव के मध्य में उसका निवास है–और उसके कारण जीव का अर्न्तजगत ज्योति द्वारा प्रकाशित है। जीव में वही चैतन्य तत्त्व सुरति के रूप में स्वीकार किया जाता है और उसके तेज (प्रकाश) का नाम ज्योति है। ज्योति का तेज जब शरीर पर आता है तो मन की माया शक्ति त्रिगुणात्मक शक्ति रूपी गृह में प्रवेश कर जाती है। यह जीव तब निरगुण तत्त्व में समा विष्ट हो जाता है–इस प्रकार, इच्छा ही नारी है, उसी को गायत्री के नाम से पुकारा जाता है।

॥ सोरठा ॥

रामायनि बिच माहि, येहि बिधि सब साखी लखौ।
अन्तर घट के माहिं, तुलसी तन बिच सब कही॥ १ ॥
चौंरासी रामायनी, राम ऐन दरपन, महीं।
सो चौरासी खानि, उतपति जगत कबीर कहि॥ २ ॥
मन मत राम कहान, बिन्द ब्रह्मंड मन सँग भया।
अंडा खलक समान, अलख काल संग बस रही॥ ३ ॥

अर्थ—रामायण के बीच इस प्रकार से सभी साखियों को समझो। तुलसी साहब कहते हैं कि सभी ने ऐसा ही कहा है कि वह शरीर के बीच स्थित अन्तर्घट में वर्तमान है॥ १ ॥

चौंरासी रामायणों के अनुसार राम का निवास जीव के इसी चित्त रूपी दर्पण में है—वही चौरासी भवसागर को खानियाँ हैं और इस संसार की कबीर द्वारा उत्पत्ति स्थली कही गई है॥ २ ॥

मन को राम कहा गया है, सम्पूर्ण बिन्दु रूपी ब्रह्मांड इस मन (राम) के साथ है, यह अंडतत्त्व जगत के समान है और यह सारा जगत अलक्ष्य रूप काल के साथ निवास करता रहता है॥ ३ ॥

॥ गुपाल गुसाईं। चौपाई ॥

ये स्वामी यह बूझ बुझाई। तुलसी कहनि समझ में आई॥
यह कबीर कहि जग ब्यौहारा। या से नहीं जीव निरबारा॥
मन चिताइ कै ज्ञान लखावा। बीजक में अस परभावा॥
अगम पंथ की राह नियारी। सो लखि दई संत दरबारी॥
तुम चरनन से अस अस बूझा। तुलसी गहनि कहनि से सूझा॥
अब स्वामी साखी समझावौ। सोइ साखी का अर्थ बुझावौ॥

अर्थ—हे स्वामी! आपने यह ज्ञान समझा दिया और आपकी बातें मेरी समझ में आ गई। कबीर ने यह इस प्रकार सांसारिक व्यवहार की बातें कही हैं और इनसे जीव की मुक्ति सम्भव नहीं है. बीजक का यह प्रभाव सर्वोविदित है—वह मन की ग्रंथि को खोलकर ज्ञान को दिखा देता है। अगम्य तत्त्व के राह बिलक्षण है उसे कोई सत्य तत्त्व का दरबारी ही देखकर बता सकता है। आपके चरणों में आने से मुझे इस-प्रकार से सूझ पड़ा है है तुलसी साहब आपके गम्भीर चिन्तन और उपदेश से, मुझे ऐसा समझ पड़ा है। हे स्वामी! अब साखी के बारे में समझाएँ और साखी का अर्थ भी बताएँ।

॥ साखी ॥

जहिया जन्म मुक्तै हता, तहिया हता न कोइ।
छठी तुम्हारी हो जगी, तुम कहँ चले बिगोइ॥

अर्थ—जिस दिन मुक्त व्यक्ति को ज्ञान हुआ, उस दिन और कोई नहीं उसके पास था। तुम्हारी छठीं इन्द्रिय जग उठी है, अब तुम उसे विनष्ट करने के लिए तुम कहाँ चल पड़े।

॥ तुलसी साहिब। चौपाई ॥

जब ब्रह्मंड पिंड किया साजा। निरमल जीय तनहि करै राजा॥
मन इच्छा तब हती न भाई। इंद्री षट रस जुबाँ न चाही॥

जीवन मुक्ति जीव तन माहीं। जब की साखी साखि सुनाई॥
जब जेहि हताकोई नहिं भाई। काम क्रोध तजि आप रहाई॥
छटै छै रस में मन बाँधा। हुआ जग जग मन रहा नसीधा॥
हुआ अहंकार माहिं मनलागा। तेहि संग चल बिगोड़ मत त्यागा॥

अर्थ–जब ब्रह्मंड में पिंड ने अपनी साज-सज्जा की तब निर्मल जीव इस शरीर पर राज्य करने लगा। उस समय मन ने इच्छा का वध नहीं किया और जिह्वा ने अपने षट्‌रसों के आस्वाद की भी कोई कामना नहीं की। जीव के शरीर में ही तब जीवन्मुक्ति स्थित थी और उस समय की साखी को मैं साक्ष्य के रूप में सुना रहा हूँ। जब इस मन का दमन किसी ने भी नहीं किया, यह स्वयं काम-क्रोध का परित्याग करके स्वयं रहने लगा। झूठे छः रसों में जब इसने मन को बाँध दिया, यह मन जगतमय होकर रहने लगा और उसमें अपनी स्वाभाविकता नहीं रही। सम्पूर्ण मन अहंकार ग्रस्त हो उठा और उसी के साथ सब कुछ त्याग कर विलीन भाव से चल पड़ा।

॥ गुपाल गुसाईं। चौपाई॥

साखी सतगुरु एक सुनाऊँ। या का भेद भाव दरसाऊँ॥

अर्थ–मैं सत्गुरु की एक साखी सुना रहा हूँ और इसका रहस्य तथा भाव को इसी में व्यंजित कर रहा हूँ।

॥ साखी॥

पाँच तत्त का पूतरा, जुगत रचा मैं कीन्ह।
मैं तोहिं पूछौं पंडिता, सब्द बड़ा कै जीव॥

अर्थ–पाँच तत्त्वों का एक पुतला है, और मैंने मुक्ति कर करके उसके लिए सब कुछ रचा था। हे पंडित ज्ञानी! मैं तुमसे पूछता हूँ कि सब्द बड़ा है या जीव!

॥ तुलसी साहिब। चौपाई॥

गुपल गुसाईं सुनिये बाता। अर्थ भेद भाखूँ बिख्याता॥
पाँच तत्त पिंजर तन साजा। ता में आतम जीव बिराजा॥
मन माया सँग रचा पसारा। पिंड पिंड तन मन बिस्तारा॥
सब्द सुन्न से उठ अवाजा। तासु तेज जिव आतम राजा॥
ब्रह्म सब्द तन भीतर माहीं। जीव अंस तन पिंजर पाई॥
गुपाल गुसाईं सुनियौ बानी। येहि बिधि अर्थ कबीर बखानी॥

अर्थ–हे गुपाल गुसाईं। मेरी बातें सुनें, इस प्रसिद्ध अर्थ भेद का मैं विवेचन कर रहा हूँ। पाँच तत्त्वों से शरीर रूपी पिंजड़े को सजाया गया है और उसमें आत्म तत्त्व रूपी जीव निवास करता है। उसने मन तथा माया से मिलकर प्रपंचों का प्रसार किया और पिंड-पिंड रूप में शरीर और मन का विस्तार (पुत्र पौत्रादि द्वारा) किया। इसी में शून्य शब्द से एक ध्वनि उठी उसका तेजोमय चैतन्य जो आत्मारूप में है, वही राजा है। ब्रह्म शब्द इस शरीर के ही भीतर है–जीव के अंश को इस शरीर रूपी पिंजड़े ने प्राप्त किया है। हे गुपाल गुसाईं! मेरी बातें सुनें–इसी प्रकार का अर्थ कबीर साहब ने बताया है।

॥ गुपाल गुसाईं। चौपाई॥

इक साखी प्रभु और सुनाऊँ। या का अर्थ भेद समझाऊँ॥

अर्थ–हे प्रभु! मैं एक साखी और सुना रहा हूँ–उसका स्वरूप मैं आपके सामने रख रहा हूँ।

॥ साखी ॥

पाँच तत्त ले तन किया, सो तन ले क्या कीन्ह।
कर्मन बस जिव रहत है, कर्मन को जिव दीन्ह॥

अर्थ–पाँच तत्त्वों को लेकर इस शरीर की रचना की–फिर, उस शरीर को लेकर (नष्ट करके) क्या बनाया। जीव कर्मों के वश में रहता है, क्या इन कर्मों को वह मृत्यु के बाद जीव को दे दिया।

॥ तुलसी साहिब। चौपाई ॥

तुलसी कहै सुन गुपल गुसाईं। बन मन तन का मरम सुनाई॥
नर तन पाँच तत्त से कीन्हा। बादहि जनम आप नहि चीन्हा॥
कर्म काल बस रहन निहारे। जीव कर्म बस रहन बिचारे॥
गुपल गुसाईं सुन दे काना। यह साखी अस कही बिधाना॥

अर्थ–तुलसी बोले, हे गुपाल गुसाईं सुनें, इस शरीर और मन की रचना का परमतत्त्व सुना रहा हूँ। मनुष्य के शरीर की पाँच तत्त्वों से रचना की है?। और उसके बाद जन्म लेने पर मनुष्य स्वयं को ही नहीं पहचानता। कर्म और काल के वशीभूत होकर वह अपनी रहनि (जीवन यात्रा) को देखता है–जीव कर्म का वशीभूत होकर केवल जीवनयात्रा के ही विषय में सोचता है। हे गुपाल गुसाईं। मेरी बातें, कान लगाकर सुनें, यह साखी, इस व्यवस्था के बारे में बताती है।

॥ गुपाल गुसाईं। चौपाई ॥

इक साखी और अरज बिचारी। वा की समझ कहौ निरबारी॥

अर्थ–मेरी एक साखी को और सुनें मेरी प्रार्थना है कि आप उस पर विचार करें–उसकी समझ का स्पष्ट रूप आपके सामने रखता हूँ।

॥ साखी ॥

पाँच तत्त के भीतरै, गुप्त वस्तु अस्थान।
बिरले मर्म कोउ पाइहै, गुरु के सब्द प्रमान॥

अर्थ–इन पाँच तत्त्वों के भीतर एक गुप्त तत्त्व के लिए स्थान है–इसे विरले व्यक्ति ही समझ पाते हैं। केवल गुरू के शब्द ही इसके ज्ञान के प्रमाण हैं।

॥ गुपाल गुसाईं। चौपाई ॥

कहै तुलसी अब अर्थ सुनाऊँ। कहि कबीर मुख लखन लखाऊँ॥
पाँच तत्त तन भीतर भाई। गुप्त अवाज उठै सुन माहीं॥
बिरले गगन फोड़ि स्रुति जावै। परे मन निकरि सब्द गुरु पावै॥
सूरति सिखर गिरा नभ राही। जब चढ़ि गई गगन गुरू पाई॥
गुपाल गुसाईं सुन यह बानी। बीजक मत कही भिन भिन छानी॥
सतसँग रँग बिन नहिं निरबारा। बिन सतगुरु कस खुलै किवारा॥
तुम बीजक के सब्द सुनाया। गाइ गाइ सब जनम गँवाया॥

पढ़ते सब्द जनम गयौ बीती। समझ बूझ बिन अधरे रीती॥
सब्द समझ सतगुरु से पावै। बिन सतगुरु पढ़ि जनम गँवावै॥
अब या का इक सब्द सुनाई। सुनियौ कानन गुपाल गुसाई॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि अब इसका अर्थ बता रहा हूँ और कबीर साहब के मुख से कहे हुए इसके लक्षणों को समझा रहा हूँ। हे भाई! इस शरीर के भीतर पाँच तत्त्व है और उनमें से कभी-कभी रहस्यमयी (गुप्त) ध्वनियाँ उठती रहती हैं। वे साधु बिरले हैं–जो मन के ऊपर जाकर उस 'सब्द' गुरु को प्राप्त करते हैं। सुरति शिखर है, बाणी इस शून्य की राही है और उस पर वह चढ़ कर जाती है तभी गुरु को प्राप्त करती है। हे गुपाल गुसाई! मेरी यह बात सुनों–बीजक मत इसे भिन्न-भिन्न रूपों में कहा गया है। संतसंगति के प्रभाव के बिना इसका निराकरण नहीं होता–क्योंकि बिना सत्गुरु के इस द्वार के दरवाजे नहीं खुलते। तुमने बीजक के सब्द को सुनाया है और उसे गा-गाकर समस्त जीवन विनष्ट कर दिया। 'सबद' पढ़ते-पढ़ते जन्म बीत गया और बिना समझ-बूझ के यह अंधे की रीति बन गई है।

सबद की समझ सद्गुरू से मिलती है–बिना सत्गुरु से पढ़े सारा जन्म यों ही बीत जाता है अब इसके लिए मैं एक सब्द सुनाता हूँ–हे गुपाल गुसाई! अपने कानों से इसे सुनिये।

॥ शब्द १ ॥

सब्द साखि भाखत भये, तन बीति सिराना हो॥ टेक॥
भेष पंथ मूले फिरैं, कोइ मरम न जाना हो।
सुन्न सहर सूत द्वार में, चढ़ि स्रुति असमाना हो॥ १॥
नभ निवास न्यारी भई, मारग पहिचाना हो।
पछिम पार पट खोलि कै, खिरकी नियराना हो॥ २॥
होति जोति जगमग लखै, आतम दरसाना हो।
कँवल केल आगे चली, दल दोय दिखाना हो॥ ३॥
परमातम पद परसि कै, लखा पुरुष पुराना हो।
अगम गली आगे चली, अली आदि अनामा हो॥ ४॥
तुलसीदास दुरबीन में, कोह संत समाना हो।
अगम निगम गम गाइकै, जिन भाखि बखाना हो॥ ५॥

अर्थ–सबद तथा साखी गाते हुए सारा समय बीत गया और शरीर समाप्त हो उठा। भेष तथा पंथों में सभी भूले फिरते रहे किन्तु उस परम तत्त्व का कोई रहस्य उन्हें समझ में नहीं आया। शून्य के नगर में द्वार पर सोते हुए सुरति के आसमान पर चढ़ जाओ। शून्याकाश का निवास बड़ा ही विलक्षण है और वही से अपने मार्ग की पहचान करो। पश्चिम की ओर भी किवाड़े खोलकर खिड़की के समीप पहुँच गया॥ १॥

उसके खिड़की के अन्दर कक्ष में हो रही जगमगाती ज्योति को देखो-वहीं आत्मा के दर्शन होंगे। कमल के साथ क्रीड़ा करते हुए वह आत्म चेतना आगे बढ़ती है–जहाँ मात्र दो दल दिखाई पड़ते हैं॥ ३॥

परमात्मा के चरणों को स्पर्श करते हुए उस मूल (प्राचीन) पुरुष को देखो–हे सखी! उस गली के आगे आदि और अनादि तत्त्व निवास करता है। तुलसीदास कहते हैं कि साधक की चेतना की

दूरबीन में कोई सन्त समाया हुआ है–जिनके आगम्य, निगम एवं गम्य आदि कहकर सन्तों द्वारा पुकारा गया है।

॥ शब्द २ ॥

सब्द भेद साखी लखै, सोइ साध सुजाना हो।। टेक॥
अगम निगम गम चीन्ह कै, बानी पहिचाना हो।
सुरति सिष्य सब्दै गुरू, मिलि मारग जाना हो॥ १॥
लखि अकास औंधा कुआँ, ता में सुरति समाना हो।
गगन गिरा गरजत भई, फूटा असमाना हो॥ २॥
गंगा जमुन बिच सरसुती, बेनी असनाना हो।
जोग ज्ञान गम ना लखै, अली अगम ठिकाना हो॥ ३॥
तुलसी दर दुरबीन का, कोइ फोड़ि निसाना हो।
सिंध बुन्द सागर मिला, सोइ सिंघ कहाना हो॥ ४॥

अर्थ–जो 'सबद' तथा 'साखी' के रहस्य को समझे, वही साधु है। अगम्य, निगम तथा गम्य तत्त्वों को पहचानकर उनसे सम्बद्ध वाणी का तात्पर्य समझे तथा सुरति रूपी शिष्य एवं 'सब्द' रूपी गुरु से मिलकर मूल मार्ग समझता हो, वही साधु है॥ १॥

वह शून्याकाश में उल्टा औंधे कुएँ और उसमें समाई हुई सुरति को देखे, साथ आकाश के अन्तर्गत वाणी का गर्जन एवं फूटे हुए आसमान को देख ले–वही साधु है॥ २॥

गंगा-यमुना के बीच छिपी हुई सरस्वती (इड़ा-पिंगला के बीच स्थित सुषम्ना) की त्रिवेणी में जो स्नान करता हो, वह योग एवं ज्ञान के तत्त्वों को देख तथा हे सखी! जिसका निवास अगम्य में हो, वह साधु है॥ ३॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि उस मूल उपास्य स्थान के किसी प्रकरण को तोड़कर चेतना रूपी दूरबीन से जो उसे देखता रहता हो तथा जो सिन्धु एवं बिन्दु से सम्मिलित उस समाधि सागर में विलीन होकर महासिंधु बन जाता है, वही साधु है॥ ४॥

॥ सोरठा॥

बुन्दा सिध समान, मिलि सागर सागर भयौ।
गुपल गुसाईं सब्द को, बिन बूझें बागर रह्यौ॥

अर्थ–बुंद सिन्धु में समा गया और वह सागर से मिलकर स्वयं सागर बन जाता है। हे गुपाल गोसाई! साधक बिन सबद को समझे बूझे बराबर नासमझ (बागर) बना रहता है।

॥ चौपाई॥

गुपल गुसाईं सब्द न बूझा। बीजक मति में रहे अबूझा॥
अगम निगम गम सब्द पुकारा। तुम अँधरे नहिं बूझ बिचारा॥
सब्द सिंध सतगुरु गोहरावैं। बिन सतसंग कस नजर समावै॥
हिये दृग नैन किवारी खोली। सोइ सतगुरु की समझै बोली॥
सतगुरु अगम राह दरसाई। सब्द साखि सब भाखि सुनाई॥

पिय मारग मिलने की रीती। नैन नगर नित प्रतिस्त्रुति प्रीती॥
अब या का इक सब्द सुनाऊँ। तुम सो रमज राह दरसाऊँ॥

अर्थ–हे गुपाल गुसाईं! जो 'सब्द' नहीं समझ पाता, वह तो बीजक के ज्ञान से नासमझ बना रहता है। अगम, निगम एवं गम ये तीन शब्द पुकारे गए हैं कि तुम जैसे लोग उसे नहीं जानते, अंधे बने हुए हो। सतुरु 'सबद' रूपी सिन्धु के पास आने के लिए पुकारता रहता है किन्तु बिना सत्संगति के बिना वह समझ में कैसे आए। हृदय रूपी नेत्रों को किवाड़ों को जिसने खोल रखा है, वही सत्गुरु की बातें समझ सकता है। सत्गुरु ने अगम्य की राह दिखाई है और 'सब्द' रूपी साक्षी द्वारा उसके सब कुछ को कहकर सुनाया भी है। प्रिय के मार्ग के मिलने की रीति यही है कि नित्य प्रति हृदय के नेत्रों की प्रीति सुरति (स्त्रुति) के प्रति लगाएँ। अब मैं इसके लिए पुनः एक 'सब्द' कहूँगा और तुमको उस साधना का मार्ग बताऊँगा (दिखलाऊँगा)॥

॥ शब्द २ ॥

सुरति निरति निज नैन को, सतगुरु दरसावा हो॥ टेक॥
अति उतंग पिय पंथ को, तब मारग पावा हो।
सुरति जहाज पै बैठि कै, अपने घर आवा हो॥ १॥
साजि सिंगार सुन्दर चली, पिय को अपनावा हो।
फूलन सेज सँवारि कै, साजि पलँग बिछावा हो॥ २॥
लगन लार लै से मिली, पिय रीझ रिझावा हो।
सुरति सुहागिनि साजि कै, पिय से लिपटावा हो॥ ३॥
तुलसी तरंग रँग राह की, कछु कहत न आवा हो।
पति परचे पिउ पास की, जाना जिन गावा हो॥ ४॥

अर्थ–सतुरु ने सुरति तथा निरति दोनों को सत्गुरु ने अपने नेत्रों के सामने रखकर दिखाया है और तभी उनके द्वारा अत्यन्त ऊंचाई पर स्थित प्रियतम के मार्ग को प्राप्त किया है। यह नहीं सुरति रूपी जहाज पर बैठकर मैं गुरु कृपा से ही अपने मूल निवास पर आ गया हूँ॥ १॥

सुन्दरी श्रृंगार सजा करके अपने घर चल पड़ी और अपने प्रियतम को अपना लिया। अपने आवास पर फूलों की शय्या सँवार कर तथा पलँग सजाकर बिछा दिया है॥ २॥

प्रिय के प्रति आत्मीयता एवं संसक्ति लेकर मैं मिली और उसको दिखाया तो वह मुझ पर प्रेम से अनुरक्त हो उठी और सुरति द्वारा सौभाग्यवती स्वयं को सज्जित करके प्रियतम को लिपटा लिया॥ ३॥

तुलसी साहब कहते हैं कि इस आत्ममयी आनन्द के राह पर चलती हुई मैं आनन्दित हूँ, मुझसे अब कुछ कहते नहीं बन रहा है–पति के पास की इस संसक्ति को जिसने समझा है, उसी ने (सबद के रूप में) गान किया है।

॥ चौपाई ॥

अस अस खुलि खुलि सब्द सुनावै। पंथ भूल के नजर न आवै॥
पंथ राह रस्ते को गाया। तुम पंथी इक जाति बनाया॥
पंथ अगम घर जो चढ़ि जावै। ता को नाम पंथ कहलावै॥

उलट बास संतन ने भाखी। जा की समझ सूर कोइ राखी॥
सुलटी को उलटी कर बूझा। उलटी सुलटी समझ न सूझा॥
अब या को इक सब्द सुनाऊँ। उलटि सुलटि वोहि माहिं दिखाऊँ॥

अर्थ–पंथ को भूलकर जो इस प्रकार खुल-खुल कर सब्द को सुनाता हो, अन्य बातें उसकी दृष्टि में नहीं आती हैं, (वही साधु है।)। तुम पंथियों ने एक जाति (समूह) बना लिया जबकि पंथ शब्द का अर्थ मार्ग या रास्ता है। पंथ अगम्य है, जो उस पर चढ़ जाए, उसी का नाम पंथ है। सन्तों ने अनेक उल्टवासियाँ कहीं हैं–जिसकी समझ को किसी अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न साधु ने बताई है। जो समझ में आ जाती है, उसे उल्टी कहकर कहते हो–और उल्टी कही गई सुलझी हुई बातों की न तुम्हें समझ है न जानकारी। इससे सम्बन्धित अब मैं एक 'सबद' सुना रहा हूँ और उल्टी तथा सुलझी हुई बातों की उसी में समझा रहा हूँ।

॥ रेखता ॥

अली इक बात सुन सुलटी। बिना समझें लगै उलटी॥ १॥
कही सब संत ने बोली। गूढ़मत गुप्त नहिं खोली॥ २॥
सुरति मन बुद्धि नहिं जावै। लखन में कौन बिधि आवै॥ ३॥
अरी नहिं बेद न जाना। कहत करि नेत गोहराना॥ ४॥
जुगत जोगी नहीं जानी। ज्ञान नहिं ध्यान बिज्ञानी॥ ५॥
जगत और भेष ना जानै। पढ़े पंडित भरमाने॥ ६॥
सकल तिरलोक लौ लावैं। निरंजन जोति ठहरावैं॥ ७॥
अगम घर राह नहिं सूझै। संत गति कौन बिधि बूझै॥ ८॥
अस्त रबि होय अँधियारा। हिये तम रूप में सारा॥ ९॥
मिलै गुरु गैल बतलावै। तिमर तन बीच सै जावै॥ १०॥
लखै तब संत के बैना। सुरति सुरमा खुलै नैना॥ ११॥
तरक ताली खुलै ताला। निरखि तहँ होत उजियाला॥ १२॥
अधर घर सुरति चढ़ि धावै। अगम गति गूढ़ तब पावै॥ १३॥
सुरति जब उलट कर बूझा। उलट की सुलट कर सूझा॥ १४॥
तुलसी तन बीच में हेरा। सुरति मन बुद्धि को फेरा॥ १५॥
कहन कछु और बिधि राखै। उलट की सुलट कर भाखै॥ १६॥

अर्थ–हे सखी! मेरी एक सुलझी हुई बात सुनों, और बिना समझे हुए वह बात उल्टी (उलटवासी) लगेगी। सारे सन्तों ने भी यही कहा है, और इसके द्वारा उन्होंने अपने गुप्त मत का रहस्योद्‌घाटन किया है।। १-२॥

सुरति तो मन और बुद्धि से नहीं समझी जा सकती:तब बताएँ, उसको लक्षित करने की कौन-विधि लाई जाए॥ ३॥

हे सखी! इसे वेद भी नहीं जानता और वह उसे नेति (न + इति) ऐसा नहीं है–कहकर बताता है।। ४॥

उसकी युक्ति को योगी भी नहीं जानते–विज्ञानी के ज्ञान तथा ध्यान की वह बस्तु नहीं है॥ ५॥

उसे संसार और भेष रचना भी नहीं जानते–पंडित उसे पढ़ते रहते हैं, किन्तु भ्रम से आक्रान्त रहते हैं॥ ६॥

सम्पूर्ण संसार उसी में लगा रहता है–और उसे निरंजन और ज्योति के नाम से पुकारते रहते हैं॥ ७॥

अगम के घर की राह बिना उसका ज्ञान नहीं सूझाता। उसे संत जन किस बिधि द्वारा जानते हैं, यह कोई नहीं जानता॥ ८॥

सूर्यास्त होने पर अँधेरा हो उठता है–और यह अँधेरा तो अज्ञान रूप में निरन्तर भरा पड़ा रहता है॥ ९॥

गुरु मिलने पर वे उस मार्ग के विषय में बतलाते रहते हैं। उसे उनके ज्ञान करा देने पर सारा अन्धकार हृदय के बीच से भाग जाता है॥ १०॥

जब सन्तों की दृष्टि से उसे देखने की चेष्टा करोगे तो सुरति रूपी सुरमें से नेत्र खुल जाएँगे॥ ११॥

तर्क की चाभी से ताला खुल जाएगा और उसे जैसे ही देखोगे उजाला ही उजाला दिखाई पड़ेगा॥ १२॥

अन्तस्तल में प्रवेश करते ही सुरति पर चढ़कर दौड़ेंगे और तब उस अगम्य की रहस्य भरी गति का ज्ञान होगा॥ १३॥

उस सुरति को उलट कर जब समझोगे तो उलझी हुई उलटी बातें सुलझी हुई प्रतीत होंगी॥ १४॥

मन और बुद्धि से सुरति का पक्ष उलटा है और उस सुरति को शरीर के बीच ही खोजो॥ १५॥

कथन को कुछ अन्य बिधियों से जानने की चेष्टा करो और तभी उल्टवासी को सुलझा कर कहोगे।। १६॥

॥ चौपाई॥

संत गती गति उलटी रीती। तुम्हरी बुधि जग बिदित अनीती॥
चेला करि परिवार चलाई। संत मता कहौ कस कस पाई॥
बीजक टेक माहिं तुम भूला। संतन का मत अगम अतूला॥
बिन सतगुरु कोइ भेद न पाया। सब्द गाइ सब जनम गँवाया॥
गान पढ़न बूझन से न्यारा। संत भेद मत अगम अपारा॥
जब लग पंथ पकड़ नहिं छूटै। बुधि मतिहीन पकड़ि जम लूटै॥
जो कबीर मति भाखि पुकारा। बिन सतगुरु नहिं बूझ बिचारा॥
पाइ महंती भेद न जाना। उन सतगुरु मति नहिं पहिचाना॥
जिनसे बूझ समझ कहि पाई। पढ़ि बीजक सब जनम गँवाई॥

अर्थ–सन्तों की गति की रीति उल्टी है और तुम्हारी बुद्धि तो संसार में प्रसिद्ध अनीति से सम्बद्ध है। तुम चेला बनाकर परिवार चलाते हो तो बताओ, सन्त की समझ को तुम कैसे प्राप्त करोगे। तुम बीजक के टेक और राग के गाने में मस्त रहते हो किन्तु सन्तों का मत अगम तथा अतुलनीय है। बिना सतगुरु कोई उस परम तत्त्व के रहस्य को समझ नहीं पाया है और 'सब्द' को गा गाकर सारा जन्म नष्ट कर बैठे।

'सबद' का गायन उसके पढ़ने तथा समझने से अलग है और सन्तों का रहस्य तो अगम्य एवं अपार है। जब तक पंथ की पकड़ छूट नहीं जाती–उस ना समझ बुद्धि को यमराज पकड़ कर लूटते रहते हैं। यदि कबीर साहब के मत द्वारा इसे कहकर समझाया जाए तो बिना सतुगुरु के वह तत्त्व न समझा जाता है और न बिचारा जा सकता है। महन्ती पाकर मठ के महन्त उस अगम तत्त्व के रहस्य को नहीं जानते और वे सत्गुरु के मत को नहीं पहचानते, जिनसे वे न तो ज्ञान पाते हैं और न समझ और बीजक पढ़ पढ़कर वे सारा जन्म नष्ट कर देते हैं॥

॥ सोरठा ॥

बिन सतगुरु उपदेश, सुर नर मुनि नहिं निस्तरे।
ब्रह्मा बिस्नु महेस, और सबन की को गिनै॥

अर्थ–बिना सत्गुरु उपदेश के देवता, मनुष्य एवं मुनिगण किसी का भी निस्तार नहीं है–यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उसी श्रेणी में आते हैं–और अन्यों की कौन गणना करे।

॥ चौपाई ॥

सतगुरु सत्त पुरुष अबिनासी। सत्त लोक पद परम निवासी।।
सूरति चढ़ि पहुँचै उन पासी। सो सूरति सतगुरु की दासी॥
जब होइ जीव निकरि निरवारा। नहिं जब बूड़ै भौजल धारा॥
स्रवन लाइ सुन गुपाल गुसाईं। ये कबीर मति अस बिधि गाई॥

अर्थ–सत्सगुरु सत्यपुरुष दोनों अविनाशी हैं और दोनों सत्यलोक के श्रेष्ठतम स्थान के निवासी हैं। सुरति पर चढ़कर उनके पास जो पहुंचता है, वह सुरति सद्गुरु की राखी है। जीव जब इस भवसागर से निकल कर निवृत्त होती है और तब वह इस भवसागर की जलधारा में में नहीं डूबती है। हे गुपाल गोस्वामी। कान लगाकर इसे सुन लो:इस ज्ञान का गान कबीरदास ने इस प्रकार किया है।

॥ सोरठा ॥

बूझै समझ बिचार, ये ब्रतंत भिनि भिनि कह्यौ।
बीजक मति निरबार, भाव भक्ति हा भेद सब॥

अर्थ–इससे समझ बूझकर जानो, ये ज्ञान के वृत्तान्त भिन्न-भिन्न रूपों में कहे गए हैं–भाव भक्ति के ये सारे भेद हैं–किन्तु इन सबका निर्धारण करने वाला बीजक का ही ज्ञान है।

॥ चौपाई ॥

अब आगे बरतंत सुनाऊँ। संत पंथ मति राह लखाऊँ॥
जस कबीर ने पंथ चलाया। सूरति पंथ अगम घर पाया॥
सो घर बिधि बरति सुनाऊं। संत पंथ मति राह लखाऊँ॥
अब याकी बततंत बताऊँ। गगन गुमठ धधकार सुनाऊँ॥
नित प्रति उठै महल झनकारा। निरखा तलसी बस्तु अपारा॥

अर्थ–मैं अब आगे का वृत्तान्त पुग सुना रहा हूँ, संतों के पंथ का मार्ग भी इसी के साथ दिखा रहा हूँ। जिस प्रकार से कबीरदास जी ने अपना पंथ चलाया था और सुरति के मार्ग द्वारा अगम्य का घर प्राप्त किया था। उस घर का वर्णन मैं विधिपूर्वक सुनता हूँ और संतों के पंथ का मार्ग भी दिखा

रहा हूँ। अब मैं इसका वृत्तान्त बता रहा हूँ और आकाश के आश्रम (गुमठ) में उठने वाली ध्वनि की धंधकार को भी सुना रहा हूँ। नित्य प्रति उस अगम्य पुरुष के महल में ध्वनि झंकार उठती रहती है और इस अनन्त वस्तु को तुलसी ने अपने अनुभव से स्वयं देखा है।

॥ दोहा ॥

ढोल ढोल धधकार की, मंदर उठै अवाज।
तुलसी सतगुरु संत से पाई वस्तु अपार॥

अर्थ–उस मंदिर में ढोल की धधकार की अवाज उठती रहती है। तुलसी साहब कहते हैं कि संत तथा सत्गुरु से इस अनन्त तत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है।

॥ रेखता ॥

ढुलना सुनौ धधकारी। महलौं उठै झनकारी॥ १ ॥
लागी लगन अली मन को। लहरैं उठीं चलीं बन को॥ २ ॥
देखा पंथ सब झारी। ढूँढ़ा जग भेष भिखारी॥ ३ ॥
कहूँ न निसाँ दिलदारी। खोजै पिया पिउ प्यारी॥ ४ ॥
सभी सतगुरु संत बतावैं। कहूँ सतसँग से लखि पावैं॥ ५ ॥
बूझा सुना धुनि धुनि बानी। कोइ भाखै न भेद बखानी॥ ६ ॥
अली अस अस बैस बितावा। कहूं खोजत खोज न पावा॥ ७ ॥
कंजा गुरु गैल लखाई। धुनि सुनि संत सुरति लखाई॥ ८ ॥
तुलसी तन तपन बुझाई। सुनि स्त्रुति अपने घर आई॥ ९ ॥
सिंधा बुन्द समुँद समाना। लखि सूरति सब्द ठिकाना॥ १० ॥

अर्थ–ढोल की धधकार भरी ध्वनि को सुनें, उससे शून्य सारा महल झनकारकर उठा है। हे सखी मन को उसे सुनने की लगन लगती है ध्वनि की लहरें उठीं और वह बनकी ओर चल पड़ी॥ १-२॥

उसके सारे पंथों को देख डाला, संसार में भेष बदले भिखारियों में भी खोजा, किन्तु उसके दिलदार की कहीं भी निशानी नहीं मिल रही है, वह प्यारी प्रियतमा अपने प्रियतम को खोज रही है॥ ३-४॥

सभी सत्गुरु संत बता रहे हैं कि कभी वह हीं सत्संगति से ही दिखाई पड़ेगा–सारे लोगों ने उसकी वाणी तथा ध्वनि को सुना किन्तु कोई भी उसके रहस्य को नहीं बता पा रहा है॥ ५-६॥

हे सखी! इस प्रकार उस अगम्य प्रियतम की खोज में सारी उम्र बिता दी और उसकी खोज करते हुए कहीं भी नहीं प्राप्त कर पायी। कंजा गुरु ने मार्ग दिखाया। उस ध्वनि को सुनकर सन्तों ने सुरति को दिखा दी। उसे देखकर, प्राप्त करते ही शरीर की तपन बुझ गई और उस सुरति को सुनकर मैं अपने घर आ गई। बुंद-समुद्र में समा कर सिंधु हो गयी और सुरति सबद के अपने ठिकाने को देखकर बुंद-सिन्धु में समाकर समुद्र बन गई॥

॥ चौपाई ॥

कहै तुलसी सुन गुपाल गुसाईं। सब्द भैद सब साखि बताई॥
अस अस बैस बीति गई सारी। खोजत खोजत जनम सिहारी॥
कंज गुरू सोइ गैल लखाई। धुनि सुनि सुरति द्वार पर छाई॥

तब तन मन की तपन बुझानी। सब्द सुरति सब्द मिली सहदानी॥
सिंध बुन्द जब मिला ठिकाना। सब्द सुरति लखि अगम बखाना॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे गुपाल गोस्वामी। सुनें, मैंने सबद भेद के बताने के लिए सारी साखियाँ सुना दीं। इस-इस प्रकार से सारी उम्र बीत गई और खोजते-सोचते सारा जन्म समाप्त हो उठा। कंज गुरु ने ही वह मार्ग दिखाया है और ध्वनि सुनकर सुरति ज्ञान के द्वार पर पहुँची है। तन-मन की पीड़ा समाप्त हो उठी–सब्द और सुरति के मिलाप में सब्द भेंट के रूप में जिह्वा मिला है।

॥ सोरठा ॥

हिये पिय लखन लखाउ, गगन गुमठ दरसत लखा।
सागर सुरति छुड़ाय, करम कलस कुत फूटि सब॥

अर्थ–आकाश रूपी आश्रम को दीप्त होते हुए मैंने देखा है और हृदय के अन्तर्गत प्रियतम का लक्षण दिखाई पड़ा है। सागर रूपी सुरति के सम्पर्क में आते ही सम्पूर्ण कर्मों का सारा का सारा घड़ा टूट-फूट गया॥

॥ चौपाई ॥

जब हिये में पिय कौ लखि पावा। गगन गुमठ सोइ अगम दिखावा॥
ये तन बीच हिये के माहीं। बस्तु अगोचर संत लखाई॥
जिन जिन घट में सुरति समाई। सों पहुँचे सतगुरु सरनाई॥

अर्थ–जब हृदय में प्रियतम को देख पाया तो फिर उस शून्याकाश के आश्रम में वही अगम्य दिखाई पड़ा। वह इसी शरीर के बीच हृदय में है–उस अगोचर तत्त्व संत को ही दिखाई पड़ता है। जिन-जिन व्यक्तियों के घट में सुरति का प्रवेश हुआ वे सब सतगुरु की शरण में पहुँच गए॥

॥ रेखता ॥

हिये में पिय लखि पावा। गगन गुमठ दरसावा॥ १॥
स्याह रँग सुरति से छूटा। कलसा करम का फूटा॥ २॥
सुन की धुनि दरसानी। पौरी पिया पहिचानी॥ ३॥
सुन में सब्द लखि पावा। मन से सुरति दौड़ावा॥ ४॥
फूला कँवल दल माहीं। सुरति सब्द में धाई॥ ५॥
नाली निरखि नभ द्वारा। देखा ब्रह्मंड पसारा॥ ६॥
गुरु से गली लखि पाई। प्यारी पिया घर जाई॥ ७॥
बेनी बिबिध बिधि देखा। भाखा अगम का लेखा॥ ८॥
बूझै कोइ संत बिचारी। निरखा जिन नैन निहारी॥ ९॥
तुलसी चरन का चेरा। पायन रज कीन्ह निवेरा॥ १०॥

अर्थ–हृदय में प्रियतम को देख लिया, यह शून्याकाश रूपी आश्रम में भी दिखाई पड़ा। सुरति से उसका श्याम (स्याह) रंग छूट गया और कर्म का कलश भी फूट गया।॥ १-२॥

शून्याकाश की ध्वनि दिखाई पड़ी और पौरी में प्रियतम को पहचान लिया। 'सब्द' सुनकर मैं उसे देख सका और यह सुरति मन में ही दौड़ पड़ी। सुरति एवं सब्द के मिल कर कमल दल में फूट पड़े॥ आकाश द्वारा की नाली के द्वारा मैं उस अनन्त ब्रह्मांड को देखा॥ ३-६॥

गुरु द्वारा इस गली को देखकर अपने प्रियतम के घर पहुँच गई और वहाँ अनेक प्रकार की त्रिवेणियाँ देखीं और वहाँ के अनुभव द्वारा ही मैंने अगम्य तत्त्व का वर्णन किया है॥ ७-८॥

जिन्होंने अपनी आँखों से देख लिया है, ऐसा ही कोई संत विचारपूर्वक उसे समझ सकता है। तुलसी तो ऐसे सन्तों के चरण के दास हैं और उनकी चरण में धूलि में ही अपना सारा जीवन व्यतीत किया है॥ ९-१०॥

॥ सोरठा॥

संत चरन रज धूर, सूर सुरति सगरी करी।
भरी गगन के माहिं, गुमठ गगन चढ़ि लखि परी॥

अर्थ–विलक्षण साधु जन निरन्तर सन्तों की चरण रज धूलि में ही निरन्तर सुरति करते हैं। शून्याकाश के बीच ऐसे अनेक आश्रम पीठ है और वहाँ चढ़ने के बाद हीवे दिखाई पड़ते हैं।

॥ दोहा॥

सब्द सहर हेरा नहीं, किया न सतगुरु खोज॥
बीजक मति सँग पचि मुए, पढ़ पढ़ मनमत भौंज॥

अर्थ–सबद रूपी नगर में खोजा नहीं और वहाँ सत्गुरु की खोज नहीं की तो अपनी मौज में मन्मत्त (छककर डूबे) बीजक को पढ़-पढ़कर उसके साथ समय व्यतीत करते-करते मृत्यु को प्राप्त हो गए।

॥ चौपाई॥

गुपल गुसाईं खोज न कीन्हा। सब्द भेद का सार न चीन्हा॥
बुधि मति हीन सूझ नहिं आई। गावत गावत जनम बिताई॥

अर्थ–हे गुपल गोसाई आप लोगों ने उस मूल संदर्भ की न खोज की और 'शब्द' तत्त्व के मूल तत्त्व को पहचाना ही। आप लोग बुद्धि से ज्ञान हीन हैं, और कोई बात विवेक में नहीं धँसती और यह 'सबद' गाते गाते जीवन व्यतीत कर दिया।

॥ गुपाल गुसाईं। चौपाई॥

स्वामी तुलसी सरनि तुम्हारी। संत चरन पर तन मन बारी॥
स्वामी चरन सरन में लीजै। दास जानि मोरा कारज कीजै॥
मैं मति अंध नैन मति हीना। अब तौ तुलसी चरन यकीना॥

अर्थ–हे स्वामी तुलसी साहब! मैं आपकी शरण में हूँ और आप जैस सन्त के चरणों पर मैं अपना शरीर और मन निछावर करता हूँ। हे स्वामी! मुझे अब चरणों की शरण में ले लें और अपना सेवक समझ कर मेरा कार्य करें। मैं बुद्धि और ज्ञान से अंधा तथा नेत्रविहीन हूँ। हे तुलसी साहब! अब मुझे आपके चरणों पर पूरा विश्वास है।

॥ तुलसी साहिब। चौपाई॥

सुनि लीजै अब गुपल गुसाईं। बिन सतसंगति कोऊ न पाई॥
सूरति सब्द समझ घट माहीं। पूछौ सोइ सतगुरु से राही॥
सब्द गुरू सूरति जब पावै। चढ़ि चढ़ि गगन गुमठ पर आवै॥

अर्थ–हे गुपाल गुसाईं, अब इसे सुन लें। बिना सत्संगति के किसी ने भी उस परम तत्त्व को नहीं प्राप्त किया है। सुरति तथा शब्द को शरीर के भीतर ही समझें और हे राही! उस बात को सतगुरु से ही पूछो, अन्य से नहीं। सब्द गुरु द्वारा जब सुरति को साधु प्राप्त करता है तो वह चढ़-चढ़कर शून्याकाश के आश्रम पीठ पर आता जाता है।

गगना गुमठ फोड़ि असमाना। सूरति चढ़ि सब्दा गुरु जाना॥
सार सब्द गुरु सुरति समानी। असकबीर गुरु सिष्य पिछानी॥
गुरुसिष भयाअगम गम चेला। सो साधू सतगुरु का चेला॥

अर्थ–शून्याकाश रूपी आश्रमपीठ को तोड़कर साधु सुरति द्वारा आगे चढ़कर 'सबद' रूपी गुरु को जानता है। 'सबद' का सार तत्त्व गुरु है–जो सुरति में ही समाविष्ट है, इस प्रकार से कबीर दास जी ने गुरु-शिष्य की पहचान बताई है। गुरु तथा शिष्य दोनों मिलकर अगम्य सत्यपुरुष के शिष्य बन जाते हैं और वही साधु ही सत्गुरु का शिष्य है।

॥ सोरठा ॥

गुपल गुसाईं धाइ, पाँय पकरि करि सिर दियौ।
हिया उमँगि जल धार, नैन नीर टप टप चुवै॥

अर्थ–गुपाल गुसाईं दौड़े और तुलसी साहब के पाँवों को पकड़ कर उस पर अपना सिर रख दिया। हृदय में जल की धारा उमंगित हो उठी और उनके नेत्रों में टप-टप करके अश्रु बिन्दुएँ गिरने लगीं।

॥ चौपाई ॥

तुलसी बोध ताहि का कीन्हा। समझ बूझ मारग को लीन्हा॥

अर्थ–तुलसी ने उन गुपाल गुसाईं को आल तत्त्व का बोध कराया और उसे समझकर और उसका आत्म ज्ञान करके वे अपने मठ को चल पड़े॥

भेद राम और रामायन का जो तुलसी साहिब ने अपने सिष्य हिरदे से कहा

॥ चौपाई ॥

हिरदे पंथ भेष सब बूड़ा। संत मते को लखै अगूढ़ा॥
वेद मता सब कासी माहीं। बूड़े जा में भेष भुलाई॥
रामायनि घटि बूझिन जानी। सब जग पंडित भेष न मानी॥
घट मठ में रामायनि गाई। काधी कदर भेष नहि पाई॥
सुनि सुनि के सब अचरज कीन्हा। बुधि मत हीन न काहू चीन्हा॥
परमहंस संन्यासी जोगी। ब्रह्म चारि जग बिष रस भोगी॥
भेष पंथ मति सगरे झारी। अस बिधि कासी पुरी पुकारी॥
कासी नगर सोर भया भारी। जग पंडित सब कहै नकारी॥
हिरदे घट रामायनि माहीं। निंदा की बिधि नाहिं सुनाई॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि–हे हिरदै! सभी पंथ और भेष में डूबे हुए हैं और गूढ़ सन्त मत को कौन देखे! समस्त वेद मठ काशी में हैं–उसमें वे नष्ट हो चुके हैं–जो भेष में डूब गए हैं। घट

रामायण उनकी समझ में नहीं आता और मैं उन पंडितों की बात कर रहा हूँ जो संसार में केवल भेष को ही नहीं मानते। घाटों और मठों में रामायण गाते हैं और उन्हें कभी भी किसी भी प्रकार का भेष नहीं प्राप्त हुआ है। सुन-सुनकर सभी ने आश्चर्य किया–सभी बुद्धि और मति के हीन थे, घट रामायण को ये समझ नहीं पाये। परमहंस, सन्यासी, योगी विषय रस का भोग करने वाले तथा कथित ब्रह्मचारी–ये सारे के सारे भेष और पंथ में फँसे दिखाई पड़े–इनसे भरी हुई काशी इस प्रकार नगरी के रूप में पुकारी जाती थी। इस काशी नगरी में इस बात का शोर हो उठा कि एक पंडित सारे संसार को नकार कर अध्यात्म की चर्चा कर रहा है। हे हिरदे! तुमने सुना है, मैंने घट रामायण के अन्तर्गत निन्दा की चर्चा नहीं की है।

॥ सोरठा ॥

तुलसी सत मति मूल, जग अबूझ भूला फिरै।
सहै करम कृत सूल, सत अतूल गति ना लखै॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि सत्यमत संसार का मूल तत्त्व है, किन्तु ये नासमझ संसार भ्रमित होकर घूम रहा है। अपने कर्मों से उत्पन्न कष्टों को वह झेलता है किंतु सत्य की अतुलनीय समझ को नहीं देख पाता॥

॥ चौपाई ॥

सत मति संत राह गति गाई। पुनि काहू परतीत न आई॥
अब कहूँ भाखि सो सुन संबादा। घट में अंड ब्रह्मंड अगाधा॥
घट में रावन राम जो लेखा। भरत सत्रगुन दसरथ पेखा॥
सीता लखन कौसल्या माहीं। मंथरा केकई सकल रहाई॥
इंद्रजीत मंदोदरि भाई। रावन कुम्भकरन घट माहीं॥
सारा जगत पिंड ब्रह्मंडा। पाँच तत्त रचना कर अंडा॥
जिन जिन घट अंदर में चीन्हा। सोइ सोइ साधू करैं यकीना॥
या से अगम अगम येहि माहीं। निरखा देख नजर से आई॥
नाम अनेक अनेकन कहिया। घट रामायन में दरसइया॥
घट रामायन अगम पसारा। पिंड ब्रह्मंड लखा बिधिसारा॥
नाम अनेक अनेकन कहिया। सो सब घट भीतर दरसइया॥
अगम निगम और अकथ कहानी। तुलसी भाखी अगम निसानी॥
घट रामायन ग्रंथ बनाई। साखी सब्द अगम बिधि गाई॥
कही बिलावल जैजैवंती। कोइ कोइ बूझि अगम गति संती॥

अर्थ–सन्तों ने सत्य ज्ञान के मार्ग का कथन किया है किन्तु किसी को इस पर विश्वास नहीं होता। अब मैं उस संवाद को स्पष्ट करके कहता हूँ कि इसी शरीर के अन्तर्गत अनन्त पिण्ड (अंड) और ब्रह्मांड समाहित हैं। इसी घट के अन्तर्गत रावण-राम हैं, भरत, शत्रुघ्न और दशरथ भी यहीं दिखाई पड़ते हैं। इसी घट में सीता, लक्ष्मण तथा कौसल्या हैं, मंथरा और कैकेई सहित सभी रामकथा के पात्र यहीं हैं। इन्द्रजीत, मंदोदरी तथा रावण का भाई कुंभकर्ण इसी घट में ही है। सारा संसार इसी पिंड रूपी ब्रह्मांड में स्थित है और ये पांचों तत्त्व इस पिंड की रचना करते हैं। जिन-जिन संतों ने इस शरीर के

अन्तर्गत उन्हें पहचाना है, वे साधु ही इस पर विश्वास करते हैं। इसी में अगम्य तत्त्व है और निगम तत्त्व भी इसी में वर्तमान है और मैंने तो भलीभाँति निरीक्षण किया है और मुझे दिखाई भी पड़ा है। इसके अनेकानेक नाम कहे गए हैं और मैंने सब इस घट रामायण में दिखाया है। इस घट रामायण में अगम्य तत्त्व की व्याप्ति है और सारे ब्रह्मांड को इसी पिंड में देखा है। अगम, निगम और अकथनीय तत्त्व की कथा, इस घट रामायण के अन्तर्गत उसकी निशानी बनाकर कही है ताकि उसकी पहचान हो सके। इस घट रामायण की मैंने रचना की है और साखी तथा सबद द्वारा उस अगम्य तत्त्व के स्वरूप का गान किया है। इस बात को मैं विलावल शुभ में जै जैवन्ती राग द्वारा कह रहा हूँ—कोई भी सन्त उस अगाम्य ब्रह्म के प्रति कहे गए संदर्भों को समझ सकता है।

॥ जैजैवंती ॥

ए री घट माहिं तो रामायन गाई, ग्रन्थन बनाइ कै॥ टेक॥
तुलसी सब भाखि सुनाई, घट रामायन बिधि गाई।
पिंड पिंड ब्रह्मंड दिखावा, तुलसी लौ लाइ कै॥ १॥
दृग देखा पिंड ब्रह्मंडा, निरखा सात दीप नौ खंडा।
अंडा तत पाँच बनाया, काया धसि जाइ कै॥ २॥
तीन लोक घट माहीं, पुनि चौथे जाइ समाई।
परे ताके रहत अनामी, स्वामी निरताइ कै॥ ३॥
सुरति दृग दीप उड़ानी, लीला गिर जाय समानी।
सुन्न सेत सब्द सुहाना, पुनि आई धाइ कै॥ ४॥
हिये हिरदे नैन खुलाना, जहँ निरखा पुरुष पुराना।
वह सुन्न न सब्द न बोला, खोला द्वार पाइ कै॥ ५॥

अर्थ—मैंने ग्रंथ की रचना करके उसके माध्यम से घट में स्थित रामायण का गान किया है।

तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने विधिपूर्वक घट रामायण का गान करते हुए सब कुछ सुनाया है। तुलसी साहब कहते हैं कि पूरी निष्ठापूर्वक पिंड-पिंड में ब्रह्मांड दिखाया है॥ १॥

मैंने स्वयं ही आँखों से पिंड में ब्रह्मांड देखा है। सात-द्वीप एवं नवों खण्डों को निरखा भी है और इसे भी अनुभव किया है—काया में प्रवेश करके पाँचों तत्त्वों ने इस शरीर की रचना की है॥ २॥

इसी शरीर में तीनों लोक हैं और चित्त इसके बाद चौथे लोक में जाकर प्रवेश करता है। उसके परे अनामी स्वामी संसार से निरत होकर निवास करते हैं॥ ३॥

अन्तर्दृष्टि द्वारा सुरति उस द्वीप तक उड़ पड़ी और जाकर वह लीला गिरि में समाविष्ट हो उठी। शून्याकाश में वह सुन्दर शब्द सुनाई पड़ा और वह दौड़कर चली आई॥ ४॥

हृदय के अन्तर्नेत्र खुल गए और वहाँ उस पुराण पुरुष का दर्शन किया—वहाँ न शून्य है, न सबद है न बोल है और मुझे देखकर उस परमतत्त्व ने द्वार खोल दिया॥ ५॥

मिला प्रीतम पुरुष पुराना, अगमन अज घर हम जाना।
स्यामा भइ गति मति मोरी, बुन्दा सिंध पाइ कै॥ ६॥
तुलसी संतन प्रति पाई, येहि अगम राह दरसाई।
लिया अजर अगमपुर धामा, ता में रही छाइ कै॥ ७॥

कहूँ अब सतसंगति गाई, भइ कासी नगर मँझाई।
कासी काया भाखि बखानी, बिधि बिधि दरसाइ कै॥ ८॥
हिरदे अहीर बघाना, हिरदे में हेर समाना।
गुनुवाँ मन गुन सँग खेला, ता को कही गाइ कै॥ ९॥
नैनू पंडित नैन कहाये, ता में स्यामा स्याम समाये।
जहँ माना मन लै बैठा, पंडित पिंड आइ कै॥ १०॥
कर्मा करि करि कर्म कहाये, धर्मा सब धर्म चलाये।
करिया पतरी लै जाना, भाखूँ समझाइ कै॥ ११॥

अर्थ–वह मेरा प्रियतम पुराण पुरुष मुझे मिला और हमने गमनागमन शून्य (जन्ममृत्यु शून्य) तथा अविनाशी अपना आवास समझा। उस बिन्दु के समावेश से निर्मित सिन्धु को पाकर मेरी गति प्रियतमा (श्यामा) जैसी हो उठी॥ ६॥

तुलसी साहब कहते हैं कि यह सन्तों का प्राप्तव्य है, यहीं से अगम्य की राह दिखलाई पड़ती है– मैंने अपनी निवास स्थली न नष्ट होने वाले अगम्य के नगर में किया और वहाँ आकर तथा उसमें छाकर निवसित हो उठी॥ ७॥

जो काशी नगरी में सत्संगति हुई है, उसको कह रहा हूँ। मैंने काशी के रूप का वर्णन विविध रूपों में दिखाकर बताया है।। ८॥

मैंने हिरदै अहीर के बारे में बताया। इस हृदय में अनक बातें छिपी हैं। मैंने उसके पुत्र गुनुवाँ के गुणों के साथ क्रीड़ा की तथा उसको गाकर सुनाया॥ ९॥

नैनू पंडित नैन कहे जाते हैं, उन्हीं में स्यामा पंडित श्याम रूप में समाये हुए हैं–जहाँ माना पंडित मन लेकर बैठे दिखाई पड़े–इस प्रकार, ते तीनों पण्डित समूह बनकर यहाँ आ बैठे थे॥ १०॥

कर्मा ने अनेक यत्नों से कर्मों को चलाया था, धर्मा ने धर्म की बातें खूब कीं–करिया को उनकी पुतली द्वारा ही समझो–इन सबके विषय में मैं समझाकर कह रहा हूँ॥ ११॥

तकी तकि तकि नैन निहारा, सैनू सैनै सुरति सँवारा॥
रहे मन इत रेवतीदासा, या कौ कही गाइ कै॥ १२॥
फूलदास फूल गयौ कँवला, जहँ दूर दल पर सम्हला।
प्रिय प्रीति सुरति चढ़ि आई, येही प्रियेलाल कै॥ १३॥
चढ़ि गई गगन के माहों, परदा तीनों फोड़ि समाई।
पद चौथे जाई निहारा, कंजा में गुरु पाइ कै॥ १४॥
गइ चौथे पद पर ताकी, राहो सुन्नी सुन्नन बाँकी।
तुलसी मति कीन्ही दीना, संतन गति गइ कै॥ १५॥
सम्मत सोलासै अट्ठारा, घट रामायन लिखि सारा॥
सूरति घट घट में देखा, लेखा पद जाइ कै॥ १६॥
कासी में चौल उड़ाई, तब हमने गुप्त छिपाई।

जानै कोइ सतसँग बासी, नहिं कासी भाखियै॥ १७॥
हिरदे जाने जाति अहीरा, घट रामायन वोहि तीरा।
कोइ संत मत मन का आवा, जा की कही गाई कै॥ १८॥
तुलसी तत तोल बताई, पुनि कहि कहि भाखि सुनाई।
घट रामायन बूझै, सूझै तिहँ लोक में॥ १९॥

अर्थ—तकी के नेत्रों को मैंने ताक-ताक कर देखा, सैनू की नेत्र भंगिमाओं द्वारा मैंने सुरति सँवार दी—यहीं मन लगाकर रेवतीदास ने निवास किया—इसको भी मैंने गाकर सुनाया है॥ १२॥

फूलदास कमल फूल की भाँति खिल गए और उन्होंने सूर्य द्वारा प्रेरित दल पर अपने को सम्हाला और जिसकी प्रिय के प्रति अर्पित प्रीति सुरति पर चढ़ गई हो, उन्हीं का नाम प्रियेलाल है॥ १३॥

तीनों परदों को तोड़कर जो आकाश में चढ़कर उस चतुर्थ पद में प्रविष्ट होकर देखा, वह गुरुत्व मैंने कंजागुरु में देखा॥ १४॥

जिसकी चेतना चौथे पद पर समाविष्ट हो उठी और जिसने विलक्षण शून्य के मार्ग पर गमन किया तुलसी ने सन्तों का मार्ग बताकर उनके चेतना को सन्तों जैसी बना दिया। १५॥

संवत् सोलह सौ अट्ठारह में, सम्पूर्ण घट रामायण को लिखकर—मैंने उस परम तत्त्व को प्राप्त करके प्रत्येक व्यक्ति के घट में मैंने सुरति के दर्शन किये॥ १६॥

काशी नगरी में जब इसकी हँसी उड़ाई जाने लगी तो मैंने इस घट रामायण को गुप्त करके छिपा दिया। इसे कोई सत्संग करने वाला व्यक्ति ही जान सकेगा (अतः उसके अभाव में) तय किया कि इसे काशी में न कहिए॥ १७॥

अहीर जाति का हिरदे (नामधारी व्यक्ति) ही इसे जानता है कि घट रामायण उस तट पर है—यदि कोई उसके मन माफिक सन्त आ गया तो उसने उसे गाकर सुनाया॥ १८॥

तुलसी साहब कहते है कि मैंने घट रामायण के महत्त्व तथा मूल्य को समझाया, बार-बार उसे कहकर सुनाया है, जो घट रामायण समझेगा, उसे तीनों लोकों का मूल तत्त्व समझ में आ सकेगा॥

॥ सोरठा॥

घट रामायन सार, सोलह सै अठरा कही।
सही भई नहिं सार, लार निकट कासी बसै॥

अर्थ—इस आत्मज्ञान के सार तत्त्व-रूप घट रामायण को मैंने सोलह सौ अट्ठारह में कहा था किन्तु काशी के निकट रहने की मेरी आत्मिक संसक्ति के कारण इसका मूल परमार्थ तत्त्व ठीक-ठीक नहीं समझा गया॥

॥ चौपाई॥

सोलहसैं अठरा के माही। घट रामायन कीन्ह बनाई॥
सम्मत सोलह सै अट्ठारा। घट रामायन साज सँवारा॥
पिरथम घट रामायन गाई। कासी सुनि सब अचरज लाई॥
तुलसी नाम इक साध गुसाईं। ग्रंथ कीन्ह इक भाखि बनाई॥
ता में बेद कितेब न राखा। दस औतार कछू नहिं भाखा॥

अर्थ–सोरह सै अट्ठारह के बीच घट रामायण की रचना थी। संवत् सोलह सौ अट्ठारह में घट रामायण के साज को सँवारा (पूरी तरह से पूर्ण करके बनाया)। जब प्रथम बार घट रामायण का गान किया था तो काशी के अन्तर्गत सभी आश्चर्य में पड़े। लोगों ने कहना शुरू किया कि तुलसी नाम के एक गुसाई साधु हैं–एक ग्रन्थ की उन्होंने वर्णन करके रचना की–उसके अन्तर्गत वेद और कितेब दोनों की रक्षा नहीं की और (विष्णु के) दशावतारों के विषय में कोई भी चर्चा नहीं की है।

तीरथ बरत एक नहिं मानै। वो कहै और और परमानै॥
पंडित हिरदे से भयौ झगरा। और भेष जब कासी सगरा॥
तब तुलसी मन कियौ बिचारा। घट रामायन गुप्त करि डारा॥
जग के माहिं चलन नहिं पाई। जग बिरोध नित झगरा लाई॥
ये जग भवसागर की धारा। संत मता भवसागर पारा॥
सत सत मति संतन ने गाया। पुनि काहू की दृष्टि न आया॥
अगम निगम और आदि अनादा। समझै सुनि बूझै कोइ साधा॥
काहू चित धर चेतन कीन्हा। ता से सतगुरु भेद न दीन्हा॥
जग विरोध देखा जब जानी। सात कांड रामायन बखानी॥
घट रामायन संत कोइ चीन्हा। समझै संत होइ लौ लीना॥
रावन राम कीन्ह संबादा। तब कासी में चली अगाधा॥
तुलसी मता कोइ नहिं चीन्हा। गुप्त भेद सब जग से कीन्हा॥
ये भौसागर जगत असारा। तुलसी मता मते की लारा॥
जग में बस्तु कोइ नहिं चीन्हा। जा से ग्रन्थ गुप्त कर दीन्हा॥
जिन कोइ संत मते को चीन्हा। बूझै सोई होइ लौ लीना॥

अर्थ–वे तीर्थ एवं व्रतादि में से किसी एक भी नहीं मानते और आध्यात्मिकता के विषय कुछ और प्रमाण रखते हैं। पंडितों एवं हिरदै अहीर से झगड़ा हुआ जबकि काशी में अन्य भेष रचना वाले लोग अत्यधिक थे। इस प्रकरण को देखकर तुलसी साहब ने मन ही मन विचार किया और घट रामायण को छिपाकर गुप्त (गोपनीय) बना दिया। संसार में उसका विरोध होता रहा और रोज उसके झगड़े होते रहे और उस समय काशी नगर में वह प्रचलन में नहीं आ सका। यह संसार तो भवसागर की धारा है जबकि संत मत भवसागर से मुक्ति दिलाता है। संतों ने तो सत्यमति का बार-बार गान किया है किन्तु यह किसी की दृष्टि में नहीं आता। अगम्य को, निगम तत्त्व को और उस आदि तथा अनादि तत्त्व को–कोई समझता है–और समझने वाले में से कोई ही जानता है–सभी नहीं। किसी ने भी चित्त लगाकर उसकी समझ नहीं की इसीलिए सत्गुरु ने उसका रहस्य भी नहीं समझाया॥

संसार में घट रामायण का जब विरोध देखा तो बात समझ में आई और तब मैंने सात कांडों से युक्त रामायण कहा। घट रामायण को तो कोई विरला सन्त ही पहचानता है और समझने के बाद सन्त उसमें तन्मयीभूत हो उठता है। रावण और राम ने जब संवाद किया तब काशी में उसकी अत्यधिक चर्चा चली। तुलसी साहब के घट रामायण के मत को कोई भी नहीं पहचानता था–इसलिए उसके रहस्य को संसार के लिए मैंने गुप्त बना दिया। यह असार संसार भवसागर है–तुलसी साहब का मत तो समझने के बाद ही अपनी ओर आसक्त करता है। यह संसार की रीति है कि उपयोगी वस्तु की पहचान कोई नहीं करना चाहता–इसलिए अपनी घट रामायण को मैंने गुप्त कर दिया। जिन किसी ने भी संतमत की पहचान कर ली है–वही उसे समझकर उसमें तन्मय ही उठेगा॥

॥ सोरठा ॥

कासी नगर मँझार, भरम भाव सगरे भयौ।
घट रामायन लार, ये निकाम कासी बसै॥ १॥
राम चरित्र बनाय, जगत मूल भ्रम ताहि में।
इष्ट भाव ब्रत मान, समझाया समझै नहीं॥ २॥
जासु बनी है बात, देखन बिधि बिधि यों कहीं।
लही जो तुलसी दास, संत चरन रज धरि धरि॥ ३॥
हिरदै जानै बात, तुलसी तत मन लखि कही।
लई अपनपौ आई, जाइ सुरति सब्दै मिली॥ ४॥
सतसँग करौ हजार, बिना संत अंतै नहीं।
भेष पंथ में नाहिं, ये अतंत रस अगम है।। ५॥
मैं संतन कर दास, लखि हुलास अद्‌भुद कह्यौ।
लह्यौ अमर पद बास, यों अकास अंबर गह्यौ॥ ६॥
सुरति निरति सँवारि, सार पार पद निरखि कै।
बूझै बूझनहार, ये अगार अंदर कही॥ ७॥
मैं संतन की लार, सत सँवार सूरति दई।
गई सेत के पार, सत सतगुरु में मिलि रही॥ ८॥
सतस्रुति महल अगार, फारि आठ अटकी नहीं।
सटकी सिंध मँझार, पदम कंज निरखत रही॥ ९॥
अलल पच्छ इमि बास, सजि अकास आगे गई।
लही अमरपुर बास स्वाँस भास जहँ गम नहीं॥ १०॥

अर्थ–काशी नगर के बीच सभी को भ्रम का भाव उत्पन्न हुआ, जिनकी संसक्ति घट रामायण में है,वे तो काशी में निरर्थक निवास, करते हैं॥ १॥

मैंने राम चरित्र की रचना की और सारे संसार के मूल भ्रमों का निराकरण उसमें वर्तमान है। मैंने इष्टभाव के आधार को मानकर उसे समझाया है, किन्तु उसे इस तरह से लोग समझते नहीं हैं॥ २॥

जिनके विषय में मैंने बात लिखी है, उनको समझाने (देखने) के लिए मैंने इस-इस प्रकार की बातें कहीं हैं–सन्तों के चरणों की धूलि को बार-बार धारण करके जो तुलसीदास ने प्राप्त की है इसी बात को मैंने यहाँ कहा है॥ ३॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने उनके मन को समझकर ये बातें कहीं हैं, इस बात को हिरदै भलीभाँति जानता है। उसने आकर आत्मतत्त्व को प्राप्त किया और अन्त में, जाकर सुरति-सब्द उससे मिल उठी॥ ४॥

हजार बार सत्संगति की किन्तु बिना सन्त प्राप्ति के उस सत्संगी का कोई फल नहीं है–भेष और पंथ में कुछ नहीं है–अनन्त तत्त्व रूप उस पुरुष का सन्दर्भ भिन्न है॥ ५॥

वह तो सन्तों का दास है। साथ अत्यन्त उत्साहपूर्वक अद्‌भुतबाणी कही है और उनकी कृपा से ही उस अमर पद के निवास को प्राप्त किया है–जिसको आकाश ने स्थित कर रखा है॥ ६॥

सुरति तथा निरति को सँवारकर और परमार्थ के निचोड़ तत्त्व को देख करके मैंने इस पिंड में निहित ज्ञान तत्त्व की चर्चा की है, इसे कोई समझने वाला ही समझेगा॥ ७॥

मैं तो सन्तों के प्रति संसक्त हूँ और उनको देखकर अपनी उमंग के रूप में इस अद्‌भुत परमार्थ तत्त्व की चर्चा की है। वह मेरी चेतना उस सेतु के पार जा चुकी है, और वहाँ जाकर सत्गुरु में मिल चुकी है॥ ८॥

सत्य पुरुष की सुरति का महल आगे है और वह अठ चक्रों को तोड़कर कहीं भी रुक नहीं पाई। वह वहाँ पहुँच कर उस सिन्धु में स्वयं जा घुसी और उन अगम पुरुष के कमल चरणों को देखती रही॥

अलल पक्षी की भाँति उसका (आकाश में) निवास है, किन्तु वह तो सजकर और भी आगे जा पड़ी–उसने तो अमरपुर में निवास स्थिर कर लिया, जहाँ श्वास के आभास की भी चिन्ता नहीं है॥ १०॥

तुलसी साहिब के पूर्व जन्म का हाल।

॥ दोहा॥

तुलसी कहत बताई, अपनी उत्पत्ति मति बिधी।
सुधि सतसंगति लार, जग जबसे तन में सिधी॥

अर्थ–तुलसीदास स्वयं अपनी बुद्धि द्वारा अपनी उत्पत्ति कहते हुए बता रहे हैं–इस संसार में उन्हें जबसे सिद्धि मिली–उनकी यादें सत्संगति में ही संसक्त रही (और शायद इसीलिए उन्हें याद भी है)॥

॥ चौपाई॥

अब अपनी बिधि कहाँ बिसेखा। तुलसी कीच नीच कर लेखा॥
मैं अति अधम अचेत अबूझा। संत चरन कछु मोहि को सूझा॥
मैं तो अजान जानिजित जाई। संतन कीन्ह जानि सरनाई॥
मैं तो अचेत चेत चित नाहीं। संत चिताई लीन्ह अपनाई॥
मैं पुनि संत सरन सम नाहीं। संत दयाल दया के साईं॥
तुलसी मत बुद्धि नहिं बिबेका। संत चरन चित बाँधी टेका॥
मैं अब अपनी आदि बताओ। अपनी बिथा आदि गति गाओ॥
जग ब्यौहार जगत जगराही। तन उपजा बिधि कहौं बुझाई॥
राजापुर जमुना के तीरा। जहँ तुलसी का भया सरीरा॥
बिधि बुन्देलखंड वोहि देसा। चित्रकोट बीच दस कोसां॥

अर्थ–मैं तो अपने तरीके से उस विशेष को बताया है किन्तु यह जीवन परिचय निकृष्ट कीचड़ के हिसाब-किताब की भाँति है। मैं तो अत्यन्त अधम, ना समझ एवं न जानने वाला व्यक्ति रहा हूँ किन्तु सन्तों के चरणों के समीप रहते-रहते मुझे कुछ सुझाई पड़ गया। मैं तो अत्यन्त अज्ञानी था, कुछ जानता भी नहीं था और सन्तों को सब कुछ समझकर उनकी शरणागति प्राप्त की। मैं तो एकदम पूरी तरह से ना समझ था और चित्त में भी किसी प्रकार की समझ नहीं थी किन्तु सन्तों ने ज्ञानमार्ग दिखाकर मुझे अपना लिया। यद्यपि मैं उस समय सन्तों के चरणों के लायक भी नहीं था किन्तु सन्तगण तो दयालु एवं दया के स्वामी होते हैं। उस समय इस तुलसी में न मति थी, न बुद्धि थी और न विवेक था किन्तु मैंने सन्तों के चरणों में चित्त लगाकर टेक (दृढ़ता) बाँध रखी थी।

मैं अब अपनी आदि स्थिति का वर्णन कर रहा हूँ और मैं अपनी कथा के आदि स्वरूप को बता रहा हूँ। सांसारिक व्यवहार तो संसार के अन्तर्गत (जन्म मृत्यु रूप में) इसी प्रकार चला करता है, इसके पूर्व मेरा जो शरीर उत्पन्न हुआ था–उसकी स्थिति को समझाकर बता रहा हूँ।

यमुना के तट पर स्थित राजापुर गाँव में जहाँ इस तुलसी का पूर्व शरीरजन्मा था। वह प्रदेश बुंदेलखण्ड में है और वह चित्रकूट के बीच दस कोस दूर है।

संबत पंद्रसै नावासी। भादौं सुदी मंगल एकादसी॥
भया जनम सोइ कहौ बुझाई। बाल बुद्धि सुधि बुधि दरसाई॥
तिरिया बरत भाव मन राता। बिधि बिधि रीति चिंत्त सँग साथा॥
ज्ञान हीन रस रँग संग माता। कान्ह कुब्ज बाम्हन मोरी जाता॥
जगत भाव ऊँचा सब भाँते। कुल अभिमान मान मतमाते॥
मोटा मन कछु चीन्ह अचीन्हा। ज्ञान मते मत रहौ मलीना॥
एक बिधी चित रहौं सम्हारे। मिलै कोइ संत फिरौं तेहि लारे॥
संत साथ मोहि नीका भावै। ज्ञान अज्ञान एक नहिं आवै॥
अब आगे का सुनौ बिधाना। ता की बिधी कहौं परमाना॥
सबत सोलासै थे चौधा। तादिन भया अगम का सौदा॥

अर्थ–संवत् 1589, भाद्रपद मास, शुक्ल पक्ष, मंगलवार एकादशी को मेरा जन्म हुआ था, मैं उसे समझाकर कह रहा हूं। मेरी बाल बुद्धि और (मुझे अपने जीवन की) सुधि बुद्धि दिखाई पड़ती है। पत्नी में अनुरक्त भाव था और मेरा मन उसी में लगा था और नाना प्रकार की रीतियों द्वारा मेरा चित्त उसी के संग और साथ लगा था। मैं ज्ञानहीन था, उसी के रस और रंग (केलि क्रीड़ा) में मेरा मन अनुरक्त था और मेरी जाति कान्यकुब्ज ब्राह्मण की थी। मेरा लोकभाव सब प्रकार से ऊँचा था तथा अपने परिवार के मान तथा अभिमान में मनमस्त रहता था। मन नासमझ (मोटा) था कुछ समझता था और कुछ नहीं समझता था और ज्ञान मत की दृष्टि से मैं अत्यधिक मलिन था (इसके बावजूद भी) मैं अपने चित्त के एक प्रकार से सम्महाले रहता था यदि कोई सन्त मिल जाता था तो उसके साथ आसक्तिपूर्वक उसके साथ रहा करता था। सन्तों के साथ मुझे अच्छा लगता था और वहाँ ज्ञान तथा अज्ञान दोनों में से एक भी नहीं उत्पन्न होता था। अब इसके बाद की स्थिति के विषय में सुनें और उसकी स्थिति का मैं प्रमाण कह रहा हूँ। संवत् १६१४ के दिन मेरा, उस परम अगम तत्त्व से मोल भाव हुआ।

सावन सुदी नौमी तिथि बारी। आधी राति भई गति न्यारी॥
बिजुली चमक भई उँजियारी। कड़का घोर सोर अति भारी॥
मन में बहु बिधि भर्म समाया। यह अजगुत कहौ कहँ से आया॥
राति बीति गई भयउ बिहाना। मन अचरज सौइ कहौं बिधाना॥
पुनि प्रतिरोज रोज अस होई। एक दिवस सुरति चढ़ि जोई॥
नील सिखर गुरुद्वारे माहीं। निरखा अचरज कहा न जाई॥
कहँ लगि कहौं बिधी बिधि डंडा। पुनि सब निरखि परा ब्रह्मंडा॥

गंगा जमुना और त्रिबेनी। कँवल माहिं सतगुरु की सैनी॥
पद्म प्रयाग अगमपुर बासा। सतगुरु कंज सुरति पद पासा॥
तीनि लोक भीतर सब देखा। कहौ कहाँ लगि बिधि बिधिलेखा॥
जो ब्रह्मंड भरा जग माईं। सो देखा भव घट में जाई॥
नित नित सैल सुरति संग लेखा। निरखा अगम निगम अस सैला॥

अर्थ–श्रावण शुक्ल पक्ष नवमी तिथि तथा सम्बद्ध दिन की आधी रात को मेरी ज्ञान की गति विलक्षण हो उठी। बिजली की चमक से उजाला हो उठा और अत्यन्त घोर ध्वनि से उच्च शब्दों में शोर हो उठा। मेरे मन में अनेक प्रकार के रहस्य समा गए और (मुझे समझ में नहीं आया कि) यह अनायास स्थिति कहाँ से आ पड़ी। रात्रि व्यतीत हो उठी, सबेरा हुआ मन में आश्चर्य था, मैं अब उस स्थिति के विषय में कह रहा हूँ। पुन: इसी प्रकार दिन-प्रतिदिन घटित होने लगा और एक दिन तो सुरति पद चढ़कर देख लिया। उस गुरुद्वारे पर स्थित नील शिखर पर मैंने अभूतपूर्व तत्त्व को देखा और उस आश्चर्य का वर्णन करते नहीं बनता। उन विधियों की विविध विधियों के रूपों (दण्डों) का कहाँ तक वर्णन करूँ और तब मुझे सम्पूर्ण ब्रह्मांड दिखाई पड़ा। मैंने गंगा-यमुना और त्रिवेणी देखी तथा कमल के बीच में सतुरुओं की श्रेणी दिखाई पड़ी। कमल प्रयाग में अमरपुर का निवास दिखाई पड़ा और सुरति के पास सतगुरु का चरण कमल दिखाई पड़ा। तीनों लोकों के भीतर मैंने सारे तत्त्वों को देखा और मैं कहाँ तक उस विधि के लेखे का वर्णन करूँ। जो भरा हुआ, ब्रह्मांड इस संसार में है, वह सब मैंने उस शरीर के भीतर जाकर देखा। नित्य प्रति मैंने सुरति के साथ का अनुभव लिया और मैंने निगम तथा अगम के उस पर्वत शिखर को समझ लिया।

कस कस कहौं अगम बिधि नाना। एक दिवस चढ़ि अगम ठिकाना॥
वहँ की सैल चौज कछु भारी। अंड खंड ब्रह्मंड से न्यारी॥
अस अस देख अगम तमासा। चौथा पद सतलोक निवासा॥
वे संत सतगुरु भेंटे जाई। सूरति सत्तनाम रही छाई॥
तीनि लोक से चौथा न्यारा। तहँ गइ सूरति सतगुरु पारा॥
नितनित सैल कोई दिन कीन्हा। चौथा पद जहँ सतगुरु लीन्हा॥
एक दिवस भइ ऐसी रीती। सूरति चढ़ि रस आगे पीती॥
पिंड ब्रह्मंड दोऊ से न्यारी। उतरै चढ़ै चढ़ै नित चारी॥
चौथे पद से न्यारा धामा। सतगुरु पद के पार अनामा॥
तुलसी प्रीति सुरति की लागी। राति दिवस सोवै नहिं जागी॥
कहँ लगि ब्यान कहौं गति गाई। तुलसी मोसे कही न जाई॥

अर्थ–मैं किस-किस प्रकार से उस अगम तत्त्व की नाना विधियों का वर्णन करूँ। मैं इस प्रकार, एक दिन अगम तत्त्व के ठिकने पर चढ़ गया। वहाँ का आनन्द और वहाँ की यात्रा कुछ भिन्न थीं और वह अंड, खंड एवं ब्रह्मांड से विलक्षण थी। ऐसा-ऐसा मैंने उस अगम तत्त्व का तमाशा देखा और चौथे स्थान पर सत्यलोक है–यह भी देखा। वे सन्त तथा सतगुरु जाकर वहाँ भेंट करते हैं और वहाँ सुरति और सत्यनाम दोनों साथ रहते हैं। यह चौथा लोक तीन लोकों से विलक्षण है और वहाँ सुरति सतुरु के उस पार चली गई। नित्य प्रति या किसी-किसी दिन मैंने वहाँ बिहार किया। यह वह स्थान है, जिसे चौथा पद कहा जाता है, और जिसे सतुरु ने ले रखा है (अपना निवास बना रखा है)। एक

दिन कुछ ऐसा घटित हुआ कि सुरति रस पीती हुई आगे चली। यह पिंड तथा ब्रह्मांड दोनों से विलक्षण थी और वहाँ वे नित्य प्रति चित्त को चढ़ाते तथा उतारते रहे। यह स्थान चौथे पद से भी विलक्षण है, और यह स्थल सतगुरु की निवास स्थली के उस पार आगे तथा अनाम है। तुलसीदास की नीति सुरति में लग गई–वे सोते नहीं थे और रात-दिन वे जगते ही रहते थे। इस गति का वर्णन कहाँ तक करूँ–तुलसी साहब कहते हैं कि यह दशा मुझसे कही नहीं जाती॥

जो सब बिधि मैं कहौं सुनाई। तौ जग कागद मिलै न स्याही॥
ये बिधि देखा सकल बिधाना। अब कहौं सुनौ और बिधि नाना॥
कंज गुरू ने राह बताई। देह गुरू से कछु नहिं पाई॥
अब आगे बिधि सुनौ बिधाना। ताकी बिधी कहौं परमाना॥
ऐसे कइ दिन बीति सिराने। राजापुरी जगत सब जाने॥
लोक दरस को नित नित आवै। दरस भाव सबको उपजावै॥
नर नारी सब आवैं झारी। दरसन करैं सिपारस भारी॥
हिरदे अहीर कासी का बासी। रहै राजापुर नौकर पासी॥
वोहु प्रति दिन दरसन को आवै। प्रीति बड़ी हित कहा न जावै॥
राति दिवस दिन दिन रहै पासा। तुलसी बिना और नहिं आसा॥
एक दिवस भइ ऐसी रीती। काशी गये बहुत दिन बीती॥
हमरा चित हिरदे में बासी। हम चलि गये नग्र जहाँ कासी॥
संबत सोलासै रहे पन्द्रा। चैत मास बारस तिथि मगरा॥
पहुँचे कासी नगर मँझाई। हिरदे सुनत दौड़ि चलि आई॥

अर्थ–जो इसे मैं सब तरह से सुनाकर कहूँ–तो संसार में न कागज मिले और न स्याही प्राप्त होगी। मुझे कंज गुरु ने यह मार्ग बताया था। देह के पोषण करने वाले गुरु ने मुझे कह दिया यह कहीं नहीं लिखा था। अब आगे के संसार का विधान सुनें, और उस विधि का प्रमाण मैं कहता हूँ। इसी प्रकार, कई दिन बीतकर समाप्त हुए और इस स्थिति को राजापुर के सारे लोग जान गए। लोग दर्शन के निमित्त प्रतिदिन आते थे और उनके मन में मेरे प्रति बड़ी प्रीति थी–जिसका वर्णन किया नहीं जा सकता। सारे नर नारी यहाँ आते थे–दर्शन भी करते थे और मनौती एवं कामनाओं के लिए सिफारिश भी करते थे काशी के रहने वाले हिरदै अहीर राजापुर के पास ही किसी के नौकर थे। वे भी प्रतिदिन दर्शन के निमित्त आते थे–उनके मन में अत्यन्त प्रीति और मेरे प्रति हितैषिता थी–जिसका वर्णन किया नहीं जा सकता। दिन दिन भर और रात-रात भर मेरे पास रहते थे–उनके लिए तुलसी के अतिरिक्त और कोई आशा नहीं थी। एक बार कुछ ऐसा हुआ कि उसे काशी गए बहुत दिन बीत गए थे। मेरा चित्त हिरदै में लगा रहता था और मैं चलकर काशी नगरी पहुँचा। यह काल संवत् १६१५ था–चैत का महीना, द्वादशी तिथि में मंगलवार था। मैं काशी नगरी में पहुँचा और इसे सुनते ही हिरदै अहीर दौड़कर मेरे पास आया।

आये चरन लीन्ह परसादी। बिधि बिधि रहन कुटी की साधी॥
कुटी बनाय कीन्ह अस्थाना। कासी में हम रहे निदाना॥
गंगा निकट कुटी जहँ कीन्हा। हिरदै नित आवै लौलीना॥

सतसंग रंग राह रस पीना। हम पुनि बस्तु अगम की.दीन्हा॥
अस अस कुछ दिन कासी माईं। रहे तहाँ पुनि सहज सुभाई॥
सोलासै सोला में सोई। कातिक बदी पंचमी होई॥
आये पलकराम इक संती। रहे कासी में नानक पंथी॥
गुष्टि भाव बिधि उनसे कीन्हा। खुसी भये मारग को लीन्हा॥
घट रामायन ग्रन्थ बनावा। ताकी बिधि दिवस सब गावा॥
सम्मत सोलासै अट्ठारा। उठी मौज ग्रन्थ कियौ सारा॥
भादौं सुदी मंगल एकादसी। आरंभ कियो प्रथम मन भासी॥
सुनि कासी में अचरज कीन्हा। सोर नगर में भयो अलीना॥

अर्थ–वह आया, चरण छुआ तथा प्रसादी ली और मुझे विधिपूर्वक रहने के लिए एक कुटी बना दी। कुटी बनाकर उसने स्थान निश्चित कर दिया और इस प्रकार हम काशी में रहना प्रारम्भ किया। गंगा नदी के निकट जहाँ कुटी बनाई थी, वहाँ प्रतिदिन मुझमें अनुरक्त वह आया करता था। सत्संगति में रंग कर उसने आध्यात्मिक मार्ग तथा आनन्द में अनुरक्त होना शुरू हुआ और हमने भी उसे अगम्य की वस्तु उसे प्रदान की। इस प्रकार, कुछ दिनों तक मैं सहजभाव से मैं काशी में रहा। संवत् १६१६ में जिस दिन कार्तिक कृष्ण पक्ष पंचमी थी, एक पलकराम संत आए–जो काशी के नानक पंथी साधु थे। मैंने उनसे गुष्टि भाव किया वे आनन्दित हुए और अपने पंथ से मुझे जोड़ लिया। मैंने उसके बाद घट-रामायण की रचना की और उसकी साधना बिधि का दिन में गान करता रहा। संवत् १६१८ में मन उमंगित हुआ और मैंने इस ग्रंथ को पूरा किया। भाद्रपद, मंगलवार, तिथि एकादशी, सर्वप्रथम बार उसके विषय में जैसा मुझे अनुभव हुआ, कहना शुरू किया। उसे सुनकर, काशी के लोगों ने बड़ा आश्चर्य किया। सम्पूर्ण नगर भर में निरर्थक शोर मच उठा।

पंडित जग्त जैन अरु तुरका। भयौं झगरा आइ कासीपुर का॥
पंडित भेष जग्त मिलि सारा। घट रामायन परी पुकारा॥
जो कुल झगरा रीति जस भाँती। जस जस भया दिवस अरुराती॥
ता से ग्रंथ गुप्त हम कीन्हा। घट रामायन चलन न दीन्हा॥
या से संत मते की रीती। जग्त अजान न जानै प्रीती॥
सम्मत सोलासै इकतीसा। राम चरित्र कीन्ह पद ईसा॥
ईस कर्म औतारी भावा। कर्म भाव सब जगहि सुनावा॥
जग में झगरा जाना भाई। रावन राम चरित्र बनाई॥
पंडित भेष जग्त सब झारी। रामायन सुनि भये सुखारी॥
अंधा अंधे बिधि समझावा। घट रामायन गुप्त करावा॥
अब कहौं अंत समय अस्थाना। देह तजी बिधि कहौं बिधाना॥

अर्थ–पण्डितजन, जैन, तुर्क आदि के बीच काशी नगरी के लोगों में झगड़ा शुरू हो उठा। विविध भेषधारी सारे पंडितों ने घट रामायण के विरुद्ध शोर करना शुरू किया। सारा झगड़ा, जिस तरह से और जिस प्रकार से दिन और रात-रात भर चलता रहा–उसे देखकर, मैंने इस घट रामायण को गुप्त

कर रखा और इस घट रामायण को प्रचलन में नहीं आने दिया। यह इसलिए किया कि संतमत की यह रीति है कि अज्ञानी जन संसार में प्रीति नहीं जानते। मैंने पुनः, संवत् १६३१ में ईश्वर में पदों की अनुरक्ति के निमित्त 'रामचरित' की रचना की। ईश्वरीय कर्म तथा अवतारी भाव और उससे कर्म भाव को जोड़कर सारे संसार को सुनाया। रावण एवं राम के चरित्र की रचना के द्वारा सांसारिक युद्धों को, हे भाई समझो। सारे संसार के समस्त भेष रचना वाले पंडितगण रामायण सुनकर सुखी हो उठे। अंधों को मैंने अंधी विधि द्वारा ही समझाया और मैंने घट रामायण को गुप्त करा दिया। अब मैं, अंत समय (मृत्यु समय) के स्थान का वर्णन करता हूँ, मैंने विधि के विधान के अनुसार देह का त्याग किया।

॥ दोहा ॥

सम्मत सोलासै असी, नदी बरुन के तीर॥
सावन सुकला सत्तमी, तुलसी तज्यो सरीर॥

अर्थ–वरुणा नदी के तट पर, सोलह सौ असी, श्रावण मास, शुक्ल पक्ष, सत्तमी के दिन इस पूर्वजन्म के तुलसी ने अपने शरीर का त्याग किया था।

॥ चौपाई ॥

मैं अपना बरतंत बताई। समझ बूझ सुध बुध चित लाई॥
जस जस भया बिधि बिधि लेखा। तस तस तुलसी कहा बिसेखा॥

अर्थ–समझ बूझ, बुद्धि एवं चित्त लगाकर मैंने अपना बृत्तान्त बताया है जैसी जैसी परिस्थितियों के कारण बातें आईं–उसी उसी प्रकार ने उन बातों को तुलसीदास ने कहा है।

॥ दोहा ॥

तुलसी नीच निकाम, गति मति उतपति सब सुधी॥
निधि स्रुति संत समान, आदि अंत तुलसी बिधी॥

अर्थ–अपनी ज्ञानगति, मति, उत्पत्ति एवं समस्त स्मृतियों के आधार पर यह तुलसी ने बताई वह तो स्वयं में पतित, नीच एवं निष्काम है–उसके लिए सुरति (श्रुति) एवं सन्त निधि के समान हैं–यही तुलसी के आदि (जन्म) एवं अन्त (मृत्यु) की दशा (स्थिति) है।

सँत मत भेद बरनन

॥ छन्द ॥

सरनि सूर संता सो लीला अनंता। कृपा कीन्ह कंथा दयालं कृपालं।
मिटे दुक्ख दुन्दा कटेकाल फंदा। फटे भौ निखंदा न दुन्दंन फदं।
दया सत जानी सो कहँ लौं बखानी। मता मूल मानी नकरमं न भरमं।
गुरू दीन्ह संधा भयानीच बंदा। जुतुलसी निखंदा सुबोधप्रबोधं।

अर्थ–जो ज्ञानी सन्तों की शरण में जाते हैं, उनकी लीला अनन्त है: उसके ऊपर परम दयालु एवं कृपालु सन्त ने कृपा की। उसके दुःख द्वन्द्व समाप्त हो उठे और काल के फंदे कट गए–भवसागर के भौतिक प्रपंच फट गए और अब उसके लिए द्वन्द्व न हैं, न बन्धन है। सन्तों के दयाभाव को मैं जानता हूँ, मैं उसका कहाँ तक वर्णन करूँ–जो सन्तों के मत के मूल तत्त्व को मान लेता है, उसके लिए न

कर्म है, न भ्रम है। गुरु ने कृपा दृष्टि दी और यह नीच बंदनीय हो उठा–तुलसी ने जैसी कृपा दृष्टि दी और यह नीच बंदनीय हो उठा–तुलसी जैसा निखद (सब भाँति से गुणहीन और दुर्बुद्ध) सन्त कृपा से सब भाँति ज्ञानी और पंडित हो उठा।

॥ दोहा ॥

संत सर सम मुक्ति तन, तन मन समझ सिहार।
बूझि बचन मन मूल को, सबहि सूल मिटि जाय॥ १ ॥
पकरि पदर धरि संत पद, जद्यपि सुरति बिचार॥
लार लगन लागी रहैं, तब उतरै भौं पार॥ २ ॥

अर्थ–सन्तों की शरणागति के साथ-साथ मन मुक्त हो उठता है और शरीर तथा मन को भी उसी प्रकार बन्धनहीन समझें। उनके बचनों से मन के अन्तर्गत निहित सारे कष्ट स्वयं मिट जाते हैं॥ १॥

उनके चरणों के चिह्नों को पकड़कर तथा चरणों को ग्रहण करके तुम सुरति में बिहार करो-फिर भी उनके चरणों में संसक्ति लगी रहे और तभी इस भवसागर से पार उतर सकते हो॥ २॥

॥ छन्द ॥

लखौ संतस्वामी पकौ पंथनामी। अचिंतं अनामी न ठामं न धामं।
करौ प्रेम प्रीती सरन सूर सुरती। धरौ पद्म प्रीत न नीत अनीतं।
धरैं धीर चरना हरै पीर सरना। भगै भूमि भरमं न जनमं न मरनं।
गुरू सब्द सारा निकरि सिंध पारा। धसी अगम धारा नियारं सुपारं।
चली सारसंगी लगीलार चंगी। तनी तार तंगी उमंगै उलंघी॥
लखौ लोक न्यारी पकौ प्रेम प्यारी। अधर में निहारी नरगं न रूपं॥
गहै सूर साधू सो भाखैं अगाधं। न सावन न भादूँ न नीरं न पीरं॥
बना बेनि घाटा लखी चीन्ह बाटा। सखी संग ठाटा बिराटं बिधानं।
लखी सुर्ति सैला चखी चौज लेखा। तका तुलसी तालं कटा भर्मजालं।

अर्थ–मैं सन्त स्वामी को देखता हुआ अपने पंथ मे परिपक्व हो रहा हूँ, मेरा आराध्य अचिन्त्य है, अनाम है, न उसका कोई न स्थान है, न घर है। उसकी शरण में मैं सुरति द्वारा स्थित हूँ और मैं उसके प्रति निरन्तर प्रेम और प्रीतिमय बना हुआ हूँ। धैर्यपूर्वक मैं विश्वास के साथ अपने मत पर चरण रखता चला जा रहा हूँ और मैं उन आराध्य की शरणों में पड़ा हूँ। इस पृथ्वी लोक से मेरा भ्रम भगा जा रहा हूँ और अब मन्य-मरण से भी मुक्त हूँ। गुरु के समस्त 'सब्द' द्वारा ही इस सिन्धु से पार हो उठा हूँ–मेरी चेतना अगम की धारा में धँस चुकी है और वह सुन्दर सिन्धु तट के पार नजदीक आ रहा है।

सारतत्त्व मेरे साथ चल पड़ा है और मेरी संसक्ति भी उसी तरह ठीक-ठाक है और उससे सम्बद्ध सूक्ष्म चेतना सूत्र तन गए हैं और मेरी उमंग मर्यादा को नाथने ने लिए तैयार है॥

उस विलक्षण लोक को मैं अब देख रहा हूँ और अपने प्रियतम के प्रेम में मैं उनकी प्रिया परिपक्व हो रही हूँ और मैंने अपने प्रियतम को अन्तराल में देख रही हूँ उसका न रंग है और न कोई रूप है। कोई विलक्षण साधु उनको पकड़ पाता है और तब वह अगाध तत्त्व के रूप में उनका वर्णन करता है: न वह सावन मास जैसा न भादों जैसा–उसको न बियोग की पीड़ा है और न उसमें जलवर्षा है। उसने

पास त्रिवेणी सुषुम्ना के संगम की त्रिवेणी बनी हुई है और मैंने उन्हें देखकर उनके रास्ते को जान लिया है और उसके लिए अपनी सखी के साथ सजकर तैयार हूँ। उसका विधान बड़ा ही विराट है। मैंने उसके सुरति शिखर को देख लिया है और उसके मिलन का आनन्द भी चख लिया है–तुलसी साहब ने उस सरोवर को भलीभाँति देख लिया है और उसका समस्त भ्रम नष्ट हो चुका है।

॥ सोरठा ॥

तुलसी संत दयाल, निज निहाल मो कौ कियौ।
लियौ सरन के माहि, जाइ जन्म फिर कर जियौ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि सन्तजन बड़े ही दयालु होते हैं, उन्होंने अपनी कृपा से मुझे कृतकृत्य कर दिया। उन्होंने अपनी शरण में मुझे ग्रहण कर लिया है, सम्पूर्ण लोकजन्म नष्ट हो चुका है और लगता है, अब मुझे नया जन्म प्राप्त हुआ है।

॥ दोहा ॥

भर्म भूल बस जग रहै, सहै जो जन के सूल।
फूल फंदै जग जाल में, बंध न चीन्हा भूल॥ १॥
ये जग जाल कराल है, फंद फंद मुनि बेहाल।
काल चाल चीन्हा नहीं, तुलसी संत कृपाल॥ २॥
मैं मतिमंद निकामता, पता न जानौ भेद।
खेद जन्म की मिटि गई, लई लगन स्रुति लार॥ ३॥
सतगुरु सुरति लखाइया, दिया जो भेद सुनाइ।
पाँय परसि रस रहै गई गगन के माहिं॥ ४॥

अर्थ–व्यक्ति भ्रम एवं भूलवश इस संसार में रहकर लोगों की नाना प्रकार की बातें सुनता है–इस सांसारिक प्रपंच के फंदे में वह फँसा रहकर, उस मूलतत्त्व का बन्ध नहीं पहचाना॥ १॥

इस संसार का बन्धन अत्यन्त भयंकर है और उसके फंदे-फंदे से ज्ञानी जन व्याकुल हैं। इस संसार में काल की गति को कोई पहचानता नहीं–तुलसी साहब कहते हैं कि सन्तजन अत्यन्त कृपालु हैं जो उसकी पहचान करा देते है॥ २॥

मैं मतिमंद हूँ, मुझमें कामनाहीनता है (किसी के काम नहीं आ सकता क्योंकि मुझमें निष्कामता है) और मैं उस अगम्य तत्त्व का न रहस्य जानता हूँ न निवास स्थान ही। लगन तो सुरति में मैंने लगा रखी है, अतः इस भवसागर में जन्म लेने का कष्ट समाप्त हो चुका है॥ ३॥

सतगुरु ने मुझे सुरति शिक्षा दी है और उसका रहस्य भी बता दिया है–मैं तो उनके चरणों का स्पर्श करके आनन्द में निमग्न हो रही हूँ और मेरी चेतना तो अब शून्याकाश में विलीन हो उठी है॥ ४॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी तन मन अगम तमासा। लखै साध कोइ बरनि बिलारा॥
कहि कहि कहौं संत के बैना। सुनि सुनि समझ भया सुख चैना॥
मो मन जानि जमक जस गाई। खाइ खलक सोइ नाहि सुनाई॥
ये जग जोर घोर अंधिकारा। अंधे लगे अंध की लारा॥
संत मता नहिं चीन्हि गँवारा। कस कस लखै पार पद न्यारा॥

नैन न चैन ऐन हिये झाँई। सो कहौ संत अंत कस पाई॥
मैला मन मद माहिं चलावै। साधन संग रंग नहिं भावै॥
मन तरंग तन लहर गड़ानी। भया अंध कहौ कस कस जानी॥

अर्थ–तुलसी तो अब तन और मन से अगम तत्त्व का तमाशा देख रहा है, और कोई साधु ही उसके आनन्द का वर्णन कर सकता है। संत की वाणी हमें कह-कहकर और बार-बार कहकर सुनाओ और उसे सुन-सुनकर मुझे सुख तथा चैन प्राप्त हुआ। मेरे मन के उल्लासको जानकर जमक राग में इस अगम्य के यश का गान किया किन्तु उस स्वर को यह संसार खा गया और वह मुझे नहीं सुनाई पड़ा। वह जग अविद्याग्रस्त एवं प्रचंड रूप से अंधेरा है और यहाँ सभी एक-दूसरे से उसी प्रकार संसक्त हैं, जैसे अंधे की संसक्ति अंधे में हो। इस अन्धे नासमझ संसार ने संत मत को नहीं चीन्हा है और कैसे-कैसे उस पर स्थित अगम्य के स्थान की देख सकता है। तु नेत्र हैं, न शान्ति है और उसका हृदय रूपी घर भी गंदा है, भला, ऐसे अंधे को सन्त कहते हैं, फिर, वह परम तत्त्व उससे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? मद से भरे हुए चित्त में वह मैला मन चलता है–भौतिक साधनों के कारण उसके आध्यात्म ज्ञान में आनन्द नहीं आ रहा है। मन तो तरंगों में और शरीर लहरों डूबा है–वह तो अंधा हो चुका फिर वह उस तत्त्व को कैसे-कैसे समझेगा?

॥ दोहा ॥

मन तरंग थिर न भयौ, गही न सतगुरु टेक।
भेष भरम बस पचि मरे, धर धर जनम अनेक॥

अर्थ–मन भौतिक आनन्द की तरंगों से स्थित नहीं हुआ और सत्गुरु का आश्रय भी नहीं ग्रहण किया–लोग भेष रचना के भ्रम में डूब-डूबकर मर चुके अनेक जन्म धारण कर रहे हैं, उन्हें मुक्ति क्यों कर मिलेगी॥

॥ छन्द ॥

तुलसी तोलबानी सोभाषा बखानी। अली आदि जानं सोछानं बखान
कही आदि जेतीभईभाखतेती। लईसंत सेती जो सूझ सो बूझ।
गुरूगैलगवना लखीलोक भवना। चखी चौज मौजन सोगंन भोगं।
पतीपीरजानी मतीमूलमानी। सतीसूरसानी सोआप मिलापं।
मिलीसिंधसारा जोसलितासिधारा। धसीपैठि धारा जोसिंधंसोबूंद।
असीसुर्त चाली मिलीसच्द्नाली। भई भेंट भालं अकालं न जालं।
तलब तुलसि भारीलगी प्रेमप्यारी। पिया सोसवारं जो नैना निहारं।

अर्थ–तुलसी ने अपनी अध्यात्मवाणी को बहुत समझ बूझकर भाषा में कही है–हे सखी! जिस आदि तत्त्व का ज्ञान है–उसे बता रहा हूँ। उस आदि तत्त्व के विषय में जितना भी कहा गया है–उतने ही प्रकार के उसके सम्बन्ध में कथन हैं। संतों से मैंने उसे प्राप्त किया है और सन्त के बीच–जिन्हें जो सुझाई पड़ा, उसे समझा। इस लोक रूपी भवन में गुरु के गमन का रास्ता है और उन्हीं के द्वारा मैंने आनन्द को चखा हूँ। न मेरे लिए शोक का समय है, न भोग का। मैंने प्रियतम के लिए पीडा को समझा और उसे मन से अपना सब कुछ समझा और सतीत्व भाव से यह ज्ञानधारा उसके प्रति अर्पित हुई और स्वयं ही उससे मिलन हो उठा।

मैं उस सिन्धु सरोवर से उसकी ओर उन्मुख होकर बहती हुई नदी की भाँति मिली और उस सिन्धु की धारा में प्रवेश करके उसी में खो जाई। मुझे वहाँ ज्ञात हुआ कि जो बिन्दुमय है, वही सिन्धुमय भी है।

हे अली! मैं सुरति में प्रविष्ट हुई और उस 'सबद' रूपी नाली में जा मिली, जहाँ उस अगम्य प्रियतम से मेरी भेंट हुई। न वहाँ अकाल है, न माया का जंजाल है। तुलसी साहब कहते हैं कि वहाँ मिलते हैं, मुझे गहरा नशा-सा हुआ और प्रेमभरी संसक्ति में वह अत्यधिक प्रिय लगा तथा आँखे उठाकर देखा तो मेरा प्रियतम वहाँ स्थित था।

॥ दोहा ॥

प्रेम पियारी प्रीति सों, जीति जन्म मन सार।
पार पकरि स्त्रुति सैल कर, भर भर भवन सिधार॥

अर्थ–प्रिय के प्रेम में अनुरक्त मैंने इस जन्म के मन के सार तत्त्व पर विजय प्राप्त कर ली सुरति रूपी शिखर को पकड़ कर मैं उस पार पूरी तरह आनन्दित अपने प्रियतम के अगम्य के घर में पहुँच गई॥

॥ चौपाई ॥

जोइ जोइ भेद भया सोइ भाखा। तुलसी कहन कछु नहिं राखा॥
ये बिधि भया भेद सोइ गाया। तुलसी अगम न भाखि सुनाया॥

अर्थ–जो जो अवस्थाएँ वहाँ घटित हुई मैंने उनका वर्णन किया और किसी को और कहने के लिए शेष भी नहीं रखा। इस प्रकार, जो घटित हुआ, उस रहस्य का मैंने वर्णन किया और मैंने उस अगम्य तत्त्व के विषय में कहकर बता दिया॥

॥ सोरठा ॥

जोइ जोइ बिधि बरतंत, संत समझ मो को दई।
लही जो तुलसी दास, कही कहन घट लखि परी॥ १ ॥
कहि लख लखन लखाव, चाव चौज जस जस भई।
दही दधि माखन भाव, काढ़ि तत्तयेहि बिधि लह्यौ॥ २ ॥
पद परसंग समान, जानि कल्प जुग जुगन की।
पलक पार दरियाव, भाव भेद लखि जिन कही॥ ३ ॥

अर्थ–सन्तों ने समझकर मुझे जो कुछ भी दिया है, उसी को मैं उसी विधि द्वारा वृतान्त के रूप में बताया है। जो कुछ मैंने प्राप्त किया और उनका कहना जो कुछ भी मुझे इस शरीर में दिखाई पड़ा, मैंने उसे कहा है॥ १॥

उस साधना तत्त्व के लक्षणों एवं दृश्यों के सम्पर्क में आने पर मुझसे जिस प्रकार की रुचि और आनन्द तत्त्व प्राप्त हुआ, उसका दही और मक्खन भाव से मैंने मंथन किया और उससे तत्त्वों को निकाल कर इस रूप में प्राप्त किया॥ २॥

युग-युग ने कल्पों की बातें समझ करके कि पद एवं प्रसंग सभी समान रूप में हैं और वह अगम्य लोक पलकों के उस पार ही है, मैंने उनके भावों तथा भेदों को देखकर, उनके विषय में कहा है॥ ३॥

॥ चौपाई ॥

हित चित चेत सेत स्रुतिसारा। संत चरन पर तन मन वारा॥
मोरे बुधि बल बरन बिबेकी। मैं नित लखन संत की देखी॥
कहीं सुनी नहिं निज निज बानी। सब्द बूझ कोइ संत पिछानी॥
मोर तन मन दृष्टि दिखानी। सो सब कृपा संत की जानी॥

अर्थ–सुरत ही मानव के लिए हितैषिता का एकमात्र सेतु है, और सन्तों के चरणों पर मैंने शरीर एवं मन को न्यौछावर कर दिया है। मेरी बुद्धि, बल एवं विवेक का वर्णन मात्र इतना ही है कि मैंने नित्य सन्तों के ही लक्षणों को देखा है। मैंने अपनी वाणी से न कुछ कहा न सुना–सबद को बूझने पर मैंने किसी विलक्षण सन्त की पहचान कर ली। मेरे तन मन में उन सन्तों के प्रति दृष्टि दिखलाई पड़ी और मैंने इसे सन्तों की कृपा को ही समझा है

॥ सोरठा ॥

सन्तन सरन उबार, लार लगन जो कोउ करै।
भरै भवन स्रुति द्वार, पार परसि पारस भये॥
कहि लख लखन लखाव, चाव चौज जस जस मई।
दही दधि माखन भाव, काढ़ि तत्त्येहि बिधि॥

अर्थ–सन्तों की शरण से ही उद्धार सम्भव है, यह तभी सम्भव है, जब कोई उनके प्रति संसक्ति और समर्पण भाव उत्पन्न करे। सुरति द्वार से चलकर वह आगम्य के गृह से परिपूर्ण कर दे क्योंकि उस पार स्थित अगम्य तत्त्व का स्पर्श करके साधक पारस पत्थर की भांति हो उठता है॥

॥ चौपाई ॥

मैं लोहा जड़ कीट समाना। गुरु पारस संग कनक कहाना॥
कंचन भया सोन सुख माना। सो सराफ की तुलै दुकाना॥
पुनि कहना गढ़ि कीन्ह सुनारा। तोड़ मोड़ बहु भाँति सँवारा॥
पुनि पारस नहिं सोन कहाना। सो सोन जुग जुग जिव जाना॥
पारस परसत पारस होई। सत सतगुरु मत भाखा सोई॥
तुलसी सतगुरु पारस कीन्हा। लोहा सुगम अगम लखि लीन्हा॥
लोहा कंचन पारस होई। पारस पद संतन मत सोई॥
करि सतसंग रङ्ग जोइ जाना। जिन वोहि पारस को पहिचाना॥
कर सोई पारस कंचन होई। ये पारस सतगुरु सम सोई॥

अर्थ–मैं तो कीट खाए हुए (मुरचा) लोहे के समान था–गुरु रूपी पारस पत्थर का स्पर्श करते स्वर्ण कहा जाने लगा। कंचन होते ही मैं सोना होने का सुख प्राप्त करने लगा फिर मैं सराफों की दुकानों पर तौला जाने लगा। फिर सुनार ने मुझे गढ़ कर गहने के रूप में बदला और मुझे तोड़-मोड़कर अनेक रूपों में सँवारा। इसके बाद भी, वह पारस पत्थर सोना नहीं कहा गया और सोना-सोना है, ऐसा युगों-युगों तक यह जीव जाना जाने लगा। पारस पत्थर के स्पर्श से पारस पत्थर पारस ही

बनता है, ठीक ठीक प्रकार में सत्गुरु के मत के विषय में मैंने बताया है। तुलसी साहब कहते हैं कि सत्गुरु पारस ही हैं किन्तु लोहा तो अति सामान्य है किन्तु उन्होंने उसे अगम्य तत्त्व बना दिया। पारस की संगति से लोहा स्वर्ण बन जाता है—सन्तों का मत पारस पत्थर है। जो सत्संगति करता है, वही उसके महत्त्व ,ो जानता है और वही पारस को पहचानता भी है। उस पारस के स्पर्श से सभी स्वर्ण बन जाते हैं और ये सत्गुरु भी उसी प्रकार पारस के समान होते हैं।

॥ सोरठा ॥

पारस कंचन कीन्ह, दीन द्रब्य बस भौ भई।
दई दई कर्म लीन्ह, मीन बिबस बस जल भई॥ १ ॥
सतगुरु पारस सार, लगै लार पारस करै।
सरै जीव कौ काज, भरै सुरति भिनि भवन में॥ २ ॥
सूरति सब्द मिलाप, आठ अटारी चढ़ि चली।
अली अगम गढ़ घाट, बाट लखन सतगुरु दई॥ ३ ॥

अर्थ—पारस ने लोहे को स्वर्ण बना दिया, यह सारा संसार ही इसी प्रकार दीनता भरी दृष्टि जैसा है, वह किए हुए कर्मों में उसी प्रकार लीन रहता है, जैसे मछली विवश होकर निरन्तर जल में ही रहती है।

सत्गुरु पारस की भाँति सार तत्त्व हैं, जो उनके प्रति संसक्ति करके उनसे जुड़ता है, उस जीव का हित कार्य वे सम्पन्न करते हैं और उसे सुरति से सम्पन्न भवन में प्रतिष्ठित करते हैं॥ २ ॥

सुरति द्वारा 'सब्द' से मिलन हो उठता है, और चेतना आठ अटारियों के ऊपर चढ़कर प्रतिष्ठित हो जाती है। हे सखी! उसके आगे अगम तत्त्व के दुर्ग का घाट और मार्ग है—जिसको पहचानने का लक्षण सत्गुरु ही देता है॥ ३ ॥

॥ चौपाई ॥

जिन सतगुरु पद चरन सिहारा। सोइ पारस भये अगम अपारा॥
सतगुरु पारस संत बखाना। चौथा पद चढ़ि अगम कहाना॥
या को भर्म भाव कोइ लावै। सतसंग करै भर्म खुलि जावै॥
जो कोइ कहै अगम कस भाखा। आदि अरु अगम सुरतिरस चाखा॥
तुलसी तुच्छ ग्रंथ घट कीन्हा। बूझैं संत अगम लौ लीना॥
मैं उन का बालक बिधि गाई। सुनिहैं संत बाल हित लाई॥
मैं अजान बुधिहीन अचेता। वे सुनि करैं करैं हित हेता॥
मैं बुधि लरिका की लरिकाई। बुधि बालक बिधि कीन्ह बनाई॥
संत दयाल दया के स्वामी। तुलसी कीन्ही निरखि निसानी॥

अर्थ—जिन्होंने सत्गुरु के चरणों में बैठकर शरण प्राप्त की—वही पारस होकर अगम्य तथा अपार बन गया। सत्गुरु को पारस के रूप में सन्तों में वर्णित किया है और उसके बाद चौथा पद अगम का स्थल कहा गया है। इसका मर्म तथा रहस्य कोई ही प्राप्त कर सकता है किन्तु सत्संगति करते ही इसका रहस्य खुल जाता है। यदि कोई कहता है कि अगम कैसे कहा जाता है—आदि और अगम तत्त्व

का सुरति द्वारा जिसने रस चख लिया है–(इसीलिए वह कहता हूँ)। गोस्वामी तुलसीदास ने इसी के निमित्त इस तुच्छ घट रामायण की रचना की है जिससे अगम तत्त्व में तन्मय सन्त को समझ लें। मैंने तो अगम की चर्चा बालक विधि (तोतली बोली में) में कही है–और शिशुओं पर आत्मीयता भाव रखने वाले में सन्त इसको सुनेंगे॥

मैं अज्ञानी, बुद्धिहीन तथा नासमझ हूँ, और वे इसे सुनकर मेरे हितों की सिद्धि करेंगे। मैं बुद्धि से बालक हूँ, यह काव्य ग्रंथ मेरा लड़कपन है। मेरी शिशु-बुद्धि ने इस ग्रंथ का निर्माण किया है। हे दयालु सन्त जन! आप दया भाव के स्वामी हैं–इसी को इंगित करने के लिए यह मैंने यह पहचान दी है।

॥ सोरठा ॥

घट रामायन सार, जग बिरोध गुप्तै करी।
लगी संत के हाथ, बूझि भेद सारा लिया॥ १॥
अगम निगम रस सार, जगे निरखि संत हाथै करी।
मथि माखन रस काढ़ि, जगत भाँड बिधि निरखि कै॥ २॥
तुलसी तत मतजान, सत्त भेद निंदा नहीं।
ये मत माखन सार, जग असार जानै नहीं॥ ३॥
सब संतन रस मूल, कर्मसूल गाढ़े कटे।
फटे कागद करतार, सार बस्तु हाथै लगी॥ ४॥
तुलसी निपट अयान, जानि संत बूझै सोई।
घट रामायन सार, लखि अगार बिधि यों कही॥ ५॥
आदि अंत की बात, भाखि भेद संतन लखा।
पका पदम पद पार, झका भर्म भौ में रहा॥ ६॥
जिन बूझा मत मूल, सरन सूल सगरे कटे।
फटे परम क्रम भूल, जब अतूल अद्बुद लखा॥ ७॥

अर्थ–संसार में भारी विरोध देखकर मैंने घट रामायण रूपी अध्यात्म के इस सारतत्त्व को छिपा दिया था। यह जब संतों के हाथ लगी तो उन्होंने सम्पूर्ण रहस्यों को समझ लिया॥ १॥

अगम तथा निगम तत्त्व के इस सार तत्त्व रूप को समझकर सन्तों ने इसे अपने हाथों में ले लिया। दही को मथकर मक्खन रूपी सार तत्त्व को, संसार में व्याप्त इस उपहास की विधि को देखते हुए उन्होंने इसके रस का आनन्द निचोड़ लिया॥ २॥

तुलसी ने भी उनके विचारों को समझा क्योंकि सत्य भेद की निन्दा उचित नहीं है। यह मत मक्खन की भाँति सार तत्त्व है किन्तु यह नासमझ संसार इसे नहीं जानता है॥ ३॥

सम्पूर्ण सन्तों के आनन्द का तत्त्व (घट रामायण का ही कथ्य है) यही है, क्योंकि कर्म से उत्पन्न कष्ट बड़े संकटों से कटता है किन्तु वह सार तत्त्व जब हाथ लग जाता है तो प्रारब्ध के लिए रचित विधाता का मनुष्य के लिए निर्मित भाग्य का कागज स्वयं फट जाता है॥ ४॥

तुलसी तो कोरा अज्ञानी है, सन्त जन इसे जानकर समझेंगे। इस संसार को देखकर ही मैंने लोगों की मुक्ति के लिए ही घट रामायण का सार तत्त्व इस प्रकार कहा है॥ ५॥

जहाँ तक आदि तथा अन्त की बात है, मैंने सन्तों की बाणी को सुनकर ही उनके रहस्यों को बताया है। इस भवसागर के भ्रम में छटपटाता हुआ मैं (इन्हीं सन्तों की कृपा से ही) परिपक्व हुआ और फिर उन चरण कमलों के उस पार पहुँचा॥ ६॥

जिन्होंने इस मत के रहस्य को समझा, और इसकी शरणागति ली, उनके सारे संकट कट गए उनके कर्म से उत्पन्न संदेह के सन्दर्भ फट गए (नष्ट हो गए) क्योंकि उनको (साक्ष्य के रूप में) देखकर ही तुलसी यह कह रहे हैं॥ ७॥

॥ दोहा॥

जो ब्रह्मंड पिंड में मई, मइ मोरे पसार।
सब्द सार गुरु पदम की, तुलसी कहत निहार॥

अर्थ—जो ब्रह्मांड पिंड में है, उसी का ही मुझमें उसका प्रसार है, तुलसीदास स्वयं उसी को देखते हुए तथा कमलवत् गुरु चरणों को साक्ष्य में रखकर 'सबद' का सार तत्त्व कहते हैं।

॥ चौपाई॥

टाटी त्रोटक तोल बताई। छंद माहिं सब संध लखाई॥
जस जस भया गुरु सिष मेला। सो तुलसी त्रोटक में खोला॥
या की बूझ संत कोइ जानी। जिन जिन मंजिल राह पिछानी॥
आदि अंत और अगम निवासा। ज्ञान भक्ति और जोग बिलासा॥
पुनि बैराट राग रस भारी। अगम निगम मत कहा बिचारी॥
गुरुसतगुरु मत मिलन मिलापा। छूटै तिमर अंध और आपा॥
सतगुरु गगना गगन गुहारा। जब हिये नैना निरखि निहारा॥
पल पल सुरति पदम पद माहीं। ताकै ऐन सैन की राही॥
प्रथमहिं बन्दौं सतगुरु स्वामी। तुलसी बारंबार प्रनामी॥

अर्थ—त्रोटक राग के माध्यम से मैं इस रहस्य (टाटी) का सम्पूर्ण रूप बता रहा हूँ और छन्द के माध्यम से सम्पूर्ण तत्त्वों का भी वर्णन कर रहा हूँ। जैसे-जैसे गुरु तथा शिष्य के बीच सम्पर्क मिलाप बना है, उसे तुलसी ने इस त्रोटक राग में स्पष्ट किया है। जिन-जिन संतों ने गन्तव्य की राह पहचान ली है—वही सन्तगण ही इस रहस्य को समझ सकते हैं। आदितत्त्व, अन्त तत्त्व एवं अगम्य तत्त्व का निवास-ज्ञान भक्ति एवं योग से उत्पन्न आनन्द और पुनः आत्मीय प्रीति और संसक्ति से संयुक्त बैराट आनन्द आदि से जुड़े अगम एवं निगम तत्त्व का वर्णन मैंने विचारपूर्वक किया है। गुरु एवं सतगुरु के मिलन एवं भेंट जिनके कारण लोकसंसक्ति के अंधकार, अंधापन एवं आत्ममोह समाप्त हो उठते हैं। मैंने उनका वर्णन किया है। सतगुरु शून्याकाश की भाँति है और वे निरन्तर शून्याकाश की गुहार लगाए रहते हैं। साधक जब अपने हृदय के नेत्रों से उनको देखा करते हैं (मैं उसका वर्णन कर रहा हूँ)। प्रतिपल मेरी चेतना सुरति के साथ उनके चरण कमलों में लगी रहती है और ये उस अगम तत्त्व के राही निरन्तर उसी उसी को ताकते रहते हैं। मैं सर्वप्रथम सतगुरु स्वामी की वन्दना करता हुआ, उन्हें बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

॥ सोरठा ॥

गुरु पद गगन गुहार, जब निहार निरन[illegible]।
पकै पदम स्तुति सार, तकै ऐन अंदर [illegible]॥

अर्थ–मेरे लिए गुरु के चरण शून्याकाश के लिए गुहार (रक्षा के लिए पुक[illegible] शब्द) हैं, जब उनको देखा तो मुझे भ्रम मुक्त निर्णय तत्त्व ही दिखाई पड़ा। उनके चरण कमलों में सुरति का सार तत्त्व परिपक्व होता रहता है और उनकी कृपा से अन्तरात्मा में स्थित अगम्य तत्त्व का आवास मुझे निरन्तर दिखाई देता रहता है॥

॥ छन्द १ ॥

प्रथम बंदस्वामी सोसतगुरुप्रनामी। अगमपंथधामीसोवारंनपारं।
परमपद्ममूलंसोमहिमा अतूलं। कटे घोरसूलं अनंतं अपारं।
कहीतोलबानीअकथगति कहानी। कहाँ लौंबखानीसोचरनारबिंदं
मुए जोगज्ञानीसोमहिमान जानी। बरनबेदबानीसोनेताजोनेतं।
तुलसी सैल सानी सोभाखाबखनी। जो बंदौनमामीसोलेखाअलेखं।

अर्थ–मैं सर्वप्रथम स्वामी सतगुरु की बन्दना करता हूँ, वे सत्गुरु है, प्रणम्य हैं और उस अगम मार्ग के निवासी हैं, जिसकी कोई थाह (वार-वार) नहीं है। उनका चरण कमल श्रेष्ठ परम तत्त्व का मूलाधार है, उसकी महिमा अतुलनीय है और उन चरणों की कृपा से अनन्त, अपार तथा भयंकर कष्टों के समूह कट जाते हैं। मैं अपनी वाणी द्वारा उसका मूल्यांकन कर रहा हूँ किन्तु उसकी कला अकथनीय है। मैं उन चरण कमलों का वर्णन कहाँ तक करूँ। योगशास्त्र के कितने ज्ञानी जन उनके लिए लगे रहे किन्तु वे उनकी महिमा नहीं जान पाये और वेदवाणी द्वारा उनका वर्णन किया गया किन्तु जो नेति है, वह नेति ही है। तुलसीदास इस अपनी आनन्दमयी वाणी द्वारा उनकी शोभा का वर्णन कर रहा है–जिसका वर्णन अलेख्य है, मैं उसकी बन्दना कर रहा हूँ।

॥ छन्द २ ॥

गुरुधामकंजामनी मैल मंजा। धनू तोड़भंजासो लीलं अपीलं।
घोरगरजाधरारीकम सेसमारी। सोकड़कारारीसो अंगं भुअंगं।
दिगजदिर्गपालीपरेषट्टचाली। रबीचाँप डाली सो तोल अतोलं।
हली भूरिभारीकुलाहल अपारी। धसी तोड़ धारगगन घोर सारं।
तकीसुत्र जाईपकीताल माहीं। सोतुलसी अन्हाईछुटे कर्ममैलं।

अर्थ–अपने कंजा गुरुदेव के गुरुधाम का स्तवन कर रहा हूँ जिसने इस चेतना रूपी मणि पर लगी मैल को धोकर निर्मल बना दिया–उनकी लीला अपरम्पार है उन्होंने अज्ञानरूपी धनुष तोड़कर टुकड़े टुकड़े कर डाला। उनकी लीला अवर्णनीय है। अज्ञानरूपी धनुष के टूटने पर इस पर्वत पर घोर गर्जन हुआ और शेषनाग का शरीर अत्यन्त कड़क से करक उठा। दिग्गज-दिक्पाल आदि अपने स्थान पर पृथ्वी पर गिर पड़े–उस धनुष को तोड़कर सूर्य पर फेंक दिया और वह अतुलनीय तुलनीय हो उठा। पृथ्वी बार-बार हिलने लगी, अपार कोलाहल हो उठा–वह धारा तोड़कर पृथ्वी में धँस पड़ी और वह धारा अपने अपूर्व तत्त्वों के साथ शून्याकाश में विलीन हो उठी। शून्य में जाकर वह दिखाई पड़ी और उस शून्य की जगधारा में परिपक्व हो उठी। उसी धारा में इस तुलसी ने स्नान किया जिससे उसके कर्मों की मैल नष्ट हो गई॥

॥ छन्द ३ ॥

अगमपंथबाटाचढ़ी सुर्तिघाटा। गगनगैल फाटा सोआतं निआतं।
पिलापील भारी चढ़ी सुति सारी। सोंखिरकी निहारीलखा ब्रह्मपूरं।
अधर लेखलेखासो जानैनभेषा। सुरति संतदेखासोलेखाअलेखं।
तुलसीतत्तबानी कियामत्तछानी। लिया लैनिदानंजोज्ञानंसोध्यानं।

अर्थ–अगम पंथ के मार्ग द्वारा चित्तात्मा सुरति के घाट पर चढ़ी और उसके चढ़ते ही शून्याकाश का मार्ग फट गया और वह स्थान समीप आ गया। इस क्षण भारी-ठेलमठेल रही और उसको तोड़ती हुई सम्पूर्णतः सुरति आगे चढ़ गई और उसने उस खिड़की से झाँककर उस पूर्ण ब्रह्म को निहार कर देखा। अन्तरात्मा में उसकी जो स्थिति है, उसे भेषधारी नहीं जान सकते। सन्तों ने सुरति के द्वारा जो देखा है, उसका वर्णन अलेख्य है। तुलसी साहब कहते हैं कि उस तत्त्वमयीवाणी ने साधक को आत्ममय बना दिया है और अन्त में यही निदान (निष्कर्ष-फल) निकला कि अगमतत्त्व का जो ज्ञान है, वही उसका ध्यान भी है, दोनों में अन्तर नहीं है।

॥ छन्द ४ ॥

कहीसिंधबानीसोबुन्दानजानी। सोसतगुरुबखानीअनाथंसनाथं।
अजर कूप भारी सो सूरत सँवारी। कटेकर्मबंध बसे बुन्ध सिंध।
चढ़ी चेंट चाली खड़ी बंकनाली। धसी द्वारपालीप्रबोयंसोधोय।
तुलसीतत्ततोलीअधरचाँपखोली। लखी संतबोलीसोमोलंअमोलं।

अर्थ–जिन सन्तों में सिन्धु साधना की बात कही है, सामान्य साधुजन उस 'सिन्धु' साधना की बात नहीं जानते। इन दोनों का वर्णन सतुरु ने किया है और बखान करके हम जैसे अनाथों को सनाथ बना बना दिया है। उस व्यापक अक्षरण शील कूप में सुरति साधना को सँवार (सिद्ध किया) और उससे सारे कर्मों के बन्धन कट गए और आत्मा-बुंद रूप सिन्धु में निवसित हो उठी। ऊर्ध्वगमित बकनाल में चींटी की चाल से चित्तात्मा चल पड़ी और शून्य द्वार के दरवाजे में धँसकर जो कर्म के विधान थे, सबको धो डाला (नष्ट कर दिया)। तुलसीसाहब ने भी उस तत्त्व का मूल्यांकन करते हुए अन्तरात्मा की प्रत्यंचा खोलकर ढीली कर दी और सन्तों की उन वाणियों को देखा जो मोल भाव में अमूल्य थीं॥

॥ छन्द ५ ॥

जड़ें जाल कर्म पड़े भूल भर्म। धरे धर अधर्म न मरमं न सरमं।
नहीं भक्तज्ञानी जो आपानजानी। सोपाषानपानीन जाना अजानं।
मया मोह बन्धेत्रिया पुत्रफंदे। बिषय भोग अधेंसोगदं निखंदं।
तुलसी छेकछोड़ेहथीऔर घोड़े। तिनुकाइस्कतोड़ेसोमोड़ं करोड़।

अर्थ–कर्म की जाल में जकड़े हुए हम भ्रम और भूल में पड़े हैं–सारे अधर्मों को हम धारण किए हुए हैं–न मुझे रहस्य का ज्ञान है और न लज्जा है। आपा तत्त्व (आत्म तत्त्व) को जानने वाला यहाँ कोई ज्ञानी भक्त भी नहीं है। वह पत्थर तथा पानी जैसा जड़ है तथा वह अज्ञेय आत्मतत्त्व को नहीं जानता है। वह माया मोह के बन्धन में बँधा है, नारी तथा पुत्र के फंदे में फँसा है, विषय वासनाओं के भोग में वह अंधा हो उठा है और वह इस कीचड़ में लिप्त मूल्यहीन (निरबंद) हो उठा है। तुलसी साहब कहते हैं कि हठ (छेंक) त्याग कर हाथी और घोड़े छोड़ दे, इनके प्रति अपनी सारी संसक्ति तोड़ दे और उस दिशा में मन को मोड़ो जो अत्यधिक (करोड़ों) का मूल्यवान है॥

॥ छन्द ६ ॥

गिरा गोहगाँठी परे पाँच बाटी। फँसे घोर घाटी सो ठाटं बैराट।
प्रकिरती पचीस गुना नाम ईसं। गिरा मोह ग्रीससो प्रोसंअनीसं।
जड़े जोड़ जानी पड़े पिडपानी। चले चेत खानी नज्ञानं न ध्यानं।
तुलसी मैलमारंभया भूमि भारं। न तुरतीसम्हारं सोवारं न पारं।

अर्थ–आत्मा चेतना शरीर की गाँठ में गिर कर पाँच राहगीरों (बारी) के चक्कर में पड़ गई और इस भवसागर की भयंकर घाटी में फँस गई, जहाँ इस बैराट (सृष्टि) का ठाट-बाट है। पच्चीस तत्त्वों के साथ गुणों में वह फैल गई। वह इस भौतिक शरीर के समूह (पर्वत) में फँसकर उस अविनाशी तत्त्व को भूल गया। नाना प्रकार के संकटों से वे जुड़े हुए वे इस शरीर (पिण्ड) की संसक्ति में फँस गए। अपनी चेतना को भवसागर में नष्ट करते हुए न ज्ञान को समझा, न ध्यान को। तुलसी साहब कहते हैं कि वह नाना प्रकार की वासनाओं के चपेट में आ गये, पृथ्वी के लिए भार स्वरूप बन गया। वह शीघ्र अपने को न सम्हाल पाने के कारण न इस पार जा सका, न उस पार॥

॥ छन्द ७ ॥

कृतिमकालजारं फिकरफहमफारं। निकरनौनिवारं सोभारंउतारं।
अली आदिजानीभलीभूलमानी। चलीचीन्हखानीहितानंचितानं
तिरकूटता लंकरौसैल भालं। मिलौमौजमालं सो कालं निकालं।
तुलसीतौलगाई गगनगैल जाई। सुरतिसैल पाईसो साधंअगाधं।

अर्थ–कृत्रिम जाल के बन्धनों को विनष्ट करके, चिन्ता तथा भ्रमों को समाप्त करके, इस संसार के नवों (सारे) बन्धनों से मुक्त होकर उसने अपने बोझ को उतार दिया। हे सखी! उसने उस आदि तत्त्व को समझ लिया और भलीभाँति अपनी भूल का अनुभव भी कर लिया और अपने हितकारी तत्त्व को भलीभाँति पहचान कर वह उसकी ओर चल पड़ी। त्रिकूट (इंड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना का संधि स्थल) को ताल बनाकर अपने शून्याकाश के पर्वत शिखर पर स्थिर हो उठी–उसने उस परमतत्त्व का आनन्द लेना शुरू किया और काल तत्त्व को पूरी तरह से भगा दिया। उस शून्याकाश की गली में जाकर उस परम तत्त्व के गुणों का गान करना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार जिसने सुरति तत्त्व को प्राप्त कर लिया है–वह अगाध साधना का साधु है॥

॥ छन्द ८ ॥

अलोआत्मंरूपं अकासं सरूपं। रबी मास भूमं अनंतं अनूपं।
निराकार कारं भई जोति न्यारं। लईबिस्व भारं सोसारं सम्हारं।
सरगुन स्यामचारं सोसृष्टीसवारं। रबी खानिचारं सोभूमि अपारं।
अलीआसअंडाजमाजीवपिंडा। सो तुलसीअखडाबैराटं ब्रह्मंडं।

अर्थ–वह प्रभामय आत्मरूप शून्याकाशमय भी है तथा परम रूपवान भी। वह सूर्य की भांति प्रकाशमय तथा अनन्त एवं अनूप तत्त्व है। वह निराकार तत्त्व है और उसी से सम्पूर्ण ज्योति तत्त्व का प्रसार होता है। उसी ने सम्पूर्ण विश्व का भार ले रखा है और वही सम्पूर्ण ब्रह्मांड के तत्त्वों को सम्हाले हुए है। वही सम्पूर्ण श्यामल सृष्टि को सँवारने वाला है। वह अनन्त भूमि है जिसने इस पृथ्वी पर चारों प्रकार के जीवों की रचना की है। हे सखी! वह इस संसार का आशा भरा ब्रह्मांड है और उसी में सम्पूर्ण पिण्ड रूप जीव का जन्म हुआ है। इसलिए तुलसी साहब कहते हैं कि वह अखंड बैराट (सृष्टि रूप) ब्रह्मांड है।

॥ छन्द ९ ॥

गुनागोहं सीतं बना बासकीतं। पके पाँचपीतंसोचीतं अनीतं।
बैराट धारं सो बेदौ न पारं। जो नेतौ पुकारं सो वारंन पारं।
निरबान बानंजणजोग ध्यान पगा प्रेम पालं करालं।
तुलसी तत्त धोयंगठेगाँठि गोयं। पड़े पाँच मोयं जो सोयं सो खोयं।

अर्थ–गुणों को आत्मसात् किए हुए वह स्वयं कीर्तिवास (विश्रुत) है, इस संसार में संसक्त होकर पंचभौतिक रूपों में यदि संसक्त रहते हो तो यह अनुचित है। उसके बैराट की धारा का ज्ञान वेदों को भी नहीं है–जो उसे नेति कहकर पुकारते हैं, (वे जानते हैं कि) उसका वार-पार कुछ ज्ञात नहीं है। वह सभी के लिए माँगलिक ध्यान का विषय है, वह निर्वाण सवरूप है–जो उसके प्रेम में अनुरक्त है, उसका कराल काल भी कुछ नहीं कर सकता। तुलसी साहब कहते हैं कि जिसने भौतिक सम्बन्धों से अपने को जोड़ लिया है वे पाँचों बन्धनों में फँसे हुए, जैसे सोए हुए हों तथा अपना सब कुछ नष्ट किए हुए हैं।

॥ सोरठा ॥

त्रोटक तरक बिचार, समझि सघ साधू लखै।
तकै सुरति धरि ध्यान, सो समान पद का चखै ॥ १ ॥
घट रामायन अन्त, समझि सूर सन्तहि लखै ॥
झकै भेष और पंथ, थकै जगत भौ मिल रहा ॥ २ ॥

अर्थ–इस त्रोटक (छन्द) के तर्कों पर विचार करके उसे समझें तथा सच्चे साधुओं को देखें, यही नहीं, ध्यान लगाकर सुरति में भी देखे, वे साधुओं के समान ही उस परम तत्त्व के चरणानन्द को चखेंगे ॥ १ ॥

घट रामायण के इस समापन के सन्दर्भ को भलीभाँति समझकर विद्वान् सन्त इसके उद्देश्य को देखेंगे। भेष और पंथ वाले साधु इसे पढ़कर झूठा बकेंगे क्योंकि अपने आचरण से थके हुए वे इस भवसागर रूपी संसार में नष्ट हो रहे हैं ॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

पंडित ज्ञानी भेष जो, नहिं पावै कोइ अंत।
ये अनन्त रस अगम है, लखै सूर कोइ सन्त ॥

अर्थ–पंडित और ज्ञानियों का जो भेष है, उसका कोई अन्त नहीं प्राप्त कर सका है। ये अगम्य के अनन्त रस में डूबे हुए हैं और इन्हें कोई परम ज्ञानी सन्त ही देख सकता है।

॥ सोरठा ॥

तुलसी मैं मतिहीन, सन्त चीन्ह मो को दई।
भई निरत पद लीन, होइ अधीन अन्दर मई ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैं तो नितान्त अज्ञानी बुद्धिहीन व्यक्ति हूँ, सन्तों ने मुझे पहचानकर उस परम तत्त्व को दिया है। मैं उनके पदों में लीन रहकर ही अन्तरात्मा के अधीन हो गया हूँ ॥

॥ इति घट रामायण सम्पूर्णम् ॥